॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

७

सायणभाष्यसहिता

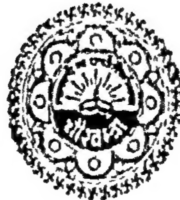
सामवेदसंहिता

सैव

हिन्दीभाषानुवादसंवलिता

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौडः



चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्भा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ३२०४०४

पुनर्मुद्रित संस्करण [redacted]

मूल्य



अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष ३३३४३१



*

चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान

..., बंगलो रोड, जवाहरनगर

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

THE
VIDYABHAWAN PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA
7



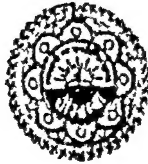
SĀMAVEDASAṀHITĀ

Along with

SĀYAṆABHĀṢYA

Edited with Hindi Translation

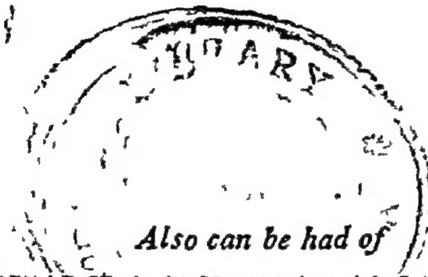
By
Pt. Ramswaroop Sharma Gaud



CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI

(*Oriental Publishers & Distributors*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001

Reprint Edition



Also can be had of

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236391

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका



सनातनधर्मके प्रेमी सज्जनो! लीजिये यह आपका सर्वस्वधन, आपके भवनको पवित्र करनेवाली और संसारभरके कल्याणकी साधन श्रीसामवेदसंहिता आपके पवित्र करकमलोंमें सादर समर्पित है, जिन सनातनधर्मके प्रेमी ग्राहक महानुभावोंके हाथमें यह अलभ्यरत्न पहुंचेगा, उनमेंसे कितनेही लोगोंको यह जिज्ञासा होना भी सम्भव है, कि-इस अमूल्यरत्नके द्वारा हम अपना, क्या और किसप्रकार कल्याणसाधन करें, प्रियसज्जनो! एक समय वह था, कि-हमारे पूर्वपुरुष इस वेदशास्त्रको धारण करके संसार संग्राममें पूर्ण विजय पातेहुए सब प्रकारसे सफलमनोरथ हुआ करते थे, पुत्रैषणा, धनैषणा और लोकैषणाको सफल करनेमें वह सदा सिद्धहस्त रहते थे, इसीकारण उनको अवर्षा, सन्तानहीनता आदि कोई भी फणदशा शोक नहीं देती थी इस ही वेदके अनुष्ठानसे संसार भरके अजेय और जगद्गुरु बनेहुए थे, परन्तु आज उस ही वेदके होतेहुए उन ही महर्षियोंके वंशधर ऐसा कौनसा दुःख शेष है जिसको नहीं भोग रहे हैं? क्या आजकलके अग्रणी बननेवाले द्विज कभी इस बातके तत्त्वकी खोज करते हैं, आजकलका जगत् अन्तःसार शून्य होगया है, बाहरी दृष्टि है, सो भी नए प्रकाशसे ऐसी चौंधागई है, कि-उसके आगे तिलतिले आकर वस्तुका स्वरूप कुछका कुछ दीखनेलगा है, तभी तो वेदके माननेवालोंमें बहुतसे हमारे भाई वेदके अन्तः सारको वेदके अलौकिक तत्त्वको भूलकर उसको आजकलके प्रकृति प्रेमी वैज्ञानिकोंके अनुभवका छोटा भाई बनाना चाहते हैं अर्थात् मनुष्यके विचारस्फुरणरूप रेल तार आदिका स्मारकमात्र बना वेदके अलौकिक भावको अज्ञानकी गुफामेंको ढकेलरहे हैं, संसारमें अहंकार भी वह वस्तु है, कि—उसके प्रतापसे प्राणी हिरण्यकशिपुके भाई बनतेहुए ईश्वरीय इतिकर्तव्यतामें भी दोषदृष्टि रखकर वेदोंके मंत्रोंका भी मनमाना अर्थ कर भारतके द्विजसमाजको अवनति-

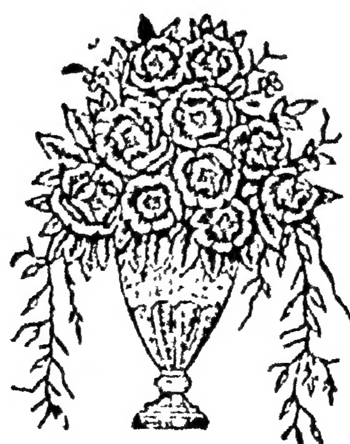
सागरकी अथाह तलीमें डुबोना चाहते हैं, पहिले महापुरुष शास्त्रोक्त विधिसे गर्भाधान कर स्वच्छ रजवीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तानको वैदिक संस्कारोंसे सम्मार्जित करते हुए वैदिक अनुष्ठानपूर्वक वेदाध्ययन कराते थे, वह वेदपाठी योगसाधनासे दिव्य दृष्टि पाकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए भारतीय प्रजाकी हर एक मनःकामनाको पूर्ण किया करते थे, परन्तु अब भारतका वह उदयकाल नहीं है, भारतके मन्त्रपूत रुधिरकी जो रेड लगरहा है, उसको स्मरण करनेसे भी रोमाञ्च खड़े होते हैं, ऐसे मलिनांतःकरणवाले वेदभाष्य या वैदिक अनुष्ठान करने बैठें तो क्या उससे कुछ लाभ होनेकी आशा कीजासकती है? कहाँ तो दिव्यदृष्टिवाले महापुरुष भाष्य और अनुष्ठान करके वेदका महत्त्व दिखा जगत्को चमत्कृत करते थे और कहाँ अब हियेकी दिव्यदृष्टिसे शून्य और नवीन प्रकाशके कारण बाहरकी शास्त्रीय दृष्टिको तिलांजलि देनेवाले विषमदृष्टि स्वार्थान्ध अपनेको वेदभाष्य का कर्त्ता वा वैदिकतत्त्वका आविष्कर्त्ता कहनेलगे, यदि उनको वेदका शत्रु द्विजसमाजका शत्रु और प्रलापी कहाजाय तो कुछ अनुचित नहीं है, हमारे छोटेसे विचारके अनुसार हमारे पूर्वपुरुष वेदको जिस दृष्टिसे देखते थे, आजकल उस दृष्टिसे देखनेवालोंका अभावसा हो गया, आजकलके द्विजोंका यह कहना, कि-हम वेदको मानते हैं, हम वैदिक हैं, और हमारी वेद पर श्रद्धा है, यह केवल वाणीका विनोद मात्र है, वेद कोई कहानी या इञ्जीनियरीकी पुस्तक नहीं है, कि—जिसको बाँचकर आप मनोविनोदें या कोई शिल्पविज्ञानकी प्राप्ति करके उसके माननेवाले बनबैठें ! वेद अनुष्ठान-ग्रन्थ है, प्यारे सनातनधर्मियो ! वेदका अर्थमात्र बांचलेनसे तुम वेदके प्रेमी वा वैदिक नहीं होसकते, यदि सच्चा वैदिक बनना है तो पश्चिमकी ओरसेपूर्व को मुख करो, यदि सब नहीं तो प्रतिसैंकडा दश द्विजकुमार वेदोद्धार की भारतोद्धारकी और अपने मनुष्यजन्मको सार्थक करनेकी सुधलें यज्ञोपवीतको केवल सामाजिक रूढ़ि ही न समझें, किन्तु यज्ञोपवीत धारणके साथ २ समझलें कि—हमने अपने शरीरको वैदिक अनुष्ठान में दीक्षित करदिया, इस शरीरको सदा वेदसेवामें लगावेंगे; प्यारे मित्रो ! यह वेदके मन्त्र और २ ग्रन्थोंमें लिखीं अक्षरोंकी पंक्तियोंकी समान नहींहै, इनमें वह कल्याणमयी किरणें गुथ हुई हैं, जो तपस्वियों की साधनासे उद्गत होकर संसारभरका दुःखान्धकार दूर करती हैं, और ग्रन्थोंका केवल अर्थ ही कार्यसाधक होता है परन्तु वेदके सना-

तन क्रमबद्ध अक्षर ही यथावत् उच्चारित होने पर इष्टसिद्धि देते हैं इसीकारण वेदके यथावत् उच्चारणके लिये उदात्त अनुदात्त आदि स्वरोंका बन्धन रक्खा है, यह स्वर अर्थानुगत होते हैं अथवा वेदका अर्थ ही स्वरानुगत होता है, इसलिये वेदका अर्थ स्वरमर्यादाके अनुसार ही ठीक होसकता है और वही सायण, उव्वट, महीधर आदिने लिखा है। अतः सायणाचार्यकृत संस्कृत भाष्य और उसके अनुसार ही यह अनुवाद लिख दियागया है, इसमें मेरी अपनी कल्पना कुछ नहीं है, देखाजारहा है कि आजकल कितने ही अभिमानियोंको अपनी योग्यताका विचार किये विना ही वेदभाष्यकार बननेकी सनक सवार हुई है, यह रोग सनातनधर्म और आर्यसमाज दोनोंमें है, आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता परलोकगत स्वामी तुलसीरामजी इस सायणभाष्य की ही कुछएक अंश काट छांट करके सामवेदभाष्यकार बन गये, इस बातको इस पुस्तकके पाठक अनायास ही समझसकेंगे, वेदका भाष्य रचनेके लिये साङ्गोपाङ्ग वैदिक भण्डारके कितना आयत्त होनेकी आवश्यकता है, उसका पता आजकलके -प्रसिद्धिलोलुप पण्डितोंको लगना कठिन है, मेरा लिखा यह भाषार्थ भाष्य नहीं है किन्तु सायण भाष्यके आधार पर अनुवादमात्र है।

आशा है इसग्रन्थरत्नको पाकर हमारे धार्मिक पाठकोंको संतोष होगा

निवेदक-(क० कु०) प० रामस्वरूप शर्मा

मुरादाबाद



❋ सामवेदसंहितायाः ❋

छन्द आर्चिकस्य आग्नेयं पर्व

❋ सायणभाष्येण भाषानुवादेन च सहितम् ❋

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

१ २र ३ १ २

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥

प्रथमे खण्डे अग्न आयाहीत्येषा भरद्वाजेन दृष्टा गायत्री आग्नेयी। सैषा प्रथमा । हे अग्ने अङ्गनादिगुणविशिष्ट ! त्वम् आयाहि अस्मद्यज्ञं प्रत्यागच्छ । किमर्थम् ? वीतये हविषां चरुपुरोडाशादीनां भक्षणाय । कीदृशः सन् ? गृणानः अस्माभिः स्तूयमानः (व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः) पुनश्च किमर्थम् ? हव्यदातये देवेभ्यो हविः प्रदानाय । आगत्य च होता देवानामाह्वाता सन् बर्हिषि आस्तीर्णे दर्भे निषत्सि निषीद (सदेश्छान्दसः शपो लुक् ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (वीतये) हविको भक्षण करनेके निमित्त (गृणानः) हमारे स्तुति किये हुए (आयाहि) आइये और (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुँचाने के निमित्त(होता) उनको बुलाने वाले बनकर (बर्हिषि) बिछेहुए कुशासन पर (निषत्सि) विराजिये१

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

त्वमग्ने यज्ञानाँ होता विश्वेषाँ हितः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

देवेभिर्मानुषे जने ॥ २ ॥

त्वमग्ने इत्यस्या ऋष्याद्याः पूर्ववत् । सैषा द्वितीया । हे अग्ने ! त्वं विश्वेषां यज्ञानाम्, अग्निष्टोमान्यग्निष्टोमादीनां सम्बन्धी होता होमनिष्पादनशीलः (जुहोतेस्ताच्छीलिकस्तृन्) यद्वा यज्ञानां यष्टव्यानां

'विश्वेषां देवानां होता आह्वाता। एवंभूतस्त्वं मानुषे मनोरपत्यभूते यजमानलक्षणे देवेभिः देवैः (छान्दसो भिस ऐसभावः) देवनशीलैर्ऋत्विग्भिः हितः निहितः गार्हपत्यादिरूपेणस्थापितो भवसि। यद्वा देवैरिन्द्रादिभिरुक्तलक्षणः सन् यज्ञानां निष्पादनाय यजमाने नियुक्तोऽसि२

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (विश्वेषाम्) सकल (यज्ञानाम्) यज्ञोंके (होता)होमको सिद्ध करनेवाले। अथवा(यज्ञानाम्) यजन के योग्य (विश्वेषाम्) देवताओंके (होता) आह्वान करने वाले तुम (मानुषे) मनुष्य यजमानके विषयमें (देवेभिः) स्तुति करने वाले ऋत्विजों करके (हितः) गार्हपत्य आदिरूपसे स्थापन किये जाते हो ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

अग्निं दूतमित्येषा कण्वपुत्रेण मेधातिथिना दृष्टा, छन्दोदेवतं पूर्ववत्। सैषा तृतीया। दूतम् देवानां दौत्ये विनियुक्तम् अग्निं देवम् वृणीमहे स्तुतिभिर्हविभिः सम्भजामहे [अस्य च दूतत्वं तैत्तिरीयके समाम्नातम्-"अग्निर्वै देवानां दूत आसीदुशना काव्योऽसुराणाम्"इति] कथम्भूतम् ? होतारं साधुदेवानामाह्वातारम् [ह्वयतेः साधुकारिणि तृन् बहुलं छन्दसि (६, १, ३४) इति सम्प्रसारणम्] विश्ववेदसं विश्वानि वेत्तीति विश्ववेदाः तम् [वित्तरसुन्] यद्वा,वेद इति धननाम, विश्वं सर्वं वेदो धनं यस्य,तम्,(बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६,२,१०६) इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्] अस्य प्रवर्तमानस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् निष्पादकत्वेन शोभनकर्माणम्, अथवा क्रतुरिति प्रज्ञा नाम शोभनप्रज्ञं वा। तं त्वां वृणीमहे इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ३ ॥

(होतारम्) देवताओंका भलेप्रकार आह्वान करनेवाले (विश्ववेदसम्) सकल के ज्ञाता अथवा सकल धनके स्वामी (अस्य, यज्ञस्य, सुक्रतुम्)इस वर्तमान यज्ञको सुसिद्ध करने वाले(दूतम्)देवताओंका दूतकर्म करनेवाले (अग्निम्) अग्निदेवको (वृणीमहे) भले प्रकार भजते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ ० ३ १ २ ३ १ २

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।

१ २ ३ १ २र

समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ४ ॥

अग्निर्वृत्राणीत्येषा भारद्वाजेन दृष्टा छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा चतुर्थी । द्रविणस्युः द्रविणं धनं स्तोतॄणामिच्छन् छन्दसि परेच्छायां क्यच् । प्रातिपदिकेभ्यः इच्छायां क्यचि सुगागमः, यद्वा । हविर्लक्षणं धनं आत्मन इच्छन्नग्निः विपन्यया पनतिः स्तुत्यर्थः अस्माभिः क्रियमाणया स्तुत्या स्तूयमानः सन् वृत्राणि बलेन जगतामावरकाणि रक्षःप्रभृतीनि, तमांसि वा जंघनत् भृशं हन्तु [हन्तेर्यङ्लुगन्ताल्लिङर्थे लेट् (३,४,७)] कीदृशोऽग्निः ? समिद्धः समिदादिभिर्हविर्भिः सम्यग्दीपितः अत एव शुक्रः दीप्यमानः । आहुतः हविर्भिराहुतः ॥ ४ ॥

(द्रविणस्युः) अपने उपासकोंको धन देना चाहनेवाला या अपने लिये हविरूप धनकी इच्छा वाला (समिद्धः) समिधा आदिसे प्रज्वलित किया हुआ (शुक्रः) प्रदीप्त (आहुतः) आहुतियें दिया हुआ (अग्निः) अग्नि देवता (विपन्यया) हमारी की हुई स्तुतियों से (वृत्राणि) बल से जगत् को कष्ट देने वाले राक्षसादिकों को या बलात्कारसे जगत् को आच्छादित करने वाले अज्ञानान्धकारों को (जंघनत्) नष्ट करे ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

प्रेष्ठं वो अतिथिꣳ स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।

२ ३ २ ३ १ २र

अग्ने रथं न वेद्यम् ॥ ५ ॥

प्रेष्ठं वा इत्येषा उशनसा दृष्टा छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा पञ्चमी । हे अग्ने ! वः त्वां पूजार्थं बहुवचनं स्तुषे स्तौमि, अहमुशना इति शेषः । कीदृशम् ? प्रेष्ठं स्तोतॄणामस्माकं धनदानेन प्रियतमम् । 'अतिथिं सर्वैरतिथिवत् पूज्यम् । यद्वा अत सातत्यगमने । ऋतन्यञ्जीत्यादिना अतेरिथिन् सततं देवानां हविः प्रदातुं गच्छन्तम् । मित्रमिव सखायमिव प्रियं स्तोतुः प्रीणनकरम् । रथं न रथमिव वेद्यं वेद्यो धनं धनहितं लाभहेतुं, यथा रथेन धनं लभते तद्वत् स्तोतारोऽनेन धनं लभन्ते, तादृशधनलाभकारणम् । अग्ने इति छन्दोगानाम्, अग्निम् इति बह्वृचानां पाठः ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (प्रेष्ठम्) स्तुति करने वालों को धनदाता होने से परमप्रिय (अतिथिम्) अतिथिकी तुल्य सबके पूज्य (मित्र-

मिव प्रियम्) सखाकी समान प्रसन्नता देने वाले (रथं न वेद्यम्) रथकी समान लाभके हेतु अर्थात् जैसे रथसे धन मिलता है तैसे स्तुतिकर्त्ता अग्निसे धन पाते हैं ऐसे (वः) पूज्य आपको (स्तुषे) स्तुति से प्रसन्नता करता हूँ ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः ।

३ २ ३ १ २र

उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ ६ ॥

त्वं न इत्येषा सुनीतिपुरुमीढाभ्यां तयोरन्यतरेण वा दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा षष्ठी । हे अग्ने त्वं न अस्मान् महोभिः पूजाभिः महद्भिर्धनैर्वा पाहि रक्ष ! कस्याः पाहि ? विश्वस्याः बहुविधात् अरातेः अदातुः सकाशात् अदानाद्वा । पाहि । त्वमेव महद्धनं दत्त्वा अदातुरदानाद्वा सकाशाद्रक्षेत्यर्थः । यद्वा महोभिः युक्तस्त्वमिति योज्यम् । उत अपि च । द्विषः द्वेष्टुः मर्त्यस्य मर्त्यात् सकाशात् पाहि अस्मभ्यं बलं दत्त्वेति भावः । अथवा मर्त्यस्य द्विषो द्वेषाद्रक्षेति सम्बन्धः । अरातेरित्यस्य अदानादिति पक्षे तत्रापि मर्त्यस्यादानादिति सम्बन्धनीयम् ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (नः) हमें (महोभिः) बहुतसा धन देकर (अरातेः) धन न देने वालों से (उत) और बल देकर (द्विषः) द्वेष करने वाले (मर्त्यस्य) मनुष्यों से (पाहि) रक्षा करो ॥ ६ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।

३ १ २ ३ १ २

एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ ७ ॥

एह्यूष्वित्येषा भरद्वाजेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा सप्तमी । हे अग्ने ! एहि आगच्छ ते तुभ्यं त्वदर्थं गिरः स्तुतीः इत्था [इत्थमनेन प्रकारेण सु सुष्ठु ब्रवाणि इत्याशास्यते । ताः स्तुतीः शृणु इत्यर्थः । उ इत्येताः इतराः असुरैः कृताः, स्तुतीः शृणु इति शेषः । [तथा च ब्राह्मणम्—अग्निरित्थेतरा गिर इत्यसुर्य्याह वा इतरा गिरः इति] अपि च । आगतस्त्वं एभिः एतैः इन्दुभिः सोमैः वर्द्धास वर्द्धस्व ॥ ७ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (एहि) आइये (ते) तुम्हारे लिये (गिरः)

स्तुतियें (कृण्या) इस प्रकार (सु-प्रवाणि) भले प्रकार उच्चारण करूँगा उनको सुनिये, (उ) और (इन्नवः) अनुरोधकी स्तुतियोंको सुनिये । तथा आये हुए आप (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमरसोंसे (वर्धास) वृद्धिको प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।

२ ३ १ २ ३ २

अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ ८ ॥

आ ते वत्स इत्येषा कण्वगोत्रेण वत्सेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा अष्टमी । वत्सः एतन्नामा ऋषिः ते तव मनः परमाच्चित् उत्कृष्टादपि सधस्थानात् सहस्थानात् द्युलोकात् आ यमत् आ यमयति । केन साधनेन ? गिरा स्तुत्या । शिष्टं प्रत्यक्षकृतम् । हे अग्ने त्वां कामये, त्वदीयं मनो मय्येव नियच्छामीति प्रार्थये । "त्वाङ् कामये" इति छन्दोगाः । "त्वाम् कामये इति बह्वृचाः, सुपन्तत्वादवग्रह पठन्ति ॥८॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (वत्सः) वत्स (गिरा) स्तुति से (ते) तुम्हारे (मनः) मनको (परमाच्चित्) परमोत्तम भी (सधस्थात्) द्युलोक धामसे (आयमयत्) आकर्षण करता हुआ (त्वाम्) तुम्हें (कामये) चाहता हूँ अर्थात् आपका मन मेरी ओरको लगे यह प्रार्थना करता हूँ ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।

३ १ २र ३ १ २

मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ९ ॥

त्वामग्न इत्येषा भरद्वाजेन दृष्टा, छन्दोदेवते पूर्ववत् । सैषा नवमी । हे अग्ने अथर्वा एतत्संज्ञ ऋषिः त्वां पुष्करादधि पुष्करे पुष्करपर्णे निरमन्थत अरण्योः सकाशादजनयत् । कीदृशात् पुष्करात् ? मूर्ध्नः मूर्धवद्धारकात् । विश्वस्य सर्वस्य जगतः वाघतः वाहकात् । पुष्करपर्णे हि प्रजापतिर्भूमिमप्रथयत् तत पुष्करपर्णेऽप्रथयत् इति श्रुतेः । भूमिश्च सर्वजगत आधारभूतेति पुष्करपर्णस्य सर्वजगद्धारकत्वम् । अत्र पुष्करशब्देन पुष्करपर्णमभिधीयते, इत्येतच्च तैत्तिरीयके विस्पष्टमाम्नातम्, त्वामग्ने पुष्करादधीत्याह पुष्करपर्णे ह्येनमुपश्रुतमविन्दन् इति ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अथर्वा) अथर्वा (त्वाम्)तुमको(मूर्ध्नः) मूर्धाकी समान धारण करनेवाले (विश्वस्य वाघतः) सकल जगत्के धारणकर्त्ता (पुष्करात् अधि) कमल के पत्तोंमें (निरमन्थत) अरणियोंसे मथकर उत्पन्न करता हुआ ॥ ९ ॥

२ ३   १ २ ३ १   २ ३ १ २ ३ १ २   ३ २

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे ।

३ १   २र   ३ २

देवो ह्यसि नो दृशे ॥ १० ॥

सैषा दशमी । पूर्वोक्तासु ऋक्षु बह्वृचानामनुक्रमणिकाग्रन्थं पर्यालोच्य तत्रोक्ता ऋषिच्छन्दोदेवता योजिताः एवमुत्तरास्वपि योजनीयाः । अग्न विवस्वदित्येषा तु बह्वृचैर्नाम्नाता, तथाप्यस्याः छन्दोदेवते पूर्ववद् विस्पष्टे, ऋषिस्तु वामदेव इति ग्रन्थान्तरादवगतः ॥ हे अग्ने त्वम् अस्मभ्यम् अस्माकं महे ऊतये महते रक्षणाय, अव रक्षण इति धातोः ऊतियूतिजूतीति सूत्रेण निपातितं रूपम्, विवस्वत् स्वर्गादि—लोकेषु विशेषेण निवासस्य हेतुभूतमिदं कर्म आभर सम्पादय । हग्रहोर्भश्छन्दसीति भत्वम् । हि यस्मात् त्वं नः अस्माकं दृशे दर्शनार्थं देवः द्योतमानः असि इन्द्रादयो नास्मत्भिर्दृश्यन्ते, त्वं तु गार्हपत्यादिदेशेऽतिद्योतमानः प्रत्यक्षेण दृश्यते तस्मात्त्वां विशेषेण प्रार्थयामहे इत्यभिप्रायः ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (अस्मभ्यम्) हमारी (महे) बड़ी (ऊतये) रक्षाके लिये (विवस्वत्) स्वर्गादि लोकोंमें विशेष रूपसे निवास के हेतु इस कर्म को (आभर) सिद्ध करो (हि) क्योंकि-(नः) हमको (दृशे) दर्शन देने के निमित्त (देवः) प्रकाशवान् (असि) हो ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

१ २   ३   १ २   ३ १ २   ३ १ २

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।

१ २ ३ १ २

अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे । सेयं प्रथमा । आयुङ्क्ष्वाहिर्ऋषिः । हे अग्ने ! देव ! ते तुभ्यं नमो गृणन्ति नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति । किमर्थम् ?

ओजसे बलाय। के? कृष्टयः मनुष्या यजमानाः अतोऽहमपि गृणामीत्यर्थः। त्वं स अग्नः बलैः। अमित्रं शत्रुम्। अर्दय नाशय॥ १॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव! (कृष्टयः) मनुष्य (ओजसे) बलके निमित्त (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः) नमस्कार शब्दको (गृणन्ति) उच्चारण करते हैं। इस कारण मैं भी तुम्हें नमस्कार करता हूँ (अमैः) बलोंसे (अमित्रम्) शत्रुको (अर्दय) नष्ट करो॥ १॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

दूतं वो विश्ववेदसꣳ हव्यवाहममर्त्यम्।

१ २ ३ २

यजिष्ठमृञ्जसे गिरा॥ २॥

सैषा द्वितीया। वामदेव ऋषिः। हे अग्ने! विश्ववेदसं विश्वं समस्तं वेदो धनं यस्यासौ विश्ववेदाः तम्, सर्वविदं वा। हव्यवाहं देवेभ्यो हविषां वोढारम्। अमर्त्यं अमरणधर्माणम्। यजिष्ठं अतिशयेन यष्टारम्। दूतम् देवानाम् वः त्वाम्। गिरा स्तुतिरूपया वाचा। ऋञ्जसे यजमानोऽहं प्रसाधयामि वर्द्धयामीत्यर्थः। ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा इति यास्कः॥ २॥

हे अग्निदेव! (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (हव्यवाहम्) हवियों को देवताओंके समीप पहुँचाने वाले (अमर्त्यम्) अमर (यजिष्ठम्) यज्ञ के परम साधन (दूतम्) देवताओंके दूत (वः) तुम्हें (गिरा) स्तुति की वाणीसे (ऋञ्जसे) वृद्धि को प्राप्त करता हूँ॥ २॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।

२ १ २र

वायोरनीके अस्थिरन्॥ ३॥

सैषा तृतीया। प्रयोग ऋषिः। हे अग्ने! हविष्कृतः यजमानस्य। गिरः स्तुतयः जामयः स्वसार इव। देदिशतीः तव गुणान् दिशन्त्यः। त्वा त्वाम् उपतिष्ठन्ते। वायोः अनीके समीपे त्वां संबोधयन्त्यः। अस्थिरन् अतिष्ठंश्च॥ ३॥

हे अग्निदेव! (हविष्कृतः) यजमानकी (गिरः) स्तुतियें (जामयः) बहिनों की समान (देदिशतीः) गुणकीर्त्तन करती हुई (त्वा, उप) तुम्हारे समीप उपस्थित होती हैं (वायोः, अनीके) वायुके समीप (अस्थिरन्) तुम्हें प्रज्वलित करती हुई स्थित होती हैं॥ ३॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
नमो भरन्त एमसि ॥ ४ ॥

सैषा चतुर्थी । मधुच्छन्द ऋषिः । हे अग्ने ! वयम् अनुष्ठातारः, दिवे दिवे प्रतिदिनं, दोषावस्तः रात्रावहनि च, धिया बुद्ध्या, नमो भरन्तः नमस्कारं सम्पादयन्तः, उप समीपे त्वा एमसि त्वामागच्छामः । उप शब्दस्य निपातः-स्वरः । त्वामौ द्वितीयायाः [८, १, २३] इति युष्मच्छब्दस्यानुदात्तत्वादेशः । दोषाशब्दो रात्रिवाची । वस्तः इत्यहर्वाची । द्वन्द्वसमासे कार्तकौजपादित्वादाद्युदात्तः । सावेकाच इति धियो विभक्तिरुदात्ता । नमः इति निपातः । यद्वा, नब्विषयस्येत्याद्युदात्तः । भरन्त इत्यत्र शपः पित्वात् शतुर्लसार्वधातुकत्वाच्च अनुदात्तत्वे सति धातुस्वरः शिष्यते । एमसीति इदन्तोमसि इत्यनेन इकारः, तिङः इति निघातः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (वयम्) हम अनुष्ठान करने वाले (दिवे दिवे) प्रतिदिन (दोषावस्तः) रातमें और दिनमें (धिया) बुद्धिसे (नमःभरन्तः) नमस्कार करते हुए (त्वा, उप) तुम्हारे समीप (एमसि) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जराबोध तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय ।
१ २ ३ १ २ ३ २
स्तोमꣳ रुद्राय दृशीकम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । शुनःशेप ऋषिः । हे जराबोध ! जरया स्तुत्या बोध्यमानाग्ने ! विशेविशे तत्तद्यजमानरूपप्रजानुग्रहार्थम् । यज्ञियाय यज्ञसम्बन्ध्यनुष्ठानसिद्ध्यर्थम् । तद् देवयजनम् । विविड्ढि प्रविश । यजमानोऽपि रुद्राय क्रूरायाग्नये तुभ्यम् । दृशीकं दर्शनीयम् समीचीनं स्तोमं स्तोत्रं करोतीति शेषः । अत्र यास्क एवं व्याख्यातवान् । जरा स्तुतिः, जरतेः स्तुतिकर्मणः तद्बोधतया बोधयितरिति वा तद् विविड्ढि तत् कुरु । मनुष्यस्य यजमानाय । स्तोमं रुद्राय दर्शनीयम् इति । जराबोध । जृष् वयोहानौ अत्र तु स्तुत्यर्थः । षिद्भिदादिभ्योऽङ् इत्यङ् प्रत्ययः, अतष्टाप् । जरया स्तुत्या बोधो यस्यासौ जराबोधः । यद्वा, जरया बाध्यते इति जराबोधः कर्मणि आमन्त्रिताद्युदात्तत्वम्

विविड्ढि विश प्रवेशने, लोटो हिः, बहुलं छन्दसि इति शपः श्लुः, अभ्यासहलादिशेषो, हुझल्भ्यो हेर्धिः, इति हेर्धिरादेशः, घत्वष्टुत्वे यद्वा विष्लृ व्याप्ताविव्यस्य लोण्मध्यमैकवचनं अभ्यासस्य गुणाभावः विशं-विशो सावेकाच इति चतुर्थ्या उदात्तत्वम्, अनुदात्तश्च प्रत्ययो हितादनुदात्तत्वम्। यज्ञियाय यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ इति घः दर्शतम् अजिदृशि भ्याञ्चेति कीकन्, नित्यादाद्युदात्तः ॥ ५ ॥

(जराबोध) हे स्तुतिसे बोध्यमान अग्ने (विशे विशे) प्रत्येक यजमानरूप प्रजा पर अनुग्रह करनेको (यज्ञियाय) यज्ञसम्बन्धी अनुष्ठानकी सिद्धिके निमित्त (तत्) यज्ञस्थानमें (विविड्ढि) प्रवेश करो। यजमान भी (रुद्राय) तुम क्रूर अग्निके अर्थ (दर्शतम्) देखने योग्य (स्तोमम्)) स्तुतिको, करता है ॥ ५ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।

३ १ २ ३ १ २

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। मेधातिथिर्ऋषिः। त्यच्छब्दः सर्वनामतच्छब्दपर्यायः। हे अग्ने! यो यज्ञः चारुः अङ्गवैकल्यरहितः। त्यं तथाविधम् चारुम्, अध्वरम् प्रतिलक्ष्य। गोपीथाय सोमपानाय। प्रहूयसे प्रकर्षेण त्वं हूयसे तस्मादस्मिन्नध्वरे त्वं मरुद्भिर्देवविशेषैः सह, आ गहि आगच्छ। सेयमृग् यास्केनैवं व्याख्याता—तं प्रति चारुमध्वरं सोमं पानाय प्रहूयसे सोऽग्निर्मरुद्भिः सहागच्छ [१०, ३, १२] इति ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तम्) उस (चारुम्) अङ्गवैकल्यरहित (अध्वरं प्रति) यज्ञकी ओर लक्ष करके तुम (गोपीथाय) सोमपान करनेके लिये (प्रहूयसे) अधिकतासे आह्वान किये जाते हो (मरुद्भिः आगहि) देवताओंके सहित आइये ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।

३ १ २ ३ १ २

सम्राजं तमध्वराणाम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। शुनःशेप ऋषिः। अध्वराणां यज्ञानां, सम्राजम् तं सम्राट्स्वरूपं स्वामिनम् अग्निम् त्वां, नमोभिः स्तुतिभिः वन्दध्यै वन्दितुं प्रवृत्ताः इति शेषः। अग्नेर्दृष्टान्तः—वारवन्तं वालयुक्तम्। अश्वं

न अश्वमिव । अश्वो यथावालैर्व्यथकान् मशकमक्षिकादीन् परिहरति, तथा त्वमपि ज्वालाभिरस्मद्विरोधिनः परिहरसीत्यर्थः ॥ ७ ॥

(वारवन्तम्) पूँछवाले (अश्वं न) घोड़ेकी समान (अध्वराणाम्) यज्ञोंके (सम्राजम्) स्वामी (तं त्वां अग्निम्) तुझ प्रसिद्ध अग्निको (नमोभिः) स्तुतियोंसे (वन्दध्यै) वन्दना करनेको प्रवृत्त हुए हैं अर्थात् जैसे घोड़ा पूँछके बालोंसे पीड़ा देने वाले मच्छर आदि को दूर करदेता है तैसे ही तू भी ज्वालाओंसे हमारेविरोधियोंको हटा।

३ १ २र ३ १ २र
और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदाहुवे ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निꣳसमुद्रवाससम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । प्रयोग ऋषिः । समुद्रवाससं समुद्रमध्यवर्तिनं वाडवं शुचिं शुद्धम्, अग्निम् और्वभृगुवत् तथा और्वभृगुः अप्नवानवत् यथा अप्नवानः, तथा आहुवे अहमाह्वयामि ॥ ८ ॥

(और्वभृगुवत्) और्वभृगुकी समान (अप्नवानवत्) अप्नवान् की समान (समुद्रवाससम्) समुद्र के मध्य में वर्तमान वाड़वनामा (शुचिम्) शुद्ध (अग्निम) अग्नि को (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥८॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धानो मनसा धियꣳसचेतमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । प्रयोग ऋषिः । मर्त्यः मनुष्योऽग्निमिन्धानः काष्ठैः प्रज्वलयन् मनसा एव श्रद्दधानः धियं कर्म सचेत काले भजेत । विवस्वभिः ऋत्विग्भिश्च अग्निम्—एव इन्ध प्रज्वलयति । बह्वृचानाम् ईधे इति पाठः ॥ ९ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम् इन्धानः) अग्नि को समिधाओं से प्रज्वलित करता हुआ (मनसा) मानसिक श्रद्धा से (धियम्) कर्म को (सचेत) यथासमय करे (विवस्वभिः) ऋत्विजों के द्वारा (अग्निम्, इन्धे) अग्नि को प्रज्वलित करे ॥ ९ ॥

२उ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् ।
३ २उ ३ १ २ ३ २
परो यदिध्यते दिवि ॥ १० ॥

अथ दशमी। वत्स ऋषिः परोदिवि दिवः परस्तात् व्यत्ययेन सप्तमी (३, ४, ८८)। बहुवचनानां दिवेति तृतीयान्तेन व्यत्ययः। दिवि धुलोकस्योपरि, यद् यदा। अयं वैश्वानरोऽग्निः सूर्यात्मना दृश्यते दीप्यते आदित् अनन्तरमेव प्रत्नस्य चिरन्तनस्य रेतसः गन्तुः रीगतिरेषणयोः अस्मात् सुरीभ्यां तुडंसत्पतुमुन् तुडागमश्च। यद्वा रेतस इत्युदकनाम (नि० १, १२, २६) रेतस्विन उदकवतः सामर्थ्यान्मतुब्लोपो लक्ष्यते ईशस्येन्द्रस्य सूर्यात्मनः घासरं नियामकं घासरस्य निवासहेतुभूतं वा ज्योतिः प्रांतमासं तेजः पश्यन्ति सर्वे जनाः। यद्वा घासरमित्यत्यन्तसंयोगे द्वितीया (२, ३, ५), कृत्स्नमहः उदयप्रभृत्यास्तमयात् ज्योतिः पश्यन्तीत्यर्थः। इसुसोः सामर्थ्ये (८, ३, ४४) इति विसर्जनीयस्य षत्वम्॥ १०॥

(दिवि परः) धुलोक से ऊपर (यत्) जब, यह वैश्वानर अग्नि सूर्य रूपसे (दृश्यते) दीप्त होता है (आदित्) अनन्तर ही सकल जीव (प्रत्नस्य) चिरन्तन (रेतसः) गमन करनेवाले सूर्य के (घासरम्) निवास के हेतुभूत (ज्योतिः) प्रकाशवान् तेज को (पश्यन्ति) देखते हैं॥ १०॥

प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३१२ ३१२ ३१२
अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
२ ३ २३ १२
अच्छा नप्त्रे सहस्वते॥ १॥

अथ तृतीयखण्डे। सैषा प्रथमा। प्रयोग ऋषिः। अध्वराणां अहिंस्यानां बलिनाम्। नप्त्रे बन्धुम्। सहस्वते बलवन्तम्। विभक्तिव्यत्ययः वृधन्तं ज्वालाभिर्वर्द्धमानम्। पुरूतमम् अतिशयेन बहुमग्निम्। हे ऋत्विजः वः यूयम्। अच्छा अभिगच्छत॥ १॥

हे ऋत्विजो! (वः) तुम (अध्वराणाम्) हिंसा न करने योग्य बलवानों के (नप्त्रे) बन्धु (सहस्वते) बलवान् (वृधन्तम्) ज्वालाओंसे बढ़ते हुए (पुरूतमम्) बहुत अधिक (अग्निम्) अग्निको (अच्छा) अभिगमन करो या पूजो॥ १॥

२ २ ३ १२ ३ २३२ ३२३ २ १ २
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यँसद्विश्वं न्या३त्रिणम्।
३ १ २ २३
अग्निर्नो वँसते रयिम्॥ २॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषिः । अयम् अग्निः, तिग्मेन तीक्ष्णेन शोचिषा तेजसा विश्वम् सर्वम् । अत्रिणम अत्तारम् राक्षसादिकम् । नियंसत् निहन्तु । [बह्वृचा अनुस्वारस्थाने आकारं कृत्वा यासत् इति पठन्ति] अपि च न अस्मभ्यमग्निः, रयिं धनं, वंसते ददातु । वंसते इति छन्दोगाः । वनते इति बह्वृचाः ॥ २ ॥

(अयं, अग्निः) यह अग्नि (तिग्मेन, शोचिषा) तीक्ष्ण तेजसे (विश्वं, अत्रिणम्) सकल भक्षक राक्षसादि को (नियंसत्) नष्ट करे (अग्निः) अग्नि (नः) हमें (रयिम्) धन (वंसते) देय ॥२॥

१ २ ३२ ३२ ३ २ ३ १ २३१ २र

अग्ने मृड महाꣳ असयय आ देवयुं जनम् ।

३१२ ३ २३१ २

इयेथ बर्हिरासदम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वामदेव ऋषिः । हे अग्ने ! मृड अस्मान् सुखय । स त्वं महान् असि प्रभूतो भवसि । यः त्वम् अयः गन्ता देवयुं देवानां कामयितारं जनं यजमानं बर्हिः दर्भम् आसदम् यज्ञे आसत्तुम् । आ इयेथ आगच्छसि । अयः इति छन्दोगाः । ययीम् इति बह्वृचाः ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (मृड) हमें सुख दो (महान्, असि) तुम महान् हो (अयः) गमन करनेवाले तुम (देवयुम्) देवताओं का दर्शन चाहने वाले (जनम्) यजमान के समीप (बर्हिः, आसदम्) दर्भासन पर विराजने को (आ—इयेथ) आते हो ॥ ३ ॥

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अग्ने रक्षाणो अꣳहसः प्रति स्म देव रीषतः ।

१ २ ३ १ २

तपिष्ठैरजरो दह ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । वसिष्ठ ऋषिः । हे अग्ने ! त्वं न अस्मान् अंहसः पापात् रक्षा पाहि [संहितायां दीर्घश्छान्दसः] अपि च हे देव द्योतमानाग्ने ! अजरः जरारहितस्त्वं रीषतः हिंसतः शत्रून् [संहितायां दीर्घश्छान्दसः] तपिष्ठैः अतिशयेन तापकैस्तेजोभिः प्रति दह स्म भस्मीकुरु । स्मेति सकारस्य संहितायां प्रति ष्म इति षत्वं बह्वृचाः कुर्वन्ति ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (नः) हमें (अंहसः) पापसे (रक्षा) रक्षा करो (देव) हे प्रकाशमान विभावसो (अजरः) जरारहित

तुम (रीषतः) हिंसा करना चाहने वाले शत्रुओं को (तपिष्ठैः) अत्यन्त ताप देनेवाले तेजोंसे (प्रति दह स्म) भस्म करो ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २र २र १ २ ३ १ २

अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देवसाधवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

अरं वहन्त्याशवः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । भरद्वाज ऋषिः । हे देव द्योतमान ! अग्ने ! तान् अश्वान् युंक्ष्व आत्मीये रथे योजय [बह्वृचास्तु हिशब्दादि विकरण-प्रत्ययस्य लोपं कृत्वा युक्ष्व इति पठन्ति] ये तव त्वदीयाः साधवः साधकाः सुशीला वा अश्वासः अश्वाः आशवः क्षिप्रगामिनः अरम् अलं पर्याप्तं त्वदीयं रथं वहन्ति । वहन्त्याशवः इति छन्दोगाः । वहन्ति मन्यवः इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(देव, अग्ने) हे प्रकाशवान् अग्ने ! उन घोड़ोंको अपने रथमें (युंक्ष्वा) जोड़ो (ये हि) जो (तव) तुम्हारे (आशवः) शीघ्रगामी (साधवः) सुशील (अश्वासः) घोड़े (अरम्) ठीक (वहन्ति) तुम्हारे रथ को लेजाते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २

नित्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।

३ १ २

सुवीरमग्न आहुतः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वसिष्ठ ऋषिः । नक्ष्य ! उपगन्तव्य ! नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा विश्पते विशाम्पते ! आहुत सर्वैर्यजमानैरभिहुत ! हे अग्ने ! द्युमन्तं दीप्तिमन्तं सुवीरं कल्याणस्तोतृकं त्वा त्वां वयं निधीमहि निहितवन्तः । धीमहे वयम् इति छन्दोगाः । देव धीमहि इति बह्वृचाः ॥ ६ ॥

(नक्ष्य) उपासना करने योग्य (विश्पते) धनपते (आहुत) अनेकों यजमानों से होमे हुए (अग्ने) हे अग्निदेव (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (सुवीरम्) अग्नि की स्तुति करनेवाले कल्याण के भागी होते हैं ऐसे (त्वा) तुम्हें (वयम्) हमने (निधीमहे) स्थापित किया है ॥ ६ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।

३ १ २र
अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी विरूप ऋषिः। मूर्द्धा देवानां श्रेष्ठः दिवः द्युलोकस्य ककुत् उच्छ्रितः पृथिव्याः च पतिः अयम् अग्निः अपां रेतांसि स्थावर-जङ्गमात्मकानि भूतानि जिन्वति प्रीणयति ॥ ७ ॥

(मूर्द्धा) देवताओं में श्रेष्ठ (दिवः, ककुत्) द्युलोक से ऊँचा (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (अयं, अग्निः) यह अग्नि (अपां, रेतांसि) जलों के वीर्य्यरूप स्थावर जङ्गम प्राणियों को (जिन्वति) प्रेरणा करता है ॥ ७ ॥

३२३२उ ३ १ २ ३ १ २३१र २र
इममू षु त्वमस्माकꣳसनिं गायत्रं नव्याꣳसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी। शुनःशेप ऋषिः। हे अग्न ! त्वम् अस्माकम् अस्मत्स-म्बन्धिनम् [अस्मभ्यम् इति तैत्तिरीयाः] इममृषु पुरोदेशेऽनुष्ठीय-मानमपि सनिं हविर्दानं नव्य.सं नवतरं [नवीयांसम् इति तैत्तिरीयाः] गायत्रं स्तुतिरूपं वचोऽपि देवेषु देवानाम् अग्रे प्रवोचः प्रब्रूहि ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अस्माकम्) हमारे(इममूषुम्)इस अनु-ष्ठान किये जाते हुए (सनिम्) हविर्दान को (नव्यासम्)अतिनवीन (गायत्रम्) स्तुतिरूप वचन को (देवेषु) देवताओं के आगे (प्रवोचः) कहो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
१ २ ३ १ २
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी। गोपवन ऋषिः। हे अग्ने! तं त्वा त्वां गोपवनः ऋषिः गिरा स्तुत्या जनिष्ठत् जनयति वर्द्धयति स्तूयमाना हि देवता वर्द्धन्ते तादृशाग्ने अङ्गिरः सर्वत्र गन्तः; अङ्गिरसा पुत्रो वा हे पावक शोधक ! गोपवनस्य हवम् आह्वानं श्रुधि शृणु। तं त्वां इति जनिष्ठत् इति च छन्दोगाः, यं त्वा इति जनिष्ठत् इति च बह्वृचाः ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तं, त्वाम्) उन आपको (गोपवनः) गोपवन (गिरा) स्तुतिसे (जनिष्ठत्) उत्पन्न करता है वा बढाता

हे (अङ्गिरः) हे अग्निदेव [illegible] ([illegible]) [illegible]!
(इमम्) आह्वानको (शृणु) सुनो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २   ३ ४ ३ २ ३ १ २

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।

२ ३ १ २   ३ १ २

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

अयं अग्निः । [illegible] । वाजपतिः वाजानामन्नानां पतिः पालकः [[illegible]] कविः क्रान्तदर्शी मेधावी वा । दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि दधत् प्रयच्छन् अग्निः हव्यानि हवींषि पर्यक्रमीत् परिक्रामति [illegible] ॥ १० ॥

(वाजपतिः) अन्नोंके पालक (कविः) सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी देवता (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (रत्नानि) रमणीय धनोंको (दधत्) देते हुए (अग्निः) अग्निदेव (हव्यानि) हवियोंको (पर्यक्रमीत्) ग्रहण करते हैं ॥ १० ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

३ १ २ ३ ३ १ २

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ११ ॥

त्यं तमिमं जातवेदसमादित्यं [illegible] केतवः प्रज्ञापकाः सूर्यरश्मयः [illegible] उद्वहन्ति उ । इति यास्कः । [[illegible]] विश्वाय विश्वस्मै सकलाय भुवनाय दृशे द्रष्टुम् । यथा सर्वे जना सूर्यं पश्यन्ति तथोर्ध्वं वहन्तीत्यर्थः [illegible] सूर्यम् ! त्यं तं प्रसिद्धं, जातवेदसं जातानां प्राणिनां वेदितारं, जातप्रज्ञं, जातधनं वा, देवं दीप्यमानम् [अत्र निरुक्तम्— उद्वहन्ति जातवेदसं देवमश्वाः केतवो रश्मयो वा सर्वेषां भूतानां सन्दर्शनाय सूर्यम् (१२. २. ४) इति] ॥ ११ ॥

(केतवः) सूर्यकी किरणें(विश्वाय,दृशे)सकल भुवनोंको देखनेको (त्यम्) प्रसिद्ध (जातवेदसम्) प्राणियोंके ज्ञाता (देवम्) दीप्तिमान् (सूर्यम्) सूर्यको (उद्वहन्ति-उ) ऊपरको उठाती हैं ॥ ११ ॥

३ १ २र
अपाँ रेताँसि जिन्वति ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी विरूप ऋषिः। मूर्धा देवानां श्रेष्ठः दिवः द्युलोकस्य ककुत् उच्छ्रितः; पृथिव्याः च पतिः अयम् अग्निः अपां रेतांसि स्थावर-जङ्गमात्मकानि भूतानि जिन्वति प्रीणयति ॥ ७ ॥

(मूर्धा) देवताओं में श्रेष्ठ (दिवः, ककुत्) द्युलोक से ऊँचा (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (अयं, अग्निः) यह अग्नि (अपां, रेतांसि) जलों के वीर्य्यरूप स्थावर जङ्गम प्राणियों को (जिन्वति) प्रेरणा करता है ॥ ७ ॥

३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
इममू षु त्वमस्माकँ सनिं गायत्रं नव्याँसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । शुनःशेप ऋषिः । हे अग्न ! त्वम् अस्माकम् अस्मत्स-म्बन्धिनम् [अस्मभ्यम् इति तैत्तिरीयाः] इममू षु पुरोदेशेऽनुष्ठीय-मानमपि सनिं हविर्दानं नव्यसं नवतरं [नवीयांसम् इति तैत्तिरीयाः] गायत्रं स्तुतिरूपं वचोऽपि देवेषु देवानाम् अग्रे प्रवोचः प्रब्रूहि ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अस्माकम्) हमारे (इममूषुम्) इस अनुष्ठान किये जाते हुए (सनिम्) हविर्दान को (नव्यासम्) अतिनवीन (गायत्रम्) स्तुतिरूप वचन को (देवेषु) देवताओं के आगे (प्रवोचः) कहो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।
१ २ ३ १ २
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गोपवन ऋषिः । हे अग्ने! तं त्वा त्वां गोपवनः ऋषिः गिरा स्तुत्या जनिष्ठत् जनयति वर्द्धयति स्तूयमाना हि देवता वर्द्धन्ते तादृशाग्ने अङ्गिरः सर्वत्र गन्तः; अङ्गिरसः पुत्रो वा हे पावक शोधक ! गोपवनस्य हवम् आह्वानं श्रुधि शृणु। तं त्वां इति जनिष्ठत् इति च छन्दोगाः, यं त्वा इति जनिष्ठत् इति च बह्वृचाः ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (तं, त्वाम्) उन आपको (गोपवनः) गोपवन (गिरा) स्तुतिसे (जनिष्ठत्) उत्पन्न करता है वा बढाता

है (अङ्गिरः) हे सर्वत्र गमन करनेवाले (पावक) शोधक अग्निदेव ! (हवम्) आह्वानको (श्रुधि) सुनो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ १० ॥

अथ दशमी । वामदेव ऋषिः । वाजपतिः वाजानामन्नानां पतिः पालकः [परि वाजपतिः कविरित्येष हि वाजानां पतिरिति ब्राह्मणम्] कविः क्रान्तदर्शी मेधावी वा । दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि दधत् प्रयच्छन् अग्निः हव्यानि हवींषि पर्यक्रमीत् परिक्रामति व्याप्नोतीत्यर्थः ॥ १० ॥

(वाजपतिः) अन्नोंके पालक (कविः) अतीत विषयोंको देखनेवाले (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (रत्नानि) रमणीय धनोंको (दधत्) देतेहुए (अग्निः) अग्निदेव (हव्यानि) हवियोंको (पर्यक्रमीत्) व्याप्त करते हैं ॥ १० ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
३ १ २र ३ १ २
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ ११ ॥

त्यं सौरी आग्नेयसमाख्यानं छत्रिणो गच्छन्तीतिवत् प्राणभृत उपदधातीतिवच्च द्रष्टव्यम् । अथैकादशी कण्व ऋषिः केतवः प्रज्ञाः सूर्य्याश्वाः यद्वा, सूर्य्यरश्मयः सूर्य्यम् सर्वस्य प्रेरकमादित्यम् उद्वहन्ति ऊर्ध्वं वहन्ति उ । इति पादपूरणः । [उक्तञ्च—"मिताक्षरेष्वनर्थकाः कमो मिद्विति"] किमर्थम् ? विश्वाय विश्वस्मै सर्वस्मै भुवनाय दृशे द्रष्टुम् । यथा सर्वे जना सूर्य्यं पश्यन्ति तथोर्ध्वं वहन्तीत्यर्थः कीदृशं सूर्य्यम् ? त्यं तं प्रसिद्धम्, जातवेदसं जातानां प्राणिनां वेदितारं, जातप्रज्ञं, जातधनं वा, देवं द्योतमानम् [अत्र निरुक्तम्—उद्वहन्ति जातवेदसं देवमश्वाः केतवो रश्मयो वा सर्वेषां भूतानां सन्दर्शनाय सूर्य्यम् (१२, २४) इति] ॥ ११ ॥

(केतवः) सूर्यकी किरणे(विश्वाय,द्रष्टुम्)सकल भुवनोंको देखनेको (त्यम्) प्रसिद्ध (जातवेदसम्) प्राणियोंके ज्ञाता(देवम्) दीप्तिमान् (सूर्यम्) सूर्यको (उद्वहन्ति-उ) ऊपरको उठाता है ॥ ११ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
३ १ २ ३ १ २
देवममीवचातनम् ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । मेधातिथिर्ऋषिः । हे स्तोतृसंघ ! अध्वरे क्रतौ अग्निम् उपस्तुहि उपेत्य स्तुतिं कुरु कीदृशम् ? कविं मेधाविनं सत्यधर्माणम् सत्यवचनरूपेण धर्मेणोपेतं, देवं द्योतमानम्, अमीवचातनम् अमीवानां हिंसकानां शत्रूणां वा घातकम् ॥ १२ ॥

हे उपासको ! (अध्वरे) यज्ञमें (कविम्) मेधावी (सत्यधर्माणम्) सत्यवचन रूप धर्मसे युक्त (देवम्) द्योतमान (अमीवचातनम्) शत्रुओंके नाशक (अग्निम्) अग्निदेवको (उपस्तुहि) उपस्थित होकर स्तुति करो ॥ १२ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
२उ ३ १ २
शं योरभिस्रवन्तु नः ॥ १३ ॥

अथ त्रयोदशी । सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषो वा तृत आप्तो वा ऋषिः । नः अस्माकं पापापनोदद्वारेण शं सुखं भवन्तु । देवी देव्यः आपः अभिष्टये अस्मद्यज्ञाय भवन्तु, यज्ञाङ्गभावाय च भवन्तु इत्यर्थः । अपिच, नः अस्मत्सम्बंधिने पीतये पानाय च शं सुखं भवन्तु । तथा, शम् उत्पन्नानां रोगाणां शमनम्, योः यापनम् अनुत्पन्नानां पृथक्करणं च कुर्वंतु अपि च, नः अस्माकम् अभि उपरि स्रवन्तु, अत्यर्थं सिञ्चन्तु । शन्नो भवन्तु इति छन्दोगाः । आपो भवन्तु इति बह्वृचाः तैत्तिरीयाश्च ॥१३॥

(नः, शम्) हमारे पाप दूर होकर सुख प्राप्त हो (देवीः, आपः, अभिष्टये, भवन्तु) दिव्य जल हमारे यज्ञके अङ्ग बनें (नः पीतये, शं, भवन्तु) हमारे पीनेके लिये सुखरूप हों (शम्) उत्पन्न हुए रोगोंको शान्त करनेवाले हों (योः) न उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करें (नः, अभि, स्रवन्तु) हमारे ऊपर अमृतरूपसे टपके ॥ १३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोषाता यस्य ते गिरः ॥ १४ ॥

अथ चतुर्दशी । उशना ऋषिः । हे सत्पते सतां पते ! अग्ने ! नूनम् इदानीं, कस्य कीदृशस्य जनस्य,परीणसि ब्रह्मणि धियः कर्माणि जिन्वसि प्रीणयसि । यस्य ते तव सम्बन्धिन्यः गिरः स्तुतयः गोषाता गोसातौ गवां लाभे भवन्तु खलु । तस्मात्त्वं कुत्र तिष्ठसि ? अस्माकमिदानीं गवेच्छा प्रवर्त्तते । यद्वा, हे अग्ने ! त्वमिदानीं कस्य कर्माणि प्रीणयसि ? न कस्यापीत्यर्थः । अस्माकमेव कर्माणि प्रीणयेतिभावः । परीणसि इति सत्पते इति च छन्दोगाः । परिणसः इति दम्पते इति च बह्वृचाः ॥ १४ ॥

(सत्पते) हे सज्जनों के पालक अग्ने । (नूनम्) इस समय (कस्य) कैसे मनुष्यके (धियः) कर्मोंको (परीणसि) ब्रह्म में (जिन्वसि) पहुँचा रहे हो (यस्य) जिस (ते) तेरे सम्बंधकी (गिरः) स्तुतियें (गोषाता) गौओंका लाभ करानेवालीं [भवन्तु] हों अर्थात् इस समय आप किस भगवद्भक्तका कार्यसाधन करते हुए कहाँ हो ? इस समय हमको गौओंको पानेकी इच्छा है ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १   २र

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ।

अथ चतुर्थखण्डे—सेयं प्रथमा । शंयुऋषिः । हे स्तोतारः ! वः यूयं यज्ञायज्ञा यज्ञेयज्ञे सर्वेषु यागेषु दक्षसे प्रवृद्धाय अग्नये गिरागिरा स्तुतिरूपया वाचा स्तोत्रं कुरुतेति शेषः [च शब्दो भिन्नक्रमो च इत्यस्मात् परो द्रष्टव्यः] यूयं च स्तोत्रं कुरुत, वयमपि तमग्निं प्र प्र शंसिषम् प्रसमुपोदः पादपूरणे (८, १, ६०) इति प्रशब्दस्य द्विरुक्तिः पादपूरणार्था । व्यत्ययेनैकवचनं (३, ४,९८) छान्दसो लुङ् प्रशंसामः । कीदृशम् ? अमृतं मरणरहितम् । जातवेदसं जातानां वेदितारं जातप्रज्ञं जातधनं वा मित्रं न सखिभूतमिव प्रियमनुकूलम् । यद्वा व्यत्ययेन त्वमित्यस्य वसादेशः (३, ४, ९८) अग्नय इति च कर्मणि चतुर्थी, क्रियाग्रहणमपि कर्त्तव्यम्, इति कर्मणः सम्प्रदानत्वात् । च शब्दश्चणितिनिपातश्चेदर्थे वर्त्तते । दक्षस इति दक्षवृ द्धिकर्मणः अन्तर्भावितण्यर्थाल्लटि रूपम् । चण् योगान्निपातैर्यद्यदिहन्त इति निघातप्रतिषेधः । तत्रायमर्थः—हे स्तोतस्त्वं यज्ञे इममग्निं गिरा स्तुत्या दक्षसे च वर्द्धयसि चेत् वयमपि अमृतत्वादिगुणकं तं प्रशंसामः ॥ १ ॥

हे स्नाताओ ! (वः च) तुम भी (यज्ञायज्ञा) सब यज्ञोंमें (दक्षसे) वृद्धिको प्राप्त (अग्नये) अग्निके अर्थ (गिरागिरा) स्तुति रूप वाणी करके [स्तुति करो] (वयम्) हम (अपि) भी (अमृतम्) मरणरहित (मित्रं, न) मित्रकी समान (प्रियम्) अनुकूल (जातवेदसम्) प्राणिमात्रके ज्ञाता अग्निको (प्रप्रशंसिषम्) स्तुति करते हैं ॥१॥

१ १ २ १ १२ ३ २ २ ३ १ २

पाहि नो अग्न एकया पाह्यु३त द्वितीयया ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२३१ २

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो २

अथ द्वितीया । भर्गऋषिः । हे अग्ने!नः अस्मान् एकया ऋचा गिरा पाहि रक्ष । उत अपि च द्वितीयया ऋचा पाहि पालय ।तिसृभिः गीर्भिः स्तुतिभिः ऊर्जाम् अन्नानां बलानां वा हे पते ! स्वामिन् ! तथा पाहि । हे वसो ! वासक ! अग्ने ! चतसृभिः गीर्भिः पाहि ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (नः) हमको (एकया) एक ऋचारूप वाणी से (उत) और (द्वितीयया) दूसरी ऋचासे (पाहि) रक्षा करो, (ऊर्जाम्) बलोंके वा अन्नोंके (पते) स्वामिन् अग्ने!(तिसृभिः) तीन (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (पाहि) रक्षा करो (वसो) हे अग्ने (चतसृभिः) चार स्तुतियोंसे (पाहि) रक्षा करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ रेवत्पावक दीदिहि ३

अथ तृतीया ।शंयुऋषिः।हे देव ! दानादि-गुण-युक्त!यविष्ठ युवतम! पावक शोधक ! अग्ने ! शुक्रेण निर्मलेन शोचिषा तेजसा । भरद्वाजे अस्मद्भ्रातरि समिधानः समिध्यमानस्त्वं बृहद्भिर्महद्भिस्तेजोभिः, नः अस्मदर्थं रेवत् धनयुक्तं यथा भवति तथा दीदिहि दीप्यस्व । रेवत्पावक इति छन्दोगाः । रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक इति बह्वृचाः ॥३॥

(देव) दानादि गुणयुक्त (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (पावक) शोधन करने वाले (अग्ने) हे अग्ने ! (शुक्रेण) निर्मल (शोचिसा) तेज करके (भरद्वाजे) हमारे भ्राताके विषयमें (समिधानः) प्रज्वलित होते हुए तुम बृहद्भिः (बड़े) तेजोभिः) तेजों करके (नः) हमारे निमित्त (रेवत्) धनयुक्त होकर (दीदिहि) दीप्त हूजिये ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ४

अथ चतुर्थी। वसिष्ठऋषिः। हे अग्ने! स्वाहुत यजमानैः सुष्ठुभिः हुत! त्वे तव सूरयः प्रेरकाः स्तोतारः प्रियासः प्रियाः संतु भवन्तु किञ्च ये मघवानः धनवंतः यंतारः प्रदातारः जनानाम् अस्मदीयानाम् ऊर्वम् समूहम्। गोनां गवां च ऊर्वं समूहं दयंत प्रयच्छन्ति, ते च तव प्रियाः संतु इति पूर्वेणान्वयः ऊर्वम् इति छन्दोगाः। ऊर्वान् इति बह्वृचाः॥४॥

(स्वाहुत) यजमानों के द्वारा भले प्रकार हवन किये हुए (अग्ने) हे अग्निदेव! (त्वे) तुम्हारे (सूरयः) प्रेरक स्तोता (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों। (ये) जो (मघवानः) धनवान् (यंतारः) देनेवाले (जनानाम्) हमारे पुरुषोंके (गोनाम्) गौओंके (ऊर्वम्) समूहको (दयंत) देते हैं [वह भी आपके प्रिय हों] ॥ ४॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः। अप्रोषि-
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
वान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ५

अथ पञ्चमी। भारद्वाज ऋषिः। हे अग्ने! देव! जरितः स्तोतः स्तुत्य इत्यर्थः। विश्पतिः प्रजानां पालकः रक्षसः राक्षसानां तपानः सन्तापकः असि। हे गृहपते यजमानगृहस्य पालकाग्ने! त्वम् अप्रोषिवान् यजमानस्य गृहमत्यजन् महान् अतिशयेन पूज्योऽसि। दिवः द्युलोकस्य पायुः पाता दुरोणयुः यजमानगृहस्य मिश्रयित्वा सर्वदा वर्त्तमान इत्यर्थः। तादृशस्त्वं महानसीत्यर्थः। तपान तपान इति पाठौ गृहपते गृहपतिः इति च॥५॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव! (जरितः) स्तुतिके योग्य (विश्पतिः) प्रजाओंका पालक (रक्षसः) राक्षसजातिका (तपानः) सन्तापदायक (असि) है (गृहपते) हे यजमानके घरकी रक्षा करनेवाले अग्ने! (अप्रोषिवान्) यजमान के घरको न त्यागने वाले तुम (महान्) परम पूज्य (असि) हो (दिवः) द्युलोकके (पायुः) रक्षक (दुरोणयुः) यजमान के घर सदा वर्त्तमान (असि) हो॥५॥

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र २
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य । आ
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाꣳउषर्बुधः॥६॥

अथ षष्ठी । प्रस्कण्वऋषिः । हे अग्ने त्वम् उषसः उषोदेवतायाः सकाशात् राधः धनं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय आवह आनीय प्रापय । सोऽग्निर्विशिष्यते । अमर्त्य मरणरहित ! हे जातवेदः जातानां वेदितः कीदृशं राधः विवस्वत्विशिष्टनिवासोपेतम् । चित्रं नानाविधम् । किञ्च । अद्य अस्मिन् दिने उषर्बुधः उषःकाले प्रबुद्धान् देवानावह ॥६॥

(अमर्त्य) मरणधर्मरहित (जातवेदः) प्राणिमात्रके ज्ञाता (अग्ने) अग्निदेव (त्वम्) तुम (उषसः) उषा देवतासे (विवस्वत्) विशिष्ट निवासयुक्त(चित्रम्)नानाप्राकारके (राधः) धनको (दाशुषे) हवि देने वाले यजमानके अर्थ (आवह) लाकर प्राप्त कराओ (अद्य) आज (उषर्बुधः) उषःकालमें जागे हुए (देवान्) देवताओंको (आवह) लाकर पहुँचाइये ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः॥७

अथ सप्तमी । तृणपाणि ऋषिः । हे वसो वासक ! अग्ने ! चित्रः दर्शनीयस्त्वं ऊत्या रक्षया सह राधांसि धनानि नः अस्मभ्यं चोदय प्रेरय । अस्य लोके परिदृश्यमानस्य राधः धनस्य त्वं रथीः असि रंहिता नेता भवसि । अतः कारणात् अस्मभ्यं धनानि प्रेरयेत्यर्थः । अपि च नः अस्माकं तुचे [अपत्यनामैतत् नै० २, २, १] अपत्याय अपतनहेतुभूताय पुत्राय गाधं प्रतिष्ठां तु क्षिप्रं विदाः लम्भय ॥ ७ ॥

(वसो) व्यापक (अग्ने) अग्निदेव (चित्रः) दर्शनीय तुम (ऊत्या) रक्षासहित (राधांसि) धन (नः) हमारे अर्थ (चोदय) प्रेरणा करो (अस्य) इस लोकमें दीखते हुए (राधः) धनके (रथीः) प्रेरक (असि) हो [इस कारण हमारे अर्थ भी धनको प्रेरणा करिये और] (नः) हमारे (तुचे) पुत्रके अर्थ (गाधम्) प्रतिष्ठाको (तु) शीघ्र (विदाः) दीजिये ॥ ७ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातऋतः कविः । त्वां
२र ३ १ २ ३ १ २
विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ८

अथाष्टमी । विरूप ऋषिः । हे अग्न ! त्रातः रक्षक ! ऋतः सत्यभूतः कविः क्रान्तप्रज्ञः त्वमित् त्वमेव सप्रथाः सर्वतः पृथुः असि भवसि । हे समिधान समिध्यमान ! हे दीदिवः दीप्ताग्ने ! त्वां विप्रासः विप्राः मेधाविनः विधातारः स्तोतारः आविवासन्ति विचरन्ति ।

(त्रातः) रक्षक (अग्न) अग्निदेव (ऋतः) सत्य (कविः) ज्ञानदृष्टि (त्वमित्) तुम ही (सप्रथाः) सबसे बड़े (असि) हो (समिधानः) प्रज्वलित होते हुए (दीदिवः) हे दीप्त अग्ने (विप्राः) मेधावी (वेधसः) स्तुति करनेवाले (त्वाम्) तुमको (आविवासन्ति) उपासना करते हैं ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ नो अग्ने वयोवृधꣳरयिं पावक शꣳस्यम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहꣳसुनीती सुयशस्तरम् ।

अथ नवमी । शुनःशेप ऋषिः । हे अग्न ! पावक शोधक ! वयोवृधम् अन्नस्य वर्द्धकं शंस्यं स्तुतिवन्तं रयिं धनं नः अस्मभ्यम् आभरेति शेषः । आहृत्य च हे उपमाते उपास्मात्समीपे मातिघृतमित्युपमातिः, हे तादृश अग्ने नः अस्मभ्यं सुनीती ! सुनीत्या शोभननयेन पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं सुयशस्तरम् अत्यन्तस्वभूतं कीर्त्ति—धनं रास्व देहि । सुयशस्तरं स्वयशस्तरम् इति पाठौ ॥ ९ ॥

(पावक) शोधक (अग्ने) हे अग्निदेव ! (वयोवृधम्) अन्नको बढ़ाने वाले (शंस्यम्) स्तुतिके योग्य (रयिम्) धनको (नः) हमारे अर्थ (आभर) लाइये । (उपमाते) हे घृतकी समीपता वाले अग्ने (नः) हमारे अर्थ (सुनीती) सुन्दर नीतिके द्वारा (पुरुस्पृहम्) अनेकोंके चाहने योग्य (सुयशस्तरम्) सर्वथा हमारी अपनी कीर्त्ति रूप धन (रास्व) दीजिये ॥ ९ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यो विश्वादय ते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
३ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यंत्वग्नये १०

अथ दशमी। सौभरि ऋषिः। होता देवानामाह्वाता मन्द्रः मोदनः यः अग्निः विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि जनानां जनेभ्यः दयते प्रयच्छति। तस्मै अस्मै अग्नये मधोः न मदकरस्य सोमस्येव प्रथमानि मुख्यानि पात्रा पात्राणि स्तोमाः स्तोत्राणि प्रयन्ति गच्छन्ति॥

(होता) देवताओंका आह्वान करने वाला (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (यः) जो अग्नि (जनानाम्) यजमानोंको (विश्वा) सकल (वसु) धन (दयते) देता है (अस्मै) ऐसे इस (अग्नये) अग्नि के अर्थ (मधोः) मदकारी सोमके (प्रथमानि) मुख्य (पात्रा, न) पात्रोंकी समान (स्तोमा) स्तोत्र (प्रयन्तु) प्राप्त हों ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
प्रियं चेतिष्ठमरतिँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् १

अथ पञ्चमखण्डे—सेयं प्रथमा। वामदेवऋषिः। ऊर्जः बलस्य नपातं पुत्रं प्रियम् अस्माकं, चेतिष्ठम् अतिशयेन ज्ञातारं प्रज्ञातारं प्रज्ञापकं वा। अरतिं गन्तारं स्वामिनं वा स्वध्वरं सुयज्ञं, विश्वस्य सर्वस्य यजमानस्य दूतम् अमृतं नित्यम् अग्निम् एना एनेन नमसा स्तोत्रेण [यद्यप्यत्रान्वादेशो नास्ति तथापि छान्दसत्वादिदंशब्दस्यैनादेशः]। हे स्तोतारः! वः युष्मदर्थम् आहुवे आह्वयामि ॥ १० ॥

हे स्तोताओ! (वः) तुम्हारे निमित्त (ऊर्जः) बलके (नपातम्) पुत्र वा रक्षक (अस्माकम्) हमारे (प्रियम्) प्यारे (चेतिष्ठम्) पूर्ण ज्ञाता (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) सुन्दर यज्ञ वाले (विश्वस्य) सकल यजमानोंके (दूतम्) दूत (अमृतम्) नित्य (अग्निम्) अग्निको (एना) इस (नमसा) स्तोत्रसे (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि २

अथ द्वितीया। भर्गो ऋषिः। हे अग्ने! वनेषु मातृषु च स्वपिसि वर्तसे तथाभूतं त्वा त्वां मर्तासः मनुष्याः अध्वर्य्वादयः, मन्थनेनो-

त्पाद्य समिन्धते। पश्चात् प्रवृद्धस्त्वं अतन्द्र अनलसः सन् हविष्कृतः यजमानस्य हव्यः हविः वहसि देवान् प्रति। आदिद् अनन्तरमेव देवेषु मध्ये राजसि दीप्यसे। मातृषु मात्रो इति पाठौ। हव्यं हव्यः इति च॥ २॥

हे अग्ने! (वनेषु) वनोंमें (मातृषु) माताओं में (शेषे) वर्त्तमान रहते हो, ऐसे (त्वा) तुम्हे (मर्त्तासः) मनुष्य [मन्थनके द्वारा उत्पन्न करके] (समिन्धते) प्रज्वलित करते हैं। तब पूर्णरूपसे बढे हुए तुम (अनलसः) आलस्यरहित होकर (हविष्कृतः) यजमान के (हव्यम्) हविको (वहसि) देवताओंके समीप पहुँचाते हो (आदित्) अनन्तर (देवेषु) देवताओं में (राजसि) शोभा पाते हो॥ २॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।

२ ३ १ ३ १ २२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

उपोषु जातमार्य्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ३

अथ तृतीया। सौभरि ऋषिः। यस्मिन् अग्नौ व्रतानि कर्माणि आदधुः यजमानाः आहितवन्तः गातुवित्तमः अतिशयेन मार्गाणां ज्ञाता सोऽग्निः अदर्शि प्रादुरभूत्। किञ्च। सुजातं सम्यक् अस्य आर्यस्य उत्तमवर्णस्य वर्द्धनं वर्द्धयितारं अग्निं नः अस्माकं गिरः स्तुतिरूपाः वाचः उपो नक्षन्तु उपगच्छन्तु। नक्ष गताविति धातुः। नक्षन्तु नो गिरः इति बह्वृचाः॥ ३॥

(यस्मिन) जिस अग्निमें (व्रतानि) कर्मोंको (आदधुः) यजमानोंने स्थापन किया (गातुवित्तमः) मार्गोंका पूर्ण ज्ञाता वह अग्नि (अदर्शि) दीखा (सुजातम्) भले प्रकार प्रकट हुए (आर्यस्य) श्रेष्ठ वर्णके (वर्द्धनम्) बढाने वाले (अग्निम्) अग्निको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतिरूप वाणियें (उपोनक्षन्तु) प्राप्त हों॥ ४॥

३ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २ ३१२३२

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ४

अथ चतुर्थी। मनुः प्रार्थयते। उक्थे स्तोत्रशस्त्रात्मके अध्वरे हिंसारहिते अस्मिन् यज्ञे अग्निः पुरोहितः यज्ञात्पुरतः उत्तरवेद्याम् ऋत्वि-

ग्भिर्निहितोऽभूत्। यथा ग्रावाणः सोमाभिषवार्थं पुरतो निहिताः। बर्हिः च पुरतो निहितम्। आसादितम्। एवं सामग्र्यां सत्यां हे मरुतः एकोनपञ्चाशन्मरुद्गणाः। हे ब्रह्मणस्पते स्तोत्रस्य पालक! एतन्नामक! देव! हे देवाः द्योतनादि-गुणयुक्ताः! इन्द्रादयः!। वरेण्यं वरणीयं भजनीयम् अवः रक्षणम् ऋचा सूक्तरूपया स्तुत्या वः युष्मान् यामि मनु-ग्रहं याचामि। याचतेर्लटि रूपम्। वर्णलोपश्छान्दसः। मरुतः ब्रह्मणस्पते-देवाः इति त्रीण्यामन्त्रितत्वेन छन्दोगाः पठन्ति। मरुतः-ब्रह्मणस्पतिं-देवान् इति द्वितीयान्तत्वेन बह्वृचाः ॥ ४ ॥

(उक्थे) स्तोत्र ही है शस्त्र जिसमें ऐसे (अध्वरे) हिंसारहित इस यज्ञमें (अग्निः) अग्नि (पुरोहितः) यज्ञसे आगे उत्तर वेदीमें ऋत्विजोंके द्वारा स्थापित किया गया [यथा] जैसे (ग्रावाणः) पाषाण सोमका रस निकालनेको आगे रक्खे गए (बर्हिः) कुश आगे रक्खे गए [ऐसा होने पर] (मरुतः) हे उनन्चास मरुद्गणो! (ब्रह्मणस्पते) हे स्तोत्रके रक्षक ब्रह्मणस्पति देव! (देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं! वरेण्यम्) वरणीय (अवः) रक्षाको (ऋचा) सूक्तरूप स्तुतिके द्वारा (वः) तुम्हारी शरणमें आया हुआ मैं (यामि) याचना करता हूँ ॥ ४ ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २
अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अग्निँ राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ५

अथ पञ्चमी। सुदीतिरृषिः पुरुमीढो वा एकस्मो वा। हे पुरुमीढ त्वम् अग्निम् अवसे रक्षणाय ईडिष्व स्तुहि गाथाभिः गमेति वाङ्-नाम [१,११,२६] मन्त्ररूपाभिः वाग्भिः। कीदृशम्? शीरशोचिषं शयन-स्वभाव-रोचिषम्। तथा राये धनाय ईडिष्व। श्रुतम् एनं नरः अन्येऽपि यजमानाः स्तुवन्ति स्वार्थम्। तस्मात् सुदीयते मह्यम्। अग्निः त्वयाभिष्टुनः सन् छर्दिः गृहं प्रयच्छत्वित्येवं सुदीतिः पुरुमीढं ब्रूते। अग्निः सुदीतये छर्दिः इति छन्दोगा। अग्नि सुदीतये छर्दि इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(पुरुमीढ) हे पुरुमीढ तू (शीरशोचिषम्) फैली हुई ज्योतिरूप (अग्निम्) अग्निको (अवसे) रक्षाके अर्थ (राये) धनके अर्थ (गाथाभिः) मंत्ररूप वाणियोंसे (ईडिष्व) स्तुति कर (श्रुतम्) ऐसे सुनेहुए इसकी (नरः) अन्य यजमान भी अपने मनोरथके

निमित्त स्तुति करते हैं (अग्निः) वह अग्नि देवता (सुदीतये) मेरे अर्थ (छर्दिः) घर (प्रयच्छतु) देय ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधि श्रुत्कर्ण वन्हिभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ।

अथ षष्ठी प्रस्कण्व ऋषिः । बृहतीच्छन्दः । अग्निः देवता । हे श्रुत्कर्ण ! श्रवणसमर्थाभ्यां कर्णाभ्यां युत ! अग्ने ! अस्मदीयं वचनं श्रुधि शृणु । यः मित्रः देवः अर्य्यमा देवश्च अन्यैः प्रातर्यावभिः प्रातःकाले देवयजनं गच्छद्भिः देवैः सर्वैः सयावभिः आहवनीयाग्निना त्वया समानगतिभिः अन्यैः वन्हिभिः देवैः सह अध्वरे क्रतुनिमित्तो बर्हिषि दर्भे आ सीदतु उपनिवशतु । आसीदतु बर्हिषि मित्रो अर्य्यमा प्रातर्यावभिध्वरे इति छन्दोगाः । आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्य्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् इति बह्वृचाः ॥ ६ ॥

(श्रुत्कर्ण) श्रवणसमर्थ कानोंवाले (अग्ने) हे अग्निदेव ! हमारे वचनको (श्रुधि) सुनो [यः] जो (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता है वह (प्रातर्यावभिः) प्रातःकाल देवजनमें जानेवाले देवताओं के साथ (सयावभिः) आहवनीय अग्निकी समान गतिवाले(वह्निभिः) वन्हि देवताओंके साथ (अध्वरे) यज्ञके विषैं (बर्हिषि) कुशासन पर (आसीदतु) विराजमान होय ॥ ६ ॥

१ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ १ २
प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना । अनु
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ।

अथ सप्तमी । सौभरि ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । देवः द्योतमानः इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तः दैवोदासः दिवोदासेनाहूयमानः, अग्निः मातरं सर्वस्य लोकस्य धारणात् पृथिवी माता, ताम्, पृथिवीम् अनु प्रवि वावृते देवान् प्रति हविर्वोढुं विशेषेण प्रवर्त्तयति । यस्मादेनमग्निं दिवोदासः मज्मना बलेन आजुहाव तस्मादयम् अग्निः नाकस्य स्वर्गस्य शर्मणि गृहे स्वायतने एव तस्थौ अतिष्ठत् । अग्निर्देव इन्द्रः इति । नाकस्य शर्मणः इति छन्दोगाः । अग्निर्दें वाँ अच्छ इति नाकस्य सानवि, इति च बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(देवः) दीप्तिमान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवाला (दैवोदासः) देवभक्तों

करके आह्वान किया हुआ (अग्निः) अग्नि (मातरम्) सब लोकोंको धारण करनेवाली माता (पृथिवीम्) पृथिवीको (अनु प्र वि वावृते) देवताओंके समीप हवि पहुँचानेको विशेष करके प्रवृत्त करता है, क्योंकि- यजमान इसको (मज्मना न) बल करके मानों (आजुहाव) पुकारता हुआ, इसकारण यह (नाकस्य) स्वर्गके (शर्मणि) अपने स्थानपर (तस्थौ) स्थित हुआ ॥ ७ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि । अया

२ ३क २र ३ २उ ३ १ २

वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्चोभावृषी । छ० बृहती । देवता इन्द्रः । हे इन्द्र ! अध अधुना । ज्मः जमन्ति गच्छन्त्यस्यामिति ज्मा पृथिवी तस्याः सकाशात् । अध वा अपि वा दिवः अन्तरिक्षात् बृहतः महतः रोचनात् नक्षत्रैर्दीप्यमानात् स्वर्गाद्वा आगत्य अधि पञ्चम्यर्थानुवादी । अया अनया तन्वा तथा विस्तृतया ममा मदीयया गिरा स्तुत्या वर्द्धस्व वृद्धो भव । हे सुक्रतो शोभनकर्मन्निन्द्र ! जाता जातान् अस्मदीयान् जनान् अभिलषितैः फलैः आपूरय ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! (अध) इस समय (ज्मः)पृथिवीसे (अध वा)या (दिवः) अन्तरिक्षसे (बृहतः) बड़े (रोचनात् अधि) नक्षत्रोंसे दीप्यमान स्वर्गसे [आगत्य] आकर (अया) इस (तन्वा) शरीर करके, तथा विस्तार वाली (ममा) मेरी (गिरा) स्तुतिसे (वर्द्धस्व) वृद्धिको प्राप्त हो (सुक्रतो) हे शोभनकर्मा इन्द्र ! (जाता) हमारे जनोंको (पृण) इच्छित फलोंसे पूर्ण करो ॥ ८ ॥

१ २ ३ २र ३ १ २र ३ २

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभुवः ।

अथ नवमी । विश्वामित्र ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । हे अग्ने ! वना वनानि काननानि भक्षितुं कायमानः कामयमानः त्वं यत् यस्मात् कारणात् तानि विहाय मातॄः मातृभूताः अपः अजगन् अगमः गतवानसि । अप्सु प्रविष्टत्वाच्छान्तो वर्त्तसे । तत् तस्मात् ते तव निवर्त्तनं नितरां तत्रैव वर्त्तनं, तेन च विनाशो लक्ष्यते । सः न प्रमृषे (कृत्यार्थे केन प्रत्ययः)-न प्रमृष्यसे न सह्यते । कुतः ? इत्यतं

आह यत् यस्मात्कारणात् दूरे सन् दूरे अदृश्यतया वर्त्तमानस्त्वं इह अस्मत्सम्बन्धिष्वरणीरूपेषु काष्ठेषु आ भुवः समन्तात् भवेः । मन्थनात् क्षणमात्रेणास्माकं समीपे भवसि, तस्मात् तव दूरतो वर्त्तनम् अस्मभ्यं न रोचते । इहाभुवः इति इहाभव इति च पाठौ ॥ ९ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (वना) वनोंको (कायमानः) इच्छा करता हुआ भी (त्वम्) तू (यत्) जो, उनको त्यागकर (मातृः) मातारूप(अपः)जलोंको (अजगन्) प्राप्त हुआ है अर्थात् जलोंमें प्रविष्ट होकर शांतभावसे स्थित है (तत्) तिससे (ते) तेरा (निवर्त्तनम्) तहाँ अत्यंत वास (न) नहीं (प्रमृषे) सहाजाता है, (यत्) क्योंकि- (दूरे सन्) अदृश्यरूपसे रहकर भी (इह) इन हमारे अरणी काष्ठोंमें (आभुवः) सब ओरसे प्रकट होजाते हो । अर्थात् मथन करने पर आप क्षणमात्रमें हमारे समीप आजाते हैं, इस कारण आपके दूर रहने को हम नहीं सहसकते, क्योंकि-आपके बिना तो कल्याणकारी यज्ञक्रिया ही लुप्त हो जायगी ॥ ९ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥

अथ दशमी । कण्व ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । हे अग्ने ! ज्योतिः प्रकाशरूपं शश्वते बहुविधाय यजमानाय मनुः प्रजापतिः निदधे देवयजनदेशे स्थापितवान् । हे अग्ने ! त्वम् ऋतजातः ऋतेन यज्ञेन निमित्तभूतेनोत्पन्नः उक्षितः हविर्भिस्तर्पितः सन् कण्वे एतन्नामके महर्षौ मयि दीदेथ दीप्तवानसि, । यम् अग्निं कृष्टयः मनुष्याः नमस्यन्ति नमस्कुर्वंति स त्वमिति पूर्वत्रान्वयः ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ज्योतिः) प्रकाशरूप (त्वाम्) तुझको (शश्वते) अनेक प्रकारके यजमानके अर्थ (मनुः) प्रजापति (निदधे) देवयजन स्थानमें स्थापन करता हुआ (ऋतजातः) यज्ञके निमित्तसे उत्पन्न हुआ (उक्षितः) हवियोंसे तृप्त हुआ (कण्वे) कण्वके विषैं (दीदेथ) दीप्त हुए हो (यम्) जिसको (कृष्टयः) मनुष्य (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः

३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ १ २
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।

१२ ३ २ ३१२ ३ १ २२३१ २
उद्धा सिंचध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते १

अथ षष्ठे खण्डे—सेयं प्रथमा । वशिष्ठ ऋषिः । छ० बृ० । दे० अग्निः । द्रविणोदाः धनानां दाता देवः अग्निः युष्मदीयां पूर्णाम् हविषा आसिचम् आसिक्तां च स्रुचं विवष्टु कामयताम् । अतः उत्सिञ्चध्वं वा सोमेन पात्रम् । उपपृणध्वं वा सोमं वाशब्दौ समुच्चयार्थौ । ध्रुव-ग्रहेण होत्रचमसं पूरयत च अग्नये सोमं प्रयच्छत चेत्यर्थः आदित् अनन्तरमेव देवः अग्निः वः युष्मान् ओहते वहति । विवष्टु विवष्टि इति पाठौ ॥ १ ॥

(द्रविणोदाः) धनोंका दाता (देवः) अग्निदेवता (वः) तुम्हारी (पूर्णाम्) हविसे पूर्ण (आसिचम्) चारों ओरसे सिंचित (स्रुचम्) स्रुक्‌को (विवष्टु) चाहो (वा) और (उत्सिञ्चध्वम्) सोमसे पात्रको सींचो (वा) और (उपपृणध्वम्) होताके चमसको सोमसे पूर्ण करो अर्थात् अग्निके निमित्त सोम अर्पण करो (आदित्) इसके अनन्तर ही (देवः) अग्नि (वः) तुम्हे (ओहते) आहुति पहुँचाकर पूर्ण मनोरथ करता है ॥ १ ॥

२ ३ १२ ३ २ ३ २ ३क२र ३ १ २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
१ २ ३१ २र३ १ २ ३ २ ३ १ २
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥

अथ द्वितीया । अस्या उत्तरस्याश्च कण्व ऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । ब्रह्मणस्पतिः देवः प्रैतु अस्मान् प्राप्नोतु अस्मान् प्राप्नोतु । सूनृता देवी प्रियसत्यभूता वाग्देवता प्रैतु अस्मान् प्राप्नोतु । देवाः ब्रह्मणस्पत्यादयो देवताः वीरं शत्रुं निःशेषेण दूरे प्रेरयन्तु । तं नर्यं मनुष्येभ्यः हितम् । पंक्तिराधसं ब्राह्मणोक्तहविषा पंक्त्यादिभिः समृद्धं यज्ञं प्रति नः अस्मान् अच्छ आभिमुख्येन नयन्तु प्रापयन्तु ॥ २ ॥

(ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति देवता (प्रैतु) प्राप्त हो (सूनृता) सत्य और प्रिय (देवी) वाग्देवता (प्रैतु) हमें प्राप्त हो (देवाः) ब्रह्मणस्पति आदि देवता (वीरम्) शत्रुको [दूरे] निःशेषभाव से दूर करे । तिस (नर्यम्) मनुष्योंके हितकारी (पंक्तिराधसम्) ब्राह्मणोक्त हवि करके पंक्ति आदिके द्वारा सम्पन्न हुए (यज्ञम्) यज्ञके समीप (नः) हमें (अच्छा) अभिमुख करके (नयन्तु) पहुचावे ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३२३ १ २ ३ १ २र३ २
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे

अथ तृतीया । ऋषिः स एव । हे यूप ! यद्वा, यूपात्मकदारुनिष्ठाग्ने नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय ऊर्ध्वः उन्नतः तिष्ठ तिष्ठ । सविता देवः न यथा सूर्य्यो दिव उन्नतस्तिष्ठति, तद्वत् ऊर्ध्वः उन्नतः सन् वाजस्य अन्नस्य सनिता। दाता भविष्यसि । यद् यस्मात् कारणात् अञ्जिभिः यज्ञे न यूपमञ्जद्भिः वाघद्भिः यज्ञं वहद्भिः ऋत्विग्भिः सह विह्वयामहे अन्नस्य दानाय त्वां विशेषेणाह्वयामः, तस्मादन्नस्य दाता भवेति पर्वत्रान्वयः ॥ ३ ॥

हे यूपकाष्ठस्थित अग्निदेव (नः) हमारी (ऊतये) रक्षाके निमित्त (ऊर्ध्वः) ऊँचा होकर (सुतिष्ठा) सुन्दर प्रकार से स्थित हो (सविता, देवः न) सूर्य देवताकी समान (ऊर्ध्वः) ऊँचे पद पर स्थित होता हुआ (वाजस्य) अन्नका (सनिता) देनेवाला हो (यत्) क्योंकि (अञ्जिभिः) यज्ञसे यूपको अञ्जित करने वाले (वाघद्भिः) यज्ञको समाप्ति पर पहुँचानेवाले ऋत्विजों के साथ (विह्वयामहे) आह्वान करते हैं अर्थात् हम अन्नदान के लिये आपसे प्रार्थना करते हैं, इसकारण आप हमें अन्नदान दीजिये ॥ ३ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २
प्र यो राये निनीषति मर्त्तो यस्ते वसो दाशत् । स
३ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
वीरं धत्ते अग्न उक्थशँसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्

अथ चतुर्थी । सौभरिऋषिः । छ० बृहती । दे० अग्निः । हे वसो वासकाग्ने ! त्वां ये तव स्तोता राये धनार्थं प्रनिनीषति प्रणेतुमिच्छति यः मर्त्तः मनुष्यः ते तुभ्यं दाशत् हवींषि प्रयच्छति । स मनुष्यः उक्थशंसिनम् उक्थानां शास्त्राणां शंसितारम् त्मना आत्मनैव सहस्र-पोषिणं बहुधनम् वीरं पुत्रं धत्ते धारयति । प्र यो राये निनीषति प्रियं राये निनीषसति इति पाठौ ॥ ४ ॥

(वसो) व्यापक (अग्ने) हे अग्निदेव ! (यः) जो तुम्हारा भक्त (राये) धनके निमित्त (प्रनिनीषति) तुम्हें प्रसन्न करना चाहता है (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (ते) तुम्हारे अर्थ (दाशत्) हवि देना चाहता है (सः) वह मनुष्य (उक्थशंसिनम्) वेदपाठी (त्मना)

अपने द्वारा (सहस्रपोषिणम्) सहस्रों मनुष्योंका पालन करनेवाले अर्थात् बहुधनी (वीरम्) पुत्रको (धत्ते) धारण करता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् । अग्निᳬ
३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यᳬ समिदन्यं इन्धते ५

अथ पञ्चमी । कण्व ऋषिः।छ०बृ०।दे० अग्निः । हे ऋत्विग्यजमानाः देवयतीनां देवान् कामयमानानां पुरूणां बहूनां विशां प्रजारूपाणां वः युष्माकमनुग्रहार्थं यह्वं महान्तम् अग्नि, सूक्तेभिः, सूक्तरूपैः वचोभिः, वाक्यैः प्रवृणीमहे । अन्ये इत् अन्येऽप्यृषयः यम् एनमग्निं समिन्धते सम्यग्दीपयन्ति तमग्निमिति पूर्वत्रान्वयः । वचोभिर्वृणीमहे इति । अन्य इन्धतम् इति च छन्दोगाः । वचोभिरीमहे इति अन्य इच्छते इति च बह्वृचाः ॥ ५ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (देवयतीनाम्) देवताओंकी शरण जाने वाले (पुरूणाम्) बहुतसे (विशाम्) प्रजाके ऊपर (वः) तुम्हारे, अनुग्रहके निमित्त (यह्वम्) महान् (अग्निम्) अग्निको (सूक्तेभिः) सूक्तरूप (वचोभिः) वाणियोंसे (वृणीमहे) आराधना करते हैं (अन्य, इत्) अन्य ऋषि भी (यम्) जिस अग्निको (समिन्धते) भले प्रकार से दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अयमग्निः सुवीर्य्यस्येशे हि सौभगस्य ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥६॥

अथ षष्ठी । अनेनोत्कीलः स्तौति । छ० बृहती । दे० अग्निः।अयम् यजनीयत्वेनांगुल्या निर्दिश्यमानोऽग्निः सुवीर्य्यस्य शोभनसामर्थ्योपेतस्य सौभगस्य, त्वम् ईशे हि ईष्टे खलु । ईश्वरो भवसि सर्वस्य बलारोग्यहेतुतया सौभाग्यकारित्वात् तथा गोमतः गवादिपशुयुक्तस्य स्वपत्यस्य शोभनापत्यस्य रायः धनस्य ईशे ईष्टे, पुत्रपश्वाद्युद्देशेन क्रियमाणकर्मफलसम्पादकत्वेन तत्स्वामित्वात । तथा एवम्भूतोऽग्निः वृत्रहथानां हननं हथः शत्रुभूतपापविनाशानामपि ईशे त्वयि समर्पितकर्मणामस्माकं त्वत्प्रसादात् पापक्षयो भवतीति तस्यापि स्वामी । ईशहि इति ईशीमहे इति च पाठौ ॥ ६ ॥

(अयम्) यह यजन करनेयोग्य (अग्निः) अग्नि (सुवीर्यस्य) शोभन सामर्थ्ययुक्त (सौभगस्य) सौभाग्यका (हि) निश्चय (ईशे) स्वामी है, अर्थात् सबोंको बल और आरोग्यका दाता होनेसे सौभाग्यदाता है (गोमतः) गौ आदि पशुयुक्त (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तानका (रायः) धनका (ईशे) स्वामी है (वृत्रहथानाम्) शत्रुभूत पापोंके विनाशोंका (ईशे) स्वामी है, अर्थात् हे अग्ने ! हम अपने किये कर्म तुम्हें समर्पण करते हैं, तुम्हारे अनुग्रह से हमें धन, जन, पशु, आदि की प्राप्ति होती है और हमारे पापोंका भी नाश होता है ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वँ होता नो अध्वरे ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्य्यम् ७

अथ सप्तमी । वशिष्ठ ऋषिः । छ० बृहती । द० अग्निः । हे अग्ने ! नः अस्माकम् अध्वरे यज्ञे त्वं गृहपतिः यजमानोऽसि । त्वं होता देवानामाह्वातासि । हे विश्ववार ! सर्वैर्वरणीयाग्ने ! त्वं पोता एतन्नामक ऋत्विगसि । अतः प्रचेताः प्रकृष्टमतिस्त्वं वार्यं वरणीयं हविः यक्षि यज । यासि च अस्माकं धनं प्रापय । यक्षि यासि च इति छन्दोगाः । यक्षि वेषि च इति बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(अग्ने) अग्निदेव ! (नः) हमारे (अध्वरे) यज्ञमें (त्वम्) तुम (गृहपतिः) यजमान (त्वम्) तुम (होता) देवताओंका आह्वान करने वाले [असि] हो (विश्ववार) हे सबके आराधन करनेयोग्य अग्ने (त्वम्) तुम (पोता) पोता नामवाले ऋत्विक् हो (प्रचेतः) उत्तम (वार्यम्) वरणीय हविको (यक्षि) यजन करो (च) और (यासि) हमको धन प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये । अपां नपातँ
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुभगँ सुदँ ससँ सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । विश्वामित्रः स्तौति । हे अग्ने ! सखायः सौभाग्यादि-हविः प्रदानेनोपकारकत्वात् मित्राणि मर्त्तासः मनुष्याः ऋत्विजो वयम् अपां नपातम् अपां नप्तारं सुभगं शोभनधनयुक्तम् । सुदंससं सुकर्माणं सुप्रतूर्त्तिं शोभनप्रतरं कर्मानुष्ठातृभिः सुखेन गन्तव्यम्,

अनेहसम् उपद्रवरहितम् । एतादृशन्त्वाम् ऊतये रक्षणाय ववृमहे वृणीमहे ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! (सखायः) सोम घृतादि हवि देनेके कारण उपकारी होनेसे मित्ररूप (मर्त्तासः) मनुष्य, हम ऋत्विज् (अपां नपातम्) जलोंके नप्ता (सुभगम्) शोभन धनयुक्त (सुदंससम्) श्रेष्ठ कर्म करनवाले (सुप्रतूर्तिम्) कर्मानुष्ठान करनेवालों को सुखपूर्वक प्राप्त होने योग्य (अनेहसम्) उपद्रवरहित तुम्हें (ऊतये) रक्षाके लिये (ववृमहे) वरण करते हैं ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृह-
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पतिं दधिध्वम् । इडस्पदे नमसा रातहव्यꣳ
३ १ २ ३ २ ३क २र
सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ॥ १ ॥

अथ सप्तमखण्डे । सेयं प्रथमा । श्यावाश्वऋषिः वामदेवो वा । छ० त्रिष्टुप् । अग्निः देवता । हे ऋत्विजः ! आ जुहोता अग्निमाह्वयत किञ्च हविषा मर्जयध्वं मृडयध्वं सुखयध्वम् । डकारस्य जकारश्छान्दसः । अपि च, इडः इलायाः पदे उत्तरवेद्यामित्यर्थः । होतारं देवानामाह्वातारम् । गृहपतिं गृहपालकं अग्निम् । निदधिध्वं निःशेषेण धारयध्वम् । किञ्च नमसा नमस्कारेण हविषा वा युक्तम् । अतएव रातहव्यं दत्तहविष्कम् । पस्त्यानां यज्ञगृहाणां मध्ये यजतं यजनीयं पूजनीयमग्निम् । सपर्य्यता परिचरत ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! (आजुहोता) अग्निका आह्वान करो (हविषा) हवि करके (मर्जयध्वम्) सुखीकरो (इडः) भूमिकी (पदे) उत्तरवेदी में (होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (गृहपतिम्) गृहरक्षक अग्निको (निदधिध्वम्) पूर्णरूपसे स्थापन करो (नमसा) नमस्कार वा हविसे युक्त (रातहव्यम्) दिया है हवि जिसे ऐसे (पस्त्यानाम्) यज्ञगृहों में (यजतम्) पूजनीय अग्निको (सपर्यता) आराधन करो ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरा-

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
वन्वेति धातवे । अनूधा यदजीजनदधा चिदा
३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २
ववक्षत्सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वार्ष्टहव्यो वा वार्षहव्यो चेति ऋषिः । जगतीछन्दः अग्निः देवता । शिशोः शिशुभूतस्य । अत एव तरुणस्य अग्नेः । वक्षथः वक्षेःऔणादिकोऽथस् प्रत्ययः । हविर्वहनं चित्र इत् आश्चर्यभूतमेव । यः जातोऽग्निः । मातरौ सर्वस्य निर्मात्र्यौ सर्वस्य मातृभूते द्यावापृथिव्यावरणी वा । धातवे धेट् पाने तुमर्थे इति (३,४,९) तवेन् प्रत्ययः स्तनपानाय न अन्वेति न गच्छति । इण गतौ लटि उपसर्गेण समासः। तिङि चोदात्तवतीति (८,१,७१) गतेर्निघातः । अनूधाः नञा बहुव्रीहिसमासः, तस्मिन् अनूडस्त्रियामिष्ण्वात् अत्रानङभावः, प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् । ऊधोरहितः सन् अयं लोकोऽसौ लोकश्च । यत् यदि । एनमग्निम् । अजीजनत् जनयेत, तर्हि स्तनपानाय न गच्छतीति युक्तम्, तथा न भवति, किन्तु द्यावापृथिव्यौ हि सर्वेषां कामदुघे खलु । तथापि न याति । तस्मादस्य हविर्वहनं विचित्रम् । अध चित् उत्पत्यनन्तरमेव । सद्यः तदानीमेव । शीघ्रं महि महत्त्वम्, दूत्यं दूतस्य भागकर्मणी (४,४, १२०) इति कर्मणि यत् प्रत्ययः, दूतकर्म चरन् आचरन् । आववक्षत् देवान् प्रति हवींष्यावहति ॥ २ ॥

(शिशोः) बालरूप (तरुणस्य) तरुण अग्निका (वक्षथः) हवि का पहुँचाना (चित्र इत्) आश्चर्यभूत है (यः) जो उत्पन्न हुआ अग्नि (मातरौ) सबके निर्माता वा सबके माता समान द्यावापृथिवी को वा दोनों अरणियों को (धातवे) स्तन पीनेके लिये (न, अन्वेति) नहीं प्राप्त होता है (यत्) जो (अनूधाः) ऐनरहित यह लोक (अजीजनत्) इस अग्नि को उत्पन्न करे [तब यदि स्तन पीनको न जाय तो ठीक है, परन्तु सबकी अभिलाषा पूरी करने वाले द्यावापृथिवी उत्पन्न करते हैं फिर भी यह स्तन पीनेको नहीं जाता अतः इसका हविर्वहन आश्चर्य है] (अधचित्) उत्पत्तिके अनन्तर ही (सद्यः) तत्काल (महि) बडेभारी (दूत्यम्) दूतकर्मका (चरन्) करता हुआ (चरन्) देवताओं को हवि पहुँचाता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा स

२ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २
विशस्व । संवेशनस्तन्वे ३ चारुरेधि प्रियो देवानां
३ २ ३ १ २
परमे जनित्रे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया बृहदुक्थ ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । दे० अग्निः। एतया बृहदुक्थो वाजिनं नाम स्वपुत्रं मृतं वदति । हे मृतपुत्र ! ते तव इदम् उपरि ज्योतिषेति वक्ष्यमाणत्वात्, अत्रेदं शब्देन ज्योतिरभिधीयते इदं ज्योतिरग्न्याख्यम् एकम् एकोऽशः अतः ते तव देहगताग्न्यंशेन बाह्यमग्निं संविशस्व सङ्गच्छस्व । तथापरः ऊ अन्योऽपि ते तव एकं वाय्वाख्योंऽशः तेन च प्राणवायवाख्येन अंशेन बाह्यं वायुं संविशस्व शरीराग्निप्राणवायोः बाह्याग्निवाय्वोश्चैकत्वादंशत्वमिति भावः तथा; तृतीयेन ज्योतिषा आदित्याख्येन तेजसा तवात्मना संविशस्व सूर्यगतात्मचैतन्ययोरभेदादंशत्वम्, योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहं सूर्य आत्मा जगतः इत्यादिश्रुतेः आत्मनः सूर्यप्रवेशो युक्तः तन्वे ततश्च पुनः शरीरग्रहणाय चारुः कल्याणो भूत्वा तस्मिन् सूर्ये संवेशनः सम्यक् प्रवेष्टा । एधि भव । कीदृशस्त्वम् ? प्रियः तेन सह प्रीयमाणः । कीदृशि तस्मिन् ? देवानां परमे उत्तमे । जनित्रे जनके। देवानां होनत् परमं जनित्रं यत सूर्यः इति हि श्रुतिः ॥ ३ ॥

हे मृत प्राणिन् ! (ते) तेरा (इदम्) यह अग्नि नामक ज्योति (एकम्) एक अंश है, अतः अपने देहव्यापी अग्निके अंशसे बाहर के अग्निमें मिल जा (ऊ) और (ते) तेरा (एकम्) एक वायु नामक अंश है, उस प्राणवायु नामक अंशसे बाहर के वायु में मिल जा, शरीर में की अग्नि और प्राणवायु तथा बाहर के अग्नि और वायु एकरूप हैं, इस कारण अंश कहा (तृतीयेन) तीसरे (ज्योतिषा) आदित्यनामक तेजसे अपने आत्माको (संविशस्व) मिला, क्योंकि—सूर्यगत चैतन्य और आत्मचैतन्यमें कोई भेद नहीं है (तन्वे) फिर शरीर ग्रहण करनेके निमित्त (चारुः) कल्याणरूप होकर (प्रियः) उसके साथ प्रीति करता हुआ (देवानाम्) देवताओं के (परमे) उत्तम (जनित्रे) उत्पादक सूर्यमें (संवेशनः) भले प्रकार प्रवेश करने वाला (एधि) हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
इमꣳ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा
३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २र
मनीषया । भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सꣳसद्यग्ने

३ १ २र ३ १ २र
सख्ये मा रिषाम वयं तव ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। कुत्स ऋषिः। जगतीछन्दः। अग्निः देवता। अर्हते पूज्याय। जातवेदसे जातानामुत्पन्नानां वेदित्रे जातप्रज्ञाय जातधनाय वा अग्नये। मनीषया निशितया बुद्ध्या। इमं स्तोमम् एतत् स्तोत्रम्। रथमिव, यथा तक्षा रथं संस्करोति तथा। सम्महेमा सम्यक् पूजितं कुर्मः। अस्य अग्नेः संसदि सम्भजने। नः अस्माकम्। प्रमतिः प्रकृष्टा बुद्धिः। भद्रा हि कल्याणी समर्था खलु। अतस्तया बुद्ध्या कुर्म इत्यर्थः। हे अग्ने! तव सख्ये, अस्माकं त्वया सह सखित्वे सति। वयं मा रिषाम हिंसिता न भवाम। अस्मान् रक्षेत्यर्थः ॥ ४ ॥

(अर्हते) पूजनीय (जातवेदसे) प्राणिमात्रके ज्ञाता (जातवेदसे) अग्नि के अर्थ हम (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्रको (रथं इव) जैसे तक्षा रथका संस्कार करता है तैसे (संमहेम) सम्यक् प्रकारसे पूजित करते हैं (अस्य) इस अग्नि के (संसदि) सम्यक् प्रकार सेवनमें (नः) हमारी (प्रमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (भद्रा, हि) निःसन्देह कल्याणमयी और समर्थ होय (अग्ने) हे अग्निदेव! (तव, सख्ये) तुम्हारे साथ हमारा मित्रभाव होने पर हम (मा रिषामः) किसी से कष्ट न पावें अर्थात् आप हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ
मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत
३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
आ जातमग्निम्। कविँ सम्राजमतिथिं
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ५ ॥

अथ पंचमी। द्वयोर्भरद्वाज ऋषिः। त्रिष्टुप् छन्दः। अग्निः देवता। मूर्द्धानं शिरोभूतम्। कस्य? दिवः द्युलोकस्य पृथिव्या प्रथिताया भूमेः। अरतिं गन्तारम्। यद्वा गन्तव्यं स्वामिनम्। वैश्वानरं विश्वेषां सर्वेषां नराणां सम्बन्धिनम्। ऋते ऋतमिति सत्यस्य यज्ञस्य वा नाम। निमित्तसप्तम्येषा ऋतनिमित्तम्। आ आभिमुख्येन जातम् सृष्ट्यादावुत्पन्नम्। कविं क्रान्तदर्शिनम्। सम्राजं सम्यग्राजमानम्। यजमानानाम् अतिथिं हविर्वहनाय सततं गन्तारम्। यद्वा, अतिथिवत्पूज्यम्।

आसन् आसनि आस्यं, द्वितीयार्थे सप्तमी, आस्यभूतम् । अग्निलक्षणेनास्येन हि देवा हवींषि भुञ्जते । पात्रं पातारं रक्षकम् । यद्वा, आस्येन धारकम् । एवं गुणविशिष्टं वैश्वानरमग्निम् । नः अस्माकं सम्बन्धिनि यज्ञे । देवाः स्तोतार ऋत्विजः, देवा एव वा । आ जनयन्त आभिमुख्येनाजयन् । अरण्योः सकाशाद् उदपादयन ॥ ५ ॥

(दिवः) द्युलोकके (मूर्द्धानम्) शिरोभूत (पृथिव्याः) भूमिके (अरतिम्) स्वामी (वैश्वानरम्) सकल पुरुषोंके सम्बन्धी (ऋतम्) सत्य वा यज्ञके साधन (आ) सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए (कविम्) भूत विषयों के ज्ञाता (सम्राजम्) भले प्रकार विराजमान (अतिथिम्) यजमानों का हव्य पहुँचाने के निमित्त निरन्तर गमन करने वाले अथवा अतिथिकी समान पूज्य (आसन्) देवताओं के मुखरूप (पात्रम्) रक्षक अथवा मुखरूप से धारण करने वाले अग्निको (नः) हमारे यज्ञमें (देवाः) ऋत्विजोंने वा देवताओं ने (आजनयन्त) अरणियों में से उत्पन्न किया ॥ ५ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३॰ १ २
वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जन-
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २
यन्त देवाः । तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजय-
३ १ २र३ १ २ ३ १ २
न्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । भरद्वाज ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । अग्निः देवता । हे अग्ने ! त्वत् त्वत्सकाशात् । उक्थेभिः उक्थैः स्तोत्रैः यज्ञैर्हविर्भिश्च । देवाः स्तोतारः । कामान् आत्मनः व्यजनयन्त विविधं जनयन्ति । तत्र दृष्टान्तः । पर्वतस्य मेघस्य पृष्ठात् उपरिभागात् आपो न आप उदकानि यथा तद्वत् । अपि च, हे गिर्ववाहः ! गीर्भिः स्तुतिरूपाभिः वाग्भिर्वहनीयाग्ने ! भरद्वाजाः स्तोतारः । तं प्रसिद्धम् । त्वा त्वाम् । वाजयन्ति बलिनं कुर्वन्ति । यद्वा । वाजमन्नमिच्छन्ति । अपि च । त्वां सुष्टुतयः शोभनस्तुतिरूपाः । गिरः वाचः । जिग्युः जयन्ति वशीकुर्वन्ति । तत्र दृष्टान्तः । अश्वाः वाहाः आजिम् संग्रामं यथा शीघ्रं जयन्ति तद्वदित्यर्थः ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वत्) तुमसे (उक्थेभिः) स्तोत्र, यज्ञ और हवियों करके (देवाः) स्तोता अपने मनोरथों को (व्यजनयन्त) नानाप्रकार से उत्पन्न करते हैं (पर्वतस्य) मेघके (पृष्ठात्)

ऊपरके भागसे (आपः, न) जलोंको जैसे। और (गिर्वाहः) स्तुतिरूप वाणियोंके अनुसार चलने वाले हे अग्ने, स्तुति करने वाले (तम) तिस प्रसिद्ध (त्वा) तुझको (वाजयन्ति) बलवान् करते हैं अथवा तुमसे अन्न चाहते हैं और तुम्हें (सुष्टुतयः) सुन्दर स्तुति रूप वेदवाणियें (जिग्युः) वशमें कर लेती हैं (अश्वाः) घोड़े (आजिं, न) जैसे शीघ्र ही संग्रामको वशमें कर लेते हैं ॥ ६ ॥

२ ३ १२ ३१२ ३१ २र ३

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रँ होतारँ सत्य-

२३ १२ ३ २ ३१ २ ३ २३ २ ३

यजँ रोदस्योः । अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता-

१२ ३१२

द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वामदेवो ब्रूते । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । हे ऋत्विग्यजमानाः ! अध्वरस्य यज्ञस्य । राजानम् अधिपतिम् । होतारं देवानामाह्वातारम् । रुद्रं रोरूयमाणं द्रवन्तम्, शत्रून् रोदयन्तं वा । यद्वा, एषा वा घोरा तनूर्यद्रुद्रः इति रुद्रात्मकम् । रोदस्योः द्यावापृथिव्योः सत्ययजं सत्यस्यान्नस्य दातारम् । यद्वा सत्ययजं सत्येन हविषा देवान् यजन्तम् । यद्वा, सत्यस्यानन्द-लक्षणस्य सङ्गमयितारं रोदस्योर्व्याप्य वर्त्तमानम् । हिरण्य-रूपं सुवर्णप्रभम् । एवं विधं अग्निं वः युष्माकम् अवसे रक्षणाय तनयित्नोः तनयित्नुरशनिः सह्याकस्मिकः तत् सदृशाद् अचित्तात् न विद्यते चित्तं यस्मिन् तदचित्तम्, चित्तोपलक्षित-सर्वेन्द्रियोपसंहारो मरणमिति यावत् तस्मान्मरणात् पुरा प्रागेव आ कृणुध्वं यूयं समन्ताद्धविर्भिरग्निं भजध्वम् ॥ ७ ॥

हे ऋत्विक् और यजमानो ! (अध्वरस्य) यज्ञके (राजानम्) अधिपति (होतारम्) देवताओंका आह्वान करने वाले (रुद्रम्) शत्रुओं को रुलाने वाले (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीके (सत्ययजम्) अन्नके दाता अथवा आनन्दस्वरूप सत्यको प्राप्त कराने वाले (हिरण्यरूपम्) सुवर्णकी समान कान्तिमान् (अग्निम्) अग्निको (वः) तुम्हारी (अवसे) रक्षाके लिये (तनयित्नोः) वज्रकी समान (अचित्तात्) मरणसे (पुरा) पहिले ही (आकृणुध्वम्) चारों ओरसे हवियोंके द्वारा आराधन करो ॥ ७ ॥

२ २उ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्धे राजा समर्यो नमोभिः यस्य प्रतीकमाहुतं
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १
घृतेन । नरो हव्येभिरीडते सबाध अग्निरग्रमुष-
२
सामशोचि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वसिष्ठ ऋषिः । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । राजा दीप्तः अर्यः स्वामी हविषां प्रेरको वा अग्निः नमोभिः स्तुतिभिः सह समिन्धे समिध्यते । यस्य अग्नेः प्रतीकं रूपं घृतेन आहुतं भवति । ये च नरः अस्मदीयाः सबाधः संश्लिष्टाः सञ्जातबाधाः हव्येभिः हव्यैः सार्द्धम् ईडते स्तुवन्ति । सः अग्निः उषसाम् अग्रम् आ अशोचि आ दीप्यते ॥ ८ ॥

(राजा) दीप्त (अर्यः) स्वामी वा हवियोंका प्रेरणा करनेवाला (अग्निः) अग्नि (नमाभिः) स्तुतियों के साथ (समिन्धते) प्रदीप्त होता है (यस्य) जिस अग्निका (प्रतीकम्) रूप (घृतेन, आहुतम्) घृत करके चारों ओरसे होमा हुआ होता है । और जिसको (नरः) मनुष्य, (सबाधः) बाधाओंको प्राप्त होकर (हव्येभिः) हवियोंके साथ (ईडते) स्तुति करते हैं । वह (अग्निः) अग्नि (उषसाम्) उषः कालसे (अग्रम्) पहिले (आ अशोचि) सब ओरसे दीप्त होता है ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
रोरवीति । दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे
३ १ २
महिषो ववर्द्ध ॥ ९ ॥

अथ नवमी । त्रिशिरास्त्वाष्ट्रऋषिः । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अग्निः बृहता केतुना प्रज्ञानेन युक्तः सन् आ इदानीं रोदसी द्यावापृथिव्यौ प्रयाति प्रकर्षेण गच्छति । किञ्च, देवानामाह्वानकाले वृषभः इव रोरवीति अत्यर्थं शब्दं करोति । दिवश्चित् अन्तरिक्षलोकस्यापि अन्तात् पर्यन्तात् उपमाम् (उपमेत्यन्तिकनाम) मेघस्य समीपम् उदानट् उदश्नुते ज्वलनात्मनादित्यात्मनावस्थितः सन् ऊर्ध्वं व्याप्नोति

अश्नोतेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् । तिपो हल्ङ्यादिलोपः । अपां वृष्टिलक्षणानामुदकानाम् उपस्थे उपस्थाने अन्तरिक्षे वैद्युतात्मना महिषः महान् ववद्ध वर्द्धते ॥ ९ ॥

(अग्निः) अग्नि (बृहता) बड़े (केतुना) ज्ञान करके युक्त हो (आ) इस समय (रोदसी) द्यावा पृथिवीको (प्रयाति) प्राप्त होता है और देवताओं को बुलाने के समय (वृषभः) वृषभकी समान (रोरवीति) अत्यन्त शब्द करता है (दिवश्चित्) अन्तरिक्ष लोकके भी (अन्तात्) समीपसे (उपमाम्) मेघके समीप (उदानट्) प्रकाशमय आदित्यरूप होता हुआ ऊपरको फैल जाता है । (अपाम्) वृष्टि रूप जलों के (उपस्थे) स्थान अन्तरिक्षमें विद्युत्रूप से (महिषः) महान् (ववर्द्ध) बढ़ता है ॥ ९ ॥

३ २उ ३ १ २ ३२ ३ १ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत

३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्व्युम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । वसिष्ठऋषिः । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । नरः नेतारः ऋत्विजः प्रशस्तं प्रकर्षेण स्तुतं दूरे दृशं दूरे दृश्यमानं दूरे पश्यन्तं वा गृहपतिं गृहाणां पालकम् अथर्व्युं अथर्वतिर्गत्यर्थः अगम्यम् अतनवन्तं वा हस्तच्युतं हस्तेन जातम्, अरण्योः विद्यमानम् अग्निः दीधितिभिः अंगुलिभिः जनयत जनयन्ति । [अत्र यास्कः—दीधितयोऽङ्गुलयो भवन्ति, धीयन्ते कर्मस्वरणी प्रत्यृत एने अग्निः समरणाज्जायत इति वा, हस्तच्युती हस्तप्रच्युत्या जनयन्त प्रशस्तं दूरे दर्शनं गृहपतिमतनवन्तम् (५, २, ११)] इति ॥ १० ॥

(नरः) ऋत्विज् (प्रशस्तम्) अत्यन्त स्तुति किये हुए (दूरेदृशम्) दूर से दीखते हुए (गृहपतिम्) घरों के रक्षक (अथर्व्युम्) अगम्य (हस्तच्युतम्) हाथों से उत्पन्न हुए अग्निको (दीधितिभिः) अंगुलियों से (जनयत) उत्पन्न करते हैं ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः

१२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवाय-

२ ३ १ २ ३ १ २३ २ ३ २ ३ १ २ ३
तीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

अथ अष्टमखण्डे । प्रथमा । बुधश्च गविष्ठिरश्च ह्यात्रेयौ । त्रिष्टुप्छन्दः । दे० अग्निः । अयम् अग्निः जनानाम् अध्वर्य्यादीनां समिधा समिद्भिः अबोधि प्रबुद्धोऽभूत् । धेनुमिव अग्निहोत्रार्थं धेनुं प्रति यथा प्रातर्बुध्यते तद्वद् आयतीम् आगच्छन्तीम् उषासम् प्रति उषःकाले इत्यर्थः । अथ प्रबुद्धस्याग्नेः भानवः रश्मयो ज्वालाः यह्वाः महान्तः वयां शाखां प्रोज्जिहानाः प्रोद्गमयन्तो वृक्षा इव । यद्वा महान्तः प्रोज्जिहानाः स्वाधिष्ठानं त्यजन्तो भानवः नाकम् अन्तरिक्षम् अच्छ आभिमुख्येन प्र सस्रते प्रसरन्ति । सस्रते सिस्रते इति पाठो ॥ १ ॥

(अग्निः) यह अग्नि (जनानाम्) अध्वर्यु आदिकोंकी (समिधा) समिधाओंसे (अबोधि) प्रज्वलित हुआ (धेनुम्,इव) अग्निहोत्र की गौके निमित्त जैसे प्रातःकालमें जागा जाता है तैसे (आयतीम्) आते हुए (उषासम्) उषःकालके समय सावधान रहना होता है । और प्रज्वलित हुए अग्निकी (भानवः) लपटें (यह्वाः) बड़े (वयाम्) शाखाओंको फैलाते हुए वृक्षोंके समान (प्रोज्जिहानाः) अपने स्थान का त्यागती हुई (अच्छ) भले प्रकार (नाकम्) अन्तरिक्ष पर्यन्त (प्रसस्रते) फैलती हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमुरं पुरां दर्माणम् ।
२ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं
१ २र ३ २
न वर्मणा धनर्चिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वत्सप्रिर्ऋषिः । त्रिष्टुप्छन्दः । अग्निः देवता । हे स्तोतः ! त्वम् जयन्तम् असुरसेनां जेतारं महां महान्तं विपोधां मेधाविनः धर्त्तारं मूरैः मूढैरधिष्ठितानां पुरां शरीराणां दर्माणम् आदरेण रक्षकम् अमुरम् अमूढमग्निं प्रभूः स्तोतुं प्रभव समर्थो भव गीर्भिः स्तुतिभिः वना वननीयं सम्भजनीयं नयन्तं धनानि प्रापयन्तं वर्मणा कवचस्थानीयज्वालयोपेतं हरिश्मश्रुं न हरितवर्णकेशमयमिव धनर्चिं धार्य्यमाणं क्रियमाणं स्तोत्रं यस्य तम्, प्रीणनकरस्तोत्रं वा अग्निमुद्दिश्य धियं परिचरणरूपं कर्म धाः विधेहि । मूरैः मूराः इति च पाठौ । नयन्तं गीर्भिर्वना धियन्धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धनर्चिम्

इति छन्दोगाः। नयन्तो गर्भ वनां धियं धुर्हरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् इति बह्वृचाः ॥ २

हे स्तुति करने वाले! तू (जयन्तम्) असुरसेनाको जीतनेवाले (महाम्) बड़े (विपोधाम्) मेधावियोंको धारण करनेवाले (मूरैः) मूढ़ों करके अधिष्ठित (पुराम्) शरीरोंके (दर्माणम्) आदरके साथ रक्षक (अमुरम्) अमूढ अग्निको (प्रभूः) स्तुति करनेको समर्थ हो (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (वना) आराधना करने योग्य (नयन्तम्) धनोंको प्राप्त कराने वाले (वर्मणा) कवचसमान लपटोंसे युक्त (हरिश्मश्रुं न) हरितवर्ण केशवालेकी समान (धनर्चितम्) प्रसन्न करने वाला है स्तोत्र जिसका ऐसे अग्निके निमित्त (धियम्) पूजन क्रिया को (धाः) करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी

१ २ २ ३ २ ३ १ २र

द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधा-

३ १ २ ३ २ ३ १ २

वन् भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया भरद्वाज ऋषिः। त्रिष्टुप्छन्दः। पूषा देवता। हे पूषन्! ते तव शुक्रं शुक्लवर्णम्। अन्यत् एकमहर्भवति वासरात्मकम्, तथा ते तव सम्बन्धि यजतं यजिरत्र सङ्गतिकरणे वर्त्तते यजनीयं प्रकाशेन सङ्गमनीयं स्वतः कृष्णवर्णम् अन्यत् एकमहर्भवति राक्ष्या-ख्यम्। इत्थं विषुरूपे शुक्लकृष्णतया नानारूपे अहनी तव महिम्ना निष्पद्येते। यद्वा, हे पूषन्! त्वदीयमन्यद् रूपं शुक्रं निर्मलं दिवसस्यो-त्पादकम्, त्वदीयमन्यदेकं रूपं यजतं केवलं यजनीयं न प्रकाशकं रात्रे-रुत्पादकम्। अतएव विषुरूपे विषमरूपे अहनी अहश्च रात्रिश्च भवतः। अहोरात्रयोर्निर्माणे सूर्य्य एव कर्त्ता। कथमस्य प्रसक्तिरिति ? तत्राह, द्यौरिवासि यथा द्यौरादित्यः प्रकाशयिता तथा त्वं प्रकाशकोऽसि। कुतः ? इत्यत आह, हे स्वधावन्! अन्नवन् पूषन्! विश्वाः सर्वाः मायाः प्रज्ञाः हि यस्मात कारणाद् अवसि रक्षसि, अतः कारणात् त्वं सूर्य्य इव भवसीत्यर्थः। तादृशस्य ते तव भद्रा कल्याणी रातिः दानम् इह अस्मासु अस्तु भवतु। यास्कस्त्वाह—शुक्रं तेऽन्यल्लोहितं तेऽन्य-यजतं तेऽन्यद्यज्ञियं तेऽन्यद्विषमरूपे ते अहनी कर्मणा द्यौरिव चासि सर्वाणि च प्रज्ञानान्यवस्यन्नवन् (१२, २, ६) इति। स्वधावन् स्वधावः इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(पूषन्) हे पूषा देवता (ते) तुम्हारा (शुक्रम्) शुक्ल वर्ण (अन्यत्) एक दिन होता है, तथा, (तो तुम्हारा (यजतम्)प्रकाशसे जानने योग्य स्वयं कृष्णवर्ण (अन्यत्) रात्रिनामक अन्य दिन होता है. इसप्रकार (विषुरूपे) शुक्ल कृष्ण होनेसे नानाप्रकारके (अहनी) दिन तुम्हारी महिमासे होते हैं। अथवा हे पूषन् ! तुम्हारा एकरूप निर्मल है जो दिन होनेका कारण है और दूसरा एक रूप है जो केवल यजनीय है प्रकाशक नहीं है, रात्रिका उत्पादक है, इसकारण ही विषुव कहिये विषमरूप दिन और रात होते हैं, क्योंकि—दिन और रात्रिका कर्त्ता सूर्य ही है (द्यौः इव) आदित्यकी समान प्रकाशक (असि) है (हि) क्योंकि—(स्वधावन्) हे अन्नवाले पूषदेव ! (विश्वाः) सकल (मायाः) प्रजाओंको (अवसि) रक्षा करता है, इस कारण तू सूर्यकी समान ही है, ऐसे (ते) तेरा (भद्रा)कल्याण-रूप (रातिः) दान (इह) हमारे विषयमें (अस्तु) हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ

२र १ २ ३ १ २र ३ २उ

हवमानाय साध । स्यान्नः सूनुस्तनयो विजा

२ १ २ ३ १ २ ३ २

वाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्र ऋषिः । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! पुरुदंसम् दंसः वेवः इति (नि० २२, १,३) कर्मनामसु पठितत्वात् दंसः—पुरुः बहवः पुरूणि बहूनि दंसांसि कर्माणि यस्याः सा, तां बहुकर्माणं गोः सनिं गवादिपशूनां सम्पादयित्रीम् इडाम् एतन्नामिकां गोरूपां देवतां शश्वत्तमं निरन्तरं हवमानाय यजमानाय मह्यं साध साधय । किञ्च, नः अस्माकं सूनुः पुत्रः तनयः पौत्रः स्यात् भवतु, इति ते तव या सुमतिः शोभना बुद्धिः सा विजावा अवन्ध्या सती अस्मे अस्माकं भूतु भवतु ॥ ४ ॥

(अग्ने)हे अग्निदेव ! (पुरुदंसम्)बहुत हैं काम जिसके ऐसी(गोः) गौओंकी (सनिम्) देनेवाली (इडाम्) इडानामक गोरूप देवताको (शश्वत्तमम्) निरन्तर (हवमानाय) हवन करते हुए मुझ यजमानके अर्थ (साध) साधन कर, और (नः) हमारा (सूनुः) पुत्र (तनयः) पौत्र (स्यात्)हो, ऐसी जो (ते) तुम्हारी (सुमतिः) सुन्दर बुद्धि है वह (विजावा) सफल (अस्मे) हमारी (भूतु) हो ॥ ४ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र होता जातो महान्नभोविन् नृषद्मा सीददपां
२ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र २ १
विवर्त्ते । दधद्यो धायी सुते वयाꣳसि यन्ता
२र ३ १ २ ३ २
वसूनि विधते तनूपाः ॥ ५ ॥

अर्थ पञ्चमी । वत्सप्रिऋषिः । छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । यः नृषद्मा अग्निः अपाम् अन्तरीक्षनामैतत् (नि० १, ३ ८) अन्तरिक्षस्य विवर्त्ते विवर्त्तेन उत्सङ्गे वैद्युतरूपेण निषण्णोऽभूत्, स इदानीं होता यजमानानां होमनिष्पादको जातः प्रादुर्भूतः महान् गुणैः पूज्यः । नभोवित् अन्तरिक्षस्य ज्ञाता यतस्तत्रोत्पन्न अतस्तस्य ज्ञाता नृषद्मा सपु सीदम् सदेर्मनिन्, नित्स्वरः (६, १, १९७) प्रसीदत् वेद्यां प्रसीदति । अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत इति हि निगमः । यद्वा, अपां पयसाम् इत्यर्थः, कर्मणामुपस्थे उपस्थाने समीपे वेद्यामुक्तलक्षणः सन् । अथवा, अपाम् उदकानां विवर्त्ते मध्ये योऽग्निर्हविर्वोढुमरूहमानो निगूढः सन् स देवैः पुनः प्रार्थितः उक्तविधः सन् वेद्यां प्रसीदति, सोऽग्निः दधत् हवींषि धारयन् सुधायी वेद्यां निहतोऽभूत् । हे स्तोतः सोऽग्निः विधते परिचरते ते तुभ्यं वयांसि अन्नानि वसूनि धनानि च यन्ता नियमयिता भवतु । किंच, तनूपाः, तन्वः पाता च भवत्विति । शेषः । नृषद्मा नृषद्वा इति च पाठौ । दधद्यो धायी सुते इति छन्दोगाः दधिर्यो धायी स ते इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(यः) जो (नृषद्मा) होताओंके समीप स्थानवाला अग्नि (अपाम्) अन्तरिक्षके (विवर्त्ते) प्रदेश में विद्युत्रूप से स्थित हुआ, वह इस समय (होता) यजमानके होमको सुसिद्ध करने वाला (जातः) हुआ है (महान्) गुणोंसे पूजनीय (नभोवित्) अन्तरिक्षका ज्ञाता (प्रसीदत्) वेदीमें प्रसन्न होता है वह (दधत्) हवियोंको धारण करता हुआ (सुधायी) वेदीमें सम्यक् प्रकारसे स्थापन किया गया । हे स्तोतः ! वह अग्नि (विधते) उपासना करते हुए (ते) तेरे अर्थ (वयांसि) अन्नोंको (वसूनि) धनोंको (यन्ता) प्रेरणा करने वाला (तनूपाः) शरीरकी रक्षा करने वाला [भवतु] हो ॥ ५ ॥

२ ३ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुꣳसः कृष्टीनामनु-

१ २   १ २   ३ २ ३१२ ३ १ २   ३ १ २ ३

माद्यस्य । इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा
१ २
वन्दमाना विवष्टु ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वशिष्ठ ऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । असुरस्य बलवतः पुंसः वीरस्य पौंस्यमिति वीर्यमुच्यते तथा च यास्कः पुमान् पुरुमना भवति पुंसतेर्वेति कृष्टीनां जनानाम् अनुमाद्यस्य स्तुत्यस्य तवसः बलवतः इन्द्रस्येव तस्याग्नः प्रशस्तम् उत्कृष्टं सम्राजं सम्यग्राजमानं स्वरूपं प्रस्तौतु । तथा वन्दद्वारा वन्दनं वन्दः स्तुतिः, तद्द्वाराणि स्तुतिप्रमुखाणि वन्दमाना सर्वैः स्तूयमानानि कृतानि कर्माणि प्र विवष्टु प्रकर्षेण कामयताम् । प्रसम्राजमसुरस्य प्रशस्तम् इति छंदोगाः प्रसम्राजो असुरस्य प्रशस्तिम् इति बह्वृचाः । वन्दद्वारा वन्दमानां विवष्टु इति, वन्दे दारु वन्दमानो विवक्मि इति च पाठौ ॥ ६ ॥

(असुरस्य) बलवान् (पुंसः) वीरके (कृष्टीनाम्) मनुष्योंके (अनुमाद्यस्य) स्तुतियोग्य (तवसः) बलवान् (इन्द्रस्य इव) इन्द्रकी समान उस अग्नि के (प्रशस्तम्) उत्तम (सम्राजम्) भले प्रकार विराजमान स्वरूपको [प्रस्तौतु] स्तुति करो (वन्दद्वारा) स्तुति आदि (वन्दमाना) सबके बखान हुए कर्मोंको (प्रविवष्टु) अधिकतासे चाहो ॥ ६ ॥

३२ ३ १ २   ३ १२३ १ २ ३१२र   ३ १

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत्सुभृतो गर्भि-
२   ३ १ २ ३ १ २   ३ १ २ ३ १ २
णीभिः । दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भि-
३क२र ३ २
र्मनुष्येभिरग्निः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्र ऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । जातवेदाः सर्वविषयज्ञानवान् अयम् अग्निः अरण्योर्निहितः देवैर्यज्ञार्थं नितरां स्थापितः । तत्र दृष्टान्तः, गर्भः इव इति यथा गर्भो गर्भिणीभिः स्त्रीभिः सुभृतः सुष्ठु धार्य्यते तद् वत् । स तादृशोऽग्निः हविष्मद्भिः सम्भृतहविष्कैः अत एव जागृवद्भिः कर्मणि जागरूकैःमनुष्येभिः मनुष्यैरस्माभिः दिवे दिवे प्रत्यहं स्तुत्यर्थं ईड्यः स्तुतिरूपाभिर्गीर्भिः स्तोतव्यः। सुभृतो गर्भिणीभिः इति सुधितो गर्भिणीषु इति च पाठौ ॥ ७ ॥

(जातवेदाः) सब विषयोंके ज्ञानवाला (अग्निः) अग्नि (गर्भिणीभिः) गर्भिणियों करके (सुभृतः) भले प्रकार धारण किया हुआ (गर्भ इव इत्) गर्भ जैसे तिसी प्रकार (अरण्योः) अरणियोंमें (निहितः) देवताओंने यज्ञके निमित्त स्थापन किया, वह अग्नि (हविष्मद्भिः) हविको लिये हुए (जागृवद्भिः) कर्मानुष्ठानमें सावधान (मनुष्येभिः) हम मनुष्यों करके (दिवे दिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुतिरूप वाणियोंसे स्तुति करने योग्य है ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षा-

३ १ २ १ २ ३ १ २

ᳫँसि पृतनासु जिग्युः । अनु दह सहमूरान्

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

क्रयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । पायुर्ऋषिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः हे अग्ने ! त्वं सनात् चिरादेवारभ्य यातुधानान् राक्षसान् । मृणसि बाधसे । तथापि त्वा त्वाम् । पृतनासु संग्रामेषु । रक्षांसि राक्षसाः न जिग्युः नाजयन् । किञ्च । स त्वमधुना अनुक्रमेण सह मूरान् मूलेन सहितान् मारकव्यापारेण युक्तान् क्रयादः क्रव्यादो मांसभक्षकान् राक्षसान् दह तेजसा भस्मीकुरु । किञ्च, तव सम्बन्धिनो दैव्यायाः दैव्यात् हेत्यः आयुधात् ते यातुधानाः मा मुक्षत मुक्ता मा भूवन् । क्रयादः क्रव्यादः इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (सनात्) चिरकालसे (यातुधानान्) राक्षसोंको (मृणसि) बाधा देते हो, तो भी (त्वा) तुमको (पृतनासु) संग्रामोंमें (रक्षांसि) राक्षस (न जिग्युः) नहीं जीतसके, वह तुम इस समय (अनु) क्रमसे (सहमूरान्) मारक व्यापाररूप मूल सहित (क्रयादः) मांसभक्षी राक्षसोंको (दह) तेजसे भस्म करो (ते) तुम्हारी (दैव्यायाः) दिव्य (हेत्याः) लपटरूप आयुधसे (मा मुक्षत) न छूटें ॥ ८ ॥

प्रथमाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।

१ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१॥

षोडशानुष्टुभोऽष्टम अ ओजिष्ठमिति खण्डगोः।
सोमं राजानमित्येषा वैश्वदेवी ततः परा।
स्तुतिरङ्गिरसां शिष्टाः आग्नय्यस्तु चतुर्दश।

अथ नवमं खण्डे—तत्र प्रथमा। गायत्रिकऋषिः। छ० अनुष्टुप्। दे० अग्निः। हे अग्ने! ओजिष्ठं बलवत्तमं द्युम्नं द्योतते कटक-मुकुटादि-रूपेण सर्वत्र काशते इति द्युम्नं धनम् अस्मभ्यम् आभर आहर। हे अध्रिगो! अधृत-गमन! अधृतमप्रतिहतं गमनं यस्येति, अधृता अनिवारिता गावो रश्मयो यस्येति वा,अध्रिगु,तस्य सम्बोधनं हे अध्रिगो! पनीयसे पनीयसा स्तोतव्येन राये राया धनेन। सुपां सु लुगिति (७,१,३९) से आदेशः नः अस्मान् प्रकर्षेण योजय। वाजाय अन्नस्य लाभाय पन्थाम् पन्थानम् अन्नस्य, मत्समीप—प्राप्ति-साधनं मार्गं, रत्सि विलिख कुर्वित्यर्थः प्र नो राये पनीयसे इति छंदोगाः, प्र णो राया परीणसा इति बह्वृचाः ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (ओजिष्ठम्) परम बलवान् (द्युम्नम्) कटक कुण्डलादि रूपमें सर्वत्र प्रकाशवान् धन (अस्मभ्यम्) हमें (आभर) लाकर दीजिये (अध्रिगो) नहीं रुकती है गति जिसकी ऐसे हे अग्ने ! (पनीयसे) स्तुति योग्य (राये) धन करके (नः) हमें (प्र) प्रकर्ष करके युक्त करो (वाजाय) अन्नके लिये (पन्थाम्) मार्गको (रत्सि) दो ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आजुह्वद्धव्यमानुषक्शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वामदेव ऋषिः। भरद्वाजो बार्हस्पत्योऽथवा। छ० अनुष्टुप्। दे० अग्निः। यदि यदा यस्य मनुष्यस्य वीरः पुत्रः, स्यात् भवति,तदा सः मर्त्यः अग्निमिन्धीत आधानमादधीत कुर्वीत। किंच। आनुषक् अविच्छिन्नं यथा भवति तथा हव्यम् आजुह्वत् आभिमुख्येन जुहोति। अपि च। दैव्यं देव-सम्बन्धि शर्म गृहं सुखं वा भक्षीत भजेत सेवेतेत्यर्थः ॥ २ ॥

(यदि) जब, मनुष्यके (वीरः) पुत्र (स्यात) होय तब वह (मर्त्यः) मनुष्य (अग्निम्) अग्निको (इन्धीत) प्रदीप्त करे (अनु) फिर (आनुषक्) अविच्छिन्न (हव्यम्) हविको (आजुह्वत्) अभिमुख होकर होमे (दैव्यम्) दिव्य (शर्म) सुखको (भक्षीत) भोगे॥ २

३ १ २ ३ १ ३ २३ ३ २ २र

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सं छुक्र आततः ।

२ ३ २३ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया द्वयोर्भरद्वाज ऋषिः । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! त्वेषः दीप्तस्य ते तव शुक्रः शुक्लो निर्मलः शुभ्रवर्णो वा धूमः दिवि अन्तरिक्षे आततः विस्तीर्णः सन् ऋण्वति मेघात्मना परिणतो गच्छति । अपि च; हे पावक ! शोधक ! अग्ने ! सूरो न सूर्य इव कृपा स्तोतव्याभिमुखीकरणसमर्थया स्तुत्या स्तूयमानस्त्वं द्युता दीप्त्या रोचसे हि प्रकाशसे खलु । दिवि सन् इति, दिवि पन् इति च पाठौ ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (त्वेषः) प्रज्वलित हुए (ते) तुम्हारा (शुक्रः) निर्मल श्वेतवर्ण (धूमः) धुआँ (दिवि) अन्तरिक्ष में (आततः) फैलता हुआ (ऋण्वति) मेघरूपसे परिणत होजाता है और (पावक) हे शोधक अग्ने ! (सूरः,न) सूर्यकी समान (कृपा)अभिमुख कर सकने वाली स्तुतिसे प्रशंसा किये हुए तुम (द्युता) दीप्तिसे (हि) निश्चय (रोचसे) प्रकाशित होते हो ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २र

त्वँ हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे अग्ने! त्वं हि त्व खलु क्षैतवत् क्षितिः क्षयोऽपचयः तत्सम्बन्धि क्षैतं शुष्कं काष्ठं तद्युक्तं यशः अन्नं (नि०२,७) हविर्लक्षणं पत्यसे अभिपतसि गच्छसि । तत्र दृष्टान्तः मित्रो न अहरभिमानी मित्रो देवः स इव यद्वा क्षय इति गृहनाम (नि०३,४) क्षैतवत् क्षैतं निवासकं हविर्लक्षणमन्नं तद्युक्तम् यजमानगृहं मित्रभूतः सुरूप

इवाभिपतसि । यद्वा पत्यतिरैश्वर्यकर्मा, (नि० २, २१) ईदृशमन्नं पत्यसे ईशिषे अतः कारणात् हे विचर्षणे विशेषेण सर्वस्य द्रष्टः ! वसो! वासकाग्ने ! त्वं श्रवः श्रवणीयमन्नम् यजमानगृहस्थं न अयं न शब्दश्चाथ । (नि०२,७) अन्नकार्यभूतां पुष्टिं च पुष्यसि बर्द्धयसि ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! (हि) निश्चय (त्वम्) तू (क्षैतवत्) सूखते हुए काठ सहित (यशः) अन्नको (मित्रः, न) दिनके अभिमानी मित्र देवता की समान (पत्यसे) प्राप्त होता है, इस कारण (विचर्षणे) सबके द्रष्टा ! (वसो) हे व्यापक अग्ने (त्वम्) तू (श्रवः) यजमानके घर अन्नको (पुष्टिं, न) पुष्टिको भी (पुष्यसि) बढ़ाता है ॥ ४ ॥

३ २ ३   १   २   ३   २   ३ १   २ ३ १   २
प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
२ ३   २   ३   १ २   ३ १   २र   ३ १ २
विश्वे यस्मिन्नमर्त्यें हव्यं मर्त्तास इन्धते ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मृक्तवाहाद्वित ऋषिः । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । पुरुप्रियः बहुप्रियः विशः यजमाने धनस्य निवेशकः अतिथिः यजमानानां गृहान् प्रति-तिथिषु न अभ्येतीत्यतिथिः । तथाह यास्कः अतिथिरभ्येति गृहान् भवत्यभ्येति तिथिषु परकुलानीति परगृहाणीति वा (४, १, ५) इति एवं विधोऽग्निः प्रातः स्तवेत स्तूयते । अमर्त्यं । अमरणधर्मके यस्मिन् अग्नौ विश्वे सर्वे मर्त्तासः मर्त्ताः मनुष्याः हव्यम् इन्धते दीपयन्ति दधत इत्यर्थः 'विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्त्तासि इन्धते इति छंदोगाः विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(पुरुप्रियः) बहुतोंका प्रिय (विशः) यजमानोंके घर धन स्थापन करने वाला (अतिथिः) यजमानोंके घर सदा जाने वाला (अग्निः) अग्नि (प्रातः) प्रातःकालके समय (स्तवेत) स्तुति किया जाता है. (अमर्त्यें) अमरणधर्मी (यस्मिन्) जिस अग्निमें (विश्वे) सब (मर्त्तासः) मनुष्य (हव्यम्) हव्यको (इन्धते) स्थापन करते हैं॥५॥

१   २र ३ २ ३ १ २   ३ १ २
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च्च विभावसो ।
१ २   ३   २   ३ २उ   ३   १ २
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वसूयवआत्रेया ऋषयः।छ०अनुष्टुप्। दे० अग्निः।वाहिष्ठं वोढृतमम् यत् स्तोत्रं तत् अग्नये क्रियते। अतः हे विभावसो! प्रभाधनाग्ने! बृहत् बह्वन्नं धनं च अर्च्च अस्मभ्यं प्रयच्छ। कथमस्यान्नधनप्रदातृत्वमित्यपेक्षायामाह, यतः त्वत् त्वत्तः सकाशात् महिषी महती रयिः धनम् उदीरते उद्गच्छन्ति। इव इति पाद-पूरणः॥ ६॥

(वाहिष्ठम्) अधिकतासे पहुँचाने वाला (यत्) जो स्तोत्र है (तत्) वह (अग्नये) अग्निके अर्थ किया जाता है, इस कारण (विभावसो) हे प्रभारूप धनवाले अग्ने! (बृहत्) बहुतसा धन और अन्न (अर्च) हमें दीजिये, क्योंकि-(त्वत्) तुमसे (महिषी) बहुत से (रयिः) धनको (उदीरते) पाते हैं॥ ६॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २
विशो विशो वो अतिथिं वाजयन्त पुरुप्रियम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः॥७॥

अथ सप्तमी। गोपवन ऋषिः। सप्तवध्रिर्वा। छ०अनुष्टुप्। दे०अग्निः हे ऋत्विग्यजमानाः! वः यूयं वाजयन्तः अन्नमिच्छन्तः विशोविशः सर्वस्याः प्रजायाः पुरु-प्रियं बहुप्रियम् अतिथिं पूज्यम् अग्निं स्तुत्या परिचरतेति शेषः। अहं च वः युष्मदर्थं दुर्यं गृह-हितम् अग्निं वचः स्तुषे स्तौमि शूषस्य सुखस्य लाभाय। कैः साधनैः? मन्मभिः मननीयैः स्तोत्रैः॥ ७॥

हे ऋत्विज और यजमानो! (वः) तुम (वाजयन्तः)अन्नकी इच्छा करते हुए (विशोविशः) सब प्रजाके (पुरुप्रियम्) अधिक प्रिय (अतिथिम्) पूज्य (अग्निम्) अग्निको स्तुतिसे आराधन करो, मैं भी (वः) तुम्हारे निमित्त (दुर्यम्) घरके हितकारी अग्निको (शूषस्य) सुखके लाभार्थ (मन्मभिः) मनन करने योग्य स्तोत्ररूप (वचः) वाणियोंसे (स्तुषे) स्तुति करता हूँ॥ ७॥

३ २३ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्त्तासो दधिरे पुरः॥ ८॥

अथ अष्टमी। पुरुरात्रेयऋषिः। छ०अनुष्टुप्। दे०अग्निः।यज्ञे भानवे दीप्तिमते अग्नये बृहत् महत् वयः हवीरूपमन्नं दीयते हि अतस्त्वमपि देवाय द्योतमानायाग्नये वयः अर्च्चः प्रयच्छ। मर्तासः मनुष्याः यम्

अग्निं मित्रं न सखायमिव प्रशस्तये प्रकृष्ट-स्तुतये असमर्थं देवानग्निः स्तौत्विति पुरः दधिरे पुरस्कुर्वन्ति प्रशस्तये प्रशस्तिभिः इति पाठौ ८

यज्ञमें (भानवे) दीप्तिमान् (अग्नये) अग्निके अर्थ (बृहत्)बड़ा (वयः) हविरूप अन्न दिया जाता है (हि) इस कारण तुम भी (देवाय) प्रकाशवान् अग्निके अर्थ (अर्च) दो (मर्त्तासः) मनुष्य (यम्) जिस अग्निको (मित्रं न) मित्रके समान (प्रशस्तये) श्रेष्ठ स्तुतिके लिये (पुरः दधिरे) सत्कार करते हैं ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यत ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गोपवन ऋषिः । वृत्रहन्तमं पापानामतिशयेन हंतारं ज्येष्ठं प्रशस्यम् आनवं मनुष्यसम्बन्धिनं तेषां हितकारिणम् अग्निम् अगन्म गन्ता वयं, पूजार्थं बहुवचनम् । अग्निः यः आर्क्षे ऋक्ष—पुत्रे श्रुतर्वन् नाम्नि राजनि निमित्तं बृहत महान् अनीकः ज्वाला—समूहः सन् इध्यते स्म प्रवृद्धोऽभवत् । लट् स्मे (३,२,११८) इति भूते लट् तमग्निमागता इति समन्वयः । एवं श्रुतर्वाणं भिक्षणायागतो गोपवनः अग्निं स्तौति । अगन्म आगन्म इति च पाठौ यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते इति छन्दोगाः । यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते इति च बह्वृचाः ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्तमम्) पापोंके अतिशय नाशक (ज्येष्ठम्) प्रशंसनीय (आनवम्) मनुष्योंके हितकारी (अग्निम्) अग्निको (अगन्म) हम प्राप्त हुए (यः) जो अग्नि (आर्क्षे) ऋक्षपुत्र (श्रुतर्वन्) श्रुतर्वनके निमित्त (बृहत्) महान् (अनीकः) ज्वाला-समूह-रूप होकर (इध्यते स्म) प्रज्वलित किया गया ॥ ९ ॥

३ २ ३र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

जातः परेण धर्मणा यत्सवृद्भिः सहाभुवः ।

३ २उ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र ३ २

पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः १०

अथ दशमी । वामदेवः कश्यपो वा मारीचो मनुर्वा वैवस्वत उभौ वा । छं० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । हे अग्ने ! त्वं परेण उत्कृष्टेन धर्मणा आधानादिकर्मणा जातः प्रादुर्भूतोऽसि । यत् यः सवृद्भिः यज्ञे सह

वर्त्तन्ते इति सवृतः ऋत्विजः, तैः सह अभुवः भूमि-सम्बन्धि—यज्ञे वर्तसे कश्यपस्याग्निरित्येतयोः परस्परं विभक्ति-व्यत्ययः। यत् यस्याग्नः कश्यपः पिता श्रद्धा देवी माता च मनुः कवि क्रांत-कर्मा मेधावी वा मनुर्वैवस्वतः स्तोता आसीत् सोऽग्निः यजमानायाभीष्टं फलं प्रयच्छतु अनेन सूचितमुपाख्यानं ब्राह्मणान्तरे द्रष्टव्यम् ॥ १० ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (परेण) उत्तम (धर्मणा) आधान आदि कर्म करके (जातः) प्रकट हुए हो (यत्) जो (सवृद्भिः) ऋत्विजोंके साथ (अभुवः) भूमि सम्बन्धी यज्ञमें रहता है (यत्) जिस अग्निका (कश्यपः) कश्यप (पिता) पिता (श्रद्धा) श्रद्धा-देवी (माता) माता (मनुः) मनु (कविः) स्तोता हुआ ॥ १० ॥

प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

२ ३   १ २ ३ १ २   ३   २ ३ १ २
सोमꣳ राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
३   २उ   ३   १ २   ३ १ २   ३   २ ३ १ २
आदित्यं विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् १

अथ दशमे खण्डे—सेय प्रथमा। अग्निस्तापस ऋषिः। छन्दः अनुष्टुप्। देवता विश्वेदेवाः। राजानं राजमानमीश्वरं वा सोमं वरुणं च अग्निं च गीर्भिः स्तुतिभिः अन्व रभामहे रक्षणार्थम् आह्वयामहे। तथा आदित्यम् अदितेः पुत्रं विष्णुं च सूर्यं च ब्रह्माणं च बृहस्पतिं च अन्वारभामहे ॥ १ ॥

(राजानम्) ईश्वर (सोमम्) सोमको (वरुणम्) वरुण को (अग्निम्) अग्निको (आदित्यम्) अदिति के पुत्र (विष्णुम्) विष्णु को, (सूर्यम्) सूर्यको (ब्रह्माणम्) ब्रह्माको (च) और (बृहस्पतिम्) बृहस्पतिको (अन्वारभामहे) रक्षाके लिये आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २   ३ २ ३ १   २र
इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
२ ३ २ ३   १ २   ३ १   २र
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वामदेवो द्वयोः छंदः अनुष्टुप्। देवता विश्वेदेवाः। एते अङ्गिरसः यथा उत् मार्गणैव द्यां दिवं प्र ययु प्रापुः। कीदृशाः ? भूर्जयः भूर्जतिः पाक-कर्मा हविषां पक्तारः तत्र दृष्टांतः यथा मार्गेण जनाः

ग्रामादीन् गच्छन्ति तथा इतः भूमः सकाशात् उद्रारुहन् उद्गच्छन्। आपस्थ च दिवः स्वर्गस्य पृष्ठानि स्थानानि आरुहन् प्राक्रमन्ति ॥ २ ॥

(एते) यह (भृजयः) हवियों वाले (आङ्गिरसः) आङ्गिरस (यथा) जैसे (एत्) मार्ग करके (द्याम्) द्युलोकको (प्रययुः) प्राप्त हुए जैसे कि (पथा) मार्गके द्वारा मनुष्य ग्राम आदिको जाते हैं वैसे ही (इतः) भूमिसे (उद्रारुहन्) ऊपरको गए और आकर (दिवः) स्वर्गके (पृष्ठानि) स्थानों पर (आरुहन्) चढ़े ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईडिष्वा हि महे वृषन्द्यावा होत्राय पृथिवी ॥३॥

अथ तृतीया। एतस्याः कश्यपोऽसितो देवलो वा। हे अग्ने ! त्वा त्वां महे महतः राये धनस्य दानाय दानार्थं समिधीमहि वयं सम्यग् दीपयामहे। वृषन् वर्षितः। अग्नये महते होत्राय अग्निहोत्रार्थं द्यावा दिवं पृथिवीं च ईडिष्वा स्तुहि ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वा) तुम्हें (महे) बहुतसे (राये) धन दानके लिये (समिधीमहि) भले प्रकारसे प्रदीप्त करते हैं (वृषन्) वरदानोंकी वर्षा करनेवाले अग्ने ! (महते) बड़े (होत्राय) हवनरूप अग्निहोत्रके लिये (द्यावा-पृथिवी) द्यावापृथिवीकी (ईडिष्वा) स्तुति करो ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्मेति वेरु तत् ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ॥४॥

अथ चतुर्थी। भार्गहुतिः सोमो वा ऋषिः। छन्दः अनुष्टुप्। देवता अग्निः। वा अथवा ईम् एनं यज्ञम् अनु लक्षीकृत्य यत् हविरादिकं दधन्वे धारयत्यध्वर्य्वादिः यद् ब्रह्म स्तोत्रम् अनुवोचत् अनुवक्ति होत्रादिः अत्र वा अग्निरेतद्योऽयम्। तत् सर्वं वेरु वेत्येव कामयते जानाति वा स्वयमनुष्ठातुम्। अयमग्निः विश्वानि सर्वाणि काव्या काव्यानि कवयः मेधाविन ऋत्विजः तत् सम्बन्धीनि कर्माणि पर्यभुवन् परिभवति स्वाधीनानि करोति व्याप्नोतीत्यर्थः। व्यासौ दृष्टान्तः नेमिः बहिर्वेष्टमवलयः चक्रमिव रथाङ्गं यथा कार्त्स्न्येन व्याप्नोति तद्वत् ब्रह्म इति ब्रह्माणि इति च पाठौ। भुवद् भवत् इति च ॥ ४ ॥

(वा) अथवा (इम्) इस यज्ञको (अनु) लक्ष्य करके (दध्वंसे) अध्वर्यु आदि (ब्रह्म) स्तोत्रको (अनुवोचत) उच्चारण करते हैं (तत्) उस सबको (वेः, उ) जानता ही है। यह अग्नि (विश्वानि) सब (काव्याः) बुद्धिमान् ऋत्विजों के सकल कर्मोंको (नेमिः) नेमि (चक्रमिव) पहियेको जैसे वश में करे रहता है तैसे (पर्यभुवत) अपने वशमें रखता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३क २र
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । पायुर्ऋषिः। छंदः अनुष्टुप् । देवता रक्षोहा अग्निः। हे अग्ने! त्वं हरसा त्वदीयेन तेजसा क्रोधेन वा तथा च यास्कः हरो हरतेर्ज्योतिर्हर उच्यते इति यातुधानस्य राक्षसस्य हरः हरणशीलं बलं विश्वतः सर्वतः परि गतं प्रति शृणाहि नाशयेत्यर्थः । तथा रक्षसः राक्षसस्य वीर्यं च न्युब्ज निःशेषेण रुज भङ्ग्येत्यर्थः । शृणाहि शृणीहि इति पाठौ । बलं न्युब्जं वीर्यम्, बलं विरुज वीर्यम् इति च ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (हरसा) अपने तेजसे वा क्रोध से (यातुधानस्य) राक्षसके (हरः) हरणशील (बलम्) बलको (विश्वतः) सब ओरसे (परि) फैले हुएको (प्रतिशृणाहि) नाश करो (रक्षसः) राक्षसके (वीर्यम्) पराक्रमको (न्युब्ज) विशेप रूपसे तोड़दो ॥५॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । प्रस्कण्व ऋषिः । छन्दः अनुष्टुप् । देवता अग्निः । हे अग्ने ! त्वम् इह कर्मणि वस्वादीन् यज । उत अपि च जनम् अन्यमपि देवतारूपं प्राणिनं यज । कीदृशम् ? स्वध्वरं शोभनयागयुक्तं मनुजातं मनुना प्रजापतिना उत्पादितं घृतप्रुषम् उदकस्य सेक्तारं यजेति सम्बन्धः ॥ ६ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तुम (इह) इस कर्ममें (वसून्) वसुओंको (रुद्रान्) रुद्रोंको (आदित्यान्) आदित्योंको (उत) और

(स्वध्वरम्) शोभनयागयुक्त (मनुजातम्) प्रजापतिसे उत्पन्न किये हुए (घृतप्रुषम्) जलको सींचने वाले (जनम्)अन्य देवताको (यज) यजन करो ॥ ६ ॥

प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पुरु त्वा दाशिवाꣳ वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।

२ १ २ ३ २ ३ ३ १ २

तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

खण्डयोर्हपुरुत्वेति ककुभोऽष्टौ दशोष्णिहः ।
अज्ञानः पावमानी स्यादुतस्येत्यदितेः स्तुतिः ।
शिष्टाः षोडश चाग्नेय्यः समाख्या छत्रिणीति षट् ॥

अथैकादशखण्डे—सेयं प्रथमा । दीर्घतमा ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः । हे अग्ने ! त्वा त्वां पुरु बहु वोचे यद्वा बहु दाश्वानिति सम्बन्धः पुत्रं देहि, वित्तं देहि इत्याद्याशासनानि ब्रवीमीत्यर्थः । किन्तूष्णीम् ? नेत्याह, यतः दाशिवान् दाश्वान् अभिमतं हविर्दत्तवानस्मि, अतो वोचे । इतरसाधारण्येन ब्रुवतः कथं दातव्यम् इति न मन्तव्यम् । यतः हे अग्ने ! तव स्विदा अरिः तवैव अर्त्ता सेवकोऽहं महस्य महतः तोदस्य शिक्षकस्य स्वामिनः शरण आ इव इत्युपमार्थे तत्र ईशगृहे यथा गर्भदासादिर्नियतो वर्त्तते तद्वदहमपि । यस्मादेवं तस्मात् अभिमतं बहु वोचे । त्वमपि तत् सर्वं देहीत्यर्थः । अत्र निरुक्तम्— बहु दाश्वांस्त्वामभिह्वयाम्यरिरमित्रमृच्छतेरीश्वरोऽप्यरिरेतस्मादेव यदन्यदेवत्या अग्नावाहुतयो हूयन्त इत्येतद् दृष्ट्वैवमवक्ष्यत्तोदस्येव शरणआ महस्य तुल्यस्येव शरणेधिः महतः (५, १, ८) इति ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (महस्य) बड़े (तोदस्य) शिक्षक स्वामीके (शरण आ) दासकी समान (तव स्विदा) तुम्हारा ही (अरिः)सेवक मैं (त्वा) तुमसे (पुरु) बहुतसे (दाशिवान्) पुत्र धन आदि वरदानों को (वोचे) कहता हूँ ॥ १ ॥

१ २र २३ ३ १ २ ३ २

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।

३ १ २र ३ १२ ३ २ ३ १ २

विपां ज्योतीꣳषि बिभ्रते न वेधसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विश्वामित्र ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः ।

यजमानो होत्रादीन् प्रति ब्रूते हे होत्रादयः ! विपां विप्राणाम् मेधाविनाम् अध्वर्य्वादीनां ज्योतींषि सत्कर्मानुष्ठानसम्पाद्यानि तेजांसि बिभ्रते निमित्ततया कुर्वाणाय वेधसे जगतो विधात्रे देवानामाह्वात्रे अग्नये बृहत् महत् पूर्व्यं पुरातनं वचः स्तोत्रशस्त्रादिकं वाक्यं प्रभरता सम्पादयत । नेत्ययं पादपूर्णः अन्वयाभावात्।यद्वा वेधसे न यथा वेधाः जगद्विधाता परमेश्वरः आदित्यादीनि ज्योतींषि करोति तद्वदिति । प्र शब्दस्य छन्दसि व्यवहिताश्च इति भरतेत्यनेन सम्बन्धः ॥ २ ॥

यजमान होता आदि से कहता है,कि-होता आदिको ! (विपाम्) अध्वर्यु आदि विप्रोंके (ज्योतींषि) सत्कर्मोंके अनुष्ठानसे प्राप्त हुए तेजों को (बिभ्रते) निमित्तरूपसे करने वाले (वेधसे) जगत्के विधाता (होत्रे) देवताओंका आह्वान करनेवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (बृहत्) बड़े (पूर्व्यम्) पुरातन (वचः) स्तोत्रको (प्रभरता) सम्पादन करो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गोतम ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः । हे सहसो यहो ! बलस्य पुत्र ! अग्ने ! गोमतः बहुभिर्गोभिर्युक्तस्य वाजस्य ईशानः ईश्वरस्त्वमसि,अतः अस्मे अस्मासु हे जातवेदः ! जातधन ! जातानां वेदितः वा अग्ने ! महि प्रभूतं श्रवः अन्नं देहि प्रयच्छ स्थापयेत्यर्थः सहसोयहो पराङ्गवद्भावात् आमन्त्रितस्य षष्ठ्यामन्त्रितसमुदायो निहन्यते । अस्मे, सुपां सु लुगिति (७ । १ ३९) सप्तम्याः शे आदेशः । अस्मे देहि, अस्मे धेहि, इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(सहसोयहो) बलके पुत्र (अग्ने) हे अग्ने !(गोमतः) अनेकों गौओंसे युक्त (वाजस्य) अन्नके (ईशानः) ईश्वर तुम हो. इसकारण (जातवेदः) प्राणिमात्रके अन्तर्यामी अग्ने ! (अस्मे) हमें (महि) बहुतसा (श्रवः) अन्न (देहि) दो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
१ २ ३ १ २र३ २ ३ १ २
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्र ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अग्निः

हे अग्ने ! यजिष्ठः यष्टृतमः त्वम् अध्वरे यज्ञ देवयने देवात्मन इच्छते यजमानाय देवान् यज तदथ यष्टव्यानग्न्यादीन् देवान् पूजय । किञ्च होता देवानामाह्वाता मन्द्रः यजमानस्य मादयिता स एव स्रिधः क्षपयितॄन् शत्रून् अति अतिक्रम्य वि राजसि विशेषेण शोभसे ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (यजिष्ठः)विशेषरूपसे यजन करनेवाला तू (अध्वर) यज्ञमें (देवयते) अपने कर्ममें देवताओंको चाहनवाले यजमानके निमित्त (देवान्, यज) देवताओंका यजन करो (होता) देवताओंका आह्वान करनेवाले (मन्द्रः) यजमानको आनन्द देनेवाले तुम (स्रिधः) शत्रुओं को (अति) अतिक्रमण करके (विराजसि) विशेषरूपसे शोभायमान होते हो ॥ ४ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । त्रित ऋषिः।छन्दः उष्णिक् । देवता पवमानः सोमः। ध्रुवः स्थिरोऽयमग्निः रयीणां धनानाम् आचिकेतत् अस्यानुशासनं जानाति सप्त सप्तसंख्याभिः मातृभिः हविर्मानसमर्थाभिर्जिह्वाभिः स्वात्मनि हविः प्रक्षेप्त्रीभिर्वा जिह्वाभिः सह।जज्ञानः प्रादुर्भूतः सोऽग्निः मेधां कर्मणो विधातारं सोमं श्रिये सेवार्थम् आशासत अनुशास्ति । शास्तेर्लेटि व्यत्ययेनात्मनपदम् (३, ४, ९८) बहुलं छन्दसि इति (२, ४, ७३) शपो लुङ् न भवति अन्विच्छर्तीत्यर्थः । जज्ञानः सप्तमातृभिः जज्ञानं सप्त मातरः इति च पाठौ । चिकेतद् अचिकेतयद् इति च ॥ ५ ॥

(ध्रुवः) स्थिर (अयम्) यह अग्नि (रयीणाम्) धनोंका (आचिकेतत्) अनुशासन करना जानता है (सप्त) सात (मातृभिः) अपनेमें हवि डालने वाली जिह्वाओं करके (सह) सहित (जज्ञानः) प्रकट हुआ है, ऐसा यह अग्नि (मेधाम्) कर्मके विधाता सोमको (श्रिये) सेवाके निमित्त (आशासते) अनुशासन करता है ॥ ५॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । इरिमिठिर्ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता अदितिः। उत अपिच स्या सा पूर्वोक्ता मतिः मन्त्री मन्तव्या स्तोतव्या वा अदितिः ऊत्या रक्षया सार्द्धं दिवा अहनि नः अस्मान् अगमत् आगच्छतु, आगत्य च शन्ताता शन्तातिः शान्तिकरं मयः सुखं सा अदितिः करत् करोतु । स्त्रिधः नाशकान् शत्रूंश्चापगमयतु।स्त्रिधिर्बाधनार्थः । उत स्या उत त्या इति च पाठौ । सा शन्ताता सा शन्ताति इति च ॥ ६ ॥

(उत) और (स्या) वह पूर्वोक्त (मतिः) स्तुति करने योग्य (अदितिः) अदिति (ऊत्या) रक्षासहित (दिवा) दिनमें (नः) हमें (अगमत्)प्राप्त हो और आकर(शंताता)शांति करने वाले (मयः) सुखको (सा) वह अदिति (करत्) करे (स्त्रिधः) शत्रुओंको (अप) दूर करे ६

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
ईडिष्वा हि प्रतीव्या३' यजस्व जातवेदसम् ।
३ १ २ ३ १ २
चरिष्णु धूममगृभीतशोचिषम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । द्वयोर्वश्वमना वैयश्व ऋषिः । छन्दः उष्णिक् देवता अग्निः । प्रतीव्यां शत्रुषु प्रतिगमनशीलम् । अग्नि हि अवधारणे अग्निमेव ईडिष्वा स्तुतिभिः स्तुतं कुरु । किंच चरिष्णुधूमम् सर्वत्र चरणशील—धूम-ज्वालम् अगृभीतशोचिषं रक्षोभिर-प्रधृत-दीप्तिम् जातवेदसं जातप्रज्ञं यद्वा, जातानि भूतानि वेत्तीति जातवेदाः तमग्निं यजस्व हविर्भिः पूजय ॥ ७ ॥

(प्रतीव्य) शत्रुओंमें प्रतिकूलभावसे जानेवाले अग्निको (हि) ही (यजस्व) स्तुति करो (चरिष्णुधूमम्) सर्वत्र विचरता है धुआँ जिसका ऐसे (अगृभीतशोचिषम्) जिसकी दीप्तिको राक्षस नहीं पकड़ सकते ऐसे (जातवेदसम्) सकल प्राणियोंके ज्ञाता अग्निको (यजस्व) हवियोंसे पूजो ॥ ७ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अग्नये ददाश हव्यदातये ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । मर्त्यः मनुष्यः रिपुः शत्रुः चनेति निपातसमुदायोऽप्यर्थे । मायाया चन माययापि । तस्य जनस्य न ईशीत ईश्वरो न भवति । यः जनः हव्यदातये हविषामादानसमर्थाय अग्नये यो यजमानः ददाश हवींषि प्रयच्छति तस्य रिपुर्न ईशीतेत्यर्थः । हव्यदातये हव्यदातिभिः इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(मर्त्यः) मनुष्य (रिपुः) शत्रु (मायया चन) माया करके भी (तस्य) तिसका (न ईशीत) ईश्वर नहीं बनसकता कि (यः) जो (हव्यदातये) हवियोंको ग्रहण करनेमें समर्थ (अग्नये) अग्निके अर्थ (ददाश) हवि देता है ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

अप त्यं वृजिनꣳ रिपुꣳ स्तेनमग्ने दुराध्यम् ।

१ २ २ २ ३ २

दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ ६ ॥

अथ नवमी । भारद्वाज ऋजिश्वा ऋषिः । छन्दः उष्णिक् । देवता वैश्वदेव अग्निः । हे अग्ने ! त्यं तं प्रसिद्धं वृजिनं कुटिलं रिपुं पापकारिणं दुराध्यं दुःखसाध्यमत्तारं दुष्टाभिप्रायम् वा एवम्भूतं स्तेनं हिंसकं दविष्ठं दूरतमम् अपास्य अप क्षिप । असु क्षेपणे इति धातुः । हे सत्पते ! सतां पालयितः अग्ने ! अस्माकं सुगं शोभनेन गन्तव्यं सुखं कृधि कुरु । अत्र सर्वदेवात्मकस्याग्नेः स्तवनाद् वैश्वदेवत्वम् ।९।

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (त्यम्) उस प्रसिद्ध (वृजिनम्) कुटिल (रिपुम्) पापकारी (दुराध्यम्) खोटे अभिप्रायवाले (स्तेनम्) हिंसकको (दविष्ठम्) बहुत दूर (अपास्य) फैंको (सत्पते) हे सज्जनोंके पालक अग्ने ! हमारे (सुगम्) सुगमतासे पाने योग्य सुखको (कृधि) करो ॥ ९ ॥

३क२र ३ १ २ ३ १ २

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥ १० ॥

अथ दशमी । विश्वमना ऋषिः । छंदः उष्णिक । देवता वैश्वदेवः अग्निः । वीर शत्रूणां विनाशयितः ! वा विश्पते विशां पालयितः ! हे अग्ने ! नवस्य इदानीं क्रियमाणत्वान्नूतनं मे मदीयं स्तोमस्य स्तोत्रशस्त्रादिकं श्रुष्टी श्रुत्वा मायिनः मायाविनः रक्षसः कर्मविघ्नकारिणः राक्षसान् तपसा तापकेन तेजसा निदह नितरां भस्मीकुरु । श्रुष्टीति स्नात्व्यादयश्च (७, १, ३९) इति निपातितः, वकार—लोपश्छांदसः तपसा तपुषा इति च पाठौ ॥ १० ॥

(वीर) हे शत्रुओंके विनाशक ! (विश्पते) हे यजमानोंके पालक अग्ने ! (नवस्य) इस समय कियेजानेके कारण नवीन (मे) मेरे

(स्तोमस्य) स्तोत्रादिको (श्रुष्टी) सुनकर (मायिनः) मायावी (रक्षसः) कर्ममें विघ्नकरनेवाले राक्षसोंको (तपसा) ताप देनेवाले तेजसे (निदह) अत्यन्त भस्म करिये ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य एकादशः खण्डः

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र मꣳहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे
३ १ २ ३ १ २
उप स्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

अथ द्वादशखण्डे—सेयं प्रथमा । प्रयोगभार्गव ऋषिः । छन्दः ककुप् देवता अग्निः । हे उपस्तुतासः ! हे उपस्तोतारः ! यूयं मंहिष्ठाय दातृतमाय ऋताव्ने यज्ञवते सत्यवते वा बृहते महते शुक्रशोचिषे दीप्ततेजसे अग्नये प्रगायत स्तोत्रं पठत ॥ १ ॥

(उपस्तुतासः) हे उपस्तोताओं ! तुम (मंहिष्ठाय) परम दाता (ऋताव्ने) यज्ञवाले वा सत्यवाले (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे) दीप्ततेजवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (प्रगायत) स्तोत्र पढो ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाज-
२ ३ २ ३ १ २र
कर्मभिः । यस्य त्वꣳसख्यमाविथ ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । द्वयोः सौभरि ऋषिः छं० ककुप् दे० अग्निः हे अग्ने ! तव ऊतिभिः रक्षाभिः सः यजमानः प्र तरति प्रवर्द्धते । ऊतयो विशेष्यन्ते । सुवीराभिः शोभनवीराः पुत्रादयो यासु ताभिस्तथोक्ताभिः वाजकर्मभिः वाजानामन्नानां बलानां वा कर्म रक्षणं यासु तादृशीभिः हे अग्ने ! त्वं यस्य यजमानस्य सख्यं सखित्वं मित्रत्वम् आविथ प्राप्नोषीत्यर्थः सः प्र तरतीति पर्वत्रान्वयः । तरति वाजकर्मभिः तिरते वाजभर्मभिः, इति च पाठौ । आविथ, आवरे इति च ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वम्) तू (यस्य) जिस यजमानके (सख्यम्) मित्रभावको (आविथ) प्राप्त होता है (सः) वह यजमान (तव) तेरी (सुवीराभिः) श्रेष्ठ पुत्रादिवाली (वाजकर्मभिः) अन्न और बलोंकी रक्षा करनेवाली (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (प्रतरति) बढता है २

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं गूर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।

३ २ ३ १ २
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे स्तोतः ! तं प्रसिद्धमग्निं गृद्धया स्तुहि गृर्धयतिः स्तुतिकर्मा (नि० ३,१४,५,) कीदृशम् स्वर्णरं सर्वस्य नतारं सर्वैः यजमानैः कर्मादौ नतव्यम् वा । अथवा,स्वर्गं प्रति हविषां नतारम् । देवासः दीव्यन्ति स्तुवन्तीति देवा ऋत्विजः देवं दानादिगुणयुक्तम् अरतिं स्वामिनं, यद्वा, अभिप्रासव्यं दधन्विरे धन्वन्ति गच्छन्ति स्तुत्यादिभिः प्राप्नुवन्ति धन्विर्गत्यर्थः प्राप्य च तेनाग्निना देवत्रा देवान् देवमनुष्येत्यादिना द्वितीयार्थे त्रा प्रत्ययः । हव्य चरुपुरोडाशादिलक्षणं हविः आ ऊहिषे अभि प्रापय वहंर्लिटि यजादित्वात् सम्प्रसारणम् ॥ ३ ॥

हे स्तोतः ! (स्वर्णरम्) स्वर्गमें देवताओंको हवि पहुँचाने वाले (तम्) तिस अग्निको (गृद्धया स्तुति कर (देवासः) ऋत्विज (देवम्) दानादि गुणयुक्त (अरतिम्) जिस इष्टदेवकी (दधन्विरे) स्तुति आदिसे उपासना करते हैं और उस अग्निके द्वारा (देवत्रा) देवताओंको (हव्यम्) हवि (आ ऊहिषे) पहुँचा देते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २२ २ २ ३ २ ३२
मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
२ ३ १ २ ३ २
यः सुहोता स्वध्वरः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । प्रयोगोभार्गव ऋषिः । सोभरिः काण्वो वा । छ० ककुप् । दे० अग्निः हे ऋत्विक्-संघ ! नः अस्मत्-सम्बन्धि-यज्ञे अतिथिम् अतिथिवत् प्रियम् अग्निम् मा हृणीथाः मा हर । कमग्निम् ? इत्यत आह यः अग्निः सुहोता सुष्ठु देवानामाह्वाता स्वध्वरः शोभनयज्ञो भवति एषः अग्निः पुरुप्रशस्तः बहुभिः स्तुतः वसुः वासकश्च भवति तमिति पूर्वत्रान्वयः । मा हृणीथा अतिथिम् इति छन्दोगाः, मा हृणीतामतिथिः इति बह्वृचाः ॥ ४ ॥

हे ऋत्विजोंके समूह (नः) हमारे यज्ञमेंसे (अतिथिम्) अतिथिकी समान प्यारे अग्निको (मा हृणीथाः) मत हरण करो (यः) जो (अग्निः) अग्नि (सुहोता) उत्तमतासे देवताओंका आह्वान करने वाला (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञवाला होता है (एषः) वह (पुरुप्रशस्तः) अनेकोंसे स्तुति किया हुआ (वसुः) वसाने वाला होता है ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो

२ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी तिसृणां सोभरिर्ऋषिः । आहुतः हविर्भिस्तर्पितोऽग्निः नः अस्माकं भद्रः कल्याणो भवतु । हे सुभग ! शोभन-धनाग्ने ! भद्रा कल्याणी रातिः दानं च अस्माकं भवतु । भद्रःकल्याणः अध्वरः यागश्च भवतु।उत अपि च भद्राः कल्याण्यः प्रशस्तयः प्रशंसाः स्तुतयश्च भवंतु॥५

(आहुतः) हवियोंसे तृप्त किया हुआ (अग्निः)अग्नि (नः) हमारा (भद्रः) कल्याणरूप हो (सुभग) हे सुन्दर धन वाले ! हमें (भद्रा) कल्याणरूप (रातिः) दान प्राप्त हो (भद्राः) कल्याणकारी (अध्वरः)यज्ञ प्राप्त हो (उत) और (भद्राः) कल्याणरूप (प्रशस्तयः) स्तुतियें प्राप्त हों ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे अग्ने ! यजिष्ठं यष्टृतमं त्वा त्वां ववृमहे वृणीमहे संभजामहे । कीदृशं त्वां ? देवत्रा देवेषु मध्ये देवम् अतिशयेन दानादिगुणम् होतारं देवानामाह्वातारम् । अमर्त्यम् अविनाशिनम् । अस्य यज्ञस्य यागस्य सुक्रतुम् सुष्ठु कर्तारम् ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! (यजिष्ठम्) श्रेष्ठ यष्टा (देवत्रा) देवताओंमें (देवम्) अधिकतासे दान करनेवाले (होतारम्) देवताओंको बुलाने वाले (अमर्त्यम्) अविनाशी (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञके (सुक्रतुम्) श्रेष्ठ कर्त्ता (त्वा) तुझे (ववृमहे) भजते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्
३ १ २र ३क २र
मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । हे अग्ने ! तत्, द्युम्नम् अन्नं यशो वा आभर अस्मभ्यमाहर । यत् यदा आसदने यज्ञगृहे वर्त्तमानं कञ्चित् कमपि अत्रिणम् अत्तारं राक्षसादिकं सासाहा अत्यर्थमभिभव । तथा दूढ्यं दुर्धियं पापबुद्धिं शत्रुं जनस्य मन्युं क्रोधं च अभिभव; तदेति पूर्वत्रान्वयः । दूढ्या दूढ्यम् इति च पाठौ ॥ ७ ॥

(अग्न) हे अग्निदेव ! (तत्) उस (द्युम्नम्)यशको (आभर) हमें दो कि (यत्) जब (आसदन्) यज्ञमण्डपमें वर्त्तमान (कच्चित्) किसी भी (अत्रिणम) भक्षण करनेवाले राक्षसादिको (सासाह) अत्यन्त तिरस्कारयुक्त करो तथा (दूढ्यम्)पापबुद्धि शत्रुको(जनस्य) जनके (मन्युम्) क्रोधको भी तिरस्कार युक्त करो ॥ ७ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे।

२उ ३ २उ ३ १ २

विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । विश्वमना ऋषिः । छ०उष्णिक् दे०अग्निः । विश्पतिः विशां पतिः पालयिता शितः हविर्भिस्तीक्ष्णीकृतः सोऽग्निः सुप्रीतः सुष्ठु प्रीतः सन् मनुषः मनुष्यस्य विशे विश निवेशने (तु० प०) गृहे यद् वै यदा खलु वर्त्तते तदानीम् अग्निः विश्वा इत विश्वान्येव तस्य बाधकानि रक्षांसि प्रतिषेधति हिनस्ति । षिधु । गत्यां औवादिकः । उ प्रसिद्धौ । विशे विशि इति च पाठौ ॥ ८ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमार्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिक-मार्ग-प्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दोव्याख्याने आग्नेय-पर्वणि प्रथमोऽध्यायः ।

इति समाप्तं आग्नेयं पर्वं आग्नेयं काण्डं वा ।

(विश्पतिः) यजमानोंका पालन करनेवाला (शितः) हवियोंसे तीक्ष्ण किया हुआ (अग्निः) अग्नि (सुप्रीतः) भलेप्रकार प्रसन्न हुआ (मनुषः) मनुष्यके (विशे) घर जब होता है तब (अग्निः) अग्नि (विश्वा इत्) उसको पीडा देनेवाले सब ही (रक्षांसि) राक्षसोंको (प्रतिषेधति) नष्ट कर देता है (उ) वह बात प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः.

आग्नेयकाण्ड समाप्त.

—०—

॥ श्रीः ॥

अथ द्वितीयाध्याय आरभ्यते ।

अथ ऐन्द्रं पर्व

अस्मिन्नध्याये इन्द्रः स्तूयते

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

अथ द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमार्धे तृतीया दशतिः ।

१ २ ३ १ २र १ २ ३ १ २
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३ १ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

अथ प्रथमे खण्डे—सेयं प्रथमा । शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । गायत्री छन्दः । दे० इन्द्रः । हे स्तोतारः वः यूयम् सुते अभिषुते सोमे सति पुरुहूताय बहुभिर्यजमानैराहुताय सत्वन शत्रूणां सादयित्रेयद्वा धनानां सनित्रे दात्रे इन्द्राय तत् स्तोत्रम् सचा सह संहता भूत्वा गाय गायत यत् स्तोत्रं शाकिने शक्तिमते इन्द्राय शं सुखकरं भवति । गवे न यथा गवे यवसं सुखकरं तद्वदित्यर्थः ॥ १ ॥

हे स्तोताओं ! (वः) तुम (सुते)सोमके अभिषुत होनेपर (पुरुहूताय) बहुतसे यजमानोंसे आह्वान किये हुए (सत्वने) शत्रुओंका घटानेवाले अथवा धनोंके देनेवाले इन्द्रके अर्थ (तत्) स्तोत्रको (सचा) इकट्ठे होकर (गाय) गान करो (यत्)जो स्तोत्र(शाकिन) शक्तिमान् इन्द्रको (गवे न) गौके भुसकी समान (शम्) सुखदायक होता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
यस्ते नूनꣳशतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
१ २ ३ १ २र
तेन नूनं मदे मदेः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया श्रुतकक्ष ऋषिः । अत्र सोमः स्तूयते—हे शतक्रतो ! शतविधप्रज्ञान ! हे इन्द्र ! द्युम्नितमः यशस्वितमः यः मदः माद्यन्त्यनेन इति मदः सोमः यः सोमः नून पुरा ते त्वदर्थम् अस्माभिरभिषुतोऽस्ति तेन अस्माभिर्दीयमानेन सोमेन नूनम् इदानीम् मदे तत्पानेन तव मदे सञ्जाते सति अस्मानपि मदेः धनादिदानेन त्व मादय । मदी हर्षे अन्तर्भावितण्यर्थः, छन्दसि बहुलम् इति शप् ॥ २ ॥

(शतक्रतो) सैकडों प्रकारका ज्ञान रखनवाले हे इन्द्र ! (द्युम्नितमः) परमयशस्वी (यः) जो (मदः) सोम (नूनम्) निश्चय पहिले ही (ते) तुम्हारे लिये हमने अभिषुत किया है (तेन) उस हमारे दिये हुए सोमसे (नूनम्) इस समय (मदे) उसके पीनेसे आपको प्रसन्नता होनेपर हमें भी (मदेः) धन आदि देकर आप हर्षित कीजिये॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।

३ १ २र ३ १ २

उभा कर्णा हिरण्यया ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ऋषिः हर्य्यतः प्रगाथः । हे गावः घर्मदुघाः । यूयम् अवटे अवटं महावीरं प्रति उप वद उपावत वर्णव्यत्ययः (३, ४, ९८) उपागच्छत । यज्ञस्य घर्मयागस्य साधनभूते रप्सुदा रप्सुदे आ रिप्सोः फलदे रिप्सुरिश्वनोर्दातव्ये वा,यद्वा रपणं शब्दनं रप् मन्त्रः तेन सुदातव्ये अथवा षुद क्षरणे (भ्वा० आ०) रपा मन्त्रेण क्षारणीये दोहनीये ईदृशे गवाजयोः पयसी मही महती बहुले अपेक्षिते अत उपावत गोशब्दो अजाया अप्युपलक्षकः, अजापयसोऽपि महावीरे आसेचनीयत्वात् । अपि च अस्य महावीरस्य उभा उभौ कर्णा कर्णस्थानीयौ द्वौ रुक्मौ हिरण्यया हिरण्मयौ सुवर्णरजतमयावित्यर्थः।उपवदावटे इति छन्दोगाः उपावतावतम् इति बह्वृचाः ॥ ३ ॥

(गावः) हे गौओं ! तुम (अवटे) महावीरके प्रति (उपवद) प्राप्त हूजिये (यज्ञस्य) घर्मयाग के साधनभूत (रप्सुदा) मंत्रके द्वारा दुहन योग्य गौ और बकरियोंके दूध (मही) बहुतसे आवश्यक हैं, और इस महावीरके (उभा) कर्णस्थानीय दो रुक्म (हिरण्यया) सुवर्ण और रजतके हैं ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।

२ ३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । योः श्रुतकक्षन्नाम ऋषिः । श्रुतकक्ष ऋषिरात्मानमेव सम्बोधयति,हे श्रुतकक्ष आत्मन्!अरम् अलं गायत, वचनव्यत्ययः । (३, १, ८५) गाय गीतिं कुरु । किमर्थमिन्द्रोद्देशेन स्तुतिस्तत्राह, अश्वाय इन्द्रेण दीयमानायाश्वाय तदर्थम्, अरम् अलं गाय इन्द्रविषयं स्तोत्रं कुरु, तथा गवे अलं गाय, इन्द्रस्य इन्द्रकर्तृकाय धाम्न गृहाय तदर्थञ्च अरम् पर्याप्तं स्तुहि गृहादिकमिन्द्रः प्रयच्छति, तस्मै गायेति, यद्वा इन्द्रस्येति कर्मणि षष्ठी, गवादिलाभार्थमिन्द्रं स्तुहि । श्रुतकक्षा, श्रुतकक्षः इति च पाठौ ॥ ४ ॥

यज्ञकर्त्ता अपनेसे कहे कि-(श्रुतकक्ष)हे वेदप्रिय आत्मन्!(अश्वाय) इन्द्रके दिये हुए अश्वके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (गवे) गौओंके निमित्त(अरम्) पूर्णरूपसे (इन्द्रस्य) इन्द्रसंबंधी (धाम्न) गृहकी प्राप्तिके निमित्त (अरम्) पूर्णरूपसे (गायत)वैदिक स्तुतिका गान कर४

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
तमिन्द्रं वाजयामसि मह वृत्राय हन्तवे ।
१ २र ३ १ २
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । यजमाना आहुः, तम् पूर्वोक्तलक्षणम् इन्द्रम् वाजयामसि सोमेन स्तुतिभिर्वाजयामः वाजवन्तं कुर्मः, किमर्थम् ? महे महान्तम् वृत्राय अपामावरकं वृत्रासुरं हन्तवे हन्तुम्, सामपानेन मत्तः स्तुतिभिर्वा स्तुतः सन्, वृत्रहत्यायां च, वाजयामसि वाजवन्तं करोतीत्यर्थे तत्करोतीति णिच्, णाविष्ठवत् इति णेरिष्ठवद्भावात् टेः (६, ४, १५५) इति टिलोपः, विन्मतोर्लुक् (५, ३, ६५) इति वचनान्मतुपो लुक् वृषा धनानां सेक्ता दाता सः इन्द्रः वृषभः अस्माकं स्तोतॄणां सोमस्य दातॄणां धनादिसेचको दाता भुवद् भवतु५

यजमान कहते हैं, कि-(तम्)उस (महे) बडे (वृत्राय हन्तवे) जलोंको रोकनेवाले वृत्रासुरके नाशक (इन्द्रम्) इन्द्रको (वाजयामसि)बलवान् करते हैं (वृषा) धनोंका दाता(सः)वह इन्द्र(वृषभः) हमैं धन देनेवाला (भुवत्) होय ॥ ५ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजस ।

१ २र३ १ २र

त्वꣳ सन् वृषन् वृषेदसि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः। हे इन्द्र ! त्वम् सहसः परेषामभिभावुकाद् बलात् अधि जातः असि, अधिः पंचम्यर्थानुवादकः वृत्रादिवधहेतुभताद् बलाद्धेतोस्त्वं प्रख्यातो भवसि इत्यर्थः । अपि च ओजसः आत्रोनाम बलहेतुः हृदयगतं धैर्यं, तस्मादपि त्वं जातोऽसि। हे वृषन् वर्षितः सन् श्रेष्ठः त्वम् वृषा इत् असि कामानां वर्षितैव भवसि ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तू (सहसः) दूसरोंका तिरस्कार करनेवाले(बलात) बलसे (ओजसः) हृदयमें के धैर्यसे (अधिजातः) प्रसिद्ध हुआ है (वृषन्) हे वरदानोंकी वर्षा करनेवाले (सन्) श्रेष्ठ (त्वम्) तू (वृषा-इत्-असि) इच्छित फलोंकी वर्षा करनेवाला है ॥६॥

३ १ २र ३ २उ ३ १ २

यज्ञ इन्द्रमवर्द्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत् ।

३ १ २ ३ २ ३ २

चक्राण ओपशं दिवि ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ऋषी वृत्तस्य । यज्ञः यजमानैरनुष्ठीयमानो यागः इन्द्रं देवम् अवर्द्धयत् श्रयते हि, इन्द्र इदं हविरजुषतावीवृधत् महो ज्यायाक्रतः इति स इन्द्रः यत् यस्मात् भूमिम् पृथिवी (नि० १, १, १९) व्यवर्त्तयत् वृष्ट्यादिप्रदानेन विशेषेण वर्त्तमानामकरोत् । किं कुर्वन् ? दिवि अन्तरिक्ष मेघम् ओपशम् उपेत्य शयानं चक्राणः कुर्वन् यद्वा आत्मनि समवेतो वीर्यविशेषः ओपशः तमन्तरिक्षे कुर्वन् ॥ ७ ॥

(यज्ञः) यजमानोंके कियेहुए यज्ञने(इन्द्रम्)इन्द्रदेवताको (अवर्द्धयत्) बढाया, (यत्) क्योंकि(दिवि)अन्तरिक्षमें मेघको (ओपशम्) फैला हुआ (चक्राणः) करते हुए उस इन्द्रने (भूमिम्) पृथिवीको (व्यवर्त्तयत्) वर्षा आदिक द्वारा बढाया ॥ ७ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

३ २ ३ १ २

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। हे इन्द्र! यथा त्वम् एक इत् एक एव केवलः वस्वः वसुनः धनस्य ईशिषे, एवम् अहम् अपि यद् यदि ईशीय ऐश्वर्ययुक्तः स्याम्। तदानीं मे मम स्तोता गोसखा स्यात् गोभिः सहितो भवेत् ईश्वरस्य तव स्तोता कुतो हेतोर्गोसहितो न भवेत्? अपि तु भवेदेवेत्यभिप्रायः॥ ८॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (यथा) जैसे (त्वम्) तू (एक इत्) अकेला ही (वस्वः) धनका स्वामी है, ऐसे ही (अहम्) मैं (यत्) जो (ईशीय) ऐश्वर्ययुक्त होऊँ तो (मे) मेरा (स्तोता) स्तोता (गोसखा) गौओं सहित (स्यात्) हो॥ ८॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय।
१ २ ३ २ ३ १ २
सोमं वीराय शूराय॥ ९॥

अथ नवमी मेधातिथिराङ्गिरस ऋषिः। हे सोतारः अभिषोतारोऽध्वर्यवः! मद्याय मादयितव्याय, वीराय विक्रान्ताय, शूराय शौर्यवते इन्द्राय पन्यम् पन्यम् इत् सर्वत्र स्तुत्यमेव सोमम् आ धावत अभिगमयत प्रयच्छतेत्यर्थः॥ ९॥

(सोतारः) हे सोमका रस निकालनेवाले अध्वर्युओं! (मद्याय) प्रसन्न करनेयोग्य (वीराय) पराक्रमी (शूराय) शूर इन्द्रके अर्थ (पन्यं पन्य इत्) सर्वत्र प्रशंसाके योग्य (सोमम्) सोमको (आ-धावत) अर्पण करो॥ ९॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन् ररिमा ते॥ १०॥

अथ दशमी। काण्वः प्रियमेध ऋषिः। हे वसो वासयितः! इन्द्र! इदम् पुरो वर्त्तमानं, सुतम् अभिषुतम्, अन्धः अन्नम् सोमलक्षणम्, पिब त्वया उदरम् त्वदीयं जठरं सु पूर्णम् अतिशयेन सम्पूर्णम् भवति तथेत्यर्थः। हे अनाभयिन्! आ समन्तात् बिभेत्याभयी। बिभेतेरौणादिक इनिः, न आभयी अनाभयी तादृश! हे इन्द्र!, ते तुभ्यं त्वदर्थं, ररिमा उक्तगुणं सोमं दद्मः। रा दाने, छान्दसो लिट्॥ १०॥

(वसो) हे अन्तर्यामिन्! इन्द्र! (इदम्) इस वर्त्तमान (सुतम्)

अभिषव किये हुए (अन्धः) सोमरूप अन्नको (पिबा) पियो, जिस से कि-(उदरम्) तुम्हारा पेट (सुपूर्णम्) सम्यक् पूर्ण हो (अनाभयिन्) हे सब ओरसे निर्भय इन्द्र ! (ते) तुम्हारे अर्थ (ररिमा) वह सोम अर्पण करते हैं ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्य्यापसम् ।

१ २

अस्तारमेषि सूर्य्य ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे-सेयं प्रथमाद्व्योः सूतकक्षः श्रुतकक्षो वा ऋषिः। अस्मिन् द्व्यृचे सूर्य्यरूपेणेन्द्रस्य स्तुतिः क्रियते—असौ वा आदित्य इन्द्रः इति हारिद्रविकम् । हे सूर्य्य ! द्वादशसु भानुषु इन्द्रोऽपि सूर्य्यात्मना पठितः तस्मात् सूर्य्यात्मक ! सुवीर्य ! हे इन्द्र !श्रुतामघम् सर्वदा देयत्वेन विख्यातधनम्, अतएव वृषभम् याचमानानां धनस्य वर्षितारं, नर्य्यापसम् नरहितं नर्य्यम् नरहितकर्माणम् अस्तारं दानशौंडम् औदार्यवन्तम् एतादृशानुभावम् उदेषि अभित उदेषि । इदम् अवधारणे, त्वमेव तस्य यज्ञे सूर्य्यात्मना उद्गतोऽसि । घ इति प्रसिद्धौ ॥ १ ॥

(सूर्य) हे सूर्यरूप ! श्रेष्ठ वीर इन्द्र (श्रुतामघम्) जिसका धन सर्वदा देने योग्य प्रसिद्ध है, इसीसे (वृषभम्) याचकोंके निमित्त धनकी वर्षा करनेवाले (नर्यापसम्) मनुष्योंका हितकारी कर्म करने वाले (अस्तारम्) उदारस्वभाव (इदम्) ऐसे अपने प्रभावको तुम (उदेषि) चारों ओरसे प्रकाशित करते हो (घ) यह प्रसिद्ध है ॥१॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य्य ।

२ ३ १ २ ३ १ २

सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अत्र शौनकः,—यदद्यकच्चेत्युदिते रवौ स्तुत्वा पुरन्दरम् । गृणन्नपाहते रिपं वश्यं वा कुरुते जगत् ॥" इति ॥ हे वृत्रहन् वृत्रस्य अपामावरकस्य मेघस्य हन्तः ! हे सूर्य सूर्य्यात्मकेन्द्र अद्य अस्मिन् दिने यत् कच्च यत् किंचित् पदार्थजातम् अभि अभिमुखीकृत्य उद्गाः इण् गतौ उत्पूर्वः तस्य लुङि गादेशः उदयं प्राप्तवानसि तत् सर्वं पदार्थजातं ते तव वशे वशवर्त्ति स्वायत्तमस्ति ॥ २ ॥

(वृत्रहन्) हे जलोंको रोकनवाले मेघके नाशक ! (सूर्य) हे सूर्य-रूप इन्द्र (अद्य) आजके दिन जो कुछ पदार्थ समूह (अभि) उन्नत दशाम (उद्गाः) प्रकाशित किया है (इन्द्र) हे इन्द्र ! (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) तेरे (वशे) वशमें है ॥ २ ॥

१ २र ३२३ १२ ३२३ १२
य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।
२३ २ ३ २३ १२
इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । भरद्वाज ऋषिः । यः इन्द्रः तुर्वशं यदुं च एततसंज्ञौ राजानौ शत्रुभिः दूरदेशे प्रक्षिप्तौ सुनीती सुनीत्या शोभनन नयनन परावतः तस्माद् दूरदेशात् आनयत् आनीतवान् युवा तरुणः सः इन्द्रः नः अस्माकं सखा भवतु ॥ ३ ॥

(यः) जो इन्द्र (तुर्वशम्) तुर्वशको (यदुम) यदुको शत्रुओंके द्वारा दूर फेंके जाने पर (सुनीती) श्रेष्ठ नीतिके द्वारा (परावत) तिस दूर देशसे (आनयत्) लौटालाया (युवा) तरुण (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (सखा) मित्र हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ २३ १२ ३ १ २र
मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमत ।
२ ३१ २ ३ २
त्वा युजा वनेम तत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे इन्द्र ! आदिशः आदेष्टा समन्तादायुधान्यतिसृजन् सूरः सृ गतौ (भ्वा० प०) सर्वत्र सरणशीलः राक्षसः अक्तुषु रात्रिषु नः अस्माकं अभ्यायमत् आ आभिमुख्येन मा नियन्ताऽगन्ता भवतु । यद्यागन्ता चेत् तदा तत् रक्षः त्वायुजा त्वत् सहायेन वयं वनम हन्याम श्वथ-श्नथ-हिंसार्थाः, वन चेत्यत्र (भ्वा० प०) पठितत्वाद्धिंसाथः । आयमत् आयमन् इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (आदिशः) चारों ओरसे शस्त्र बरसाने वाला (सूरः) सवत्र विचरनवाला राक्षस (अक्तुषु) रात्रियोंमे (नः) हमारे (मा अभ्यागमयत्) अभिमुख होकर न आसके । और आजाय तो (तत्) उस राक्षसको हम (त्वायुजा) तेरी सहायता से (वनम) नष्ट करें ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २

एन्द्र सानसिꣳ रयिꣳ सजित्वानꣳसदासहम् ।

१ २ ३ १ २

वर्षिष्ठमूतये भरा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । अस्याः परस्याश्च मधुच्छन्दा ऋषिः । हे इंद्र ! ऊतये अस्मद्रक्षार्थम् रयिम् धनम् आ भरा आहर, कीदृशं रयिम् ? सानसिम् सम्भजनीयम सजित्वानम् समानशत्रुजयशीलम् धनेन हि शूरान् भृत्यान् सम्पाद्य शत्रवो जीयन्ते सदासहम् सर्वदा शत्रूणामभिभवन-हेतुम् वर्षिष्ठम् अतिशयेन वृद्धम् प्रभूतमित्यर्थः ॥ ५ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (ऊतये) हमारी रक्षाके लिए (सानसिम्) सम्यक् प्रकार भोगने योग्य (सजित्वानम्) समानशत्रुओंपर विजय दिलाने वाले (सदासहम्) सदा शत्रुओंका तिरस्कार करनेके साधन (वर्षिष्ठम्) बहुतसे (रयिम्) धनको (आभर) दीजिये ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वयम् अनुष्ठातारः महाधन प्रभूतधननिमित्तम् इन्द्रम् हवामहे आह्वयामः, अर्भे अभके स्वल्पेपि धन निमित्तम् ते सति इंद्रं हवामहे । कीदृशम् इंद्रम् ? युजं सहकारिणं समाहितं वा । वृत्रेषु शत्रुषु धनलाभविरोधिषु प्राप्तेषु तन्निवारणाय वज्रिणं वज्रोपेतम् । महाधनशब्दो यद्यपि संग्रामवाची तथापि महद्धनमत्र विवक्षितम् ॥६॥

(वयम्) हम (अर्भ) थोड़ासा धन होने पर (इंद्रम्) इन्द्रको (महाधने) बहुतसे धनके निमित्त (युजम्) सहायक (वृत्रेषु) धनलाभमें विघ्न डालने वालोंको निवारण करनेके लिये (वज्रिणम्) वज्रधारी (इन्द्रम्) इन्द्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।

१ २ ३ १ २

तत्राददिष्ट पौꣳस्यम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रः कद्रुवः कद्रुनामकस्य ऋषेः

सम्बन्धिनं सुतम् अभिषुतं सोमम् अपिबत् पीतवान् । सहस्त्रवा सहस्त्रबाह्वाख्यं शत्रुम् अहन्निति शेषः । तत्र तस्मिन्नवसरे पौंस्यम् इन्द्रस्य वीर्य्यम् आ दद्ष्टि आ दीप्यत । तत्रादद्ष्टि इति छन्दोगाः, अत्राददिष्ट इति बहृचाः ॥ ७ ॥

(इंद्रः) इंद्र (कद्रुधः) कद्रके (सुतम) निकाले हुए सोमरसको (अपिबत्) पीता हुआ (सहस्त्रबाह्वम्) सहस्त्र हुको [अहनंत्] नष्ट करता हुआ (तत्र) उस समय (पौंस्यम्) इंद्रकी वीरता (आदद्ष्टि) प्रकाशित हुई ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २र

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् ।

३ २ १ २

विद्धी त्वाऽस्य नो वसो ॥ ८ ॥

103395

अथ अष्टमो । वसिष्ठ ऋषिः हे वृषन् ! कामानां वर्षितः ! इंद्र ! त्वायवः त्वत्कामाः वयं वासिष्ठाः त्वाम् अभिप्रणोनुमः प्रकर्षेण स्तुमः । हे वसो ! वासयितः इंद्र ! अस्य इदम् नः अस्मदीयं स्तोत्रं विद्धी अवधारय ॥ ८ ॥

(वृषन्) हे मनोरथोंकी वर्षा करने वाले (इंद्र) इंद्र (त्वायवः) तेरी कामना करनेवाले हम तुझको (अभि प्र नोनुमः) अभिमुख होकर बहुत २ प्रणाम करते हैं (वसो) हे व्यापक इंद्र (अस्य) इस (नः) हमारे स्तोत्रकी (विद्धी) समझ लीजिये ॥ ८ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ९ ॥

अथ नवमी । द्वयोस्त्रिशोक ऋषिः । ये ऋषयः आ घा आभिमुख्येन खलु अग्निम् इन्धते दीपयन्ति येषां च युवा नित्यतरुणः इन्द्रः सखा भवति ते आनुषक् आनुपूर्व्येण बर्हिः स्तृणन्ति ॥ ९ ॥

(ये) जो (आ घा) निश्चय अभिमुख होकर (अग्निम्) अग्नि को (इन्धते) दीप्त करते हैं (येषाम्) जिनका (युवा) सदा तरुण (इन्द्रः) इन्द्र (सखा) मित्र होता है वह (आनुषक्)क्रमसे (बर्हि) कुशाओंको (स्तृणन्ति) आच्छादन करते हैं ॥ ९ ॥

१ २३ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।

१ २ २ १ २र

वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १० ॥

अथ दशमी। हे इन्द्र! विश्वाः सर्वाः द्विषः द्वेष्ट्रीः शत्रुसेनाः अपभिन्धि विदारय बाधः हिंसित्रीः मृधः संग्रामान् स्पृधः, मधः, इति सग्रामनामसु पठितत्वात् परिजही हिंस्याः। ततः तासां स्पार्ह स्पृहणीयं तत् प्रसिद्धं वसु आ भर अस्मभ्यम् आ हर ॥ १० ॥

हे इन्द्र (विश्वाः) सम्पूर्ण (द्विषः) द्वेष करनेवाली शत्रुसेनाओं को (अप भिन्धि) विदीर्ण करो (बाधः) नाश करने वाले (मृधः) संग्रामोंको (परिजहि) नष्ट करो, तदनन्तर उनके (स्पार्हम्) स्पृहा करने योग्य (तत्) उस प्रसिद्ध (वसु) धनको (आभर) हमें लाकर दो ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्।

१ २र ३ १ २

नि यामं चित्रमृञ्जते ॥ १ ॥

अथ तृतीयखण्डे—सेयं प्रथमा। कण्वो घौर ऋषिः। एषां मरुतां हस्तेपु स्थिताः कशाः स्वस्ववाहनताडनहेतवः यद्वदान् यद् वदन्ति ध्वान कुर्वन्ति, तं ध्वनिम् इहेव अत्रैव-स्थित्वा शृण्वे शृणोमि। स ध्वनिविशेषः यामम् संग्रामे चित्रं विविधं शौर्यं न्यृञ्जते नितरामलं करोति ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा (६, ४, २४) इति यास्कः ॥ १ ॥

(एषाम्) इन मरुतोंके (हस्तेषु) हाथोंमें स्थित (कशाः) अपने२ वाहनोंको ताडन करनेके कोड़े (यद्वदान्) जो ध्वनि करते हैं उस ध्वनिको (इहेव) यहाँ ही स्थित होकर (शृण्वे) सुनता हूँ, वह ध्वनि (यामम्) सग्राम में (चित्रम्) नानाप्रकारकी शूरताको (न्यृञ्जते) अत्यन्त शोभित करता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः।

३ १ २ ३ १ २ ३ २
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया द्वयोस्त्रिशोक ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सोमिनः अभिषुतसोमाः सखायः इमे उ खल्वस्मदीया जनाः पुष्टावंतः सम्भृतपाशाः यथा पशुं पशुमिव वि चक्षते वि पश्यंति ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (सोमिनः) सोमरस लियेहुए(सखायः,इमे,उ) निःसंदेह यह हमारे पुरुष (पुष्टावंतः) पाशधारी (पशुं यथा) जैसे पशुकी ओरको देखा करते हैं तैसे ही एकाग्रचित्त होकर (त्वा) तुम्हें (विचक्षते) विशेषरूपसे देखरहे हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
३ १ २ ३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्सः काण्व ऋषिः । विशः निविशन्त्यः विश्वाः सर्वाः कृष्टयः प्रजाः अस्य इन्द्रस्य मन्यवे क्रोधाय यद्वा मन्युर्मननसाधनं स्तोत्रं तदर्थं सं नमंतः सम्यक् स्वत एव नमन्ति प्रह्वी भवन्ति । तत्र दृष्टांतः समुद्राय इव यथा समुद्रम् अब्धिं प्रति सिंधवः स्पन्दनशीला नद्यः स्वयमेव नमन्ति तद्वत् ॥ ३ ॥

(विशः) बैठती हुई (विश्वाः) सब (कृष्टयः) प्रजाएँ (अस्य) इस इन्द्रके (मन्यवे) क्रोधके निमित्त वा मननके साधन स्तोत्रके निमित्त (समुद्राय; सिंधवः, इव) जैसे समुद्रकी ओरको बहनेवाली नदियें स्वयं ही झुकती चलीजाती हैं,तैसे ही (संनमन्त) भलेप्रकारसे आप ही नमती चलीजाती हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । कुसीदी काण्व ऋषिः । हे देवाः ! देवानां स्वतेजसा सर्वतो दीप्यमानानाम् इत् एवार्थे युष्माकमेव महत् व्याप्तं मंहनीयं वा अवः पालनं यद् विद्यते तत् वृष्णां कामानां वर्षितॄणां युष्माकं स्वभूतं तद्रक्षणं यजमानाः वयम् आ वृणीमहे समन्तात् सम्भजामहे किमर्थम्? अस्मभ्यम् ऊतये पूर्वमस्मभ्यमस्मदर्थमिति साधारण्येनोक्तं तद् विशिनष्टि ऊतये इति अस्माकं पालनायेति ॥ ४ ॥

हे देवताओं ! (देवानाम्) सब ओरसे अपने तेजके द्वारा दीप्यमान आपका (इत्) ही (महत्) पजनीय (अवः) पालन है(वृष्णाम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले आपके निजधनरूप (तत्) उस पालन को (वयम्) हम यजमान (अस्मभ्यम् ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (आवृणीमहे) चारों ओरसे प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमानाꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मेधातिथिः ऋषिः । हे ब्रह्मणस्पते ! एतन्नामक देव त्वं सोमानाम् अभिषवस्य कर्त्तारं माम् अनुष्ठातारं स्वरणं देवेषु प्रकाशनवन्तम् कृणुहि कुरु । तत्र दृष्टांतः कक्षीवन्तम् एतन्नामकमृषिम् इवशब्दोऽत्राध्याहार्य्यः कक्षीवान् यथा देवेषु प्रसिद्धः तद्वदित्यर्थः यः कक्षीवान् औशिजः उशिजः पुत्रः तमिवेति पूर्वत्र योजना कक्षीवतोऽनुष्ठातृषु मुनिषु प्रसिद्धिस्तैत्तिरीयैराम्नायते एवं वै पर आट्णारः कक्षीवानौशिजो वीतहव्यः श्रायसस्त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः प्रजाकामा अचिन्वत इति । ऋगन्तरेऽप्यृषित्वकथनेन अनुष्ठातृत्वप्रसिद्धिः सूच्यते अहं कक्षीवान्नृषिरस्मि विप्रः इति । तस्मादस्यानुष्ठातारंप्रति दृष्टांतत्वं युक्तम् । मन्त्रोऽप्येवं यास्केनैव व्याख्यातः सोमानां सोतारं प्रकाशनवंतं कुरु ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तमिव य औशिजः कक्षीवान् कक्षावानौशिजः उशिजः पुत्रः उशिक्वष्टेः कान्तिकर्मणोऽपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात् तं सोमानं सोतारं मां प्रकाशनवंतं कुरु ब्रह्मणस्पते (६,३,१२) इति अस्मिन् मन्त्रे सोममिति पदेन ब्राह्मण इति पदेन च सूचितं तात्पर्यम् तैत्तिरीया आमनन्ति सोमं स्वरणमित्याह सोमपीथमेवावरुन्धे कृणुहि ब्रह्मणस्पत इत्याह ब्रह्मवर्चसमेवावरुन्धे इति ॥ ५ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम (सोमानाम्) सोमका रस निकालने वाले मुझ अनुष्ठाताको (कक्षीवन्तम्) जैसे कि कक्षीवान् देवताओंमें प्रधान है (यः) जो कक्षीवान् (औशिजः) उशिज का पुत्र है उसकी समान ही मुझे (स्वरणम्)देवताओंमें प्रकाशवाला (कृणुहि) करिये ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । श्रुतकक्ष ऋषिः । अयं परोक्षकृतः । वृत्रहा वृत्रस्य हंता भूर्यासुतिः बहुषु देशेषु इन्द्रार्थं सोमा आसूयन्ते अभिषूयन्त इति तादृशः,यद्वा बहूनि सोमादिहवींषि इन्द्रार्थम.सूयते हूयंत इति तादृशः । बोधन्मनाः बुध अवगमन (भ्वा० प०) औणादिकोऽतृप्रत्ययः । यस्य मनः स्तोतॄणामभिमतं बुध्यते जानातीति तथोक्तः । इद् अवधारणे नः अस्माकं बोधन्मना एव अस्तु सर्वदास्मदभीप्सितानि जानात्वेवेत्यर्थः । यद् वा एतादृश इद्रः नोऽस्माकं सम्बन्धिनि यज्ञे भवत्विति।कि ततः? शक्रः संग्रामे शत्रुहननसमर्थः इन्द्रः आशिषम् अस्मदीयां स्तुतिम् आशासनं वा शृणोतु । बोधन्मना बोधिन्मना इति पाठौ ॥ ६ ॥

(वृत्रहा) वृत्रासुरका नाशक (भूर्यासुतिः)जिसके निमित्त बहुत से देशोंमें सोमका रस निकाला जाता है ऐसा (नः) हमारे (बोधन्मनाः) सर्वदा मनोरथोंको जाननेवाला (इत) ही (अस्तु) होय (शक्रः) संग्राममें शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ वह इन्द्र (आशिषम्) हमारी स्तुतिको (शृणोतु) सुने ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अद्य नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
१ २ ३ १ २
परा दुष्वप्न्यꣳ सुव ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । श्यावाश्व ऋषिः । हे सवितः देव ! नः अस्मभ्यम् अद्य अस्मिन् यागदिन प्रजावत् पुत्राद्युपेतं सौभगं धनं सावीः प्रेरय । दुष्वप्न्यम् दुःस्वप्नं दुःस्वप्नवद् दुःखकरं दारिद्र्यं परासुव दूरं प्रेरय७

(सवितः देव) हे सूर्यदेव (नः) हम (अद्य) इस यज्ञके दिन आज (प्रजावत्) पुत्रादि सहित (सौभगम्) धन (सावीः)दीजिये (दुःस्वप्न्यम्) खोटे स्वप्नकी समान दुःखदायक दारिद्र्यको (परासुव) दूरकरो ॥ ७ ॥

२ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
३ १ २र
ब्रह्मा कस्तꣳ सपर्य्यति ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । प्रागाथः । काण्व ऋषिः । स्यः सः,वृषभः वर्षिता,युवा नित्य-तरुणः, तुविग्रीवः, प्रवृद्धग्रीवः, अनानतः कदाचिदप्यनवनतः इन्द्रः क्व ? कुत्र वर्त्तते इति को जानातीत्यर्थः । कः ब्रह्मा स्तोता तम् इन्द्रं सपर्य्यति पूजयति ॥ ८ ॥

(सः) वह (वृषभः) मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला (युवा)नित्य तरुण (तुविग्रीवः) बढीहुई ग्रीवावाला (अनानतः) कभी भी किसी को न नमनेवाला इन्द्र (क्व) कहाँ है इस बातको कौन जानता है ? (कः) कौन (ब्रह्मा) स्तोता (तम्) उस इन्द्रको (सपर्यति) पूजता है ८

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उपह्वरे गिरीणाꣳ सङ्गमे च नदीनाम् ।

३ १ २र

धिया विप्रो अजायत ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वत्स ऋषिः । गिरीणां पर्वतानाम् उपह्वरे उपह्वर्न्व्ये प्रान्ते । नदीनां सरितां सङ्गमे सङ्गमन च ईदृग्विधे देशे क्रियमाणया धिया स्तुत्या विप्रः मेधावी इन्द्रः अजायत प्रादुर्भवति, स्तुतिं श्रोतुमिति शेषः । गिरीणामित्यत्र नामन्यतरस्याम् (६,१,१७७) इति नाम उदात्तत्वम् । सङ्गमे सङ्गथे च इति पाठौ ॥ ९ ॥

(गिरीणाम्) पर्वतोंके (उपह्वरे) प्रदेशमें(च)और (नदीनाम्) नदियोंके (सङ्गमे) सङ्गम पर (धिया) की हुई स्तुतिसे (विप्रः) मेधावी इन्द्र (अजायत) स्तुतिके सुननको प्रकट होता है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रꣳ स्तोता नव्यं गीर्भिः ।

१२ ३ २ ३ १ २

नरं नृषाहं मꣳहिष्ठम् ॥ १० ॥

अथ दशमी इरिमिठ ऋषिः । चर्षणीनां मनुष्याणां मध्ये सम्राजं सम्यग् राजमानम् । यद्वा मनुष्याणामधीश्वरम् इन्द्रम् हे स्तोतारः ! प्रस्तोत प्रकर्षेण स्तुत । कीदृशम् ? गीर्भिः स्तुतिभिः नव्यं स्तुत्यं नरं नेतारं नृषाहम् नृणां शत्रुमनुष्याणाम् अभिभवितारम् मंहिष्ठम् दातृतमम् ॥ १० ॥

(चर्षणीनाम्) मनुष्योंमें (सम्राजम्) भलेप्रकार विराजमान अथवा मनुष्योंके अधीश्वर (गीर्भिः) स्तोत्रोंकरके (नव्यम्) स्तुति करने योग्य (नरम्) नेता (नृषाहम्) शत्रु मनुष्योंका तिरस्कार

करनेवाले (मंहिष्ठम्) परम दाता (इन्द्रम्) इन्द्रको (प्रस्तोता) अधिक स्तुति करो ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।
२ ३ २ ३ १ २
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ १ ॥

अथ चतुर्थखण्डे—सेयं प्रथमा । श्रुतकक्ष ऋषिः । शिप्री, शिप्रे हनू नासिके वा शोभनहनुः । यद्वा शिप्रा शीर्षण्याः, सुशिरस्त्राणः सः इन्द्रः एव प्रहोषिणः प्रकर्षेण देवान् हविर्भिर्जुह्वतः सुदक्षस्य एतन्नामकस्य ऋषेः सम्बंधि यवाशिरः श्रीञ् पाके (अ.ग्रा० उ०) आङ्पूर्वकस्य अपस्पृधेथामानृचुः इत्यादिना धातोः शिरादेशः रवैरामिश्रितयवैः सह पक्वम् इन्दोः सर्वत्र पात्रेषु क्षरन्तम् अन्धसः सोमलक्षणमन्नम् अपात अपिबत् यद्वा सोमस्य भागम् इन्द्रार्थम् परिकल्पितं सोमांशम् अपिबत् । उ इत्यवधारणे ॥ १ ॥

(शिप्री) सुन्दर ठोडी वा सुन्दर पगडीवाला (इंद्रः) इंद्र (प्रहोषिणः) अधिकताके साथ देवताओंके निमित्त हवि होमनेवाले (सुदक्षस्य) सुदक्षके (यवाशिरः) यवोंके साथ पके हुए (इन्दोः) सोमलता से सब पात्रोंमें टपकते हुए (अंधसः) सोमरूप अन्नको(उ) निश्चय (अपात) पीता हुआ ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३
इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनवुर्गिरः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
गावो वत्सं न धेनवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मेधातिथि ऋषिः । हे पुरूवसो ! बहुधन ! यद्वा वसवो यज्ञाः बहुयज्ञ ! इंद्र ! त्वा त्वाम् अभि इमाः अस्मदीयाः गिरः स्तुतयः प्रनोनवुः प्रकर्षेण पुनः पुनः स्तुवन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । नौति रत्र व्याप्तिकर्मा । तत्र दृष्टांतः गावो वत्सं न धेनवः यथा धेनवः गावः गृहे वर्त्तमानं वत्सं शीघ्रमभिगच्छन्ति तद्वत्, यथा अस्मदीया वाचः त्वाम् अभिनोनवुः शब्दयन्ति, स्तुवन्ति, यथा गावो वत्समभिलक्ष्य हम्भारवं कुर्वंति तद्वत्॥ २ ॥

(पुरूवसो) हे बहुत धनवाले इंद्र (त्वा, अभि) तुम्हारी ओरको

(इमाः) यह हमारी (गिरः) स्तुतियें (प्रनोनवुः) अधिकतासे वार २. आकर प्राप्त होती हैं (गावः धेनवः, वत्सं, न) जैसे कि-धेनु गौएँ अपने घर बँधेहुए वछड़ेके समीप आपहुँचती हैं ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २

इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गोतम ऋषिः अत्राह अस्मिन्नेव गोः गंतुः चन्द्रमसः गृहे मण्डले त्वष्टुः एतत्संज्ञकस्य आदित्यस्य सम्बंधि अपीच्यं रात्रौ अंतर्हितं स्वकीयं यत् नाम तेजः तदादित्यस्य रश्मयः । इत्था इत्थम् अनेन प्रकारेण अमन्वत अजानन् । उदकमये स्वच्छे चन्द्रबिम्बे सूर्य-किरणाः प्रतिफलंति, तत्र प्रतिफलिताः किरणाः सूर्ये यादृशीं संज्ञां लभते, तादृशीं चन्द्रेऽपि वर्त्तमाना लभन्त इत्यर्थः । एतदुक्तम् भवति यद्रात्रावन्तर्हितं सौरं तेजः तच्चंद्रमण्डलं प्रविश्याहनीव नैशं तमो निवार्य्य सर्वं प्रकाशयन्ति । ईदृग्भूततेजसा युक्तः सूर्य इन्द्र एव द्वादश-स्वादित्येषु इन्द्रस्यापि परिगणितत्वात । अतोऽहोरात्रयोः प्रकाशक इंद्र एवेति इंद्रस्तुतेः प्रतीयमानत्वात इंद्रो देवतेत्युपपन्नं भवति ईदृग्भूतस्य तेजसः आश्रयत्वेन चंद्रमसः प्राधान्यविवक्षया चांद्रमस्यामिष्टौ विनि-योगोऽप्युपपद्यते । अत्र निरुक्तम्-अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति-दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्य आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति सुषुम्णः सूर्य-रश्मिश्चन्द्रमा गंधर्व इत्यपि निगमो भवति सोऽपि गौरुच्यते अत्राह गोरमन्वतेति (२,३,९) अत्र ह गोः सममंसतादित्यरश्मयः स्वनामा-पीच्यमपगतमपचितमपिहितमंतर्हितं वा अमुत्र चंद्रमसो गृहे(४,४,२५) इति ॥ ३ ॥

(अत्रा ह) इस ही (गोः) गमन करनेवाले (चंद्रमसः) चंद्रमा के (गृहे) मण्डलमें (त्वष्टुः) त्वष्टा नामक आदित्यका (अपीच्यम्) रात्रिमें अन्तर्धान हुआ जो अपना (नाम) तेज है वह सूर्यकी किरणें हैं (इत्था) इसप्रकार (अमन्वत)मानागया है अर्थात् जलमय स्वच्छ चन्द्रमण्डलमें प्रतिबिम्बित हुई सूर्यकी किरणें वही चेष्टा करती हैं, कि-जो सूर्यमण्डलमें करती हैं, सूर्यका तेज दिनकी समान रातमें भी चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट हो अन्धकारका नाश करके सबको प्रकाशित करदेता है, ऐसे तेजवाला सूर्य इन्द्र ही है, क्योंकि-बारह आदित्योंमें इन्द्रकी भी गिनती है. इसकारण दिनरातका प्रकाशक इन्द्र ही है ॥ ३ ॥

२उ ३ १२३१२ ३२३१ २र
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
तत्र पूषाभुवत्सचा ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । भरद्वाज ऋषिः । यद् यदा इंद्रः वृषन्तमः अतिशयेन वर्षिता इन्द्रः रितः गच्छतीः महीः महतीः अपः वृष्ट्युदकानि अनयत् इमं लोकं प्रापयति । तत्र तदानीं पूषा पोषको देवः सचा भुवत् इन्द्रस्य सहायो भवति ॥ ४ ॥

(यत्) जब (वृषन्तमः) अतिशय वर्षा करनवाला (इंद्रः) इंद्र (रितः) जाते हुए (महीः) बहुतसे (अपः) वर्षा के जलोंको (अनयत्) इस लोक में पहुँचाता है (तत्र) उस समय (पूषा) पोषक देवता (सचा) सहायक (भुवत्) होता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
गौर्धयति मरुताᳬ श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।
३ २उ ३ १ २
युक्ता वन्ही रथानाम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । विन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः । मघोनां धनवतां मरुतां माता निर्मात्री गौः पृश्निरूपा । पृश्निर्वै पयसो मरुतो जाता इति श्रुतेः गौर्माध्यमिका वाक् तत्रैव मध्यमस्थान मरुतामपि वर्त्तमानात् तेषां तत् पुत्रत्वमुपपद्यते सा धयति सोमं पिबति पोषयति वा स्वपुत्रान् मरुतः किमिच्छन्ती ? श्रवस्युः अन्नं कामयमाना । कीदृशी ? रथानां मरुतां वह्निः पृषतीभिः वडवाभिर्वोढ्री संयाजयित्री सा । युक्ता सर्वत्र सम्मता पूज्या भवति ॥ ५ ॥

(मघोनाम्) धनवान् (मरुताम्) मरुतोंकी (माता) रचनेवाली (रथानाम्) मरुतोंकी (वह्निः) बडवाओंसे वहन कराने वाली (युक्ता) सर्वत्र पूजित (गौः) पृश्निरूपा गौ (श्रवस्युः) अन्नकी कामना करती हुई (धयति) अपने पुत्रोंका पोषण करती है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । द्वयोः श्रुतकक्ष एव सुकक्षो वा ऋषिः । हे मदानां

पते! माद्यन्त्यनेनेति मदः सोमः : मदोऽनुपसर्गे इति करणे अप् प्रत्ययः सोमानां स्वामिन्! इन्द्र! हरिभिः आ शतेन हरिभिरित्यादिषु बहुनामश्वानां श्रुतेः अत्रापि शतसहस्रसंख्याकैः अश्वैः सह नः अस्माकं यज्ञे सुतम् अभिषुतम् सोमम् उपयाहि तत्पानार्थं शीघ्रमागच्छ। पुनः उप नः इत्याद्युक्तिरादरार्था ॥ ६ ॥

(मदानाम्) सोमोंके (पते) स्वामिन् इन्द्र! हरिभिः) सैंकड़ों सहस्रों घोड़ों सहित (नः) हमारे यज्ञमें (सुतं उपयाहि) निचोड़े हुए सोमको पीनेके लिये शीघ्र आइये [उप नो हरिभिः सुतम्, ऐसा मंत्रमें दूसरी वार आदरार्थ कहा है] ॥ ६ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे।
१ २ ३ १ २र
अच्छावभृथमोजसा ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। अध्वरे अस्मदीये यज्ञे वृधन्तः हविर्भिरिन्द्रं वर्द्धयंतः इष्टाः इष्टवन्तः यागं कृतवन्तः सप्तसंख्याकाः होत्राः होत्रकाः अवभृथम् सुत्याभिषवम् अच्छ अभि प्रति ओजसा स्वतेजसा सहिताः। इन्द्रम् असृक्षत व्यसृजन्। यावदवभृथसमाप्ति होत्रका यजन्तीति ॥ ७ ॥

(अध्वरे) हमारे यज्ञमें (वृधन्तः) हवियोंसे इन्द्रको बढ़ाते हुए (इष्टाः) यज्ञ करनेवाले सात (होत्रा) होता (अवभृथं अच्छ) यज्ञांत स्नान होने पर्यंत (ओजसा) अपने तेजसे सम्पन्न होकर (इन्द्रम्) इन्द्रको (असृक्षत) आहुतिदान करते हुए ॥ ७ ॥

३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।
३ १ २र
अहꣳसूर्य्य इवाजनि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। वत्सः काण्व ऋषिः। पितुः पालकस्य ऋतस्य सत्यस्यापि तस्येन्द्रस्य मेधाम् अनुग्रहात्मिकां बुद्धिम् अहम् इत् अहमेव परिजग्रह परिगृहीतवानस्मि नान्यः। हि यस्मात् एवं तस्मात् अहं सूर्यः इव अजनि सूर्यो यथा प्रकाशमानः सन् प्रादुर्भवति तथा अहमजनिषम् प्रादुरभूवम् ॥ ८ ॥

(अहम् इत्) मैंने ही (पितुः) पालनकर्ता (ऋतस्य) सत्यस्वरूप इन्द्रकी (मेधाम) अनुग्रहरूपा बुद्धिको (परिजग्रह) ग्रहण

किया है (हि) ऐसा होनेके कारण ही (सूर्यः, इव अजनि) जैसे सूर्य प्रकाश करता हुआ प्रकट होता है तैसे ही मैं भी प्रकट हुआ हूँ ८

३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ ९ ॥

अथ नवमी। शुनः शेप ऋषेः। क्षुमन्तः अन्नवन्तः वयं याभिः गोभिः मदेम हृष्येम इन्द्रे सधमादे अस्माभिः सह हर्षयुक्ते सति नः अस्माकं ता गावः रेवतीः क्षीराज्यादिधनवत्य तुविवाजाः प्रभूतबलाश्च सन्तु ९

(क्षुमन्तः) अन्नवाले हम (याभिः) जिन गौओंसे (मदेम) हर्षित होते हैं (इन्द्रे, सधमादे) इन्द्रके हमारे साथ हर्षयुक्त होने पर (नः) हमारी वह गौएँ (रेवतीः) दूध घी आदि धन वाली (तुविवाजाः) अधिक बलवती (सन्तु) हों ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासाᳪं सुक्षितीनाम् ।
३ २ ३क ३ २ २
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥ १० ॥

अथ दशमी। शुनःशेपो वामदेवो वा ऋषिः। देवत्रा देवेषु रथ्यः रथार्हः अर्हिता आरोढा सोमः तादृशः पूषा सूर्य्यश्च विश्वासां सर्वासां सुक्षितीनां क्षियन्ति निवसन्तीति क्षितयः प्रजाः। शोभनक्षितीनां मनुष्याणां सम्बन्धीनि हवींषि इन्द्रार्थं कृतानि चेततुः जानीतः ॥ १० ॥

(देवत्रा) देवताओंमें (रथ्यः) रथके योग्य (अर्हिता) सवार होने वाला (सोमः) सोम (पूषा च) सूर्य भी (विश्वासाम्) सकल (सुक्षितीनाम्) श्रेष्ठ मनुष्यों करके इन्द्रके निमित्त किये हुए हवियों को (चेततुः) जानें ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वासाहᳪं शतक्रतुं मᳪंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे—सेयं प्रथमा। श्रुतकक्ष ऋषिः। हे ऋत्विजः !

वः यूयम् अन्धसः सोमलक्षणम् अन्नम् आ पान्तम् आभिमुख्येन पिबन्तं पा पाने (भ्वा० प०) छान्दसः शपो लुक्। सव विधयः छन्दसि विकल्प्यन्ते इति न लोकाव्यय (२, ३, ६९ पा०) इति षष्ठी-प्रतिषेधाभाव वः। ततोऽन्धसः इत्यत्र कर्तृकर्मणोः (२, ३, ६५ पा०) इति षष्ठी सोममाभिमुख्येन पिबन्तम् एतादृशम् इन्द्रम् प्रगायत प्रकर्षेण अभिष्टुत। कीदृशम् ? विश्वासाहम् सर्वेषां शत्रूणामभि-भवितारम् सर्वेषां भूतजातानां वा अतएव शतक्रतुम् बहुविधप्रज्ञानं बहुविधकर्माणं वा चर्षणीनाम् मनुष्याणाम् मंहिष्ठम् धनस्य दा-तृतमं यद्वा यजमानानां यष्टव्यत्वेन पूजनीयमिद्रं प्रगायतेति समन्वयः।

हे ऋत्विजो (वः) तुम (विश्वासाहम्) सकल शत्रुओं का तिर-स्कार करने वाले (शतक्रतुम्) विचित्रकर्मा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (मंहिष्ठम्) परम धनदाता (अन्धसः) सोमरूप अन्न को (आपा-तम्) अभिमुख होकर पीनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभिप्रगायत) विशेषरूपसे स्तुति करो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय मादनꣳ हर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वशिष्ठ ऋषिः।

हे सखायः ! वः यूयं हर्यश्वाय हरिनामकाश्वाय सोमपाव्ने सोमानां पात्रे इन्द्राय मादनं मदकरं स्तोत्रं प्र गायत प्र पठत ॥ २ ॥

(सखायः) हे सखाओ (वः) तुम (हर्यश्वाय) हरि नामक अश्ववाले (सोमपाव्ने) सोम पान करने वाले (इन्द्राय) इंद्रके अर्थ (मादनम्) प्रसन्न करने वाला स्तोत्र (प्रगायत) गाओ ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
१ २ ३ १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। मेधातिथिः ऋषिः प्रियमेधश्च। हे इन्द्र ! त्वायन्तः त्वामात्मनः इच्छन्तः सखायः समानख्यानाः वयम् तदिदर्थाः यत् त्वद् विषयं तोः तदित् तदेवार्थं प्रयोजनं येषां तादृशा सन्तः त्वा त्वाम् स्तुमहे। उ इति पादपूरणः। कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्नाः अस्म-

दीयः पुत्राश्च उक्थेभिः उक्थैः शस्त्रैः जरन्ते त्वां स्तुवंति ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (त्वायन्तः) तुम्हें अपना बनानेकी इच्छा करते हुए (सखायः) मित्ररूप (वयम्) हम (तदिदर्थाः) केवल आपकी स्तुति करनेको ही अपना कर्त्तव्य मानते हुए (त्वा) तुम्हारी स्तुति करते हैं (कण्वाः उ) कण्वगोत्री हमारे पुत्र भी (उक्थेभिः) वेद-मन्त्रोंसे (जरन्ते) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २   ३ १ २र   ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
३ १ २   ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । श्रुतकक्ष ऋषिः । मद्वने माद्यतेः क्वनिप् मदन-शीलाय इन्द्राय तदर्थं सुतम् अभिषुतं सोमं नः अस्मदीयाः गिरः स्तुति-लक्षणा वाचः परिष्टोभन्तु स्तोभतिः स्तुतिकर्मा (नि० ३, १४, ४,) परितः सोमं स्तुवन्तु । ततः कारवः स्तुतिकारिणः स्तोतारश्च अर्कम् सर्वैरर्चनीयं सोमम् अर्चन्तु पूजयन्तु ॥ ४ ॥

(मद्वन) प्रसन्नस्वभाव (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (सुतम्) निचोड़े हुए सोमको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (परिष्टोभन्तु) सोम की सर्वथा प्रशंसा करें, तदनंतर (कारवः) स्तुति करनेवाले (अर्कम्) सबके पूजनीय सोमको (अर्चन्तु) पूजें ॥ ४ ॥

३ १ २   ३ २ ३   १ २ ३   १ २   ३ १ २
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
१ २ ३ २उ   ३ १ २
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । इरिमिठ ऋषिः । हे इन्द्र ! ते तुभ्यं त्वदर्थम् अयं सोमः बर्हिषि अधि वेद्यामास्तीर्णे दर्भे निपूतः नितरां दशापवित्रेण शोधितः अभिषवादिसंस्कारैः संस्कृत इत्यर्थः । इम् इदानीम् अस्य इमं सोमं प्रति एहि आगच्छ, आगत्य च यत्र रसात्मकः सोमो हूयते तं देशं प्रति द्रव शीघ्रं गच्छ, तदनंतरं तं सोमं पिब ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) वेदी पर बिछे हुए कुशों पर (निपूतः) पवित्रे से शुद्ध किया गया (इदम्) इस समय (अस्य) इस सोमके समीप (एहि) आओ, और आकर जहाँ रस रूप सोमका हवन किया जाता

है उस स्थान पर (द्रव) शीघ्र जाओ, तदनन्तर उस सोमको (पिब) पियो ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
३ २ ३ १ २
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । मधुच्छन्दा ऋषिः । सुरूपकृत्नुम् शोभनरूपोपेतस्य कर्मणः कर्त्तारम् इन्द्रम् ऊतये अस्मद्रक्षार्थं द्यविद्यवि प्रतिदिनं जुहूमसि आह्वयामः । आह्वाने दृष्टान्तः गोदुहे गोधुगर्थं सुदुघाम् इव सुष्ठु दोग्ध्रीं गामिव, यथा लोके गोर्यो दोग्धा तदर्थं तस्याभिमुख्येन दोहनीयां गामाह्वयन्ति तद्वत् । वस्तोरित्यादिषु नामसु द्यविद्यवीति द्वादशाहर्नामानीति पठितम् (निरु० २, ३, २८) ॥ ६ ॥

(सुरूपकृत्नुम्) सुरूप कर्मके कर्त्ता इन्द्रको (ऊतये) अपनी रक्षा के निमित्त (गोदुहे) गौ दुहनके निमित्त (सुदुघाम् इव) सुन्दर दूध वाली गौको जैसे पुकारते हैं तैसे (द्यविद्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳ सृजामि पीतये ।
३ १ २ ३ १ २
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । त्रिशोक ऋषिः । हे वृषभ ! कामानां वर्षितरिन्द्र ! त्वा त्वाम् सुते सोमेऽभिषुते सति तं सुतम् अभिषुतं सोमं पीतये पानाय अभिसृजामि तृम्प तृप्यं मदं मदकरं सोमं व्यश्नुहि विशेषेण प्राप्नुहि ॥ ७ ॥

(वृषभ) हे मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र (त्वा) तुम्हें (सुते) सोमका अभिषव होने पर उस (सुतम) अभिषव किये हुए सोमको (पीतये) पीनेके लिये (अभिसृजामि) अर्पण करता हूँ (तृप्यम्) तृप्त करने वाले (मदम्) आनन्ददायक सोमको (व्यश्नुहि) विशेष रूपसे ग्रहण करो ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः ।
१ २र ३ १ २
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । कुसीद ऋषिः । हे इन्द्र ! ते त्वदर्थं सुतः अभिषुतो यः सोमः चमसेषु एतन्नामकेषु पात्रेषु तथा चमूषु चमन्ति भक्षयन्त्यत्रेति चम्वो ग्रहा तेषु च आ सर्वतः अस्ति । अस्य तमेतं सोमं त्वम् पिब इत् इदवधारणे पिबैव । कथं मम स मपानयोग्यता ? तत्राह हे इंद्र ! त्वम् ईशिषे तस्य त्वमीश्वरो भवसि खलु, यत् एवं ततः पिबेति समन्वयः ईश ऐश्वर्ये (अ० आ०) लटि ईशः से (७;२;७७) इति इडागमः ॥ ८ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सुतः) निचोड हुआ जो (सोमः) सोम (चमसेषु) चमस नामक पात्रों में (चमूषु) ग्रह नामक पात्रों में (आ) पूर्णरूपसे भरा हुआ है (अस्य) इस सोमको (त्वम्) तुम (पिब इत्) अवश्य पियो, हे इन्द्र ! तुम (ईषिशे) ईश्वर हो ॥ ८ ॥

१ २ ३१२३ १ २

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

अथ नवमी । शुनःशेप ऋषिः । योगे योगे प्रवेशे प्रवेशे तत्तत्कर्मोपक्रमे वाजे वाजे कर्मविघातिनि तस्मिन् संग्रामे तवस्तरम् अतिशयेन बलिनम् इन्द्रम् ऊतये रक्षार्थं सखायः सखिवत् प्रिया वयं हवामहे आह्वयामः ॥ ९ ॥

(योगे योगे) प्रत्येक कर्मके आरम्भमें प्रवेश होनेके समय (वाजे वाजे) कर्मविघातकोंके साथ संग्राम होने पर (तवस्तरम्) अतिबलवान् (इन्द्रम्) इंद्रको (ऊतये) रक्षाके निमित्त (सखायः) मित्रों की समान प्रीति करनेवाले हम (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।

१ २ ३ १ २

सखायः स्तोमवाहसः ॥ १० ॥

अथ दशमी । मधुच्छन्दा ऋषिः । तु शब्दः क्षिप्रार्थो निपातः आ तु आ इत इति द्वाभ्यामाङ्भ्यां मंत्रे तु इतशब्दोऽभ्यसनीयः हे सखायः ! ऋत्विजः ! क्षिप्रमस्मिन् कर्मणि आगच्छतागच्छत आदरार्थोऽभ्यासः आगत्य च निषीदत उपविशत इंद्रम् अभिप्रगायत सर्वतः प्रकर्षेण

स्तुत। कीदशाः सखायः ? स्तोमवाहसः त्रिवृत्पञ्चदशादिस्तोमान् अस्मिन् कर्मणि वहन्ति प्रापयन्ति ॥ १० ॥

(स्तोमवाहसः) स्तोमको पहुचानवाले (सखायः) हे सखा ऋत्विजो ! (आ तु आ) अतिशीघ्र (इत) आओ, और आकर (निषीदत) विराजो (इन्द्रम्) इन्द्रको (अभिप्रगायत) सब प्रकार से स्तुति करो ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः

३ १ २र ३ १ २

इद ँ् ह्यन्वोजसा सुत ँ् राधानां पते ।

२ ३ २ १ २

पिबा त्वा ३ स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—सेयं प्रथमा । विश्वामित्र ऋषिः ।

हे राधानां धनानां पते ! गिर्वणः गीर्भिः स्तुतिभिर्वन्दनीय ! इन्द्र! ओजसा बलेनोपहितस्त्वं इदम् अनु अननानुक्रमेणेत्यर्थः अ.जसा बलेन ग्रावभिः सुतम् अभिषुतं अस्य इमं सोमं तु क्षिप्र पिब हि ॥ १ ॥

हे (राधानाम्) धनोंके (पते) स्वामिन् ! (गिर्वणः) स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य इन्द्र (ओजसा) बलसे युक्त हुए तुम (इदम्, अनु) इस क्रमसे (ओजसा) बलके द्वारा पत्थरों से (सुतम्) निकाले हुए (अस्य) इस सोमको (तु) शीघ्र (पिब हि) पियो १

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

महा ँ् इन्द्रः परश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।

१ २र ३ १ २र

द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मधुच्छन्दा ऋषिः । अयम् इन्द्रः महान् शरीरेण प्रौढः परश्च गुणैरुत्कृष्टः किंच वज्रिणे वज्रयुक्ताय इंद्राय महित्वं पूर्वोक्तं द्विविधमाधिक्यम् सर्वदा अस्तु स्वभावसिद्धस्यापि भक्त्या प्रार्थनमेतत् किंच द्यौर्न द्युलोक इव शवः बलम् इंद्रस्य सेनारूपं प्रथिना पृथुत्वेन पुस्थताम् इति शेषः । यथा द्युलोकः प्रभूतः एवमस्य सेना प्रभूता अस्तु । नु शब्दो यद्यपि क्षिप्रनामसु .नुमक्षिरित्य.दिषु पठितः तथापि अत्र तदर्थत्वासम्भवात् समुच्चयार्थे ऽत्र गृहीतः । न शब्दो लोके प्रतिषेधार्थ एव स्वाध्याये तु प्रतिषेधार्थे उपमार्थश्चेति द्विविधः येन पदेन अन्वीयते तस्मात् पूर्वं प्रयुज्यमानः प्रतिषेधार्थः उपरिष्टात् प्रयुज्यमान उपमार्थः तथा च यास्क उदाहरति उभयमन्वध्यायं नेन्द्रं

देवममंसतेति प्रतिषेधार्थीयः पुरस्तादुपचारस्तस्य यत् प्रतिषेधति दुर्मदासो न सुरायामित्युपमार्थीय उपरिष्टादुपचारस्तस्य येनोपमिमीते (१, २, ६) इति। अत्रोपमावाचिनो द्युशब्दस्योपरिप्रयुक्तत्वादुपमार्थः स्वीकृतः ॥ २ ॥

(नः) हमारा (इंद्रः) यह इन्द्र (महान्) शरीरसे बडा है (परः) गुणों करके श्रेष्ठ है (वज्रिणे) वज्रधारी इंद्रके अर्थ (महित्वम) पूर्वोक्त दो प्रकारका गौरव सर्वदा (अस्तु) हो, और (द्यौर्न) द्युलोककी समान (शवः) इन्द्रका सेनारूप बल (प्रथिना) अधिक प्रसिद्ध हो २

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

आ तु न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभ ँ सं गृभाय।

३ १ २र

महाहस्ती दक्षिणेन ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। कुसीदी काण्व ऋषिः। हे इन्द्र ! महाहस्ती महाहस्तवान् त्वं तु तदानीमेव नः अस्मभ्यं दातुं क्षुमन्तं शब्दवन्तं स्तुत्यमित्यथः चित्रं चायनीयं ग्राभं ग्राहकं ग्रहणार्हं वा धनं दक्षिणेन हस्तेन आ संगृभाय आभिमुख्येन संगृहाण ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (महाहस्ती) बडे २ हाथोंवाला तू (तु) इसी समय (नः) हमें देनके लिये (क्षुमन्तम्) स्तुतिके योग्य (चित्रम) नानाप्रकारके (ग्राभम्) ग्रहण करनेके योग्य धनको (दक्षिणेन) दाहिने हाथसे (आ संगृभाय) अभिमुख होकर ग्रहण करो ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।

३ २ ३ २ ३ १ २

सूनुँ सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। प्रियमेध ऋषिः। गोपतिं गवां स्वामिनम् इन्द्रम् अभि अर्च गिरा स्तुत्या प्रकर्षेण पूजय। यथा विदे स यथा स्वात्मानं स्तुतिप्रकारं जानाति यथा वा यागं प्रति गन्तव्यमिति जानाति तथार्चेति। कीदृशमिन्द्रम् ? सत्यस्य यज्ञस्य सूनुम् पुत्रं तत्रानुरक्तत्वात् सूनुरित्युपचर्यते सत्पतिं सतां यजमानानां पालकम् ॥ ४ ॥

(गोपतिम्) गौओंके स्वामी (सत्यस्य) यज्ञके (सूनुम्) पुत्र (सत्पतिम्) यजमानोंके पालक (इन्द्रम्) इंद्रको (गिरा) स्तुति

से (अभि अर्च) पूर्ण रीतिसे पूजो (यथा विदे) जैसे कि-वह हमारे स्तुति करनेको और यज्ञमें अवश्य आना चाहिये इस बातको जानजाय।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।

२ ३ १ २ ३ २

कया शचिष्ठया वृता ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । वामदेव ऋषिः । सदावृधः सर्वदा वर्द्धमानः चित्रः चायनीयः सखा मित्रभूतः इन्द्रः । कया ऊती ऊत्या तर्पणेन नः अस्मान् आ भुवत् आभिमुख्येन भवेत्।शचिष्ठया प्रज्ञावत्तमया प्रज्ञास्हितमनुष्ठीयमानेन कया वृता केन वर्त्तनेन कर्मणा च अभिमुखो भवेत ॥ ५ ॥

(सदा वृधः) सर्वदा वृद्धिको प्राप्त (चित्रः) विचित्रगुणोंवाला (सखा) मित्र इन्द्र (कया) किस (ऊती) तृप्तिसाधक कर्मसे (नः) हमारे (आ भुवत्) अभिमुख होय (शचिष्ठया) समझकर किये हुए (कया वृता) किस वर्त्तावसे अभिमुख होय ॥ ५ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।

१ २ ३ १र

आ च्यावयस्यूतये ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । श्रुतकक्ष ऋषिः । यजमानः स्तोतारं सम्बोध्याह । हे स्तोतः सत्रासाहं सत्रा शब्दो बहुवाची बहूनामभिभवितारं यद्वा शत्रून् स्वबलेन सङ्गत्य जेतारम् । वः युष्मदीयेषु विश्वासु गीर्षु सर्वेषु स्तोत्रेषु आयतं विस्तृतं सर्वत्रेन्द्र एव स्तूयते तस्मात् तेषु विततम् त्यम् उ उ इत्यवधारणे तमेवेन्द्रम् ऊतये अस्मद्रक्षणाय आच्यावयसि च्युङ्, प्रुङ्, प्लुङ्गतौ (भ्वा०आ०) त्वदीयैः स्तोत्रैः यज्ञं प्रति आभिमुख्येन गमय ॥ ६ ॥

यजमान कहे कि—हे स्तोतः (सत्रासाहम्) बहुतोंका तिरस्कार करनेवाले (वः) तुम्हारे (विश्वासु) सकल (गीर्षु) स्तोत्रोंमें (आयतम्) फैलेहुए (त्यम्, उ) उस इन्द्रको ही (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (आच्यावयसि) अभिमुख करके भेजो ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

३ २ ३ १ २
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । मेधातिथिर्ऋषिः । मेधां लब्धुं सदसस्पतिं एतन्नामकं देवम् अयासिषम् प्राप्तवानस्मि । कीदृशम्? अद्भुतम् आश्चर्यकरम् इन्द्रस्य प्रियम् सोमपाने सहचारित्वात् काम्यम् कमनीयं सनिं धनस्य दातारम् ॥ ७ ॥

(मेधाम्) बुद्धिको पाने के निमित्त (अद्भुतम्) आश्चर्य करने वाले (इन्द्रस्य प्रियम्) इन्द्रके प्यारे (काम्यम्) चाहने योग्य (सनिम्) धनके दाता (सदसस्पतिम्) सदसस्पति देवता को (अयासिषम्) प्राप्त हुआ हूँ ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २३ ३क २र ३ १ २
ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
३ १ २ ३ १२
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! दिवः द्युलोकस्य अधः अधस्तात् ये पन्थाः पन्थानः मार्गाः सन्ति, येभिर्यैर्मार्गैः विश्वं सर्वं जगत् ऐरयः प्राप्तवानसि; ते मार्गाः यजमानैः स्तूयन्तामिति शेषः । उत अपि च नः अस्मदीया भुवः भूमीः निवासस्थानानि श्रोषन्तु यजमानाः त्वदनुग्रहाच्छृण्वन्तु ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! (दिवः) द्युलोकके (अधः) नीचे (ये) जो (पंथानः) मार्ग हैं, (येभिः) जिन मार्गोंसे (विश्वम्) सकल जगत्को (ऐरयः) प्राप्त हुआ हूँ (ते) वह मार्ग यजमानों के स्तुति करने योग्य हैं (उत) और (नः) हमारे (भुवः) निवासस्थानोंको (श्रोषन्तु) यजमान सुनें ८

३ १ २ ३ २ ३२३१२
भद्रं भद्रं न आ भरेषमूर्जँ शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे शतक्रतो शतविधकर्मन् ! शतप्रज्ञ ! वा इन्द्र ! भद्रं भद्रं कल्याणतमं सुखोत्पादक वा धनं न अस्मभ्यम् आभर सम्पादय देहि, तथा इषम् ऊर्जम् अन्नरसम् यद्वा बलप्रदमन्नं देहि, नः अस्मान् यद् यदि मृडयासि सुखयसि तर्हि धनादिकं देहीति मृड सुखे (क्र्या०प०) तस्य लेटि अङ्गस्याडागमः ॥ ९ ॥

(शतक्रतो) सैंकडों कर्म करनेवाले (इन्द्र) हे इन्द्र (भद्रं भद्रम्) परमसुखदायक धन (नः) हमें (आभर) दीजिये, तथा (इषं ऊर्जम्) बलवान् अन्न दीजिये (नः) हमें (यत्) जो (मृडयासि) सुख देना चाहते हो तो धन आदि दो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्ति सोमो अयꣳ सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उत स्वराजो अश्विना ॥ १० ॥

अथ दशमी । ऋषिः पूर्वोक्तः । अयं पुरोवर्त्ती सोमः सुतः मरुदर्थमस्माभिः अभिषुतः अस्ति विद्यते, तस्मात् अस्य अन्वादेशे एनं सुतं सोमं स्वराजः स्वयं दीप्यमानाः स्वतेजसा नान्यदीयेनेत्यर्थः, तादृशाः मरुतः प्रातः पिबन्ति, उत अपि च । अश्विना अश्विनौ च सोमं प्रातः सवने पिबतः ॥ १० ॥

(अयम्) यह (सोमः) सोम (सुतः) मरुतोंके लिये हमारे द्वारा संस्कार कियागया (अस्ति) है, तिससे (अस्य) इस सोमको (स्वराजः) अपने तेजसे दीप्यमान (मरुतः) मरुत् प्रातःकालके समय (पिबन्ति) पीते हैं (उत) और (अश्विना) अश्विनीकुमार भी प्रातःसवनमें पीते हैं ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।

३ १ २ ३ १ २

वन्वानासः सुवीर्यम् ॥ १ ॥

अथ सप्तमं खण्ड—तत्र प्रथमा । इन्द्रमातरो देवजामय ऋषिकाः ईङ्खयन्तीः गच्छन्त्यः स्तुत्यादिभिः इन्द्रं प्राप्नुवत्यः अपस्युवः अपः कर्म आत्मान इच्छन्त्यः इन्द्रमातरः अस्य सूक्तस्य द्रष्ट्र्यः जातं प्रादुर्भूतं तम् इन्द्रम् उपासते परिचरन्ति, सुवीर्यं शोभनवीर्य्योपेतं धनं च वन्वानासः तस्मात् इन्द्रात् सम्भक्तवत्यो भवन्ति । वन्वानासः भेजानासः इति पाठौ ॥ १ ॥

(ईङ्खयन्तीः) स्तुति आदिके द्वारा इन्द्रको प्राप्त होती हुई (अपस्युवः) अपने कर्म को चाहती हुई इन्द्रकी मातायें (जातम्) प्रकट

हुए (तम्) उस इन्द्रको (उपासते) सेवती हैं (सुवीर्यम्) सुन्दर वीरतायुक्त धनको (वन्वानासः) उस इन्द्रसे प्राप्त करती हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र

न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि ।

३ १ २

मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । गोधा ऋषिः । हे देवाः इन्द्रादयः ! युष्मद् विषये न कि इनीमसि न किमपि हिंस्मः । मीङ् हिंसायां क्र्यादिकः मीनातेर्नैगमे (७,३, ८१ पा०) इति ह्रस्वः, इदन्तोमसि (७,१, ४६ पा०) मकारलोपश्छांदसः आकारः समुच्चये । न कि न च योपयामसि योपयामः अननुष्ठानेन अन्यथानुष्ठानेन वा मोहयामः युप विमोहने (चु०प०) किं तर्हि मंत्रश्रुत्यं मंत्रेण समायं श्रुतौ विधिवाक्यप्रतिपाद्यं यद् युष्मद्विषयं कर्म तत् चरामसि आचरामः अनुतिष्ठामः । इनीमसि मिनीमसि इति च पाठौ ॥ २ ॥

(देवाः) हे इन्द्रादि देवताओं ! तुम्हारे विषयमें (न कि इनीमसि) हम कुछ भी हानि नहीं करते (न कि योपयामसि) और विपरीत अनुष्ठानसे मोहित भी नहीं करते हैं (मंत्रश्रुत्यम्) मंत्रोंमें अनकों वाक्योंसे वर्णन किये हुए तुम्हारे विषयके कर्मको (चरामसि) आचरण करते हैं ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

दोषो आगाद्बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तुहि देवꣳ सवितारम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । हे बृहद्गाय ! बृहदाख्यस्य साम्नो गातः द्युमद्गामन् दीप्तगमन ! आथर्वण अथर्वऋषेपरत्य ! ऋषिः स्वात्मानमेवामन्त्रयते त्वं दोषः ऋत्विग्यजमानापराधेन यः कश्चिद् दोषः आगात् आगच्छति तत्परिहारार्थं सवितारं प्रेरकम् एतन्नामकम् देवं स्तुहि। यद्वा दोषः,दूष्यति नाशयति तमांसीति दुनोति उपतपति रक्षांसीति वा दोषः, सः सविता आगात्, अतो हे आथर्वण ! बृहत् स्तोत्रं गाय । तथा गामन् गायतीति गामा हे एवंविध ! स्वात्मन् ! द्युमत् दीप्तिमदन्यत् स्तोत्रम् उपगाय । शिष्टं पुनरावराथम् ॥ ३ ॥

(बृहद्राय) हे बृहत् सामका गान करनेवाले (द्युमद्गामन्)प्रकाश-युक्त गमन करनेवाले (आथर्वण) आथर्वण तू (दोषः) ऋत्विक् यजमानके अपराधसे जो कोई दोष (आगात्) आवे उसको दूर करनेके लिये (सवितारम्) सविता (देवम्) देवको (स्तुहि) स्तुति कर ॥३॥

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

३ २ २ ३ २

स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी प्रस्कण्व ऋषिः । एषः एषैव अस्माभिः परिदृश्यमाना प्रिया सर्वेषां प्रीतिहेतुः अपूर्व्या पूर्वेषु मध्यरात्रादिकालेषु विद्यमाना न भवति किन्त्विदानीन्तना उषा उषोदेवता दिवः द्युलोकस्य सकाशात् आगत्य व्युच्छति तमो वर्जयति । हे अश्विनौ । वां युवां बृहत् प्रभूतं यथा भवति तथा स्तुषे स्तौमि ॥ ४ ॥

(एषः) यह हमें दीखती हुई (प्रिया) सबकी प्रसन्नताकी कारण (अपूर्व्या) पहिले मध्यरात आदि समय में न रहने वाली इस समय की (उषा) उषा देवता (दिवः) द्युलोकसे आकर (व्युच्छति) अंधकारका नाश करती है (अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम्) तुम्हें (बृहत्) बहुत (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः

३ १ ३ ३ १ २र

जघान नवतीर्नव ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः अत्र शाट्यायनिन इतिहासमाचक्षते आथर्वणस्य दधीचो जीवतो दर्शनेन असुराः पराबभूवुः । अथ तस्मिन् स्वर्गते असुरैः पूर्णा पृथिव्यभवत्।अथेन्द्रस्तैरसुरैः सह योद्धुमशक्नुवं-स्तमृषिमन्विच्छन् स्वर्गं गत इति शुश्राव । पप्रच्छ तत्रत्यान् इह किमस्य किंचित् परिशिष्टमङ्गमस्ति ? इति तस्मा अवोचन् अस्त्येतदाश्वं शीर्षं येन शिरसा अश्विभ्यां मधुविद्यां प्राब्रवीत् तत्तु न विद्मः तद्यत्राभव-दिति पुनरिन्द्रोऽब्रवीत् तदन्विच्छतेति । तद्वा अन्वेषिषुः तच्छर्यणा-वत्यनुविद्याजह्रुः (शर्यणावद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्द्धसरः स्प-न्दते) । तस्य शिरसोऽस्थिभिरिन्द्रोऽसुरान् जघानेति । अप्रतिष्कुतः

परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूलशब्दरहितः इन्द्रः आथर्वणस्य दधीचः एतत् संज्ञकस्य ऋषेः अस्थभिः पार्श्वशिरः मर्म्मसंधिभिरस्थिभिः नवतीर्नव नवसंख्याका नवतीः दश त्तरा अष्टशतसंख्याकाः[८१०] तथाहि लोक-त्रयवर्त्तिनो देवान् जेतुम् आद्यासुरी माया त्रिधा सम्पद्यते, त्रिविधा सा अतीतानागतवर्त्तमानकालभेदेन तत्कालवर्त्तिनो जेतुं पुनरपि प्रत्येकं त्रिगुणिता भवति, एवं नव सम्पद्यन्ते,पुनरपि उत्साहादिशक्तित्रयरूपेण त्रैगुण्ये सति सप्तविंशतिः सम्पद्यते पुनः सात्त्विकादिगुणत्रयभेदेन त्रै-गुण्ये सति एकोत्तरा अशीतिः सम्पद्यते, एवं चतुर्भिस्त्रिवैगुणितायाः मायया दशसु दिक्षु प्रत्येकमवस्थाने सति नवनवतः संपद्यते,एवंविध-मायारूपाणि वृत्राणि आवरकाणि असुरजातानि जघान हतवान् ॥५॥

(अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूल शब्दरहित (इंद्रः) इंद्र (दधीचः) आथर्वण दधीचि ऋषिकी (अस्थभिः) पसुली शिर आदिकी हड्डियोंसे (नव) नौ (नवतीः) नब्बै अर्थात् नौ वार नब्बै,आठसौ दस (वृत्राणि)असुरों को (जघान) मारता हुआ [इस मंत्र पर शाट्यायनि इतिहास कहते हैं, कि-आथवण दधीचिको जीवित देखते ही असुरोंकी पराजय हो जाती थी,जब वह दधीचि स्वर्गको पधारगए तब असुरोंने सब पृथिवी को जीतलिया और इन्द्र असुरोंके साथ युद्ध न कर सका तब इन्द्रने उन ऋषिको खोजते हुए सुना कि-वह स्वर्गवासी होगए, इस पर तहाँके निवासियोंसे पूछा कि-यहाँ उनके शरीरमेंका कुछ बचा भी है तब उत्तर मिला कि-हाँ उनका घोड़ेके आकारका शिर है, जिस शिर से उन्होंने अश्विनीकुमारोंको मृत्युविद्या सिखाई थी, परन्तु यह नहीं मालूम कि-वह शिर कहाँ है इस पर इन्द्रने कहा कि-उसको ढूँढो, तब सबोंने ढूँढा, उसको कुरुक्षेत्रकी भूमिमें शर्यणावत् सरोवरमें पाया, और उस शिरकी हड्डियोंसे इन्द्रने असुरोंका वध किया। असु-रोंने जब पहिले देवताओंको जीता था तब प्रथम त्रिलोकीके देवताओं को जीतनेके लिये आसुरी माया तीन प्रकारकी हुई फिर वह भूत भविष्यत् वर्त्तमान् तीनों कालके देवताओंको जीतनेके लिये हरएक त्रिगुण होकर नौ होगई, फिर उत्साह आदि तीनशक्तियोंके भेदसे त्रिगुणी होकर सत्ताईस हुई, फिर सत्त्व आदि तीनों गुणोंके भेदसे त्रिगुणी होनपर इक्क्यासी हुई वह इक्यासी गुणी माया जब दशों दिशाओंमें भिन्न २ रूपसे रही तब आठसौ दश होगई, उनही माया-रूपी आठसौ दश आवरण करने वाले असुरोंको इन्द्रने मारा] ॥ ५ ॥

२उ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
३ १ २ ३ १ २र
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । मधुच्छन्दा ऋषिः हे इन्द्र ! एहि अस्मिन् कर्मणि आगच्छ आगत्य च विश्वेभिः सर्वैः सोमपर्वभिः सोमरसरूपैः अन्धसः अन्धोभिः अन्नैः मत्सि मयि हृष्टो भव, तत ऊर्ध्वम् ओजसा बलेन महान् भूत्वा अभिष्टिः शत्रूणामभिभविता भवति शेषः अष्टाविंशति-सङ्ख्याकेषु बलनामसु ओजः पाजः इति (नि० २, ९) पठितम् ॥६॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (एहि) इस कर्ममें आओ, और आकर (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) सोमरसरूप (अंधसः) अन्नों करके (मत्सि) प्रसन्न हूजिये, तदनन्तर (ओजसा) बलसे (महान्) बड़े होकर (अभिष्टिः) शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हूजिये ॥६॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
महान्महीभिरूतिभिः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वामदेव ऋषिः । हे वृत्रहन् ! वृत्राणां शत्रूणां हिंसक इंद्र ! त्वं नः अस्मान् प्रति आ तु क्षिप्रम् आगच्छ हे इंद्र ! महान् प्रभूतः त्वम् महीभिः महतीभिः ऊतिभिः रक्षाभिः सह अस्माकम् अर्द्धं समीपम् आ गहि आगच्छ ॥ ७ ॥

(वृत्रहन्) हे शत्रुओंके नाशक इन्द्र तुम (नः) हमारे समीप (आ तु) शीघ्र आओ हे इन्द्र महान् हुए तुम (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षाओंके साथ (अस्माकम्) हमारे (अर्द्धम्) समीप (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ १उ ३ १ २
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वत्स ऋषिः । अस्य इन्द्रस्य तत् ओजः बलं तित्विषे दिदीपे त्विष दीप्तौ (दि० प०) यत् येन ओजसा अयम् इन्द्रः

उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ चर्मेव समवर्त्तयत् सम्यग् वर्त्तयति । यथा कश्चित् कश्चित् चर्म कदाचिद् विस्तारयति कदाचित् सङ्कोचयति,एवं तदधीन अभूतामित्यर्थः ॥ ८ ॥

(अस्य) इस इन्द्रका (तत्) वह प्रसिद्ध (ओजः) बल (तित्विषे) प्रदीप्त हुआ (यत्) जिस बलसे यह (इंद्रः) इंद्र (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनों को (चर्मेव) चर्मकी समान (समवर्त्तयत्) वर्तता है अर्थात् जैसे कोई चर्मको कभी खोललेता है और कभी तै करलेता है तैसे ही द्युलोक और भूलोक इन्द्र के अधीन हैं ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ ३ १ २ २ २

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।

२ ३ १ २

वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ९ ॥

अथ नवमी शुनःशेप ऋषिः । हे इन्द्र!अयम् उ अयमपि दृश्यमानः सोमः ते त्वदर्थं सम्पादितः यं सं मं समतसि सम्यक् सातत्येन प्राप्नोषि तत्र दृष्टांतः कपोत इव यथा कपोताख्यः पक्षी गर्भधिं गर्भधारिणीं कपोतीं प्राप्नोति तद्वत् तच्चित् तस्मादेव कारणात् नः अस्मदीयं वचः ओहसे प्राप्नोति ॥ ९ ॥

हे इंद्र ! (अयम्, उ) यह भी दृश्यमान सोम (ते) तुम्हारे लिये तयार किया है, जिस सोमको (समतसि निरन्तर सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हो (कपोत इव) जैसे कबूतर पक्षी (*गर्भधिम्) गर्भ धारण करनेवाली कपोतीको प्राप्त होता है (तच्चित) तिसी कारणसे (नः) हमारे (वचः) वचनको (ओहसे) प्राप्त होता है ९

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वात आ वातु भेषजꣳ शम्भुमयोभु नो हृदे ।

२ ३ १ २

प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १० ॥

अथ दशमी । वातायन उल्ल ऋषिः । वातः वायुः नः अस्माकं हृदे हृदयाय भेषजम् औषधम् उदकं वा आवातु आगमयतु कीदृग्भूतम् ? शम्भु रोगशमनस्य भावयितृ मयोभु मयसः सुखस्य च भावयितृ अपि च नः अस्माकम् आयूंषि प्रतारिषत् प्रवर्द्धयतु ॥ १० ॥

(वातः) वायु (नः) हमारे (हृदे हृदयके अर्थ (शम्भु) रोगशान्ति करने वाले (मयोभु, सुख देनेवाले (भेषजम्) औषध वा

जलको (आ वातु) प्राप्त करावें और (नः) हमारी (आयूंषि) आयुओंको (प्रतारिषत्) बढावें ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यꣳ रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
२ ३ १ २ ३ १ २
न किः स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

अथ अष्टमे खण्डे-सैषा प्रथमा । कण्व ऋषिः । प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानयुक्ताः वरुणादयो देवाः यं यजमानं रक्षंति स यजमानः न किः दभ्यते केनापि न हिंस्यते ॥ १ ॥

(प्रचेतसः) श्रेष्ठ ज्ञानवाले (वरुणः) वरुण देवता (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा)अर्यमा देवता (यम्) जिस यजमानको (रक्षंति) रक्षा करते हैं (सः) वह यजमान (जनः) पुरुष (न किः दभ्येत) किसीसे भी हिंसित नहीं होता ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
३ २ ३ १ २
वरिवस्या महोनाम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वत्स ऋषिः । हे इंद्र ! गव्योषु गव्या उ सु. इति निपातद्वयसमुदायस्य एकवद्भावेन निपातवद्भावात् प्रकृतिवद्भावाभावः नः अस्माकं गवामिच्छया अस्माकं गां दातुं यथा पुरा पूर्वम् अस्माकं सम्बन्धिनि यागे गवादिदानाय वरिवस्यसि तद्वदद्यापि सुष्ठु वरिवस्य परिचर आगच्छेत्यर्थः । न केवलं गविच्छया किंतु अश्वया अश्वप्रदानेच्छया उत अपि च रथया रथेच्छया महोनां धनानां कर्मणि षष्ठी महांति पूजाकराणि धनानि दानाय वरिवस्य परिचर देहीत्यर्थः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (यथा) जैसे (पुरा)पहिले हमारे यज्ञमें गौ आदि देनेको आप आये थे तैसे ही अब (नः) हमें (सु—गव्या) सुन्दर गौ देने की इच्छा करके (उ) और (अश्वया) अश्वदानकी इच्छा करके (उत) और (रथया) रथ देनेकी इच्छा करके (महोनाम्) प्रतिष्ठा करानवाले धनोंको देनेके लिये (वरिवस्या) आइये) ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्स ऋषिः । हे इन्द्र ! ते त्वदीयाः इमाः पृश्नयः प्राष्टवर्णा गावः घृतं क्षरणशीलम् एनाम् आशिरम् आश्रयणद्रव्यं पयः दुहते दुहन्ति क्षारयन्ति । कीदृश्यः पृश्नयः ? ऋतस्य सत्यस्य अवितथस्य इन्द्रस्य यज्ञस्य वा पिप्युषीः वर्धयित्र्यः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारी (इमाः) यह (पृश्नयः) श्रेष्ठ वर्णकी (ऋतस्य) सत्य इन्द्र और यज्ञकी (पिप्युषीः) बढानेवालीं गौएँ (घृतम्) टपकनेवाले (एनाम्) इस (आशिरम्) दूधको (दुहते) पात्रमें पूर्ण करदेती हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरुष्टुत ।
१ २र ३ १ २
यत्सोमे सोम आभुवः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे पुरुणामन् ! बहुविधशक्रवृत्रहादिनामोपेत ! यद्वा बहुस्तुतिमन् । नमयति स्तुत्यं देवं वशं नयतीति नाम स्तोत्रम् अत एव पुरुष्टुत ! बहुभिरभिष्टुतेन्द्र ! सोमे सोमे मदीयेषु सर्वेषु सोमेषु त्वं यद् यदा आभुवः तेषां पानार्थं समन्ताद्भवः तदा वयं अया अनया ईदृश्या गव्यया गा आत्मान इच्छन्त्या धिया बुद्ध्या युक्ता भवेम । त्वयि सोमं पिबति सति वयं गवादियुक्ता भवेमेत्यर्थः आभुवः आभवः इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(पुरुणामन्) हे अनेकों नामवाले (पुरुष्टुत) हे अनेकोंसे स्तुति किये हुए इंद्र (सोमे सोमे) मेरे सब सोमयागोंमें तुम (यद्) जब (आभुवः) उसके पीनेको आये तब हम (अया) इस (गव्यया) अपने अर्थ गौओंको चाहनेवाली (धिया) बुद्धिसे युक्त हों अर्थात् जब आप सोम पियें तब हम गौ आदि धनसे युक्त हों ॥ ४ ॥

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। मधुच्छन्दा ऋषिः। सरस्वती देवी वाजेभिः हविर्लक्षणैः अन्नैर्निमित्तभूतैः, यद्वा यजमानेभ्यो दातव्यैरन्नैर्निमित्तभूतैः नः अस्मदीयं यज्ञं वष्टु कामयतां कामयित्वा च निर्वहत्वित्यर्थः। तथा चैतरेयारण्यकाण्डे श्रुत्यैवं व्याख्यातम् यज्ञं वष्ट्विति यदाह, यज्ञं वहत्वित्येव तदाहेति कीदृशी सरस्वती? पावका शोधयित्री वाजिनीवती अन्नवत्क्रियावती धिया वसुः कर्मप्राप्यधननिमित्तभूता वाग्देवतायास्तथाविधधननिमित्तत्वमैतरेयारण्यकाण्डे श्रुत्या व्याख्यातम् यज्ञं वष्टु धियावसुरिति वाग्वै धियावसुरिति। श्येनः सोमः इत्यादिषु पञ्चविंशतिसंख्याकेषु देवताविशेषवाचिषु पदेषु सरमा,सरस्वती इति पठितम्। एतामृचं यास्क एवं व्याचष्ट (नै० ११, २६) पावका नः सरस्वती यज्ञं वष्टु धियावसुः कर्मवसुरिति॥ ५॥

(पावका) पवित्र करनेवाली (वाजिनीवती) अन्नदायक शक्ति (धियावसुः) कर्मसे प्राप्त होने योग्य धनकी कारणरूप (सरस्वती) सरस्वती देवी (वाजेभिः) देनेयोग्य अन्नों सहित (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञको (वष्टु) चाहे और उसको पूर्ण करे॥ ५॥

२ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रꣳ सोमस्य तर्पयात्।
२ ३ २३ १ २
स नो वसून्या भरात्॥ ६॥

अथ षष्ठी। वामदेव ऋषिः। नाहुषीषु नहुष इति मनुष्यनाम (नि० २, ३, ९) नहुषसम्बन्धिनीषु प्रजासु कः इमम् इंद्रम् सोमस्य सोमेन तर्पयात् तर्पयति। प्रीणाति सः नाहुषीभिस्तर्पयितुमशक्य इन्द्रः नः अस्माकं सम्बन्धिनि यज्ञे तृप्तः सन् वसूनि धनानि आभरत् आहरत्वित्यर्थः॥ ६॥

(नाहुषीषु) मानुषी प्रजाओंमें (इमम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्रको (कः) कौन (तर्पयात्) तृप्त करसकता है (सः) वह मानुषी प्रजाओंसे तृप्त करनेको अशक्य इन्द्र (नः) हमारे यज्ञमें तृप्त होकर (वसूनि) धनोंको (आभरत्) देय॥ ६॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।
२उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम॥ ७॥

अथ सप्तमी । इरिम्बिठ ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वम् आयाहि आगच्छ वयं ते त्वदर्थं सुषुमा हि सोममभिषुतवन्तः खलु तम् इमम् अभिषुतं सोमं त्वं पिब त्वदर्थं मम मदीयम् इदम् बर्हिः वेद्यामास्तीर्णं दर्भम् आसदः आसीद अभि निषीद ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (आयाहि) आओ, हमने (ते) तुम्हारे निमित्त (सुषुमा-हि) सोमका अभिषव किया है, ऐसे (इमम्) इस सम्पादन किये हुए (सोमम्) सोमको (पिब) पियो, तुम्हारे निमित्त स्थापन किये (मम) मेरे (इदम्) इस (बर्हिः) वेदीपर बिछे हुए कुशासन पर (आसदः) विराजमान हूजिये ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
३ २३ १२
दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वारुणिः सत्यधृतिर्ऋषिः । त्रीणां त्रयाणां मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य च द्युक्षं दीप्तम् अतएव दुराधर्षम् अन्यैर्धर्षितुं बाधितुमशक्यं महि महत् अवर अवः रक्षणम् अस्माकम् अस्तु अवस् इत्यत्र अवःशब्दस्य विसर्जनीयस्य रेफादेशश्छान्दसः।अवर अवः इति च पाठौ८

(मित्रस्य) मित्रका (अर्यम्णः) अर्यमाका (वरुणस्य) वरुणका (त्रीणाम्) तीनोंका (द्युक्षम्) दीप्त (दुराधर्षम्) दूसरोंसे बाधित न होनेवाला (महि) बड़ा (अवः) रक्षण, हमारा (अस्तु) हो ॥ ८

१ २ ३ १ २
त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
१ २
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वत्स ऋषिः । हे पुरूवसो ! बहुधन ! इन्द्र ! प्रणेतः ! कर्मणां पारं प्रकर्षेण नेतः ! इंद्र ! त्वावतः त्वत्सदृशस्य इंद्रसमानस्यान्यस्याभावात् तथेत्यर्थः तव स्वभूताः वयम् स्मसि स्मः । हे हरीणाम् एतत् संज्ञकानामश्वानां स्थातः ! अधिष्ठातः ! ॥ ९ ॥

(पुरूवसो) बहुत धनवाले (प्रणेतः) कर्मोंको उत्तमतासे पार लगानेवाले (हरीणाम्) हरिनामक अश्वोंके (स्थातः) अधिष्ठाता (इन्द्र) हे इन्द्र (त्वावतः) तुम्हारे निज (वयम्) हम (स्मसि) हैं९

द्वितीयाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

१२ ३ १ २

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

अथ नवमे खण्डे-सैषा प्रथमा । प्रगाथ ऋषिः । हे इंद्र । त्वा त्वाम् सोमाः उत् उत्कृष्टं मदन्तु मादयन्तु हे अद्रिवः वज्रवन् ! इन्द्र ! त्वमस्मभ्यं राधः धनं कृणुष्व कुरु प्रयच्छ । किंच ब्रह्मद्विषः ब्राह्मणद्वेष्टीन् अव जहि विदारयेत्यर्थः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (सोमाः) सोम (उत्) उत्तम (मदन्तु) प्रसन्नता दें (अद्रिवः) हे वज्रधारिन् इन्द्र ! तुम हमें (राधः) धन (कृणुष्व) दो, और (ब्रह्मद्विषः) ब्राह्मणोंके द्वेषियोंको (अवजहि) नष्ट करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

२ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विश्वामित्र ऋषिः। गिर्वणः गीर्भिः वाग्भिः स्तुतिभिः वननीय ! तथा च यास्कः गिर्वणो देवो भवति गीर्भिरेनं वनयन्तीति (नै० ६, १४) तादृश ! हे इन्द्र ! नः अस्मदीयं सुतम् अभिषुतम् इमं सोमं पाहि पिब यतः मधोः मदकरस्य सोमस्य धाराभिः अज्यसे सिच्यसे । हे इन्द्र ! त्वादातम् इत् त्वया शोधितं विशदीकृतमेव यशः अन्नम् अस्मासु भवति ॥ २ ॥

(गिर्वणः) हे स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य इन्द्र ! (नः) हमारे (सुतम्) सम्पादन किये हुए इस सोमको (पाहि) पियो, क्योंकि (मधोः) मदकारी सोमकी (धाराभिः) धाराओंसे (अज्यसे) सींचे जाते हो (इन्द्र) हे इंद्र ! (त्वादातं इत्) तुम्हारा शुद्ध किया हुआ ही (यशः) अन्न हमारे पास होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र३ २

सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन् ।

२ ३ २ ३२उ ३ १ २

नः देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। वामदेव ऋषिः। ऋत्विग्यजमानाः ! इन्द्रः सदा सर्वदा वः युष्मान् आ चकृषत् यज्ञानुष्ठानार्थम् आकृषत् कर्तुमिच्छति किं कुर्वन् उपोनु युष्माकं समीप एव स सपर्यन् पुनः पुनः भृशं वा सपर्यां कुर्वन् हविर्भोक्तुं मामाह्वयध्वमिति प्रार्थयमान इत्यर्थः अत एव श्रुत्यन्तरे देवानां यजमानप्रदत्तहविरुपजीवित्वं श्रूयते इतो दानाद्धि देवा उपजीवन्तीति। अतः अस्मत्सपर्याकर्तृत्वात् इन्द्रः देवः न शूरः यजमानानां बाधक इत्यर्थः ॥ ३ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (इन्द्र) इन्द्र (सदा) सर्वदा (उपोनु) तुम्हारे समीप (सपर्यन्) बार २ प्रार्थना करता हुआ (वः) तुम्हें (आचकृषत्) यज्ञानुष्ठानके निमित्त करना चाहता है (नः) हमारा (वृतः) वरण किया हुआ (इन्द्रः) इंद्र (देवः) देव (शूरः) शूर है ३

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्रातिरिच्यते ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी श्रुतकक्ष ऋषिः हे इंद्र ! इंदवः स्रवन्तः अस्माभिर्दीयमानाः सोमाः त्वा त्वाम् आविशन्तु। तत्र दृष्टांतः समुद्रम् इव सिंधवः स्यन्दनशीला नद्यो यथा समुद्रं जलाशयं सर्वतः प्रविशन्ति तद्वत्। यत एवं तस्मात् हे इन्द्र ! त्वां कश्चिदपि देवः धनेन बलेन वा न अतिरिच्यते नातिरिक्तोऽस्ति सामर्थ्यवान् वृत्तोऽधिको नास्तीत्यर्थः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! (इन्दवः) हमारे दिये हुए टपकते हुए सोम (सिंधवः समुद्रं इव) वहनेवाली नदियें जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं तैसे (त्वा) तुझे (आविशन्तु) प्राप्त हों, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र ! कोई भी देवता धनसे या वलसे (न अतिरिच्यते) तुम्हारी अपेक्षा वडा नहीं होसकता ॥ ४ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। मधुच्छन्दा ऋषिः। गाथिनः गीयमानसामयुक्ता उद्गातारः इन्द्रम् इत् इन्द्रमेव बृहत् बृहता त्वामिद्धि हवामहे इत्यस्यामृच्युत्पन्नेन बृहन्नामकेन साम्ना अनूषत स्तुवन्ति। अर्किणः अर्चनहेतुमन्त्रोपेता होतारः अर्केभिः उक्थरूपैर्मन्त्रैरधूषत। ये त्ववशिष्टा अध्व-

यंवः ते वाणीः वाग्भिर्यजूरूपाभि इन्द्रम् अनूषत । अर्कशब्दस्य मन्त्र-परत्वं यास्केनोक्तम् (५, ४) अर्को मंत्रो भवति यदनेनार्चन्तीति ॥५॥

(गाथिनः) गाये जाते हुए सामसे युक्त उद्गाता (इन्द्रम्, इत्) इन्द्रको ही (बृहत्) बृहत् सामके द्वारा (अनूषत) स्तुति करते हैं (अर्किणः) अर्चनके मंत्रों सहित होता (अर्कभिः) उक्थरूप मन्त्रों से स्तुति करते हैं और जो शेष अध्वर्यु हैं वह (वाणीः) यजुरूप वाणियोंसे (इन्द्रम्) इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभु ँ रयिम् ।

३ १ २ ३ १ २

वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी श्रुतकक्ष ऋषिः । इन्द्रः एवमस्माभिः स्तुतः इष्टः सन् ऋभुक्षणम् वा दपूर्वस्य (६,४,९,पा०) इति दीर्घाभावः यागादिकर्मकरणेन महांतम् सर्वेषां भ्रातॄणां श्रेष्ठं सौधन्वनं वा। अथवा तृतीयसवने प्रजापतिसवित्रोर्मध्ये स.गपानेन महान्तं रयिं दातारं ऋभुम् सोमपानेन मर्त्यत्वं विहाय देवत्वं प्राप्तं तादृशम् एतन्नामकं देवं नः अस्मभ्यम् इषे अन्नार्थं ददातु प्रयच्छतु।तथा वाजी बलवान् इंद्रः वाजिनं बलवंतं वाजनामानं कनीयांसं वा भ्रातरं सौधन्वनम् अस्माकमन्नलाभाय ददातु ६

(इन्द्रः) हमसे इस प्रकार स्तुति किया हुआ इंद्र (ऋभुक्षणम्) सबों में श्रेष्ठ (रयिम्) दाता (ऋभुम्) सोमपानसे अमर हुए ऋभु नामक देवतको (नः) हमें (इषे) अन्नके लिये (ददातु) दो, तथा (वाजी) बलवान् इन्द्र (वाजिनम्) बलवान् छोटे भाईको हमें अन्न की प्राप्तिके निमित्त (ददातु) दो ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।

२उ ३ १ २र

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । गृत्समद ऋषि । इन्द्रः महत् अधिकम् भयं साध्वसं भयकारणं वा । अङ्ग क्षिप्रम् अभीषत् अभिभवति; अपचुच्यवत् अपच्यावयति च । यद्वा अभीषद् अभिभवद् भयकारणम् अपच्यावयेत्

हि यस्मात् कारणात् सस्थिरः केनापि चालयितुमशक्यः विचर्षणिः विश्वस्य द्रष्टा ॥ ७ ॥

(स्थिरः) किसीसे चलायमान न होसकनेवाला (विचर्षणिः) विश्वका द्रष्टा (इंद्रः) इन्द्र (महत्) अधिक (भयम्) भयको (अङ्ग) शीघ्र (हि) निश्चय (अमीषत्) तिरस्कृत करता है (अपचुच्युवत्) दूर भी करता है ॥ ७ ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः ।

२ ३ ३ २ उ ३ १ २

गावो वत्सं न धेनवः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । भरद्वाज ऋषिः। हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! सुतेसुते सोमेऽभिषुते सति इमाः अस्मदीयाः गिरः स्तुतयः त्वा त्वां नक्षन्ते व्याप्नुवन्ति । धेनवः दोग्ध्र्यः गावः न गाव इव वत्सं यथा शीघ्रं व्याप्नुवन्ति तद्वत् ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे ऋचाओंसे स्तुति करने योग्य इंद्र ! (सुते सुते) सोमका अभिषव होने पर (इमाः) यह हमारी (गिरः) स्तुतियें (धेनवः) दूध देनेवाली (गावः) गौएँ (वत्सं न) जैसे शीघ्र ही बछड़ेके समीप पहुँचती हैं तैसे ही (त्वां) तुम्हे (नक्षन्ते) प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रा नु पूषणा वयꣳ सख्याय स्वस्तये ।

३ २ ३ १ २

हुवेम वाजसातये ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाज ऋषिः । इतरेतरयोगादिन्द्रपूषशब्दयोरुभयत्र द्विवचनम् इन्द्रापूषणा देवो नु अद्य च वयम् स्वस्तये सख्याय शोभनाय सखित्वाय वाजसातये वाजस्यान्नस्य बलस्य वा सातये सम्भजनाय च हुवेम आह्वयामः स्तवामो वा ॥ ९ ॥

(इन्द्रापूषणा) इन्द्र और पूषा देवताको (नु) आज ही (वयम्) हम (स्वस्तये) कल्याणरूप (सख्याय) मित्रभावके निमित्त (वाजसातये) अन्न और जलकी प्राप्तिके लिये (हुवेम) आह्वान करते हैं ९

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।

२ ३२३ ३ २
न क्येवं यथा त्वम् ॥ १० ॥

अथ दशमी वामदेव ऋषिः। हे वृत्रहन्! वृत्रस्य नाशक! इन्द्र! इन्द्र लोकेऽपीति शेषः। त्वत् त्वत्तः उत्तरः उत्कृष्टतरः नकि अस्ति न भवति त्वत्तो ज्यायान् प्रशस्ततर एकोऽपि नास्ति। इन्द्र! त्वं लोके यथा प्रसिद्धो भवसि तथाविध एकोऽपि नकिरेवास्ति नैव भवति कश्चिदपि लोके इन्द्रसदृशो नास्तीत्यर्थः॥ १०॥

(वृत्रहन्) वृत्रासुरके नाशक (इन्द्र) हे इन्द्र! इन्द्रलोकमें भी (त्वत्) तुमसे (उत्तरः) उत्तम (न कि अस्ति) नहीं है (ज्यायान्) तुमसे श्रेष्ठ भी कोई नहीं है, हे इन्द्र! (त्वम्) तुम लोकमें (यथा) जैसे प्रसिद्ध हो (एवम्) ऐसा एक भी (नकि अस्ति) नहीं है १०

द्वितीय अध्यायका नवम खण्ड समाप्त।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।
३ २ ३ १ २
समानमु प्र शꣳसिषम् ॥ १ ॥

अथ दशमे खण्डे—सैषा प्रथमा। त्रिशोक ऋषिः। हे अस्मदीया जनाः! वः युष्माकं जनानां पुत्रपौत्रादीनां तरणिं तारकम् त्रदं शत्रूणां तर्दयितारं गोमतः पशुमतः वाजस्य अन्नस्य दातारं च इन्द्रम् समानम् उ साधारणमेव प्रशंसिषम् प्रकर्षेण स्तौमि ॥ १ ॥

हे हमारे पुरुषो! (वः) तुम (जनानाम्) पुत्र पौत्रादिकोंके (तरणिम्) तारक (त्रदम्) शत्रुओंको भय देनेवाले (गोमतः) पशुओं वाले (वाजस्य) अन्नके दाता इन्द्रको (समानम् उ) निरन्तर ही (प्रशंसिषम्) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
३ १ २ ३ १ २र
सजोषा वृषभं पतिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। मधुच्छन्दा ऋषिः। हे इन्द्र! ते गिरः त्वदीयाः स्तुतीः असृग्रं सृष्टवानस्मि। ता गिरः स्वर्गेऽवस्थितं त्वां प्रति उदहासत उद्गत्य प्राप्नुवन्। तादृशीर्गिरस्त्वं सजोषाः सेवितवानसि। कीदृशं त्वाम्? वृषभं कामानां वर्षितारं पतिं सोमस्य पातारं, यज मा-

नानां पालयितारं वा, पाता वा पालयिता वेति (१०, ११) यास्केनोक्तत्वात् ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (ते गिरः) तेरी स्तुतियोंको (असृग्रम्) मैंने रचा है, वह स्तुतियें स्वर्ग में स्थित (वृषभम्) मनोरथों की वर्षा करने वाले (पतिम्) सोम पीने वाले (त्वाम् प्रति) तुम्हारे समीप (उदहासत) पहुँचीं (सजोषाः) उनको तुमने सेवन किया ॥ २ ॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा ।
२ २उ ३ १ २
मित्राः पान्त्यद्रुहः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वत्स ऋषिः । सः मर्त्यः मनुष्यः यजमानः सुनीथः सुयज्ञः सुनयनो वा भवति । घ इति प्रसिद्धौ । स इत्युक्तं कमित्याह यं यजमानं मरुतः देवाः पांति रक्षन्ति अद्रुहः अद्रोग्धारो मरुतः । तथा अर्यमा पाति । यं मित्रः पाति स एवं भवतीति ॥ ३ ॥

(यम्) जिसको (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले (मरुतः) मरुत् (यम्) जिसको (अर्यमा) अर्यमा (मित्रः) मित्र देवता (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः) वह (मर्त्यः) यजमान (सुनीथः) सुन्दर यज्ञ वा सुन्दर नेत्रोंवाला होता है (घ) यह बात प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । त्रिशोक ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वया च वीडौ दृढे परैः कम्पयितुमशक्ये यत् धनं पराभृतं विन्यस्तं यत् च स्थिरे स्वयमचले पराभृतं यत् च अपि पर्शाने विमर्शाक्षमे पराभृतं, यद् वसु स्पार्हं स्पृहणीयं तत् धनम् आभर आहर ॥ ४ ॥

(इन्द्र) इंद्र ! तुमने (वीडौ) किसीसे चलायमान न होसकने वाले पुरुषमें (यत्) जो धन (यत्) जो (स्थिरे) स्वयं अचल पुरुष में (यत्) जो (पर्शाने) असहन में (पराभृतम्) स्थापित किया (तत्) वह (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) धन (आभर) हमें दीजिये ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।

३ २३ १२ २३
आशिषे राधसे महे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । सुकक्ष ऋषिः । श्रुतं विख्यातम् वृत्रहन्तमम् अतिशयेन वृत्रस्य हन्तारं शर्द्धं बलभूतं वेगवन्तं वा एतादृशमिन्द्रं चर्षणीनां मनुष्याणां वः युष्माकम् आशिषे अश्नोतेर्लेटि उत्तम इति सिप्प्रत्ययः छन्दस्यपि दृश्यते (६, ४, ७३, पा०) इत्याडागमः, तमिन्द्रं स्तुतिभिः प्रीणयित्वा युष्मभ्यं प्रकर्षेण अश्नवै प्रयच्छानीत्यर्थः । किमर्थम् ? महे महते राधसे धनाय धनं युष्मभ्यं दातुम् । आशिषे आशुषे इति च पाठौ ॥ ५ ॥

(श्रुतम्) प्रसिद्ध (वृत्रहन्तमम्) अतिशय करके वृत्रासुरके नाशक (शर्द्धम्) परमवेग वाले इन्द्रको (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (वः) तुम्हारे (महे) बहुत से (राधसे) अन्नके लिए(प्र आशिषे) प्रसन्न करके विशेषरूपसे अर्पण करता हूँ ॥ ५ ॥

१२ ३ १२ ३१२ ३ १२
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः ।
१२ ३ १२
अरꣳ शक्र परेमणि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वामदेव ऋषिः । हे शूर ! वीर ! इंद्र ! ते तव श्रवसे श्रवणीयां त्वदीयां कीर्तिं श्रोतुम् । अरम् अलं पर्याप्तं यथा भवति तथा गमेम प्रवृत्ता भवेम । हे शक्र ! शक्तियुक्तेन्द्र ! त्वावतः त्वत्सदृशस्य परेमणि परत्वे उत्कर्षनिमित्तम् अरं गमेम त्वत्कीर्तिवदन्यस्यापि त्वत्सदृशस्य देवस्य कीर्तिं गच्छेमेत्यर्थः ॥ ६ ॥

(शूर) वीर (इंद्र) हे इन्द्र (ते) तेरी (श्रवसे) कीर्तिके सुननेको (अरम्) पर्याप्तरूपसे (गमेम) प्रवृत्त हों (शक्र) हे इन्द्र ! (त्वावतः) तेरी समान (परेमणि) श्रेष्ठ अन्य देवताकी कीर्तिको भी (अरम्) पर्याप्तरूपसे प्राप्त हों ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १२ ३१२ ३ १२
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् ।
१ २ ३१२
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्र ऋषिः । यजमानो ब्रूते हे इन्द्र ! धाना-

वन्तं धाना भृष्टयवाः तद्वन्तं करम्भिणं करम्भो दधिमिश्राः सक्तवः तद्वन्तम् अपूपवन्तम् सवनीयपुरोडाशोपेतम् उक्थिनं स्तोत्रियं नः अस्मदीयमिमं सोमं प्रातः सवने जुषस्व सेवस्व । करम्भशब्दात् तदस्यास्तीत्यत इनिः तस्य प्रत्ययस्वरः । प्रातः स्वरादिष्वन्तोदात्तत्वेन पठितत्वादन्तोदात्तः ॥ ७ ॥

यजमान कहता है कि-(इन्द्र) हे इन्द्र (धानावन्तम्) भुने हुए यव वाले (करम्भिणम्) दधि मिले सत्तुओंवाले (अपूपवन्तम्) यज्ञीय पुरोडाशसे युक्त (उक्थिनम्) स्तुति किये हुए (नः) हमारे इस सोम को (प्रातः) प्रातःकालके सवनमें (जुषस्व) सेवन करो ॥ ७ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।

२ ३ १ २र ३ १ २

विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । गोसूक्त्यश्वसूक्तिनावृषी । पुरा किलेन्द्रोऽसुरान् जित्वा नमुचिमसुरं ग्रहीतुं न शशाक । स च युध्यमानस्तेनासुरेण जगृहे । स च गृहीतमिन्द्रमेवमवोचत् त्वां विसृजामि रात्रावह्नि च शुष्केणार्द्रेण चायुधेन यदि मां मा हिंसीरिति । स इन्द्रस्तेन विसृष्टः सन् अहोरात्रयोः सन्धौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन फेनेन तस्य शिरश्चिच्छेद अयमर्थोऽस्यां प्रतिपाद्यते । इन्द्रः त्वम् अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेः असुरस्य शिरः उदवर्तयः शरीरादुद्गतमवर्तयः अच्छैत्सीरित्यर्थः । कदेति चेत् यत् यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्द्धमानाः आसुरी सेनाः अजयः जितवानसि । इन्द्रो वृत्रहन्ता असुरान् परास्य नमुचिमसुरं नालभत इत्यादिकमध्वर्यु ब्राह्मणमनुसन्धेयम् ॥ ८ ॥

कहते हैं, कि-पहिले इन्द्रने सब असुरोंको तो जीत लिया परन्तु नमुचि को न पकड़ सका, किंतु युद्ध करतेमें उस असुरने ही इन्द्रको पकड़ लिया, उस समय इन्द्रसे कहा कि यदि रातमें वा दिनमें सूखे वा गीले शस्त्रसे मुझे न मारनेकी प्रतिज्ञा करें तो मैं तुझे छोड़ दूँ इस प्रतिज्ञा पर छोड़े हुए इन्द्रने दिन और रातके सन्धिकाल में सूखे और गीले दोनोंसे विलक्षण झागोंके शस्त्रसे उसका शिर काटा इसका ही आभास इस मंत्रमें है, कि-(यत्) जब (विश्वाः) सब (स्पृधः) डाह करने वाली असुरोंकी सेनाओं को (अजयः) जीत लिया, तब (इन्द्रः) इन्द्रने (अपां फेनेन) वज्ररूप हुए जलके झागोंसे (नमुचेः) नमुचि नामक असुरका (शिरः) शिर (अवर्त्तय) काटलिया ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः ।
१ २
तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥ ९ ॥

अथ नवमी । वामदेव ऋषिः । हे इंद्र ! ते त्वदर्थम् इमे पुरतो दृश्यमानाः सोमा सुतासः अभिषुताः ये च अन्ये सोमाः सोत्वाः इत ऊर्ध्वमभिषोतव्याः हे प्रभूवसो ! प्रभूतधनवन्निन्द्र ! तेषाम् अभिषुतानाम् अभिषोतव्यानामर्थं मत्स्व हृष्टो भव ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (ते) तुम्हारे लिए (इमे) यह (सोमाः) सोम (सुतासः) सम्पादन किये हैं (च) और (ये) जो (सोत्वाः) सम्पादन कियेजायँगे (प्रभूवसो) हे बहुतसे धनवाले इंद्र (तेषाम्) उन सब सोमरसोंसे (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तुभ्यꣳ सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।
३ १ २
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय ॥ १० ॥

अथ दशमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे विभावसो ! दीप्तिधन ! दीप्तिव्यापक ! वा इंद्र ! तुभ्यं त्वदर्थं सोमाः सुतासः अभिषुताः तथा बर्हिः स्तीर्णं प्रसारितम् । अतः हे इंद्र ! त्वं बर्हिषि निषद्य सोमान् पीत्वा स्तोतृभ्यः अस्मभ्यं मृडय दयां कुरु यद्वा अस्मान् सुखय । क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् इति चतुर्थी ॥ १० ॥

(विभावसो) दीप्तिरूप धन वाले इन्द्र ! (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (सोमाः) सोम (सुतासः) सम्पादन करे हैं (बर्हिः) कुशासन (स्तीर्णम्) विछाया है, इस कारण (इंद्र) हे इन्द्र ! तुम कुशासन पर बैठ कर सोमोंको पीकर (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करनेवालोंको (मृडय) सुख दीजिये ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य, दशमः खण्डः समाप्तः ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ व इन्द्रं कृविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
१ २ ३ १ २
मꣳहिष्ठꣳ सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

अथ एकादशे खण्डे—सेयं प्रथमा । शुनः शेप ऋषिः । वाजयन्तः अन्नमिच्छन्तो वयं शुनःशेपाः हे ऋत्विग्यजमानाः ! वः युष्माकं सम्बन्धिनम् इन्द्रम् इन्दुभिः सोमैः आसिञ्चे वचनव्यत्ययः (३, १, ८५ पा०) सर्वतः सिञ्चामहे सपर्यामः । कीदृशं ? शतक्रतुं शतसंख्याक-कर्मोपेतम् मंहिष्ठम् अतिशयेन महान्तम् । सेचने दृष्टान्तः कृविं यथा कृतीच्छेदने, कृत्यते छिद्यते खन्यते इति कृविः कृषिः तां जलेन पूरयन्ति तद्वत् ॥ १ ॥

(वाजयन्तः) अन्नको चाहने वाले हम, हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः) तुम्हारे (शतक्रतुम्) सैंकड़ों पराक्रम करने वाले (मंहिष्ठम्) परम पूज्य (इन्द्रम्) इन्द्रको (कृविं यथा) जैसे खेतीको जलसे सींचते हैं तिस प्रकार (इन्दुभिः) सोमोंसे (आसिञ्चे) सब ओरसे सींचकर तृप्त करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया ।
३ २ ३ १ २
इषा सहस्रवाजया ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे इन्द्र ! अतश्चित् अस्मात् द्युलोकादेव यद्वा अस्माच्छत्रुस्थानात् शतवाजयः शतसंख्याकबल-युक्तेन तथा सहस्रवाजया वाजोऽन्नम् (नि० २, ७) सहस्रसंख्या-कान्नवता बहुलान्नेन इषा अन्नरसेन युक्तः सन् नः अस्मान् उपायाहि अधिकमाभिमुख्येनागच्छ ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (अतश्चित्) द्युलोकसे ही (शतवाजया) सैकड़ों प्रकारके बलसे युक्त (सहस्रवाजया) सहस्रों प्रकारके अन्नसे युक्त (इषा) अन्नरसको साथमें लिए हुए (नः) हमारे (उपयाहि) अभि-मुख होकर पास आइये ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम् ।
२ ३ १ २र
क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । त्रिशोक ऋषिः जातः उत्पन्नः वृत्रहा इन्द्रः बुन्दम् इष्वं, तथा च यास्कः बुन्द इषुर्भवतीति (नि० ६, ३२) आददे आदाय चेपुम् उग्राः उद्गूर्णबलाः के के च इह शृण्विरे वीर्येण विश्रुता इति स्वीयां मातरं वि पृच्छात् अप्राक्षीत् ॥ ३ ॥

(जातः) उत्पन्न हुआ (वृत्रहा) इन्द्र (कुन्दम्) बाणको (आददे) ग्रहण करता हुआ, और उस बाणको लेकर (उग्रा) बल दिखानेवाले (के के) कौन कौन (इह) इस जगत्में (शृण्विरे) विख्यात हुए हैं यह बात अपनी मातासे (विपृच्छात्) बूझता हुआ ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृबदुक्थꣳ हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
१ २ ३ २ ३ १ २
साधः कृण्वन्तमवसे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । मेधातिथिर्ऋषिः । ऊतये लोकस्य रक्षणाय सृप्रकरस्नं प्रसृतबाहुं, करस्नौ बाहू कर्मणां प्रस्थातारौ इति यास्कवचनात् अवसे लोकस्य पालनाय साधः साधकं धनं कृण्वन्तं कुर्वन्तं प्रयच्छन्तं वृबदुक्थं महदुक्थम् इन्द्रम् हवामहे आह्वयामः । तथा च यास्कः वृबदुक्थो महदुक्थो वक्तव्यमस्मा उक्थमिति वा (६, ४) इति ॥ ४ ॥

(ऊतये) लोककी रक्षाके लिए (सृप्रकरस्नम्) फैले हुए बाहुको (अवसे) लोकोंके पालनके लिये (साधः) साधक धन (कृण्वंतम्) अर्पण करते हुए (वृबदुक्थम्) महान् स्तुतिवाले इंद्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान् ।
३ २ ३ २ ३ १ २
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः । अहरभिमानी देवः मित्रः वरुणः रात्र्यभिमानी । मित्रश्च वरुणश्च । विद्वान् नेतव्यमुत्तमं स्थानं जानन् नः अस्मान् ऋजुनीती ऋजुनीत्या ऋजुनयनेन कौटिल्यरहितेन गमनेन नयति अभिमतं फलं प्रापयति । तथा देवैः अन्यैः इन्द्रादिभिः सजोषाः समानप्रीतिः अर्य्यमा अहोरात्रविभागस्य कर्त्ता सूर्य्यश्च अस्मानृजुगमनेनाभिमतं स्थानं प्रापयतु । नयति नयतु इति च पाठौ ॥ ५ ॥

दिनका अभिमानी देवता (मित्रः) मित्र, रात्रिका अभिमानी देवता (वरुणः) वरुण (विद्वान्) पहुचाने योग्य उत्तम स्थानको जानताहुआ (नः) हमें (ऋजुनीती) सरल गतिके द्वारा (नयति) अभिमत फल प्राप्त कराता है (देवैः) अन्यदेवताओंके साथ (सजोषाः) समान प्रीति वाला (अर्यमा) दिनरातका विभाग करने वाला सूर्य भी हमैं सरल मार्गसे उस स्थान पर पहुचावै ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत् ।
२ ३ २ ३ १ २
वि भानुं विश्वथातनत् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । ब्रह्मातिथिर्ऋषिः । दूरात् दूरत एव विप्रकृष्टे एव नभसः प्राक् प्रदेशे वर्त्तमाना इह इव सतः सती समीपे विद्यमाना इव समीपे विद्यमानेत्र अरुणप्सुः आरोचमानरूपा ईदृशी उषा यत् यदा अशिश्वितत् अश्वेत्यत् श्विता वर्णे अस्मात् ण्यन्तात् लुङि चङिरूपम् । यद्वृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६ पा०) इति निघातप्रतिषेधः । तदा भानुं दीप्तिं विश्वथा विश्वधा बहुविधम् । व्यतनत् विस्तारयति तनोतेर्व्यत्ययेन शप् (१, १, ८५ पा०) प्रातरनुवाके उषस्येन काण्डेन (१, २४, २) उषाः स्तुता सती प्रादुर्बभूव हे अश्विनौ ! शंसिष्यमाणम् आश्विनं क्रतुं श्रोतुं युवामपि प्रादुर्भवत इत्यध्याहारेण वाक्यं पूरणीयम् । सतः सती इति पाठौ ॥ ६ ॥

(दूरात्) दूर, आकाशके पूर्वी भागमें (इह, सतः, इव) समीप में वर्त्तमानसी (अरुणप्सुः) प्रकाशस्वरूपा उषा (यत्) जब (अशिश्वितत्) प्रकाश फैलाती है, तब (भानुम्) दीप्तिको (विश्वथा) अनेकों प्रकारका (व्यतनत्) करती है ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २र
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १ २
मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्रो जमदग्निर्वा ऋषिः । सुक्रतू शोभनकर्म्माणौ हे मित्रवरुणौ ! नः अस्माकं गव्यूतिं गवां मार्गं गोनिवासस्थानं घृतैः क्षरणसाधनैः पयोभिः आ उक्षतम् आ समन्तात् सिञ्चतम् अस्मभ्यं दोग्ध्रीः गाः प्रयच्छतमिति भावः । रजांसि पारलौकिकान्यसंमद्वावासस्थानानि मध्वा मधुरेण दुग्धरसेन सिञ्चतम् । गव्यूतिम् गोयूतौ छन्दसि (६ १, १२३ पा०) इति वान्तादेशः मध्वा सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वादत्र नुमभावः ॥ ७ ॥

(सुक्रतू) हे शोभन कर्म वाले मित्रावरुण ! (नः) हमारे (गव्यूतिम्) गौओंके निवासस्थानको (घृतैः) घृतके साधन दुधोंसे (आ उक्षतम्) सब ओरसे सींचो अर्थात् हमें दूध वाली गौएँ दो

(रजांसि) हमारे पारलौकिक निवासस्थानोंको मध्वा मधुर दुग्धसे सींचो ॥ ७ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत ।

३ १ २ ३ १ २र

वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । प्रस्कण्व ऋषिः । त्ये ते प्रसिद्धाः गिरः सूनवः वाच उत्पादकाः मरुतः वायवो हि ताल्वोष्ठादिषु सञ्चरन्तो वाचमुत्पादयंति यज्ञेषु स्वकीयेषु यागेषु वर्त्तमानेषु सत्सु काष्ठाः अपः आपोऽपि काष्ठा उच्यंते क्रांत्वा स्थिता भवन्तीति (२, १५) यास्कः उत् उ उत्कर्षेणैव अत्नत अतनिषवन्तः विस्तारितवन्तः । उदकं विस्तार्य्य तत्पानार्थं वाश्राः हम्भारवोपेताः गा अभिज्ञु जान्वभिमुखं यथा भवति तथा यातवे गंतुं प्रेरितवंत इति शेषः ॥ ८ ॥

(त्ये) उन प्रसिद्ध (गिरः सूनवः) वाणीका उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने जो कि तालु ओष्ठ आदिमें विचर कर शब्दको उत्पन्न करते हैं तिन वायुओंने (यज्ञेषु) अपने यज्ञ के होने पर (काष्ठाः) जलोंको (उत्, उ) उत्कर्ष करके (अत्नत) विस्तारित किया और जलको फैलाकर उसको पीनके लिये (वाश्राः) रँभाती हुई गौओंको (अभिज्ञु) घुटनों के बल (यात) जानेको प्रेरणा किया ॥ ८ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २उ ३ २

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

१ २ ३ २

समूढमस्य पाँ सुले ॥ ९ ॥

अथ नवमी । मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुः त्रिविक्रमावतारधारी इदं प्रतीयमानं सर्वं जगत् उद्दिश्य विचक्रमे विशेषेण क्रमणं कृतवान् तदा त्रेधा त्रिभिः प्रकारैः पदं निदधे स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान् । अस्य विष्णोः पांसुले पांसुरे धूलियुक्ते पादस्थाने समूढम् इदं सर्वं जगत् सम्यगंतर्भूतम् ।सेयमृक् यास्के नैवं व्याख्याता विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा यदिदं किंच तद्विक्रमते विष्णुः त्रेधा निधत्ते पदं त्रेधाभावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः । समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः । समूढस्य पांसुरेऽप्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यते अपिवोपमार्थं स्यात् समूढस्य पांसुलं इव पदं न दृश्यत इति । पांसवः

पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा (१२, १९) इति ॥ ९ ॥

(विष्णुः) त्रिविक्रमावतार धारण करने वाले भगवान् (इदम्) इस दृश्यमान सब जगत्को (विचक्रमे) विशेषरूपसे लाँघते हुए, उस समय (त्रेधा) तीनप्रकारसे (पदम्) चरणको (निदधे) स्थापन करते हुए (अस्य) इन विष्णुके (पांसुले) धूलियुक्त चरण-स्थानमें (समूढम्) यह सब जगत् सम्यक् प्रकारसे अन्तर्गत होगया।

द्वितीयाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

अतीहि मन्युषाविणꣳ सुषुवाꣳसमुपेरय।

३ २ ३ २ ३ १ २

अस्य रातौ सुतं पिब ॥ १ ॥

अथ द्वादशखण्डे-सैषा प्रथमा। मेधातिथि ऋषिः। हे इन्द्र! मन्युषाविणं क्रोधेन सोमं सुन्वन्तम् अतीहि अतिगच्छ तथास्मिन् देशे सुषुवांसं सोमं सुतं सुन्वन्तम् उपेरय समीपे प्रेरय। अस्य यजमानस्य रातौ यज्ञाख्ये दाने अभिषुतं सोमं पिब ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (मन्युषाविणम्) क्रोधसे सोमका रस निकालनेवालेको (अतीहि) त्यागदे और तहाँ (सुषुवांसम्) सुन्दर प्रकारसे रस निकालनेवालेको (उपेरय) भेजो (अस्य) इस यजमानके (रातौ) यज्ञसम्बन्धी दानमें (सुतम्) संपादित सोमको (पिब) पियो ॥१॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते।

१ २र ३ १ २

तदिदस्य वर्धनम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वामदेव ऋषिः। महे महते प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानाय देवाय द्योतनादिगुणयुक्तायेन्द्राय कदु कुत्सितम् अस्मदीयं वचः स्तोत्ररूपं सुतं शस्यते प्रशस्तं यथा भवति देवस्तथानुगृह्णात्वित्यर्थः। तदित् तदेव अस्य यजमानस्य वर्द्धनं हि प्रवृत्तिसाधनं खलु ॥ २ ॥

(महे) महान् (प्रचेतसे) श्रेष्ठ ज्ञानवाले (देवाय) इन्द्रदेवताके अर्थ (कदु) हमारा कुत्सित (वचः) स्तोत्ररूप वचन (शस्यते) प्रशंसित हो अर्थात् हमारे यथार्थरूपसे न हुए भी स्तोत्रको इन्द्रदेव अनुग्रह करके स्वीकार करै (तदित्) वह ही (अस्य) इस यजमान का (वर्धनम्) वृद्धिका साधन है ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उक्थं च न शस्यमानं नागोरयिरा चिकेत ।

१ २ ३ २ ३ १ २

न गायत्रं गीयमानम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मेधातिथिप्रियमेधावृषी । गायत्रे गौः अगोः अस्तोतुः अर्यिः अरिः । छान्दसेन यकारः (३, १, ८५ पा०) शत्रुः इन्द्रः शस्यमानं होत्रा पठ्यमानम् उक्थं च न शस्त्रमपि आ चिकेत अभिजानाति कित ज्ञाने, छान्दसो लिट् (३, ४, ७ पा०) नेति सम्प्रत्यर्थे न संप्रति प्रस्तोत्रादिभिर्गीयमानं गायत्रम् गातव्यं साम यद्वा गायत्राख्यम् आचिकेतेत्येव । अतः कारणात् वयमपि तमिन्द्रं स्तुम इत्यर्थः । नागोः अगोः इति, अर्यिः अरिः इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(अगोः) स्तुति न करनेवालेका (अर्यिः) शत्रु इन्द्र (शस्यमानम्) होताके पढ़े हुए (उक्थं च) स्तोत्रको भी (आचिकेत) जानता है, (न) इस समय प्रस्तोता आदिके गाये हुए (गायत्रम्) गायत्र सामको जानता ही है,इसकारण हम भी उस इन्द्रकी स्तुति करते हैं ३

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

हरिवान्त्सुतानाꣳ सखा ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्र ऋषिः । वाजानाम् अन्नानां मध्ये वाजपतिः उत्कृष्टान्नपतिः हरिवान् हरिनामकाश्ववान् इन्द्रः उक्थेभिः होतृप्रयुक्तैः उक्थनामकैर्वा शस्त्रैः मन्दिष्ठः अतिशयेन तृप्तः सन् सुतानाम् अभिषुतानां सोमानां सखा सखिवत् प्रीतिकरः सोमैः प्रीयत इत्यर्थः ४

(वाजानाम्) अन्नोंमें (वाजपतिः) उत्तम अन्नका स्वामी (हरिवान्) हरिनामक घोड़ेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (उक्थेभिः) होताओंके बोले हुए स्तोत्रोंसे (मन्दिष्ठः) अत्यन्त तृप्त हुआ (सुतानाम्) सोमोंका (सखा) मित्रवत् प्रीतिकर्त्ता हो ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।

३ १ २ ३ १ २

महाꣳ इव युवजानिः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । मेधातिथिप्रियमेधावृषी । हे इन्द्र ! नः अस्मदीयं सुतम् अभिषुतं सोमम् उप याहि प्रत्यागच्छ किंच वाजेभिः अन्यदीयैर्हविरूपैरन्नैः मा हृणीयथाः मा ह्रियस्व। तत्र दृष्टांतः युवजानिः यौवनोपेता जाया यस्य सो युवजानिः जायाया निङ् (५,४,१३४पा०) इति समासांतः महान् इव प्रभुरिव यथा रूपवद्भार्योपेतः प्रभुः अन्याभिर्नापह्रियते किंतु तामेव युवतिं प्रत्यागच्छति तद्वत् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमारे (सुतम्) सम्पादन कियेहुए सोमको (उपयाहि) आकर ग्रहण कीजिये और (वाजेभिः) औरोंके हविरूप अन्नोंसे (माहृणीथाः) लोभमें न पडिये (युवजानिः) युवती स्त्रीवाला (महान् इव) प्रभु जैसे अर्थात् जैसे कि युवती स्त्रीवाला राजा अन्य स्त्रियों पर चित्त नहीं डुलाता है किंतु अपनी नवयौवनाके पास ही आता है॥५॥

३ १ २ ३ १ २र३ १ २र ३ १ २ ३ २

कदा वसो स्तोत्र ँ हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः

३ २ ३ २ ३ १ २

दीर्घ ँ सुतं वाताप्याय ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । कौत्सो दुर्मित्र ऋषिः । हे वसो ! वासयेतः ! इन्द्रः स्तोत्रम् अस्मत्कर्तृकं हर्यते कामयमानाय कामयमानं त्वां क्रियाग्रहणं कर्तव्यम् इति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी कदा कस्मिन् काले अवारुधत् अवरोत्स्यति, अवरुध्य च कदा वाः वारयिष्यति, तादृशः कालः कदा अस्माकं सम्भविष्यतीत्याशास्ते । तत्र दृष्टांतः अश्नुते क्षेत्रमिति श्मशा कुल्या लुप्तोपममेतत् । यथा कुल्या तत उदकान्यवरुणद्धि अवरुध्य च वारयति तथेत्यर्थः । किमुद्दिश्यावरोध इति तत्राह दीर्घं सवनत्रयरूपेणायतं सुतम् अभिषुतं सोमं प्रति । किमर्थमिति तदाह वाताप्याय वातेनाप्यते अधस्तान्निपात्यते इति वाताप्यमुदकं तस्य प्रदानायेत्यर्थः ॥ ६ ॥

(वसो) हे व्यापक इन्द्र ! (स्तोत्रम्) हमारे किये हुए स्तोत्रको (हर्यते) चाहते हुए आपको (श्मशा) कृत्रिम नदीकी समान(वाताप्याय) जलदानके निमित्त (दीर्घम्) फैले हुए (सुतम्) सम्पादित सोमके प्रति (कदा) कब (अवारुधत्) रोकोगे और रोककर कब (वाः) वारण करोगे ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतू ँ रनु ।

२ ३२ २ १ २र
तवेद ँ सख्यमस्तृतम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। मेधातिथिर्ऋषिः। हे इन्द्र! ब्राह्मणात् ब्राह्मणात् शंसिसम्बन्धात् राधसः धनभूतात् पात्रात् सोमं पिब। किं कृत्वा? ऋतून् अनु देवाननुसृत्य ऋतवोऽपि पिबन्त्वित्यर्थः। हि यस्मात् तव इदं सख्यम् अस्तृतम् ऋतूनामविच्छिन्नं तस्मादृतुभिः पानं युक्तम् ७

(इंद्र) हे इन्द्र (ब्राह्मणात्) ब्रह्मसंबंधी (राधसः) धनभृत पात्र से (सोमम्) सोमको (ऋतून् अनु) देवताओंके पीछे (पिब) पियो क्योंकि (तव) तुम्हारा (इदम्) यह (सख्यम्) देवताओंके साथ मित्रभाव (अस्तृतम्) अविच्छिन्न है ॥ ७ ॥

३१ २ ३ १२ ३ १२
वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।
१ २
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। मेधातिथिर्ऋषिः। हे गिर्वणः! गीर्भिर्वननीयइन्द्र! ते तवापि वयं घ वयंखलु स्तोतारः स्मसि स्मः भवामः। हे सोमपाः! सोमस्य पातरिंद्र! त्वं न अस्मान् जिन्व प्रीणयसि ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) वाणियोंसे प्रार्थना करने योग्य (इन्द्र) हे इन्द्र! (ते) तुम्हारे भी (वयं घ) हम निश्चय (स्तोतारः) स्तुति करने वाले (स्मसि) हों (सोमपाः) हे सोम पीनेवाले इन्द्र! (त्वम्) तुम (नः) हमें (जिन्वसि) तृप्त करते हो ॥ ८ ॥

१ २ ३१ २र ३ २ ३१२
एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
१ २ २ १ २
सत्राजिदुग्र पौँस्यम् ६ ॥ ॥

अथ नवमी। विश्वामित्रोगाथिनो भीपाद उदलो वा ऋषिः। हे इन्द्र! पृक्षु सम्पृक्तासु कासु चित् कास्वपि नः अस्माकं तनूषु अङ्गेषु नृम्णं बलम् आ धेहि आ समन्तात् स्थापय। हे उग्र उद्गूर्णबल! इन्द्र! सत्राजित् द्वादशाहादिभिः सत्रैः जीयमानो वशीक्रियमाणः सन् पौंस्यम् पुंसे हितं फलम् आ धेहि प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (पृक्षु) संपृक्त (कासुचित्) किन्ही (नः) हमारे (तनूषु) अङ्गोंमें (नृम्णम्) बलको (आ धेहि) स्थापन करो (उग्र)

हे पूर्णबल इन्द्र! (सत्राजित्) बारह दिनमें यज्ञोंके द्वारा वशमें होते हुए (पौंस्यम्) पुरुषके हितकारी फलको (आ धेहि) दो ॥९॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
एवा ते राध्यं मनः ॥ १० ॥

अथ दशमी । श्रुतकक्ष ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वं वीरयुः वीरान् युद्धकर्मणि समर्थान् शत्रून् हन्तुं कामयमानः एव असि भवसि खलु हि प्रसिद्धौ अत एव त्वं शूरः सामर्थ्यवानेव भवसि । उत अपि च स्थिरः संग्रामे धैर्यवान् भवसि । एकत्र स्थित्वैव शत्रून् सम्प्रहरसीत्यर्थः । एवं सति ते तव मनः राध्यं स्तुतिभिराराधनीयमेव, यतोऽनेन मनसा त्वं शत्रुवधं संग्रामे धैर्यादिकं करोषीति । तत एव तव मनः सर्वैः स्तुत्यमित्यर्थः ॥ १० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज–परमेश्वर–वैदिक–मार्ग-प्रवर्त्तक-श्रीवीर-
बुक्क-–भूपाल -साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण
विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दो-
व्याख्याने ऐन्द्रकांडे द्वितीयोऽध्यायः ।

हे इन्द्र ! तुम (वीरयुः) युद्धमें वीर शत्रुओंको मारनेकी कामना वाले (एव) ही (असि) हो (हि) यह बात प्रसिद्ध है,इसी कारण तुम (शूरः) शूर हो (उत) और (स्थिरः) संग्रामोंमें धैर्यधारी हो, एक स्थान पर स्थिर रहकर ही शत्रुओंका संहार करते हो, ऐसा होनसे (ते) तुम्हारा (मनः) मन (राध्यम्) स्तुतियोंसे आराधना करने योग्य है ॥ १० ॥

द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः समाप्तः ।

द्वितीयोऽध्यायश्च समाप्तः ॥

❀ श्रीः ❀

अथ तृतीयाध्याय आरभ्यते

❀ अस्मिन्नध्यायेऽपि इन्द्रः स्तूयते ❀

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

३ १ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१॥

ऋचोऽशीति रभित्वेति बृहत्यः सकला अपि ।
नहि वो मारुती तत्र प्रमित्रायेति संस्तुतिः ।
आदित्यानामथैन्द्राग्नी अपादिन्द्राग्निसंस्तुतिः ।
अश्वित्युक्ता शचीभिर्नः कुष्ठश्चेमा उवामिति ।
यदा कदा वारुणी स्यात्त्वष्टानो बहुदेवता ।
उपस्या प्रत्यु इत्येवा ब्रह्म वर् सूर्यसंस्तवः ।
इत्येकादश ताभ्याऽन्या ऐन्द्र एकोनसप्ततिः ।

अथ प्रथमखण्डे सैषा प्रथमा । वसिष्ठ ऋषिः । छ० बृहती । हे शूर ! इन्द्र ! अस्य जगतः जङ्गमस्य ईशानम् ईश्वरं तस्थुषः स्थावरस्य चेशानम् ईशानपदस्यावृत्तिरादरार्था स्वर्दृशं सर्वदर्शं त्वा त्वां अदुग्धा इव धेनवः यथा अदुग्धा धेनवः क्षीरपूर्णोधस्त्वेन वर्त्तन्ते तद्वत् सोमपूर्णचमसत्वेन वर्त्तमाना वयम् अभि नोनुमः भृशमभिष्टुमः ॥ १ ॥

(शूरइन्द्र) हे शूर इन्द्र (अस्य) इस (जगतः) जङ्गमके (तस्थुषः) स्थावरके (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सबके द्रष्टा (त्वा) तुम्हें (अदुग्धाः) विना दुहीं दूधभरे थनवालीं (धेनवः इव) गौओंकी समान सोमभरे चमस लिये हुए हम (अभि नोनुमः) वार २ प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३१ २ ३ १ २३ २ ३ २उ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषिः । कारवः स्तोतारो वयं वाजस्य अन्नस्य सातौ सम्भजने निमित्तभूते सति, हे इन्द्र ! त्वामिद्धि त्वामेव हवामहे स्तुतिभिराह्वयामः हे इन्द्र ! सत्पतिं सतां पालयितारं श्रेष्ठं त्वां नरो नेतारोऽन्येऽपि मनुष्याः वृत्रेषु आवरकेषु शत्रुषु सत्सु हवन्ते आह्वयन्ति तज्जयार्थम् अपिच अर्वतः अश्वस्य सम्बन्धिनीषु काष्ठासु यथाऽश्वः क्रान्त्वा तिष्ठन्ति तासु काष्ठासु संग्रामेषु युद्धकामाश्च त्वामेवाह्वयन्ति अतो वयं त्वामेवाह्वयाम इत्यर्थः ॥ २ ॥

(कारवः) स्तुति करनेवाले हम (वाजस्य) अन्नके (सातौ) दानके निमित्त (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वामिद्धि) आपको ही (हवामहे) स्तुतियोंसे पुकारते हैं, हे इन्द्र ! (सत्पतिम्) सज्जनोंके पालक आपको (नरः) अन्य मनुष्य भी (वृत्रेषु) शत्रुओंके होनेपर [हवन्ते] उनको जीतनेके निमित्त आह्वान करते हैं और (अर्वतः) अश्वसंबंधी (काष्ठासु) संग्रामोंमें युद्धकी इच्छासे आपको ही पुकारते हैं इस कारण हम भी आपको ही पुकारते हैं ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
१ २३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ३

अथ तृतीया । बालखिल्या ऋषयः । पुरूवसुः पश्वादिधनोपेतः पश्वादिबाहुल्याद्बहुनिवासको वा मघवा यः इन्द्रः जरितृभ्य स्तोतृभ्यः अस्मभ्यं सहस्रेणेव सहस्रसंख्याकेन धनेनेव शिक्षति पश्वादिबहुधनमस्मभ्यं प्रयच्छतीत्यर्थः । स इन्द्रः यथा विदे यथा अस्माभिर्विज्ञायते तथा हि ऋत्विजः ! वः यूयं सुराधसं शोभनधनोपेतम् इन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तं देवम् अभि आभिमुख्येन प्रार्च प्रकर्षेणार्चत ॥ ३ ॥

(पुरूवसुः) पशु आदि बहुतसे धनवाला (यः) जो (मघवा) इंद्र (जरितृभ्यः) स्तुति करने वाले हमारे अर्थ (सहस्रेणेव) सहस्र संख्या के धनसे मानो (शिक्षति) शिक्षा देता है अर्थात् हमें पशु आदि बहुत सा धन देता है, (यथाविदे) जैसे हम जानें तिस प्रकार हे ऋत्विजो

(वः) तुम (सुराधसम्) शोभनधनयुक्त (इन्द्रम्) इन्द्रदेवताको (अभि) अभिमुख होकर (प्रार्च) अधिकतासे पूजो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ४

अथ चतुर्थी । नोधा इन्द्रं स्तौति । हे ऋत्विग्यजमानाः दस्मं दर्शनीयम् ऋतीषहम् ऋतयो बाधकाः शत्रवः तेषामभिभवितारम् । पुनः कीदृशम् ? वसोः वासयितुर्दुःखस्य विवासयितुः यद्वा,वसोः पात्रे निवसतः तादृशस्य अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य पानेन मन्दानं मोदमानं वः यष्टव्यत्वेन युष्मत्सम्बन्धिनं तं तादृशमिन्द्रम् । गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिः अभिनवामहे नु स्तवने, नुशब्दे अभिष्टुमः । कुत्र ? स्वसरेषु । अत्र यास्कः (५, ४) स्वसराण्यहानि भवन्ति स्वयं सारीण्यपि वा स्वरादित्यो भवति स एनानि सारयतीति सूर्यनेतृकेषु दिवसेषु वयमभिष्टुमः अभितः शब्दयामः तत्र दृष्टांतः वत्सं न यथा धेनवो नवप्रसूता गावः स्वसरेषु सुष्ठु अस्यन्ते प्रेर्यन्ते गावोऽत्रेति स्वसराणि गोष्ठानि तेषु वत्समभिलक्ष्य शब्दयन्ति तद्वत् ॥ ४ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो (दस्मम्) दर्शनीय (ऋतीषहम्) बाधक शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (वसोः) दुःखको दूर करनेवाले (अन्धसः) सोमरूप अन्नके पीनेसे (मन्दानम्) प्रसन्न होते हुए (वः) तुम्हारे पूजने योग्य इन्द्रको (स्वसरेषु) गोशालाओंमें (धेनवः) गौएँ (वत्सं न) जैसे बछडोंको देखकर शब्द करती हैं तिसी प्रकार (गीर्भिः) स्तुतिरूपा वाणियोंसे (अभि नवामहे) प्रणाम करते हैं ५

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये ।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ५

अथ पञ्चमी । कलिः प्रगाथ ऋषिः । हे ऋत्विजः ! वः यूयं तरोभिः वेगवद्भिरश्वैरुपेतं वेगैरेव विदद्वसुम् वेदयद्वसु धनावेदकम् इन्द्रं सबाधः बाधासहिताः ऊतये रक्षणाय बृहत् साम तत्संज्ञकं गायन्तः सन्तः परिचरतेति शेषः । कुत्रेत्युच्यते ? सुतसोमे अभिषुतसोमके अध्वरे यज्ञे सोमयागे । अहं च तमिन्द्रं हुवे आह्वयामि । कमिव

भरं न भर्त्तारं कुटुम्बपोषकं कारिणं स्वहितकरणशीलं यथा, स्वहितकरणायाह्वयन्ति पुत्रादयः, तद्वत् तथाभूतमिन्द्रं हुवे इति ॥ ५ ॥

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (तरोभिः) वेगवान् घोड़ोंवाले (विदद्वसुम्) धन देनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (सबाधः) बाधाओंको प्राप्त हुए (ऊतये) रक्षाके लिये (बृहत्) बृहत्सामको (गायन्तः) गातेहुए आराधना करो, हम भी (सुतसोमे) सम्पादन कियाहै सोम जिसमें ऐसे (अध्वरे) यज्ञमें (भरम्) पोषण करनेवाले (कारिणं न) अपने हितकारीको जैसे पुत्रादि आराधना करते हैं तैसे (हुवे) आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २८ ३ १ २
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वसिष्ठ ऋषिः तरणिरित् युद्धादौ कर्मणि त्वरित एव पुमान् पुरन्ध्या महत्या धिया युजा सहायभूतया वाजम् अन्नं सिषासति सम्भजते । पुरुहूतं बहुभिराहूतम् इन्द्रं गिरा स्तुत्या हे यजमानाः ! वः युष्मदर्थम् आ नमे तमभिमुखं कुर्वे । तत्र दृष्टान्तः, नेमिं चक्रस्य वलयं सुद्रुवं शोभनदारुं तष्टेव यथा वर्द्धकिः दारूनमिभानयने तद्वदित्यर्थः ॥

(तरणिरित्) युद्धादिमें त्वरा करनेवाला पुरुष (युजा) सहायभूत (पुरन्ध्या) बड़ी बुद्धिसे (वाजम्) अन्नको (सिषासति) प्राप्त होता है (सुद्रुवम्) सुन्दर काष्ठवाली (नेमिम्) पहियेकी पुट्ठीको (तष्टा इव) जैसे बढई नम्र करलेता है तैसे हे यजमानों (पुरुहूतम्) अनेकोंसे आह्वान किये हुए (इंद्रं) इन्द्रको (गिरा) स्तुति करके (वः) तुम्हारे निमित्त (आ नमे) अभिमुख करता हूँ ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ३ अवन्तु
३ १ २
ते धियः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । मेधातिथि ऋषिः । हे इन्द्र ! रसिनः रसवतः ।

गोमतः गोविकारैः पयः प्रभृतिभिः श्रपणद्रव्यैर्युक्तस्य नः अस्मदीयस्य सुतस्य अभिषुतस्य। क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ईदृशं सोमं पिब पीत्वा च मत्स्व मत्तो भव । अपि च सधमाद्ये सह माद्यन्ति देवा अत्रेति सधमाद्यो यज्ञः तस्मिन् सहमादयितव्ये यज्ञे त्वम् आपिः आपयिता बन्धुः सन् नः अस्माकं वृधे वर्द्धनाय बोधि बुध्यस्व । ते त्वदीयाः धियः बुद्धयः अनुग्रहात्मिकाः अस्मान् स्तोतॄन् अवन्तु रक्षन्तु । सधमाद्ये सधमाद्यः इति च पाठौ ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (रसिनः) रसवाले (गोमतः)गौके दूध घृतादि से युक्त (नः) हमारे (सुतस्य) सम्पादन किये हुए सोमको (पिब) पियो और पीकर (मत्स्व) प्रसन्न हूजिये और (सधमाद्ये) जिसमें शीघ्र ही देवता प्रसन्न होते हैं ऐसे यज्ञमें (आपिः) धनादि देनेवाले तुम बान्धव बनते हुए (नः) हमारी (वृधे) वृद्धिके निमित्त (बोधि) सावधान हूजिये (ते) तुम्हारे (धियः) अनुग्रह करने वाले विचार हम सेवकोंकी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ७ ॥

२उ ३ १२ ३ २उ ३ १२

त्वꣳ ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी भर्ग ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वं हि त्वं खलु सामर्थ्याद्दातेति गम्यते । अत एहि आगच्छ । आगत्य च चेरवे क्रमपराचारवते मह्यं भगं भजनीयं धनं विदाः लभस्व दत्स्व । किमर्थम् ? वसुत्तये अस्माकं वसुदानाय । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! गविष्टये गाः इच्छते मह्यम् उद्वावृषस्व आसिञ्चस्व गामिति शेषः । तथा, हे इन्द्र ! अश्वमिष्टये अश्वैषणावते मह्यम् अश्वान् उद्वावृषस्व आसिञ्चस्व देहीत्यर्थः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (हि) निश्चय (त्वम्) तुम दाता हो इसकारण (वसुत्तये) मुझे धन देनेके अर्थ (एहि) आओ और आकर (चेरवे) सदाचारवाले मुझे (भगम्) धन (विदाः) दो (मघवन्) हे इन्द्र ! (गविष्टये) गौओंकी इच्छा करनेवाले मुझे (उद्वावृषस्व) गोधनसे सींचो (इंद्र) हे इन्द्र ! अश्व चाहनेवाले मुझे (उत्) अश्व धनसे सींचो अर्थात् मुझे धन गौएँ और घोड़े दो ॥ ८ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

न हि वश्चरमं च न वशिष्ठः परिमꣳसते ।

३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबंतु कामिनः

अथ नवमी। वशिष्ठः परोक्षेण ब्रूते। हे मरुतः! वशिष्ठः एतन्नामा ऋषिः वः युष्माकं मध्ये चरमं चन जघन्यमपि न हि परिमंसते वर्जयित्वा न स्तौति किंतु सर्वानेव युष्मान् स्तौतीत्यर्थः। अद्य अस्मिन् दिने अस्माकम् अस्मदीये सुते सोमे अभिषुते सति मरुतः कामिनः सोमं कामयमानाः विश्वे सर्वे सचा सङ्गत्य पिबन्तु पानं कुर्वन्तु। पिबन्तु पिबन्त इति च पाठौ॥ ९॥

हे मरुतो! (वशिष्ठः) वशिष्ठ (वः) तुम्हारे विषैं (चरमं चन) छोटेको भी (नहि परिमंसते) छोडकर स्तुति नहीं करता है किन्तु सबकी ही स्तुति करता है (अद्य) आज (अस्माकम्) हमारे (सुते) सोमका सम्पादन होनेपर (मरुत्) सोमकी इच्छा करतेहुए (विश्वे) सब (सचा) इकट्ठे होकर (पिबन्तु) पियें॥ ९॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ २ ३

मा चिदन्यद्वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत। इन्द्र-

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

मित्स्तोता वृषणꣳसचा सुते मुहुरुक्था च शꣳसत १०

अथ दशमी। प्रगाथः काण्व ऋषिः। हे सखायः! समानख्यानाः स्तोतारः! इन्द्रस्तोत्राद् अन्यत् स्तोत्रं मा चिद्विशंसत मैवोच्चारत। मा रिषण्यत मा हिंसितारो भवत। अन्यदीयस्तोत्रोच्चारणेन वृथोपक्षीणा मा भवत। सुते अभिषुते सोमे वृषणं कामानां वर्षितारम् इन्द्रमित् इंद्रमेव हे प्रस्तोत्रादयः! सचा सह संभूय स्तोत स्तुत। उक्थानि च उक्था शस्त्राणि चेन्द्रविषयाणि यूयं मुहुः पुनः पुनः शंसत उच्चारयत।

(सखायः) हे स्तोताओ! (अन्यत्) इंद्रके स्तोत्रसे अन्य स्तोत्र को (मा चिद्विशंसत) मत उच्चारण करो (मा रिषण्यत) वृथा क्षीण मत होओ (सुते) सोमका सम्पादन होने पर (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (इन्द्रमित्) इन्द्रको ही (सचा) इकट्ठे होकर (स्तोत) स्तुति करो (उक्था च) इन्द्रविषयक शस्त्रोंका भी (मुहुः) वार वार (शंसत) उच्चारण करो॥ १०॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः

२ ३१ २र ३ २३ १ २ ३ १ २
न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१॥

अथ द्वितीयखण्ड—तैषा प्रथमा। आङ्गिरसः पुरुजन्मा ऋषिः। तं यजमानं कर्मणा हननादिव्यापारेण नकिर्नशत् नैव व्याप्नोति। यः इन्द्रं चकार इन्द्रमेवानुकूलयज्ञैः साधनैः कृतवान्। कीदृशमिन्द्रम्? सदावृधम्? सर्वदा वर्द्धकम्। विश्वगूर्त्तं सर्वैः स्तुत्यम्। ऋभ्वसं महान्तम् ओजसा बलेन अधृष्टम् अन्यैर्धर्षितुमशक्यम्। धृष्णुं शत्रूणां धर्षकम्। "धृष्णुमोजसा" "धृष्ण्वोजसम्" इति च पाठौ॥ १॥

(यः) जो यजमान (सदावृधम्) सदा बढानेवाले (विश्वगूर्त्तिम्) सबके स्तुति करनेयोग्य (ऋभ्वसम्) बड़े (ओजसा) बल करके (अधृष्टम्) किसीसे न दबने वाले (न) और (धृष्णुम्) शत्रुओंको धमकानेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञोंसे अनुकूल (चकार) कर चुकता है (तम्) उसको (कर्मणा, नकिः, नशत्) दुःख देना आदि कर्मसे नहीं दबाता है॥ १॥

२ ३१ २ ३ १२ ३२ ३१२ ३ १२
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
१ २ ३ २ ३१२ २ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विहुतं पुनः २

अथ द्वितीया। मेधातिथिर्मेध्यातिथिरस्याः परस्याश्च ऋषिः। यः इन्द्रः अभिश्रिषः अभिश्लिषः अभिश्लेषणात् सन्धानद्रव्यात् ऋते चित् विनापि जत्रुभ्यः ग्रीवाभ्यः सकाशात् आतृदः आतर्दनात् आरुधिरनिस्रवणात् पुरा पूर्वमेव सन्धिं संधातव्यं तं संधाता संयोजयिता भवति। मघवा धनवान् पुरूवसुः बहुधनः स इन्द्रः विहुतं विच्छिन्नं तं पुनः निष्कर्त्ता संस्कर्ता भवति॥ २॥

(यः) जो इन्द्र (अभिश्रिषः) जोडनेकी सामग्रीके (ऋतेचित्) विना भी (जत्रुभ्यः) ग्रीवाओंसे (आतृदः) रुधिर निकलनेसे (पुरा) पहिले (संधिम्) जोडने योग्य वस्तुको (सन्धाता) जोडने वाला होता है (मघवा) धनवान् (पुरूवसुः) अनेकों ऐश्वर्योंवाला वह इन्द्र (विहुतम्) कटकर अलग हुएको (पुनः) फिर (निष्कर्त्ता) संस्कार करदेता है॥ २॥

१ २ ३२३२ ३२ ३१ २र ३१२
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २ ३ १२ ३ २ ३१२ ३ १२
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ३

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सहस्रं सहस्रसंख्याका हरयस्त्वदीया अश्वाः आ वहन्तु आ नयन्तु अस्मद्यज्ञम् । तथा शतं शतसंख्याकाश्च भवदीया अश्वास्त्वामावहन्तु । यद्यपि द्वावेव हरी तथापि तद्विभूतयोऽन्येपि वहवोऽश्वाः सन्ति । ननु युगपदनेकैरश्वैः कथं यातुं शक्यते ? इत्यत आह । युक्ताः इति हिरण्यये हिरण्मये स्वर्णविकारे हिरण्यशब्दाद्विकारार्थे विहितस्य मयटः ऋत्व्या वास्त्येत्यादौ मलोपो निपात्यते तादृशे रथे युक्ताः सम्बद्धाः बहूनामश्वानां शीघ्रगमनाय रथे नियुक्तत्वात् युगपदेव सर्वैरश्वैर्गन्तुं शक्यत इति भावः । कीदृशा हरयः ? ब्रह्मयुजः ब्रह्मणा परिवृढेनेन्द्रेण युक्ताः यद्वा ब्रह्मणास्मदीयेन स्तोत्रेण अस्माभिर्दत्तेन हविषा वा युक्ताः । केशिनः केशाः ग्रीवायाम् उपरि वर्त्तमानाः सटाः तैर्युक्ताः । किमर्थमिन्द्रस्यावहनम् ? तत्राह सोमपीतये सोमपानाय । यथास्मदीयं सोमं पिबेत् तथा आवहन्त्वित्यर्थः ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (ब्रह्मयुजः) स्तोत्र पढ़ कर हमारे दिये हुए हविसे युक्त (केशिनः) ग्रीवापर लम्बे केशोंवाले (हिरण्मये) सुवर्णके बने हुए (रथे) रथमें (युक्ताः) आगे पीछे जुते हुए (आ सहस्रम् शतम्) सहस्रों और सैंकड़ों (हरयः) घोड़े (त्वा) तुम्हें (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिए (आ वहन्तु) हमारे यज्ञमें लावें ॥ ३ ॥

२ ३१२ ३ १२ ३२ ३१२ २ ३
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा
२ १ २३२उ ३ २उ ३१२३१ २
के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥

अथ चतुर्थी । विश्वामित्रो यथार्थमिन्द्रमाह्वयति । हे इंद्र ! मन्द्रैः मादयितृभिः मयूररोमभिः मयूररोमसदृशरोमयुक्तैः हरिभिः अश्वैरुपेतस्त्वम् आयाहि यज्ञं प्रत्यागच्छ । केचिदपि जनाः त्वा त्वां मा नियेमुः मा नियच्छन्तु । गमनप्रतिबन्धं मा कुर्वन्तु इत्यभिप्रायः । तत्र दृष्टान्तः पाशिनो न पाशिनः इव, यथा पाशहस्ता व्याधाः पक्षिणं नियच्छन्ति तद्वन्मा नियच्छन्तु किञ्च । धन्वेव यथा पान्था धन्वं

मरुदेशं शीघ्रमतिगच्छन्ति तद्वदिन्द्रमनप्रतिबंधकारिणस्तानतीत्य शीघ्रम् एहि आगच्छ ॥ ४ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (मन्द्रैः) आनन्द देने वाले (मयूररोमभिः) मोर केसे रोमोंवाले (हरिभिः) घोड़ों सहित तुम (धन्वेव) जैसे बटोही मरुदेशको शीघ्र ही लाँघजाते हैं तैसे (तान्) उन गमनके प्रतिबंधकों को (अति) लाँघकर (आयाहि) आइये (इत्) और (पाशिनः नः) जैसे हाथमें पास लिए हुए ब्याधे पक्षियोंको पकड़ते हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (मा नियेमुः) कोई न रोकै (एहि) आइये ॥ ४ ॥

२ ३ २ २र ३ १ २ ३ १ २

त्वमङ्ग प्रशᳫंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न त्वदन्यो मघवन्नास्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः अङ्गेत्यभिमुखीकरणे अङ्ग शविष्ठ ! हे बलवत्तम ! इन्द्र ! देवः द्योतमानस्त्वं मर्त्यं मरणधर्माणं त्वां स्तुवन्तं पुरुषं प्रशंसिषः सम्यगनेन स्तुतमिति प्रशंस । हे मघवन् ! धनवान् इन्द्र ! त्वदन्यः त्वत्तोऽन्यः कश्चित् मर्डिता सुखयिता नास्ति । अतः कारणात् तुभ्यमिदं स्तुतिलक्षणं वचो ब्रवीमि उच्चारयामि ॥ ५ ॥

(अङ्ग शविष्ठ) हे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ इन्द्र ! (देवः) प्रकाशित होतेहुए तुम (मर्त्यम्) अपनी स्तुति करनेवाले मनुष्यको (प्रशंसिषः) इसने भलेप्रकार स्तुतिकी इस प्रकार प्रशंसा करते हो (मघवन् इन्द्र) हे धनवान् इन्द्र ! (त्वदन्यः) तुमसे अन्य कोई भी (मर्डिता) सुख देने वाला (नास्ति) नहीं है, इस कारण तुम्हारे अर्थ यह (वचः) स्तुति रूप वचन (ब्रवीमि) उच्चारण करता हूँ ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वं वृत्राणि हᳫंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।

अथ षष्ठी । नृमेधपुरुमेधावृषी । हे इन्द्र ! शवसस्पतिः बलस्य पालयिता ऋजीषो अपचितोऽभिषुतः सोमः, तद्वान् त्वं यशा यशस्वी असि भवसि । कथमस्य यशस्वित्वम् तदाह–अप्रतीनिबलिभिरप्रतिगतानि पुरु पुरूणि शे छन्दसि बहुलम् (६, १, १०) इति शेर्लोपः बहूनि वृत्राणि रक्षांसि अनुत्तः न केनापि प्रेरितः चर्षणीधृतिः चर्षणीनां यजमानमनुष्याणां धारकः । एक इत् असहाय एव त्व हंसि सम् प्रहरसि अत एवास्य यशस्वित्वम् ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (शवसस्पतिः) बलका पालन करनेवाले (ऋजीषी) पूजित सोमको प्राप्त होने वाले (त्वम्) तुम (यशा) यशस्वी (असि) हो, क्योंकि—(अप्रतीनि) बड़े २ बलवान् भी जिनके सन्मुख न आवें ऐसे (पुरु) बहुतसे (वृत्राणि) राक्षसोंको (अनुत्तः) किसीके बिना प्रेरणा किये ही (चर्षणीधृतिः) यजमानोंके रक्षक तुम (एक इत्) अकेले ही (हंसि) नष्ट कर देते हो ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३२

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रꣳसमीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ७

अथ सप्तमी । एतदादीनां तिसृणां मेध्यातिथिरृषिः । देवतातये देवैः स्तोतृभिः तायते विस्तार्यते इति देवतातिर्यज्ञः तदर्थम् इन्द्रमित् देवेषु मध्ये इन्द्रमेव हवामहे आह्वयामहे । अध्वरे यज्ञे प्रयति प्रगच्छति उपक्रान्ते सति इन्द्रं हवामहे । तथा समीके सम्यग्जाते सम्पूर्णे च यागे वनिनः सम्भजमानाः वयम् इन्द्रमेवाह्वयामहे । यद्वा । समीकमिति संग्राम नाम (नि० २, १७, ११) । समीके संग्रामे इन्द्रमेवाह्वयामहे धनस्य सातये लाभाय इंद्रमेव आह्वयामहे । अतः शीघ्रमिन्द्र आगच्छतु इत्यर्थः ॥ ७ ॥

(देवतातये) देवताओंके निमित्त किये जानेवाले यज्ञके अर्थ (इंद्रमित्) सब देवताओंमें इंद्रको ही (हवामहे) आह्वान करते हैं (अध्वरे प्रयति) यज्ञके होते में (इंद्रम्) इंद्रको आह्वान करते हैं (समीके) यज्ञके संपूर्ण होने पर अथवा संग्रामके समय (वनिनः) आराधना करने वाले हम (इन्द्रम्) इन्द्रको आह्वान करते हैं (धनस्य) धनके (सातये) लाभके निमित्त (इन्द्रम्) इन्द्रका ही आह्वान करते हैं इस कारण हे इन्द्र ! शीघ्र आइये ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ८

अथ अष्टमी । हे पुरुवसो ! बहुधनेन्द्र ! मम मदीयाः इमाः गिरः शस्त्ररूपा वाचः त्वा त्वां वर्द्धन्तु वर्द्धयन्तु तथा पावकवर्णाः अग्निसमानतेजस्काः अतएवः शुचयः शुद्धा विपश्चितो विद्वांसः उद्गातारश्च

स्तोमैः स्तोत्रैर्बहिष्पवमानादिभिः अभ्यनूषत त्वामभिष्टुवन्ति (णु स्तुतौ कुटादिः ॥ ८ ॥

(पुरुवसो) हे बहुत धन वाले इन्द्र! (मम) मेरी (इमाः) यह (याः) जो (गिरः) स्तुतिरूप वाणियें हैं (त्वा) तुम्हें (वर्द्धन्तु) बढ़ावें (पावकवर्णाः) अग्निकी समान तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध (विपश्चितः) विद्वान् (स्तोमैः) स्तोत्रोंसे (अभ्यनूषत) स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव।

अथ नवमी। त्ये ते प्रसिद्धाः मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुराः गिरः अप्रगीताः शस्त्ररूपा वाचः। स्तोमासः प्रगीतानि बहिष्पवमानादीनि स्तोत्राणि च उदीरते इन्द्र! त्वामुद्दिश्योद्गच्छन्ति ऊर्ध्वं प्रसरन्ति ईर गतौ आदादिकः तत्र दृष्टान्तः। सत्राजितः सदैव शत्रून् जयन्तः अतएव धनसाधनानि सम्भजन्तः षणु षणु सम्भक्तौ। जन-सन-खन-क्रमगमो विट्। विड्वनोरनुनासिकः स्यात् इत्यात्वम् अक्षितोतयः क्षियो भावे निष्ठायामण्यदर्थे इति पर्युदासाद्दीर्घाभावः। अतएव क्षियो दीर्घात् इति निष्ठा नत्वाभावश्च। अक्षिताः क्षयरहिताः ऊतयो रक्षा येषां ते तथोक्ताः वाजयन्त वाजमन्नमिच्छन्तः क्यचि न छन्दस्य-पुत्रस्येति ईत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः। एवं गुणविशिष्टा रथा इव, ते यथा विविधमितस्ततः उत्तिष्ठन्ति तद्वदुदीरत इत्यर्थः ॥ ९ ॥

(सत्राजितः) सदा शत्रुओंको जीतनेवाले (धनसा) अधिक धन वाले (अक्षितोतयः) क्षयरहित है रक्षा जिनकी ऐसे (वाजयन्तः) अन्नकी इच्छा वाले रथ जैसे इधर उधर जाते हैं तैसे ही, (त्ये) प्रसिद्ध (मधुमत्तमाः) अत्यन्त मधुर (गिरः) श्रेष्ठ वचन (स्तोमासः) बहिष्पवमान आदि स्तोत्र भी (उदीरत) तुम्हारे निमित्त उच्चारण किये हुए ऊपरको फैलते हैं ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २र ३

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपि-

१ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

त्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब १०

अथ दशमी। देवातिथिः काण्व ऋषिः। गौरः गौरमृगः (तृष्यन् पिपासितः सन् अपा अद्भिरुदकैः इत्यत्रैकवचनम्। ऊडिदंमित्वादिना ६, १, १७१) विभक्तेरुदात्तत्वम् कृतं सम्पूर्णत्वं कृतम् इरिणं निस्तृणं तडागदेशं यथा येन प्रकारेण अवैति अभिगच्छति अवशब्दोऽभिशब्दस्यार्थे, अभिमुखः सन् शीघ्रं गच्छति। तथा आपित्वे बंधुत्वे प्रपित्वे प्राप्ते सति हे इंद्र! त्वं नः अस्मान् तूयं क्षिप्रनामैतत् शीघ्रम् आगहि आगच्छ। आगत्य च कण्वेषु कण्वपुत्रेष्वस्मासु सचा सह एकप्रयत्नेनैव विद्यमानं सर्वं सोमं सु सुष्ठु पिब॥ १०॥

(गौरः) गौर मृग (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा) जलोंसे (कृतम्) पूर्ण कियेहुए (इरिणम्) तृणरहित तडागस्थान पर (यथा) जैसे (अवैति) अभिमुख होकर जाता है तैसे ही (आपित्वे) बंधुभाव के (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (इन्द्र) हे इंद्र! तुम (नः) हमारे पास (तूयम्) शीघ्र (आगहि) आओ और आकर (कण्वेषु) हम काण्वोंमें (सचा)सब के इकट्ठे होकर संपादन करे हुए सोमको(सुपिब)सुन्दरतासे पियो १०

तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः।

३ २ १ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २३१२ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि १

अथ तृतीये खण्डे—सैषा प्रथमा। भर्ग ऋषिः। हे शचीपते! इन्द्र शग्धि देह्यभिमतम्। विश्वाभिः सर्वाभिः ऊतिभिः रक्षाभिः सह हे शूर! भगं न भाग्यमिव यशसं यशस्विनम्। वसुविदं धनस्य लम्भकं त्वा त्वाम् अनुचरामसि परिचराम इत्यर्थः॥ १॥

(शचीपते, शूर, इन्द्र) हे शचीपति पराक्रमी इन्द्र! (विश्वाभिः) सकल (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (शग्धि) इच्छित वरदान दो (भगं न) हमारे भाग्यकी समान (यशसम्) यशस्वी (वसुविदम्) धन देनेवाले (त्वा) तुम्हैं (परिचरामि) आराधन करता हूँ॥ १॥

१ २३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्द्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः२

१

अथ द्वितीया । रेभः काश्यप ऋषिरिन्द्रं प्रार्थयते । हे इन्द्र ! स्ववान् सुखवान् स्वर्गवान् वा अथवा स्वः शब्दः सर्वपर्यायः सर्वं भूतजातम् आत्मन एवोत्पन्नत्वात् तद्वान् एवं गुणस्त्वं याः यानि भुजो भोक्तव्यानि धनानि असुरेभ्यो बलवद्भ्यो राक्षसेभ्यः आभरः आहरः तान् हत्वा आहृतवानसि हृग्रहोरिति भकारादेशः अतएव हे मघवन्‌धनवन्निन्द्र ! अस्य अन्वादेशे अशादेशः एतस्य आहृतस्य धनस्य दानेन स्तोतारमित् नव स्तोत्रकारिणमेव वर्द्धय वृद्धिमन्तं कुरु । ये च अन्ये यष्टारः त्वे त्वदर्थं वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषो भवन्ति अतः तांश्च धनेन वर्धय २

(इन्द्र) हे इंद्र ! (स्ववान्) स्वर्गवाले तुमने (याः) जिन (भुजः) भोगनके धनोंको (असुरेभ्यः) बलवान् राक्षसोंसे (आभरः) उनको मारकर लिया है, इसकारण (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र ! (अस्य) इस लाये हुए धनके दानसे (स्तोतारमित्) अपनी स्तुति करनेवाले को ही (वर्द्धय) वृद्धिवाला करो (च) और (ये)जो यजन करनेवाले (त्वे) तुम्हारे अर्थ (वृक्तबर्हिषः) कुशासन बिछाते हैं, उनको भी धनसे बढाओ ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क२र

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रँराजसु गायत २

अथ तृतीया । जमदग्निर्ऋषिः । हे ऋतावसो ! यज्ञधन ! मित्राय सचथ्यं सेवार्हं छन्द्यं यज्ञगृहभवम् अभिप्रायानुसारं वा वचः स्तोत्रं प्रगायत प्रकर्षेण पठत । अर्यम्णे च प्रगायत । वरूथ्ये यज्ञगृहावस्थिते वरुणे च प्रगायत । प्रगायतेति बहुवचनं पूजार्थम् एतदेव दर्शयति राजसु राजमानेषु मित्रादिषु स्तोत्रं गायत पठत । मित्रादीन् त्रीन् राज्ञः स्तुतेति समुदायार्थः ॥ ३ ॥

(ऋतावसो)हे यज्ञधन !(मित्राय) मित्र देवताके अर्थ(सचथ्यम्) सेवायोग्य (छन्द्यम्) यज्ञशालामें होनेवाले (वचः)स्तोत्रको (अर्यम्णे) अर्यमा देवताके अर्थ (वरूथ्ये) यज्ञशालामें स्थित (वरुणे) वरुणके अर्थ (राजसु) इनके विराजमान होनेपर (प्रगायत) गाओ ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ४

अथ चतुर्थी। मेधातिथिर्ऋषिः हे इन्द्र ! आयवो मनुष्याः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोत्रैः त्वामभि प्रनुवन्ति किमर्थम् ? पूर्वपीतये सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं प्रथमत एव सोमस्य पानाय सवनमुखे हि चमसगणैः इंद्रस्यैव सोमो हूयते। तथा समीचीनासः सङ्गताः ऋभवः प्रथमवाचकेन शब्देन त्रयोऽप्युपलक्ष्यन्ते ऋभुर्विभ्वा वाज इत्येते च समस्वरन् त्वामेव सम्यग् स्तुवन् स्वृशब्दोपतापयोः रुद्राः रुद्रपुत्रा मरुतश्च पूर्व्यं पुरातनं वृद्धं त्वामेव गृणन्त अभ्यस्तुवन् वृत्रवधसमये प्रहर भगवो जहि वीरयस्वेत्येवं रूपया वाचा त्वां स्तुवन्त इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (आयवः) स्तुति करनेवाले मनुष्य (पूर्वपीतये) सब देवताओंसे प्रथम सोम पीनके निमित्त (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे (त्वाम् अभि) तुम्हारी स्तुति करते हैं (समीचीनासः) इकट्ठे हुए (ऋभवः) ऋभोंने (समस्वरन्) भले प्रकार तुम्हारी ही स्तुति की (रुद्राः) रुद्रके पुत्र मरुतोंने (पूर्व्यम्) तुम पुरातन पुरुषकी ही (गृणंत) स्तुति की ४

२ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृत्रँ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ५

अथ पञ्चमी। अस्याः पञ्चम्याश्च नृमेधपुरुमेधौ द्वावृषी। हे मरुतः ! मितराविणः स्तोतारः ! बृहते महते वः स्तुत्यस्तोतृत्वलक्षणेन सम्बंधेन युष्मदीयायेन्द्राय। ब्रह्मसामलक्षणं स्तोत्रं प्रार्चत प्रोच्चारयत। ततो वृत्रहा वृत्रस्य मेघस्य पापस्य वा हंता। शतक्रतुः शतविधकर्मा बहुविधप्रज्ञो वा इन्द्रः शतपर्वणा शतसंख्याकधारेण वज्रेण एतन्नामकेनायुधेन वा वृत्रम् अपामावरकं वृत्राख्यमसुरं [illegible] हनति युष्माभिरभिष्टुतः सन् हन्तु। हन्तेर्लेट्यडागमः॥ ५॥

(मरुतः) हे स्तोताओ ! (बृहते) महान (वः) तुम्हारे अपने इन्द्रके अर्थ (ब्रह्म) सामरूप स्तोत्रको (प्रार्चत) उच्चारण करो, तब (वृत्रहा) पापका नाशक (शतक्रतुः) इन्द्र (शतपर्वणा) सौ धारों वाले (वज्रेण) वज्रसे (वृत्रम्) पापको (हनति) नष्ट करे ॥ ५॥

२ १ २र ३ १ २ ३ १ २
बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि६

अथ षष्ठी। हे मरुतः ! रुशब्दे, मितं रुवन्तीति मरुतः, हे मितभाषिणः स्तोतारः ! वृत्रहन्तम् अतिशयेन पापविनाशनं बृहत् सामइन्द्राय इन्द्रार्थं गायत अस्मदीये यज्ञे गानं कुरुत। ऋतावृधः ऋतस्य सत्यस्य वा वर्धका विदत्रे देवाः अङ्गिरसो वा ऋषयः। देवाय द्योतमानायेन्द्राय देवं देवनशीलं जागृवि सर्वेषां जागरणशीलं ज्योतिः सूर्यं येन साम्ना अजनयन् इन्द्रार्थमुदपादयन् तत्साम गायतेति ॥ ६ ॥

(मरुतः) हे मितभाषी स्तोताओ ! (वृत्रहन्तमम्) अत्यन्त पापनाशक (बृहत्) बृहत्सामको (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (गायत) गाओ (ऋतावृधः) सत्यको बढानेवाले देवता वा ऋषि (देवाय) दीप्तिमान् इन्द्रके अर्थ (देवम्) दिव्य (जागृवि)सबको जगानेवाले(ज्योतिः) सूर्यको (येन) जिस सामके द्वारा (अजनयन्) उत्पन्न करतेहुए ॥६॥

२ ३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा । शिक्षाणो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥७॥

अथ सप्तमी। वशिष्ठ ऋषिः। हे इन्द्र ! नः अस्मभ्यं क्रतुं कर्म वा प्रज्ञानं वा आभर आहर। अपि च, यथा पिता पुत्रेभ्यः धनं प्रयच्छति तथा नः अस्मभ्यं शिक्ष धनं देहि। हे पुरुहूत!बहुभिराहूतेन्द्र ! यामनि यज्ञे जीवा वयं ज्योतिः सूर्य्यम् अशीमहि प्रतिदिनं प्राप्नुयामः। यद्वा, हे इन्द्र ! भूतानि प्रकाशयितरिन्द्र !तथा च यास्कः, इंद्र इरां दृणातीति वेरां ददातीति, वेरां दधातीति, वेरां दारयत इति, वेरां धारयत इति, वेन्द्रवे द्रवतीति, वेन्दौ रमत इति, वेन्धे भूतानीति वा तद्यदेनं प्राणैः सर्वैः समैन्धस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वमिति विज्ञायते (१०,८) इति। एवं गुणविशिष्ट ! परमात्मन् ! त्वं क्रतुं कर्म स्वविषयज्ञानं वा नः अस्मभ्यम् आभर आहर प्रयच्छेत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः, पिता पुत्रेभ्यो यथा लोके विद्यां धनं वा प्रयच्छति तथा नोऽस्मभ्यं विद्यां धनं वा प्रयच्छ। हे पुरुहूत ! बहुभिराहूतेन्द्र ! यामनि सर्वैः प्राप्तव्ये अस्मिन् प्रकृते ब्रह्मणि जीवा वयं ज्योतिः परं ज्योतिरशीमहि सेवेमहि ॥ ७ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (नः) हमें (क्रतुम्) कर्म वा ज्ञान (आभर) दो और (यथा) जैसे (पिता) पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रोंको धन देता है तैसे (नः) हमें (शिक्ष) धन दो (पुरुहूत) हे इंद्र ! (यामनि) यज्ञमें (जीवाः) हम जीव (ज्योतिः) सूर्यको (अशीमहि) प्रतिदिन प्राप्त हों।

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ८

अथ अष्टमी । रेभ ऋषिः । हे इन्द्र ! नः हविषां प्रदातृन् अस्मान् मा परावृणक् मा परित्याक्षीः वृजी वर्जने रौधादिकः । लङि रूपं तदेवाह त्वं नोऽस्माकं सधमाद्ये सह मादनहेतुभूते यज्ञे सोमपानाय भव । किञ्च हे इन्द्र ! नोऽस्मान् त्वमेव ऊती ऊत्यां स्थापय । यद्वा ऊती व्यत्ययेन कर्त्तरि क्तिचा निपातितः त्वमेवास्माकं रक्षिता खलु । तथा त्वमित् इदवधारणे त्वमेव नोऽस्माकम् आप्यं ज्ञातव्यम् । त्वमेव बन्धुरित्यर्थः अतएव मा न इन्द्रः परावृणगिति गतार्थः । सधमाद्ये सधमाद्यः इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हवि देने वाले हमें (मा परावृणक्) मत त्यागो तुम (नः) हमारे (सधमाद्ये) आनन्दके कारणभूत यज्ञमें सोमपानके अर्थ (भव) प्राप्त होओ (इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हमें (त्वमेत्) तुम ही (ऊती) रक्षामें स्थापित करो (त्वम्) तुम (नः) हमारे (आप्यम्) बंधु हो (इन्द्र) हे इन्द्र (नः) हमें (मा परावृणक्) मत त्यागो ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ९

अथ नवमी । मेधातिथिर्ऋषिः । हे वृत्रहन् त्वा त्वां वयं घ खलु सुतावन्तः सोममभिषुतवन्तः आपो न आप इव प्रवणमभिगच्छामः । पवित्रस्य सोमस्य प्रस्रवणेषु वृक्तबर्हिषः स्तीर्णबर्हिषः स्तोतारश्च त्वां पर्युपासते ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्) हे इन्द्र (त्वा) तुम्हे (वयम्) हम (घ) निश्चय(सुतावन्तः) सोमका सम्पादन किये हुए (आपः, न) जलोंकी समान नमे

हुए प्राप्त होते हैं (पवित्रस्य) पवित्र सोमके (प्रस्रवणेषु) रस निकलते में (वृक्तबर्हिषः) आसन विछाने वाले (स्तोतारः) स्तोता भी तुम्हारी (परिआसते) उपासना करते हैं ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।

२ २ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३

यद्वा पञ्चक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि

१ २

पौं ३ँ स्या ॥ १० ॥

अथ दशमी । भरद्वाज ऋषिः । हे इन्द्र ! नाहुषीषु नहुष इति मनुष्यनाम (नि० २, ३, ९) तत्सम्बन्धिनीषु कृष्टिषु प्रजासु आकारः समुच्चये यच्च ओजो बलं नृम्णं धनं च विद्यते । यद्वा यच्च पञ्च पञ्चानां क्षितीनाम् । निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्च क्षितयः तेषां स्वभूतम् । द्युम्नं द्योतमानमन्नं तत्सर्वमस्मभ्यम् आभर आहर प्रयच्छ । तथा सत्रा महान्ति विश्वानि सर्वाणि पौंस्या पौंस्यानि बलानि चास्मभ्यमाहर ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (नाहुषीषु) मानुषी (कृष्टिषु) प्रजाओंमें (ओजः) बल (च) और (नृम्णम्) धन है (यद्वा) और जो (पंच) पाँच (क्षितीनाम्) भूमियोंका (द्युम्नम्) दमकता हुआ अन्न है वह सब हमारे अर्थ (आभर) दो, तथा (सत्रा) बड़े (विश्वानि) सब (पौंस्या) बलोंको भी दो ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः १

अथ चतुर्थे खण्डे-सैषा प्रथमा । मेधातिथिर्ऋषिः । हे उग्र ! उद्गूर्णेन्द्र ! त्वं सत्यम् इत्था इत्थं वृषेत् कामानां वर्षक एवासि । वृषजूतिः वृषभिः सेक्तृभिः सोमरसस्य सोतृभिश्चाहूतो नः अस्मान् अविता रक्षिता भवसि । वृषाहि सेचक एव शृण्विषे श्रूयसे । परावति दूरेऽपि वृषेव कामानां सेचक एवासि । अर्वावति समीपेऽपि वृषा सेचक एव श्रुतः अश्रूयत । अविता अवृतः इति च पाठौ ॥ १ ॥

(उग्र) हे दर्प वाले इन्द्र ! तुम (सत्यम्) सत्य (इत्था) इस प्रकार (वृषेत्) इच्छित वरदानोंकी वर्षा करने वाले हो (वृषजूतिः) सोमरसका सेचन करने वालोंसे आह्वान किये हुए (नः) हमारे (अविता) रक्षक होते हो(वृषाहि) तुम वरदान देने वाले ही (शृण्विषे) सुने जाते हो (परावति) दूर भी (वृषेद) वरदानोंकी वर्षा करनेवाले ही हो (अर्वावति) समोपमें भी (वृषः) मनोरथपूरक (श्रुतः) सुने गए हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्। अतस्त्वा
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति

अथ द्वितीया । रेभ ऋषिः । हे शक्र! शत्रुहननसमर्थेन्द्र ! यद् यदा परावति विप्रकृष्टे दूरे द्युलोकदेशे असि विद्यसे । हे वृत्रहन् ! वृत्रस्य हन्तरिन्द्र ! यद् यदा वा अर्वावति अर्वाचीने तस्मादधस्तात् स्थिते तदपेक्षया समीपे देशेऽन्तरिक्षे भवसि तस्मादपि । अतः अस्माद् भूलोकाद्वा हे इन्द्र ! द्युगत् गम्लृ सृप्लृ गतौ । क्विपि गमः क्वौ इति अनुनासिकलोपः । तुक् । सुपां सुलुगिति भिसो लुक् । द्युलोकं प्रति गच्छद्भिः स्वभासा सर्वतो गच्छद्भिः केशिभिः केशवद्भिः हरिभिरिव स्थिताभिः गीर्भिः स्तुतिभिः त्वा त्वां सुतवान् अभिषुतसोमवान् यजमानः आविवासति आत्मीयं यज्ञं प्रति आगमयति । त्वामेतैः स्तोत्रैः परिचरति वा ॥ २ ॥

(शक्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब (परावति) दूर द्युलोकमें (असि) होते हो और (वृत्रहन्) हे इन्द्र ! (यत्) जब (अर्वावति) उससे समीप अन्तरिक्ष देश में होते हो (अतः) इस लोक से (इन्द्र) हे इन्द्र अपनी कान्तिसे सर्वत्र फैलने वाली (केशिभिः) केश वाले घोड़ोंकी समान स्थित (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (त्वा) तुम्हें (सुतवान्) सोम संपादन करने वाला यजमान (आविवासति) अपने यज्ञमें बुलाता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम्
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। वत्स ऋषिः। इयं पिपीलिकमध्या बृहतीति बह्वृचाः आद्यन्त्यौ पादौ त्रयोदशाक्षरो मध्यमोऽष्टाक्षर इति त्रिपदा। हे उद्गात्रादयः! वः यूयम् अथवा हे यजमानाः! वो युष्माकं हिताय अन्धसः सोमस्य मदेषु उत्पाद्यमानेषु सत्सु वीरं शत्रूणाम् ईरयितारम्। नाम शत्रूणां नामकम्। विचेतसं विशिष्टप्रज्ञं श्रुत्यं सर्वत्र श्रोतव्यं स्तुत्यम् शाकिनं शक्तिमन्तम् इन्द्राम् इंद्रम् महा महत्या गिरा स्तुत्या वचो वाचो युष्मदीया यथा येन प्रकारेण प्रवर्तते गायत्र्या त्रिष्टुभा वा तथा गाय गायत स्तुतिं कुरुत ॥ ३ ॥

हे उद्गाता आदि (वः) तुम अथवा हे यजमानो (वः) तुम्हारे हितके लिए (अन्धसः) सोमके (मदेषु) सम्पादन करते समय (वीरम्) शत्रुओंको भय देनेवाले (नाम) शत्रुओंको नमानेवाले (विचेतसम्) विशिष्ट बुद्धिवाले (श्रुत्य) सर्वत्र स्तुतियोग्य (शाकिनम्) शक्तिमान् (इंद्रम्) इन्द्रको (महा) बड़ी (गिरा) स्तुतिसे (वचः) तुम्हारी वाणी (यथा) जिसप्रकार प्रवृत्त होती हैं तैसे (गाय) गाओ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथꣳ स्वस्तये।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः४ः

अथ चतुर्थी। शंयुः ऋषिः। हे इन्द्र! त्रिधातु त्रिप्रकारं त्रिभूमिकम्! त्रिवरूथं त्रयाणां शीतातपवर्षाणां वारकम्। स्वस्तये अविनाशाय छर्दिः छर्दिष्मत् आच्छादनयुक्तम् एवं गुणविशिष्टं शरणं गृहम्। मघवद्भ्यश्च मघं हविर्लक्षणं धनं तद्वद्भ्यश्चास्मदीयेभ्यो यजमानेभ्यः मह्यं भारद्वाजाय च प्रयच्छ देहि। अपि च। एभ्यः सकाशात् दिद्युं शत्रुप्रेरितं द्योतमानमायुधं यवय पृथक्कुरु ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (त्रिधातु) तिमँजले (त्रिवरूथम्) शीत, धूप और वर्षाका वारण करने वाले (स्वस्तये) कल्याणके लिये (छर्दिः) छये हुए (शरणम्) गृहको (मघवद्भ्यः) हविरूप धनवाले हमारे यजमानोंको (मह्यम्, च) मुझे भी दो (एभ्यः) इनके समीपसे (दिद्युम्) शत्रुओंके छोड़े हुए दीप्तिमान् आयुधको (यवय) अलग करदो ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ २र १ २

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ५

अथ पञ्चमी । नृमेध ऋषिः । हे अस्मदीया जनाः ! आयन्त इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यं भजन्ते तथा इन्द्रस्य विश्वेत् विश्वान्येव धनानि भक्षत भजत । स च यानि वसूनि धनानि जाते उत्पन्ने जनिमानि जायमाने जनिष्यमाणे च ओजसा बलेन करोति अतो भागं न पित्र्यं भागमिव तानि धनानि प्रतिदीधिमः प्रतिधारयेमेति यद्वा । आयन्त इव सूर्यं यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यमुपतिष्ठन्ते तथा इन्द्रस्य विश्वा विश्वानि धनानि विभक्तुमिच्छन्तः समाश्रिता मरुतः इन्द्रमुपतिष्ठन्त इति शेषः । उपस्थाय च मरुतो वसूनि उदकलक्षणानि धनानि जाते जायमानाय जनिमानि जनिष्यमाणाय मनुष्याय ओजसा बलेन भक्षत विभजन्ते । तत्र चास्माकं यो भागः तं भागं नेति संप्रत्यर्थे प्रतीत्येषः अनु इत्येतस्य स्थाने । अनुदीधिमः वयमनुध्यायाम । तथा च यास्कः (नै० ६, ८) समाश्रिता सूर्यमुपतिष्ठन्तेऽपि वोपमार्थे स्यात् सूर्यमिवेन्द्रमुपतिष्ठन्त इति सर्वाणीन्द्रस्य धनानि विभक्ष्यमाणाः स यथा धनानि विभजति जाते जनिष्यमाणे च तं वयं भागमनुध्यायामौजसा बलेनेति । जनिमानि जनिमानः इति च पाठौ ॥ ५ ॥

हे हमारे पुरुषो ! (आयन्त इव सूर्यम्) जैसे आश्रयमें रहने वाली किरणें सूर्यका सेवन करती हैं तैसे (इंद्रस्य) इंद्रके (विश्वेत्) सकल धनोंको (भक्षत) सेवन करो, वह इंद्र (वसूनि) जिन धनोंको (जाते) उत्पन्न होने पर (जनिमानि) उत्पन्न होजाने पर (ओजसा) बलसे (करोति) करता है, उसमेंसे (भागं न) पिताके धनमेंके भागकी समान उन धनोंको (प्रतिदीधिमः) हम धारण करें ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।

१ २ ३ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते ६

अथ षष्ठी । पुरुहन्मा ऋषिः । हे दीर्घायो ! नित्येन्द्र ! सः अदेवः इंद्राख्यदेवरहितः मर्त्यः मरणधर्मा मनुष्यः सीं सर्वं इषम् तत् प्रसिद्धम् अन्नं नाप न प्राप्नोति । यो मर्त्यः अस्येन्द्रस्य एतग्वाचित् एतवर्णविचाश्वौ भवतोऽभिमतदेशगमनाय एतशः एतशौ अश्वौ युयोजते योजयति

रथे, यज्ञं गन्तुम्। यश्चेन्द्रो हरी युयोजते न स्तौति स न प्राप्नोतीति समन्वयः। आप तत् आपत् इति,च पाठौ। एतशः एतशा इति पाठौ ६

(दीर्घायो) हे चिरञ्जीव इंद्र ! वह (अनिन्द्रः) इंद्र नामक देवता से रहित (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (सं.म) सब (तत्) प्रसिद्ध अन्नको (न आप) नहीं प्राप्त होता है (यः) जो मनुष्य इस इन्द्रके तुम्हारे अभिमत स्थानमें जानेके निमित्त (एतग्वाचित्) विचित्र वर्णके घोड़े वाला है (यः) जो (एतशः) घोड़ोंको (युयोजते) जोड़ता है (इंद्रः) इन्द्र (हरी) हरिनामक घोड़ोंको (युयोजते) यज्ञमें जाने के निमित्त रथमें जोड़ता है, उसकी जो स्तुति नहीं करता वह उस को नहीं पाता है ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रᳩ समत्सु भूषत।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम् ७

अथ सप्तमी । नृमेधपुरुमेधावृषी। हे स्तोतारः ! विश्वासु सर्वासु समत्सु असुरयुद्धेषु हव्यं सर्वैर्देवैरात्मरक्षार्थमाह्वातव्यम् । एतादृशम् इन्द्रम् उद्दिश्य नः अस्माकं यज्ञे ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवीरूपाण्यन्नानि वा उपभूषत अलंकुरुत प्रेरयत। हे वृत्रहन् ! वृत्रस्यासुरस्य पापस्य वा हन्तः! परमज्याः युद्धेषु शत्रुहननार्थं परमा अविनश्वरी ज्या मौर्वी यस्य तथोक्तः। यद्वा परमात् बलेन प्रकृष्टान् शत्रून् जीनाति हिनस्तीति परमज्याः हे ऋचीषम ! स्तुतिभिरभिमुखीकरणीयेन्द्र ! एतादृशस्त्वं सवनानि प्रातः सवनादीनि त्रीणि ब्रह्माणि स्तोत्राणि च उपभूषत अलंकुरुत। भूषतः भूषन्तु इति पाठौ। वृत्रहन्। वृत्रहा इति च॥ ७॥

हे स्तोताओं (विश्वासु) सब (समत्सु) असुरोंके साथ युद्धोंमें (हव्यम्) जिसको अपनी रक्षाके निमित्त सब देवता अवश्य बुलाते है ऐसे (इन्द्रम्) इन्द्रके निमित्त (नः) हमारे यज्ञमें (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उपभूषत) शोभित और प्रेरित करो (वृत्रहन्) हे पाप-नाशक ! (परमज्याः) युद्धोंमें शत्रुओंका वध करनेके लिए जिसके पास अविनाशी प्रत्यञ्चा है (ऋचीषम्) हे स्तुतियोंसे अभिमुख करने योग्य देव (सवनानि) प्रातःसवन आदि तीन (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उपभूषत) अलंकृत करो ॥ ७ ॥

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
३ २ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा
१ २
गोषु वृण्वते ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वसिष्ठ ऋषिः । हे इन्द्र ! अवमम् अधमं त्रपु सीसादिकं वसु धनम् । यद्वा । भौमं वसु अवमं तवेत् तवैव । त्वं त्वमेव मध्यमं वसु रजतहिरण्यदिकम् आन्तरिक्षं वा पुष्यसि । विश्वस्य सर्वस्य परमस्योत्तमस्यापि रत्नादेर्दिव्यस्य वा वसुनो राजसि ईशिषे सत्रा सत्यमेव.। अपिच । त्वा त्वां गोषु निमित्तेषु न किर्वृण्वते केऽपि न वारयन्ति ८

(इन्द्र) हे इन्द्र (अवमम्) भूमिकी नीची श्रेणीका (वसु) धन (तवेत्) तेरा ही है (त्वम्) तुम (मध्यमम्) चाँदी सोना आदि मध्यम धनको (पुष्यसि) पुष्ट करते हो (विश्वस्य) सम्पूर्ण (परमस्य) रत्न आदि श्रेष्ठ धनके (सत्रा) सत्य ही (राजसि) राजा हो (त्वाम्) तुम्हे (गोषु) गौ आदि धन देतेमें (नकिर्वृण्वते) कोई भी वारण नहीं कर सकते ॥ ८ ॥

१ २र३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अलर्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ९

अथ नवमी । मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च ऋषिः । हे इन्द्र ! क्व कुत्र देशे इयथं गतवानसि पुरा ? क्वेत् कुत्र वा असि भवसि इदानीं वर्त्तसे पुरुत्राचिद्धि बहुषु हि ते त्वदीयं मनः सञ्चरति । हे युध्म युद्धकुशल ! खजकृत् युद्धस्य कर्त्तः ! हे पुरन्दर ! असुराणां पुरां दारयितः ! हे इन्द्र ! अलर्षि आगच्छ । गायत्रा गानकुशला अस्मदीयाः स्तोतारः प्रगासिषुः प्रगायन्ति स्तुवन्ति । अलर्षीत्येतत् दाधर्त्यादौ निपात्यते ॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र पहिले (क्व) कहां (इयथ) गए थे (क्वेत् असि) और इस समय कहाँ हो (पुरुत्राचित् हि) बहुतोंमें (ते) तुम्हारा (मनः) मन जाता है (युध्म) हे युद्ध कुशल (खजकृत्) हे युद्ध करने वाले (पुरन्दर) हे असुरोंके नाशक (अलर्षि) आइये (गायत्रा) गाने में कुशल हमारे स्तोता (प्रगासिषुः) स्तुति आदिको गाते हैं ॥ ९ ॥

३१२ ३ १ २र ३२ ३१२
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३२ ३२ ३१२ ३२
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १० ॥

अथ दशमी । कलिर्ऋषिः । वयं यजमानाः एनं वज्रिणं वज्रयुक्तमिन्द्रं इदा इदानीम् । ह्यः श्वः अतीतेऽन्हि । इह अत्राहर्गणे अपीपेम आप्याययाम सोमेन । तस्मा उतस्मादेव अद्य अत्र सवने सुतम् अभिषुतं सोमं भर हर हे अध्वर्यो ! । नूनम् इदानीं श्रुते सति आभूषत अलंकुरुत ॥ १० ॥

(वयम्) हम यजमान (एनम्) इस वज्रधारी इंद्रको (इदा) इस समय (ह्यः) कलके बीते हुए दिनमें (इह) इन दिनोंमें (अपीपेम) सोमसे तृप्त कर चुके हैं (तस्मात् उ) तिस कारणसे ही (अद्य) आजके (सवने) सवनमें (सुतम्) सम्पादन किये हुए सोमको (भर) धारण करो (नूनम्) इस समय (श्रुते) स्तुतिको सुनने पर (आभूषत) शोभायमान करो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ २उ ३ १२ ३१२
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १२ ३२ ३२
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

अथ पञ्चमे खण्डे—सैषा प्रथमा । पुरुहन्मा ऋषिः । यः इन्द्रः चर्षणीनां मनुष्याणां राजा स्वामी रथैर्याता गन्ता । च अध्रिगुः अधृतगमनोऽन्यैः । विश्वासां सर्वासां पृतनानां सेनानां तरुता तारकः । यश्च ज्येष्ठः गुणैर्गरीयान् । यः च वृत्रहा वृत्रं हतवान् । तं ज्येष्ठं सर्वैरतिशयेन प्रशस्यम् अधिकं वृद्धं वा महाभागमिन्द्रं गृणे स्तौमि ॥ १ ॥

(यः) जो इन्द्र (चर्षणीनाम्) मनुष्योंका (राजा) स्वामी है (रथेभिः) रथोंसे (याता)यात्रा करता है (अध्रिगुः) जिसकी समान कोई गमन नहीं करसकता (विश्वासाम्) सकल (पृतनानाम्) सेनाओंका (तरुता) पार लगाने वाला है, (यः) जो (वृत्रहा) पापका नाशक है उस (ज्येष्ठम्) सबके बड़े महाभाग इन्द्रकी (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवन्
३ २उ ३ १ २ ३२३ २ऊ ३ १ २र
छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥२

अथ द्वितीया । भर्गऋषिः । हे इन्द्र ! यतः हिंसकात् भयामहे वयं ततः नः अस्मभ्यम् अभयं कृधि कुरु । हे मघवन् ! शग्धि शक्तो भवसि नः अस्मभ्यमभयं कर्त्तुम् । तव ऊतये रक्षणाय विजहि द्विषःअस्मद्द्वेष्टॄन् । मृधः अस्मद्धिंसकान् नि जहि ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! हम (यतः) जिस हिंसकसे (भयामहे) डरते हैं (ततः) तिससे (नः) हमैं (अभयम) अभय (कृधि) करो (मघवन्) हे इन्द्र ! (शग्धि) हमैं अभय देनेकी शक्ति रखते हो (तव) तुम्हारी (ऊतये) रक्षाके लिये (द्विषः) हमारे शत्रुओंको (विजहि) नष्ट करो (मृधः) हमारे हिंसकोंको (वि) नष्ट करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणाꣳसत्रꣳ सोम्यानाम् ।
३ २ ३२ ३ १ २र ३ २ ३ १२३ १ २
द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनाꣳसखा३

अथ तृतीया । इरिमिठिऋषिः । हे वास्तोष्पते ! गृहपते ! स्थूणा-गृहाधारभूतस्तम्भः ध्रुवा स्थिरा भवतु । सोम्यानां सोमार्हाणां सोम-सम्पादिनां वास्माकम् अंसत्रम् अंसत्राणम् अंसोपलक्षितस्य कृत्स्नस्य शरीरस्य त्रायकं बलं भवतु । अपि च, द्रप्सः द्रवणशीलः सोमः तद्वान् अर्श आदित्वादच् प्रत्ययः । शश्वतीनां बह्वीनां पुराम् असुरपुरीणां भेत्ता विदारयिता एवंभूतः मुनीनाम् ऋषीणामस्माकं सखा मित्रभूतो भवतु३

(वास्तोष्पते) हे गृहपते ! (स्थूणा) घरके आधारका खंभा (ध्रुवः) स्थिर हो (सोम्यानाम) सोमका संपादन करनेवाले हमको (अंसत्रम्) कंधे आदि शरीरकी रक्षा करनेवाला बल प्राप्त हो (द्रप्सः) सोम पीनेवाला (शश्वतीनाम्) बहुतसी (पुराम्) असुरोंकी नगरियोंका (भेत्ता) विदारण करनेवाला (इन्द्रः) इंद्र (मुनीनाम्) हम ऋषियोंका (सखा) मित्ररूप हो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २
बण्महाꣳ असि सूर्य्य बडादित्य महाꣳ असि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मन्हा देव महाँ असि ४

अथ चतुर्थी । जमदग्निर्ऋषिः । अत्र शौनकः, वण्महामिति दृष्ट्वार्कमुपतिष्ठेदृचौ जपन् । वदन्नप्यमृतां वाणीं नानृतेन स लिप्यते इति । हे सूर्य्य ! प्रेरकेन्द्र ! त्वं महान् तेजसाधिकः असि । वट् सत्यम् । नैतन्मिथ्येत्यर्थः । हे आदित्य ! अदितेः पुत्र ! त्वं महान् बलेनाप्यधिकः असि वट् ! सत्यमेव । महो महतः सतो भवतः ते तव महिमा महत्वं पनिष्टम पनस्यते स्तोतृभिः स्तूयते । हे देव ! द्योतनादिगुणयुक्त ! सूर्य ! त्वं मन्हा महत्वेन वीर्येणाप्यधिकः असि भवसि न संशय इत्यर्थः पनिष्टमं पनस्यते इति मन्हा अद्धा इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(सूर्य) हे प्रेरक इन्द्र ! तुम (महान्) तेज करके अधिक (असि) हो (वट्) यह बात सत्य है (आदित्य) हे अदितिके पुत्र ! तुम (महान्) बलसे अधिक (असि) हो (वट्) यह बात सत्य ही है (महः) महान् (सतः) होनेवाले (ते) तुम्हारी (महिमा) महिमा (पनिष्टम) स्तोताओंसे स्तुतिकी जाती है (देव) हे सूर्यदेव ! (मन्हा) वीर्यसे भी (महान्) बड़े (असि) हो ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २ ३ १ २
अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ५

अथ पञ्चमी । देवातिथिर्ऋषिः हे इन्द्र ! ते तव सखा मित्रभूतः पुरुषः अश्वादिगुणविशिष्ट एव भवति इच्छब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते अश्वी इत् बहुभिरश्वैरुपेत एव भवति न कदाचिदश्वैर्वियुज्यते । रथी रथवान् एव स भवति। सुरूपः शोभनरूपः शोभनावयव एव स भवति गोमानित् बह्वीभिर्गोभिर्युक्त एव स भवति न कदाचिदेतैर्वियुज्यत इत्यर्थः अपि च, श्वात्रभाजा श्वात्रमिति धननाम आश्वतनीयं शीघ्रं प्राप्तव्यं शोभनं धनं संभजते ईदृग्धनसंयुक्तेन वयसा अन्ननामैतत् अन्नेन स सदा सर्वदा सचते समवैति सङ्गच्छते । अत एव चन्द्रैः सर्वेषामाह्लादकैः स्तोत्रैर्युक्तः सन् सभां जनसंसदम् उपयाति उपगच्छति ॥ ५ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब (ते) तुम्हारा (सखा) मित्ररूप पुरुष होजाता है तब (इत्) अवश्य ही (अश्वी) घोड़ोंवाला (रथी) रथोंवाला (सुरूपः) सुन्दर रूपवाला (गोमान्) बहुतसी गौओंवाला होता है और (श्वात्रभाजा) शीघ्र प्राप्त होनेवाले श्रेष्ठ धनसहित

(वयसा) अन्न करके (सदा) सर्वदा (सचते) युक्त होता है अर्थात् शीघ्र ही धन और अन्न पाता है तदनन्तर (चन्द्रैः) सबको प्रसन्न करनेवाले स्तोत्रोंसे युक्त होकर (सभाम्) जातिकी सभा आदिमें (उपयाति) जाता है ॥ ५ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २र३ २ १ २
यद्द्याव इन्द्र ते शतँ शतं भूमीरुत स्युः न त्वा
३ २३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वज्रिन्तसहस्रँ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । पुरुहन्मा ऋषिः । हे इंद्र ! ते तव प्रति मानार्थं यद् यदि द्यावः द्युलोकाः शतं शतसंख्याकाः स्युः तथापि नाश्नुवन्ति । उत अपि च भूमी भूम्यः ते तव मूर्तिप्रतिबिम्बाय शतं स्युः तथापि नाश्नुवन्ति । हे वज्रिन् ! त्वा त्वां सहस्रम् अगणिता अपि सूर्याः भवन्ति न प्रकाशयन्तीत्यर्थः "न तत्र सूर्यो भातीति श्रुतेः" किं बहुना जातम् पूर्वमुत्पन्नं किञ्चिदपि न अष्ट नाश्नुते । तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ नाश्नुवाते त्वं सर्वेभ्योऽतिरिच्यत इत्यर्थः "ज्यायान् पृथिव्याः ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः" इति श्रुतेः ॥ ६ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत) यदि (द्यावः) द्युलोक (शतम्) सैंकडों (स्युः) हों तो भी (त्वा) तुम्हें (न) नहीं (अनु अष्ट) व्यापसकते अर्थात् आपकी इयत्ता नहीं करसकते (उत) और (भूमी) भूमि (शतम) सौ हों तो भी आपकी मूर्तिका प्रतिबिम्ब बनानेमें पर्याप्त नहीं होसकतीं (वज्रिन्) हे वज्रधारी ! (सहस्रम्) सहस्रों (सूर्याः) सूर्य (त्वा) आपको (न) प्रकाशित नहीं करसकते अर्थात् आपकी प्रभाके सामने सहस्रों सूर्योंकी प्रभा भी दबजाती है (जातम्) उत्पन्न हुए पदार्थोंमेंसे कोई पदार्थ भी आपको नहीं व्याप सकता (रोदसी) द्यावापृथिवी आपको नहीं व्यापसकते, क्योंकि-तुम सबसे ही बड़े हो ६

२३ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ७

अथ सप्तमी । देवातिथिर्ऋषिः । इंद्र! यद् यदि प्राक् प्राच्यां दिशि वर्त्तमानैः सप्तम्यन्तादिक्शब्दाद्विहितस्य अस्तातेरंचेर्लुगिति लुक । यदि

वा अपाक् प्रतीच्यां दिशि वर्त्तमानैः यदि वा उदक् उदीच्यां दिशि वर्त्तमानैः। यद्वा न्यक् नीच्यां दिशि अधस्ताद्वर्त्तमानैः न्यधीचेति नः प्रकृतिस्वरत्वम्। उदात्तस्वरितयोर्यण इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम्। एवम्भूतैः नृभिः स्तोतृभिस्त्वं हूयसे स्वस्वकार्यायाहूयसे हे सिम श्रेष्ठेन्द्र सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षत इति वाजसनेयकम्। यद्यप्येवं बहुभिराहूयसे तथापि आनवे अनुर्नाम राजा तस्य पुत्रे राजर्षौ पुरु बहुलं नृषूतः नृभिस्तदीयैः स्तोतृभिः प्रेरितः असि भवसि राज्ञे हितकरणे त्वां स्तोतारः प्रेरयन्तीत्यर्थः षू प्रेरणे। अस्मात्कर्मणि निष्ठा। तृतीया कर्मणीति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। अपि च हे प्रशर्द्ध प्रकर्षेण शर्द्धयितरभिभवितरिन्द्र तुर्वशे एतत्संज्ञे च राजनि नृषूतः नृभिः प्रेरितो भवसि ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) यदि (प्राक्) पूर्व दिशामें वर्त्तमान (वा) वा (अपाक्) पश्चिम दिशामें वर्त्तमान (उदक्) उत्तर दिशामें वर्त्तमान (न्यक्) नीचे वर्त्तमान (नृभिः) स्तुति करनेवाले मनुष्यों करके (हूयसे) अपने २ कार्यके लिये आह्वान किये जाते हो (सिम्) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! तो भी (आनवे) आनवके विषयमें (पुरु) बहुत (नृषूतः) उनके स्तुति करने वालोंसे प्रेरणा किये हुए (असि) होते हो अर्थात् स्तोता आपका राजाको हित करनेके निमित्त प्रेरणा करते हैं और (प्रशर्ध) हे अधिकतासे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले इन्द्र (तुर्वशे) तुर्वशके विषयमें भी स्तोताओंसे आह्वान कियेजाते हो ॥ ७ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १
कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा हि
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजꣳ सिषासति ८

अथ अष्टमी। वशिष्ठ ऋषिः। हे वसो ! वासक ! व्यापक ! वा, हे इंद्र ! तं प्रसिद्धं त्वा त्वां कः मर्त्यः आदधर्षति आधर्षयेत्। हे मघवन् ! ते त्वदर्थं यः श्रद्धा श्रद्धया युक्तः सन् वाजी हविष्मान् यजमानो भवेत्। पार्ये दिवि सौत्येऽहनि सः वाजं हविर्लक्षणमन्नं सिषासति दातुमिच्छति ॥ ८ ॥

(वसो इन्द्र) हे व्यापक इन्द्र ! (तम्) तिन प्रसिद्ध (त्वा) तुम्हें (कः) कौन मनुष्य (आदधर्षति) धमकी देसका है ? (मघवन्) हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे अर्थ जो (श्रद्धा) श्रद्धायुक्त हुआ यजमान

(वाजी) हविवाला होता है वह (पार्येदिवि) सोम सम्पादनके दिन (वाजम्) हविरूप अन्नको (सिषासति) देना चाहता है ॥ ८ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वा शिरो

३ २.३ १२३ १ २ ३ २ ३ १ २

जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाजऋषिः । हे इन्द्राग्नी ! अपात् पादरहिता इयम् उषाः पद्वतीभ्यः पादयुक्ताभ्यः सुप्ताभ्यः प्रजाभ्यः पूर्वा प्रथमभाविनी सती आगात् आगच्छति । तथा प्राणिनां शिरो हित्वा त्यक्त्वा स्वयमशिरस्कापि जिह्वया प्राणिस्थया तदीयेन वागिन्द्रियेण रारपत् भृशं शब्दं कुर्वती चरत् एवं चरन्ती उषाः त्रिंशत्पदानि अवयवभूतान् त्रिंशन्मुहूर्त्तान् न्यक्रमीत् एकेन दिवसेनातिक्रामति एतच्च युवयोः कर्मेति स्तुतिः,हित्वा शिरो हित्वी शिरो इति पाठौ । रारपत् वावदद् इति च ९

(इंद्राग्नी) हे इन्द्र अग्नि देवताओं ! (अपात्) चरण रहित(इयम्) यह उषा (पद्वतीभ्यः) चरणवाली (सुप्ताभ्यः) प्रजाओंसे (पर्वा) प्रथम (आगात्) आती है, तथा प्राणियोंके (शिरः) शिरको (हित्वा) त्यागकर (जिह्वया) प्राणियोंमें स्थित उनकी वाक् इन्द्रियके द्वारा (रारपत्) अत्यन्त शब्द करती हुई (चरत्) ऐसा वर्त्ताव करती हुई उषा (त्रिंशत्) तीस मुहूर्तोंको (न्यक्रमीत्) एक दिनमें ही लांघलेती है यह सब वीरता तुम्हारी ही है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २

आशन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः

अथ दशमी । वालखिल्या ऋषयः । हे इन्द्र ! नेदीयः अन्तिकतममस्माकं यज्ञस्थानम् एदिहि आगच्छैव । काभिः साकमिति ? उच्यते मितमेधाभिः परिमितप्रज्ञाभिः ऊतिभिः रक्षाभिः । यद्वा । निर्मितयज्ञाभिर्मरुद्भिः सह । हे शन्तम ! सुखतम शन्तमाभिः सुखतमाभिः अभिष्टिभिः प्राप्तिभिः अभिमताभिर्वा आगच्छेति शेषः उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः तथा हे स्वापे अस्माकं बंधुभूत सुखस्य आपयितर्वा । स्वापिभिः बंधुभूताभिः सुखस्य प्रापयित्रीभिः अभिष्टिभिः आगच्छेति शेषः ॥१०॥

(इन्द्र) हे इन्द्र!(नेदीयः) बहुत समीपकी हमारी यज्ञशालामें (मितमेधाभिः) परिमित बुद्धियोंके और(ऊतिभिः)रक्षाओंके साथ (एदिहि) अवश्य आओ (शन्तम) हे परमसुखरूप(शन्तमाभिः) परमसुखरूप (अभिशिभिः) प्राप्तियोंके साथ (आ) आओ (स्वापे) हे बन्धो! (स्वापिभिः) सुखदायक प्राप्तियोंके साथ (आ) आओ ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्। आशु
२र३ १ २ ३ १ २ १ १ २ ३ १ २
जेतारꣳ हेतारꣳ रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१॥

अथ षष्ठे खण्डे-सैषा प्रथमा। नृमेध ऋषिः। हे अस्मदीया जनाः वो यूयम् अजरं जरारहितं प्रहेतारं शत्रूणां प्रेरकम् अप्रहितं केनाप्यप्रेषितम् आशुं वेगवन्तं जेतारं शत्रूणाम्। हेतारं गन्तारम्। रथीतमं रथिनां श्रेष्ठम् अतूर्तं केनाप्यहिंसितम्। तुग्रियावृधं उदकस्य वर्धयितारमिन्द्रम् ऊती ऊत्यै रक्षणाय इतः कुरुत, पुरस्कुरुतेति यावत् ॥ १ ॥

हे हमारे पुरुषों! (वः) तुम (अजरम्) जरारहित (प्रहेतारम्) शत्रुओंके प्रेरक (अप्रहितम्) किसीके भी न भेजेहुए (आशुम्) वेगवान् (जेतारम्) शत्रुओंको जीतनेवाले(हेतारम्) यज्ञभवनमें पहुँचने वाले (रथीतमम्) रथियोंमें श्रेष्ठ (अतूर्तम्) जिनको कोई नहीं मारसकता ऐसे (तुग्रियावृधम्) जलको बढानेवाले इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके निमित्त (इतः कुरुत) आगे करो ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि २

अथ द्वितीया। वसिष्ठ ऋषिः। हे इन्द्र! त्वां वाघतश्चन यजमाना अपि अस्मद् अस्मत्तः आरे दूरे मो निरीरमन् नितरां मा रमयंतु। अतस्त्वम् आरात्ताद्वा दूरेऽपि वर्तमानः नः अस्मदीयं सधमादं यज्ञम् सु सुष्ठु आगहि आगच्छ। इह वा अत्रापि वा सन् विद्यमानः उपश्रुधि अस्मदीयं स्तोत्रम् उपशृणु। आरात्ताद्वा आरात्ताच्चित् इति च पाठौ। २ ॥

हे इन्द्र! (त्वा) तुम्हे (वाघतश्चन) यजमान भी(अस्मत्)हम

से (आरे) दूर (मो निरीरमन्) रमण न करावे, इस कारण तुम (आरात्ताद्वा) दूर रहकर भी (नः) हमारे (सधमादम्) यज्ञको (सु) भली प्रकार (आगहि) प्राप्त हूजिये (वा) या (इह) यहाँ (सन्) वर्तमान होते हुए (उपश्रुधि) हमारी स्तुतिको सुनिये ॥ २ ॥

२ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २

सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ३

अथ तृतीया । वशिष्ठ ऋषिः हे मदीयाः पुरुषाः ! वज्रिणे वज्रवते सोमपाव्ने सोमस्य पात्रे इंद्राय सोमं सुनोत अभिषुणुत । अवसे इन्द्रन्तर्पयितुं पक्ती पक्तव्याम् पुरोडाशादीन् पचति च । कृणुध्वमित् इन्द्रप्रियकराणि कर्माणि च कुरुतैव । इन्द्रो हि मयः सुखं पृणन्नित् यजमानाय प्रयच्छन्नेव पृणते हवींषीति शेषः ॥ ३ ॥

हे मेरे पुरुषो ! (वज्रिणे) वज्रधारी (सोमपाव्ने) सोमपान करने वाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (सोमम्) सोमको (सुनोत) संपादन करो (अवसे) इन्द्रको तृप्त करनेके निमित्त (पक्तीः) पुरोडाशोंको (पचता) पकाओ (कृणुध्वमित्) इन्द्रको प्रसन्न करनेवाले कर्म करो क्योंकि इंद्र (मयः)सुख (पृणन्नित्)यजमानको देता हुआ ही(पृणते) हवियोंको ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तꣳ हूमहे वयम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ४

अथ चतुर्थी । शंयुः ऋषिः । यः इन्द्रः सत्राहा महतां शत्रूणां हन्ता विचर्षणिः विशेषेण सर्वस्य द्रष्टा तमिन्द्रं वयं हूमहे स्तुतिपदैराह्वयामः उत्तरार्द्धः प्रत्यक्षकृतः हे सहस्रमन्यो ! बहुविधं शत्रुनाशार्थं सहस्रसंख्यककोपयुक्त ! यद्वा । मन्युः क्रतुः, सहस्रसंख्याकैः क्रतुभिः पूज्येन्द्र ! हे तुविनृम्ण ! बहुधन ! सत्पते ! सतां पालयितरिन्द्र ! समत्सु संग्रामेषु नःअस्माकं वृधे वर्द्धनाय भव।सहस्रमन्यो सहस्रमुष्क इति च पाठौ

जो इन्द्र (सत्राहा) शत्रुओंका वध करता है (विचर्षणिः) विशेष रूपसे सबको देखनेवाला है, उस इन्द्रको हम (हूमहे) स्तुतिके पदों

से आह्वान करते हैं (सहस्रमन्यो)हे शत्रुओंका नाश करनेको सहस्रों प्रकार के कोपसे युक्त (तुविनृम्ण)हे बहुधन ! (सत्पते) हे सज्जनों के पालक ! (समत्सु) संग्रामों में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धिके अर्थ (भव) हूजिये ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ १
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् । मा
२ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २
वाᳬं रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ५

अथ पञ्चमी । परुच्छेप ऋषिः । अश्विद्वयदेवता । हे शचीवसू ! शचीति कर्मनाम अस्मदनुष्ठितज्योतिष्टोमादिकर्मधनौ ! युवां शचीभिः अस्मदीयैः कर्मभिर्यागादिभिर्निमित्तभूतैः दिवानक्तम् अहनि रात्रौ च दिशस्यतं विसृजतम् अभिमतं दत्तमित्यर्थः । दाश्ट दाने इत्यस्येदं छान्दसं रूपम् । यद्वा दशस्यतिर्दानार्थः कण्ड्वादिषु द्रष्टव्यः । वां युवयोः रातिः दानं कदाचन सर्वदा यागकालेऽपि अयागकालेऽपि मोपदसत् मोपक्षीणं भूत् दसु उपक्षये । लुङि पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेष्विति च्लेरङ् न केवलं युष्मदीयम् अपि तु अस्मद् अस्माकमपि रातिर्दानं हविरादिप्रदानं सर्वविषयं दानं वा, अर्थिभ्यः कदाचन सर्वावस्थायामपि मोपदसत् उपक्षीणं माभूत् सर्वदा वर्त्तताम् । अहमपि सर्वदा युष्मानुद्दिश्य दद्याम् । युवामपि मदभिमतं सर्वदा दत्तमित्यर्थः । दिशस्यतं दशस्यतम् इति च पाठौ ॥ ५ ॥

(शचीवसू) हे हमारे किये हुए ज्योतिष्टोम आदि कर्मको ही धन माननेवाले अश्विनीकुमारो ! तुम (शचीभिः) हमारे यज्ञरूप कर्मों से (दिवानक्तम्) रात दिन (दिशस्यतम्)अभिमत फल दो(वाम्) तुम्हारा (रातिः) दान (कदाचन) कभी भी (मोपदसत्) उपक्षीण न हो और (अस्मत्) हमारा भी (रातिः) दान (कदाचन) कभी उपक्षीण न हो, अर्थात् आप सदा हमें इच्छित पदार्थ देते रहें और हम सदा आपके निमित्त यज्ञादि करते रहें ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम् ६

अथ षष्ठी वामदेव ऋषिः । यदा कदा च यस्मिन् काले मीढुषे

लेके हविःप्रदात्रे यजमानाय तस्य यागार्थं मर्त्यो मरणधर्मा स्तोता स्तुतिकर्त्तोद्गाता जरेत स्तूयात् । आदित् अनन्तरमेव तस्मिन्काले इत्यर्थः । वरुणं पापस्य वारकं विव्रतानां विविधानां कर्मणां धर्त्तारं धारकं वरुणनामानं देवं विपा विशेषेण रक्षिकया गिरा स्तुत्या वन्देत स्तूयात् । यदा यजमानार्थमुद्गाता स्तौति तदा वरुणमेव स्तौतीत्यर्थः अथवा मीढुषे अभिमतवर्षित्रे वरुणाय तत् प्रीतये यदा कदा च यस्मिन् कस्मिंश्चित् काले स्तुत्यर्हे मर्त्यः स्तोतोद्गाता जरेत स्तूयात् । आदिदनन्तरमेव यजमानोऽपि उक्तलक्षणं स्वयमपि विपा गिरा वन्देत नमस्कुर्य्यात् स्तूयाद्वा ॥ ६ ॥

(यदा कदा च) जिस किसी समय भी (मीढुषे) हवि देनेवाले यजमानके यज्ञके लिए (मर्त्यः) मनुष्य (स्तोता) स्तुति करनेवाला (जरेत) स्तुति करे (आदित्) तदनन्तर ही (वरुणम्) पापों को दूर करने वाले (विव्रतानाम्) नाना प्रकारके कर्मों के (धर्त्तारम्) धारण करने वाले वरुण नामक देवताको (वपा) विशेष रक्षा करने वाली (गिरा) स्तुतिसे (वन्देत) स्तुति करे ॥ ६ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ १
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे । यः
२र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
संमिश्लो हर्य्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ७

अथ सप्तमी । मेध्यातिथिऋर्षिः । इन्द्रायेति चतुर्थ्येकवचनमिदं सम्बुद्ध्येकवचनस्य स्थाने द्रष्टव्यम् । हे इंद्र ! मेध्यातिथे ! मेधो यज्ञं तस्मिन् भवो मेध्यः मेध्यश्चासौ अतिथिश्चेति मेध्यातिथिः, तस्य सम्बोधनं हे मेध्यातिथे ! यज्ञे भव अतिथिभूत इन्द्र ! अन्धसः पीतस्य सोमस्य मदे सति त्वमस्मदीयाः प्रजाः पाहि रक्ष । यः इन्द्रः हर्य्योः अश्वयोः संमिश्लः स्वरथे संमिश्रयिता यश्च इन्द्रो वज्री हिरण्ययः हितरमणीयः यस्य रथो हिरण्ययो हिरणमयः । हर्य्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्रो हिरण्ययः इति छन्दोगाः । हर्य्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः इति वह्वृचाः ॥ ७ ॥

(इंद्राय) हे इन्द्र ! (मेध्यातिथे) हे यज्ञमें अतिथि बनने वाले (अन्धसः) पिये हुए सोमका (मदे) आनन्द आने पर तुम हमारी (गाः) गौओंको (पाहि) रक्षा करो (यः) जो (इन्द्रः) इन्द्र (हर्योः) हरि नामक घोड़ोंको (संमिश्लः) रथमें जोतता है (वज्री) वज्रधारी है (हिरण्ययः) हितकारी और रमणीय है (हिरण्ययः) सुवर्ण का रथ वाला है ॥ ७ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २र ३ १
उभयँ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्रा-
३ ३२३ १२ ३ १ २र३ १ २
च्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ८

अथ अष्टमी । भर्गऋषिः । उभयं स्तोत्रात्मकं शस्त्रात्मकं चोभयविधम् इदं वचो अर्वाग् अस्मदभिमुखं इन्द्रः शृणवत् शृणोतु । श्रुत्वा च सत्राच्या अस्माकं यज्ञं पूजयन्त्या धिया युक्तः सन् मघवान् धनवानिन्द्रः शविष्ठः अतिशयेन बलवान् सोमपीतये सोमपानाय आगमत् आगच्छतु । मघवान् मघवा इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(उभयम्) स्तोत्र और शस्त्र दोनों प्रकारका (नः) हमारा (इदं वचः) यह वचन (अर्वाक्) हमारे अभिमुख होकर (इन्द्रः) इन्द्र (शृणवत्) सुनै (च) और सुन कर (सत्राच्या) हमारे यज्ञका पूजन करनेवाली (धिया) बुद्धिसे युक्त होकर (मघवान्) धन वाला (शविष्ठः) अत्यन्त बलवान् इन्द्र (सोमपीतये) सोमपान करनेको (आगमत्) आवै ॥ ८ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
२ ३१२३ १ २र ३ २ ३ १२
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ९

अथ नवमी । अस्याः परस्याश्च मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । हे अद्रिवः वज्रवन्निन्द्र ! च नेति निपातद्वयसमुदायो विभज्य योजनीयः महे च महतेऽपि शुल्काय मूल्याय नाहं त्वां परादीयसे न विक्रीणामि ददातेरुत्तमपुरुषस्य कर्त्तर्येव व्यत्ययेन रूपम् । परा शुल्काय देयाम् इति बह्वृचा आमनन्ति । हे वज्रिवः ! वज्रहस्तेन्द्र ! सहस्राय सहस्रसंख्याकाय धनाय च न परादीयसे अयुताय दशसहस्राय शुल्काय न परादीयसे । शतामघ ! बहुधनेन्द्र ! शताय बहुनामैतत् अपरिमिताय धनाय च न परादीयसे न विक्रीणामि । उक्तसंख्याकाङ्क्षनादपि त्वां न परित्यजामि । किन्तु बहुभिर्हविर्भिः परिचरामीत्यर्थः ॥९॥

(अद्रिवः) हे वज्रवाले इन्द्र ! (महे च) महान् भी (शुल्काय) मूल्यके लिए मैं तुम्हैं (न) नहीं (परादीयसे) वेचता हूँ (वज्रिवः) हे वज्रहस्त (सहस्राय) सहस्रके लिये (न) नहीं (अयुताय) दश

सहस्रके लिए (न) नहीं वेचता हूँ (शतामय) हे बहुत धन वाले (शताय) अपरिमित धनके लिए भी नहीं वेचता अर्थात् चाहे जितना धन मिलजाय परन्तु मैं हवियोंके द्वारा आपका पूजन त्यागना नहीं चाहता ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः । माता
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ १ ॥

अथ दशमी । हे इन्द्र ! त्वं मे मदीयात् पितुः जनकादपि वस्याँ वसीयान् वसुमत्तरोऽसि । उत अपि च अभुञ्जतः अपालयतो मम भ्रातुः अपि त्वं वसीयानधिकोऽसि । हे वसो ! वासकेन्द्र ! मे मदीया माता च त्वं च समासमौ समानौ सन्तौ पुमान् स्त्रियेति पुंसः शेषः छदयथः अर्चतिकर्मायं मां पूजितं कुरुथः किमर्थम् ? वसुत्वनाय व्यापनाय राधसे धनाय च उभयोर्लाभायेत्यर्थः ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (मे) मेरे (पितुः) पितासे भी (वस्यान्) अधिक धनवान् हो (उत) और (अभुञ्जतः) पालन न करते हुए (भ्रातुः) मेरे भ्रातासे अधिक धनवान् हो, (वसो) हे व्यापक (मे) मेरी (माता) माता (च) और तुम भी (समा) समान होकर (वसुत्वनाय) धनवान् होनेके निमित्त (राधसे) अन्नके लिए (छदयथः) मुझे प्रतिष्ठित करो ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ १
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः । ताँ
२र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ १

अथ सप्तमे खण्डे—सैषा प्रथमा । वसिष्ठ ऋषिः । हे वज्रहस्त ! दध्याशिरः दधिमिश्रणाः इमे सोमासः सोमाः इन्द्राय तुभ्यं सुन्विरे सुता बभूवुः । तान् सोमान् मदाय मदार्थं पीतये पानाय ओको यज्ञसदनम् आ अभि हरिभ्यां अश्वाभ्यां आयाहि आगच्छ ॥ १ ॥

(वज्रहस्त) हे वज्रधारी (दध्याशिरः) दहीसे मिलेहुए (इमे) यह (सोमासः) सोम (इन्द्राय) तुम्हारे निमित्त (सुन्विरे) संपादन किये गए थे (तान्) उन सोमोंको (मदाय) आनन्दके निमित्त

(पीतये) पीनेको (ओकः) यज्ञमण्डपमें (आ) अभिमुख (हरिभ्याम्) अश्वोंके द्वारा (आयाहि) आइये ॥ १ ॥

३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः । मधोः

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः २

अथ द्वितीया वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! ते तव मदाय मदार्थम् उक्थिनः स्तोत्रयुक्ताः इमे सोमाः चिकित्रे ज्ञायन्ते दृश्यन्ते कित ज्ञाने कर्मणि लिट् । इर योरे इति रे इत्यादेशः किञ्च । मधोः मदकरस्य कर्मणि षष्ठी मद कर सोमं पपानः अत्यर्थं पिबन् अस्माकं गिरः स्तोत्ररूपा वाचः उपशृणु सम्यक् शृणु । गिर्वणो गीर्भिर्वननीय ! हे इन्द्र ! स्तोत्राय स्तोत्रकर्त्रे मह्यं रास्व अभीष्टं देहि ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र!(ते) तुम्हारे (मदाय) हर्षके निमित्त (उक्थिनः) स्तोत्रयुक्त (इमे) यह (सोमाः) सोम (चिकित्र) दीखते हैं और (मधोः) प्रसन्नता देनेवाले सोमको (पपानः) अधिकतासे पीते हुए हमारी (गिरः) स्तोत्ररूप वाणियोंको (उपशृणु) सुनिये (गिर्वणः) हे स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य इंद्र ! (स्तोत्राय) स्तुति करने वाले मुझे (रास्व) इच्छित फल दीजिये ॥ २ ॥

१ २ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ त्वाऽद्य सर्वदुघाँ हुवे गायत्रवेपसम् ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र धेनुँ सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरं कृतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी।एके विश्वामित्र इत्याहुः अनयेन्द्रं धेनुरूपेण वृष्टिरूपेण च निरूपयन् स्तौति । अद्य इदानीं धेनुं धेनुरूपमिन्द्रं तु क्षिप्रं आहुवे आह्वये । कीदृशीं धेनुम् ? सर्वदुघां पयसो दोग्ध्रीं गायत्रवेपसं प्रशस्यवेगाम् । सुदुघां सुखेन दोग्धुं शक्याम् । अन्यां उक्तविलक्षणाम् उरुधारां बहूदकधाराम् इषम् एषणीयां वृष्टिं लिङ्गव्यत्ययः एतद्रूपेण वर्त्तमानम् । अरंकृतं अलंकर्त्तारं पर्याप्तकारिणं वेन्द्रं चाह्वये ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र (अद्य) इस समय (सर्वदुघम्) अधिक दूध देने वाली (गायत्रवेपसम्) प्रशंसनीय वेगवाली (सुदुघाम्) सुखसे दुहने योग्य (अन्याम्) विलक्षण प्रकारकी (उरुधाराम्) जिस के स्तनोंमें से अनेकों दुग्धधारा निकलती हैं ऐसी (इषम्) चाहने

याय (धेनुम्) धेनुरूप (अरम् कृतम्) शोभा देनेवाले इन्द्रको (तु) शीघ्र (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः । यच्छि-
२र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र
क्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते॥४॥

अथ चतुर्थी । नोधा ऋषिः । हे इंद्र! बृहन्तो बलेन महांतः अत एव वीडवः । यच्छिक्षसि स्तुवते मावते सर्वतो दृढा अपि अद्रयः पर्वताः त्वा त्वां न वरन्ते बलेन न निवारयन्ति । अनिवारणमेवोत्तराद्र्धेन विवृणोति–स्तुवते त्वद्विषयं, स्तोत्रं कुर्वते मावते मत्सदृशाय मादृशाय स्तोत्रे यद् वसु धनं शिक्षसि ददासि । ते तव तदेतद्धनं नकिर्नकश्चित् आ मिनाति आभिमुख्येन हिनस्ति । मीञ् हिंसायाम् । मीनातेर्निगमे (७,३,८१) इति ह्रस्वः । मावते । युस्मदस्मदोः सादृश्ये मतुब्वाच्यः (५,१,६१) इति मतुप्।शिक्षसि दित्ससि इति च पाठौ ॥४॥

(इन्द्र) हे इंद्र (बृहन्तः) बलसे बड़े (वीडवः) बलवान् दृढ (अद्रयः) पर्वत भी (त्वा) तुम्है (न) नहीं (वरन्ते) बलसे निवारण करसकते हैं (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (मावते) मुझसे पुरुष को (यत्) जो (वसु) धन (शिक्षसि) देते हो (ते) तुम्हारे (तत्) उस धनको (नकिः) कोई नहीं (आमिनाति) रोक सकता है ४

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
३ १ २र ३ २र ३ २ ३ १ २
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मंदानः शिप्र्यन्धसः ५

अथ पञ्चमी । मेधातिथिऋषिः।सुते अभिषुते सोमे सचा ऋत्विग्भिः सह सोमं पिबन्तम् एनमिन्द्रं को वेद वेत्ति न कोऽपि वेत्तीत्यर्थः कः किंवा वयः अन्नं दधे धारयति । योऽयम् इन्द्रः शिप्री हनुमान् अन्धसः सोमेन मन्दानः मन्दमानः ओजसा बलेन पुरो विभिनत्ति ५

(सुते) सोमरसके सम्पन्न होने पर (सचा) ऋत्विजोंके साथ (पिबन्तम्) सोमको पीतेहुए (ईम्) इस इंद्रको (को वेद) कौन जानता है ? अर्थात् कोई नहीं जानता (कत्) कितने (वयः) अन्न को (दधे) धारण करता है (यः अयम्) जो यह इन्द्र (शिप्री) वेगवाला (अन्धसः) सोमसे (मंदानः) आनन्दित होताहुआ (ओजसा) बलसे (पुरः) शत्रुओंके नगरों को (विभिनत्ति) नष्ट करता है ५

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।

३ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अस्माकमँशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ६

अथ षष्ठी । अस्याः परस्याश्च वामदेव ऋषिः । हे इन्द्र ! यद् यस्मात् कारणात् शासः शिक्षणीयानां यज्ञविरोधिनां शिक्षकस्त्वं तस्मात् कारणात् सद्सः अस्मद्यागगृहस्य परितो वर्त्तमानम् अव्रतम् अकर्माणं यागविरोधिनमित्यर्थः । च्यावय दूरं निःसारय । अपि च–हे मघवन् धनवन्निन्द्र ! पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयम् अस्माकम् अस्मदीयम् अंशुं सोमं वसव्ये वस्तव्ये निवासयोग्ये स्थाने अधि बर्हय अधिकं वर्द्धय यज्ञगृहे यागविरोधिनो राक्षसादीन्निःसार्य्य सोमं प्रवर्द्धयेत्यर्थः ॥६॥

(इंद्र) हे इंद्र !(यत्) क्योंकि (शासः) तुम यज्ञके विघ्नकर्त्ताओंको दण्ड देते हो इसकारण (सद्सः) हमारी यज्ञशालाके (परि) चारों ओर वर्त्तमान (अव्रतम्) यज्ञकर्मके विरोधीको(च्यावय) दूर निकाल दो और (मघवन्) हे धनपते ! (पुरुस्पृहम्) बहुतोंके चाहने योग्य (अस्माकम्) हमारे (अंशुम्) सोमको (वसव्ये) निवासयोग्य स्थान में (अधिवर्धय) अधिक बढाओ ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ७

अथ सप्तमी । त्वष्टा एतत्संज्ञको रूपाभिमानी देवः नः अस्मदीयं वचः पातु । ब्रह्मणस्पतिः एतत्संज्ञको मन्त्राभिमानी देवः अस्मदीयं वचः पातु । किञ्च । अदितिर्नु अखण्डनीया अदीना वा एतन्नाम्नी देवमाता च पुत्रैर्भ्रातृभिः स्वकीयैः सहिता नः अस्माकं संबंधि दुस्तरं कर्म विरोधिभिस्तरीतुमशक्यं त्रामणं रक्षणीयं वचः पातु ॥ ७ ॥

(त्वष्टा) रूपका अभिमानी त्वष्टा देवता (पर्जन्यः) मेघका अधिष्ठात्री देवता (ब्रह्मणस्पतिः) मंत्राभिमानी ब्रह्मणस्पति देवता (पुत्रैः भ्रातृभिः) अपने पुत्र और भ्राताओं सहित (अदितिः) देवमाता अदिति (नः) हमारे (दुस्तरम्) विघ्नकर्त्ताओंके कारण तरनेको अशक्य (त्रामणम्) रक्षा करने योग्य (वचः) यज्ञीय स्तुति की (नु) शीघ्र (पातु) रक्षा करे ॥ ७ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
२ ३ १ २र २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ८

अथ अष्टमी । वालखिल्या ऋषयः । हे इन्द्र ! त्वं कदाचन कदाचिदपि स्तरीः हिंसको नासि यद्वा । स्तरीर्निवृत्तप्रसवा गौः, तथाविधो न भवसि । सा यथा वत्साभावात् गृहं प्रति नागच्छति न तथा करोषीत्यर्थः । किन्तु, दाशुषे हविर्दात्रे यजमानाय सश्चसि सङ्गच्छसे अस्मान् । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! देवस्य द्योतनादिगुणवस्य तव भूयः प्रभूतं दानम् उपोपेत् पृच्यते अपर उपशब्दः पूरणः उपपृच्यत एव अस्माभिः संपृच्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तू (कदाचन) कभी भी (स्तरः) हिंसक (न असि) नहीं है (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (सश्चसि) ऋत्विजोंको प्राप्त कराते हो (मघवन्) हे धनवन् (देवस्य) प्रकाशस्वरूप (ते) तुम्हारा (भूयः) बहुतसा (दानम्) दान (उपोपेत् पृच्यते) हमारे समीप आकर प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
युंक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अर्वाचीनो मघवंत्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ९

अथ नवमी । मेधातिथिर्मेध्यातिथिर्वा ऋषिः । हे वृत्रहन्तम ! वृत्रं हतवान् वृत्रहा अतिशयेन वृत्रं हतवान् वृत्रहन्तमः यथा पुनर्नोत्तिष्ठति तथा हतवानित्यर्थः अनो नुट् (पा० ८,२, १६) इति तमपो नुट् । हे तादृशेन्द्र ! हरी त्वदीयावश्वौ युंक्ष्व हिरवधारणे आत्मीयं रथे योजयैव । हे मघवन् ! धनवन् ! उग्रः उद्गूर्णबलस्त्वं सोमपीतये सोमस्य पानार्थं । दासीभारादित्वात्पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् अर्वाचीनोऽस्मदभिमुखः ऋष्वेभिः ऋष्वैर्दर्शनीयैर्मरुद्भिः सार्द्धं परावतः दूरनामैतत् दूरे वर्तमानात् द्युलोकात् आगहि आगच्छ ॥ ९ ॥

(वृत्रहन्तम) हे सर्वथा पापका नाश करनेवाले इन्द्र ! (हि) निश्चय (हरी) अपने घोडोंको (युंक्ष्व) रथमें जोडो (मघवन्) हे धनवन् ! (उग्रः) प्रकट बलवाले तुम (अर्वाचीनः) हमारे अभिमुख (ऋष्वेभिः) दर्शनीय (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (परावतः) दूर द्युलोकसे (आगहि) आइये ॥ ९ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २
त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि १०

अथ दशमी । नृमेध ऋषिः । हे वज्रिन् ! इन्द्र ! ये त्वां भूर्णयः हविर्भिर्भरणशीला नरा कर्मणां नेतारो यजमानाः इदा अद्य ह्यः पूर्वद्युश्च अपीप्यन् सोममपाययन् । हे इन्द्र ! स त्वं स्तोमवाहसः षष्ठ्यर्थे प्रथमा स्तोमवाहसां स्तोत्रवाहकानामस्माकं स्तोत्रम् इह यज्ञे श्रुधि शृणु स्वसरं गृहं च । दुर्याः स्वसराणीति (नै० ३, ४, १०) गृहनामसु पाठात् उपागहि उपागच्छ ॥ १० ॥

(वज्रिन्) हे वज्र धारी ! (त्वाम्) जिन तुम्हें (भूर्णयः) हवि अर्पण करनेवाले (नरः) कर्मकर्त्ता यजमानोंने (इदा) आज (ह्यः) पहिले दिन (अपीप्यन्) सोम पिलाया था (इन्द्र) हे इन्द्र (सः) वह तुम (स्तोमवाहसः) स्तोत्र पढ़नेवाले हमारे स्तोत्रको (इह) इस यज्ञमें(श्रुधि) सुनो (स्वसरम्) हमारे स्थानमें (आगहि) आइये ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २ १ २
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः । अपो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २
मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।१।

अथ अष्टमे खण्डे—सैषा प्रथमा । द्वयोर्वसिष्ठ ऋषिः । आयती आगच्छन्ती उच्छन्ती तमांसि विवासयन्ती वर्जयन्ती दिवो द्युलोकस्य सूर्यस्य वा दुहिता पुत्री एवम्भूता उषाः प्रत्यदर्शि सर्वैः प्रतिदृश्यते उ इति पूरणः सैषा मही महती । यद्वा मही महत्तमो नैशं तमोऽन्धकारं अप उ इति निपातद्वयसमुदायः । अपेतस्यार्थे अपोवृणुते अपवृणोति । कथं ? चक्षुषा-दर्शनेन । एवं कृत्वा सूनरी । जनानां सुष्ठु नेत्री उषाः ज्योतिः प्रकाशं कृणोति करोति । अपो मही वृणुते चक्षुषा इति छन्दोगाः । अपो महि व्ययति चक्षुषे इति बह्वृचाः ॥ १ ॥

(आयती) आती हुई (उच्छन्ती) अन्धकारोंको दूर करती हुई(दिवः) सूर्यकी पुत्री उषा (प्रत्यदर्शि उ) सबोंने निश्चित रूपसे देखी (चक्षुषा) दर्शनसे (मही) बड़े भारी रात्रिके अंधकारको (अप-उ-वृणुते) दूर

करती है (सूनरी) मनुष्योंकी श्रेष्ठ नेत्ररूप उषा (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशꣳहि गच्छथः २

अथ द्वितीया । इमाः दिविष्टयः दिवमिच्छन्त्यः प्रजाः ऋत्विजोऽपि उ इति चार्थे । हे अश्विना ! अश्विनौ ! उस्रौ ! वासकौ ! वां युवां हवन्ते आह्वयन्ति । अयमहं वसिष्ठोऽपि हे शचीवसू ! कर्मधनौ ! वां युवां अवसेऽस्मद्रक्षणाय युवयोस्तर्पणाय वा अह्वे आह्वयामि । किमर्थमेवं प्रजामप्यहमपीत्यादरोक्तिरिति तत्राह । विशंविशं हि गच्छथः । हि यस्मात् सर्वाः स्तुतिकर्त्रीः प्रजाः प्रति युवां गच्छथः खलु तस्मादेवमुच्यत इति २

(इमाः) यह (दिविष्टयः) द्युलोकको चाहने वाली प्रजाएँ (उ) ऋत्विज भी (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (उस्रौ) व्यापक (वाम्) तुम्हें (हवन्ते) आह्वान करते हैं (अयम्) यह मैं भी (शचीवसू) हे कर्मको धन मानने वाले (वाम्) तुम दोनोंको (अवसे) अपनी रक्षाके लिए अथवा तुम दोनोंको तृप्त करनेके लिए (अह्वे) आह्वान करता हूँ (हि) क्योंकि तुम (विशंविशम्) अपनी स्तुति करने वाले प्रत्येक यजमानके समीप (गच्छथः) जाते हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

कु ष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः । घ्नता

२ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

वामश्नया क्षपमाणोꣳशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

अथ तृतीया । अश्विनौ वैवस्वतावृषी । अश्विना ! अश्विनौ ! हे देव ! देवौ द्योतमानौ ! वां युवां कुष्ठः क्व पृथिव्यां वर्त्तमानः को मर्त्यः मरणधर्मा मनुष्यः स्तोता तपानः तापनः प्रकाशको भवति इति शेषः । न कश्चिच्छक्नुयादित्यर्थः । वां युवयोरर्थाय अश्नया अश्नशब्दाद्भिसो यादेशः व्याप्तैरभिषवसाधनैरश्मभिः घ्नता हन्यमानेन अभिषूयमाणेन अंशुना सोमेन । यद्वा । अस्माभिरभिषुतेन घ्नता युवामभिगच्छता अंशुना सोमेन क्षयमाणः क्षीयमाणो यजमानः इत्थम् इत्थमेव भवति अत्यन्तं समृद्धो भवतीत्यर्थः । आद्वन् यथा अभिमतान्नरसादिभक्षण-

वान् राजादिरिव । स यथा प्रवृद्धो दृष्टान्तविषया भवति तद्वदयमपि भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(देवा) प्रकाशवान् (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (कुष्टः) भूमण्डल पर निवास करने वाला (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (वाम्) तुम्हारा (तपानः) प्रकाशक होता है ? (वाम्) तुम्हारे निमित्त (अश्नया) सोमरस निकालनेके पाषाणों करके (घ्नता) कुटे हुए (अंशुना) सोमसे (क्षयमाणः) थका हुआ यजमान (आह्नन् यथा) यथेच्छ अन्न रसादि खाने वाले राजाकी समान (इत्थम्-उ) इस प्रकार ही ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २ १ २
अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु । तमश्विना
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तᳬं रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । प्रस्कण्व ऋषिः । हे अश्विना ! अश्विनौ ! वां युवयोः दिविष्टिषु दिव एषणेषु यज्ञेषु अयं पुरोवर्त्ती सोमः सुतो अभिषुतः कीदृशः ? मधुमत्तमः । अतिशयेन माधुर्यवान् तिरो अह्न्यं तिरोभूते पूर्वस्मिन्दिनेऽभिषुतं तं सोमं पिबन्तं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि धनानि धत्तं प्रयच्छतम् । दिविष्टिषु ऋतावृधे इति च पाठौ ॥ ४ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम्) तुम्हारे (दिविष्टिषु) यज्ञोंको (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर (अयम्) यह सोम (सुतः) सम्पादन किया गया है (तिरो अह्न्यम्) पहिले दिन सम्पादन किये हुए सोमको (पिबतम्) पियो (दाशुषे) हवि देनेवाले यजमानको (रत्नानि) श्रेष्ठ धन (धत्तम्) दो ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ५

अथ पञ्चमी । मेधातिथिमेध्यातिथी ऋषी । हे इन्द्र ! त्वा त्वां सवनेषु यज्ञेषु सोमस्य गल्दया गालनेन आस्रावणेन । ज्या जयशीलया स्तुत्या स्य अत एव गिरेति बह्वृचाः पठन्ति तया युक्तः सहं सदा सर्वदा याचन् याचमानः सन् आचुक्रुधं मा चुक्रुधं क्रुधमपनयामि

आ इति प्रतिषेधार्थः निपातानामनेकार्थत्वात्। अतएव बहुशुधाः मात्वे-त्यामनन्ति बहुशो याच्यमाने त्वयि क्रोधो जायते तं सोमगाल्नेन स्तुत्या चापनयामीत्यर्थः कीदृशं त्वां भूर्णिम् भर्त्तारं मृगं न सिंहमिव भीमं स्वामिनः इन्द्रस्य याचने लौकिकं न्यायं दर्शयति लोके को वा पुरुषः ईशानम् ईश्वरं स्वामिनं न याचिषत् न याचेत सर्व एव हि याचते। अतोऽहमपि त्वां स्वामिनं याचे इति भावः ॥ ५॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (भूर्णिम्) भरणकर्त्ता (मृगं न) सिंहकी समान (त्वा) तुम्हे (सवनेषु) यज्ञोंमें (सोमस्य) सोमके (गल्दया) रससे (ज्या) विजयशील स्तुति करके भी युक्त (अहम्) मैं (सदा) सर्वदा (याचन्) याचना करता हुआ (आचुक्रुधं) क्रोधको दूर करता हूँ (कः) कौन पुरुष (ईशानम्) अपने स्वामीसे (न) नहीं (याचिषत्) याचना करता है ? अर्थात् सब ही स्वामीसे याचना करते हैं, इसी कारण मैं भी अपने स्वामी आपसे याचना करता हूँ कि-ऐसी कृपा करिये, जिससे मुझे किसीके ऊपर क्रोध न आवै ॥५॥

१ २ ३ २ ३ २ उ ३ १ २ १ २
अध्वर्यो द्रावया त्वꣳ सोममिन्द्रः पिपासति । उपो
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६॥

अथ षष्ठी। देवातिथिऋषिः। हे अध्वर्यो ! अध्वरस्य नेतस्त्वं सोमं द्रावय उत्तरवेदिलक्षणं स्थानं प्रापय। यद्वा रसात्मना द्रवणशीलं कुरु। अभिषुणिवत्यर्थः। किं कारणमिति चेत् इन्द्रः पिपासति सोमं पातुमिच्छति त्वयैतत्कथमवगतमिति चेत्तत्राह वृषणावर्षितारौ युवानौ वा। हरी अश्वौ नूनं अद्य उपो युयुजे उपगम्यैव सारथियोजितवान् रथे। वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता इन्द्रश्च आ जगाम आगतवान्। उपो नूनं उप-नूनं इति पाठौ ॥ ६॥

(अध्वर्यो) हे यज्ञके नेता अध्वर्यु ! तू (सोमम्) सोमको (द्रावया) उत्तरवेदी नामक स्थान पर पहुँचा क्योंकि (इन्द्रः) इन्द्र (पिपासति) सोमको पीना चाहता है(वृषणा) युवा (हरी) घोडोंको (नूनम्)आज (उपोयुयुजे) सारथिने रथमें जोडा है (वृत्रहा) वृत्रासुरके नाशक इन्द्र (आजगाम) आगया ॥ ६ ॥

३ २ ३ २ उ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।

३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥७॥

अथ सप्तमी । द्वयोर्वसिष्ठ ऋषिः । हे ज्यायः ज्यायन्निन्द्र ! आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवदितीन्द्रपदस्य विद्यमानवद्भावात् ज्याय इत्यस्य सर्वानुदात्तत्वाभावः । नकारस्य रुत्वं व्यत्ययेन नुमभावो वा कनीयसः सतो मम तत् प्रसिद्धं धनम् । अभ्याभर अभ्याहर हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र पुरुवसुः बहुभिर्वननीयो बभूविथ असि । भरे भरे संग्रामे च हव्यो होतव्यश्च बभूविथ । मघवन् बभूविथ इति छन्दोगाः । मघवत्सनादसि इति बह्वृचाः ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (ज्यायः) हे सबोंसे बड़े इन्द्र ! (इषतः) याचना किये हुए (तत्) उस प्रसिद्ध धनको (कनीयसः) मुझ छोटेको (अभ्याभरः) सब ओरसे लाकर दीजिये (मघवन्) हे धनवान्! (पुरूवसुः) बहुतोंसे याचना करने योग्य (बभूविथ) हुए हो (भरे भरे) प्रत्येक संग्राम में (हव्यः) आह्वान करने योग्य और हवि देने योग्य भी हुए हो ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वायरꣳसिषम् ८

अथ अष्टमी । हे इन्द्र ! यदु यतो यावतो धनस्य ईशिषे एतावत् षष्ठ्या लुक् एतावतो धनस्य अहमीशीय ईश्वरो भवेयम् । हे रदावसो रदति ददाति वसूनीति रदावसुः तादृश हे इन्द्र! ततोऽहमस्मदीयं स्तोतारम् इत् दधिषे धनप्रदानेन धारयेयमेव । पापत्वाय क्षीणत्वाय न रंसिषं न दद्याम् । स्तोतारमिद्दधिषेरदावसोनपापत्वाय रंसिषम् इति छन्दोगाः । दिधियेयरदावसोपापत्वायरासीय इति बह्वृचाः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) जिसकारणसे (त्वम्) तुम (यावतः) जितने धनके (ईशिषे) स्वामीहो (एतावत्) उतने ही धनका (अहम्) मैं (ईशीय) स्वामी होऊँ (रदावसो) हे धन देनेवाले इंद्र ! तिससे मैं (स्तोतारम्) अपने सामगान करनेवाले स्तोताको (इत् दधिषे) धन देकर अवश्य रखसकूँ (पापत्वाय) वृथा नष्ट करनेको (न) नहीं (रंसिषम्) दूँ ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः ९

अथ नवमी । नृमेध ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वं प्रतूर्त्तिषु सङ्ग्रामेषु विश्वाः सर्वाः स्पृधो युद्धकारिणोः शत्रुसेनाः अभ्यसि अभि भवसि किञ्च हे तूर्य्य ! शत्रूणां बाधक इन्द्र ! त्वम् अशस्तिहा दैवीनामशस्तीनां हन्तासि। जनिता असुरेभ्यः अशस्तीनां जनयिता चासिः वृत्रतूः सर्वस्य शत्रुवर्गस्य हिंसिता चासि । तरुष्यतः बाधकांश्च बाधमानोऽसि ९

(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वम्) तुम (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामोंमें (विश्वाः) सब (स्पृधः) युद्ध करनेवाली शत्रुओंकी सेनाओंका (अभ्यसि) तिरस्कार करते हो (तूर्य) हे शत्रुओंके बाधक इन्द्र ! (त्वम्) तुम (अशस्तिहा) दैवी आपत्तियोंके नाशक हो (जनिता) हमारे शत्रुओंके आपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो (वृत्रतूः) सकल शत्रुसमूहका नाश करनेवाले (असि) हो (तरुष्यतः) हमारे विघ्नकर्त्ताओंका निवारण करते हो ॥ ९ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ १
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि । न
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ१०

अथ दशमी नोधा ऋषिः । हे इन्द्र ! यस्त्वं दिवो द्युलोकस्य सदोभ्यः स्थानेभ्यः परि पर्य्यन्तेभ्यः ओजसा बलेनैव प्र रिरिक्षे प्रकर्षेणातिरिक्तो भवसि रिचेर्लिटि बहुलञ्छन्दसीति इत्वः । प्रत्ययस्वरः किञ्च हे इन्द्र! पार्थिवं पृथिव्यां भवं रजो लोकः त्वा त्वां महता स्वशरीरेण न विव्याचन व्याप्नोति द्यावापृथिवीभ्यामपि स्वतः सत्वं बलेन समर्थोऽसीत्यर्थः। एवम्भूतः सन् त्वम् अस्मान् विश्वम् अति अतिक्रम्य ववक्षिथ वोढुमिच्छ वहेः सन्नन्तस्य छान्दसेलिंटि रूपं मन्त्रत्वादामभावः १०

असाविदेवमेकोनत्रिंशत्तासुप्रवोमहे ।
त्रिपदोक्तविराडन्यास्त्रिष्टुभोऽष्टोर्ध्वविंशतिः ॥
ऐन्द्रीषु तासु तार्क्ष्यस्य स्तुतिरेका त्वमुष्विति ।
पर्वतेन सहेन्द्रस्य गोरिन्द्रापवतेत्यपि ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! जो तुम (दिवः) द्युलोकके (सदोभ्यः) स्थानों

से (ओजसा) बल करके (प्ररिरिक्षे) अधिकता करके श्रेष्ठ होते हो और हे इंद्र ! (पार्थिवम्) पृथिवीपर उत्पन्न हुआ (रजः) लोक (त्वा) तुम्हें अपने बड़े शरीरसे (न विव्यात्त) व्याप्त नहीं करसका ऐसे बलवान् तुम हमें (विश्वम्) विश्वको (अति) त्यागकर (ववक्षिथ) धारण करो अर्थात् हमें सबसे श्रेष्ठ बनाओ ॥ १० ॥

इति तृतीयाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २र ३ २ ३क २र ३ १ २
असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो
३ १ २ १ २ ३ १ २र
जनुषे । मुवोच बोधामसि त्वा हर्य्यश्व यज्ञैर्बोधा
३ २ ३ १ २ ३ १ २
न स्तोममन्धसो मदेषु ॥ १ ॥

तत्र नवमखण्डे—सैषा प्रथमा । द्वयोर्वसिष्ठ ऋषिः । देवं दीप्तं गोऋजीकं गोभिः संस्कृतं गव्येन मिश्रितमित्यर्थः । अंधः सोमरूपमन्नम् असावि अभिषुतम् । ईम् अयम् इंद्रः अस्मिन् अभिषुते सोमरूपेऽन्धसि जनुषा स्वभावत एवन्युवोच नितरां सङ्गतो भवति उ च समवाये अथ प्रत्यक्षस्तुतिः हे हर्य्यश्व ! त्वा त्वां यज्ञैः स्तोत्रैः हविर्भिर्वा बोधामसि बोधयामः । अंधसः सोमस्य मदेषु नोऽस्माके स्तोमं स्तोत्रं बोध बुध्यस्व च ॥ १ ॥

(देवम्) प्रकाशमय (गोऋजीकम्) गाघृत दुग्धादिसे संस्कार किये हुए (अंधः) सोम रूप, अन्नको (असावि) संपादन किया (ईम्) यह (इंद्रः) इंद्र (अस्मिन्) इस संपादन किये हुए सोमरूप अन्नमें (जनुषा) स्वभावसे ही (न्यवोच) अत्यन्त तत्पर होता है (हर्यश्व) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें (यज्ञैः) स्तोत्र और हवियोंसे (बोधामसि) बोध कराते हैं (अंधसः) सोमके (मदेषु) मदोंमें (नः) हमारे (स्तोमम्) स्तोत्रको (बोध) जानो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
योनिष्ट इन्द्रसदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्रयाहि
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असो यथा नोऽविता वृधाश्चिद् ददोवसूनिममदश्च सोमैः

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! ते तव सदने सदनार्थं योनिः स्थानम् अकारि । हे पुरुहूत ! बहुभिराहूतेन्द्र ! नृभिः नेतृभिर्मरुद्भिः सार्द्धं तं

योनिम् आ प्रयाहि । नोऽस्माकं यथा अविता रक्षिता असः भवसि । नोऽस्माकं वृधश्चित् वृधे वर्द्धनाय चासः वृधे च इति बहूचा तथा वसूनि ददः अस्मभ्यं देहि । अस्मदीयैः सोमैः ममदो मादयस्व च ॥२॥

(इंद्र) हे इंद्र (ते) तुम्हारे (सदने) विराजमान होनेके निमित्त (योनिः) स्थान (अकारि) रचागया (पुरुहूत) हे अनेकोंके आह्वान किये हुए इंद्र (नृभिः) नेता मरुतोंके साथ (तम्) उस स्थान पर (आ प्रयाहि) आइये (नः) हमारे (यथा) जैसे (अविता) रक्षक (वृधश्चित्) वृद्धि करनेवाले (असः) होओ हमें (वसूनि) धन (ददः) दीजिये (च) और (सोमैः) हमारे सोमोंसे (ममदः) आनन्दित हूजिये ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाꣳ
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३
अरम्णाः महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा
२ ३ १ २ ३ २
अव यद्दानवान् हन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गातुर्ऋषिः । हे इन्द्र ! त्वम् उत्सम् उत्स्यन्दमानं मेघं अदर्दः विदारितवानसि । तदनन्तरं खानि मेघस्थोदकनिर्गमनद्वाराणि व्यसृजः विशेषेण सृष्टवानसि । किञ्च । बद्बधानान् बाधमानान् अर्णवान् उदकवतो मेघान् अरम्णाः विसर्जयसि क्षारयसीत्यर्थः । अत्र रम्णातिर्विसर्जनकर्मा हे इन्द्र ! यत् यस्त्वं यदिति लिङ्गव्यत्ययः महान्तं प्रभूतं पर्वतं मेघं विवृतवानसि धारा अपां वि सृजत् व्यसृजः विसर्जितवानसि । यद् यदा दानवान् दनोः पुत्रान् । यद्वा । उदकस्य दातॄन् मेघान् अवहन् अभिहतवानसि । अत्र निरुक्तम्, अदृणा उत्समुत्सउत्सरणाद्वोत्सदनाद्वोत्स्यन्दनाद्वोनत्तेर्वास्यात्व्यसृजोऽस्य खानि त्वमर्णवानर्णस्वत एतान् इत्यादि। वियद्वः सृजद्धारा अवयद्दानवान् वियद्धः सृजोविधारा अवदानवं हन् इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वम्) तुमने (उत्सम्) जलभरे मेघको (अदर्दः) विदीर्ण किया है, फिर (खानि) मेघोंके जल निकलनेके द्वारोंको (व्यसृजः) विशेषरूपसे रचा है (बद्बधानान्) बाधा देने वाले (अर्णवान्) जल वाले मेघोंको (अरम्णाः) टपकाया है (यत्) जिन तुमने (महान्तम्) बहुतसे (पर्वतम्) मेघको (व्यसृजत्) विवृत किया है (धाराः) जलकी धाराओंको छोड़ा है (यत्) जब (दानवान्) दानवोंको (अवहन्) विनष्ट किया है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तु-
३ १ २ १ २ ३ १ २र ३
विनृम्ण वाजम् । आ नो भर सुवितं यस्यको
२उ ३ १ २ ३ १ २
ना तना त्मना सह्याम त्वोताः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पृथुर्वैन ऋषिः । हे इन्द्र ! सुष्वाणासः सोममभिषुतवन्तो वयं त्वा त्वां स्तुमसि स्तुमः । हे तुविनृम्ण ! बहुबल बहुधन वा इन्द्र ! वाजं चरुपुरोडाशादिलक्षणमन्नं सनिष्यन्तः दत्तवन्तः सम्भक्तवन्तोः वा वयं त्वां स्तुमः । यत एवम् अतो हेतोः नोऽस्मभ्यं सुवितं सुष्ठु प्राप्तव्यं शोभनं धनम् आभर आहर प्रयच्छ । यद्वा यस्य यद्धनमतिप्रियत्वेन कोना कनेः कान्तिकर्मण इदं रूपम् । पचाद्यच् । अकारस्य व्यत्ययेन ओकारः। प्रथमैकवचनस्याकारः कामयमानो भवसि तद्धनमाभरेत्यर्थः । वयं च त्वोताः त्वया रक्षिताः सन्तः । तना धननामैतत् विस्तृतानि धनानि त्मना आत्मना स्वयमेव अन्यनैरपेक्ष्येणैव सह्याम सह अभिभवे । धातूनामनेकार्थत्वात् त्वत्प्रसादाल्लभेमहि । सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्णवाजम् इति छन्दोगाः। ससवांसश्चतुविनृम्णवाजम् इति बह्वृचाः। कोनातनात्मनासह्याम चाकन्त्मनातनासनुयाम इति पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (सुष्वाणासः) सोमका अभिषव करने वाले (त्वा स्तुमसि) तुम्हारी स्तुति करते हैं (तुविनृम्ण) हे बहुत धन वाले इन्द्र (वाजम्) सुन्दर पुराडाशरूप अन्न (सनिष्यन्तः) विभाग करके देते हुए हम स्तुति करते हैं, इस कारण (नः) हमें (सुवित्तम्) प्राप्त होनेयोग्य श्रेष्ठ धनको (आभर) दीजिये (यस्य) जिस धनको अतिप्रिय होनेसे (कोना) कामना करते हो वह धन हमें दो (त्वोताः) तुम्हारे रक्षा किये हुए (तना) बहुतसे धनोंको (त्मना) स्वयं ही (सह्याम) आपके अनुग्रहसे पाते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते
१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वसूनाम् । विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोना-

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मस्मभ्यं चित्रं वृषणꣳ रयिं दाः ॥ १५ ॥

अथ पञ्चमी । सप्तगुर्ऋषिः । हे वसुपते ! वसूनां धनानां स्वामिन् ! इन्द्र ! ते तव दक्षिणं हस्तं वसूयवो धनकामा वयं जगृह्म गृह्णीमः । यथा बहुप्रदस्यार्थिनोऽस्मभ्यमदत्त्वा न गन्तव्यमिति हस्तं गृह्णन्ति तद्वत् हे शूर ! विक्रान्तेन्द्र ! त्वा त्वां गोपतिम् । अत्र षष्ठ्यन्तनिवृत्तिभ्यां स्वामित्वं बहुत्वं च प्रतिपाद्यते बह्वीनां गवां गोपतिं विद्म जानीम । अतोऽस्मभ्यं चित्रं चायनीयं वृषणं वर्षकं रयिं दाः धेहि ॥ ५ ॥

(वसूनाम्) बहुतसे धनोंमें (वसुपते) हे धनोंके स्वामी (ते) तुम्हारे (दक्षिणं हस्तम्) दाहिने हाथको (वसूयवः) धनकी इच्छा करने वाले हम (जगृह्म) ग्रहण करते हैं (शूर) हे पराक्रमी ! (गोनाम्) बहुतसी गौओंमें (त्वा) तुम्हें (गोपतिम्) गौओंका स्वामी (विद्मः) जानते हैं, इस कारण हमें (चित्रम्) अनेक प्रकारके (वृषणम्) मनोरथोंके पूरक (रयिम्) धनको (दाः) दो ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्य्या युनजते
२ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
धियस्ताः । शूरो नृषाता श्रवसश्चकाम आ
२र ३ १ २ ३ १ २
गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वसिष्ठ ऋषिः । यत् यदा पार्य्याः युद्धे मरणनिमित्तभूतास्ताः प्रसिद्धाः धियः कर्माणि युनजते प्रयुज्यन्ते । तदा नरो नेतारो यज्ञानां संग्रामाणां वा नेमधिता नेमधितौ यज्ञे संग्रामे वा यमिन्द्रं हवन्ते ह्वयन्ति । हे इन्द्र ! स त्वं शूरः नृषाता नृणां सम्भक्ता च । श्रवसो बलस्य अन्नस्य वा चकाने सकामे काम्यमाने सति गोमति गोयुते व्रजे गोष्ठे नः अस्मान् भज भागिनः कुरु । श्रवसश्चकामे शवसश्चकाने इति पाठौ ॥ ६ ॥

(यत्) जब (पार्याः) युद्धमें रक्षाके कारणभूत (ताः) प्रसिद्ध (धियः) कर्म (युनजते) प्रयोग किये जाते हैं तब (नरः) यज्ञ वा संग्राम करनेवाले मनुष्य (नेमधिता) यज्ञ वा संग्राममें (इंद्रम्) जिस इंद्रको (हवन्ते) आह्वान करते हैं वह (शूरः) वीर (नृषाता)

मनुष्योंको विभाग करके यथास्थान पर खड़ा करनेवाले तुम (श्रवसः) अन्न वा बलके (चकामे) चाहने पर (गोमति) गौ आदि पशुओंसे युक्त (व्रजे) गोठमें (नः) हमें (भज) भागी करो ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो
१ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
नाधमानाः । अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मु-
३ २ २ ३ १ २ ३ २
मुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । गौरिवीति ऋषिः । वयो गंतारः सुपर्णाः सुपतनाः आदित्यरश्मयः इंद्रम् उपसेदुः उपसन्ना अभवन् । कीदृशाः प्रियमेधाः प्रिययज्ञाः ऋषयो द्रष्टारः नाधमानाः प्रज्ञां याचमानाः याचनप्रकार उच्यते हे इंद्र ! ध्वांतम् अन्धकारम् अपोर्णु हि परिहर अपध्वान्तमूर्णुहीति येन तमसा प्रावृतो मन्येत तन्मनसा गच्छेदपहैवास्मात्तल्लुप्यते इत्यैतरेयब्राह्मणमत्रानुसंधेयम् । पूर्द्धि पूरय च चक्षुः तेजश्च । मुमुग्धि मोचय च अस्मान् निधयेव बद्धान् । निधा पाश्या भवति पाश्या पाशसमूहः । पाशसमूहेन बद्धान् यथा मुञ्चन्ति तद्वत् । अत्र वयो वेर्बहुवचनम् इत्यादि निरुक्तं (४, ३) द्रष्टव्यम् ॥ ७ ॥

(वयः) गमन करनेवालीं (सुपर्णा) सुख देता है पड़ना जिन को ऐसी (प्रियमेधाः) यज्ञसे प्रेम करने वालीं (ऋषयः) देखने वालीं (नाधमानाः) प्रज्ञाकी याचना करती हुई सूर्यकी किरणें (इंद्रम्) इंद्रको (उपसेदुः) प्राप्त हुईं (इन्द्र) हे इंद्र (ध्वांतम्) अंधकारको (अपोर्णु हि) दूर करो (चक्षुः) तेजका (पूर्द्धि) पूर्ण करो (निधया इव बद्धान्) पाशियोंसे बँधेहुएसे (अस्मान्) हमें (मुमुग्धि) छुटाओ

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
अभ्यचक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वेनोभार्गव ऋषिः । दे० वेनः ! हे वेन ! त्वा त्वां हृदा

हृद्येन मनसा वेनन्तः कामयमाना स्तोतारः नाके अन्तरिक्षे अभ्यचक्षत अभिपश्यंति तदानीं त्वम् उपगच्छसीति शेषः । कथम्भूतं ? सुपर्णं शोभनपतनं पतन्तं अन्तरिक्षं गच्छंतम् । हिरण्यपक्षं हिरण्मयाभ्यां पक्षाभ्यामुपेतम् । वरुणस्य जलाभिमानिनो देवस्य दूतं चारम् । यमस्य नियामकस्य वैद्युताग्नेः योनौ स्थाने अन्तरिक्षे शकुनं पक्षिरूपेण वर्त्तमानम् भुरण्युं भर्त्तारं वृष्टिदानादिना सर्वस्य जगतः पोषकं भुरण् धारणपोषणयोः कण्ड्वादिः । अस्मादौणादिक उ प्रत्ययः ॥ ८ ॥

(सुपर्णम्) सुन्दर है पतन जिसका (पतन्तम्) अन्तरिक्षमें जाते हुए (हिरण्यपक्षम्) सुवर्णके पक्षों वाले (वरुणस्य) जल भिमानी देवताके (दूतम्) दूत (यमस्य) नियामक विद्युताग्निके (योनौ) स्थान अन्तरिक्षमें (शकुनम्) पक्षीरूपसे वर्त्तमान् (भुरण्युम्) वर्षा आदिके द्वारा सब जगत्का पोषण करने वाले (त्वा) तुम्हें (हृदा) मनसे (वेनन्तः) चाहते हुए स्तोता (नाके) अन्तरिक्षकी ओरको (अभ्यचक्षत) देखते हैं, तब तुम जाते हो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो
३ १ २ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
वेन आवः । स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । बृहस्पतिर्नकुलो वा ऋषिः। वेनो नाम कश्चित् कमनीयो गन्धर्वः । तथा च शाखान्तरे–वेनस्तत्पश्यन्नित्यारभ्य गन्धर्वो नाम इत्याम्नातम् । स च वेनः पुरस्तात् पूर्वस्मिन् काले जज्ञानम् उत्पन्नम् अभिज्ञं वा ब्रह्म ब्राह्मण—जातिरूपं प्रथमम् आद्यशरीरम् । अतोऽस्याः सर्वैर्दृश्यमानायाः सुरुचः शोभनायाः कान्तेः आवः रक्षितवान् वसुमेत्यनुग्रहसूचकः कश्चिदनुकरणशब्दः, तथाविधं शब्दं मुखेनाभिव्यञ्जयन् । ब्राह्मणशरीरं महत्या कान्त्या योजितवानित्यर्थः । स वेनः बुध्न्याः मूलं अन्तरिक्षं वा बुध्नः तत्र भवाः अस्योपमाः एतच्छरीरकान्तिसदृशाः आदित्यप्रकाशादिरूपाः कान्तीः विष्ठाः विशेषेण स्थापितवान् । तथा सतश्च इदानीं विद्यमानस्य च असतश्च भविष्यद्रूपत्वेदानीमविद्यमानस्य च योनिम् उत्पत्तिकारणं निवासस्थानं वा विवः विवृतवान् निष्पादितवानित्यर्थः ॥ ९ ॥

पूर्व मन्त्रमें वर्णन किया हुआ (वेनः) वेन नामक गन्धर्व (पुरस्तात्) पूर्वकालमें (जज्ञानम्) उत्पन्न हुए अथवा ज्ञानवान् (ब्रह्म) ब्राह्मण जातिरूप (प्रथमम्) आद्य शरीरको (विसीम्) मुखसे आनन्दसूचक शब्द करता हुआ (अतः) इस सबको दीखती हुई (सुरुचः) श्रेष्ठ कान्तिसे (आवः) रक्षा करता हुआ अर्थात् ब्राह्मण शरीरको बड़ा कांतिमान् कर दिया (सः) वह गन्धर्व (बुध्नयाः) अन्तरिक्षमें की (अस्य, उपमाः) इस शरीरकी कांतिकी समान आदित्य आदेके प्रकाशरूप कान्तियोंको (विष्ठाः) विशेषरूपसे स्थापन करता हुआ तथा (सतः) इस समय विद्यमान (च) और (असतः) आगेको होने वाले इस समय अविद्यमान (योनिम्) उत्पत्तिके कारणको वा निवासस्थानको (विवः) निष्पन्न करता हुआ ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

अपूर्व्या पुरुतमान् यस्मै महे वीराय तवसे

३ १ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३

तुराय । विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि

१ २ ३ १ २

वचाꣳस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥ १० ॥

अथ दशमी । सुहोत्रऋषिः । दे० इंद्रः । अपूर्व्या अपूर्व्याणि पूर्वैरकृतानि पुरुतमानि बहुतमानि शन्तमानि सुखकृत्तमानि वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यानि अस्मै इन्द्राय तक्षुः ततक्षुः तक्षतिः करोतीत्यर्थे कुर्वन्ति स्तोतार इति शेषः । कीदृशाय ? महे महते । वीराय विविधशत्रूणां मारयित्रे तवसे तवस्विने बलवते। तुराय त्वरमाणाय विरप्शिने विशेषेण स्तुत्याय वज्रिणे वज्रवते । स्थविराय प्रवृद्धाय ॥ १० ॥

(महे) महान् (वीराय) अनेकों शत्रुओंका वध करनेवाले (तवसे) बलवान् (तुराय) शीघ्रता करनेवाले (विरप्शिने) विशेषरूपसे स्तुतिके योग्य (वज्रिणे) वज्रधारी (स्थविराय) वृद्ध (अस्मै) इस इंद्रके अर्थ (अपूर्व्या) नवीन (पुरुतमानि) बहुतसे (शन्तमानि) परम सुखदायक (वचांसि) स्तुतिरूप वचनोंको (तक्षुः) स्तोता उच्चारण करते हैं ॥१०॥

तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

—०—

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो
३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३
दशभिः सहस्रैः । आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्त-
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥ १ ॥

अथ दशमे खण्डे—सैषा प्रथमा अस्याः परस्याश्च द्युतानऋषिः। अत्रेतिहासमाचक्षते, पुरा किल कृष्णो नामासुरः दशसहस्रसंख्याकैरसुरैः परिवृतः सन् अंशुमतीनामधेयाया नद्यास्तीरे अतिष्ठत्। तत्र तं कृष्णमुदकमध्ये स्थितम् इन्द्रो बृहस्पतिना सहागच्छत्। आगत्य तं कृष्णं तस्यानुचरांश्च बृहस्पति—सहायो जघानेति केचिदन्यथा वदन्ति। तेषां कथाहेतुः, द्रप्स इत्युदककणोऽभिधीयते। स तु सोमः द्रप्सश्चस्कन्देत्यादिषु सोमपरत्वेनोक्तत्वात्। एतत्पदमाश्रित्याहुः,—

अपक्रम्य तु देवेभ्यः सोमो वृत्रभयार्दितः।
नदीमंशुमतीं नाम अभ्यातिष्ठत् कुरूं प्रति॥
तं बृहस्पतिनैकेन सोऽभ्ययात्तत्र वृत्रहा।
योत्स्यमानः सुसंहृष्टै मरुद्भिर्विविधायुधैः॥
दृष्ट्वा तानागतान् सोमः स्वबलेन व्यवस्थितः।
मन्वानो वृत्रमायान्तं जिघांसुमरिसेनया॥
व्यवस्थितं धनुष्मन्तं तमुवाच बृहस्पतिः।
मरुत्पतिरयं सोम प्रेहि देवान् पुनर्विभो!॥
सोऽब्रवीन्नेति तं शक्रः खड्ग एव बलाद् बली।
इन्द्राय देवनादाय तं पुनर्विधिवत्पुरा॥
जघ्नुः पीत्वा च दैत्यानां समरे नवतीर्नव।

तदवद्रप्स इत्यस्मिन्नृचेसर्वं निगद्यते। एतदनार्षत्वेऽनादरणीयं भवति। एषोऽर्थः क्रमेण ऋचि वक्ष्यते। तथाचास्य ऋचोऽयमर्थः— द्रप्सो द्रुतं सरति गच्छतीति द्रप्सः पृषोदरादिः द्रुतं गच्छन् दशभिः सहस्रैः दशसहस्रसंख्याकैरसुरैः इयानः इयमानः कृष्णः एतन्नामकोऽसुर अंशुमतीं नाम नदीम्। अवातिष्ठत् अवतिष्ठते। ततः शच्या स्वकर्मणा प्रज्ञानेन वा धमन्तम् उदकस्यान्तरुच्छ्वसन्तम्। यद्वा। जगद्भीतिकरं शब्दं कुर्वन्तं तं कृष्णासुरम् इन्द्रो मरुद्भिः सह आवत् प्राप्नोत्। अथ अनन्तरं पश्चात् तं कृष्णासुरं तस्यानुचरांश्च हतवान् इति वदति। नृमणाः नृषु मनो यस्य सः। यद्वा। कर्मनेतृषु ऋत्विक्ष

र्वकविधं मनो यस्य स तथोक्तः। तादृशो भूत्वा स्नीहिति स्नीहिति-र्वधकर्मसु पठितः (नि० नै० ३, १९) सर्वस्य हिंसित्रीं तस्य सेनाम् अपद्राः द्राति: कुत्सितगतिकर्मा। स इन्द्रः अपगमयत् अवधीदित्यर्थः तस्यानुचरान् हत्वा तं द्रुतं गच्छन्तं असुरं हतवानित्यभिप्रायः ॥ १ ॥

(द्रप्सः) शीघ्र गमन करनेवाला (दशभिः सहस्रैः) दश सहस्र असुरोंके साथ (इयानः) चढ़ाई करता हुआ (कृष्णः) कृष्णनामक असुर (अंशुमतीं) अंशुमती नदी पर (अवातिष्ठत्)आकर प्राप्त होगया, तदनन्तर (शच्या) अपने कर्म या प्रज्ञानसे (धमन्तम्) जगत्को भयदायक शब्द करनेवाले (तम्) उस कृष्णासुरको (इन्द्रः) इन्द्र मरुतों सहित (आवत्) प्राप्त हुआ (अथ) इसके अनन्तर (नृमणाः) ऋत्विजों में एकतान होकर जिसका मन लग रहा है ऐसा इन्द्र (स्नीहितिम्) हिंसा करनेवाली उसकी सेनाको (अपद्राः) वध करता हुआ अर्थात् उसको मारकर उसकी सेनाको भी मार डाला ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अज-

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ

हुर्ये सखायः। मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा

३ १ २

विश्वाः पृतना जयासि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्द्र ! तव ये विश्वेदेवाः प्राक् सखायः संग्रामे सखित्वं कुर्यामेति मित्राण्यभवन्। ते सर्वे देवाः वृत्रस्य वृत्रासुरस्य श्वसथात् श्वसेरौणादिकोऽथप्रत्ययः। सर्वान् आगच्छतो दृष्ट्वा तेषां भीत्युत्पादनाय वृत्रासुरः श्वासमकार्षीत् श्वासाद्भीताः सन्तः अतएव ईषमाणाः सर्वतः पलायमानाः त्वा त्वाम् अजहुः संग्रामे त्यक्तवन्तः। एवं सति हे इन्द्र ! मरुद्भिः सह सख्यं सखिभावः ते तवास्तु। ये मरुतस्त्वां न परित्यजन्ति तैः सहेति। अथ अनन्तरम् इमाः विश्वाः सर्वाः पृतनाः शत्रुसेनाः जयासि स्वबलेनाभिभवसि अनेन वृत्रघ्नं तमिन्द्रमाह अत्र मन्त्रे इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन् इत्यादि (३, २, ९) ऐतरेयब्राह्मणमनुसन्धेयम् ॥ २ ॥

हे इंद्र ! तेरे (ये) जो (विश्वे देवाः) विश्वे देवता पहिले (सखायः) युद्धमें सहायता करनेवाले मित्र थे, वह सब देवता (वृत्रस्य) वृत्रासुरके (श्वसथात्) सबको आते हुए देखकर वृत्रासुरने जो श्वास छोड़ा था उससे भयभीत होकर (ईषमाणाः) चारों ओरको

भागते हुए (त्वा) तुम्हें (अजहुः) छोड गये थे, ऐसा होने पर हे इंद्र ! (मरुद्भिः) तेरा साथ न छोडनेवाले मरुतोंके साथ (ते) तेरा (सख्यम्) मित्रभाव (अस्तु) हो (अथ) फिर (इमाः) इन (विश्वाः) सब (पृतनाः) शत्रुसेनाओं को (जयासि) अपने बल से जीतोगे ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

विधुं दद्राणꣳ समने बहूनां युवानꣳ सन्तं

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या

३ २ ३ १ २र

ममार स ह्यः समान ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। बृहदुक्थऋषिः। अनया कालात्मक इंद्रः स्तूयते, विधुं विधातारं सर्वस्य युद्धादेः कर्त्तारं विपूर्वो दधातिः करोत्यर्थे तथा समने अननमनः प्राणनं सम्यगननोपेते संग्रामे बहूनां शत्रूणां दद्राणं द्रावकम्। ईदृक्सामर्थ्योपेतमपि युवानं संतं पुरुषम्। पलितो जगार निगिरतीन्द्रकृपया। एवमुक्तलक्षणं वक्ष्यमाण—लक्षणं च। देवस्य कालात्मकस्येन्द्रस्य महित्वा महत्वेनोपेतं काव्यं सामर्थ्यं पश्य हे बृहदुक्थ ! ऋषिः स्वात्मानमामन्त्र्य वदति,—तथा यो जरां प्राप्तोऽद्य ममार म्रियते स ह्यः परेद्युः समान सम्यग् जीवति पुनर्जन्मान्तरे प्रादुर्भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

कालस्वरूप इंद्रकी स्तुति कीजाती है, कि—(विधुम्) युद्ध आदि के विधाता तथा (समने) संग्राममें (बहूनाम्) बहुतसे शत्रुओं के (दद्राणम्) भगानेवाले भी (युवानम्) युवा पुरुषको इंद्रकी कृपा से (पलितः) बूढ़ा पुरुष (जगार) निगल जाता है अर्थात् जीतलेता है इस तथा आगे कही हुई भी (देवस्य) कालस्वरूप इन्द्रकी (महित्वा) महत्वभरी (काव्यम्) सामर्थ्यको (पश्य) देख, हे जीवात्मन् ! जो जराको प्राप्त हुआ (अद्य) आज (ममार) मरता है (सः) वह (ह्यः) दूसरे दिन (समान) अन्य जन्म धारण करके संसारमें आजाता है॥ ३॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

त्वꣳ ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः

१ २ ३ १ २र २ १ २र ३

शत्रुरिन्द्र। गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभु-

२ ३ १२ ३ १२
मह्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। द्युतानऋषिः। हे इन्द्र! त्वं ह त्वं खलु त्यत् तदेतत् कर्म कृतवानसि। किं तदुच्यते? जायमानः त्वं प्रादुर्भवन्नेव अशत्रुभ्यः शत्रुरहितेभ्यः सप्तभ्यः कृष्णवृत्रनमुचिशम्बरादिभ्यः सप्तभ्यो बलवद्भ्यः प्राणिभ्यः शत्रुः अभवः यद्वा सप्तभ्यः पूर्भ्यः शत्रुः शातयिता दारयिता अभवः सप्त यत्पुरःशर्मशारदीर्दर्त्त् (ऋ० स० २, ४, १६, २) इति हि निगमः अथवा सप्तभ्यः सप्तहोतृप्रभृतयो होत्रकाः, तदर्थं यज्ञेषु प्रादुर्भवन्नेव कर्मविघ्नकारिभ्यः शत्रुरभवः। किञ्च, हे इन्द्र! त्वं गूळ्हे संवृते द्यावापृथिव्यौ सूर्य्यात्मनो प्रकाश्य अनुक्रमेण ते अविन्दः अलभथा तथा विभुमद्भ्यो महत्वयुक्तेभ्यः भुवनेभ्यो लोकेभ्यः रणं रमणे धाः धारयसि विदधासीत्यर्थः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र (त्वम् ह) तुम निश्चय (त्यत्) ऐसा पराक्रम करनेवाले हो, कि—(जायमानः) प्रकट होते ही (अशत्रुभ्यः) शत्रुरहित (सप्तभ्यः) कृष्ण वृत्र नमुचि आदि सात असुरोंके अर्थ (शत्रुः) शत्रु (अभवः) हुए वा सात पुरोंको नष्ट करनेवाले हुए अथवा सात होता वाले यज्ञोंमें विघ्न करनेवालोंके शत्रु हुए और हे इन्द्र! तुमने (गूळ्हे) अन्धकारसे ढकेहुए (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोकको (अन्वविन्दः) सूर्यरूपसे प्रकाशित करके पाया तथा (विभुमद्भ्यः) गौरवयुक्त (भुवनभ्यः) लोकोंसे (रणम्) रमणको (धाः) धारण करते हो ४

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभ

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
७ँ स्थिरप्स्नुम्। करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं

२ ३ १ २
वृत्रहणं गृणीषे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। वामदेव ऋषिः। हे इन्द्र! दुवस्युः दुवः परिचरणं स्तुत्यादिलक्षणं तदिच्छुस्त्वं यतः अर्य्यः अरीन्। अस्मद्विरोधिनः तरुषीः तिरस्कान् जेतॄनस्मान् करोषि यद्वा। तरुषीः तरुणस्वभावान्। पक्षद्वयेऽपि लिङ्गव्यत्ययः। अर्य्यः अरीनस्माकं शत्रून् करोषि उपक्षीणानिति शेषः। अतः मेडिं न मेडिरिति वाङ्नाम(नि० १, १, १, १९) माध्यमिकीं वृष्टिप्रदां वाचमिव तां यथा वृष्ट्यर्थं स्तुवन्ति तद्वत् त्वा

त्वां गृणीषे स्तोत्रमुच्चारयामि स्तौमि कीदृशं त्वां वृत्रहणं वृत्रस्यासुरस्य मेघस्य वा हन्तारम्। द्युक्षं द्युलोके वर्त्तमानम्। पुरुधस्मानं बहूनामुदकानां धारकं यद्वा। वर्णव्यत्ययः। पुरूणां बहूनां दासयितारं शत्रूणां क्षपयितारं वृषभं कामानां वर्षकम्। स्थिरप्स्नुं स्थिररूपम्। न हीन्द्रस्य रूपं कदाचिदपि प्रच्युतं भवति यद्वा। स्थिराणां शत्रूणां भक्षकं विघातिनमित्यर्थः। वज्रिणां वज्रवन्तम् भृष्मिन्तं शत्रणां भर्जवन्तम्॥ ५॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (दुवस्युः) स्तुति आदि आराधन की इच्छा करते हुए तुम (अर्यः) हमारे शत्रुओंको क्षीण (तरुषीः) हमें विजय पानेवाला (करोषि) करते हो, इस कारण (मेंडि न) जिस प्रकार वृष्टिकारिणी वाणीकी वर्षाके निमित्त प्रार्थना करते हैं, तैसे ही (वृत्रहणम्) मेघोंके प्रेरक (द्युक्षम्) द्युलोकमें वर्तमान (पुरुधस्मानम्) बहुतसे जलोंके धारक वा अनेकों शत्रुओंके नाशक (वृषभम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (स्थिरप्स्नुम्) स्थिररूप (वज्रिणम्) वज्रधारी भृष्मिन्तम्) शत्रुओंको भूननेवाले (त्वा) तुम्हें (गृणीषे) स्तोत्र पढकर मनाता हूँ॥ ५॥

१ २ ३१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१

प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं

२ १ २ ३१ २र ३ २

कृणुध्वम् विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः॥६॥

अथ षष्ठी। वशिष्ठ ऋषिः। छ० विराट्। हे अस्मदीयाः पुरुषाः। वो यूयं महेवृधे महतां धनानां वर्द्धयित्रे महे महते इन्द्राय प्रभरध्वं सोमान् प्रणयत। प्रचेतसे प्रकृष्टज्ञानाय इन्द्राय सुमतिं सुष्टुतिं च प्रकृणुध्वं प्रकुरुत। अयं प्रत्यक्षस्तुतिः। हे इन्द्र! चर्षणिप्राः कामैः प्रजानां पूरयिता त्वं पूर्वीः हविषां पूरयित्रीः विशः प्रजाः प्रचर अभिगच्छ।६।

हे हमारे पुरुषों! (वः) तुम (महेवृधे) बहुतसे धनोंकी वृद्धि करनेवाले (महे) महान् इन्द्रके अर्थ (प्रभरध्वम्) सोम अर्पण करो (प्रचेतसे) श्रेष्ठ ज्ञानवान् इन्द्रके अर्थ (सुमतिम्) श्रेष्ठ स्तुति (प्रकृणुध्वम्) करो। हे इंद्र! (चर्षणिप्राः) मनोरथोंसे प्रजाओंको पूर्ण करनेवाले तुम (पूर्वीः) हवि समर्पण करनेवाली (विशः) प्रजाओंको (प्रचर) अभिमुख होकर प्राप्त होओ॥ ६॥

३१ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३

शुनꣳ हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ १ २
वाजसातौ । शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं
३ १ २ ३ २ ३ १ २
वृत्राणि सञ्जितं धनानि ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्र ऋषि । छ० त्रिष्टुप् । हे इन्द्र ! वाजसातौ वाजस्यान्नस्य सातिर्लाभो यस्मिन् सोऽयं वाजसातिः तस्मिन् भरे बिभ्रति जयलक्ष्मीमनेन योद्धार इति भरः संग्रामः तस्मिन् संग्रामे शुनं शूनम् उत्साहेन प्रवृद्धं मघवानं धनवन्तम् अत एव इन्द्रं निरतिशयैश्वर्य्यसंपन्नं नृतमं सर्वस्य जगतोऽतिशयेन नेतारं त्वां हुवेम कुशिका वयं यज्ञार्थमाह्वयेम । तथा शृण्वन्तम् । उग्रं शत्रूणामुद्गूर्णम् । समत्सु संग्रामेषु वृत्राणि वृत्रोपलक्षितानि सर्वाणि रक्षांसि घ्नन्तं हिंसंतम् । धनानि शत्रुसम्बंधीनि सञ्जितं सम्यग् जेतारं त्वाम् ऊतये रक्षणाय वयमाह्वयेम ॥ ७ ॥

हम (वाजसातौ) अन्नकी प्राप्ति करानेवाले (अस्मिन्) इस (भरे) योधाओंको विजयलक्ष्मी प्राप्त करानेवाले संग्राममें (शुनम्) उत्साह से बढ़े हुए (मघवानम्) धनवान् (नृतमम्) सकल जगत्के सर्वोपरि नेता (इन्द्रम्) इन्द्रको (हम) यज्ञके निमित्त आह्वान करते हैं। तथा (शृण्वन्तम्) हमारी स्तुतिको सुननेवाले (उग्रम्) शत्रुओंको भयदायक (समत्सु) संग्रामोंमें (वृत्राणि) राक्षसोंको (घ्नन्तम्) मारनेवाले (धनानि) शत्रुओंके धनोंको (सञ्जितम्) जीतनेवाले तुम्हे (ऊतये) रक्षाके लिये हम बुलाते हैं ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रꣳ समर्ये महया
१ २र ३ १ २ ३ १ २
वशिष्ठ । आ यो विश्वानि श्रवसा ततानो-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
पश्रोता म ईवतो वचाꣳसि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वशिष्ठ ऋषिः । श्रवस्या अन्नेच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि हवींषि च इन्द्रार्थम् उदैरत सर्वे ऋषय इति शेषः । उ इति पूरणः हे वसिष्ठ ! त्वमपि समर्ये यज्ञे इन्द्रं महय स्तत्रेण हविषा च पूजय । अपि च य इन्द्रो विश्वानि भुवनानि श्रवसा अन्नेन कीर्त्या वा आत-

तान । सः ईवतः उपगमनवतो मे मम वचांसि स्तुतिरूपाणि वाक्यानि उपश्रोता भवतु ॥ ८ ॥

(श्रवस्या) अन्नकी इच्छा करके (ब्रह्माणि) स्तोत्र और हवियों को सब ऋषि इन्द्रके अर्थ (उदेरत) अर्पण करो (वशिष्ठ) हे जितेन्द्रियों में प्रतिष्ठित तू भी (समर्ये) यज्ञमें (इन्द्रम्)इंद्रको (महय) स्तोत्र और हविसे पूज और (यः) जो इन्द्र (विश्वानि) लोकोंको (श्रवसा) अन्न अ र कीर्त्तिसे (आततान) बढ़ाता हुआ वह (ईवतः) उपासना करने वाले (मे) मेरे (वचांसि) वचनोंको (उपश्रोता) सुने ॥ ८ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २र

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्च-

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १

च्छद्यात् । पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्व-

२र ३ १ २

दधा ओषधीषु ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गौरवीतिऋषिः । अस्य इन्द्रस्य चक्रम् आयुधम् अप्सु अन्तरिक्षे आ सर्वतो निषत्तं निषण्णमासीन्मेघहननार्थम् । उतो तत् अपि च अस्मै इंद्राय मध्वित् उदकमपि चच्छद्यात् वशं नयति । पृथिव्याम् अतिषितं विमुक्तं यदूधः उदकमस्ति तत् पयोगोष्वोषधीषु च आदधा आदधाति ॥ ९ ॥

(अस्य) इस इंद्रका (चक्रम) आयुध (अप्सु) अंतरिक्ष में (आ) सब ओर (निषत्तम्) मेघके हननके निमित्त स्थित था (उतो) और वह भी (अस्मै) इस इंद्रके अर्थ (मध्वित्) जलको भी (चच्छद्यात्) वशमें करता है (पृथिव्यां) पृथिवीमें (अतिषितम्) छोड़ा हुआ (यदूधः) जो जल है वह (पयोगोषु) औषधियोंमें (आदधाः) स्थापन करता है ॥ ९ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्यमू षु वाजिनं देवजूतꣳ सहोवानं तरुतारꣳ

१ २ १ २ ३ १ २ ३ २

रथानाम् । अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुꣳ

३ २ ३ १ १ ३ १ २

स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥

अथैकादशे खण्डे—सैषा प्रथमा । तार्क्ष्यपुत्रोऽरिष्टनेमिर्ऋषिः । त्यमु तं प्रसिद्धमेव तार्क्ष्यं तृक्षपुत्रं सुपर्णं तृक्षशब्दो गर्गादिः स्वस्तये क्षेमाय इह अस्मिन् कर्मणि हुवेम भृशमाह्वयेमहि बहुलं छंदसीति (६, १, ३४) ह्वयतेः सम्प्रसारणम् । लिङ्याशिष्यङ (३, १, ८६) । यद्वा, प्रार्थनायां लिङि व्यत्ययेन शः (३, १, ८५) । कीदृशम्? वाजिनम् अन्नवंतं बलवंतं वा देवजूतं देवैः सोमाहरणाय प्रेरितं जु इति गत्यर्थः सौत्रो धातुः अस्मात् कर्मणि क्तः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । यद्वा, देवैः प्रीयमाणं तर्प्यमाणम् । यदाह यास्कः, जूतिर्गतिः प्रीतिर्वा देवजूतं देवप्रीतं वेति सहोवानं सहस्वंतं सहश्शब्दाद्वनिप् मत्वर्थीयः बलवंतं वा । अतएव रथानाम् अन्यदीयानां तरुतारं संग्रामे तारकम् यद्वा; रंहणशीला अमी इमे लोका रथाः तान् सोमाहरणसमये शीघ्रं तरीतारं श्रूयते हि एष इमान् लोकान् सद्यस्तरतीति । तरतेस्तृचि प्रसितस्कभितेत्यादौ (७, २, ३४) उडागमो निपात्यते अरिष्टनेमिं अहिंसितरथं यद्वा ! नेमिर्नमनशीलमायुधम् अहिंसितायुधम् । अथवा उपचाराज्जनके जन्य–शब्दः । अरिष्टनेमेर्भम जनकं पृतनाजं पृतनानां शत्रुसेनानां प्राजितारं प्रगमयितारं जेतारं वा अजगतिक्षेपणयोः । अस्मात् क्विप् । वलादावार्द्धधातुके विकल्प इष्यते (२, ४, ५६ पा०) इति वचनात् वीभावाभावः । यजतेर्वा डिप्रत्ययः आशुं शीघ्रगामिनम्

(त्यम्) उस प्रसिद्ध (वाजिनम्) अन्नयुक्त वा बलवान् (देवजूतम्) सोम लानेके निमित्त देवताओंके प्रेरणा किये हुए (सहोवानम्) शक्तिमान् (रथानाम्) औरोंके रथोंको संग्राममें (तरुतारम्) तारनेवाले (अरिष्टनेमिम्) तीक्ष्ण आयुधवाले (पृतनाजम्) शत्रुसेनाओंको जीतनेवाले (आशुम्) शीघ्रगामी (तार्क्ष्यम) तृक्षसे उत्पन्न हुए सुपर्णको (स्वस्तये) कल्याणके लिये (इह) इस कर्ममें (हुवेम) वारंवार बुलाते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

शूरमिन्द्रम् । हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदꣳ

३ २ ३ १ २ ३ १ २

हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भरद्वाज ऋषिः । त्रातारं शत्रुभ्यः पालयितारम् इंद्रं हुवे आह्वयामि । तथा अवितारं कामैस्तर्पयितारमिंद्रमाह्वयामि । हवे हवे सर्वेष्वाह्वनेषु सुहवं सुखेनाह्वातुं शक्यम् । शूरं शौर्य्यवन्तं शक्रं सर्वकार्य्येषु शक्तं पुरुहूतं पुरुभिर्बहुभिः पालनार्थमाहूतम् । एवंविधमिन्द्रम् आहुवे आह्वयामि । एवमाहूतो मघवा धनवान् स इंद्रः इदं पुरोवर्त्ति हविः वेतु भक्षयतु ॥ २ ॥

(त्रातारम्) शत्रुओंसे रक्षा करने वाले (इंद्रम्) इन्द्रको (हुवे) आह्वान करता हूँ (अवितारम्) मनोरथोंसे तृप्त करने वाले (इन्द्रम्) इंद्रको आव्हान करता हूँ (हवे हवे) सकल संग्रामोंमें (सुहवम्) सुखसे बुलाने योग्य (शूरम्) वीर (शक्रम्) सकल कार्योंमें समर्थ (पुरुहूतम्) जिसको अनेकोंने रक्षाके लिए बुलाया ऐसे (इन्द्रम्) इन्द्रको आह्वान करता हूँ (मघवान्) धनवान् वह इन्द्र (इदम्) इस (हविः) हविको (वेतु) भक्षण करे ॥ २ ॥

१ २   ३ २ ३ १ २   ३   १ २   ३ २

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणꣳ हरीणाꣳ रथ्या३

१ २   १ २र   ३ १ २   १ २   ३ १

विव्रतानाम् । प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि

२र ३ १ २   ३ १   २र

सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वसुक्रो विमदो वा ऋषिः । वयं इन्द्रं यजामहे सोमलक्षणैर्हविर्भिः पूजयामः । कीदृशं ? वज्रदक्षिणं शत्रुवधाय सततं वज्रो दक्षिणे हस्ते यस्य तम् । विव्रतानां रथवाहनादिविविधकर्मणां हरीणाम् एतत्संज्ञकानामश्वानां रथ्यम् आनेतारम् । स इन्द्रः सोमपानानन्तरं श्मश्रुभिः स्वकीयैः दोधुवत् पुनः पुनः धुन्वानः सन् ऊर्ध्वधाः ऊर्द्ध्वं विभुवत् विशेषेण प्रादुर्भवति । किञ्च । सेनाभिः मरुदादिभिः स्वकीयैः सैन्यैः भयमानः शत्रून् कम्पयन् राधसा द्वितीयार्थे तृतीया (३, १, ८५) राधो धनं वीत्युपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः विविधं स्तोतृभ्यो ददाति ॥ ३ ॥

(वज्रदक्षिणम्) दाहिने हाथमें वज्र धारण करनेवाले (विव्रतानाम्) रथोंको लेजाना आदि अनेकों कर्म करने वाले (हरीणाम्) हरि नामक घोड़ोंको (रथ्यम्) वशमें रख कर चलानेवाले (इंद्रम्) इन्द्र को (यजामहे) सोमरूप हवियोंसे पूजते हैं । वह इंद्र सोमपानके अनंतर (श्मश्रुभिः दोधुवत) अपनी दाढ़ीमूछोंको बार बार कंपाता

हुआ (ऊर्ध्वधाः) ऊपर (विभुवत्) प्रकट होता है (सेनाभिः) और अपनी देवसेनाओंसे (भयमानः) शत्रुओंको भयभीत करता हुआ (राधसा) नाना प्रकारका धन (वि) स्तुति करनेवालोंको देता है ॥

३ २१ १ २३ २११ २ ३१२३१ २३२
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभꣳ
३१२ २ ३ २ ३१ २र३२उ ३ १२
सुवज्रम् । हन्ता यो वृत्रꣳ सनितोत वाजं दाता
३१२ ३१२ ३१२
मघानि मघवा सुराधाः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । एतदादितिसृणां वामदेव ऋषिः । सत्राहणं बहूनां शत्रूणां हन्तारं दाधृषिम् अतिशयेन धर्षकम् । तुम्रं तुमिः प्रेरणकर्मा शत्रूणां प्रेरकम् । महां महान्तम् । अपारम् अपरिमाणं विनाशरहितमित्यर्थः । वृषभं कामानां वर्षितारम् । सुवज्रं शोभनेन वज्रेणोपेतमिन्द्रं वयं स्तोतारः स्तुम इति शेषः । य इन्द्रो वृत्रं वृत्रनामानमसुरं हन्ता हिंसिता भवति । उतापि च । य इंद्रो वाजम् अन्नं सनिता दाता भवति । सुराधाः शोभनधनयुक्तो यो मघवेन्द्रः मघानि धनानि दाता भवति तमिन्द्रं स्तुमः इति पूर्वेण सम्बंधः । अत्र सर्वत्र तृन्नन्तत्वात् न लोकाव्ययेत्यादिना (२. ३, ६९) षष्ठीप्रतिषेधे सति द्वितीयैव भवति ॥ ४ ॥

हम स्तुति करने वाले (सत्राहणम्) अनेकों शत्रुओंको मारनेवाले (दाधृषिम्) अत्यन्त धमकाने वाले (तुम्रम्) शत्रुओंको भगाने वाले (महाम्) बड़े (अपारम्) विनाशरहित (वृषभम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (सुवज्रम्) श्रेष्ठ वज्रको धारण करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रकी स्तुति करते हैं (यः) जो इन्द्र (वृत्रं हंता) वृत्रासुरका वध करता है (उत) और (वाजम् सनिता) अन्नका दाता होता है (सुराधाः) श्रेष्ठ धन वाला (मघवा) जो इन्द्र (मघानि दाता) धनोंका दाता होता है ॥ ४ ॥

१ २ ३१ २ ३२ ३२३ १२ ३ १ २
यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्य-
३१ २ ३ २ ३१ २र ३ १ २
मानस्तुरो वा । क्षिधी युधाः शवसा वा तमि-
३ १ २ ३ १ २
न्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥ ५ ॥

अथ पंचमी। हे इन्द्र! यो मर्त्तो मनुष्यः नः अस्मान् वनुष्यन् हन्तुमिच्छन् अभि दाति आभिमुख्येनागच्छति। यो वा मन्यमानः आत्मानं बहुमन्यमानो मर्त्तः उगणा वा उत्कृष्टगणाः उद्गूर्णगणाः तुरो हिंसित्रीरस्मदीयाः प्रजाः अभिगच्छति। केन साधनेन हिंसिष्यन्? क्षिधी क्षिः क्षयो धीयते क्रियते अनेनेति क्षिधिः तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्णः क्षयकरणेन युधा आयुधेन शवसा वेगेन बलेन वा आयाति। त्वोताः त्वया रक्षिताः वृषमणः वृषा इवाचरन्तो वयं तम् अभिष्याम अभिभवेम ॥ ५ ॥

(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हमें (वनुष्यन्) मारनेकी इच्छा करता हुआ (अभिदाति) चढ़ाई करके आता है और जो (मन्यमानः) अपनेको बहुत मानता हुआ मनुष्य (क्षिधीः) क्षयकारी (युधा) आयुध लेकर (शवसा) वेगसे (उगणाः) श्रेष्ठ समूह रूप (तुरः) प्रहार करने वाली हमारी प्रजाओंके ऊपर चढ़ाई करके आता है (त्वोताः) तुम्हारे रक्षा करे हुए (वृषमणः) वृषकी समान आचरण करते हुए हम (तम्) उसको (अभिष्याम) तिरस्कृत करें ॥ ५ ॥

२ ३१२ ३२३ १२ ३ ३ ३१२ ३१२ ३

यं वृत्रेषु क्षितय स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो

१२ १ २र ३ २३१ २र ३ १ २र

हवन्ते। यꣳ शूरसातौ यमपामुपज्मन्यं विप्रासो

३ १ २ ३ १ २र

वाजयन्ते स इन्द्रः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। वृत्रेषु आवरकेषु युद्धेषु स्पर्द्धमानाः क्रोधयुक्ताः क्षितयो मनुष्याः क्षयन्ति निवसन्त्यत्रेति क्षितयो मनुष्याः यं इन्द्रं हवन्ते आह्वयन्ति युक्तेषु सन्नद्धेषु आयुधैर्युक्तेषु संग्रामेषु तुरयन्तः परस्परं हिंसन्तो जनाः यमाह्वयन्ति। शूरसातौ शूराणां सम्भजने यमाह्वयन्ति। युद्धजयार्थमिति शेषः। किञ्च। अपाम् उदकानां सातौ लाभे यम् उपज्मन् वृष्टिप्रदानार्थं यमुपगच्छन्ति आह्वयन्तीत्यर्थः विप्रासो विप्राः मेधाविनो यजमानाः यमिन्द्रं वाजयंते वाजिनं कुर्वंति हविर्भिर्बलिनं कुर्वन्ति स तादृश इंद्रः ॥ ६ ॥

(वृत्रेषु) युद्धोंमें (स्पर्धमानाः) क्रोधयुक्त (क्षितयः) मनुष्य (यम्) जिसको (हवन्ते) पुकारते हैं (युक्तेषु) आयुध उठे हुए संग्रामों में (तुरयंतः) परस्पर हिंसा करतेहुए पुरुष (यम्) जिसको पुकारते हैं (शूरसातौ) योधाओंका विभाग होने पर वा योधाओंकी प्राप्तिके लिए

(यम्) जिसको पुकारते हैं (अपाम्) जलोंकी प्राप्तिके विषयमें (यम्) जिसको पुकारते हैं (उपज्मन्) वर्षाकी प्राप्तिके लिए (यम्) जिसकी शरणमें जाते हैं (विप्रासः) बुद्धिमान् यजमान (वाजयन्ते) जिसको हवि अर्पण करके बलवान् करते हैं (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ६ ॥

१ २ ३ ३ २र ३ २उ ३ १ २
इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतꣳ
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१२ ३ १ २
सुवीराः । वीतꣳ हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्द्धेथां
३ १ २र ३ १ २
गीर्भिरिडया मदन्ता ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । विश्वामित्रः स्तौति । इंद्रापर्वता इंद्रश्च पर्वतश्च हे इंद्रापर्वतौ ! बृहता महता रथेनागत्य वामी वननीयाः सुवीरा शोभनपुत्रोपेताः इषः अन्नानि आवहतम् अस्मदर्थं धारयतं प्रयच्छतमित्यर्थः। किञ्च । हे देवा देवौ द्योतमानौ ! हे इन्द्रापर्वतौ ! अध्वरेषु अस्मत् सम्बन्धियज्ञेषु हव्यानि हवनयोग्यानि पुरोडाशादीनि हवींषि वीतं भक्षयतम् । यथा इडया अस्माभिर्दत्तेनान्नेन मदन्ता हृष्यंतौ युवां गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिरस्मदीयाभिर्वाग्भिः वर्द्धेथां प्रवृद्धौ भवतौ ॥ ७ ॥

(इंद्रापर्वता) हे इन्द्र और पर्वत (बृहता) बड़े (रथेन) रथ में आकर (वामी) प्रार्थना करनेयोग्य (सुवीराः) श्रेष्ठ पुत्रों सहित (इषः) अन्नोंको (आवहत) दो (देवा) हे प्रकाशवान् इंद्र पर्वत (अध्वरेषु) हमारे यज्ञोंमें हवियोंको (वीत) भक्षण करो तथा (इडया) हमारे दियेहुए अन्नसे (मदन्ता) प्रसन्न होते हुए तुम (गीर्भिः) स्तुतिरूप हमारी वाणियोंसे (वर्द्धेथाम्) बढ़ो ॥ ७ ॥

१ २३ २ ३ १ २ ३ १ २र३ २
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत्सगर-
३ १ २ १ २र ३ २ ३ १ २ ३
स्य बुध्नात् । यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभि-
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
र्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । रेणुऋषिः । इंद्राय इंद्रार्थम् अनिशितसर्गाः अतनूकृतविसर्गाः उपर्यु परि वर्त्तमानाःयः गिरः स्तयाः ताभिर्गीर्भिः सगरस्य

अन्तरिक्षस्य बुध्नात् प्रदेशात् अपः उदकानि प्रैरयत् प्रेरयति यः इन्द्रः शचीभिः कर्मभिः पृथिवीम् उत अपिच। द्यां दिवं च चक्रियौ रथचक्राणि अक्षेणेव यथा रथाक्षेण तद्वत् विष्वक् सर्वतः तस्तम्भ अस्तम्भात्॥ ८ ॥

(इंद्राय) इन्द्रके अर्थ (अभिशितसर्गाः) निरंतर उच्चस्वरसे उच्चारण की हुई जो (गिरः) स्तुतियें हैं उनसे (सगरस्य) अन्तरिक्षके (बुध्नात्) स्थानसे (अपः) जलोंको (प्रैरयत्) प्रेरणा करता है (यः) जो इंद्र (शचीभिः) यज्ञादि कर्मोंसे (पृथिवीम्) पृथिवीको (उत) और (द्याम्) द्युलोकको भी (चक्रियौ अक्षेण (इव) रथके पहिये जैसे धुरेसे थमे रहते हैं तैसे (विष्वक्) सब ओरसे (तस्तम्भ) स्तंभित करता हुआ ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २

आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिद

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

र्णवां जगम्याः । पितुर्नपातमा दधीत वेधा

३ १ २र ३ १ २र

अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥ ९ ॥

अथ नवमी। वामदेव ऋषिः। हे इंद्र ! त्वा त्वां सखायः स्तोतारः सख्या सख्येन स्तुतिभिरित्यर्थः। ताभिः आ ववृत्युः अभिमुखं कुर्वन्ति यतस्त्वं तिरः तिर्यग्भूत्वा पुरु विस्तीर्णम्। अर्णवम् अन्तरिक्षं जगम्याः अगच्छः। चिच्छब्दः कारणपरः अथ परोक्षकृतः वेधा विधाता इन्द्रः पितुः मदीयस्य नपातं पौत्रं मम पुत्रमित्यर्थः। तमादधीत प्रयच्छतु। कीदृशः ? अस्मिन् क्षये निवासभूते यज्ञे प्रतरां प्रकृष्टं दीद्यानः तेजसा दीप्यमानः इंद्रः पुत्रं ददातु॥ ९ ॥

हे इंद्र (सखायः) स्तोता (सख्या) प्रिय स्तुतियोंसे (त्वा) तुम्हें (आववृत्युः) अभिमुख करते हैं, क्योंकि तुम (तिरः) उड़नेवाले होकर (पुरू) विस्तारवाले (अर्णवम्) अन्तरिक्षमेंको (जगम्याः) चलेगए थे (अस्मिन्) इस (क्षये) निवासस्थानरूप यज्ञमें (प्रतराम्) अत्यंत (दीद्यानः) तेजसे दमकता हुआ (वेधाः) विधाता इन्द्र (पितुः) मेरे पिताके (नपातम्) पौत्रको अर्थात् मेरे पुत्रको (आदधीत) देय ॥ ९ ॥

२ ३१ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २
को अद्य युंक्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भामिनो दुर्हृणायून् । आसन्नेषामप्सुवाहो
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १० ॥

अथ दशमी । गोतम ऋषिः । अद्य अस्मिन् कर्मणि ऋतस्य यज्ञस्य गच्छत इन्द्रसम्बन्धिनो रक्षस्य धुरि अश्ववहनप्रदेशे गाः गतिमतोऽश्वान् एषामश्वानां सम्बन्धिनः प्रग्रहान्वा आसन् आस्येन तज्जनितेन स्तोत्रेण को युंक्ते को नाम नियोक्तुं शक्नोति न कोऽपीत्यर्थः। कीदृशानश्वान ?। शिमीवतः वीर्य्यकर्मोपेतान् । भामिनः तेजसा युक्तान् दुर्हृणायून् परैर्दुःसहेन क्रोधेन युक्तान् हृणीनतिः कुप्यतिकर्मा (नै० २, १३) अप्सुवाहः आपः कर्माणि तेषु इन्द्रं वहन्तीति तान् मयोभून् मयसः सुखस्य भावयितॄन् । स्वकीयानां सुखप्रदानित्यर्थः ।। यो यजमानः एषां ईदृशानामश्वानां भृत्यां भरणक्रियां रथवहनक्रियाम् ऋणधत् समर्धयति स्तौतीति यावत् स ह यजमानो जीवात् जीवनवान् भवेत् ॥ यद्वा । कः इति प्रजापतिरुच्यते को ह वै नाम प्रजापतिः इति श्रुतेः ऋतस्य यज्ञस्य धुरि निर्वाहे गाः वेदरूपान् वाग्विशेषान् अद्य इदानीं युंक्ते संयोजयति कीदृशान्? शिमीवतः प्रतिपाद्यैः कर्मभिर्युक्तान् भामिनः उज्ज्वलान् दुर्हृणायून् हृणीयतिर्हानिकर्मा। हातुमशक्यान् वेदाध्ययनस्य नित्यत्वात् एषां शब्दानाम् आत्मप्रतिपादकानाम् आसन् आस्यानि मुखवदाकारभूतानित्यर्थः। अप्सु अप्सुवाहः अन्तरिक्षे तदुपलक्षिते स्वर्गे वहन्ति यजमानं प्रापयन्ति तान् । मयोभून् मयसः अध्ययनप्रभवस्य सुखसाधनस्यादृष्टस्य भावयितॄन् । यो यजमानः एषां वचसां भृत्यां भरणक्रियां ऋणधत् ऋद्धिमतीं करोति स जीवात् स एव जीवति । अन्ये जीवन्मृता । इत्यर्थः ॥ आसन्नेषामप्सुवाहः इति,-आसन्निपून् हृत्स्वसः इति पाठौ ॥ १० ॥

(अद्य) आज इस कर्ममें (ऋतस्य) यज्ञमें जाननेवाले इन्द्रके रथके (धुरि) जुएमें (गाः) जुड़े हुए (शिमीवतः) वीरताके काम करने वाले (भामिनः) तेजस्वी (दुर्हृणायून्) शत्रुओंके असह्य क्रोधसे युक्त (अप्सुवाहः) यज्ञादि कर्मोंमें इन्द्रको लेजानेवाले (मयोभून्) सुखदायक अश्वोंको वा उनकी लगामोंको (आसन्) मुखसे उच्चा-

रण कियेहुए स्तोत्रके द्वारा (कः) कौन (युंक्ते) नियुक्त करसकता है अर्थात् कोई नहीं रोक सकता (यः) जो यजमान (एषाम्) इन घोड़ों की (भूत्याम्) रथको लेजानेकी क्रियाको (ऋणधत्) स्तुति करता है (सः) वह यजमान (जीवात्) आयुष्मान् होता है ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

इहाष्टाविंशतिऋचो गायन्ति त्वेत्यनुष्टुभः ।
यद्दीवहन्तीत्यनया स्तूयन्ते मरुतोऽत्र हि ॥
ईडितोऽग्निर्दधिक्रावा दधिक्राव्णो इति ह्यृचा ।
वयश्चिदित्युषस्येयं वैश्वदेवीत्यमी इति ॥
ऋक्सामयोः स्तुतिऋचं साऽमेत्यैन्द्र्योऽपरा ऋचः ।
समाख्या प्राणभृन्न्यायादिति पूर्वमुदीरितम् ॥

अथ द्वादशे खण्डे—सैषा प्रथमा । मधुच्छन्दा ऋषिः । हे शतक्रतो बहुकर्मन् बहुप्रज्ञ वेन्द्र ! त्वा त्वां गायत्रिणः उद्गातारः गायन्ति स्तुवन्ति । अर्किणोऽर्चनहेतुमन्त्रयुक्ता होतारः अर्कम् अर्चनीयमिन्द्रं अर्चन्ति शस्त्रगतैर्मंत्रैः प्रशंसन्ति । ब्रह्माणो ब्रह्मप्रभृतय इतरे ब्राह्मणाः त्वा त्वां उद्येमिरे उन्नतिं प्रापयन्ति । तत्र दृष्टांतः, वंशमिव यथा वंशाग्रे नृत्यंतः शिल्पिनः प्रौढं वंशम् उन्नतं कुर्वन्ति । यथा वा सन्मार्गवर्त्तिनः पुत्राः स्वकीयं कुलम् उन्नतं कुर्वन्ति तद्वत् । एतामृचं यास्क एवं व्याचष्टे,गायंति त्वा गायत्रिणः प्रार्चयंति तेऽर्कमर्किणो ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्येमिरे वंशमिव वंशो वनशयो भवति वननाच्छ्रूयत इति वा (५; ४;) इति ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे इंद्र ! (त्वा) तुम्हें (गायत्रिणः) उद्गाता (गायंति) स्तुति करते हैं (अर्किणः) पूजनके मंत्र बोलते हुए होता (अर्कम्) पूजनीय इंद्रकी (अर्चन्ति) मंत्रोंसे प्रशंसा करते हैं (ब्रह्माणः) अन्य ब्राह्मण (वंशमिव) जैसे बांसकी नोकपर नाचने वाले नट दृढ बांसको ऊँचा करते हैं तैसे (त्वा) तुम्हें (उद्येमिरे) उन्नति पर पहुंचाते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ।२।

अथ द्वितीया । जेता । माधुच्छंदसऋषिः । विश्वाः सर्वा गिरः अस्मदीयाः स्तुतयः इंद्रम् अवीवृधन् वर्द्धितवत्यः । कीदृशमिन्द्रं ? समुद्रव्यचसं समुद्रं व्याप्तवंतम् । रथीनां रथयुक्तानां योद्धृणां मध्ये रथीतमम् अतिशयेन रथयुक्तं वाजानाम् अन्नानां पतिं स्वामिनम् सत्पतिं सन्मार्गवर्त्तिनां पालकम् ॥ २ ॥

(विश्वाः) सकल (गिरः) हमारी स्तुतियोंने (समुद्रव्यचसम्) समुद्रकी समान महान् (रथीनाम्) योधाओंमें (रथीतमम्) श्रेष्ठ योधा (वाजानाम्) अन्नोंके (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक (इंद्रम्) इंद्रको (अवीवृधन्) बढाया ॥ २ ॥

३ १ २ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

३ १ २ २क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सदने ॥३॥

अथ तृतीया । गोतमऋषिः हे इंद्र ! सुतम् अभिषुतम् इमं सोमं पिब । कीदृशम् ? ज्येष्ठम् अतिशयेन प्रशस्यं मदं मदकरम् अमर्त्यम् अमारकं सोमपानजन्यो मदो मदांतरवन्मारको न भवतीत्यर्थः । तथा ऋतस्य यज्ञस्य संबंधिनि सदने गृहे वर्त्तमानस्य शुक्रस्य दीप्तस्यास्य सोमस्य धाराः त्वा अभ्यक्षरन् आभिमुख्येन सञ्चलन्ति त्वां प्राप्तुं स्वयमेवागच्छन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (इमम्) इस (ज्येष्ठम्) परम प्रशंसनीय (मदम्) आनंददायक (अमर्त्यम्) अन्य मदोंकी समान नष्ट न करने वाले (सुतम्) संपादन किए हुए सोमको (पिब) पियो (ऋतस्य) यज्ञके (सदने) मण्डपमें वर्त्तमान (शुक्रस्य) दीप्त सोमकी (धाराः) धारायें (त्वा अभ्यक्षरन्) तुम्हारे अभिमुख होकर चली आरही हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। अत्रिर्ऋषिः। हे अद्रिवो ! वज्रवन् ! चित्र ! चायनीयेन्द्र ! यद् इदं त्वादातं त्वया दातव्यं यद् राधः धनम् इह अस्मिन् लोके मे मम नास्ति तद्धनं हे विदद्वसो ! लब्धधनेन्द्र ! नः अस्मभ्यम् उभया हस्त्या उभाभ्यां हस्ताभ्याम् आभर आहर। अत्र निरुक्तं, यदिन्द्र चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनमस्ति यन्म इह नास्तीति वेति (४, ४) द्रष्टव्यम् ४

(चित्र) विचित्र गुणसम्पन्न (अद्रिवः) वज्रधारी (विदद्वसो) प्राप्त धन (इंद्र) हे इंद्र (यत्) जो (त्वादातम्) तुम्हारे देने योग्य (राधः) धन (इह) इस लोकमें (मे) मेरे (नास्ति) नहीं है (तत्) वह धन (नः) हमें (उभया हस्त्या) दोनों हाथोंसे (आभर) दो ॥ ४ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्य्यति ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाꣳ असि ॥५॥

अथ पञ्चमी। तिरश्ची आङ्गिरस ऋषिः। हे इंद्र ! यः त्वा त्वां सपर्य्यति सपरशब्दः कण्ड्वादिः हविर्भिः परिचरति तादृशस्य तिरश्च्या एतन्नामकस्य ऋषेर्मम हवं स्तुतिं श्रुधि शृणु। श्रुत्वा च हे इंद्र ! त्वं सुवीर्य्यस्य शोभनवीर्य्योपेतस्य। यद्वा, वीरे पुत्रे भवं वीर्य्यं सुपुत्रवतः। गोमतः गवादिपशुमतः। मयो धनस्य दानेन पूर्द्धि अस्मान् पूरय। एतत्सामर्थ्यं कुत इत्यत आह, त्वं महान् गुणाधिकः देवानां श्रेष्ठश्च असि भवसि खलु ॥ ५ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (यः) जो (त्वा) तुम्हे (सपर्यति) हवियोंसे आराधन करता है उस (तिरश्चया) मुझ तिरश्च्यकी (हवम्) स्तुतिको (श्रधि) सुनो और सुनकर तुम (सुवीर्यस्य) श्रेष्ठ वीरता वा श्रेष्ठ पुत्रोंसे युक्त (गोमतः) गौ आदि पशु सहित (मयः) धन देकर (पूर्द्धि) हमें पूर्ण करो (महान् असि) तुम सब देवताओंसे गुणवान् हो ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्यो न रश्मिभिः ६

अथ षष्ठी । गोतम ऋषिः । हे इन्द्र ! ते त्वदर्थं सोमः असावि अभिषुतोऽभूत् हे शविष्ठः ! अतिशयेन बलवन् ! अतएव धृष्णो शत्रूणां

धर्षयितरिन्द्र ! आ गहि देवयजनदेशमागच्छ। आगतश्च त्वा त्वाम् इन्द्रियं सोमपानेनोत्पन्नं प्रभूतं सामर्थ्यम् आ पृणक्तु आ पूरयतु। रजः अंतरिक्षं रश्मिभिः किरणैः सूर्य्यो न यथा सूर्य्यः पूरयति तद्वत्॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोमः) सोम (असावि) संपादन किया गया (शविष्ठ) हे परमबली ! (धृष्णः) हे शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले (आगहि) इस देवयजनके स्थानमें आओ (सूर्यः, रश्मिभिः, रजः, न) जैसे सूर्य किरणोंसे अंतरिक्षको पूर्ण करता है, तैसे (इन्द्रियम्) सोमपानसे उत्पन्न हुई बड़ी भारी शक्ति (त्वा) आये हुए तुम्हे (आ पृणक्तु) पूर्ण करै॥ ६॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥७॥

अथ सप्तमी। काण्वो निपातिथिर्ऋषिः। हे इन्द्र ! कण्वस्य एतन्नामकस्य ऋषेः सुष्टुतिं शोभनां स्तुतिं प्रति हरिभिः अश्वैः उपायाहि आगच्छ। दिवो द्युलोकं द्वितीयार्थेषष्ठी (३, १, ८५) अमुष्य अमुष्मिन्निन्द्रे शासतः शासति विभक्तिव्यत्ययः (३, १, ८५) तत्र वयं सुखमास्महे। हे दिवावसो ! दीप्तहविष्केन्द्र ! दिवं स्वर्गं यय यूयं गच्छत बहुवचनं पूजार्थम् यद्वा, हे दिवावसो दिवो द्युनामकम् अमुष्य अमुं लोकं शासतः शासनं कुर्वन्तो यूयं दिवं स्वर्गं यय गच्छत अत्र बहुवचनं पूजार्थमित्यर्थः॥७॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (कण्वस्य) कण्वकी (सुष्टुतिम्) श्रेष्ठ स्तुतिके समीप (हरिभिः) अश्वोंके द्वारा (उपायाहि) आइये (अमुष्य) इसके (दिवः) द्युलोकके (शासतः) शासन करने पर, हम सुख पाते हैं (दिवावसो) हे दीप्त हविवाले इन्द्र ! (दिवम्) स्वर्गको (यय) जाइये॥ ७॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः॥८॥

अथ अष्टमी। अस्याः परस्याश्च तिरश्ची ऋषिः। गिर्वणः गीर्भिर्वननीय हे इन्द्र ! सुतेषु सोमेषु अभिषुतेषु सत्सु गिरः अस्माकं स्तुतिलक्षणा वाचः त्वा त्वाम् आ स्थुः आभिमुख्येन शीघ्रं गच्छंति तिष्ठन्तीत्यर्थः। तत्र दृष्टांतः, रथीरिव यथा रथवान् रथेन गच्छन् वीरः प्राप्यं देशं

क्षिप्रं गच्छति तद्वत्। किञ्च। हे इन्द्र! अस्मदीया गिरः त्वा त्वाम् अभि लक्ष्य समनूषत सम्यक् शब्दायंते स्तुवंतीत्यर्थः नु स्तवने। कुटादिः। तस्य लुङि रूपं तत्र दृष्टांतः, वत्सन्न धेनवः यथा धेनवः प्रीतियुक्ताः गमनशीला वा गावः वत्समभिलक्ष्य हम्भारवादिशब्दं कुर्वन्ति तद्वत्॥ ७॥

(गिर्वणः) वेद मंत्रोंसे स्तुति करने योग्य हे इन्द्र! (सुतेषु) सोम रसोंका संपादन होने पर (गिरः) हमारी स्तुतिकी वाणियें (रथीरिव) जैसे रथी रथके द्वारा जाकर वीरोंके पहुचने योग्य स्थानपर पहुंच जाता है तैसे ही (त्वा आस्थुः) शीघ्र ही तुम्हारे अभिमुख पहुंचती हैं। हे इन्द्र! हमारी वाणियें (त्वा अभि) तुम्हारे अभिमुख होकर (वत्सं, धेनवः गावः न) जैसे प्रेममें भरी गौएँ रम्भाती हुई, बछड़ेकी ओरको जाती हैं तैसे (समनूषत) भले प्रकार स्तुति करती हैं॥ ८॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु॥९॥

अथ नवमी। विश्वामित्र ऋषिः। अत्रेतिहासमाचक्षते, पुरा किलेन्द्रो वृत्रादिकानसुरान् हत्वा ब्रह्महत्यादिदोषेणात्मानमपरिशुद्धमित्यमन्यत तद्दोषपरिहाराय इन्द्र ऋषीनवोचत्—यूयम् अपूतं मां युष्मदीयेन साम्ना शुद्धं कुरुतेति। ततस्ते च शुद्ध्युत्पादकेन साम्ना शस्त्रैश्च परिशुद्धमकार्पुः। पश्चात् पूतायेन्द्राय यागादिकर्माणि सोमादीनि हवींषि च प्रादुरिति। एषोऽर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे प्रतिपादितः इन्द्रो वा असुरान् हत्वा पूत इवामेध्यो अमन्यत असौ अकामयत शुद्धमेव मा संतं शुद्धेन साम्ना स्तूयुरिति स ऋषीनब्रवीत् स्तुतः मेति। ततः ऋषयः सामापश्यन् तेनास्तुवन् एतोन्विन्द्रमिति ततो वा इन्द्रः पूतः शुद्धो मेध्योऽभवत् इति। तथाच अस्या ऋचोऽयमर्थः-ऋषयः परस्परम् ब्रुवन्ति। नु क्षिप्रम् एत उ आगच्छतैव। आगत्य च शुद्धेन शुद्ध्युत्पादकेन साम्ना। तथा शुद्धैः शुद्धिहेतुभिः उक्थैः शस्त्रैश्च इन्द्रं शुद्धम् अपापिनं कृत्वा स्तवाम स्तुयाम। ततः साम्ना शस्त्रैः वावृध्वांसं पापराहित्येन वर्द्धमानं तमिममिन्द्रम् शुद्धैः शुद्ध्युत्पादकैः स्तोत्रैः क्रियाविशेषैः वा आशीर्वान् आश्रयणवान् गव्यादिभिः संस्कृतः सोमः ममत्तु इन्द्रं मादयतु माद्यतेश्छान्दसः श्लुः॥ शुद्धैराशीर्वान् शुद्धआशीर्वान्—इति पाठौ॥ ९॥

पहिले किसी समय इन्द्रने वृत्रादि असुरोंका वध करके समझा कि—मैं ब्रह्महत्या आदिके दोषसे लिप्त होगया हूँ और उस दोषको दूर करनेके लिए इन्द्रने ऋषियोंसे कहा कि—तुम मुझे अपने सामसे शुद्ध करो, तब ऋषियोंने सामसे शुद्ध किया, फिर उस पवित्र हुए इन्द्र को यज्ञादि कर्ममें सोम आदि हवि दिया, यह तत्त्व शाट्यायनक ब्राह्मण में कहा है, यही विषय इस मंत्रसे सूचित होता है। ऋषियोंने परस्पर कहा, कि—(नु, एत, उ) शीघ्र ही आओ और आकर (शुद्धेन, साम्ना) शुद्धि करनेवाले सामके द्वारा (शुद्धैः उक्थैः) तथा शुद्ध करनेवाले मंत्ररूप शस्त्रोंसे (शुद्धम्) शुद्ध हुए इंद्रकी (स्तवाम) स्तुति करें, तदनन्तर (वावृध्वांसम्) पापरहित होनेके कारण बढ़ेहुए उस इन्द्रको (शुद्धैः) स्तोत्रोंसे (आशीर्वान्) गो दुग्धादिसे संस्कार किया हुआ सोम (ममत्तु) आनन्ददायक होय ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ ३ २ ३ १ २
योरयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
१ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१०॥

अथ दशमी। शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः हे इन्द्र! यः सोमः वः वचनव्यत्ययः—(३, १, ८,.) तव परिचारकेभ्यः स्तोतृभ्यः रयिं धनं प्रयच्छतीति शेषः। कीदृशः रयिन्तमः अतिशयेन रयिमान्। यश्च द्युम्नैः द्योतमानैर्यशोभिर्द्युम्नवत्तमोऽतिशयेन यशस्वी। हे स्वधापते! स्वधाया अन्नस्य सोमलक्षणस्य पालकेन्द्र! स सोमः अभिषुतः सन् ते तव मदः मदकरः अस्ति भवति ॥ १० ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (यः) जो (रयिन्तमः) अत्यंत धनवान् है (यः) जो (द्युम्नैः) प्रकाशवान् यशोंसे (द्युम्नवत्तमः) परमयशस्वी है (सः) वह (सोमः) सोम (वः) तुम्हारे उपासकोंको (रयिम्) धन देता है (स्वधापते) हे सोमरूप अन्नके पालक इन्द्र! (सुतः) अभिषुत होनेपर वह सोम (ते) तुम्हारा (मदः) मदकारी (अस्ति) होता है ॥ १० ॥

तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः तृतीयाध्यायश्च समाप्तः ॥

—०—

॥ श्रीः ॥

अथ चतुर्थोऽध्याय आरभ्यते।

अस्मिन्नध्यायेऽपि इन्द्रः स्तूयते।

यस्य निःश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

तत्र प्रथमखण्डे—सैषा प्रथमा। भरद्वाज ऋषिः। हे अध्वर्यो! नरः कर्मणि नेतस्त्वं अस्मै इन्द्राय प्रतिभर प्रतिहर सोमं प्रयच्छेत्यर्थः। कीदृशायेन्द्राय? पिपीषते पातुमिच्छते। विश्वानि सर्वाणि वेद्यानि विदुषे जानते अरङ्गमाय पर्याप्तगमनाय। जग्मये यज्ञेषु गमनशीलाय अपश्चादध्वने दघ्निर्गतिकर्मा अपश्चाद्गमनाय सर्वेषामग्रगामिने नरः नृशब्दाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ङसि ऋतो गुणश्छान्दसः! नरे कर्मणान्नेत्रे। अतएव बह्वृचा अपश्चाद्दघ्ने नरे इति चतुर्थ्यन्तत्वेनामनन्ति ॥ १ ॥

हे अध्वर्यो (नरः) कर्ममें नेता तुम (अस्मै) इस (पिपीषते) सोमको पीनेकी इच्छा करनेवाले (विश्वानि) सकल जाननेयोग्य वस्तुओंको (विदुषे) जाननेवाले (अरङ्गमाय) ठीक २ पहुँचानेवाले (जग्मये) यज्ञमें जानेवाले (अपश्चादध्वने) सबसे आगे पहुँचने वाले इन्द्रको (प्रति भर) सोम अर्पण करो ॥ १ ॥

१ २ ३२ ३ १ २ ३२ ३ १ २
आ नो वयोवयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठां महान्तं
३ १ ३ २३ ३ १ २
पूर्विनेष्ठाम्। उग्रं वचो अपावधीः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वामदेवः शाकपूतो वा ऋषिः। हे वयस्य! मित्रभूतेन्द्र! अयम् ईदृशस्त्वं महान्तं महत्प्रभूतं गह्वरेष्ठां गिरिगुहादौ वर्त्तमानं नः अस्मदीयं वयः सोमलक्षणमन्नम् आ हर उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः आहृत्य महान्तं महत्प्रभूतं पूर्विनेष्ठां पर्वमादौ संसारे प्रवर्त्तमानम्

उग्रं क्षुत्पिपासानिमित्तेन भयङ्करम् । वचः अस्मदीयं वचनम् "अशनायापिपासे ह त्वा उग्रं वचः" इति श्रुतेः । अपावधीः अपजहि, देवत्वं प्रापयेत्यर्थः तत् प्राप्नोत्यशनायपिपासे निवर्त्तते । "न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति" इति श्रुतेः ॥ २ ॥

(वयस्य) हे मित्ररूप इन्द्र (अयम्) ऐसा तू (महान्तम्) बहुत से (गुहेरष्ठम्) पर्वतकी गुफामें वर्त्तमान (नः) हमारे (वयः) सोमरूप अन्नको (आ हर) लाकर (महान्तम्) बहुतसे (पूर्विनष्ठाम्) पहिले ही संसारमें वर्त्तमान (उग्रम्) भूख प्यासके कारण भयानक (वचः) हमारे वचनको (अपावधी) नष्ट करो अर्थात् हमें देवयानिमें पहुँचाओ ॥ २ ॥

२ ३ २३२३१२ ३ १ २

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्त्तयामसि ।

३ १ २३२३३२ ३ १ २

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रथ्ँ शविष्ठ सत्पतिम् ॥३॥

अथ तृतीया । प्रियमेधऋषिः हे इन्द्र ! त्वा त्वाम् आवर्त्तयामसि आवर्त्तयामः । किमर्थम् ? ऊतये अस्माकं रक्षणाय सुम्नाय सुखाय च । किमिव ? रथं यथा ऊतये सुखाय चावर्त्तयन्ति तद्वत् ! हे शविष्ठ ! बलवत्तमेन्द्र ! तुविकूर्मिं बहुकर्माणम् ऋतीषहम् हिंसकानामभिभवितारम् । सत्पतिं सतां पालकमिन्द्रं त्वामिति समन्वयः ॥ ३ ॥

(शविष्ठ) हे परमबली इंद्र (ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (सुम्नाय) सुखके लिये (रथं यथा) जैसे रथको भ्रमण कराते हैं तैसे (तुविकूर्मिम्) विचित्रपराक्रमी (ऋतीषहम्) हिंसकोंका तिरस्कार करनवाले (सत्पतिम्) सज्जनोंके पालक (त्वा इन्द्रम्) तुम इन्द्रको (वर्त्तयामसि) भ्रमण कराते हैं ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३१२ ३१ २र

स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे ।

२ ३ २ ३ १२ ३२ ३२३१२ ३२

यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे॥४॥

अथ चतुर्थी । प्रगाथ ऋषिः । स इन्द्रः पूर्व्यो मुख्यः महोनां पूज्यानां यजमानानां क्रतुभिः यज्ञनिमित्तभूतैः वेनः कांतः तेषां हविःकामयमानः आनजे आगच्छति । यस्य इंद्रस्य द्वारा द्वाराणि प्राप्त्युपायानि धियः कर्माणि देवेषु एतेषु मध्ये पिता-सर्वेषां पालकः मनुः आनजे प्रापयति नजिः प्राप्तिकर्मा । महोनां महाताम् इति पाठौ ॥ ४ ॥

(सः) वह इंद्र (पूर्व्यः) मुख्य (महीनाम्) पूज्य यजमानोंके (क्रतुभिः) यज्ञोंके द्वारा (वेनः) उनके हवियोंको चाहता हुआ (आनजे) आता है (यस्य) जिस इंद्रके (द्वारा) प्राप्तिके उपाय रूप (धियः) कर्मोंको (देवेषु–पिता) देवताओंमें सबका पालक (मनुः) मनु (आनजे) प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

२३ १२ ३ २३ १२ ३ २३ २
यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
१२ ३२र ३ २३ १२
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवाँसि कृण्वते ॥५॥

अथ पञ्चमी । श्यावाश्य आत्रेय ऋषिः । हे इन्द्र ! यदि यत्र यस्मिन् यज्ञे रथेषु भ्राजमानाः दीप्यमाना आशवः क्षिप्रगामिनस्त्वदीया मरुतः आवहन्ति । यत्र आभिमुख्येन त्वां प्रापयंति तत्र तस्मिन् यज्ञे मदिरं मदकरं मधु उदकादिरसविशेषितं सोमलक्षणमन्नं वा पिबन्तः श्रवांसि अन्नानि कृण्वते वृष्टिद्वारा कुर्वन्ति । यद्वा अस्मिन् यज्ञे भ्राजमानाः दीप्यमानाः आशवः शीघ्रगामिनः मदिरं मदकरं मधु सोमं पिबंतः पाययंत ऋत्विग्यजमानाः रथेषु सोममावहन्ति तत्र तस्मिन् यज्ञे श्रवांसि अभिषवादिकर्मभिः प्रशस्तान्यन्नानि कृण्वते कुर्वन्ति ॥ ५ ॥

(यदि) जिस यज्ञमें (रथेषु) रथोंमें (भ्राजमानाः) दीप्यमान (आशवः) शीघ्रगामी तुम्हारे मरुत् (आवहंति) तुम्हे अभिमुख करके पहुँचाते हैं (तत्र) तिस यज्ञमें (मदिरम्) मदकारी (मधु) रसीले सोमको (पिबंतः) पीतेहुए (श्रवांसि) अन्नोंको (कृण्वते) वृष्टिके द्वारा उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २
त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
१२ ३ २ ३ २३ १ २ ३ १२
इन्द्रं विश्वासाहं नरँ शचिष्ठं विश्ववेदसम् ॥६॥

अथ षष्ठी । शंयुर्ऋषिः हे ऋत्विग्यजमानाः वो युष्मदर्थं त्यमु तमेवेन्द्रं गृणीषे स्तौमि । यद्वा, वो यूयं गृणीत स्तुत । वचनव्यत्ययः । कीदृशमिन्द्रम् ? अप्रहणम् अप्रहर्त्तारं भक्तानामनुग्राहकम् । शवसो बलस्य पतिं पालकम् । विश्वासाहं विश्वस्य शत्रोरभिभवितारं नरं नेतारं शचिष्ठं यज्ञादिकर्मस्थितम् । विश्ववेदसम् विश्वं वेदो धनं यस्यासौ विश्ववेदाः ॥ ६ ॥

हे ऋत्विक् ! यजमानो ! (वः) तुम्हारे अर्थ (त्यमु) उन ही (अग्रहणम्) भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले (शवसः) बलके (पतिम्) पालक (विश्वासाहम्) सकल शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (नरम्) नेता (शचिष्ठम्) यज्ञादि कर्ममें स्थित (विश्ववेदसम) विश्व ही है धन जिनका ऐसे इंद्रकी (गृणीषे) स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

१ १ ३ ३ १ २र ३ १ ३
दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
३ २ ३ १ २ ३२३ १ २
सुरभि नो मुखा करत्प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥७॥

अथ सप्तमी । वामदेव ऋषिः दधिक्रावाऽग्निविशेषः । स चाश्वरूपः अग्निर्देवेभ्योनिलीयत अश्वोरूपं कृत्वा यदश्वेत्यतिष्ठत् इत्यादि अध्वर्यु-ब्राह्मणमनुसंधेयम् । दधिक्राव्णो देवस्य स्तुतिं अकारिषं करवाणि । जिष्णो जयशीलस्य अश्वस्य तद्रूपस्य वाजिनो वेगवतः । स देवो नोऽस्माकं मुखा मुखानि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि सुरभि सुरभीणि करत् करोतु । नोऽस्मभ्यम् आयूꣳषि प्रतारिषत् प्रवर्द्धयंतु प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्द्धनार्थः ॥ ७ ॥

(जिष्णोः) जयशील (अश्वस्य) अश्वरूपधारी (वाजिनः) वेगवान् (दधिक्राव्णः) दधिक्रावा नामक अग्निदेवताकी स्तुतिको (अकारिषम्) करता हूँ, यह अग्निदेव (नः) हमारी (मुखा) मुख आदि इंद्रियोंको (सुरभि) शक्तिसम्पन्न (करत्) करे (नः) हमारे (आयूꣳषि) आयुधोंको (प्रतारिषत्) बढावे ॥ ७ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥८॥

अथ अष्टमी । जेता माधुच्छन्दसः ऋषिः । अयम् इन्द्रः उच्यमानगुण-युक्तः अजायत संपन्नः कीदृग्गुणक इति तदुच्यते पुरां पुराणां भिंदुःभेत्ता युवा कदाचिदपि बलीपलितादिवार्द्धक्यरहितः । कविः मेधावी अमितौजा प्रभूतबलः विश्वकर्मणः कृत्स्नस्य ज्योतिष्टोमादेः धर्त्ता पोषकः वज्री यजमानरक्षणार्थं सर्वदा वज्रयुक्तः पुरुष्टुतः बहुभिर्होत्रादिभिस्तत्तत् कर्मणि स्तुतः ॥ ८ ॥

(इन्द्र) यह इन्द्र (पुराम्) शत्रुओंके नगरोंका (भिन्दुः) तोड़ने वाला (युवा) सदा तरुण (कविः) बुद्धिमान् (अमितौजाः) परमबली (विश्वकर्मणः) सकल कर्मकाण्डका (धर्त्ता) पोषणकर्त्ता (वज्री) यजमानकी रक्षार्थ सदा वज्र धारण करनेवाला (पुरुष्टुतः) अनेकोंसे स्तुति किया जानेवाला (अजायत) हुआ ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१॥

अथ द्वितीयखण्डे—सैषा प्रथमा । प्रियमेधा ऋषिः । हे अध्वर्य्वादयः! वो यूयं प्रथमार्थे द्वितीया । त्रिष्टुभं स्तोभत्रयोपेतम् इषम् अन्नं प्र प्र अपरः प्रशब्दः पूरणः । भरतेति शेषः । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः । कस्मै वन्दद्वीराय यो वीरान् स्तौति स वन्दद्वीरः तस्मै इन्दवे इंद्राय । इन्दतेरैश्वर्य्यकर्मणः इदं रूपम् । अथवा फलैर्वृष्टिभिर्वा उनत्तीतीन्दुरिन्द्रः तस्मै । स चेन्द्रो वो युष्मान् मेधसातये यज्ञसम्भजनाय पुरंध्या बहुप्रज्ञया धिया कर्मणा आ विवासति परिचरति अभिमतफलयोजनेन सत्करोतीत्यर्थः ।

हे अध्वर्यु आदिकों! (वः) तुम (त्रिष्टुभम्) तीन स्तोभोंसे युक्त (इषम्) अन्नको (वन्दद्वीराय) वीरोंकी प्रशंसा करनेवाले (इंदवे) इंद्रके अर्थ (प्र प्र) पहुंचाओ, और वह इद्र (वः) तुम्हें (मेधसातये) यज्ञानुष्ठानके निमित्त (पुरंध्या) परमप्रज्ञायुक्त (धिया) कर्मसे (आविवासति) परिचर्या करता है अर्थात् इच्छित फल देकर तुम्हारा सत्कार करता है ॥ १ ॥

३ १२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वामदेव ऋषिः । पश्यतीति कश्यपः । कश्यपः पश्यका भवति इति श्रुत्यन्तरम् । तस्य कश्यपस्य सर्वज्ञस्येन्द्रस्य संबंधिनौ यो अश्वौ । ययोः च विश्वं सर्वम् अपि व्रतं कर्म यज्ञं प्रति यजनीयदेशं प्रतीत्येवं निचाय्य निश्चित्य सयुजौ सहैव युञ्जाते इति स्वर्वि-

दः स्वर्गं लब्धवन्तो धीराः जनाः आहुः । अथवा कश्यपः प्रजापतिः कश्यपोऽष्टमः स महामेरुं न जहातीति श्रुत्यन्तरात् तस्य स्वर्विदः सर्वं पश्यतः यौ देवौ सयुजौ सहचरौ जना आहुः वेदविदस्तौ मित्रावरुणौ । अहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुणः इत्यैतरेयब्राह्मणम् । सर्वस्य कार्यस्य तयोरेवान्तर्भावात् इन्द्राग्नी वा देवौ तयोरेव सर्वनिर्वाहकत्वात् तदभिप्रायेणेयमृक् मैत्रावरुणी ऐन्द्राग्नी वेति पर्वमभिहितम् ॥ २ ॥

(कश्यपस्य) सर्वद्रष्टा इंद्रके (यौ) जो अश्व हैं (ययोः) जिन अश्वों का (विश्वम्, अपि) सब ही (व्रतम्) कर्म (यज्ञम्) यज्ञके प्रति है (इति) ऐसा (निचाय्य) निश्चय करके (सयुजौ) साथ ही जोड़े जाते हैं ऐसा (स्वर्विदः) स्वर्गको पानेवाले (धीराः) पुरुष (आहुः) कहते हैं ॥८॥

१ २३ १ २ ३ १२ ३ १२
अर्चत प्रार्चत नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
१ २ ३ २ ३२उ ३ २ ३क २र
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद्धृष्ण्वर्चत ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । प्रियमेधा ऋषिः । हे नरः कर्मणां नेतारोऽध्वर्य्वादयः ! यूयम् इन्द्रम् अर्चत पूजयत स्तुत्या प्रार्चत प्रकर्षेणार्चतेन्द्रमेव हे प्रियमेधासः ! प्रियमेधसम्बधिनस्तद्गोत्रा यूयम् अर्चतेन्द्रम् । पुत्रकाः पुत्रा अप्यर्चन्त्विन्द्रम् । उत अपिच पुरमित् पुरमेव स्तोतॄणामभिमतस्य परकम् । धृष्णु धर्षणशीलं तादृशमिन्द्रम् अर्चत ॥ ३ ॥

(नरः) हे कर्मोंके नेता अध्वर्यु आदिकों ! तुम (अर्चत) इंद्रकी पूजा करो (प्रार्चत) विशेषरूपसे पूजा करो (प्रियमेधासः) हे यज्ञके प्रेमियों ! (अर्चत) पूजो (उत) और (पुत्रकाः) हे पुत्रों ! (पुरमित्) भक्तों के मनोरथोंको अवश्य ही पूर्ण करनेवाले (धृष्णु) शत्रुओंको धमकानेवाले इंद्रको (अर्चन्तु, अर्चत) वारंवार पूजन करो ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उक्थमिन्द्राय शꣳस्यं वर्द्धनं पुरुनिःषिधे ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥४॥

अथ चतुर्थी । मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्राय इंद्रार्थं वर्द्धनं वृद्धिसाधनम् उक्थं शस्त्रं शस्यम् अस्माभिः शंसनीयम् । कीदृशायेन्द्राय पुरुनिःषिधे पुरूणां बहूनां शत्रूणां निषेधकारिणे । शक्रः इन्द्रो नो

ऽस्मदीयेषु सुतेषु पुत्रेषु सख्येषु च सखित्वेष्वपि यथा येन प्रकारेण रारणत् अतिशयेन शब्दं कुर्य्यात् तथा शंस्यमिति पूर्वत्रान्वयः । अस्मदीयेन शस्त्रेण परितुष्ट इंद्रः नोस्माकं पुत्रान् अस्मत्सख्यानि च बहुधा च प्रशंसतीत्यर्थः ।

(पुरुनिःषिधे) अनेकों शत्रुओंका नाश करनेवाले (इंद्राय) इंद्र के अर्थ (वर्द्धनम्) वृद्धिका साधन (उक्थम्) मंत्ररूप शस्त्र (शक्रः) इंद्र (नः) हमारे (सुतेषु) पुत्रोंमें (च) और (सख्येषु) मित्रोंमें (यथा) जिसप्रकार (रारणत्) अत्यंत शब्द करै, तिसप्रकार (शंस्यम्) प्रशंसा करने योग्य है ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । प्रियमेध ऋषिः । विश्वानरस्य विश्वान् शत्रून् प्रत्यृतस्य अनानतस्य शत्रूणामप्रह्वस्य शवसो बलस्य पतिं स्वामिनमिन्द्रं वा अत्र इंद्रसम्बंधिनो मरुतोऽपि सङ्कीर्त्यन्ते हे मरुतः ! वो युष्माकमित्यर्थः यद्यपि मरुत्संशब्दनं नास्ति तथापि व इति सामर्थ्याल्लभ्यते युष्माकं चर्षणीनाम् सैनिकानाम् एवैः गमनैः सह यद्वा चर्षणीनामिन्द्रस्य सेनारूपाणां वो युष्माकं गमनैरिति सामानाधिकरण्यं युष्माकं रथानां च ऊती ऊतभिगमनैश्च सह हुवे आह्वयामि गंतृभी रथैर्गंतृभिर्मरुद्भिश्च सहेंद्रं हुवे इत्यर्थः ॥ यद्वा । हे यजमानाः ! युष्मदीयसैनिकानां रथा यदा प्रविशंति युद्धाय स्वसङ्ग्रामं तदानीं तेषां साहाय्यायेन्द्रं हुवे इत्यर्थः ॥५॥

(विश्वानरस्य) शत्रुओंके ऊपर चढ़ाई करने वाले (अनानतस्य) शत्रुओंसे न नमनेवाले (शवसः) बलके (पतिम्) स्वामी इंद्रको हे मरुतो! (वः) तुम्हारे (चर्षणीनाम्) सैनिकोंके (एवैः) गमनों सहित (रथानाम्) रथोंकी (ऊती) रक्षाके निमित्त (हुवे) आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्त्तस्य शमतः ।
३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अꣳहो न तरति ६

अथ षष्ठी । भरद्वाज ऋषिः । शमतः कर्मानुष्ठानेन शांतस्य मर्त्तस्य

निजमार्गवर्त्तिन इत्यर्थः । मर्त्तस्य मनुष्यस्य मध्ये जात्येकवचनं दिवो द्योतनादिगुणकस्य ते तव धिया कर्मणा स्तुत्या नरः मनुष्यः सखा स्तोता भवति सः नरः । यः बृहतो महतो दिवो दीप्तस्य तव सम्बन्धिन्या ऊती ऊत्या रक्षया द्विषो द्वेष्टॄन् अंहो न आहनशीलं पापमिव तरति अतिक्रामति ॥ ६ ॥

(शमतः) कर्मानुष्ठानसे शांत अपने मार्गमें चलनेवाले (मर्त्तस्य) मनुष्योंमें (दिवः) द्योतन आदि गुण युक्त (ते) तुम्हारा (धिया) स्तुति करनेसे (नरः) मनुष्य (सखा) स्तोता होता है (सः) वह मनुष्य (यः) जो (बृहतः) महान् (दिवः) प्रकाशवान् तुम्हारी (ऊती) रक्षासे (द्विषः) शत्रुओंको (अंहो न) पापकी समान (तरति) लाँघ जाता है ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नꣳ सुदत्र मꣳहय ७

अथ सप्तमी । अत्रिर्ऋषिः । हे शतक्रतो । बहुकर्मन्निन्द्र ! विभोः प्रभूतस्य राधसो धनस्य ते तव रातिः दानं विभ्वी महती अथ अतः कारणात् हे विश्वचर्षणे ! सर्वस्य द्रष्टः सुदत्र कल्याणदानेन्द्र ! नो ऽस्मभ्यं द्युम्नं धनं मंहय प्रयच्छ ॥ ७ ॥

(शतक्रतो इन्द्र) हे विचित्रपराक्रमी इन्द्र ! (विभोः) बहुतसे (राधसः) धनका (ते) तुम्हारा (रातिः) दान (विभ्वी) बडाभारी है (अथ) इस कारण (विश्वचर्षणे) सबके द्रष्टा (सुदत्र) मङ्गलमय दान करनेवाले हे इंद्र ! (नः) हमें (द्युम्नम्) धन (मंहय) दीजिये॥७॥

१ २ १ २ ३ १ २र
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उषः प्रारन्नृतूꣳरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८॥

अथ अष्टमी । प्रस्कण्व ऋषिः । हे अर्जुनि ! शुभ्रवर्णे ! उषः उषोदेवते ! ते तव ऋतूननु गमनान्यनुलक्ष्य द्विपात् मनुष्यादिकं चतुष्पाद् गवादिकं तथा पतत्रिणः पतत्रवंतः पक्षोपेताःवयश्चित् पक्षिणश्च दिवो अन्तेभ्यः आकाशप्रान्तेभ्यः परि उपरि प्रारन् प्रकर्षेण गच्छन्ति । रात्रान्धकारेणाभिभूताः सर्वप्राणिनस्त्वदागमनानन्तरञ्च धावंतो भवंतीत्यर्थः ८॥

(अर्जुनि उषः) हे शुभ्रवर्ण उषा देवते ! (ते) तेरे (ऋतून् अनु) सर्वत्र प्रकाशरूप गमनके अनन्तर (द्विपात्) मनुष्य आदि (चतुष्पात्) गौ आदि (पतत्रिणः) परोंवाले (वयश्चित्) पक्षी भी (दिवः अन्तेभ्यः) आकाशके प्रान्तोंसे (परि) ऊपर (प्रारन्) यथेच्छ विचरते हैं ८

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।
१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कद्वः ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ॥९॥

अथ नवमी । आप्त्यस्त्रित ऋषिः । हे देवाः ! इंद्रादयः ये ऽमी यूयं दिवो दीप्तस्य सूर्य्यस्य आरोचने दीप्तिविषये मध्ये अन्तरिक्षलोके स्थ भवथ सूर्य्यप्रकाश्यस्थाने इत्यर्थः । तेषां वो युष्माकं सम्बन्धि स्तोत्रविषयम् ऋतं सत्यं कत् कस्मिन् देशे वर्तते ? अमृतं नकारस्य स्थाने मकारः । अनृतं कत् कुत्रास्ति ? वो युष्मदीया प्रत्ना पुराणी आहुतिः का कीदृशी ? युष्मदीयं दानं किमभूदित्यर्थः । ईदृग्भूतदुःखानुभवेन मया पूर्वमनुष्ठितो यागसमूहो युष्मान् न प्राप्नोदित्यनुमिमे ॥ ९ ॥

(देवाः) हे इंद्रादि देवताओं ! (ये) जो (अमी) यह तुम (दिवः) दीप्त सूर्यके (आरोचने) प्रकाशित होने पर (मध्ये) अन्तरिक्षलोकमें (स्थन) स्थित होते हो ऐसे (वः) तुम्हारे स्तोत्रके विषय का (ऋतम्) सत्य (कत्) कहाँ है (अनृतम्) अनृत (कत्) कहाँ है (वः) तुम्हारी (प्रत्ना) पुरातन (आहुतिः) आहुति (का) कौनसी है अर्थात् तुम्हारा दान क्या हुआ ? ऐसे दुःखके अनुभवसे मुझे अनुमान होता है कि-मेरे कियेहुए यज्ञ तुम्हें प्राप्त नहीं हुए ॥९॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ऋचथ्ँ साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते ।
१ २र ।३ २ ३ १ २
विं ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ॥ १० ॥

अथ दशमी । वामदेव ऋषिः । याभ्याम् ऋक्सामाभ्यां कर्माणि शस्त्रस्तोत्रप्रमुखानि कृण्वते होतार उद्गातारः कुर्वन्ति । ताम् ऋचं तत् साम च यजामहे वयं पूजयामः ते ऋक्सामे सदसि ऋत्विक्समूहे सदोमण्डपे विराजतः स्तोत्रशस्त्ररूपेण विशेषेण प्रकाशयतः । ते च ऋक्सामे देवते देवेषु इन्द्रादिषु यज्ञं वक्षतः प्रापयतः ॥ १० ॥

होता और उद्गाता (याभ्याम्) जिन ऋक् और सामसे (कर्माणि) स्तोत्र आदि कर्मानुष्ठान (कृण्वते) करते हैं (ऋचं साम) उस ऋचा और सामका (यजामहे) हम पूजन करते हैं (ते) वह ऋक् साम (सदसि) ऋत्विक्सभामें (विराजतः) स्तोत्रादिरूपसे प्रकाशित होते हैं (देवेषु) इंद्रादि देवताओंमें (यज्ञम्) यज्ञीयभागको (वक्षतः) पहुंचाते हैं ॥ १० ॥

॥ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं
३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
जजनुश्च राजसे । क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतो-
२र ३ १ २ ३ १ २
ग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

सन्त्येकादश या विश्वाः पृतना इति सम्मताः ।
जगत्य ऐन्द्र्यो रोदस्योः स्तुतिर्घृतवती इति ।
उभे यदिन्द्ररोदसी महापंक्तिरितीरिता ॥

अथ तृतीयखण्डे—सैषा प्रथमा । रेभ ऋषिः । विश्वाः सर्वाः व्याप्ता वा पृतना पृङ् व्यायामे (तु० आ०) व्याप्रियन्त इति पृतना सेनाः नरो नेत्र्यः सजूः परस्परं सङ्गताः सत्यः अभिभूतरं शत्रूणामत्यर्थमभिभवितारम् इंद्रं ततक्षुः आयुधादिभिस्तीक्ष्णीचक्रुः, आयुधवंतं चक्रुरित्यर्थः । यद्वा पृतना इति संग्रामनाम (नि० २, १७) व्याप्रियन्ते अमेति पृतनाः संग्रामः सर्वानेव संग्रामानभिभावुकमिन्द्रं नरो नेतारोऽन्ये स्तोतारः अन्योन्यं संगता स्तुतिभिस्तीक्ष्णमकुर्वन् । यद्वा यष्टारो हविःप्रदानेन वीर्य्यवंतं कुर्वतीति । किञ्च स्तोतारः राजसे राजतेस्तुमर्थे असप्रत्ययः आत्मनो विराजनार्थं प्रकाशनार्थं सूर्य्यात्मानमिन्द्रं जजनुः जनयामासुः स्तोत्रशस्त्रैः स्वयज्ञे प्रादुरभावयन्नित्यर्थः उत अपिच क्रत्वे स्वकीयवृत्रवधादिकर्मणे वरे श्रेष्ठे स्थेमनि स्थिरशब्दादिमतिच (५, १,१२२) स्थैर्य्ययुक्ते स्थाने स्थितम् आमूरिं शत्रूणां मारयितारमिन्द्रम् आत्मनां धनलाभार्थं स्तोतारः स्तुवन्तीत्यर्थः । कीदृशम् उग्रम् उद्गूर्णबलम् अतएव ओजिष्ठम् ओजस्वितमम् तरोबलं तद्वन्तं तरस्विनम् संग्रामे शत्रुवधार्थं बलवंतं वेगवन्तं च ॥ १ ॥

(विश्वा) बहुतसीं फैलीहुईं (नरः) चढ़ाई करनेवाली (पृतनाः) सेनाएँ (सजूः) परस्पर इकट्ठी होकर (अभिभूतरम्) शत्रुओंका अत्यंत तिरस्कार करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (ततक्षुः) आयुधवाला करती हुईं (च) और स्तोता (राजसे) अपने प्रकाशके अर्थ सूर्यात्मा इन्द्रको (जजनुः) स्तोत्र आदिके द्वारा अपने यज्ञमें प्रकट करतेहुए (उत) और (क्रत्वे) अपने वृत्रबध आदि कर्म के अर्थ (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थिर स्थानपर स्थित (आमुरीम्) शत्रुओंको मारनेवाला (उग्रम्) तीव्रस्वभाव (ओजिष्ठम्) परमतेजस्वी (तरसम्) बली (तरस्विनम) वेगवान् इंद्रको धनप्राप्तिके लिये स्तुति करते हैं ॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
श्रत्ते दधामि पथमाय मन्यवेऽहन्यद्दस्युं नर्यं
३ २३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
विवेरपः उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यसाते
१ २ ३ १ २
शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सुवेदः शैलूषिर्ऋषिः । हे अद्रिवः ! वज्रवन्निंद्र ! ते तव मन्यवे कोपाय तेजसे वा प्रथमाय मुख्याय श्रद्धामि श्रद्धामादरातिशयं तद्विषयं करोमि । यत् येन मन्युना दस्युं कर्माण्युपक्षपयितारम् असुरम् अहन् अवधीः नर्यमिति क्रियाविशेषणम् । न रहितं यथा भवति तथा तेन हत्वा च मेघेनावृताः अपः उदकानि च विवेः इमं लोकं प्रत्यागमयः तस्मै मन्यव इत्यन्ययः यद् यदा उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ त्वा त्वाम् अनुधावताम् गच्छतां त्वदधीने भवत इत्यर्थः । तदानीं पृथिवीच्चित् पृथिवीत्यंतरिक्षनाम (नि० १,३,९) प्रथितं विस्तीर्णमन्तरिक्षमपि शुष्मात् त्वदीयाद् बलात् भ्यसाते बिभेति भ्यस भये (भ्वा० आ० पञ्चमलकारे रूपम्)बिभीयात् भयेन कम्पते इत्यर्थः:२

(अद्रिवः) हे वज्रधारिन् इंद्र ! (ते) तुम्हारे (प्रथमाय) मुख्य (मन्यवे) क्रोधको (श्रद्दधामि) श्रद्धा करता हूँ (यत्) जिस कोपसे (दस्युम्) कर्मोंके विघ्नकर्ता असुरको (अहन्) मारा (निर्यम्) निःशेषभावसे उसका वध करके (अपः) मेघोंसे ढकेहुए जलोंको (विवेः) इसलोकमें पहुँचाया (यत्) जब (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावापृथिवी (त्वां अनुधावताम्) तुम्हारे अधीन होते हैं, उस समय

(पृथिवीचित्) विस्तारवाला अन्तरिक्ष भी (ते) तुम्हारे (शुष्मात्) बलसे (भ्यसाते) भयभीत होता है ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १
समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्भू-
२र २ १ २ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १
रतिथिर्जनानाम् । स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं
२ ३ १ २र ३ २ ३ २
वर्त्तनीरनु वावृतं एक इत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वामदेव ऋषिः । हे विश्वा ! सर्वा प्रजाः ! दिवः स्वर्गस्य ओजसा बलेन पतिं स्वामिनमिन्द्रं समेत स्तोत्रेण हविषा वा सम्यक् प्राप्नुत । इन्द्रः एक इत् एक एव सन् जनानां यजमानानाम् अतिथिः अतिथिवत् प्रियो भूः भवति । पूर्व्यः पुरातनः स इंद्रः आजिगीषन्तं स्वशत्रून् जेतुमिच्छन्तं नूतनम् अद्यतनं स्तोतारं प्रति एक इत् एक एव वर्त्तनिमार्गः सन् अनुवावृते अनुवर्त्तयति ॥ ३ ॥

(विश्वाः) हे सकल प्रजाओं ! (दिवः) स्वर्गके (ओजसा) बलके (पतिम्) स्वामी इन्द्रको (समेत) स्तोत्र और हविसे भले-प्रकार प्राप्त होओ (यः) जो इंद्र (एक इत्) अकेला ही (जनानाम्) यजमानोंका (अतिथिः) अतिथिकी समान प्रिय (भूः) होता है (पूर्व्यः) पुरातन (सः) वह इन्द्र (आजिगीषन्तम्) अपने शत्रुओं को जीतनेकी इच्छा करनेवाले (नूतनम्) इस समयके स्तोताको (एक इत्) एक ही (वर्त्तनीः) विजयके मार्ग पर (अनुवावृते) चलाता है अर्थात् विजय कराता है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इमे ते इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि
२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्रभूवसो । न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य्य नो वचः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । सव्यआङ्गिरसऋषिः । प्रभूवसो प्रभूतधन ! हे इन्द्र ! अतएव पुरुष्टुत पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्तुत ! ये वयं त्वा त्वाम् आरभ्य आश्रयतयावलम्ब्य चरामसि, चरामः यागे वर्त्तामहे । ते इमे वयन्ते तया स्वभूताः हे गिर्वणो गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! त्वत्तोऽन्य

कश्चिदपि गिरः स्तुतिः न हि सघत् न हि प्राप्नोति । अतस्त्वं नोऽस्माकं वचः स्तुतिलक्षणं प्रतिहय कामयस्व क्षोणीरिव यथा क्षोणी पृथिवी स्वकीयानि भूतजातानि कामयते ॥ ४ ॥

(प्रभूवसो) अधिक धनवाले (पुरुष्टुत) अनेकों यजमानोंसे स्तुति कियेहुए (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तुम्हारा आश्रयरूपसे आलम्बन करके (चरामसि) यज्ञमें प्रवृत्त होते हैं (ते इमे, वयम्) वह हम (ते) तुम्हारे हैं (गिर्वणः) हे मंत्रोंसे स्तुति करनेयोग्य इंद्र ! (त्वदन्यः) तुझसे अन्य कोई भी (गिरः) स्तुतियोंको (न हि) नहीं (सघत्) प्राप्त होता है (तत्) तिससे (नः) हमारे (वचः) स्तोत्रको (क्षोणीरिव) जैसे पृथ्वी अपनेमें उत्पन्न हुए प्राणिमात्रको स्वीकार करती है तैसे (प्रतिहर्य) स्वीकार करिये ॥४॥

३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २
चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहती-
३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
रभ्यनूषत । वावृधानं पुरुहूतꣳ सुवृक्तिभिरमर्त्यं
१ २ ३ १ २
जरमाणं दिवेदिवे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । विश्वामित्रः स्तौति । बृहतीः प्रभूताः गिरःअस्मदीयाः स्तुतिलक्षणा वाचः चर्षणीधृतं चर्षणीनां मनुष्याणामभिमतफलप्रदानेन धारकं पोषकं यद्वा आकृषत्यनेन सर्वमिमिति चर्षणिर्बलं तद्धारकं मघवानम् उक्थ्यम् उक्थैः शस्त्रैः शंसनीयं वावृधानं बलधनादिसम्पत्त्या प्रतिक्षणं वर्द्धमानं पुरुहूतं बहुभिः स्तोतृभिराहूतम् अमर्त्यं मरणधर्मरहितं सुवृक्तिभिः शोभनस्तुतिवाक्यैः दिवे दिवे प्रत्यहं जरमाणं स्तूयमानं तम् इमम् इन्द्रम् अभ्यनूषत अभितः सर्वे स्तुवन्तु ॥५॥

(बृहती) बहुतसी (गिरः) हमारे स्तोत्रकी वाणियें (चर्षणीधृतम्) इच्छित फल देकर मनुष्योंके पोषण करनेवाले (मघवानम्) धन वा यज्ञवाले (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वावृधानम्) बल धन आदि सम्पदासे प्रतिक्षण बढनेवाले (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारेहुए (अमर्त्यम्) अमर (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतिवाक्योंसे (दिवे दिवे जरमाणम्) प्रतिदिन स्तुति कियेहुए (इंद्रम्) इन्द्रको (अभ्यनूषत) सब ओरसे स्तुति करो ॥ ५ ॥

———

१ २ ३ १२ ३१२ ३१२ ३२३ १ ३
अच्छा व इन्द्र मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
उशतीरनूषत । परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । कृष्ण आङ्गिरस ऋषिः । स्वर्युवः स्वर्गेण मिश्रयितारः सध्रीचीः सङ्गताः विश्वा व्याप्ताः उशतीः कामयमानाः मतयः स्तुतयः इन्द्रम् ईश्वरम् अच्छानूषत अभिष्टुवन्ति । किञ्च । जनयो जायाः यथा पतिं भर्त्तारं मर्य्यं न यथाच शुन्ध्युं शुद्धं दोषरहितं मघवानं धनवन्तम् ऊतये रक्षणाय परिष्वजन्त आलिङ्गन्ति छान्दसो लोट् तद्वदिन्द्रं मे स्तुतयः परिष्वजते परिष्वजन्त । परिष्वजते इति च पाठौ ॥ ६ ॥

(यथा) जैसे (जनयः) स्त्रियें (मर्य पतिम्) मनुष्य पतिको (न) और जैसे (शुन्ध्युम्) शुद्ध दोषरहित (मघवानम्) धनवान् को (ऊतये) रक्षाके लिये (परिष्वजन्त) आलिङ्गन करती हैं तैसे ही (स्वर्युवः) स्वर्गसे मिलनेवालीं (सध्रीचीः) इकट्ठी हुई (विश्वाः) व्याप्त (उशतीः) कामना करती हुई (मतयः) स्तुतियें (इन्द्रम्) ईश्वरको (अच्छानूषत) चारों ओरसे स्तुति करती हैं ॥ ६ ॥

१ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता
१ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वस्वो अर्णवम् । यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं
३ १ २र ३ १ २र
भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । सव्य ऋषिः । त्यं तं प्रसिद्धं मेषं शत्रुभिः स्पर्द्धमानम् यद्वा । कण्वपुत्रं मेधातिथिं यजमानमिन्द्रो मेषरूपेणागत्य तदीयं सोमं पपौ स ऋषिस्तं मेष इत्यवोचत् अत इदानीमपि मेष इन्द्रोऽभिधीयते । मेधातिथेर्मेषेति सुब्रह्मण्यमन्त्रैकदेशस्य व्याख्यानरूपं ब्राह्मणमेवमाम्नायते मेधातिथिं ह काण्वं मेषो भूत्वा जहारेति । आगत्य सोमं अपहृतवानित्यर्थः । पुरुहूतं बहुभिर्यजमानैराहूतम् ऋग्मियम् ऋग्भिर्विक्रीयमाणं स्तूयमानमित्यर्थः । स्तुत्या हि देवता यद्वा विक्रीयते ऋग्भिर्मीयते

ऋग्मीः तं वस्वो अर्णवं धनानामावासभूमिम् । एवं शब्दात् इति गुण विशिष्टमिन्द्रं हे स्तोतारः ! गीर्भिः स्तुतिभिः अभिमुख्येन हर्षं प्रापयत यस्य इन्द्रस्य कर्माणि मानुषं जात्येकवचनं मानुषाणि मनुष्याणां हितानि विचरन्ति विशेषेण वर्त्तन्ते । अत्र-दृष्टान्तः द्यावो न यथा सूर्यस्य रश्मयः सर्वेषां हितकराः भुजे भोगाय मंहिष्ठम् अतिशयेन प्रवृद्धं विप्रं मेधाविनम् । तथाविधमिन्द्रम् अभ्यर्चत अभिपूजयत ॥ ७ ॥

(त्यम्) प्रसिद्ध (मेषम्) शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले (पुरुहूतम्) अनेकों यजमानोंके पुकारेहुए (ऋग्मियम्) वेदमंत्रोंसे स्तुति किये (वस्वो अर्णवम्) धनोंके निवासस्थान इन्द्रको हे स्तोताओं ! (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (अभिमदत) अभिमुख होकर प्रसन्न करो (यस्य) जिस इन्द्रके (मानुषम) मनुष्योंके हितकारी कर्म (द्यावः न) सबकी हितकारी सूर्यकी किरणोंकी समान (विचरन्ति) विशेषरूपसे वर्त्त-मान होते हैं (भुजे) भोगके निमित्त (मंहिष्ठम्) अत्यन्त बढ़ेहुए (विप्रम्) मेधावी इन्द्रको (अभ्यर्चत) पूजो ॥ ७॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
त्यꣳ सु मेषं महया स्वर्विदꣳ शतं यस्य
३ १ २ ३ १ २र २ ३ १ २र ३ २
सुभुवः साकमीरते । अत्यं न वाजꣳ हवनस्य-
३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दꣳ रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । सव्यऋषिः । त्यं तं प्रसिद्धं मेषं शत्रुभिः सह स्पर्द्ध-मानं स्वर्विदं स्वरादित्यो द्यौर्वा तस्य वेदितारं लब्धारं वा । यद्वा । स्वः सुष्ठु अरणीयं धनं तस्य लम्भयितारम् । एवंगुणविशिष्टमिन्द्रं हे अध्वर्यो ! सुमहय सम्यक् पूजय । यस्य इन्द्रस्य शतं शतसंख्याकाः आववृत्यां प्रति आवर्त्तयामि । कीदृशम् ? रथं हवनस्यदं हवनमाह्वानं यागं वा प्रति वेगेन गच्छन्तम् । गमने दृष्टान्तः अत्यन्नवाजं गमनसा-धनमश्वमिव महय पूजय ॥ ८ ॥

(यस्य) जिसकी (सुभुवः) श्रेष्ठ भूमियें (साकम्) साथ (ईरते) प्राप्त होती हैं (त्यम्) उस (मेषम्) शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले (स्व-र्विदम्) धनके दाता (रथम्) रथकी समान अभीष्टस्थान पर पहुँचाने वाले (अत्यं वाजं न) गमनके साधन घोड़ेकी समान (हवनस्यदम्) यागस्थानमें शीघ्रतासे पहुँचानेवाले (इन्द्रम्) इन्द्र को (अवसे)

रक्षाके लिये (सुवृक्तिभिः) श्रेष्ठ स्तुतियोंसे (महय) पूजो (शतम्) सौ (आववृत्याम्) प्रदक्षिणा करता हूँ ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे
३ १ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
सुपेशसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा
१ २ ३ २ ३ १ २
विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाज ऋषिः। द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ घृतवती दीप्तिमत्यौ उदकवत्यौ वा भवत इति शेषः । भुवनानां भूतानाम् अभिश्रिये अभिश्रयणीये भवत इति सर्वथानुसन्धेयम्, उर्वी विस्तीर्णे पृथ्वी-बहुकार्य्यरूपेण पृथिते च, मधुदुंघे मधुन उदकस्य दोग्ध्यौ सुपेशसा सुरूपे, वरुणस्य सर्वनियामकस्य धर्मणा धारणे विष्कभिते पृथक् धारिते अजरे नित्ये भूमिरेतसा बहुरेतस्के बहुकार्य्ये वा भवतः अत्र साक्षात् द्यावापृथिव्योः स्तुतिः प्रसङ्गाद् वरुणस्येति द्रष्टव्यम् ॥ ९ ॥

(द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक (घृतवती) जलवाले (भुवनानाम्) भूतोंके (अभिश्रिया) आश्रय करने योग्य (उर्वी) विस्तीर्ण (पृथ्वी) बहुत कार्यरूपसे प्रसिद्ध (मधुदुघे) जलको पूरित करनेवाले (सुपेशसा) सुन्दररूपवाले (वरुणस्य) ईश्वरकी सर्वनियामक शक्तिके (धर्मणा) धारण करनेसे (विष्कभिते) ठहरे हुए (अजरे) नित्य (भूरिरेतसा) बहुत बीजवाले हैं ॥ ९ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महान्तं त्वा महीनाᳬँ सम्राजं चर्षणीनाम् ।
३ १ २र ३ १ २र
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् १०

अथ दशमी मेधातिथि ऋषिः । महापंक्तिश्छन्दः । षड्ष्टाक्षरा पादा, द्वौ चाद्ध चाविधोमहे हे इन्द्र ! उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ यत् यस्त्वम् आ पप्राथ स्वतेजसा आ पूरयसि प्रा पूरणे आदादिकः (प०)। छान्दसः लिट् । उषा इव यथा उषा स्वभासा सर्वं जगदापूरयति तद्वत् । तं महीनां महतां देवानामपि महान्तम् नायकम् । चर्षणीनां

मनुष्याणामपि सम्राजम् ईश्वरम् इन्द्रम् त्वा त्वां देवी देवनशीला जनित्री साधुजनयित्री अदितिः अजीजनत् अजनयत् जनेर्ण्यन्तात् लुङि चङि रूपमेतत्। यस्मादेषा जनयित्री ईदृशं पुत्रमजीजनत् अतः कारणात् सा भद्रा कल्याणी प्रशस्ता जाता जनेर्ण्यन्तात् साधुकारिणि तृन् (३, २, १३५) जनिता मन्त्रे (६, ४, ५३) इति इडादौ णि लोपो निपात्यते। ऋन्नेभ्य (४, १, ५,) इति ङीप्॥ १०॥

(इन्द्र) हे इन्द्र) (उभे रोदसी) द्यावापृथिवी दोनोंको (यत्) जो तुम (उषा इव) जैसे उषा अपने प्रकाशसे सब जगत्को पूर्ण कर देती है तैसे (आपप्राथ) अपने तेजसे पूर्ण करते हो ऐसे (महताम्) देवताओंके भी (महान्तम्) बड़े (चर्षणीनाम्) मनुष्योंके (सम्राजम्) ईश्वर (इन्द्रम्) इन्द्र (त्वा) तुम्हें (देवी जनित्री) देवमाता अदिति देवी (अजीजनत्) उत्पन्न करती हुई, (अजीजनत्) ऐसे पुत्रको उत्पन्न करती हुई, इसकारण वह (भद्रा) श्रेष्ठ (जनित्री) जननी है॥१०॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
निरहन्नृजिश्वना। अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
३ १ २ ३ १ २
मरुत्वन्तꣳ सख्याय हुवेमहि॥ ११॥

अथैकादशी। एषा गर्भस्राविण्युपनिषत्। हे ऋत्विजः! मन्दिने स्तुतिमते स्तोतव्यायेन्द्राय पितुमत् हविर्लक्षणेनान्नेनोपेतं वचः स्तुतिलक्षणं वचनं प्रार्चत प्रकर्षेणोच्चारयत। यः इंद्रः ऋजिश्वना एतत्संज्ञकेन राजर्षिणा सख्या सहितः सन् कृष्णगर्भाः कृष्णोनाम कश्चिदसुरः, तेन निषिक्तगर्भाः तदीया भार्य्याः निरहन् नितरामवधीत् कृष्णमसुरञ्च तत्पुत्राणामनुत्पत्त्यर्थं गर्भिणीस्तस्य भार्य्या अपि अवधीदित्यर्थः। अवस्यवः रक्षणेच्छवो यूयं वृषणं कामानां वर्षितारं वज्रदक्षिणं वज्रयुक्तेन दक्षिणहस्तेन उपेतं मरुत्वन्तम् इंद्रं सख्याय सख्युः कर्मणे हुवेमहि आह्वयामः। हुवेमहि हवामहे इति च पाठौ॥ ११॥

हे ऋत्विजो! (मन्दिने) स्तुतिके योग्य इंद्रके अर्थ (पितुमत्) हविरूप-अन्नसे युक्त (वचः) स्तुतिको (प्रार्चत) अधिकतासे उच्चारण करो (यः) जिस इंद्रने (ऋजिश्वना) ऋजिश्वनाको साथ लेकर (कृष्ण-

गर्भाः) कृष्णनामा असुरकी गर्भवती स्त्रियोंको (निरहन्) कृष्णासुर सहित निःशेषरूपसे मार दिया (अवस्यवः) रक्षाकी इच्छा वाले हम (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करने वाले (वज्रदक्षिणम्) दाहिने हाथ में वज्रधारी (मरुत्वन्तम्) इंद्रको (सख्याय) मित्रकी समान अनुकूलता करनेके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खंडः समाप्तः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २३ ३क
इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ॥ १ ॥

अष्टाविंशतिरिन्द्रेति मुख्याः सप्तदशोष्णिहः ।
आद्या दशान्त्या ककुभः पिबेत्यष्टादशी विराट् ॥
तु चे वेत्था ह्यपामीवामित्यादित्यपरिष्टुतिः ।
आगन्त गाव इत्येते मरुतामिन्द्रदेवताः ।
अन्या ऋचोऽभिधीयन्ते ऋषयस्तत्र तत्र हि ॥

तत्र चतुर्थे खण्डे—सैषा प्रथमा । नारद ऋषिः । हे इंद्र ! सोमेषु सुतेष्वभिषुतेषु सत्सु तान् पीत्वा क्रतुं कर्मकर्त्तारम् उक्थ्यं स्तोतारं च पुनीषे शोधयसि । यद्वा सोमेष्वभिषुतेषु उक्थ्यं क्रतुं यागं तैः सोमैः पुनीषे यजमानैः पूतं कारयसि किमर्थम् ? वृधस्य वर्द्धकस्य दक्षस्य बलस्य विदे लाभाय । स तादृश इंद्रः महान् हि महान् खलु अत एवं कर्त्तुं शक्नोति भावः ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (सोमेषु सुतेषु) सोमोंके निष्पन्न होने पर उनको पीकर (वृधस्य) वर्धक (दक्षस्य) बलके (विदे) लाभार्थ (क्रतुम्) कर्मकर्त्ताको (उक्थ्यम्) स्तोताको भी (पुनीषे) पवित्र करते हो (सः) वह तुम इन्द्र (महान् हि) अवश्य ही महान् हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विश्वमनावैयश्वादिकृषयः (?) उष्णिक्छन्दः । पुरुहूतं बहुभिराहूतं पुरुष्टुतं बहुभिस्स्तुतं तमु तमेव इन्द्रं हे स्तोतारः ! अभिप्रगायत अभिमुखं प्रकर्षेण स्तुध्वम् । एतदेव स्पष्टयति, तविषं महान्तम् इन्द्रं गीर्भिः वाग्भिः आविवासत परिचरत ॥ २ ॥

हे स्तोताओ ! (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारे हुए (पुरुष्टुतम्) बहुतोंके स्तुति किये हुए (तमु) उस इन्द्रकी ही (प्रगायत) अभिमुख होकर वारंवार स्तुति करो (तविषम्) महान् इन्द्रकी (गीर्भिः) मंत्रों से (आविवासत) आराधना करो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अद्रिवः ! वज्रवन्निन्द्र ! ते त्वदीयं तं मदं सोमपानजनितं हर्षं गृणीमसि गृणीमः प्रशंसामः गॄ शब्दे क्रयादिः, प्वादीनां ह्रस्वः (७, ४, ८०) । इदन्तोमसि (७, १, ४६) इति इकारागमः ! कीदृशम् ? वृषणं वर्षितारं कामानाम् । पृत्सु वैरिसम्पर्कजनितेषु संग्रामेषु । अत एव बह्वृचाः पृत्स्विति पठन्ति पृत्सु समत्स्विति संग्रामनामसु (नि० २, १७, २१, २२) पठितम् । सासहिं शत्रूणामभिभवितारं लोककृत्नुं लोकस्य स्थानस्य कर्त्तारं हरिश्रियं हरिभ्यामश्वाभ्यां श्रयणीयं सेव्यम् । उशब्दः सर्वेषां समुच्चये पादपूरणे वा ॥ ३ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र (ते) तुम्हारे (तम्) उस (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करने वाले (पृत्सु) वैरिसम्बंधी संग्रामोंमें (सासहिम्) शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले (लोककृत्नुम्) लोकोंके कर्त्ता (उ) और (हरिश्रियम्) हरिनामक अश्वोंके सेवनीय (मदम्) सोमपानजनित हर्षको (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पर्वत ऋषिः । हे इन्द्र ! विष्णवि विष्णौ सोमपानार्थमागते सति अन्यदीये यागे सोमं यद् यदि तेन विष्णुना सार्द्धं पिबसि । यद्वा यदि वा आप्त्ये अपाम्पुत्रत्रित एतत्संज्ञके राजर्षौ यजमाने सोमं पिबसि घेति पूरणं यद्वा यदि च मरुत्सु च सोमपानायागतेषु अन्यदीये यज्ञे मन्दसे माद्यसि तथाप्यस्मदीयैरव इन्दुभिः सोमैः सम्यक् माद्य ॥४॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (विष्णवि) विष्णुके सोमपानके निमित्त आनेपर

दूसरेके यागमें (यत्) यद्यपि (सोमम्) सोमको पीते हो (यद्वा) और यद्यपि (आप्त्ये त्रिते) अत्रिके पुत्र त्रितके यज्ञमें सोम पीते हो (यद्वा) और यद्यपि (मरुत्सु) मरुतोंके सोमपानके निमित्त आने पर अन्य के यज्ञमें (मन्दसे) सोम पीकर प्रसन्न हाते हो तथापि हमारे ही (समिन्दुभिः) श्रेष्ठ सोमोंसे प्रसन्न हूजिये ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाध्वर्य्यो अन्धसः ।

३ २उ ३ १ २र ३ १ २

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । एवदादितिस्टणां विश्वमना वैयश्व ऋषिः। हे अध्वर्यो। अध्वरस्य नेतः ऋत्विक् मधोः मदकरस्य अंधसः सोमलक्षणस्यान्नस्य मदितरम् अत्यर्थं मादयितृतमं सोमरसमेव आसिञ्च इंद्रार्थमभिक्षर इदु इत्यवधारणे वीरः समर्थः सदावृधः सर्वदा हविर्भिर्वर्द्धनीयः । यद्वा । सर्वदा स्वबलस्य वर्द्धकोऽयमेवेन्द्रः स्तवतेहि स्तोत्रशस्त्रादिभिः स्तूयते खलु स्तुतावेन्द्राय सोमो दातव्यः तस्मादासिञ्चेति समन्वयः ॥ ५ ॥

(अध्वर्यो) हे यज्ञके नेता ऋत्विक् (मधोः) मदकारी (अंधसः) सोमके (मदितरम् इत्) अत्यंत आनन्द देने वाले सोमरसको ही (आसिञ्च) इंद्रके निमित्त टपकाओ (वीरः) समर्थ (सदावृधः) सर्वदा हवियोंसे बढ़ाने योग्य यह इन्द्र(एव) ही (स्तवते हि) स्तोत्रादिसे स्तुत किया जाता है ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २र

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

१ २र ३ २

प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे ऋत्विजः । इन्दुः स्पन्दशीलं सोमम् इन्द्राय इन्द्रार्थम् आसिञ्चत आभिमुख्येन प्रत्यक्षारयत आश्रयणद्रव्येण सेचनं कुरुत तमभिषुणुतेत्यर्थः ततः सोम्यं सोममयं मधु मदकरं सोमरसं पिबाति पिबतु । पीत्वा च स इंद्रः महित्वना स्वमहित्वेनैव राधांसि अन्नानि स्तोतृभ्यः प्रचोदयते प्रकर्षेण चोदयतु ॥ ६ ॥

हे ऋत्विजो (इन्दु) टपकने वाला सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (आसिञ्चत) अभिमुख होकर सींचो, तदनन्तर (सोम्यम्) सोममय (मधु) मदकारी रसको (पिबाति) इन्द्र पिये और पीकर वह

इन्द्र (महित्वना) अपनी महिमासे (राधांसि) अन्न (प्रचोदयते) स्तुति करनेवालोंको अधिकतासे देय ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।

३ १ २र ३ २उ ३ २

कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७॥

अथ सप्तमी । हे सखायः ! समानख्याना मित्रभूता ऋत्विजः ! नु क्षिप्रम् एतो आगच्छतैव । किमर्थं तदाह स्तोम्यं स्तोमार्हं नरं सर्वस्य नेतारं तं इंद्रं स्तवाम स्तोत्रं करवाम । य इंद्रः एक इत् एकाकी असहाय एव सन् विश्वाः सर्वाः कृष्टीः शत्रुसेनाः अभ्यस्ति अभिभवति तं स्तवामेति शेषः ॥ ७ ॥

(सखायः) हे मित्रसमान ऋत्विजो ! (नु) शीघ्र ही (एत) आओ (स्तोम्यम्) स्तोमके योग्य (नरम्) सबके नेता (तम्) उस इन्द्रकी (स्तवाम) स्तुति करें (यः) जो इन्द्र (एक एव) अकेला ही (विश्वाः) सकल (कृष्टीः) शत्रुओंकी सेनाओंका (अभ्यस्ति) तिरस्कार करता है ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । नृमेध ऋषिः हे उद्गातारः ! विप्राय मेधाविने बृहते महते ब्रह्मकृते ब्रह्मणः अन्नस्य कर्त्रे विपश्चिते विदुषे पनस्यवे स्तुतिमिच्छते इन्द्राय बृहत् बृहन्नामकं साम गायत पठत ॥ ८ ॥

हे उद्गाताओ ! (विप्राय) मेधावी (बृहते) महान् (ब्रह्मकृते) अन्नके कर्ता (विपश्चिते) विद्वान् (पनस्यवे) स्तुति चाहनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (बृहत्) बृहत्सामको (गायत) गाओ ॥ ८ ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

अथ नवमी । गोतम ऋषिः । यः इंद्रः एक इत् एक एव दाशुषे हविर्दत्तवते मर्त्ताय मनुष्याय यजमानाय वसु धनं विदयते विशेषेण

ददाति। अङ्गेति क्षिप्रनाम अप्रतिष्कुतः परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूलशब्दरहित इत्यर्थः। एवम्भूतः स इन्द्रः क्षिप्रम् ईशानः सर्वस्य जगतः स्वामी भवति॥ ९॥

(यः) जो इन्द्र (एक इत्) अकेला ही (दाशुषे) हवि समर्पण करनेवाले (मर्त्ताय) मनुष्यके अर्थ (वसु) धन (विदयते) विशेष रूपसे देता है (अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूलशब्दरहित वह (इन्द्रः) इन्द्र (अङ्ग) शीघ्र (ईशानः) सब जगत्का स्वामी होता है॥ ९॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे॥ १०॥

अथ दशमी। विश्वमना ऋषिः। सखायः मित्रभूता हे ऋत्विजः! वज्रिणे वज्रहस्तायेन्द्राय ब्रह्म स्तोत्रम् आशिषामहे वयमाशास्महे च यद्वा। ब्रह्म अस्माभिर्दीयमानं हवीरूपमन्नम् आशास्मः। शासु अनुशिष्टौ (अदा० प०) व्यत्ययेनात्मनेपदम् (३, १, ८५)। अतएव आशिषामहि इति बह्वृचा आमनन्ति तत्र वः सर्वेषामेव युष्माकमर्थाय नृतमाय सर्वेषां नेतृतमाय। यद्वा संग्रामेषु आयुधानां नेतृतमाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणशीलाय तस्मै इन्द्राय अहमेव सुस्तुषे सुष्ठु स्तौमि॥ १०॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विजो! (वज्रिणे) वज्रधारी इंद्रके अर्थ (ब्रह्म) स्तोत्रको (आशिषामहे) प्रार्थना करते हैं (वः) तुम सबोंके ही निमित्त (नृतमाय) सर्वोपरि नेता (धृष्णवे) शत्रुओंको भय देनेवाले इन्द्रके अर्थ मैं ही (सुस्तुषे) स्तुति करता हूँ॥ १०॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये।
१ २र ३ १ २र
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते॥ १॥

अथ पञ्चमे खण्डे—सैषा प्रथमा। प्रगाथ ऋषिः। हे इन्द्र! ते तव तच्छवो बलम् उपमाम् अन्तिकं देवतातये यजमानाय यज्ञार्थं वा गृणे स्तुवे। यद् यस्मात् हे शचीपते। वृत्रम् ओजसा बलेन हंसि तस्मात् ते शवो गृण इति सम्बन्धः॥ १॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (ते) तुम्हारे (तत् शवः) प्रसिद्ध बलकी (उपमाम्) समीपमें (देवतातये) यजमान वा यज्ञके निमित्त (गृणे)

स्तुति करता हूँ (यत्) क्योंकि (शचीपते) हे इंद्र! (ओजसा) बलसे (वृत्रम्) वृत्रको (हंसि) नष्ट करते हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २र३ २ ३ १ २ ३ १ २

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।

३ १ २र ३ १ २र

अयꣳ स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। भरद्वाज ऋषिः। हे इंद्र! त्वं यस्य सोमस्य मदे पानेन जनिते हर्षे सति शम्बरम् असुरं दिवोदासाय राज्ञे रन्धयन् रध हिंसासंराद्ध्योः (दि० प०) हन्ता भवसि त्यदिति क्रियाविशेषणं तत् प्रसिद्धं यथा भवति तथा हे इन्द्र सः अयं सोमः ते त्वदर्थ सुतः अभिषुतः। अतएव त्वं पिब ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र! तुम (यस्य) जिस सोमके (मदे) पीनेसे हर्ष उत्पन्न होनेपर (त्यत्) उस (शम्बरम्) शम्बरासुरको (दिवोदासाय) दिवोदासके अर्थ (रन्धयन्) मारतेहो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) सोम (ते) तुम्हारे निमित्त (सुतः) सम्पादन किया है इसकारण तुम (पिब) पियो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजितगोह्य ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। नृमेध ऋषिः। हे प्रिय! सर्वेषां प्रियतम! हे सत्राजित्! महतां शत्रूणां जेतः! हे अगोह्य! केनापि तिरस्कर्त्तुमशक्य इन्द्र! गिरिर्न पर्वत इव विश्वतः सर्वतः पृथुः पृथुतमः दिवः स्वर्गस्य पतिः ईश्वरश्च त्वं नोऽस्मान् आगधि आगच्छ ॥ ३ ॥

(प्रिय) सबके प्रिय (सत्राजित्) शत्रुओंको जीतनेवाले (अगोह्य) जिनका कोई भी तिरस्कार न करसके ऐसे (इन्द्र) हे इंद्र! (गिरिः, न) पर्वतकी समान (विश्वतः) सब ओरसे (पृथुः) बड़े (दिवः) स्वर्गके (पतिः) ईश्वर भी तुम (नः) हमारे समीप (आगहि) आइये ॥३॥

१ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३ १ २

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

२ ३ २ ३ २ २ ३ १ २

येना हꣳसि न्या३त्रिणं तमीमहे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पर्वत ऋषिः । हे इंद्र ! यः त्वं सोमपातमः अतिशयेन सोमस्य पाता हे शविष्ठ ! बलवत्तम ! शव इति । बलनाम (नैः २, ९, ३) तस्माद्विन्नन्तादातिशयनिक इष्ठन् (५, ३, ५५) विन्मतोर्लुक् टिलोपः (६, ४, १५५) हे ईदृशेन्द्र ! तस्य तव सोमपानजनितो यो मदः चेतति सम्यग् जानाति ।वृत्रवधादीनि कार्याणि कर्त्तुम् । य इत्यस्य चेततीत्यनेनापि सम्बन्धाद् यद्वृत्तान्नित्यम्(८, १, ६६)इति न निहन्यते अथवैतदेकमेव वाक्यम् हे बलवत्तमेन्द्र ! सोमपातमः सोमस्य पातृतमो यस्त्वं मदः सोमैर्मादयितव्यस्तर्पयितव्यः । सन् चेतति । पुरुषव्यत्ययः (३, १, ८५) चेतसि सम्यग् जानासि । मदोऽनुपसर्गे (३,३,६६) इति मदेः कर्मण्यप् प्रत्ययः । येन सोमपानजनितेन मदेन अत्रिणम् अत्तारं राक्षसादिकं निहंसि निहिनस्सि निकृष्टां हिंसां प्रापयसि तं मदं तादृङ्मदोपेतं त्वां वा ईमहे याञ्चाकर्मायं (नि० ३, १९, १) याचामहे यद्वा ई गतौ दैवादिकः (प०) । छान्दसो विकरणस्य लुक् (२,४,७३) ईयामहे उपगच्छामः स्तुतिभिः सम्भजामहे इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (यः) जो तुम (सोमपातमः) अधिकतासे सोम पीनेवाले हो (शविष्ठ) हे परमबली ! उन सोम पीनेवाले तुम्हारा जो (मदः) मद (चेतति) वृत्रवध आदि कार्योंके करनेको जानता है (येन) जिस सोमपानके मदसे (अत्रिणम्) राक्षसादिको (निहंसि) दुर्गति पूर्वक मारते हो (तम्) तुम्हारे उस मदकी (ईमहे) प्रार्थना करते हैं॥४॥

३ १ २र ३ २उ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तुचे तुनाय नो तत्सु द्राघीय आयुर्जीवसे ।

१ २ ३ १ २

आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । इरिमिठि ऋषिः । हे सुमहसः ! शोभनतेजस्काः हे आदित्यासः ! अदितेः पुत्राः ! नोऽस्माकं तुचे पुत्राय तुनाय तनातेर्लुक् । तनोति कुलमिति तुनः पौत्रः । उकारोपजनश्छान्दसः । अत एव बह्वृचाः तनाय इति पठन्ति । तस्मै तुनाय पौत्राय च जीवसे जीवनाय द्राघीयो दीर्घतमं तत् प्रसिद्धम् आयुः जीवितं सु सुष्ठु कृणोतन कुरुत

(सुमहसः आदित्यासः) हे श्रेष्ठ तेजवाले अदितिके पुत्र देवताओं ! (नः) हमारे (तुचे) पुत्रके अर्थ (तुनाय) पौत्रके अर्थ (जीवसे) जीवनके अर्थ (द्राघीयः) बड़ी (तत्) प्रसिद्ध (आयुः) आयु (सुकृणोतन) शोभन प्रकारसे दो ॥ ५ ॥

२ ३ १ २र ३ १२ ३१२
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
१२ ३ १ २३१२
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । विश्वमना ऋषिः । इदानीमृषिरिन्द्रं सम्बोध्याह । हे वज्रहस्त वज्रयुक्तहस्तेन्द्र ! निर्ऋतीनाम् उपद्रवकारिणां रक्षसां परिवृजं हिरवधारणे त्वमेव वेत्थ जानीषे । तत्र दृष्टान्तः अहरह-रित्यादिः शुन्ध्युः अस्मिन्नुदिते सति ब्राह्मणा आत्मीयं कर्म कृत्वा शुद्धा भवन्तीति शोधनहेतुत्वाच्छुन्ध्युरादित्यः । आदित्यः परिपदामिव परितः पद्यमानानां यजमानानां यद्वा परिपदां समानाधिकरणः परितः पततां पक्षिणां वर्जनं स्वस्थानत्यागम् अहरहः प्रतिदिनं यथा वेत्ति । उदिते सूर्ये पक्षिणः स्वस्थानं परित्यज्य सर्वतो गच्छन्ति खलु एवं त्वयीन्द्रे स्वबलेन प्रकाशमाने सति शत्रवः स्व-पुराणि त्यक्त्वा पलायन्त इत्यर्थः ॥

(वज्रहस्त) हे वज्रधारी इंद्र (निर्ऋतीनाम्) विघ्नकर्त्ता राक्षसों के (परिवृजम्) दूर करनेको (वेत्था हि) तुम ही जानते हो, इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि-(अहरहः) प्रति दिन (शुन्ध्युः) सूर्योदय होने पर ब्राह्मण अपने कर्मको करके शुद्ध होते हैं ऐसा शुद्धिका हेतु आदि-त्य (परिपदां इव) चारों ओर उड़नेवाले पक्षियोंका जैसे अर्थात् जैसे प्रतिदिन सूर्यका उदय होने पर पक्षी अपने स्थानको त्याग कर चारों ओरको चले जाते हैं तैसे ही हे इंद्र ! तुम्हारे बलका प्रकाश पाने पर शत्रु अपने नगरोंको त्याग कर भाग जाते हैं ॥ ६ ॥

१ २र३२३ २३१२ ३ २
अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
१ २ ३१२ ३ १ ३
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । इरिमिठि ऋषिः । छ० उष्णिक् । हे आदित्यासः ! आदित्याः ! अमीवाम् रोगम् अपसेधत अस्मत्तोऽपगमयत । स्रिधं बाधकं शत्रुं च अपसेधत । दुर्मतिम् अस्माकं दुःखस्य मंतारञ्च अपसेधत । अपिच हे आदित्याः ! नोऽस्मान् अंहसः पापात् युयोतन पृथक्कुरुत ॥ ७ ॥

(आदित्यासः) हे आदित्यो ! (अमीवाम्) रोगको (अपसेधत)

हमारे समीपसे हटाओ (स्रधम्) वाधा देनेवाले शत्रुको (अप) हमसे दूर करो (दुर्मतिम्) हमैं दुःख देना विचारने वालेको (अप) हमसे दूर करो (नः) हमैं (अंहसः) पापसे (युयोतन) अलग करो ॥७॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः
३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
सोतुर्बाहुभ्याꣳ सुयतो नार्वा ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। वसिष्ठ ऋषिः । छ० विराट् । हे इंद्र ! सोमं पिब । स सोमः त्वां मन्दतु मादयतु हे हर्यश्व ! ते त्वदर्थं सोतुः अभिषवकर्त्तुः बाहुभ्याम् अर्वा न रश्मिभ्यामश्व इव सुयतः सुष्ठु परिगृहीतः अद्रिः ग्रावाऽयं सोमं सुषाव ॥ ८ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (सोमम्) सोमको (पिब) पियो वह सोम (त्वा) तुम्हे (मन्दतु) आनंद देय (हर्यश्व) हे इंद्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोतुः) सोम सम्पादन करनेवालेकी (बाहुभ्याम) रस्सियोंसे (अर्वा न) घोड़ा जैसे (सुयतः) सुन्दरताके साथ ग्रहण किया हुआ (अयम्) यह (अद्रिः) पाषाण (सुषाव) सोमको संपादित करता हुआ ॥ ८ ॥

चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
३ १ २ ३ १ २
युधे दापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—सैषा प्रथमा। सौभरिर्ऋषिः। छ० ककुप्। हे इंद्र ! त्वं ! जनुषा जन्मनैव अभ्रातृव्यः, व्यन् सपत्ने (४, १, १४५) इति व्यन्-प्रत्ययः। सपत्नरहितः अना अनेतृकः ऋतछन्दसि (५, ४, १५८) इति कपः प्रतिषेधः। अनियंतृक इत्यर्थः अन पिः बन्धुवर्जितश्च सनादसि चिरादेव भ्रातृव्यादिवर्जितोऽसि। यच्च त्वम् आपित्वं बांधवम् इच्छसे इच्छसि तत्र युधेत् युद्धेनैव युद्धं कुर्वन्नेव स्तोतॄणामर्थाय सखा भवसीति ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (त्वम्) तुम (जनुषा) जन्मसे ही (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नियंतासे रहित (सनात्) सनातनसे (अनापि) बान्धव रहित हो और जब तुम (आपित्वम्, इच्छसे) किसी बान्धवै

की इच्छा करते हो, तब (युधत्) युद्ध करते हुए स्तुति करनेवालोंके सखा हो जाते हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
यो न इदमिदं पुरा प्रवस्य आनिनाय तमु व स्तुषे।
१ २ ३ १ १ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सौभरिर्ऋषिः । सखायः समानख्याना हे ऋत्विग्यजमानाः ! यः इन्द्रः पुरा पूर्वम् इदम् दर्शनीयतया विद्यमानं वस्यः वसीयः वसोरीयसुनीकारलोपश्छान्दसः प्रशस्तं वसुनोऽस्मान् प्राणिनाय प्रकर्षेणानीतवान्। तमु तमेव धनानामानेतारम् इंद्रं वो युष्माकं धनलाभार्थम् ऊतये रक्षणाय च स्तुषे सौभरिरहं स्तौमि ॥ २ ॥

(सखायः) हे मित्ररूप ऋत्विक् यजमानो ! (यः) जो इंद्र (पुरा) पहिले (इदम्) इस (प्रवस्यः) श्रेष्ठ धनको (नः) हमारे अर्थ (प्राणिनाय) अधिकतासे देता हुआ (तमु) उस ही धनके लानेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (वः) तुम्हें धन प्राप्त होनेके अर्थ (ऊतये) रक्षाके अर्थ भी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात
३ १ २
समन्यवः । दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सौभरिर्ऋषिः । हे प्रस्थावानः प्रस्थातारः प्रगन्तारो मरुतः ! आगन्त अस्मानागच्छन्त । मा रिषण्यत अनागमनेन नोऽस्मान्मा हिंसिषत । हे समन्यवः समानतेजस्काः ! समानक्रोधाः ! वा दृढा-चित् दृढान्यपि पर्वतादीनि हे यमयिष्णवः नियमयितृत्वशीलाः ! नियमयितारः ! मापस्थात अस्मत्तोऽन्यत्र मा तिष्ठत अस्मास्वेवावतिष्ठध्वमित्यर्थः ॥ ३ ॥

(प्रस्थावानः) हे प्रस्थान करने वाले मरुतो ! (आगन्त) हमारे समीप आइये (मा रिषण्यत) न आनेसे हमें हानि न पहुंचाइये (समन्यवः) समान तेजवाले (दृढाचित्) दृढ पर्वतादिकोंको भी (यमयिष्णवः) नियममें रखने वाले हे मरुतो ! (मापस्थात) हमें त्यागकर अन्यत्र न रहो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३१ २ ३ १२३१२
आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
१ २
सोमꣳ सोमपते पिब ॥४॥

अथ चतुर्थी । सौभरिर्ऋषिः । अश्वपते अश्वानां स्वामिन् ! गोपते गवां पालयितः उर्वरापते सर्वशस्याढ्या भूमिरुर्वरा तस्याः पते हे इंद्र ! इन्दवे दीप्ताय तुभ्यम् अयं सोमोऽभिषुत इति शेषः । तस्माद् आयाहि सोमं प्रत्यागच्छ, आगत्य सोमपते ! हे इन्द्र ! सोमं पिब ॥ ४ ॥

(अश्वपते) हे अश्वोंके स्वामी ! (गोपते) हे गौओंके स्वामी (उर्वरापते) हे सकल अन्नोंसे भरी भूमिके स्वामी इन्द्र ! (इंदवे) प्रकाशवान आपके अर्थ (अयम्) यह सोम प्रस्तुत किया है (आयाहि) आइये (सोमपते) हे सोमके स्वामी ! (सोमम्) सोमको (पिब) पीजिये ॥४॥

१ २ ३ २ ३१ २र ३ १ २
त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ
३ १ २र ३ १ २
ब्रुवीमहि । सꣳस्थे जनस्य गोमतः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । सौभरिर्ऋषिः । वृषभ ! वर्षितः ! हे इन्द्र ! गोमतः गवादियुक्तस्य जनस्य संस्थे स्थाने युद्धे श्वसन्तम् अस्मान् प्रति क्रोधातिशयेन श्वासकारिणं शत्रुं युजा सहायेन त्वया ह स्वित् त्वयव खलु वयं प्रति ब्रुवीमहि प्रतिवचनं कुर्मः निराकरिष्याम इत्यर्थः ॥ ५ ॥

(वृषभ) हे मनोरथ पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (गोमतः) गौ आदि पशुधनवाले (जनस्य) भक्तके (संस्थे) स्थान वा युद्धमें (श्वसंतम्) हमारे ऊपर अधिक क्रोध होनेके कारण श्वास लेतेहुए शत्रुको (युजा, त्वया ह, स्वित्) तुम्हारी सहायतासे ही (प्रतिब्रुवीमहि) हम उत्तर दे सकेंगे अर्थात् शत्रुको हटासकेंगे ॥ ५ ॥

१ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
रिहते ककुभो मिथः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी सौभरिर्ऋषिः । समन्यवः समानतेजस्काः समानक्रोधा वा हे मरुतः ! गावश्चित् गावश्च युष्मन्मातृभूताः सजात्येन समान-

जातित्वेन एकस्माद् व्रजत इति एवं सबन्धवः समानबन्धुका सत्यः ककुभो दिशः प्राच्यादिदिग्भागान् प्राप्य मिथः परस्परं रिहते लिहन्ति धेति पूरकः ॥ ६ ॥

(समन्यवः) हे समान तेजवाले मरुतो ! (गावश्च) तुम्हारी माता रूप गौएँ भी (सजात्येन) समान जातिकी होनेसे (सबन्धवः) समान बान्धवों वाली होती हुई (ककुभः) पूर्वादि दिशाओंको प्राप्त होकर (मिथः) परस्पर (लिहते) चाटती हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णꣳ शतक्रतो
२ ३१ २ ३ १ २
विचर्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । द्वयोर्नृमेधऋषिः । शतक्रतो ! बहुकर्मन् ! विचर्षणे विविधद्रष्टरिन्द्र ! त्वं नोऽस्मभ्यम् ओजो बलं नृम्णं धनञ्च आ भर आहर । वीरं वीर्योपेतं पृतनासहं सेनानामभिभवितारं, त्वाम् आह्वयामहे इति शेषः ॥ ७ ॥

(शतक्रतो) विविधपराक्रमी (विचर्षणे) हे अनेकों दृष्टिवाले इंद्र (त्वम्) तुम (नः) हमें (ओजः) बल (नृम्णम्) धन (आभर) दो (वीरम्) वीरतायुक्त (पृतनासहम्) सेनाओंका तिरस्कार करने वाले तुम्हें (आ) आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । छ० ककुप् । हे गिर्वणः ! गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! अधा हि सम्प्रति त्वा त्वां कामो कामये निमित्ते । यद्वा । काम इति सुपां सुः (७, १, ३९) कामान् ईमहे याचामहे । किञ्च । याचमानाः सन्तः उपससृग्महे उप सृजामः स्तुतिभिस्त्वां संयोजयाम इत्यर्थः तत्र दृष्टान्तमाह उदेव यथोदकेन ग्मन्तो गच्छन्तः पुरुषाः उदभिः अञ्जलिना उत्क्षिप्यादकैः समीपस्थान् क्रीडार्थं संसृजन्ति तद्वदित्यर्थः । ससृज्महे इति बह्वृचाः पठन्ति ॥ ८ ॥

(गिर्वणः) हे इंद्र ! (अधा हि) इस समय (त्वा) तुम्हारे समीप

(कामः) इच्छित पदार्थोंको (ईमहे) याचना करते हैं और (उपससृग्महे) आपको स्तुतियोंसे युक्त करते हैं, इस पर दृष्टांत कहते हैं, कि-(उदेव ग्मंतः) जैसे जल सहित जाते हुए पुरुष (उदभिः) अञ्जलि से जल उछाल कर समीपके पुरुषोंको क्रीडामें संयुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विव-
२ ३ १ २र
क्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । द्वयोः सौभरिः । हे इंद्र ! गोश्रीते श्रीञ् पाके । गोर्विकारो दधि पयश्च गोशब्देनोच्यते। तेन दध्यना पयसा च श्रीते मिश्रिते मदिरे मदकरे विवक्षणे स्वर्गप्रापणशीले त्वदीये मधौ सोमे सीदन्तो निवसन्तः । सदने दृष्टान्तः वयो यथा पक्षिणो यथा एकत्र संङ्घीभूय तिष्ठन्ति तद्वत् सीदन्तो वयं त्वाम् अभि आभिमुख्येन नोनुमः पुनः पुनः भृशं वा स्तुमः ॥ ९ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (गोश्रीते) गौके दूध घी से मिले हुए (मदिरे) हर्षदायक (विवक्षणे) स्वर्गमें पहुँचानेवाले (ते) तुम्हारे (मधौ) सोमके समीप (वयो यथा) इकट्ठे होकर बैठे हुए पक्षियोंकी समान हम (त्वा अभि नोनुमः) तुम्हारे अभिमुख होकर वारंवार प्रणाम करते हैं ॥९॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
१ २ ३ १ २
वज्रिं चित्रꣳ हवामहे ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे वज्रिन् वज्रयुक्त ! अपूर्व्य त्रिषु सवनेषु प्रादुर्भूत त्वादभिनव ! भरन्तः सोमरक्षणैरन्नैस्त्वां पोषयन्तो वयं चित्रं चायनीयं विविधरूपं वा, त्वामु त्वामेव अवस्यवः अवो रक्षणमात्मन इच्छंत सन्तः हवामहे त्वामाह्वयामः । तत्र दृष्टांतः स्थूरं न यथा भरन्तो व्रीहादिभिर्गृहं पूरयन्तो जनः स्थूरं स्थूलं गुणाधिकं कच्चित् कञ्चिन्मानवं यथा ह्वयन्ति तद्वत् ॥ १० ॥

(वज्रिन्) हे वज्रधारी (अपूर्व्य) तीनों सवनोंमें प्रकट होनेसे नवीन इन्द्र (भरन्तः) सोमरूप अन्नसे आपका पोषण करते हुए हम (चित्रम्) विविधरूपवाले (त्वामु) आपको ही (अवस्यवः) अपनी रक्षाके अर्थ चाहते हुए (हवामहे) आह्वान करते हैं (स्थूरं न) जैसे

कि-अन्न आदिसे अपने घरको भरने वाले अधिक गुणी (कञ्चित्) किसी मनुष्यको बुलाते हैं ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र १ २र

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्य्यः । या इन्द्रेण

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम् १

स्वादं.रष्टादशस्वृक्षु चरमा नतमित्यसौ ।
उपरिष्टाद्बृहत्याम्नाताः सप्तदशपङ्क्तयः ॥
चन्द्रमानतमित्येते वैश्वदेव्यौ प्रतीत्यसौ ।
आश्विनी तिस्र आग्नेय्य आते अग्न इधीमहि ॥
अ.ग्नीं नाग्नोन्ततमित्येता महेनो अद्य चौपसी ।
सोमी भद्रन्न इत्येषा शिष्टा ऐन्द्र्य उदीरिताः ॥
आतितो गोतमो नाम ऋषिः सम्परिकीर्त्तितः ।

अथ सप्तमे खण्डे-सैषा प्रथमा । स्वादोः स्वादुभूतस्य रसयुक्तस्य इत्था विषूवतः इत्थमनेन प्रकारेण सर्वेषु यज्ञेषु व्याप्तियुक्तस्य मधोः मधुररसस्य सोमस्य क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी एवंविधं सोमं गौर्यो गौरवर्णा गावः पिबन्ति या गावः वृष्णा कामाभिवर्षकेणेन्द्रेण सयावरीः सह गच्छन्त्यः सत्यः मदन्ति । हृष्टा भवन्ति ताः इंद्रपीतस्य सोम स्यावशेषं पिबंतीत्यर्थः शोभथा वचनव्यत्ययः (३, १, ८५) इन्द्रेण सह शोभन्ते । वस्वीः पयः प्रदानेन निवासकारिण्यः ता गावः स्वराज्यं स्वस्य स्वकीयस्येन्द्रस्य यद्राज्यं राजत्वन्तद् अनु लक्ष्य अवस्थिता इत्यर्थः ॥ १ ॥

(स्वादोः) रसयुक्त (इत्था) इस प्रकार (विषूवतः) सब यज्ञोंमें काम आने वाले (मधोः) मीठे सोमको (गौर्यः) श्वेतवर्णकी गौएँ (पिबन्ति) पीती हैं (याः) जो गौएँ (वृष्णा, सयावरीः) मनोरथों की वर्षा करने वाले इन्द्रके साथ गमन करती हुई (मदंति) प्रसन्न होती हैं (शोभथाः) शोभाको प्राप्त होती हैं (वस्वीः) दूध देती हुई निवास करनेवाली वह गौएँ (स्वराज्यम् अनु) अपने स्वामीके राज्य में स्थित रहती हैं ॥ १ ॥

३ २र ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २

इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्द्धनम् । शविष्ठ

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु
३ १ २
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे शविष्ठ। अतिशयेन बलवन्! वज्रिन्! वज्रवन्निंद्र! इत्था हि इत्थम् एव अनेन शास्त्रोक्तप्रकारेणैव सोमे त्वया गृहीते सति मदः मदेः स्तुतिकर्मणः स्तोता वर्द्धनं तव वृद्धिकरं ब्रह्म स्तोत्रं चकार। अनेन कृतवान् इदित्येतत् पादपूरणम्, अतस्त्वम् ओजसा बलेन पृथिव्या सकाशात् आगत्य अहिम् हन्तारं वृत्रं निःशशाः निःशेषेण शशाः मा वधस्वेति शासनं कृत्वा पृथिव्याः सकाशान्निरगमय इत्यर्थः। किं कुर्वन्? स्वराज्यं स्वस्य राज्यं राजत्वम् अनु लक्ष्य अर्चन् पूजयन् स्वस्वामित्वं प्रकटयन्नित्यर्थः ॥ २ ॥

(शविष्ठ वज्रिन्) हे वज्रधारी बलवान् इन्द्र ! (इत्था हि) इस प्रकार शास्त्रोक्त रीति से (सोमे) तुम्हारे सोमको ग्रहण कर लेने पर (मदः) स्तुति करने वाला (वर्धनम) तुम्हारी वृद्धि करने वाले (ब्रह्म) स्तोत्रको (चकार) करता हुआ, इस कारण तुम (स्वराज्यम अनु, अर्चन्) अपने राज्यमें अपना स्वामित्व प्रकट करते हुए (ओजसा) बलके द्वारा (पृथिव्याः) पृथ्वीसे (अहिम्) वृत्रासुर को (निःशशाः) पूर्ण रूपसे शासन करो अर्थात् उसको वध न करके भूमण्डलसे निकाल दो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु
१ २
प्र नोऽविषत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। वृत्रहा वृत्रस्यावरकस्य वृष्टिनिरोधकस्य मेघस्यासुरस्य वा हन्ता, यद्वा आवरकाणां शत्रूणां हन्ता इन्द्रः मदाय हर्षार्थं शवसे बलार्थञ्च नृभिः यज्ञस्य नेतृभिः ऋत्विग्भिः वावृधे स्तोत्रशस्त्ररूपाभिः स्तुतिभिः प्रवर्द्धितो बभूव। स्तुत्या हि देवता प्राप्तबला सती प्रवर्द्धते। तमित् तमेव इन्द्रं महत्सु प्रभूतेषु आजिषु संग्रामेषु ऊताम्

अस्माकं रक्षकम् हवामहे । आह्वयामहे तथा तम् इन्द्रम् अर्भे अल्पे संग्रामे हवामहे । अस्माभिराहुतः स चेन्द्रः वाजेषु संग्रामेषु नोऽस्मान् प्राविषत् प्रावतु प्रकर्षेण रक्षतु ॥ ३ ॥

(वृत्रहा, इंद्रः) वृत्रासुरका नाशक इंद्र (मदाय) हर्षके लिये (शवसे) बलके लिये (नृभिः) यज्ञकर्त्ताओंसे (वावृधे) बढाया गया, क्योंकि स्तुति करनसे देवतामें बल आता है (तमित्) उस ही (महत्सु आजिषु) बडे २ संग्रामोंमें (अर्भे) छोटे संग्रामोंमें (ऊतीम्) रक्षा करनेवाले इंद्रको (हवामहे) आह्वान करते हैं (सः) हमारा आह्वान किया हुआ वह इन्द्र (वाजेषु) संग्राममें (नः) हमारी (प्राविषत्) अधिकतासे रक्षा करें ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क२र

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्य्यम् ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३

यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधी-

२ ३ १ २ ३ १ २

रर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अद्रिरिति मेघनाम (नै० १, १०, १,) हे अद्रिवन्! वाहनरूपमेघयुक्त ! वज्रिन् ! वज्रवन्निन्द्र ! तुभ्यमित् तवैव षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । तवैव वीर्य्यं सामर्थ्यम् अनुत्तं शत्रुभिरतिरस्कृतम् । यद्ध येन वीर्य्येण खलु मायिनं मायाविनं मृगं मृगरूपमापन्नं त्यं तं वृत्रम् असुरं त्वमपि माययैव अवधीः हतवानसि । अतः कारणात् तव वीर्य्यं यत् तत् प्रसिद्धं भवति । अर्चन्ननु स्वराज्यमिति पादो व्याख्यातः ॥ ४ ॥

(अद्रिवन् वज्रिन् इन्द्र) हे मेघरूप वाहनवाले वज्रधारी इन्द्र ! (तुभ्यमित्) तुम्हारी ही (वीर्यम्) सामर्थ्य (अनुत्तम्) शत्रुओंसे तिरस्कृत नहीं हुई है (यद्ध) जिस सामर्थ्यके द्वारा निश्चय (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यमें अपनी प्रभुता दिखाते हुए तुमने (मायिनम्) मायावी (मृगम्) मृगरूपधारी (त्यम् वृत्रम्) उस वृत्रासुरको (तव मायया) अपनी मायासे ही (अवधीः) मारडाला है, इस कारण ही तुम्हारी वीरता प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३१ २र ३ २
इन्द्र नृम्णꣳ हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो-
३ १२ ३१ २
ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अथ पंचमी। हे इन्द्र! प्रेहि प्रकर्षेण गच्छ। अभीहि हन्तव्यान् शत्रून् आभिमुख्येन प्राप्नुहि। प्राप्य च धृष्णुहि तान् शत्रून् अभि भवेति तव वज्रो न नियंसते शत्रुभिः न नियम्यते अप्रतिहतगतिरित्यर्थः। तथा ते तव शवः त्वदीय वलं नृम्णं नृणां पुरुषाणां नामकम् अभिभावकम। हि यस्मादेवं तस्मात् वृत्रम् असुरं मेघं वा हनः जहि। तदनन्तरं तेन निरुद्धा अपः उदकानि जयाः जय, वृत्रं हत्वा तेनावृतमुदकं लभस्वेत्यर्थः। शिष्टं स्पष्टम्॥ ५॥

(इन्द्र) हे इन्द्र! (प्रेहि) प्रकर्षके साथ चढाई करो (अभीहि) अभिमुख जाकर मारने योग्य शत्रुओंको पकडलो (धृष्णुहि) उन शत्रुओंका तिरस्कार करने पर (ते) तुम्हारा (वज्रः) वज्र (न नियंसते) शत्रुओंसे नहीं रुकता है (ते) तुम्हारा (शवः) वल (नृम्णम्) मनुष्योंको नमानेवाला है (हि) ऐसा है इस कारणसे (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपने राज्यमें ही अपनी प्रभुता दिखाते हुए (वृत्रं हनः) असुर को मारो (अपः जयाः) फिर उसके रोके हुए जलोंको जीतकर लेलो ५

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
युक्ष्वा मदच्युता हरी कꣳ हनः कं वसौ
३ १ २ ३ १ २
दधोऽस्माꣳ इन्द्र वसौ दधः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। अत्रेदमाख्यानम्। रहूगणपुत्रो गोतमः कुरुसृञ्जयानां राज्ञां पुरोहित आसीत्। तेषां राज्ञामपरैः सह युद्धे सति स ऋषिरनेन सूक्तेन इन्द्रं स्तुत्वा स्वकीयानां जयं प्रार्थयामासेति। तस्य च तत् पुरोहितत्वं वाजसनेयिभिराम्नातम् गोतमो ह वै राहूगणः उभयेषां कुरुसृञ्जयानां पुरहित आसीत् इति। यद् यदा आजयः संग्रामाः उदीरते उद्गच्छन्ति उत्पद्यन्ते तदानीं धनं धृष्णवे यो धृष्णुः धर्षयिता शत्रूणां जेता भवति तस्मै धीयते निधीयते। जयतो धनं भवतीत्यर्थः। हे इन्द्र! त्वां तादृशेषु युद्धेषु प्रवृत्तेषु मदच्युता शत्रूणां मदस्य

गवस्य च्यावयितारौ हरी त्वदीयावश्वौ युंक्ष्व रथे त्वदीये योजय। योजयित्वा च कंचिद्राजानं तव परिचरणमकुर्वन्तं हनः हन्याः। कंचन त्वां परिचरन्तं वसौ धने दधः स्थापयसि अतो जयाजयौ त्वमेव कारयितासि,तस्माद्धे इन्द्र ! अस्मदीयान् राज्ञः वसौ धने दधः स्थापय

रहूगणका पुत्र गोतम कुरु सृञ्जय राजाओंका पुरोहित हुआ था, उन राजाओंका शत्रुओंके साथ युद्ध होने पर गोतम ऋषिने इस सूक्तसे इंद्रकी स्तुति करके अपने यजमानोंके विजयकी प्रार्थना की थी, यही बात इस मंत्रमें है, कि—

(यत्) जब (आजयः) संग्राम (उदीरते) आरम्भ होते हैं उस समय (धृष्णवे) जो शत्रुओंको जीतता है उसके अर्थ (धनम्) धन (धीयते) स्थापन किया जाता है अर्थात् जीतनेवाले को धन मिलता है (इन्द्र) हे इन्द्र ! ऐसे युद्धोंके चलने पर (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले (हरी) घोडोंको (युङ्क्ष्व) जोडो और (कम्) किसी अपनी आराधना न करनेवाले राजाको (हनः) मारो (कम्) किसी अपनी आराधना करनेवाले राजाको (वसौ) धनमें (दधः) स्थापन करो अर्थात् हार जीत तुम ही देते हो अतः हे इन्द्र ! हमारे राजाओंको (वसौ) धनमें (दधः) स्थापन करो ६

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत । अस्तोषत

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २

स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥७

अथ सप्तमी। हे इन्द्र ! त्वया दत्तान्यन्नानि अक्षन् यजमाना भुक्तवन्तः भुक्त्वा च अमीमदन्त हि तृप्ता आसन् खलु। प्रियाः स्वकीयाः तनूः अवाधूषत अकम्पयन् अतिशयितरसास्वादेन वक्तुमशक्नुवन्तः शरीराण्यकम्पयन्। तदनन्तरं स्वभानवः स्वायत्तदीप्तयः विप्राः मेधाविनः ऋत्विजः नविष्ठया अतिशयेन नूतनया मती मत्या स्तुत्या अस्तोषत अस्तुवन् अतः हे इन्द्र ! ते त्वदीयौ हरी एतत्संज्ञावश्वौ नु क्षिप्रं योज रथे योजय ॥ ७ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (अक्षन्) यजमानोंने तुम्हारे दिये हुए अन्नोंको खाया और खाकर (हि) निश्चय (अमीमदन्त) तृप्त हुए (प्रियाः, अवाधूषत) परमोत्तम रसका स्वाद लेकर उसको कहनेमें असमर्थ, होकर उन्होंने आनंदके कारण अपने शिर हिलाये, तदनंतर (स्वभा-

नवः) तेजसे दिपते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् ऋत्विजोंने (नविष्ठया मती) अति नवीन स्तुतिसे (अस्तोषत) स्तुति करी, इसकारण (ते, हरी) अपने हरि नामक घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) रथमें जोडो ७

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उपो षु शृणुही गिरो मघवान्मातथा इव ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास
२उ ३क २र ३ १ २
इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! गिरः अस्मदीयाः स्तुतीः उपो उपैव सुश्रृणुहि उपगम्य सम्यक् श्रृणु । अतथा इव पूर्वं यथाविधस्त्वं तद्विपरीता माभूः अस्मासु पूर्वं यथा अनुग्रहबुद्धियुक्तः तथाविध एव भवेत्यर्थः अपिच नोऽस्मान् सूनृतावतः प्रियसत्यात्मिकावाक् सूनृता तया स्तुतिरूपया वाचा युक्तान् कदा करः करोषि । त्वमपि अर्थयासइत् अर्थयसे एव न तदास्मे । अस्माभिः प्रयुक्ताः स्तुतीस्त्वमपि स्वीकरोषीत्यर्थः । अतो हे इन्द्र ! ते हरी त्वदीयावश्वौ नु क्षिप्रं योज रथे योजय । कदा यदेति । कर इदर्थं इति कर आदर्थं इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(मघवन् इन्द्र) हे धनवान् इन्द्र ! (गिरः) हमारी स्तुतियोंको (उपो) समीप आकर (सुश्रृणुहि) सम्यक् प्रकारसे सुनो (अतथा इव) और तुम पहिले जैसे थे उसके विपरीत मत बनो अर्थात् पहिले जैसा अनुग्रह करते थे तैसा ही करते रहिये और (नः) हमें (सूनृतावतः) स्तुति रूप प्यारी और सत्य वाणीसे युक्त (कदाकरः) कब करोगे, तुम (अर्थयासइत्) हमारीकी हुई स्तुतियोंको स्वीकार करते ही हो, इसकारण (ते हरी) अपने घोड़ोंको (नु) शीघ्र (योज) अपने रथमें जोड़ो ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ २ १ २र३ १ २ ३ २
चन्द्रमा अप्स्वा३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
१ २ ३ १ २
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो
३ १ २ ३ १ २
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

अथ नवमी । त्रित ऋषिः । अप्सु आन्तरिक्ष्यासु उदकमये मण्डले अन्तः मध्ये वर्त्तमानः सुपर्णः शोभनपतनः यद्वा सुपर्ण इति रश्मिनाम (नै०१, ५, १५) सुषुम्णाख्येन सूर्यरश्मिना युक्तः चन्द्रमाः दिवि द्युलोके आधावते आङ्मर्यादायाम् । एवेनैव प्रकारेण धावते शीघ्रं गच्छति । तादृशस्य चन्द्रमसः सम्बधिनः । हे हिरण्यनेमयः सुवर्णसदृशपर्यन्ताः । यद्वा । हितरमणीयप्रान्ताः विद्युतो विद्योतमानाः रश्मयः वो युष्माकं पदं पदस्थानीयम् अग्रं न विन्दन्ति मदीयानीन्द्रियाणि कूपेनावृतत्वात् न लभन्ते ! अत इदं नोचितं तस्मात् कूपात् मामुत्तारयतेत्यर्थः । अपि च हे रोदसी द्यावापृथिव्यौ ! मे मदीयं अस्य इदं स्तोत्रं वित्तं जानीतम् ९

(अप्सु) अन्तरिक्षमेंके जलमय मण्डलमें (अन्तः) भीतर वर्त्तमान (सुपर्णः) सुषुम्ना नामक सूर्यकी किरणसे युक्त (चंद्रमाः) चंद्रमा (दिवि) द्युलोकमें (आधावते) एक समान गतिसे शीघ्र गमन करता है, उस चंद्रमासे संबंध रखने वाली (हिरण्यनेमयः) हे सुवर्णकी समान नोकों वाली अथवा हित और रमणीय प्रांतवाली (विद्युतः) प्रकाशवान् किरणों ! (वः) तुम्हारे (पदम्) चरणरूप (अग्रम्) अग्रभागको (न विन्दन्ति) कूपसे ढकी होनेके कारण मेरी इंद्रियें नहीं पासकती हैं, इस कारण आप मुझे कूपमेंसे निकालिए (द्यावापृथिवी) हे द्युलोक और पृथ्वी लोकके अभिमानी देवताओं ! (मे) मेरे (अस्य) इस स्तोत्रको (वित्तम्) जानो ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम् । स्तोता
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वामश्विनावृषिं स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम
३ १ २
श्रुतꣳ हवम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । अवस्युऋषिः हे अश्विनौ ! एकः प्रतिशब्दोऽनुवादः वां युवयोः प्रियतमं रथं स्तोता ऋषिः स्तोमेभि स्तोमैः प्रतिभूषति अलंकरोति कीदृशं रथं ? वृषणं फलानां वर्षितारम् वसुवाहनं धनानां वाहकं ईदृशं रथमागमनाय स्तौतीत्यर्थः तस्मात् हे माध्वी ! मधुविद्यावेदितारौ श्रुतं शृणुतम् ॥ १० ॥

(अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारो ! (वाम्) तुम्हारे (प्रियतमम्) अति प्यारे (वृषणम्) फलोंकी वर्षा करने वाले (वसुवाहनम्) धन

ढोने वाले (रथम्) रथको (स्तोता) स्तुति करने वाला (ऋषिः) ऋषि (स्तोमेभिः) स्तोमोंसे (प्रतिप्रतिभूषति) शोभित करता है, इस कारण (माध्वी) हे मधुविद्याके जाननेवालो (श्रुतम्) सुनो ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ
३ २ ३ १ २
स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

अथ अष्टमे खण्डे—सैषा प्रथमा । वसुश्रुत ऋषिः हे अग्ने ! देव ! द्युमन्तम् दीप्तिमन्तम् अजरम् अजीर्णम् ते आ सर्वतः इधीमहि दीपयामः । यद्ध खलु ते त्वदीया स्या सा पनीयसी स्तुत्यर्हा समिद् दीप्तिः दीदयति दीप्यते द्यवि द्युलोके । किञ्च । स्तोतृभ्योऽस्मभ्यम् इषम् अन्नम् आभर आहर ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (अजरम्) जरा रहित (ते) तुझे (आ इधीमहि) सब ओरसे प्रज्वलित करते हैं (यद्ध) निश्चय (ते) तेरी (स्या) वह (पनीयसी) स्तुतिके योग्य (समित्) दीप्ति (द्यवि) द्युलोकमें (दीदयति) दमकती है (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करने वालोंको (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥१॥

१ २र ३ १ २
अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्ण-
२ ३ १ २
बर्हिषं विवक्षसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विमद ऋषिः । हे अग्ने ! तव स्वभूते विमदे एतदाख्ये ऋषौ मयि इयं स्तुतिः प्रवृत्तास्ति नेति सम्प्रत्यर्थं न, अतो वयमिदानीं स्ववृक्तिभिः स्वयंकृताभिः दोषवर्जिताभिः स्तुतिभिः होतारं देवानामाह्वातारं होमनिष्पादकं वा अग्निं त्वा त्वाम् आवृणीमहे

आभिमुख्येन सम्भजामहे। कीदृशं यज्ञेषु यागेषु स्तीर्णबर्हिषम् आसादितबर्हिष्यकं। शीरम् ओषध्यादिषु सर्वत्रानुशायिनम्। पावकशोचिषः शोधकदीप्तिम्। विवक्षसे महन्नामैतत्, हे अग्ने! त्वमपि महान् भवसि। यद्वा। विमदे यज्ञस्य सम्बन्धिनः सोमस्य पानजन्यविविध-मदार्थं त्वामावृणीमहे इति योज्यम्। शीरम्पावकशोचिषं विवोमदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं विवक्षसे इति छन्दोगाः। यज्ञार्थं स्तीर्णबर्हिषो विवोमदे शीरम्पावकं शोचिषं विवक्षसे इति बह्वृचाः॥ २॥

हे अग्ने (न) इस समय (स्ववृक्तिभिः) अपनी की हुई निर्दोष स्तुतियों से (होतारम्) देवताओंको बुलाने वाले वा होमको सुसिद्ध करने वाले (वः) तुम्हारे (यज्ञेषु) यज्ञोंमें (स्तीर्णबर्हिषम्) जिस के निमित्त कुशोंका आसादन किया गया है ऐसे (शीरम्) ओषधादि में सर्वत्र व्याप्त (पावकशोचिकम्) शुद्ध करने वाली है दीप्ति जिसकी ऐसे (त्वा अग्निम्) तुझ अग्निको (विमदे) सोमपानसे विशेष हर्ष प्राप्त होनेके निमित्त (आवृणीमहे) अभिमुख होकर आराधना करते हैं (विवक्षसे) हे अग्ने! तुम महान् हो॥ २॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये
२र ३ १ २
सुजाते अश्वसूनृते॥ ३॥

अथ तृतीया। सत्यश्रवा ऋषिः। अद्य अस्मिन्यागदिने हे उषः उषोदेवि! दिवित्मती दीप्तिमती त्वं नोऽस्मान् महे महते राये धनप्राप्तये बोधय प्रज्ञापय प्रकाशयेत्यर्थः। सति प्रकाशे क्रतुद्वारा द्रव्यस्योपार्जयितुं शक्यत्वात्। यथाचित् यथैव पूर्वं नोऽस्मानबोधय, अतीतेषु यथा बोधितवती तद्वदधापीत्यर्थः। हे सुजाते शोभनं जातं जन्माविर्भावो यस्यास्तादृशि! हे अश्वसूनृते प्रियसत्यात्मिका स्तुतिवाग्यस्याः सा हे तादृशि देवि वाय्ये वयपुत्रे सत्यश्रवसि मयि अनुगृहाणेत्यर्थः॥ ३॥

(अद्य) आज इस यागके दिन (उषः) हे उषादेवि! (दिवित्मती) दीप्ति वाली (नः) हमें (महे राये) बहुत से धनके अर्थ (बोधयः) प्रकाशित कर अर्थात् प्रकाश होने पर यज्ञ के द्वार धनकी प्राप्ति ही

सकती है (यथा चित्) जैसे (नः) हमें (अबोधयः) पहिले प्रकाशित किया था (सुजाते) हे श्रेष्ठ जन्मवाली ! (अश्वसूनृते) हे सत्य प्रिय स्तुतिवाली (वाय्ये) वयके पुत्र (सत्यश्रवसि) मुझ सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३

अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो

१ २र ३ १ २

न यवसे विवक्षसे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । विमद ऋषिः । हे सोम ! त्वं नोऽस्मदीयं मनः भद्रं कल्याणं प्राप शुभसङ्कल्पलक्षणं वातय गमय अस्माकं परः शुभसङ्कल्पं कुर्वित्यर्थः । तथा दक्षं वृद्धमपि सर्वव्यापिनमन्तरात्मानमपि भद्रं शुभकारित्वलक्षणं प्रापय अस्माकमन्तरात्मानं शुभकारिणं कुर्वित्यर्थः । उत अपिच क्रतुं प्रज्ञानं भद्रं शुभाध्यवसायलक्षणं प्रापय शुभाध्यवासविनं कुर्वित्यर्थः अथ अनन्तरं स्तोतारः ते तव सख्ये स्तुत्यस्तोतृत्वेज्ययष्टृत्वलक्षणे सखिकर्मणि रमतामिति शेषः । तत्र दृष्टांतः यवसे घासे रणाः प्रीतियुक्ता गावो न गाव इव ता यथा प्रीतिं कुर्वते तद्वत् । कस्मिन् सति ? अन्धसः सोमाख्यस्यान्नस्य सम्बधिनि वस्तुनि विमदे विविधसोमजन्यमदनिमित्ते सति । कस्मादेवम्? यस्माद् विवक्षसे महान्भवसि

हे सोम (विवक्षसे) तुम महान् हो इसकारण (अन्धसः) सोम सम्बन्धी वस्तुओंके (विमदे) विशेष हर्षदायक होने पर तुम (नः) हमारे (मनः) मनको (दक्षम्) अन्तरात्माको (उत) और (क्रतुम्) प्रज्ञानको (भद्रम्) कल्याण (वातय) पहुंचाओ अर्थात् ऐसी कृपा करो, कि-मेरा मन शुभसङ्कल्प किया करै, मेरा अन्तरात्मा शुभकारी हो और मेरा ज्ञान शुभ निश्चय करै (अथ) और स्तोता (ते) तुम्हारे (सख्ये) मित्रभावमें रमण करै (यवसे, रणा, गावः, न) जैसे कि घासमें गौएँ प्रेमके साथ रमण करती हैं ॥ ४ ॥

१ २ १ २ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

ऋत्वा महाँ अनुष्वधं भीमं आ वावृते शवः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे

१ २ ३ १ २ ३ २
हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । गोतम ऋषिः । ऋत्वा कर्मणा प्रज्ञया वा महान् सर्वाधिकः भीमः शत्रूणां भयङ्कर इंद्रः अनुष्वधं स्वधेत्यन्ननाम(नै २, ७, १७)। स्वधायां विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः सोमलक्षणस्यान्नस्य पाने सतीत्यर्थः। शवः आत्मीयं बलम् आवावृते आभिमुख्येन प्रावर्त्तयत्। तदनन्तरम् ऋष्वो दर्शनीयः शिप्री हनुमान्। नासिकावान्वा हरिवान् हरिभ्यामश्वाभ्यामुपेतः इन्द्रः उपाकयोः समीपवर्त्तिनोर्हस्तयोर्बाह्वोः आयसं अयोमयं वज्रं श्रिये सम्पदर्थं लिद्ध्ये निदधाति स्थापयति सोमपानेन हृष्टः प्रबलः इन्द्रः शत्रूणां हननाय हस्ते वज्रं गृह्णातीत्यर्थः ॥ ५ ॥

(ऋत्वा) प्रज्ञासे (महान्) बड़ा (भीमः) शत्रुओंको भय देनेवाला इंद्र (अनुष्वधम्) सोमरूप अन्नका पान होनेपर (शवः) अपने बल को (आवावृते) अभिमुख होकर दिखाता है, तदनन्तर (ऋष्वः) देखने योग्य (शिप्री) बड़ी नासिका वा ठोड़ीवाला (हरिवान्) हरिनामक अश्वोंसे युक्त इन्द्र (उपाकयोः) समीपवर्ती (हस्तयोः) हाथों में (आयसं वज्रम्) लोहेके वज्रको (श्रिये) सम्पदाके लिये (निदधे) धारण करता है ॥ ५ ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स घा तं वृषणꣳ रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
यः पात्रꣳ हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति
२ ३क २र ३ ३ २
योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । गोतम ऋषिः । स घा स खल्विन्द्रः वृषणं कामाभिवर्षकं गोविदं गवां लम्भयितारं रथम् अधितिष्ठाति ईदृशे रथे अधितिष्ठतु आरूढो भवतु । हे इन्द्र ! यो रथः हारियोजनम् एतत्संज्ञं धानामिश्रितं पूर्णं सोमेन पूर्णं पात्रं चिकेतति ज्ञापयति तं रथमधितिष्ठेति पूर्वत्रान्वयः अधितिष्ठाय ते त्वदीयौ हरि अश्वौ नु क्षिप्रं योज रथे योजय ६

(सघा) वह मित्रभूत इन्द्र (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (गोविदम्) गौओंकी प्राप्ति करानेवाले (रथं अधितिष्ठाति रथपर चढ़े, हे इन्द्र (यः) जो रथ (हारियोजनम्) धानाओंसे युक्त (पूर्णम्)

सोमसे भरे (पात्रम्) पात्रको (चिकेतति) स्थापित करता है (ते) अपने (हरी) घोडोंको (नु) शीघ्र (योज) रथमें जोडो ॥ ६ ॥

२ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३
अस्तमर्वन्त आशवोस्तं नित्यासो वाजिन
१ २ ३ २ ३ १ २
इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वसुश्रुत ऋषिः । तम् अग्निं मन्ये स्तौमि: यः अग्निः वसुः वासकः । यम् अस्तं सर्वेषां गृहवदाश्रयभूतं धेनवः गावो यन्ति गच्छन्ति प्रीणयितुम् । अस्तम् उक्तलक्षणम् अर्वन्तः अरणवन्तोऽश्वाः आशवः शीघ्रगामिनः यंति । तथा नित्यासः नित्यप्रवृत्ताः वाजिनः हविर्लक्षणान्नवन्तो यजमानाः यमस्तं यंति तम् मन्ये । इषम् अन्नं स्तोतृभ्य अस्मभ्यम् आभर आहर इति ॥ ७ ॥

(यः) जो (वसुः) उपासकोंका धन है (अस्तम) घरकी समान सबके आश्रय (यम्) जिस अग्निको (धेनवः) गौएँ (यंति) तृप्त करनेको जाती हैं (अस्तम्) जिस आश्रयरूप अग्निको (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः अश्व प्राप्त होते हैं (अस्तम्) जिस आश्रयरूपको (नित्यासः) नित्य उपासनामें लगेहुए (वाजिनः) हविलिये हुए यजमान प्राप्त होते हैं (तम् अग्निं मन्ये) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ (स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करने वालोंको (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥ ७ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
न तमꣳहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
३ १ २ १ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति
१ २
द्विषः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । अंहोमुग्वामदेव्य ऋषिः । हे देवासः ! देवाः ! आज्जसेरसुक् (७, १, ५०) तं मर्त्यं मनुष्यम्, अंहः पापं दुरितं तत्फलरूपं दुर्गमनञ्च नाष्ट न प्राप्नोति अश्नोतेर्लङि झलोझलीति सिचोलोपः अडभावश्छन्दसः । अर्य्यमा अरीन् नियच्छति इति एतत्संज्ञ देवः ।

नयति शत्रून् एते मित्रः प्रणीतेः भात। देवश्च नयति। वरुणः पापानां निवारको देवः यं नयति। एते त्रयो देवाः सजोषसः सङ्गता समानाः प्रीयमाणा वा भवंतः द्विषः द्वेष्टॄन् अतिक्रम्य यं स्तोतारं नयन्ति प्रत्येक-विवक्षया एकवचनम् तन्नाघ्नोत्यन्वयः॥ ८॥

(देवासः) हे देवताओं! (सजोषसः) एकसमान प्रसन्न हुए (अर्यमा) शत्रुओंको दण्ड देनेवाला अर्यमा (मित्रः) रक्षा करने वाला मित्र (वरुणः) पापोंका नाशक वरुण (अतिद्विषः) शत्रुओंके पार करके (यम्) जिसको (नयति) उन्नतिके पदपर पहुँचा देते हैं (तं मर्त्यम्) उस मनुष्यको (अंहः) पाप (न) नहीं (दुरितम्) उसका फलरूप दुर्गति (न) नहीं (अष्ट) व्यापते हैं॥ ८॥

चतुर्थाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

२३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ १ २र

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय १

परिधन्वप्रभृति ऋचस्त्रिंशद्भवन्ति हि।

एतासान्तु ऋषिच्छन्दोदेवतास्तु पृथक् पृथक्।

वक्ष्यंते सायणार्येण तत्र तत्र परिस्फुटम्॥

अथ नवमखण्डे-सैषा प्रथमा। आद्यानां षण्णाम् ऋणत्रसदस्यु सहिताबृषी पवमानो देवता। तत्रादिर्द्विपदा। हे सोम! स्वादुः स्वादु रसस्त्वं इंद्राय पूष्णे भगाय एतेभ्यो देवेभ्यः परिप्रधन्व परितः पात्रेषु प्रक्षर१

(सोम) हे सोम (स्वादुः) स्वादुरसवाला तू (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (मित्राय) मित्र देवताके अर्थ (पूष्णे) पूषाके अर्थ (भगाय) भग देवताके अर्थ (परिप्रधन्व) सब पात्रोंमें पूर्णरूपसे बरस॥ १॥

२ ३ १ ,२ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि

२ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सक्षणिः। द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे॥२॥

अथ द्वितीया। त्रिपदा अनुष्टुप्पिपीलिकमध्या। हे सोम! सुष्ठु वाजसातये अस्मभ्यमन्नदानायैव परिप्रधन्व परितः प्रगच्छ। यद्वा। वाजसातये अन्नलाभाय संग्रामं प्रगच्छ। किञ्च। सक्षणिः सहनशीलस्त्वं वृत्राणि शत्रून् परि गच्छ। तदेवोच्यते नः अस्माकम् ऋणया ऋणानां यापयिता विनाशयिता त्वं द्विषः शत्रून् तरध्यै तरीतुं हंतुम् ईरसे परिगच्छसे। ईरसे ईयसे इति पाठौ॥ २॥

हे सोम ! (सु) भलेप्रकार (वाजसातये) हमैं अन्न देनेके अर्थ (परिप्रधन्व) चारों ओरसे पात्रोंमें पूर्ण हो (सक्षणिः) सहन शील तुम (वृत्राणि) शत्रुओंपर (परि) चढ़ कर जाओ (नः) हमारे (ऋणया) ऋणोंका नाश करनेवाले तुम (द्विषः) शत्रुओंको (तरध्यै) पार होने के निमित्त वा मारनेको (ईरसे) चढ़कर जाते हो ॥२॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ १ १ २र

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम

अथ तृतीया । द्विपदा । हे सोम महान् देवेभ्यो दीयमानत्वेन महत्वयुक्तः । समुद्रः समुन्दनः यस्मात् समुद्रवंति रसास्तादृशः । पिता सर्वेषां पालयिता त्वं देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि धाम धामानि शरीराण्यभिलक्ष्य परि पवस्व परिक्षर ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम (महान्) गौरववाला (समुद्रः) रसरूपसे वहने वाला (पिता) सबका पालन करने वाला तू (देवानाम्) देवताओंके (विश्वा) सब (धाम) स्थानोंकी ओरको (पवस्व) पात्रों को पूर्ण कर ॥ ३ ॥

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ४

अथ चतुर्थी । हे सोम ! अश्वो न अश्वः इव नक्तः वसतीवरीभिरद्भिर्विनिर्णिक्तः । वाजी वेगवान् त्वं महे महते दक्षाय बलाय धनाय धनार्थञ्च पवस्व क्षर । महे क्रतवे इति पाठौ ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (अश्वो न) अश्वकी समान (नक्तः) जलों से शुद्ध कियाहुआ (वाजी) वेगवाला तू (महे) बड़े (दक्षाय) बलके अर्थ (धनाय) धनके निमित्त (पवस्व) पात्रोंको पूर्णकर ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५॥

अथ पञ्चमी । चारुः कल्याणरूपः कविः क्रांतप्रज्ञः इंदुः सोमः । अपाम् उदकानाम् उपस्थे उपस्थाने अंतरिक्षे पवित्रे वा मदाय मदार्थम् । भगाय भजनीयाय धनार्थञ्च पविष्ठ पवते ॥ ५ ॥

(चारुः) कल्याणरूप (कविः) बुद्धिपूर्वक (इन्दुः) सोम (अपां उपस्थे) जलोंके भीतर (भगाय) सेवनीय धनके अर्थ (मदाय) हर्षके निमित्त (पविष्ट) क्षरित होता है ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि महे समर्य्यराज्ये ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वाजाꣳ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । त्रिपदा अनुष्टुप् पिपीलिकमध्या । ऋषिर्देवते पूर्ववत् । हे सोम ! सुतम् अभिषुतं त्वा त्वां वयम् अनुमदामसि हि अनुमदामः अनुक्रमेणाभिष्टुमः खलु । हे पवमान ! पूयमान सोम ! स त्वं महे महति समर्य्यराज्ये महत् समनुष्यं त्वदीयं राज्यमनुपालयितुं वाजान् शत्रुबलान्यभिलक्ष्य प्रगाहसे प्रगच्छसि ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम (सुतम्) संपादन कियेहुए (त्वा) तुझे ।(अभिमदामसि हि) क्रमसे स्तुत करते हैं, (पवमान) हे पवमान सोम वह तू (महे) बड़े (समर्यराज्ये) मनुष्यों सहित अपने राज्यकी रक्षा करनेको (वाजान्, अभि प्रगाहसे) शत्रुओंकी सेनाओं पर चढ़ाई करके जाते हो ॥ ६ ॥

१ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्य्या अथा स्वश्वाः ७

अथ सप्तमी । वासिष्ठी । द्विपदा । मारुती । व्यक्ताः कान्तियुक्ताः नरः नेतारः सनीडा समानौकसः रुद्रस्य रोदनशीलस्य एतत्संज्ञकस्य मर्य्याः मर्य्येभ्यो नृभ्यो हिताः अथापि च स्वश्वाः शोभनवाहाः इमम् एवम्भूताः के भवन्ति ? रूपातिशयात् ऋषिः आश्चर्य्येणाहेति ॥ ७ ॥

(व्यक्ताः) कान्तियुक्त (नरः) प्रभुता करने वाले (सनीड़ा) समान स्थानवाले (मर्याः) मनुष्योंका हित करनेवाले (अथा) और (स्वश्वाः) श्रेष्ठ घोड़ों वाले (इमम्) ऐसे (के) कौन (रुद्रस्य) दीनता पूर्वक प्रार्थना करने वालेके अपने होते हैं ? ॥ ७ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३१ २ ३
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदि
१ २ ३ १ २ ३ १ २
स्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । पदपङ्क्तिः आग्नेयी । वामदेव ऋषिः । हे अग्ने ! अद्य अस्मिन्नहनि वयमृत्विगादयः ओहैः इंद्रादिप्रापकैः स्तोमैः स्तोत्रसमूहैः तं प्रसिद्धं त्वाम् ऋध्याम समर्द्धयामः कीदृशं त्वाम् अश्वं न वोढारम-

श्वमिव तथा हविषः वाहकम्। क्रतुं न कर्त्तारमिव उपकारिणमित्यर्थः। तथा भद्रं भजनीयम्। हृदिस्पृशं हृदयङ्गमम् अतिशयेन प्रियमित्यर्थः ८

(अग्ने) हे अग्ने (अद्य) आजके दिन हम ऋत्विज आदि (ओहैः) इन्द्रादिको प्राप्त करानेवाले (स्तोमैः) स्तोत्रोंसे (अश्वं न) घोड़ेकी समान हवि पहुँचाने वाले (क्रतुं न) कर्त्ताकी समान अर्थात् उपकार करने वाले (भद्रम्) कल्याण रूप (हृदिस्पृशम्) परमप्रिय (तम्) प्रसिद्ध तुम्हें (ऋध्यामः) वृद्धियुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

३ १२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
आविर्मर्य्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य
३२ ३२ ३ १ २
सवितुः सवम्। स्वर्गाᳫँ अर्वन्तो जयत ॥९॥

अथ नवमी । पुर उष्णिक्। वाजिनां स्तुतिः। मर्य्याः मनुष्येभ्यो हिताः आविः प्रकाशमानाः वाजिनः देवविशेषाः वाजिनभाजः सवितुः प्रेरकस्य देवस्य सवम् अविषोतव्यं वाजम् अन्नरूपं सोमं ग्मन् अगमन्। ततो हे यजमानाः! स्वर्गं जयत तथा अर्वन्तः अर्वतोऽश्वान् जयत।

(मर्य्याः) मनुष्योंके हितकारी (आविः) प्रकाशवान् (वाजिनः) हविपाने वाले देवता (सवितुः) प्रेरक देवके (सवम्) संपादनीय (वाजम्) अन्नरूप सोमको (ग्मन्) प्राप्तहुए, इसकारण हे यजमानो! (स्वर्गम्) स्वर्गको (अर्वन्तः) घोड़ोंको (जयत) जीतो ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाᳫँ अवीनामनु पूर्व्यः

अथ दशमी। ऐश्वरयोधिष्ण्या ऋषयः। द्विपदा। हे सोम! द्युम्नी द्युम्नं द्योततेः यशो वान्नं वेति यास्कः (नि० नै० ५, ५) अन्नवान् यशस्वी वा सुधारः शोभनधारायुक्तः पूर्व्यः पुरातनः महान् अवीनां रोम्णां रोमभ्यः सकाशात् अनु क्रमेण पवस्व क्षर ॥ १० ॥

(सोम) हे सोम (द्युम्नी) अन्न वाला वा यशस्वी (सुधारः) शोभनधारायुक्त (पूर्व्यः) पुरातन (महान्) बड़ा तू (अवीनाम्) रोमोंसे (अनुपवस्व) क्रमसे संपादित हो ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः।

———o———

१ २ ३ १२ ३ १ २३ २ ३
विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा
१ २ ३ १ २
शविष्ठमीमहे ॥ १ ॥

अथ दशमे खण्डे—सैषा प्रथमा । ऐन्द्री । हे विश्वतोदावन् ! सर्वतश्छेदनवन् सर्वत्र दानवन् वा इन्द्र ! स त्वं विश्वतः सर्वतः न अस्मभ्यम् अभीष्टम् आभर आहर । किञ्च शविष्ठम् अतिशयेन बलवन्तं यं त्वाम् ईमहे अभीष्टं याचामहे ॥ १ ॥

(विश्वतोदावन्) हे सर्वत्र शत्रुओंका छेदन और भक्तोंको दान देने वाले इन्द्र ! तुम (विश्वतः) सब ओरसे (नः) हमें (आभर) इच्छित पदार्थ दो (शविष्ठम्) अत्यन्त बलवान् (यं त्वाम्) जिन आप के समीप (ईमहे) अभीष्टकी याचना करते हैं ॥ १ ॥

३२३२उ ३ २३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२॥

अथ द्वितीया । ऐन्द्री ऋत्वियः ऋतौ वसन्तादि समये भवः यः इंद्रः नामश्रुतः विश्रुतः एषः ब्रह्मा स्तोतॄणामभीष्टस्य वर्द्धयिता तमहं गृणे स्तौमि ॥ २ ॥

(ऋत्वियः) वसंत आदि ऋतुमें प्रकट होनेवाला (यः) जो इंद्र (नामश्रुतः) अपने नामसे प्रसिद्ध है (एषः) यह (ब्रह्मा) स्तोताओं के मनोरथोंको बढ़ाने वाला है तिसकी मैं (गृणे) स्तुति करता हूँ २

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्द्धयन्नहये हन्तवा उ ३

अथ तृतीया । त्रसदस्यु ऋषिः अहये वृत्राय क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वात् हननक्रियायां वृत्रस्य सम्प्रदानसंज्ञा वृत्रहन्तवै तुमर्थे सेऽसेनिति (३, ४, ९) तवैप्रत्ययः हन्तुम् अर्कैः अर्चनीयैः स्तोत्रैः मन्त्रैः हविर्लक्षणैर्वा महयन्तः पूजयन्तः ब्रह्मणः ब्राह्मणाः इन्द्रम् अवर्द्धयन् वर्द्धयन्ति प्रीतं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(अहये हंतवे) वृत्रासुरको मारनेके निमित्त (अर्कैः) प्रशंसायोग्य स्तोत्रोंसे (महयन्तः) पूजते हुए (ब्रह्मणः) ब्राह्मण (इन्द्रम्) इंद्रको (अवर्धयन्) प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत
३ १ २
द्युमन्तम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । ऐन्द्री । हे इंद्र ! अनवः मनुष्याः ऋभवः ते त्वत्संबन्धिने अश्वाय वाहनाय तदर्थं रथं ततक्षुः कृतवंतः हे पुरुहूत ! बहुभिराहूतेन्द्र ! त्वष्टा विश्वकर्मा च त्वदीयं वज्रं द्युमन्तं दीप्तिमन्तमकरोत् ॥ ४ ॥

हे इंद्र (अनवः) मनुष्य (ऋभवः) देवता (ते) तेरे (अश्वाय) घोड़ेके अर्थ (रथम्) रथको (ततक्षुः) रचले हुए (पुरुहूत) हे अनेकोंके पुकारे हुए इन्द्र (त्वष्टा) विश्वकर्मा (वज्रम्) वज्रको (द्युमन्तम्) प्रकाश युक्त करता हुआ ॥ ४ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
शं पदं मघᳪं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति
१ २ ३ २
न स्पृशाद्रयिम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । ऐन्द्री । रयीषिणः रयिं धनं हविर्लक्षणं प्रेषयन्तो जनाः शं सुखं पदं स्थानं मघं धनं च लभन्ते इति शेषः अव्रतः इंद्रविषयागादिकर्मरहितः पुरुषः शं सुखादिकं न हिनोति न प्राप्नोति दातुं समर्थो न भवतीत्यर्थः स्वयमपि कामम् अभीष्टं रयिं रमणीयं धनं स्पृशत् न न स्पृशति ॥ ५ ॥

(रयीषिणः) हवि अर्पण करनेवाले पुरुष (शम्) सुखको (पदम्) स्थानको (मघम्) धनको भी पाते हैं (अव्रतः) इन्द्रके निमित्त यज्ञादि न करनेवाला पुरुष (न हिनोति) दानादि करनेको समर्थ नहीं होता है (कामम्) अपने इच्छित (रयिम्) धनको (न स्पृशात) स्पर्श भी नहीं कर सकता है ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ६

अथ षष्ठी । इयं वैश्वदेवी । गावः गन्तारः स्तोतारो वा सदा इन्द्रं परस्तादिभिरुपगच्छन्ति ते शुचयः निर्मलाः सदा सर्वदा विश्वधा-

यसः विश्वं धारयन्ति पुष्णन्तीति विश्वधायसः महान्मा: भवन्तीत्यर्थः सदा सर्वदा देवाः दानादिगुणयुक्ताः अरेपसः पापरहिताश्च भवन्ति ।

(गावः) इन्द्रकी शरण जानेवाले (सदा) सर्वदा (शुचयः) निर्मल (विश्वधायसः) विश्वभरका पोषण करनेकी शक्तिवाले (सदा) सर्वदा (देवाः) दानादि गुण युक्त (अरेपसः) पाप रहित भी होते हैं

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्त्तनि यदूधभिः ७

अथ सप्तमी। सम्पात ऋषिः। द्विपात्। उषस्या। हे उषः! वनसा वननीयेन तेजसा सह सार्द्धम् आयाहि आगच्छ। उषसो वाहनभूताः गावः वर्त्तनिं रथं सचन्त सेवंत अनश्वेन रथेनायाहीत्यर्थः। यत् या गावः ऊधभिः उपलक्षिताः प्रभृता पीना इत्यर्थः। ताः गावःइति संबंधः।

(उषः) हे उषादेवी! (वनसा सह) चाहने योग्य तेजके साथ (आयाहि) आओ (गावः) उषाकी वाहन गौएँ (वर्त्तनिम्) रथको (सचन्त) सेवन करती हैं (यत्)जो गौएँ (ऊधभिः) बड़े२ थनोंसे युक्त हैं

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ १ २
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र ८

अथ अष्टमी। हे इंद्र! परमैश्वर्ययुक्त! त्वं मधुमति माधुर्योपेते प्रक्षे राजकर्तृ कन्यग्रोधचमसे ते त्वदीये क्षियंतः समीपे स्थिताः वयं रयिं रमणीयमन्नं पुष्येम पोषयेम। किञ्च। त्वां धीमहे वयमनुध्यायेम ॥८॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (मधुमति) मधुरता युक्त (प्रक्षे) राजाके बनाये हुए गूलड़के चमसमें(ते क्षियंतः)तुम्हारे समीप स्थित हुए हम(रयिम्) रमणीय अन्नको (पुष्येम) पोसते हैं (धीमहे) और तुम्हारा ध्यान भी करते हैं८

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २र
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इंद्रः

अथ नवमी। स्वर्काः शोभनस्तोत्राः शोभनान्ना वा मरुतः अर्कमर्चनीयमिन्द्रम् अर्चन्ति स्तोत्रैर्हविर्भिः। युवा नित्यतरुणः श्रुतः विख्यातः इन्द्रः आस्तोभति तेषां सम्बन्धीनि शत्रुजातान्याभिमुख्येन हिनस्ति ॥ ९ ॥

(स्वर्काः) सुन्दर अन्न वा स्तोत्रवाले (मरुतः) मरुत (अर्कं) पूजने योग्य इन्द्रको (अर्चन्ति) हवि और स्तोत्रोंसे पूजते हैं (युवा) नित्य

तरुण (श्रुतः) प्रसिद्ध (स इन्द्रः) वह इंद्र (आस्तोभति) उसके शत्रुओंको चढाई करके मारता है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं
२ ३ २ ३ १ २
गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे विप्रा ! मेधाविनः ! वृत्रहन्तमाय अतिशयेन वृत्रस्य हन्तमः, तस्मै इन्द्राय तं गाथं स्तोत्रं प्रगायत प्रकर्षेण पठत । हे उद्गातारः ! स इंद्रः यं स्तोत्रं जुजोषते सेवते ॥ १० ॥

(विप्राः) हे ब्राह्मणों (वृत्रहन्तमाय) अतिशय करके वृत्रके नाशक (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (गाथम्) उस स्तोत्रको (प्रगायत) अधिकता से पढ़ो (यम्) जिस स्त्रोत्रको (जुजोषते) प्रसन्न होकर स्वीकार करता है ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड्न सुमद्रथः ॥ १ ॥

अथ एकादशखण्डे-सैषा प्रथमा। हव्यवाट् हविषां वोढारं चिकितिः विशिष्टप्रज्ञः सुमद्रथः सुष्ठु हविर्भुक रर्थाऽग्निः अचेति चेत्यते सर्वैर्ज्ञायते । यद्वा । व्यत्ययेन कर्त्तरि प्रत्ययः (३, १, ८५) हविः प्रदातारं यजमानं जानाति ॥ १ ॥

(हव्यवाट्) हवियोंको पहुँचानेवाला (चिकितिः) विशेष बुद्धिमान् (सुमद्रथः) श्रेष्ठ हवियोंसे युक्त (रथः न) रथकी समान पहुँचानेवाला (अग्निः) अग्नि (अचेति) हवि देनेवाले यजमानको जानता है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरूथ्यः २

अथ द्वितीया । बन्धुर्ऋषिः आग्नेयी । हे अग्ने ! वरूथ्यः वरणीयः सम्भजनीयः ॥ यद्वा । वरूथ्यैः यज्ञगृहैर्युतः त्वं नः अस्माकम् अन्तमः अन्तिकतमः भुवः भव । उत अपि च त्राता रक्षकः शिवः सुखकरश्च भव ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्नि (वरूथ्यः) सेवा करने योग्य (त्वम्) तू (नः) हमारा (अन्तमः) अधिक समीपस्थ (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) सुखदायक (भुवः) हो ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ३॥

अथ तृतीया । आग्नेयीयमृक् । महोनां महताम् मध्ये भगो न सूर्य इव चित्रः चायनीयः पूजनीयः अग्निः यज्वनां रत्नं रमणीयं धनं दधाति धारयति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(महोनाम्) बड़ोंमें (भगो न) सूर्यकी समान (चित्रः) विचित्र गुणो वाला वा पूजनीय (अग्निः) अग्नि, यज्ञ करनेवालोंको (रत्नम्) श्रेष्ठ धन (दधाति) देता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ ३ २
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वासन् यदि वेह नूनम् ॥४॥

अथ चतुर्थी । एषा ऐन्द्री । विश्वस्य सर्वस्य शत्रुजातस्य प्रस्तोभ प्रस्तोभति हिनस्तीत्यर्थः । यदि वा इह यज्ञे नूनं पुरो वासन् पूर्वस्मिन् देशे वसन् स्थितः स इह नूनं प्रस्तोभ ऋत्विग्भिः प्रकर्षेण स्तूयते स्तोभतिस्तु स्तुतिकर्मा ॥ ४ ॥

(विश्वस्य) सब शत्रुओंको (प्रस्तोभः) नष्ट करता है (यदि वा) और (इह) इस यज्ञमें (नूनम्) निश्चय (पुरोवासन्) पूर्वदेशमें स्थित हुआ यह अग्नि ऋत्विजोंसे स्तुति किया जाता है ॥ ४ ॥

३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उषा उप स्वसुस्तमः सं वर्त्तयति वर्त्तनिᳪं सुजातता ५

अथ पञ्चमी संवर्त्त ऋषिः उषोदेवता द्विपदा । इयम् उषाः स्वसुः भगिन्याः रात्रेः सम्बन्धि तमः अन्धकारम् अप संवर्त्तयति आत्मीयेन तेजसा अपगमयति । सुजातता सुजातत्वं आत्मनः सुप्रकाशत्वं च वर्त्तनिं वर्त्तयति रथं प्रापयति ॥५॥

(उषाः) यह उषा (स्वसुः) अपनी बहिन रातके (तमः) अन्धकारको (अपसंवर्त्तयति) अपने तेजसे दूर करती है (सुजातता) अपने श्रेष्ठ प्रकाशको भी (वर्त्तनिम्) रथपर पहुँचाती है ॥ ५ ॥

३ २क ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥

तरुण (श्रुतः) प्रसिद्ध (स इन्द्रः) वह इंद्र (आस्तोमति) उसके शत्रुओंको चढाई करके मारता है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं
२ ३ २ ३ १ २
गायत यं जुजोषते ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे विप्रा ! मेधाविनः ! वृत्रहन्तमाय अतिशयेन वृत्रस्य हन्तमः, तस्मै इन्द्राय तं गाथं स्तोत्रं प्रगायत प्रकर्षेण पठत । हे उद्गातारः ! स इंद्रः यं स्तोत्रं जुजोषते सेवते ॥ १० ॥

(विप्राः) हे ब्राह्मणो (वृत्रहन्तमाय) अतिशय करके वृत्रके नाशक (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (गाथम्) उस स्तोत्रको (प्रगायत) अधिकता से पढो (यम्) जिस स्तोत्रको (जुजोषते) प्रसन्न होकर स्वीकार करता है ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड्न सुमद्रथः ॥ १ ॥

अथ एकादशखण्डे-सैषा प्रथमा। हव्यवाट् हविषां वोढारं चिकितिः विशिष्टप्रज्ञः सुमद्रथः सुष्ठु हविर्भुक्त रथोऽग्निः अचेति चेत्यते सर्वैर्ज्ञायते । यद्वा । व्यत्ययेन कर्त्तरि प्रत्ययः (३, १, ८५) हविः प्रदातारं यजमानं जानाति ॥ १ ॥

(हव्यवाट्) हवियोंको पहुँचानेवाला (चिकितिः) विशेष बुद्धिमान् (सुमद्रथः) श्रेष्ठ हवियोंसे युक्त (रथः न) रथकी समान पहुँचानेवाला (अग्निः) अग्नि (अचेति) हवि देनेवाले यजमानको जानता है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवा वरूथ्यः २

अथ द्वितीया । वन्धुरृषिः आग्नेयी । हे अग्ने ! वरूथ्यः वरणीयः सम्भजनीयः ॥ यद्वा । वरूथ्यैः यज्ञगृहैर्वृतः त्वं नः अस्माकम् अन्तमः अन्तिकतमः भुवः भव । उत अपि च त्राता रक्षकः शिवः सुखकरश्च भव ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्नि (वरूथ्यः) सेवा करने योग्य (त्वम्) तू (नः) हमारा (अन्तमः) अधिक समीपस्थ (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) सुखदायक (भुवः) हो ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २-३ २ ३ १ २ १ २
भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ३॥

अथ तृतीया । आग्नेयीसमृक् । महोनां महताम् मध्ये भगो न सूर्य इव चित्रः चायनीयः पूजनीयः अग्निः यज्वनां रत्नं रमणीयं धनं दधाति धारयति । प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(महोनाम्) बड़ोंमें (भगो न) सूर्यकी समान (चित्रः) विचित्र गुणो वाला वा पूजनीय (अग्निः) अग्नि, यज्ञ करनेवालोंको (रत्नम्) श्रेष्ठ धन (दधाति) देता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ ३ २
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वासन् यदि वेह नूनम् ॥४॥

अथ चतुर्थी । एषा ऐन्द्री । विश्वस्य सर्वस्य शत्रुजातस्य प्रस्तोभ प्रस्तोभति हिनस्तीत्यर्थः । यदि वा इह यज्ञे नूनं पुरो वासन् पूर्वस्मिन् देशे वसन् स्थितः स इह नूनं प्रस्तोभ ऋत्विग्भिः प्रकर्षेण स्तूयते स्तोभतिस्तु स्तुतिकर्मा ॥ ४ ॥

(विश्वस्य) सब शत्रुओंको (प्रस्तोभः) नष्ट करता है (यदि वा) और (इह) इस यज्ञमें (नूनम्) निश्चय (पुरोवासन्) पूर्वदिशामें स्थित हुआ यह अग्नि ऋत्विजोंसे स्तुति किया जाता है ॥ ४ ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उषा उप स्वसुष्टमः सं वर्त्तयति वर्त्तनिꣳ सुजातता ५

अथ पञ्चमी संवर्त्त ऋषिः उषोदेवता द्विपदा । इयम् उषाः स्वसुः भगिन्याः रात्रेः सम्बन्धि तमः अन्धकारम् अप संवर्त्तयति आत्मीयेन तेजसा अपगमयति । सुजातता सुजातत्वं आत्मनः सुप्रकाशत्वं च वर्तनिं वर्त्तयति रथं प्रापयति ॥५॥

(उषाः) यह उषा (स्वसुः) अपनी बहिन रातके (तमः) अन्धकारको (अपसंवर्त्तयति) अपने तेजसे दूर करती है (सुजातता) अपने श्रेष्ठ प्रकाशको भी (वर्त्तनिम्) रथपर पहुँचाती है ॥ ५ ॥

३ २क ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥६॥

अथ षष्ठी । भौवन आत्यऋषिः । इमाः इमानि परिदृश्यमानानि भुवना भुवनानि नु क्षिप्रं सीषधेम साधयामः वशीकुर्मः ! कमिति पूरकः यद्वा । इमानि सर्वाणि भूतजातानि अस्मभ्यं कं सुखं सीषधेम साधयतु पुरुषव्यत्ययः इन्द्रश्च विश्वे सर्वे देवाश्च स्तुत्या प्रीता इममर्थं साधयंतु ॥ ६ ॥

(इमाः) इस दीखनेवाले (भुवनाः) लोकोंको (नुः) शीघ्र (कम्) सुख पानेके लिये (सीषधेम) वशमें करता हूँ (इन्द्रः) इंद्र (च) और (विश्वे) सकल (देवाश्च) देवता भी स्तुतिसे प्रसन्न होकर मेरे इस कामको सिद्ध करैं ॥ ६ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ उ ३ १ २ १ २
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७॥

अथ सप्तमी । कवष ऐलुषऋषिः । इयंवैश्वदेवी । हे इन्द्र ! त्वत् त्वत्तः सकाशात् रातयः दानानि वियंतु विविधं गच्छतु । तत्र दृष्टांतः पथः राजमार्गात् क्षुद्रमार्गा यन्ति तद्वत् ॥ ७ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (त्वत्) तुमसे (रातयः) दान (पथा स्रुतयः यथा) जैसे राजमार्गसे छोटे २ मार्ग निकलते हैं तैसे (विंतु) प्राप्त हों ॥ ७ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अया वाजं देवहितꣳ सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः

अथ अष्टमी । भरद्वाज ऋषिः । द्विपदा ।अया अनया स्तुत्या देवहितं देवेन द्योतमानेनेन्द्रेण दत्तम् वाजम् अन्नं सनेम वयं सम्भजेम । अपि च सुवीराः शोभनपुत्र पेता वयं शतहिमाः शतहेमन्तान् मदेम हृष्याम् ८

(अया) इस स्तुतिसे (देवहितम) इंद्र देवताके दियेहुए (वाजम्) अन्नको (सनेम) हम भोगें (सुवीराः) सुन्दर पुत्रोंसे युक्त हम (शत)-हिमाः) सैंकडों हेमन्त ऋतुओं पर्यन्त (मदेमः) प्रसन्न रहैं ॥ ८ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इंद्र

अथ नवमी । आत्रेयऋषिः । इयं वैश्वदेवी । हे इंद्र ! मित्रः वरुणः त्वञ्च सर्वे यूयं ऊर्जा रसेन बलेन वा सहिताः इडा अन्नानि पिन्वत अस्मभ्यं सिञ्चत प्रयच्छतेत्यर्थः पिन्व सेचने (भ्वा० प०) धातूनामनेकार्थत्वादत्र प्रयच्छतेत्यर्थः किञ्च । पीवरीं प्रवृद्धम् इषम् अन्नं नः अस्माकं कृणुहि कुरु देहीत्यर्थः॥ ९ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (मित्रः) मित्र देवता (वरुणः) वरुण देवता तुम सब (ऊर्जा) बल सहित (इडा) अन्न (पिन्वत) हमें दो (नः) हमारे (इषम्) अन्नको (पीवरीम्) अधिक (कृणुहि) करो अर्थात् बहुतसा अन्न दो ॥ ९ ॥

२ ३ १ २
इन्द्रो विश्वस्य राजति ।

अथ दशमी। इयमेकपदाष्टाक्षरा गायत्री। वसिष्ठ ऋषिः। यतः कारणात् इन्द्रः विश्वस्य भुवनस्य राजति ईश्वरो भवति अतः कारणात् इंद्रं प्राधान्येनाभिमुखीकृत्योच्यते इति पूर्वेणान्वयः ॥ १० ॥

क्योंकि-(इन्द्रः) इन्द्र (विश्वस्य) सब लोकोंका (राजति) ईश्वर होता है इस कारण प्रधान रूप से इन्द्र को ही अभिमुख करके कहा है ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य एकादशः खंडः समाप्तः

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्प-
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
त्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् । स ईं
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुꣳ सैनꣳ
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
सश्चद्देवो देवꣳ सत्य इन्द्रः सत्यमिन्द्रम् ॥ १ ॥

त्रिकद्रुकेषु मुख्याः स्युर्दशक्वर्यत्राष्टिरादिमा ।
जगत्ययं सहस्रे त्यथैन्द्र्या ह्युपनस्तथा ॥
अग्निं होतारमित्येषा अस्तु श्रौषडया रुचा ।
चतस्रोऽस्यष्ट्योऽभित्थं तवत्यर्यमित्यृचौ ॥
इमे हु अतिशक्वर्यावष्टी इत्येक ऊचिरे ।
प्रवोमहेऽतिजगती तमिन्द्रमिति तादृशी ॥
सौरी ह्ययं सहस्रेति पावमानी त्वया रुचा ।
अस्तु श्रौषड् वैश्वदेवी मारुती तु प्रवोमहे ॥
अभित्यमिति सावित्री स्यादाग्नेय्यग्निमित्यसौ ।
ऐन्द्रोऽवशिष्टा इत्येवं छन्दोदैवतनिर्णयः ॥

अथ द्वादशखण्डे—तत्र प्रथमा । गृत्समद ऋषिः । महिषः महान् पूज्यः तुविशुष्मः बहुबलः तृम्पत् तृप्यन्निन्द्रः त्रिकद्रुकेषु ज्योतिर्गौरायुरित्येतन्नामकेषु अभिप्लविकेष्वहःसु सुतं अभिषुतं यवाशिरं यवमयैः सक्तुभिर्मिश्रितम् आङ्पूर्वस्य श्रीञ् धातोः क्विपि आस्पृथंथामित्यादिना श्रियः शिर इत्यादेशः तं सोमं विष्णुना सह अपिबत् । यथावशं पूर्वं यथा तं सोममकामयत तथा अपिबत् वश कान्तौ (अ०, प०) । बहुलं छन्दसीति (२, ४, ७३) शपोलुगभावः सः पीतः सोमः महाम् महान्तम् उरुम् विस्तीर्णम् ईम् एनम् इंद्रम् ममाद अमादयत् । किमर्थम् ? महि महत् वृत्रहननादिलक्षणम् कर्म कर्त्तवे कर्त्तुम् । सत्यः इंदुः स्रवन् । देवः दीप्यमानः सः सोमः सत्यं यथार्थभूतं देवं सोमं कामयमानम् एनं इंद्र सश्चत् सश्चतिर्व्याप्तिकर्मा व्याप्नोतु ॥ १ ॥

(महिषः) पूजनीय (तुविशुष्मः) बहुत बल वाला (तृम्पत्) तृप्त होता हुआ इंद्र (त्रिकद्रुकेषु) ज्योति गौ, और आयुनाम वाले दिनों में (सुतम्) सम्पादन किये हुए (यवाशिरम्) यवके सत्तुओंसे मिले हुए (सोमम्) सोमको (विष्णुना) विष्णुके साथ (यथावशम्) जैसे पहिले इच्छा कीथी तिसीप्रकार (अपिवत्) पीता हुआ (सः) वह पिया हुआ सोम (महि) बड़े (कर्म) वृत्रवध आदि कर्मको (कर्त्तवे) करनेके लिए (महाम्) बड़े (उरुम्) विस्तार वाले (ईम्) इस इंद्रको (ममाद) मद युक्त करता हुआ (सत्यः) श्रेष्ठ (इन्दुः) टपकता हुआ (देवः) दीप्तिमान् (सः) वह सोम (सत्यम्) सत्य रूप (देवम्) सोम चाहने वाले (एनं इंद्रम) इस इन्द्रको (सश्चत्) व्याप्त हो ॥ १ ॥

३ २ ३२३१२ ३१ २३ २ ३२उ ३ १ २
अयथँ सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म।
३ २ ३१२ ३२३ १२ ३२३ १ २ ३ १२
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
३१२ ३२
मन्युमन्तश्चिता गोः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । गौराङ्गिरसऋषिः सहस्रमानवः सहस्रसंख्याका मनुष्याः यस्य सः, सहस्रसंख्याकैर्मनुष्यैरिवावस्थितैः रश्मिभिर्युक्तः दृशः सर्वेषां दर्शनीयः कवीनां मेधाविनां सर्वेषां मतिः स्तुतयः मननीयो वा विधर्म विधातृ ज्योतिः तेजः अयं ब्रध्नः सूर्य्यः समीची शुभ्राः

निर्मलाः अरेपसः तमः पापरहिताः । सचेतसः समानचित्ताः इमाः उषसः समैरयत् सम्यक् प्रेरयति । ततः स्वसरे दिवसनामैतत् (नि० नै० १,९) दिवसे मन्युमन्तः मन्युः प्रकाशस्तद्वन्तः तेजस्विनश्चन्द्रमाः प्रभृतयः गो आदित्यस्य तेजसा चिताः अपचिता भवन्त्विति विगततेजस्का भवन्तीत्यर्थः । आदित्योऽपि गौरुच्यते (२, ६) इति निरुक्तम् २

(सहस्रमानवः) सहस्रों मनुष्यों वाला (वृषः) दर्शनीय (कवीनाम्) बुद्धिमानोंका (मतिः) माननीय (त्रिधर्म) विधाता (ज्योतिः) तेजः स्वरूप (अयम) यह (वृध्नः) सूर्य (समीची) निर्मल (अरेपसः) अन्धकार रूप पाप रहित (सचेतसः) समान चित्त वाली (उषसः) इन उषाओं को (समैरयत्) भले प्रकार प्रेरणा करता है तदनन्तर (स्वसरे) दिनमें (मन्युमन्तः) प्रकाश वाले चन्द्रमा आदि (गोः) सूर्यके तेजसे (चिताः) तेज हीन होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विदथानीव सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २

हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न

३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पितरं वाजसातये मꣳहिष्ठं वाजसातये ॥३॥

अथ तृतीया । परुच्छेप ऋषिः । छ० अत्यष्टि । हे इंद्र ! परावतः दूरदेशात् स्वर्गलक्षणात् नः अस्मान् उपायाहि अस्मत्समीपं प्रत्यागच्छ । तत्र दृष्टान्तः नायम् अयं न पुरोवर्त्ती अग्निः अभिषुतः सोमो वा प्रस्तुतत्वान्निर्दिश्यते स इव यद्यपि पुरस्तादुपचारान्निषेधार्थीयो नकारः सर्वत्र, तथाप्यत्रौचित्येनोपमार्थीयो गृह्यते । यद्वा । परावतः न दूरदेशादिव । यद्यपि यज्ञे सर्वदा सन्निहितः तथापि स्वर्गाख्याद् दूरदेशादिव । अस्मिन् पक्षे अयमिति विभक्तिव्यत्ययः । अयं इमं देवयजनदेशम् अच्छ अभि प्राप्तुम् आयाहीति शेषः । तत्र दृष्टान्तः सत्पति सतां सर्वदा वर्त्तमानानामृत्विजाम्पालको यजमान इव पत्यावैश्वर्ये (६, २, १८) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् त्वमपि यज्ञगृहाण्यागच्छ । यद्वा । सतां नक्षत्राणां पतिःचन्द्रमाः स यथा स्वधाम स्थानमागच्छति तद्वत् ।

अस्तो अस्तं सुप आकारः (७, १, २९) अतएव बहवृच्या अस्तं राजेत्यामनन्ति अस्तम् गृहं राजेव राजा यथा आगच्छति तद्वत् । किञ्च । प्रयस्वन्तः हविर्लक्षणान्नवन्तः यजमाना वयं त्वा त्वां सुतेषु अभिषुतेषु सोमेषु आहवामहे आभिमुख्येनाह्वयामहे । आह्वाने दृष्टांतः पुत्रासः पुत्राः पितरं न पालकं जनकमिव तं यथा वाजसातये संग्रामप्राप्तये तज्जयाय हविः स्वीकरणाय वा आह्वयामः ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (परावतः) स्वर्गरूप दूरदेश से (नः अच्छ उपयाहि) हमारे समीप श्रेष्ठ रूपसे आइये, तहां दृष्टांत कहते हैं कि— (अयं न) जैसे यह अग्नि और सुसिद्ध सोम प्राप्त हुआ है (सत्पतिः विदथानि इव) जैसे ऋत्विजोंका पालक यजमान यज्ञशालाओंमें आता है (अस्ता, सत्पतिः राजा इव) जैसे तारागणोंका पालनकर्त्ता चंद्रमा अपने धामको प्राप्त होता है (पयस्वन्तः, त्वा, सुतेषु, आ हवामहे) हवि लियेहुए हम यजमान तुम्हें सोमसम्पन्न होनेपर अभिमुख होकर आह्वान करते हैं (पुत्रासः, वाजसातये, पितरं, न) पुत्र बल वा अन्न की प्राप्तिके लिए जैसे पिताको पुकारते हैं तैसे (वाजसातये मँहिष्ठम्) संग्राममें जय पानेके लिए तुम्हें पुकारते हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रꣳ सत्रा
२र ३ १ २ २ १ २ ३ १ २
दधानमप्रतिस्कुतꣳश्रवाꣳसि भूरि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
मꣳहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त राये
३ १ २ ३ १ २ ३ २
नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । रेभा ऋषिः । तं पूर्वोक्तगुणोपेतम् इंद्रं जोहवीमि यष्टाहं पुनः पुनराह्वयामि ह्वयतेरभ्यस्तस्य चेति सम्प्रसारणम् कीदृशं मघवानं मंहनीयधनवंतम् उग्रम् उद्गूर्णबलं सत्रा सत्यं यथार्थमेव श्रवांसि बलानि भूरि भूरीणि दधानम् अतएव अप्रतिष्कुतं शत्रुभिरप्रतिरोधनीयम् आह्वयामि । किञ्च मंहिष्ठः पूज्यतमो दातृतमो वा यज्ञियः यज्ञार्हः इन्द्रः गीर्भिः अस्मदीयाभिः स्तुतिभिः आ ववर्त्त यज्ञेष्वाभिमुख्येन वर्त्तते । वर्त्तेर्लिटि रूपम् । ततो वज्री वज्रवान् इन्द्रः

राये धनार्थं विश्वा सर्वाण्येव सुपथा सुमार्गाणि कृणोतु करोतु । धनं सर्वदिग्जमस्मान् प्राप्नोतु इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(मघवानम्) धनवान् (उग्रवम्) किसीसे न दबनेवाले (सत्रा) सत्य (भूरि) बहुतसे (श्रवांसि) बलोंको (दधानम्) धारण किये हुए (अप्रतिष्कुतम्) जिसको शत्रु न रोकसकें ऐसे (तम्) उस पूर्व मंत्रों में वर्णन कियेहुए (इन्द्रम्) इन्द्रको (जोहवीमि) वारम्वार आह्वान करता हूँ (मंहिष्ठः) परमपूज्य (यज्ञियः) यज्ञके योग्य इन्द्र (गीर्भिः) हमारी स्तुतियोंसे (आववर्त्त) यज्ञके अभिमुख होरहा है, तदनन्तर (वज्री) वज्रधारी इन्द्र (राये) धनके अर्थ (विश्वा) सब ही (सुपथा) सुमार्गोंको (कृणोतु) करे अर्थात् हमें सब दिशाओंसे धन प्राप्त होय ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २३ १
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छ-
२र ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २
र्द्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे यद्ध क्राणा
३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १
विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे । अध प्र नून-
२र ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
मुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छ न धीतयः ॥५॥

अथ पञ्चमी । परुच्छेपऋषिः । छ० अतिशक्वरी । अहं पुरः पुरतः उत्तरवेद्याम् अग्निम् आहवनीयाख्यं धिया प्रणयनादि कर्मणा दधे धारितवानस्मि । त्यत् तत् शर्द्धः तादृशं बलं बलवंतं वाऽग्निम् यद्वा तच्छर्द्धं तादृशं मरुतां संघरूपं बलं दिव्यं दिवि भवं नु क्षिप्रम् आ वृणीमहे आभिमुख्येन सम्भजामहे किंच इंद्रवायू वृणीमहे प्रार्थयामहे । यद्ध सुपो लुक् (७, १, ३९) यः विवस्वते दिवो हवीरूपं धनं तद्वते नव्यसे नवतराय यजमानाय नाभा नाभौ भूम्या नाभिस्थाने देवयजने । यद्वा । वेदिरूपे अथवा नाभौ सर्वस्य फलस्य सम्बन्धके यज्ञे यज्ञमाहुर्भुवनस्य नाभिः इति श्रुतेः सन्दाय सम्यक् बध्वा मिथः संयुज्य क्राणा धनादिकं कुर्वाणौ भवतः । तौ वृणीमहे इति समन्वयः यस्मादेवं तस्मात् अस्तु श्रौषट् अस्याः स्तुतेः श्रवणं भवतु । श्रोता भवतु वा मरुतां गणोऽग्निर्वा इन्द्रवायू पक्षे प्रत्येकापेक्षयैकवचनम् अध अनन्तरं नः

धीतयः अस्मदीयानि कर्माणि स्तुत्यादिरूपाणि प्रनूनम् उपयंति प्रकर्षेण युष्मानुपेत्य गच्छन्ति । किंच देवानच्छन अग्न्यादिदेवान् आभिमुख्येन प्राप्तुमिव धीतयः अस्मदीयानि कर्माणि उपयंति तेषां समीपं प्रापयंति । आनुत्यत् आनुतद् इति नव्यसे नवसि इति प्रनूनं प्रलूनम् इति च क्रमेण साम्नामृचश्च पाठः ॥ ५ ॥

हे इंद्र मैं (परः) आगेकी उत्तर वेदीमें (अग्निम) आहवनीय नामक अग्निको (धिया) प्रणयन आदि कर्मसे (दधे) धारण कर चुका हूँ (त्यत् दिव्यं शर्धः) उस दिव्य बलवान् अग्निको (नु) शीघ्र (आवृणीमहे) अभिमुख होकर आराधना करते हैं (इंद्रवायू) इंद्र और वायुको (वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं (यद्ध) जो (विवस्वते नव्यसे) धनवान् नवीन यजमानके अर्थ (नाभा) भूमिके नाभिरूप देवयजन स्थानमें (सन्दाय) परस्पर मिलकर (क्राणा) मनोरथसिद्धि करनेवाले होते हैं (श्रौषट् अस्तु) इस स्तुतिका श्रवण हो (अधः) अनन्तर (नः) हमारे (धीतयः) स्तुति आदि कर्म (प्रनूनम्) अवश्य ही (उपयंति) तुम्हें प्राप्त होते हैं और (देवान् अच्छ न) मानो अग्नि आदि देवताओंके अभिमुख प्राप्त होनेको (धीतयः) हमारे कर्म प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा
२ ३ १ २ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एवयामरुत् प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये
३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । एवयामरुदृषिः छ० अतिजगती । प्रयंतु प्रगच्छन्तु गिरिजाः गिरौ वाचि निष्पन्नाः मतयः स्तुतयः । महे महते वः तुभ्यः वचनव्यत्ययः (३, १, ८५) विष्णवे व्यासायाम् इन्द्राय विष्णवे वा मरुत्वते मरुद्भिस्तद्वते । कस्य स्तुतये ? इत्युच्यते एवयामरुत् एतन्नामकस्य ऋषेः षष्ठ्यलुक् (७ १, ३९) अथवाऽयमृषिः गिरिजाः स्तुतेर्जनयिता भवति । किंच प्रयंतु स्तुतयः कस्मै ? शर्धाय बलाय मारुताय इतरत्सर्वं बलविशेषणम् प्रयज्यवे प्रकर्षेण यष्टव्याय सुखादये शोभनाभरणाय खादिराभरणविशेषः संहस्तेषु खादिश्च कृतश्च सम्दधे इति

अंसेषु च ऋष्टयः पत्सु खादयः इति च श्रुतेः। तवसे बलवते। भन्द-दिष्टये स्तुतिरूपा इष्टिर्यस्य तत् भन्ददिष्टिः, तस्मै। धुनिव्रताय मेघानां चालनं कर्म यस्य, तादृशाय शवसे गमनवते ॥ ६ ॥

(एवयामरुत्) इस नामके ऋषिकी (गिरिजाः) वाणीसे उत्पन्न हुई (मतयः) स्तुतियें (मरुत्वते) मरुत्सहित (विष्णवे) व्यापक (महे) महान् (वः) तुम इन्द्रको (प्रयंतु) प्राप्त हों और (प्रयज्यवे) अधिकतासे यजन करने योग्य (सुखादये) सुंदर आभरणवाले (तवसे) बलवान् (भन्ददिष्टये) स्तुतिरूप इष्टिवाले (धुनिव्रताय) मेघोंका चालनरूप कर्मवाले (शवसे) गमनशील (शर्द्धाय) मरुतोंके बलको (प्र) प्राप्त हों ॥ ६ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाᳪसि
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ७

अथ सप्तमी। अनानतः पारुच्छेपिर्ऋषिः छ० अत्यष्टिः। पुनानः पूयमानः सोमः हरिण्या हरितवर्णया अया अनया रुचा रोचमानया धारया विश्वा सर्वाणि द्वेषांसि द्वेष्टॄणि रक्षांसि तरति विनाशयति तत्र दृष्टान्तः सूरो न यथा सूर्यः सयुग्वभिः सह युक्तैः रश्मिभिः तमांसि हिनस्ति तद्वत् सयुग्वभिरिति द्विरुक्तिरादरार्था। यद्वा। धारया युक्तः सोमो युक्तैस्तेजोभिः सह रक्षांसि तरति। तस्य पृष्ठस्य पृष्ठ इति धारक उच्यते जगतो धारकस्य सोमस्य पतंती धारा रोचते दीप्यते। पुनानः पूयमानः हरिः हरितवर्णः सोमः अरुषः आरोचमानो भवति। यद् यः सोमः सप्तास्येभिः रसाहरणशीलास्यैः ऋक्वभिः स्तुतिमद्भिः, ऋक्वभिस्तेजोभिः विश्वा विश्वानि सर्वाणि रूपाणि परियाति परितो व्याप्नोति। पृष्ठस्य सुतस्य इति साम्न ऋचः पाठौ ॥७॥

(पुनानः) पवित्र करताहुआ सोम (हरिण्या) हरे वर्णकी (अया) इस (रुचा) प्रकाशवती धारासे (विश्वा) सकल (द्वेषांसि) द्वेष करने

वाले राक्षसोंको (तरति) विनष्ट करता है (सूरः न) जैसे सूर्य (सुयुग्वभिः) मिलीहुई किरणोंसे अन्धकारोंको नष्ट करता है (पृष्ठस्य) तिस जगत्को धारण करनेवाले सोमकी (धारा) धारा (रोचते) दीप्त होती है (पुनानः) पवित्र करता हुआ (हरिः) हरे वर्णका सोम (अरुषः) दमकता है (यत्) जो सोम (सह्मात्येभिः) रसलानेवाले (ऋक्वभिः) स्तोताओंसे (ऋक्कभिः) तेजोंसे (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपोंको (परियाति) व्यापता है ॥ ७ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३
अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतु-
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
मर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।
३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि
१ २ ३ १ २ ३ १ २
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८॥

अथ अष्टमी । नकुल ऋषिः । छ० अष्टि । सवितारं प्रेरकं देवं वाग्व्यापारेण अभि अर्चामि सर्वतः पूजयामि । कीदृशं ? कविक्रतुं क्रांतप्रज्ञं सत्यसवं अवितथप्रेरणम् । रत्नधां रमणीयानां धनानां दातारम् अभिप्रियं सर्वतः प्रीतियुक्तम् । मतिं मननीयं स्तुत्यम् यस्य सवितुः भा दीप्तिः ऊर्ध्वा उन्नता सती ओण्यो द्यावापृथिव्योः । अदिद्युतत् अतिशयेन दीप्यते । यस्य सवितुः सवीमनि प्रसवे सति अमतिः सर्वेषां कान्तिः अदिद्युतत् भृशं प्रकाशते । सः सुक्रतुः शोभनकर्मा हिरण्यपाणिः हिरण्यहस्तः सविता देवः कृपा कृपया स्वः स्वर्गं निमिसभूते सति अमिमीति इमं सोमम् इयत्तया मितवान् । यद्वा । स्वः सर्वस्या कृपया सङ्कल्पेन न निरमिमीत ॥ ८ ॥

(कविक्रतुम्) सर्वज्ञ (सत्यसवम्) सच्ची प्रेरणा करनेवाले (रत्नधाम्) रमणीय धनोंके देनेवाले (अभिप्रियम्) सब ओर से प्रिय (मतिम्) स्तुतिके योग्य (त्यम्) उन (सवितारम्) प्रेरक (देवम्) देवको (अर्चामि) पूजता हूँ (यस्य) जिस सविताकी (भाः) दीप्ति (ऊर्ध्वा) ऊँची होकर (ओण्योः) द्यावा पृथिवीमें (अदिद्युतत्) अत्यंत दीप्त होती है (सवामनि) जिसका आविर्भाव होनेपर (अमतिः) सब की कान्ति अत्यंत दिपती है (सुक्रतुः) वह सुन्दर कर्मवाला (हिरण्य-

पाणिः) सविता देवता (कृपा) दया करके (स्वः) स्वर्ग के निमित्त (अभिगीत) इस सोमका पान करता है ॥ ८ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुꣳ
२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य
३ १ २
सर्पिषः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । परुच्छेप ऋषिः । छ० अत्यष्टिः । अग्निं सर्वासां देवसेनानामग्रगण्यम् यज्ञेऽग्रं नीयमानं वा । होतारम् अस्मद्यागं प्रति देवानामाह्वातारम् । यद्वा । होमनिष्पादकं होतारं जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभः (७, १५) इति यास्कवचनात् । अग्निमद्य होतारमवृणीतेति श्रुतेः । अग्निमग्न आवहेति च अग्नेराह्वातृत्वं प्रसिद्धम् । अग्निं होतारं मन्ये इत्येवं प्रतिविशेषणं मन्ये इति सम्बन्धः । यद्वा यागनिष्पत्तरेवोपलक्षितत्वादेतदेव विधेयविशेषणम् । इतराणि वक्ष्यमाणविशेषणानि स्तुतिपराणि दास्वन्तम् अतिशयेन दानवन्तं वसोः प्रशस्यस्य सर्वेषां सहसः सूनुम् बलस्य पुत्रमग्निं मन्थनकाले बलेन मथ्यमान उत्पद्यत इति तत्पुत्रत्वमुपचर्यते । जातवेदसं जातानां वेदितारं जातप्रज्ञं जातधनं वा जातवेदः शब्दो यास्केन बहुधा निरुक्तः अग्नेर्जातवेदस्त्वे दृष्टान्तः विप्रं न जातवेदसञ्जातधियं मेधाविनं ब्राह्मणमिव तं यथा बहु मन्यते तथा त्वामपि स्तौमीत्यर्थः । उक्तगुणविशिष्टो यो देवः स्वध्वरः शोभनयज्ञवान् यज्ञं सम्यक् निर्वहन् । ऊर्ध्वया उन्नतया उत्कृष्टया देवाच्या देवान् पूजयन्त्या देवान् प्रत्युक्तया वा कृपा कृपया सामर्थ्यलक्षणया देवान् प्रयुक्तया कृपेति (६,८) यास्कः तेभ्यो हविर्वहनबुद्ध्या युक्तः सन् शुक्रशोचिषः दीप्ततेजस्कस्य आजुह्वानस्य आ समन्ताद् हूयमानस्य सर्पिषः सरणशीलस्य घृतस्य विलापनेन दीप्तस्याज्यस्य विभ्राष्टिं विशे-

देण भ्राजमनु स्वयमपि तदाज्यं वह्नि कामयते स्वीकरोतीत्यर्थः । वसोः यसुम् इति साम्न ऋचः दाशौ ॥ ९ ॥

(अग्निम्) सकल देवसेनाओंमें अग्रणी या यज्ञोंमें आगे किये जाने वाले अग्निको (होतारम्) हमारे यज्ञमें देवताओंका आह्वान करने वाला वा होमको सुसिद्ध करनेवाला (दास्वन्तम्) अधिक धन देने वाला (वसोः सहसः) सबके प्रशंसनीय बलका (सूनुम्) पुत्र (जातवेदसं विप्रं न) विद्याओंके ज्ञाता बुद्धिमान् ब्राह्मणकी समान (जातवेदसम्) परममान्य (मन्ये) मानता हूँ (यः देवः) ऐसे गुणोंवाला जो अग्नि देवता (स्वध्वरः) भलेप्रकार यज्ञका निर्वाह करता हुआ (ऊर्ध्वया) ऊँची और श्रेष्ठ (देवाच्या) देवताओंका पूजन करनेवाली वा देवताओंके प्रति कहीहुई (कृपा) सामर्थ्यरूप कृपा करके अर्थात् देवताओंके अर्थ हवि पहुँचानेकी इच्छा करके (शुक्रशोचिषः) दीप्ततेजस्वी (आजुह्वानस्य) चारों ओरसे होमे जातेहुए (सर्पिषः) घीके (विभ्राष्टिम् अनु) विशेषरूपसे भस्म होने पर स्वीकार करता है ॥ ९ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
त्व त्यन्नर्य्यं नृपोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि
३ १ ३ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रवाच्यं कृतम् । यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु
३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १
रिणन्नपः भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदे-
२र ३ १ ३ ३ १ २र
दूर्जँ शतक्रतुर्विदेदिषम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । गृत्समद ऋषिः छं० अतिशक्वरी । नृतः सर्वेषां नर्त्त-यितः प्रवर्त्तयितः । हे इंद्र ! नर्य्यं नराणां हितकरम् । प्रथमं प्रतमं प्रथमं प्रतमम् इति यास्कः पूर्व्यं पूर्वकालभवं त्वया कृतं तव त्यद् तदपः कर्म दिवि स्वर्गलोके प्रवाच्यं देवैः प्रकर्षेण वक्तव्यं श्लाघनीयमित्यर्थः किन्तत्? देवस्य विजिगीषो असुरस्य असु असुं प्राणं रिणन् हिंसन् त्वम् अपः उदकानि तेन निरुद्धानि अरिणाः प्रैरय । इति यदेतत् कर्म तत् प्रवाच्यमिति समन्वयः । परोक्षनिर्देशविशिष्टः सः इंद्रः विश्वं व्याप्तम् अदेवं तमोरूपम् असुरम् ओजसा बलेन अभिभुवत् अभिभवतु । किञ्च

शतक्रतु इन्द्रः ऊर्जम् बलं विदेत् लम्भयेत । इषं हविर्लक्षणमन्नं च विदेत् विद्लृ लाभे (तु० उ०) । यो यद् इति विदेद् विश्वा इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ १० ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिक-मार्ग प्रवर्त्तक श्रीवीर बुक्क भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दोऽव्याख्याने ऐन्द्रकाण्डे

चतुर्थोऽध्यायः ।

समाप्तम् ऐन्द्रम् पर्व ऐन्द्रकाण्डं वा इति द्वितीयं-पर्व

(नृतः) सबको नचानेवाले अर्थात् प्रेरणा करनेवाले (इंद्र) हे इन्द्र (नर्यम्) मनुष्योंका हितकारी (प्रथमम्) पहिलेका (पूर्व्यम्) पुरातन (तव) तुम्हारा (त्यत्) वह प्रसिद्ध (अपः) कर्म (दिवि) स्वर्गमें (प्रवाच्यम्) विशेषकर देवताओंसे प्रशंसा पाने योग्य है । वह कर्म यह है कि तुमने (देवस्य) विजय चाहने वाले असुरके (असु) प्राणको (शवसा) बलसे (रिणन्) नष्ट करते हुए (अपः) उसके रोके हुए जलोंको (अरिणः) प्रेरणा करी, वह तुम (विश्वम्) व्याप्त (अदेवम्) अन्धकाररूप असुरका (ओजसा) बलसे अभि-भुवः) तिरस्कार करो (शतक्रतुः) इन्द्र (ऊर्जम्) बलको (इषम्) हविरूप अन्नको (विदेत्) पावे ॥ १० ॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः चतुर्थाध्यायश्च समाप्तः द्वितीयं ऐन्द्रं पर्व च समाप्तम्



अथ पञ्चमाध्याय आरभ्यते

पवमानं पर्व

अस्मिन्नध्याये सोमः स्तूयते ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥
तृतीयं पर्व सोमस्य पवमानस्य संस्तुतिः ।
उच्चात इति गायत्र्यश्चत्वारिंशच्चतुर्युताः ॥

तत्र प्रथमे खण्डे–सैषा प्रथमा । अमहीयुर्ऋषिः । छ० गायत्री दे० सोमः । ते तव सम्बन्धिनः अन्धसः रसस्य उच्चा उपरि जातम् जन्म । अपि च । दिवि द्युलोके सत् विद्यमानम् उग्रम् उद्गूर्णम् शर्म सुखं महि महत् श्रवः अन्नं च भूम्याददे इत्यत्र यमामनन्ति । विसर्जनीयलोपः सांहितिकः भूमिः भौमजन्यः अस्मादृशः भूमिष्ठैराददीयत इत्यर्थः ॥१॥

(सोम) हे सोम (ते) तेरे (अन्धसः) रसका (उच्चा) ऊपर (जातम्) जन्म हुआ है (दिवि) द्युलोकमें (सत्) विद्यमान (उग्रम्) प्रभावशाली (शर्म) सुखको (महि) बहुत (श्रवः) अन्नको (भूम्याददे) भूमिमें जन्मनेवाले हम पाते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३
स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया इन्द्राय
१ २ ३ २
पातवे सुतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मधुच्छन्दा ऋषिः हे सोम! इन्द्राय पातवे पातुं सुतः अभिषुतस्त्वं स्वादिष्ठया स्वादुतमया मदिष्ठया अतिशयेन मादयित्र्या धारया पवस्व क्षर ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेको (सुतः) संपादन किया हुआ तू (स्वादिष्ठया) परम स्वादयुक्त (मदिष्ठया) परम हर्ष देनेवाली (धारया) धारसे (पवस्व) क्षरित हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
विश्वा दधान ओजसा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । भृगुर्वारुणिर्ऋषिः । हे सोम ! त्वं वृषा स्तोतॄणामभिमतम् वर्षकः सन् धारया त्वदीयया पवस्व द्रोणकलशमागच्छ । पवतिर्गतिकर्मा आगतस्त्वं यदास्माभिरिन्द्राय दीयते तदा मरुत्वते सहाया मरुतो यस्य सन्ति तस्मै इन्द्राय मत्सरः मदकरश्च भव । कीदृशः ? विश्वा विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा धनानि ओजसा आत्मीयेन बलेन युक्तः सन् स्तोतृभ्यस्तानि प्रयच्छन् त्वं मादयिता भवेति समन्वयः ३

हे सोम ! तुम (वृषा) स्तोताओंके मनोरथोंकी वर्षा करते हुए (धारया) अपनी धारासे (पवस्व) कलशमें आइये (च) और आनेपर जब हम तुम्हें इन्द्रको अर्पण करें तब (मरुत्वते) जिसके मरुत् सहायक हैं ऐसे तिस इंद्रके निमित्त (विश्वा) सकल धनोंको (ओजसा) अपने बलसे (दधानः) धारण करते हुए (मत्सरः) मदकारी होओ ॥ ३ ॥

२ ३ २ २ १,२ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशꣳसहा ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अमहीयुर्ऋषिः । हे सोम ! ते तव देवावीः देवकामः अघशंसहा राक्षसानां हन्ता वरेण्यः सर्वैर्वरणीयो मदः मदकरः यः रसो विद्यते तेन रसेन अन्धसा आदरणीयेन पवस्व क्षर ॥ ४ ॥

हे सोम (ते) तेरा (देवावीः) देवताओंका इच्छित (अघशंसहा) राक्षसोंका नाशक (वरेण्यः) परमश्रेष्ठ (मदः) हर्षदायक (यः) जो (रसः) रस है (तेन) उस (अन्धसा) आदर योग्य रससे (पवस्व) कलशमें आओ ॥ ४ ॥

३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
१ २ ३ १ २
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । त्रित ऋषिः । तिस्रो वाचः ऋगादिभेदेन त्रिविधाः उदीरते स्तुतीः प्रोद्गायन्ति ऋत्विजः । धेनवः आशिरेण प्रीणयित्र्यः गावः मिमन्ति शब्दायन्ति दोहार्थम् । हरिः हरितवर्णः सोमश्च कनिक्रदत् शब्दं कुर्वन् गच्छति कलशम् ॥ ५ ॥

ऋत्विज् (तिस्रः) ऋक् आदि भेदसे तीनप्रकारकी (वाचः) स्तुतियोंको (उदीरते) उच्चारण करते हैं (धेनवः) दूधसे तृप्त करने वाली (गावः) गौएँ (मिमंति) दुहनेके निमित्त रँभाती हैं (हरिः) हरी सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (एति) कलशमें जाता है ५

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । कश्यप ऋषिः । हे इन्दो ! सोम ! मधुमत्तमः अतिशयेन मधुमान् अर्कस्य अर्चनीयस्य यज्ञस्य योनिं स्थानं आसदम् उपवेष्टुं मरुत्वते इन्द्राय इन्द्रार्थं पवस्व क्षर ॥ ६ ॥

(इन्दो) हे सोम (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुर तू (अर्कस्य योनिम्) पूजनीय यज्ञस्थानमें (आसदम्) विराजमान होनेको (मरुत्वते) इंद्र के अर्थ (पवस्व) कलशमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

२ १ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
असाव्यꣳशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३ २उ ३ १ २
श्येनो न योनिमासदत् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । जमदग्निर्ऋषिः । गिरिष्ठाः पर्वते जातः अंशुः सोमः मदाय मदार्थम् असावि अभिषुतः । अप्सु वसतीवरीषु दक्षः प्रवृद्धश्च भवति । किञ्च । श्येनो न यथा श्येनो वनादागत्य स्थानमासीददिति तद्वत् अयं सोमः योनि स्वकीयस्थानम् आ सदत् आसीदति ॥ ७ ॥

(गिरिष्ठाः) पर्वतमें उत्पन्न हुआ (अंशुः) सोम (मदाय) हर्षके अर्थ (असावि) संपादन किया गया (अप्सु) जलोंमें (दक्षः) वृद्धि

को प्राप्त होता है (श्येनः न) जैसे श्येन पक्षी वनसे आकर अपने स्थान में स्थित होता है तैसे ही यह सोम (योनिम् आसदत्) अपने स्थान में स्थित होता है ॥ ७ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । दृढच्युत आगस्त्य ऋषिः । हे हरे ! हरितवर्ण पापहर्तर्वा सोम ! दक्षसाधनः दक्षो बलन्तस्य साधकः मदः मदकरश्च त्वं पवस्व क्षर । किमर्थम् देवेभ्यः इन्द्रादिभ्यः पीतये पानाय । तथा मरुद्भ्यः वायवे च पीतये पानाय पवस्य क्षर ॥ ८ ॥

(हरे) हे पाप हरने वाले सोम ! (दक्षसाधनः) बलका साधक (मदः) मदकारी तू (देवेभ्यः पीतये) इन्द्रादि देवताओं के पीने के निमित्त (मरुद्भ्यः) वायु देवताके पीनेके निमित्त (पवस्व) कलश में पूर्ण हो ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।

१ २ ३ १ २

मदेषु सर्वधा असि ॥ ९ ॥

अथ नवमी ऋ० असितदेवलौ । अस्याः परस्याश्च काश्यपोऽसित ऋषिः । अयं सोमः पवित्रे पर्य्यक्षरत् परिक्षरति । स्वानः सुवानः अभिषूयमाणः गिरिष्ठाः गिरिस्थायी गिरौ वर्त्तमान इत्यर्थः । स त्वं मदेषु मादकेषु स्तोतृकेषु सर्वधा असि सर्वस्य धाता दाता वा भवसि । स्वानः सुवानः इति अक्षरन् अक्षाः इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ ९ ॥

(सोमः) यह सोम (पवित्रे) शुद्ध पात्रमें (पर्यक्षरत्) पूर्ण हो रहा है (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न हुआ (स्वानः) संपादन किया जाता हुआ तू (मदेषु) स्तोता आदिकों में (सर्वधा असि) सकल अभीष्टोंका दाता है ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २

परि प्रिया दिवः कविर्वयाꣳसि नप्त्योर्हितः ।

३ १ २ ३ १ २

स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १० ॥

अथ दशमी । कविर्मेधावी । कविक्रतुः अन्तः प्रज्ञः क्रान्तकर्म्मा वा सोमः नतयोः अधिषवणफलकयोः हितः निहितः । दिवः द्युलोकस्य प्रिया प्रियाणि वयांसि वयन्ति गच्छन्तीति वयांसि ग्रावाणः तानि । तथा च मन्त्रवर्णः श्येना अतिथयः पर्वतानाम् ककुभः इति । स्वानैः अभिषुण्वद्भिरध्वर्यु कानि परियाति गच्छति। स्वानैःसुधानैः इति सामग ऋचः पाठौ ॥ १० ॥

(कविक्रतुः) बुद्धिवर्द्धक सोम (नप्त्योः) अधिषवणके फलकोंमें (हितः) स्थापित हुआ (दिवः) द्युलोकके (प्रिया) प्यारे (वयांसि) जाने वालोंको (स्वानैः) अध्वर्युओंके सहित (परियाति) प्राप्त होता है १०

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।

३ २ ३ १ २

सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

अथ द्वितीये खण्डे—सैषा प्रथमा । श्यावाश्व ऋषिः । सोमासः सोमाः मदच्युतः मदस्राविणः सुताः अभिषुताः सन्तः मघोनां हविष्मतां नः अस्माकं सम्बन्धिनि विदथे यज्ञे श्रवसे अन्नाय कीर्त्तये वा प्राक्रमुः प्रगच्छन्ति । मघोनां मघोनः इति पाठौ ॥ १ ॥

(मदच्युतः) आनन्दको बरसानेवाले (सोमासः) सोम (सुताः) अभिषुत होने पर (मघोनाम्) हवि वाले (नः) हमारे (विदथे) यज्ञमें (श्रवसे) अन्न और कीर्तिके निमित्त (प्राक्रमुः) पात्रोंमें प्राप्त होते हैं १

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः ।

१ २ ३ १ २

वनानि महिषा इव ॥ २ ॥

अथ द्वितीय । त्रित ऋषिः । विपश्चितः मेधाविनः सोमासः सोमाः, प्र नयन्त पात्राणि प्रति गच्छन्ति । किमिव ? अप ऊर्मयः अप इति षष्ठी व्यत्ययेन द्वितीया । अपामूर्मयः अतएव बह्वृचाः अपान्नयन्तीति पठन्ति ते यथा सततमुद्भवन्ति तद्वत् । बाहुल्येऽयं दृष्टांतः । अथवो गमने दृष्टान्तान्तरमभिधीयते वनानि महिषाः प्रवृद्धा मृगा इव । अथवा स्वाश्रयात् प्रद्रवणे प्रथमो दृष्टांतः । द्वितीयस्तु दशापवित्रादधः प्रदेशे ॥ २ ॥

(विपश्चितः) बुद्धिवर्धक (सोमासः) सोम (अपः ऊर्मयः) जलकी तरङ्गोंकी समान (महिषाः वनानि इव) जैसे पशु वनमें जाते हैं तैसे (प्र नयन्त) पात्रोंमें प्राप्त होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पवस्वेन्द्रो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने ।

२ ३ २ ३ १ २

विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अमहीयुऋषिः हे इन्दो ! सोम ! सुतः अभिषुतः वृषा सेक्ता त्वं पवस्व धारया क्षर । जने जनपदेषु नः अस्मान् यशसः यशस्विनः कृधि कुरु। विश्वा सर्वान् द्विषः द्वेष्टॄन् शत्रून् अप जहिमारय

(इन्दो) हे सोम (सुतः) खींचा हुआ तू (वृषा) मनोरथोंको पूर्ण करने वाला होता हुआ (पवस्व) धारासे पात्रमें प्राप्त हो (जने) देशमें (नः) हमें (यशसः) यश वाला (कृधि) कर (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रुओंको (अपजहि) नष्ट कर ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।

१ २ ३ १ २

पवमान स्वर्दृशम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । भृगुऋषिः । हे सोम ! त्वं वृषा अभिलषितफलानां वर्षिता असि हि भवसि खलु । तस्मात् हे पवमान ! पूयमान पुनान वा सोम । स्वर्दृशं सर्वस्य द्रष्टारं भानुना तेजसा द्युमन्तं दीप्तिमन्तम् अतिशयेन तेजस्विनमित्यर्थः । स्तुतिमन्तं वा त्वा त्वां हवामहे यज्ञेषु आह्वयामहे ॥ ४ ॥

हे सोम तू (हि) निश्चय (वृषा) इच्छित फलोंकी वर्षा करने वाला (असि) है, इस कारण (पवमान) हे पवित्र करने वाले सोम ! (स्वर्दृशम्) सबके द्रष्टा (भानुना) तेजसे (द्युमन्तम्) दिपते हुए (त्वा) तुम्हें (हवामहे) यज्ञोंमें आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्दुः पविष्ठ चेतनः प्रियः कवीनां मतिः ।

३ १ २र ३ १ २

सृजदश्वꣳ रथीरिव ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी अस्या उत्तरस्याश्च कश्यप ऋषिः। चेतनः प्रज्ञापकः प्रियः देवानां प्रीतिकरः। इंदुः सोमः कवीनां क्रान्तकर्मणां स्तोतॄणां मतिः मत्या स्तुत्या पविष्ट पवने। अश्वं हयं रथीरिव रथीव ऊर्मिम्। सृजन् सृजति॥ ५॥

(चेतनः) चेतनता देनेवाला (प्रियः) देवताओंका प्यारा (इंदुः) सोम (कवीनाम्) ऋत्विजोंकी (मतिः) स्तुतिसे (पविष्ट) पात्रमें पूर्ण होता है (अश्वम्) घोड़ेको (रथीरिव) रथी जैसे तैसे ही (सृजत) धारको रचता है॥ ५॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।

३ १ २ ३ १ २र

शुक्रासो वीरयाशवः॥ ६॥

अथ षष्ठी। वाजिनः बलवन्तः आशवः वेगवन्तश्च सोमासः सोमाः गव्या गवेच्छया अश्वया अश्वेच्छया वीरया वीरेच्छया च। प्रासृक्षत ऋत्विग्भिः प्रकर्षेण सृज्यन्ते॥ ६॥

(वाजिनः) बलवान् (आशवः) वेगवान् (सोमासः) सोम (गव्या) गौकी इच्छासे (अश्वया) घोड़ोंकी इच्छासे (वीरया) पुत्रोंकी इच्छासे (प्रासृक्षत) ऋत्विजोंके द्वारा अधिकतासे रचेगये हैं

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः।

३ १ २र३ १ २

वायुमा रोह धर्मणा॥ ७॥

अथ सप्तमी। निध्रुविः काश्यप ऋषिः। हे सोम! देवः द्योतमानस्त्वं पवस्व धारया क्षर। अपि च तवं मदः मदकरो रस. आयुषक् अनुषक्तं यथा भवति तथा इंद्रं प्रति गच्छतु। अपि च त्वं वायुं धर्मणा धारकेण रसेन आरोह प्राप्नुहि। देव आयुषक् देवायुषग् इति पाठौ॥ ७॥

हे सोम (देवः) प्रकाशवान् तू (पवस्व) धारासे पात्रमें पूर्ण हो (ते) तेरा (मदः) आनंददायक रस (आयुषक्) मिलताहुआ (इन्द्रम्) इंद्रको (गच्छतु) प्राप्त हो (धर्मणा) धारक रसरूपसे (वायुम्) वायुको (आरोह) प्राप्त हो॥ ७॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।

१ २ २२ ३२
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी अमहीयुर्ऋषिः। पवमानः सोमः बृहत् महत् वैश्वानरं वैश्वानराख्यं ज्योतिः तेजः दिवः द्युलोकस्य चित्रं विचित्रं तन्यतुं न अशनिमिव अजीजनत् अजनयत् ॥ ८ ॥

(पवमानः) सामने (बृहत्) बड़भारी (वैश्वानरं ज्योतिः) वैश्वानर नामवाले तेजको (दिवः) द्युलोकके (चित्रम्) विचित्र (तन्यतुं न) वज्रकी समान (अजीजनत्) उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ९ ॥

अथ नवमी। ऋयोः काश्यपोऽसित ऋषिः। स्वानासः सुवानाः अभिषूयमाणाः इन्दवः दीप्ताः। बर्हणा महत्या गिरा स्तुतिरूपया वाचा मधो इति विभक्तिव्यत्ययः (३,१,८५)। मधवो मदकराः सोमाः धारया सह देवानां मदाय तदर्थं पर्यर्षन्ति दशापवित्रादधः क्षरन्तीत्यर्थः। मधो सुता इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ ९ ॥

(स्वानासः) निचोड़ेजाते हुए (इन्दवः) दिपते हुए (बर्हणा) बड़ी (गिरा) स्तुतिरूप वाणीसे (मधो) मदकारी सोम (धारया) धारासे (मदाय) देवताओंके मदके अर्थ (पर्यर्षन्ति) दशापवित्रसे नीचे टपकते हैं ९

१ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
परि प्रासिष्यदत्कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
३ १ २र ३ १ २
कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

अथ दशमी। परि प्रासिष्यदत् परिस्यन्दते कविः मेधावी सिन्धोरूर्मावधिश्रितः आश्रितः सन् पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं कारुं स्तोतारं बिभ्रत् धारयन् सोमः परिस्यन्दते इति सम्बन्धः। कारुं कारम् इति पाठौ

(कविः) बुद्धिवर्धक (सिंधोः) सिंधुकी (ऊर्मौ) तरंगमें (अधिश्रितः) आश्रित हुआ (पुरुस्पृहम्) अनेकोंके स्पृहायोग्य (कारुम्) स्तोताको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ सोम (परिप्रासिष्यदत्) पात्रमें टपकता है ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

२ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।
१ २ ३ १ २
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

अथ तृतीय खण्डे—सैषा प्रथमा । असहीयुर्ऋषिः सुजातं सम्यक् प्रादुर्भूतम् अप्तुं वसतीवरीभिः प्रेरितं भङ्गं शत्रूणाम्भञ्जकं गोभिः गोर्विकारैः पयोभिः परिष्कृतम् अलंकृतम् संस्कृतम् । इन्दुं सोमं देवाः इन्द्रादयः उपायासिषुः उपगच्छन्ति ॥ १ ॥

(सुजातम्) सम्यक् प्रकार प्रकट हुए (अप्तुम्) जलोंके प्रेरणा करेहुए (भङ्गम्) शत्रुओंके नाशक (गोभिः) गोघृतादिसे (परिष्कृतम्) संस्कार किये हुए (इन्दुम्) सोमको (देवाः) देवता (उपायासिषुः) प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विचर्षणिः द्रष्टा पुनानः सोमः विश्वाः सर्वाः मृधः शत्रुसेनाः अभ्यक्रमीत् अभिक्रामति । विप्रं मेधाविनं तं सोमं धीतिभिः शुचिभिर्वा शुम्भन्ति अलं कुर्वन्ति ।

(विचर्षणिः) द्रष्टा (पुनानः) सोम (विश्वाः) सब (मृधः) शत्रुसेनाओंपर (अभ्यक्रमीत्) आक्रमण करता है (विप्रम्) उस मेधावी सोमको (धीतिभिः) शुद्धियोंसे (शुम्भन्ति) अलंकृत करते हैं

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
आविशन् कलशꣳ सुतो विश्वा अर्षन्नभि
२र २ ३ १ २
श्रियः इन्दुरिन्द्राय धीयते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ऋ० जमदग्निः । सुतः अभिषुतः सोमः कलशं द्रोणम् आ विशन् विश्वाः सर्वाः श्रियः सम्पदः अभ्यर्षन् अभितो गमयन् इन्दुः दीप्तः सोमः इन्द्राय इन्द्रार्थं धीयते दशापवित्रे अध्वर्युभिर्निधीयते ॥ ३ ॥

(सुतः) निकालाहुआ (कलशम् आविशन) कलशमें प्रवेश करता हुआ (विश्वाः) सब (श्रियः) सम्पदाओंकी (अभ्यर्षन्) वर्षा करताहुआ (इन्दुः) सोम (इन्द्राय) इंद्रके अर्थ (धीयते) स्थापन कियाजाता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ २
असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
१ २ ३ १ २र
कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । प्रभूवसुर्ऋषिः । रथ्यो यथा रथसम्बन्धी अश्व इव स यथा विसृज्यते यज्ञे तद्वत् चम्वोः अभिषवणफलकयोः सुतः अभिषुतः सोमः पवित्रे असर्जि सृष्टोऽभूत् । तथाभूतो वाजी वेगवान् सोमः कार्ष्मन् काष्मणि युद्धे इतरेतराकर्षणात् । अत्र देवानामाकर्षणवति यज्ञाख्ये संग्रामे न्यक्रमीत् नितरां क्रामति ॥ ४ ॥

(रथ्यो यथा) जैसे रथका घोड़ा छोड़ दियाजाता है तैसे ही यज्ञमें (चम्वोः) अभिषवणके फलकोंमें (सुतः) निचोडाहुआ सोम (पवित्रे) पात्रमें (असर्जि) छोडागया, ऐसा (वाजी) वेगवाला सोम (कार्ष्मन्) यज्ञरूप युद्धमें (न्यक्रमीत्) आक्रमण करता है ॥ ४ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषाः अयासो अक्रमुः ।
१ २ ३ २उ ३ १ २ १
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ ५ ॥

अथ पंचमी । मेध्यातिथीर्ऋषिः । यत् ये भूर्णयः क्षिप्राः त्वेषाः दीप्ताः अयासः अयाः गमनकुशलाः कृष्णां त्वचम् अप घ्नन्तः अभिषवेण निरस्यन्तः त्वग्भिः सम्वरणकर्मा (तु० पं०) ईदृग्भूताः सोमाः प्राक्रमुः यज्ञं प्रवर्त्तयन्ति । तत्र दृष्टान्तः गावो न उदकानीव नानि यथा क्षिप्रमधः पतन्ति तद्वत् । गावः एव वा उपनीयन्ते ता यथा स्वगोष्ठमाशु गच्छन्ति तद्वत् । अथवा गावः स्तुतिवाचः ता यथा स्तुत्यं प्रति क्षिप्रं प्राप्नुवन्ति, तद्वत् यज्ञं प्रवर्त्तयन्ति तान् स्तुवे इति शेषः । यत् ये इति सामन् कान्तः पाठो ॥ ५ ॥

(यत्) जो (भूर्णयः) त्वरायुक्त (त्वेषाः) प्रकाशयुक्त (अयासः) गमनशील (कृष्णाम् त्वचम्) ढकनवाली अंधयारीको (अपघ्नन्तः) अभिषवमें दूर करनेहुए वह सोम (प्राक्रमुः) यज्ञको प्रवृत्त करते हैं

तहाँ दृष्टान्त-(गावः न) जैसे कि—गौएँ शीघ्रतासे गोठमें जाती हैं।

३ १ २ ३ १२ ३१२ ३२
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः।
३१ २र ३ १२
नुदस्वादेवयुं जनम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। अस्याः पूर्वस्याश्च निध्रुविर्ऋषिः हे सोम! मत्सरः मदकरः यः, त्वं मृधः हिंसकान् शत्रून् अप घ्नन् मारयन् क्रतुवित् अस्मभ्यं प्रज्ञां प्रयच्छन् पवसे क्षरसि स त्वं अदेवयुम् अदेवकामं जनं राक्षसवर्गं नुदस्व प्रेरय ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम (मत्सरः) मदकारी तू (मृधः) हिंसक शत्रुओं को (अपघ्नन्) नष्ट करताहुआ (क्रतुवित्) हमें ज्ञान देताहुआ (पवसे) पात्रमें पूर्ण होता है ऐसा तू (अदेवयुम्) देवताओंको न चाहने वाले राक्षसोंको (नुदस्व) दूर कर ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १२३ २ ३ २३१२
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः।
३ १ २र ३२
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। हे सोम! मानुषीः मनुष्याणां हितानि अपः उदकानि हिन्वानः प्रेरयन् त्वं यया धारया सूर्यम् रोचयः प्रकाशयः। तथा अया अनया धारया पवस्व क्षर ॥ ७ ॥

हे सोम (मानुषी) मनुष्योंके हितकारी (अपः) जलोंको (हिन्वानः प्रेरणा करता हुआ तू (यया) जिस धारासे (सूर्यम्) सूर्यको (रोचयः) प्रकाशित करता है (अया) इस धारासे (पवस्व) पात्रमें आओ ॥ ७ ॥

१ २ ३ २उ ३१२ ३ २३ १२
स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे।
३ १ २ ३२३२
वव्रिवाꣳसं महीरपः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। अमहीयुर्ऋषिः। हे सोम! यस्त्वं महीः महतीः अपः महान्त्युदकानि वव्रिवांसं निरुन्धानं वृत्राय वृत्रं हन्तवे हन्तुम् इन्द्रम् आविथ अरक्षः स त्वं पवस्व धारया क्षर। सोमं पीत्वा मत्तः सन्निन्द्रो महान्त्युदकानि रुन्धानं वृत्रं जघानेत्यर्थः ॥ ८ ॥

हे सोम तू (महीः) बहुत (अपः) जलोंको (वव्रिवांसम्) रोकने वाले (वृत्राय हन्तवे) वृत्रासुरके मारनेको (इंद्रं आविथः) इंद्रकी रक्षा कर (सः) वह तू (पवस्व) धारासे कलशको पूर्ण कर ॥ ८ ॥

३२ ३१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
३ १ २ ३ १ २र
अवाहन्नवतीर्नव ॥ ९ ॥

अथ नवमी । अमहीयुर्ऋषिः । हे इन्दो ! सोम ! अया अनेन रसेन वीती वीत्यै इंद्रस्य भक्षणाय परिस्रव परिक्षर । कीदृशेन रसेनेत्यत आह ते तव यः रसः मदेषु संग्रामेषु नवतीर्नव नवनवतिसंख्याकाः शम्बर-पुरीः अवाहन् जघान (अमुं सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निन्द्रः उक्तसंख्या-कान शम्बरपुरीर्जघानेति मत्वा रसो जघानेत्युपचारः) ॥ ९ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (अया) इस रससे (वीती) इंद्रके भक्षण करनेके निमित्त (परिस्रव) कलशमें टपक (ते) तेरा (यः) जो रस (मदेषु) संग्रामोंमें (नवतीर्नव) शम्बरकी निन्यानवे पुरियोंको (अवाहन्) नष्ट करता हुआ ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
परि द्युक्षꣳ सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा ।
३ १ २ ३ २ ३ २
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥ १० ॥

अथ दशमी । उचथ्य ऋषिः । द्युक्षं दीप्तं सनत् दीयमानं सैन्यं वा रयिम् धनं यस्य तादृशं वाजं बलम् अंधसा अन्नेन सह सोमः नः अस्माकं परिभरत् परितो हरतु प्रयच्छतु इत्यर्थः । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः हे सोम ! स्वानः सुवानोऽभिषूयमाणस्त्वम् पवित्रे आ अर्ष आभिमुख्येन क्षर । द्युक्षꣳसनद्रयिं द्युक्षःसनद्रयि इति, स्वानः सुवानः इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ १० ॥

(द्युक्षम्) दीप्त (सनत्) दिये जाते हुए (रयिम्) धनको (वाजम्) बलको (अंधसा) अन्न सहित (नः) हमें (परिभरत्) सोम सब प्रकारसे देय, हे सोम (स्वानः) अभिषुत होता हुआ (पवित्रे) कलश में (आअर्ष) सब ओरसे टपक ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खंडः समाप्तः ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः ।

१ २र

सꣳसूर्येण दिद्युते ॥ १ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे—सैषा प्रथमा । मेध्यातिथिर्ऋषिः । वृषा कामानां वर्षकः हरिः हरितवर्णः महान् पूज्यः मित्रो न यथा सखा तद्वत् दर्शतः दर्शनीयो यः सोमः अचिक्रदत् शब्दङ्करोति सोऽयं सोमः सूर्य्येण सह दिद्यते दिवि प्रकाशते । दिद्युते रोचते इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ १ ॥

(वृषा) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला (हरिः) हरेवर्णका (महान्) पूज्य (मित्रो न) मित्रकी समान (दर्शतः) दर्शनीय जो सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है वह सोम (सूर्येण सम्) सूर्यके साथ (दिद्युते) द्युलोकमें प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

२ ३ १ २ ३ १ २

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भृगुर्ऋषिः । हे सोम ! यष्टारो वयं ते तव स्वभूतं दक्षं बलम् अद्य अस्मिन् यागदिने आ अभिमुख्येन वृणीमहे सम्भजामहे । कीदृशम् ? मयोभुवं सुखस्य भावयितारं वह्निं धनादीनां प्रापकम् पान्तं शत्रुभ्यो रक्षकम् । पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं काम्यमानं बलमिति ॥ २ ॥

हे सोम ! हम यजन करने वाले (ते) तेरे (दक्षम्) बलको (अद्य) आज यज्ञके दिन (आ वृणीमहे) अभिमुख होकर आराधना करते हैं कैसा है वह बल (मयोभुवम्) सुखका देने वाला (वह्निम्) धन आदि प्राप्त करान वाला (पांतम्) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाला (पुरुस्पृहम्) जिसको अनेकों चाहते हैं ऐसा है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय ।

३ १ २ ३ १ २

पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। उचथ्य ऋषि। हे अध्वर्य्यो ! अद्रिभिः ग्रावभिः सुतम् अभिषुतं सोमं पवित्रे आनय प्रापय। एतदेव दर्शयति इंद्राय इंद्रस्य पातवे पानाय पुनाहि पुनीहि पावय। पुनाहि पुनीहि इति, आनय आसृजे इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ ३ ॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (सुतम्) निकाले हुए सोमरसको (पवित्रे) कलशमें (आनय) पहुंचाओ (इंद्राय पातवे) इंद्रके पानके निमित्त (पुनाहि) पवित्र करो ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।

२ ३ २ ३ १ २

तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। अवत्सार ऋषिः। मन्दी देवानां हर्षकः स सोमः तरत् स्तोतृन् पाप्मनः सकाशात् तारयन् धावति द्रोणकलशं गच्छति। धावतीति पुनरपि तदेवाहात्यन्तादरार्थं तरत्समन्दीधावतीति। यद्वा। अस्य ऋचो यास्केनोक्तार्थो द्रष्टव्यः। तद्यथा तरति स पापं सर्वं मन्दी यः स्तौति धावति गच्छत्यूर्ध्वां गतिं धारा सुतस्यान्धसो धारयाभिषुतस्य मन्त्रपूतस्य वाचा स्तुतस्येति (नि० प० १३, ६), ॥ ४ ॥

(सुतस्य) निचोड़े हुए (अन्धसः) सोम की (धारा) धारा से (मन्दी) जो इंद्रको हर्ष देता है (सः) वह (तरत्) पापसे तर जाता है (धावति) ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ पवस्व सहस्रिणꣳ रयिꣳ सोम सुवीर्यम् ।

३ १ २र

अस्मे श्रवाꣳसि धारय ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। निध्रुविर्ऋषिः। हे सोम ! त्वं सहस्रिणं बहुसंख्याकं सुवीर्य्यं शोभनसामर्थ्योपेतं रयिं धनम् आ पवस्व आभिमुख्येन क्षर अपि च अस्मे अस्मासु श्रवांसि अन्नानि धारय स्थापय॥ ५ ॥

(सोम) हे सोम तू (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्याके (सुवीर्यम्) श्रेष्ठ शक्तियुक्त (रयिम्) धनको (आ पवस्व) अभिमुख होकर वरसा और (अस्मे) हमारे विषैं (श्रवांसि) अन्नोंको (धारय) स्थापनकर ॥५॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
३ १ २ ३ १ २
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। प्रत्नासः पुराणाः केचित् आयः गमनवंतोऽश्वा नवीयः नवतरं पदम् अन्वक्रमुः अनुक्रमन्ते रूपकव्यवाहरेण सोमाः स्तूयंते रुचे दीप्त्यै तदर्थं सूर्य्यं जनन्त जनयंति ॥ ६ ॥

(प्रत्नासः) पुरातन (आयवः) गमनशील सोमोंने (नवीयः) नवीन (पदम्) स्थानको (अन्वक्रमुः) आक्रमण किया (रुचे) दीप्तिके अर्थ (सूर्यम्) सूर्यकी समान सोमको (जनन्त) उत्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
३ १ २ ३ २ ३-२
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। भृगुऋषिः। हे सोम ! द्युमत्तमः अतिशयेन दीप्तिमान् त्वं द्रोणानि प्रयोगबाहुल्यापक्षमेतद्बहुवचनम् द्रोणकलशानभिलक्षीकृत्य रोरुवत् पुनः पुनर्भृशं वा शब्दं कुर्वन् अर्ष आगच्छतु। दशापवित्रमध्यान्निर्गतः सोमः अविच्छिन्नधारया पतन् शब्दङ्करोति खलु। तत्र दृष्टांतः वनेषु वननीयेषु यज्ञेषु वनसम्बन्धिषु यज्ञगृहेषु वा योनौ स्थाने आसीदन् यद्वा। वनेषु योनौ भूमौ आसदन् पूर्वं स्थितः सन् यज्ञगृहम् अभ्यर्षतीति सम्बन्धः ॥ सीदन् योनौ वनेष्वासीदन् श्येनो न योनिम् इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ ७ ॥

(सोम) हे सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त दीप्तिमान् तू (द्रोणानि) कलशमें (रोरुवत्) वारंवार शब्द करता हुआ (वनेषु) यज्ञगृहोंमें (योनौ) स्थानमें (आसीदन्) प्रथम स्थित होता हुआ (अर्ष) आगमन कर ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
१ ३ १ २
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। कश्यप ऋषिः। हे सोम! वृषा कामानां वर्षकस्त्वं द्युमान् दीप्तिमान् असि। अपि च हे देव! द्योतमान सोम! वृषा त्वं वृषव्रतः वर्षणशीलकर्मासि। किञ्च हे सोम! वृषा त्वं धर्माणि देवानां मनुष्याणां च हितानि कर्माणि दध्रिषे दधिषे इति पाठौ॥ ८॥

(सोम) हे सोम! (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करने वाला तू (द्युमान्) दीप्ति वाला (असि) है और (देव) हे दिव्य सोम। (वृषा) मनोरथपूरक तू (वृषव्रतः) वर्षाके व्रत वाला है और हे सोम (वृषा) मनोरथपूरक तू (धर्माणि) देवता और मनुष्योंके हितकारी कर्मोंको (दध्रिषे) धारण करता है॥ ८॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः।

१ २ ३ १ २र

इन्दो रुचाभि गा इहि॥ ९॥

अथ नवमी। कश्यप ऋषिः। हे इन्दो! सोम! मनीषिभिः ऋत्विग्भिः मृज्यमानः शोध्यमानस्त्वम् इषे अस्माकमन्नाय धारया पवस्व क्षर रुचा रोचमानेनान्धसा गाः पशून् अभीहि अभिगच्छ॥ ९॥

(इन्दो) हे सोम (मनीषिभिः) ऋत्विजोंसे (मृज्यमानः) शोधन किया हुआ तू (इषे) हमें अन्न प्राप्ति करानेके लिये (धारया) धारा से (पवस्व) पात्रमें आगमन कर (रुचा) रुचिकर अन्न रूपसे (गाः) गौ आदि पशुओंको (अभीहि) प्राप्त हो॥ ९॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः।

२ ३ १ २ ३ २

अव्या वारेभिरस्मयुः॥ १०॥

अथ दशमी। असित ऋषिः। हे सोम! वृषा कामानां वर्षिता देवयुः देवकामः अस्मयुः अस्मत्कामश्च त्वम् अव्या अवेः वारेभिः वालैः कृते दशापवित्रे मन्द्राय मदकरया धारया पवस्व क्षर॥ अव्यावारेभिः अव्य। वारेषु इति पाठौ॥ १०॥

(सोम) हे सोम! (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (देवयुः) देवताओंका इच्छित (अस्मयुः) हमारा कामना किया हुआ तू (अव्याः) रक्षाकर (वारेभिः) बालोंसे रचे हुए पात्रमें (मन्द्राय) आनन्ददायक धारासे (पवस्व) प्राप्त हो॥ १०॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३क २र

अया सोम सुकृत्यया महांत्सन्नभ्यवर्धथाः ।

३ १ २र

मन्दान इद् वृषायसे ॥ ११ ॥

अथ एकादशी । कविः ऋषिः । हे सोम ! अया अनया सुकृत्यया शोभनया अभिषवादिलक्षणया क्रियया महान् पूज्यमानः सन् देवान् प्रति अभ्यवर्द्धथाः अभ्यवर्द्धय । मन्दानः-इत् मोदमानः एव वृषायसे वृषवदाचरसि यथा मोदमानोः वृषभः शब्दं करोति तथाभिषवेला-याम् उपरवेषु शब्दं करोषीत्यर्थः ! अभ्यवर्द्धथाः अभ्यवर्द्धत इति वृषायसे वृषायते इति च पाठः ॥ ११ ॥

(सोम) हे सोम ! (अया) इस (सुकृत्यया) सुन्दर क्रिया से (महान्) पूजित होते हुए (अभ्यवर्द्धथाः) देवताओंके निमित्त बढ़ा (मन्दान इत्) प्रसन्न होते हुए (वृषायसे) वृषकी समान शब्द करते हो ११

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः सचेतति ।

३ १ २र ३ २

हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । जमदग्निः ऋषिः । विचर्षणिः विद्रष्टा हितः पात्रे निहितः पवमानः शोध्यमानः अयं सोमः आप्यम् अप्सु भवं बृहत् महत् अन्नं हिन्वानः प्रेरयन् सचेतति सर्वैः संज्ञायते ॥ १२ ॥

(विचर्षणिः) विशेषरूपसे ज्ञानमय (हितः) पात्रमें स्थित (पव-मानः) शोधन क्रिया जाता हुआ (अयम्) यह सोम (आप्यम्) जलसे उत्पन्न हुए (बृहत्) बहुतसे अन्नको (हिन्वानः) देता हुआ (सचेतति) सब पुरुषोंसे जाना जाता है ॥ १२ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र

प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि ।

३ २ ३ २ ३ १ २

अभि देवाँ अयास्यः ॥ १३ ॥

अथ त्रयोदशी । अयास्य ऋषिः । हे इन्दो ! क्रियमान ! त्वं नः अस्माकं महे महते तुने धनाय प्रार्षसि प्रगच्छसि । न सम्प्रत्यर्थे अया-स्याख्यमृषिः तव ऊर्मिं तरङ्गं बिभ्रद् धारयन् देवान् यष्टुमभिगच्छति ।

(इंदो) हे सोम ! गीला होता हुआ तू (नः) हमारे (महे) बहुत से (तुने) धनके अर्थ (प्रार्षसि) कलशमें जाता है (न) इस समय (अयास्त्रः) ऋषिः (ऊर्मिम्) तुम्हारी तरङ्गको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (देवान् अभि) देवताओंका यजन करनेको आता है १३

३ १ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १४ ॥

अथ चतुर्दशी । अमहीयुः ऋषिः । सोमः मृधः हिंसकान् शत्रून् अपघ्नन् मारयन् अराव्णः शक्तौ सत्याम् धनानामदातृंश्च अपघ्नन् इंद्रस्य निष्कृतं स्थानं गच्छन् प्राप्नुवन् पवते धारया क्षरति ॥ १४ ॥

(सोमः) सोम (मृधः) शत्रुओंको (अपघ्नन्) मारता हुआ (अराव्णः) शक्ति होने पर धनका दान न करने वालोंको भी मारता हुआ और (इंद्रस्य) इंद्रके (निष्कृतम्) स्थानको (गच्छन्) प्राप्त होता हुआ (पवते) धारासे क्षरित होता है ॥ १४ ॥

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थ खण्डः समाप्तः ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ।

अथ पञ्चमे खण्डे—सैषा प्रथमा । छं० बृहती । भरद्वाजादयः सप्त ऋषयः । हे सोम ! पुनानः शोधकः अपः वसतीवरीः वसानः आच्छादयन् धारया अर्षसि गच्छसि द्रोणकलशे किञ्च रत्नधा रमणीयानां धनानां दाता त्वम् ऋतस्य यज्ञस्य योनि स्थानम् आसीदसि अपि च देवः द्योतमानः सोमः उत्सः प्रस्यन्दनशीलः सन् हिरण्ययः देवानाम् हितरमणीयो भवसि खलु देवो देव इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (पुनानः) पवित्र करनेवाला तू (अपः) जलोंको (वसानः) आच्छादन करताहुआ (धारया) धारासे (अर्षसि) द्रोणकलशमें जाता है (रत्नधा) रमणीय धनोंका देने वाला तू (ऋतस्य) यज्ञके (योनिम्) स्थानको (आसीदसि) प्राप्त होता है और (देवः) दिपता हुआ सोम (उत्सः) बहता हुआ (हिरण्ययः) देवताओंका हितकारी और रमणीय होता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः। दध-
१ २र ३ २ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
न्वाꣳयो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः २

अथ द्वितीया। हे ऋत्विजः! सुतम् अभिषुतं सोमः इतः अस्मात् कर्मणः ऊर्ध्वम् अथवा अस्मात् प्रदेशादूर्ध्वं परिषिञ्चत वसतीवरीभिः इतो षिञ्चत इत्यत्र संहितायां छान्दस रोरुत्वम्। आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम्। यश्च सोमः देवानाम् उत्तमं प्रशस्तं हविः भवति। अपि च नर्यः मनुष्याय हितः यः च सोमः अप्सु वसतीवरीषु अन्तर् अन्तरिक्षे वा दधन्वान् गच्छन् भवति। तं सोमम् अद्रिभिः ग्रावभिः अध्वर्युः सुषाव अभिषुतं चकार तं परिषिञ्चतेति समन्वयः॥ २॥

(यः) जो (सोमः) सोमः (उत्तमं हविः) देवताओंका श्रेष्ठ हवि होता है (नर्यः) मनुष्योंका हितकारी (यः) जो सोम (अप्सु, अन्तः) जलोंके भीतर (दधन्वान्) गमन करता है (सोमम्) जिस सोमको (अद्रिभिः, सुषाव) अध्वर्युने पाषाणोंसे निचोड़ा (सुतम्, इतः, परिषिञ्चत) उस निकाले हुए सोमरसको इस स्थानसे ऊपर को जलोंमें सींचो॥ २॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे३

अथ तृतीया। ऋ० अत्रिः। हे सोम! अद्रिभिः ग्रावभिः स्वानः अभिषूयमाणस्त्वम् अव्यया अविमयानि वाराणि वालानि पवित्राणि तिरस् कुर्वन् व्यवधायकानि कुर्वाणः सन् आ पवसे आभिमुख्येन क्षरसि। हरिः हरितवर्णः स सोमः चम्वोरधिषवणफलकयोरुपरिस्थिते कलशे विशत् प्रविशति। तत्र दृष्टान्तः जनो न यथा जनः पुरि पुरे प्रविशति। स त्वं वनेषु काष्ठनिर्मितेषु पात्रेषु सदः स्थानं दध्रिषे दधिषे इति साम्न ऋचः पाठौ॥ ३॥

(सोम) हे सोम (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (स्वानः) निचोड़ा हुआ तू (अव्यया, वाराणि) रक्षक बालोंको (तिरस्) व्यवधान करता हुआ (आ पवसे) अभिमुख होकर कलशमें प्राप्त होता है (हरिः) हरे वर्णका वह सोम (चम्वोः) अधिषवणके काष्ठोंपर धरे हुए कलश में (पुरि जनो न) जैसे नगरमें पुरुष प्रवेश करता है तैसे (विशत्)

प्रवेश करता है, वह तू (वनेषु) काठके पात्रोंमें (सद्मः) स्थानको (दधिषे) बनाता हुआ ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अँशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छाकोशं

३ १ २

मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । ऋ० विश्वामित्रः हे सोम ! त्वं देववीतये देवानां पानाय तदर्थम् अर्णसा वसतीवर्य्याख्येनोदकेन प्रपिप्ये प्राप्यायसे । तत्र दृष्टांतः सिन्धुः न यथा सिन्धुरुदकेन प्राप्यायते तद्वत् प्यायतेः लिटि लिटयङोश्चेति पीभावः ततः स त्वम् मदिरः मदकरः सुरादिरिव जागृविः जागरणशीलः यद्वा न सम्प्रत्यर्थे इदानीं मदकरो जागरणशीलस्त्वं अंशोः लताखण्डस्य पयसा मधुश्चुतम् रसेन मधुररसस्य क्षारयितारं कोशं द्रोणकलशम् अच्छ अभिगच्छति ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (त्वम्) तू (देववीतये) देवताओंके पीनेके अर्थ (सिन्धुः न) सिन्धुकी समान (अर्णसा) वसतीवरी नामक जलसे (प्रपिप्ये) वृद्धिको प्राप्त और पूर्ण होता है (न) इस समय (मदिरः) मदकारी (जागृविः) जागरणशील तू (अंशोः) लताके टुकड़ेके (पयसा) जलसे (मधुश्चुतम्) मधुरसको बहानेवाले (कोशम्) द्रोण कलशको (अच्छ) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् । अश्व-

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

येव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ५

अथ पञ्चमी । सोतृभिः पुण्वद्भिः स्वानः सुवानोऽभिषूयमाणः सोमः अवीनां स्नुभिः मात्स्पृत्स्नूनामुपसंख्यानमिति वार्त्तिकेन सानुशब्दस्य स्नुभावः समुच्छितैर्बालैः पवित्रैरधियाति अधि अधिकं गच्छति। उ इति प्रसिद्धौ । अश्वयेव वड़वयेव हरितवर्णया धारया याति । मन्द्रया मदकारिण्या धारया द्रोणकलशमधिगच्छति । उ ष्वाणः इषुवाणः इति पाठो ॥ ५ ॥

(सोतृभिः) निचोडनेवालोंसे (स्वानः) निचोड़ाजाता हुआ

(सोमः) सोम (अवीनाम्) अवियोंके (स्नुभिः) बालोंसे शुद्ध होकर (अधियाति) पहुँचता है (उ) यह प्रसिद्ध है (अश्वया इव) बड़वा के द्वारा जैसे (हरिता) हरी (धारया) धारा करके (याति) प्राप्त होता है (मन्द्रया) आनन्ददायक (धारया) धारा करके (याति) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

२ ३ १ २ १ १ २ ३ १ २

तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्दो दिवे दिवे ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३

पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीꣳरति

१ २

ताꣳइहि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे इन्दो ! सोम ! तव सख्ये सखिकर्मणि अहं दिवे दिवे अन्वहं रारण रमे, रणोर्लिटि उत्तमे णलि रूपम् । हे बभ्रो ! बभ्रुवर्ण ! सोम ! पुरूणि बहूनि रक्षांसि मां तव सख्येस्थितं न्यवचरन्ति नीचीनं चरन्ति बाधन्ते । ये मां बाधन्ते तान् परिधीन् रक्षसान् त्वम् अतीहि आगच्छ ॥ ६ ॥

(इन्दो) हे सोम (सख्ये) तेरे मित्रभावमें (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रारण) रमण करूँ (बभ्रो) हे सोम ! (पुरूणि) बहुतसे राक्षस (माम्) मुझे (न्यवचरन्ति) बाधा देते हैं (तान्) उन (परिधीन्) राक्षसोंको तू (अतीहि) नष्ट कर ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २र

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र

रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥७॥

अथ सप्तमी । ऋ० वसिष्ठः । हे सुहस्त्या ! हस्ते भवः हस्त्याः अंगुलयः, शोभनांगुलिक सोम ! मृज्यमानः शोध्यमानस्त्वं समुद्रे अंतरिक्षे कलशे वा वाचं शब्दम् इन्वसि प्रेरयसि । किञ्च, हे पवमान पूयमान सोम ! पिशङ्ग हिरण्यं रजतादिभिः पिशङ्गवर्णं बहुलं प्रभूतं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं रयिं धनम् अभ्यर्षसि स्तोतॄणामभिक्षरसि प्रयच्छसीत्यर्थः ॥ ७ ॥

(सुहस्त्या) हे सुन्दर अंगुलियोंसे संपादन करे हुए सोम ! (मृज्यमानः) पवित्र कियाजाता हुआ तू (समुद्रे) कलशमें (वाचम्) शब्द

को (इन्वसि) प्रेरणा करता है (पवमान) हे सोम ! (पिशङ्गम्) सोना चाँदी आदिसे पीतवर्ण (बहुलम्) बहुतसे (पुरुस्पृहम्) अनेकोंके चाहे-हुए (रयिम्) धनको (अभ्यर्षसि) स्तोताओंको देते हो ॥७॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । समुद्र-
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८॥

अथ अष्टमी । ऋ० विश्वामित्रः । आयवः गमनशीलाः सोमासः सोमाः मद्यं मद्करं मदम् आत्मीयं रसम् अभिपवंते अभितो निर्गमयंति । कुत्रेत्युच्यते समुद्रस्य अन्तरिक्षस्य अधिविष्टपे अधिकं समुच्छ्रितपवित्रे। यद्वा । समुद्रस्य यस्मात् समुद्द्रवन्ति रसाः तस्य कलशस्य अधि उपरि विष्टपे स्थाने पवित्रे निर्गमयंति । कीदृशाः ? मनीषिणः मनस ईशितारः मत्सरासः मद्कराः मदच्युतः मदकरेण रसेन च्यावयितारः । विष्टपे, विष्टपि मदच्युतः स्वर्विद इति च पाठौ ॥ ८ ॥

(आयवः) गमनशील (मनीषिणः) मनको प्रिय लगनेवाले (मत्सरासः) मदकारी (मदच्युतः) मदकारी रसको टपकानेवाले (सोमासः) सोम (समुद्रस्य) कलशके (विष्टपे) ऊपर (मद्यम्) मदकारी (मदम्) अपने रसको (अभिपवंते) सब ओरको निकालते हैं ॥ ८ ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ १
पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः । त्वं
२र ३ १ २ ३ १ २
विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणः ॥९॥

अथ नवमी । ऋ० काश्यपः हे सोम ! जागृविः जागरणशीलः प्रियः प्रीणयिता त्वं पुनानः पूयमानः सन् अव्याः मेष्या वारैः वालैर्निर्मिते दशापवित्रे परिक्षरसि । अङ्गिरस्तमः अङ्गिरसां वरिष्ठः विप्रः मेधावी त्वं पितॄणां नेता अभवः भवसि । स त्वं नः अस्मदीयं यज्ञं मध्वा मधुना आत्मीयेन रसेन मिमिक्ष संकुमिच्छसि । मिहेः सेचनार्थस्य (भ्वा० प०) सनि रूपम् ॥ ९ ॥

हे सोम ! (जागृविः) जागरणशील (प्रियः) तृप्त करनेवाले तुम (पुनानः) पवित्र होते हुए (अव्याः) भेड़ीके (वारैः) बालोंसे बने हुए दशापवित्रमें (परि) टपकते हो (अङ्गिरस्तम) हे आङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ (विप्रः) बुद्धिवर्धक तुम (अभवः) पितरोंके नेता होते हो '

वह तुम (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञको (मध्वा) अपने मधुर रससे (मिमिक्ष) सींचना चाहते हो ॥ ९ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
२ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १० ॥

अथ दशमी । ऋ० जमदग्निः । मदः मदकरः सुतः अभिषुतः सोमः मरुत्वते मरुद्भिस्तद्वते इन्द्राय इन्द्रार्थं पवते क्षरति । ततः सहस्रधारः बहुधारोपेतः सोमः अव्यम् अविमयं पवित्रम् अत्यर्षति अतिगच्छति तमिमम् आयवः मनुष्या ऋत्विजः मृजन्ति शोधयंति ॥ १० ॥

(मदः) आनन्ददायक (सुतः) खिचा हुआ (सोमः) सोम (मरुत्वते) मरुतोंसे युक्त (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (पवते) पात्रमें पूर्ण होता है, तदनन्तर (सहस्रधारः) अनेकों धाराओंसे युक्त सोम (अव्यम्) भेड़ोंके पवित्रमेंको (अत्यर्षति) छनकर निकलता है, उसको (आयवः) मनुष्य ऋत्विज् (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ १० ॥

१ २ ३ १ ३ १ २र ३ १ २
पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्य्या ।
१ २ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ २
त्वँसमुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ ११ ॥

अथ एकादशी । ऋ० वशिष्ठः हे सोम ! विश्वानि सर्वाणि वार्या वरणीयानि स्तोत्राणि अभि लक्ष्य वाजसातमः अतिशयेनान्नस्य लम्भकस्त्वं पवस्व क्षर। हे सोम ! देवेभ्यः देवानां मत्सरः मदकरः समुद्रः समुन्दनशीलः विधर्मन् विशेषेण पोषक ! त्वं प्रथमे मुख्ये श्रेष्ठे यज्ञे देवेभ्यस्तदर्थं क्षर । विधर्मन् विधारयम् इति, वाजसातये वाजसातमः इति, वार्य्या काव्या इति च क्रमेण साम्न ऋचः पाठः ॥ ११ ॥

(सोम) हे सोम ! (विश्वानि) सब (वार्या) स्तोत्रोंको (अभि) लक्ष्य करके (वाजसातमः) अधिकतासे अन्न प्राप्त कराने वाला तू (पवस्व) प्राप्त हो, हे सोम ! (देवेभ्यः) देवताओंका (मत्सरः) मदकारी (समुद्रः) तृप्त करने वाला (विधर्मन्) विशेषरूपसे पोषक तू (प्रथमे) श्रेष्ठ यज्ञमें देवताओंके निमित्त क्षरित हो ॥ ११ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया । मरुत्वन्तो

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥१२॥

अथ द्वादशी। पवमानः पूयमानः सोमो धारया आत्मीयया पवित्रम् अति अतीत्य असृक्षत सृज्यन्ते। कीदृशाः? मरुत्वन्तः मरुद्भिर्युक्ताः मत्सराः मदकराः इन्द्रियाः इंद्रजुष्टाः। मेधां स्तुतिं प्रियांसि अन्नानि च अभि लक्ष्य स्तोतृभ्य उभयं कर्त्तुं वा हया यज्ञे गन्तारः सृज्यन्ते ॥ १२ ॥

(मरुत्वन्तः) मरुतोंसे युक्त (मत्सराः) मदकारी (इन्द्रियाः) इंद्रके प्रिय (मेधाम्) स्तुतिको (प्रियांसि च) अन्नोंको भी (अभि) लक्ष्य करके अर्थात् स्तोताओंको अन्न देनेके निमित्त (हयाः) यज्ञमें जानेवाले (पवमानाः) सोम (धारया) अपनी धारसे (पवित्रम्) पवित्रको अतिक्रमण करके (असृक्षत) संपादित होते हैं ॥ १२ ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः।

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो
२ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
अभि वाजमर्ष। अश्वं न त्वा वाजिनं मर्ज-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

अथ षष्ठे खण्डे—सैषा प्रथमा। उशना ऋषिः। छ० त्रिष्टुप्। हे सोम! नु क्षिप्रं प्रद्रव प्रगच्छ आगत्य च कोशं द्रोणकलशं परिनिषीद निषण्णो भव। नृभिः नेतृभिः पुनानः पूयमानः वाजम् अन्नं यजमानार्थमुद्दिश्य अभ्यर्ष वाजं संग्रामं वा वाजिनं बलवन्तम् अश्वं न अश्वमिव तं यथा मार्जयन्ति तद्वत् ताम् अर्जयन्तः शोधयन्तः बर्हिं यज्ञम् अच्छ प्रतिरशनाभिः रशनावदायताभिरंगुलीभिः नयन्ति अध्वर्यु प्रमुखाः

हे सोम! (नु) शीघ्र (प्रद्रव) आकर प्राप्त हो और(कोशं परिनिषीद) कलशमें स्थित हो (नृभिः) ऋत्विजोंसे (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (वाजम्) यजमानके निमित्त अन्नको (अभ्यर्ष) दे (वाजिनं, अश्वं न) बलवान् घोड़ेकी समान (त्वा) तुझे (मार्जयन्तः) शुद्ध करते हुए अध्वर्यु आदि (प्रतिरशनाभिः) अंगुलियोंसे (बर्हिः, अच्छ नयन्ति) यज्ञमें भले प्रकार पहुंचाते हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
विवक्ति । महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा
२ ३ २ ३क २र ३ १ २
वराहो अभ्येति रेभन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वृषगणो वासिष्ठ ऋषिः । उशने एव तन्नामक ऋषिरिव काव्यं कविकर्म स्तोत्रं ब्रुवाणः देवः स्तोता अयमृषिर्वृषगणो नाम देवानाम् इन्द्रादीनां जनिमा जन्मानि प्रविवक्ति प्रकर्षेण वदति । वच परिभाषणे (अदा० प०) । व्यत्ययेन विकरणस्य श्लुः (३, १, ८५) बहुलं छन्दसीति (७, ४, ७८) अभ्यासस्य इत्वम् महिव्रतः प्रभूतकर्मा । शुचिबन्धुः बध्नन्ति शत्रूनिति बन्धूनि तेजांसि बलानि वा दीप्ततेजस्कः पावकः पापानां शोधकः वराहः वरञ्च तदहश्च वराहः राजाहःसखिभ्यष्ट च् इति टच् समासान्तः । तस्मिन्नहनि अभिषूयमाणत्वेन तद्वान् । अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् तादृशः सोमः रेभन् शब्दं कुर्वन् पदानि स्थानानि पात्राणि अभ्येति अभिगच्छति । यद्वा । यदा कश्चन वराहः पदा पदेन भूमिं विक्रियमाणः शब्दं करोति तद्वत् ॥ २ ॥

(उशना इव) उशनाकी समान (काव्यम्) स्तोत्रको (ब्रुवाणः) बोलता हुआ (देवः) स्तोता (देवानाम्) इन्द्रादि देवताओंके (जनिम) अवतारोंको (प्रविवक्ति) अधिकतासे वर्णन करता है (महिव्रतः) अनेकों कर्मवाला (शुचिबन्धुः)दिप रहा है तेज जिसका ऐसा (पावकः) पापोंको शुद्ध करने वाला (वराहः) श्रेष्ठ दिनमें संपादित हुआ सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पदा) पात्रोंमें (अभ्येति) आता है॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं
२र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ २
ब्रह्मणो मनीषाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छ-
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । पराशर ऋषिः । वह्निः वोढाः यजमानः तिस्रो वाचः ऋग्यजुःसामात्मिकाः स्तुतीः प्रेरयति । तथा ऋतस्य यज्ञस्य धीतिं धारयित्रीं ब्रह्मणः परिवृढस्य सोमस्य मनीषां मनस ईशित्रीं कल्याण-

वाचं च प्रेरयति । किञ्च । गोपतिं वृषभं यथा गावोऽभिगच्छन्ति तद्वत् गवां स्वामिनं सोम गावः पृच्छन्त्यः सत्यो यन्ति स्वपयसामाश्रयितुमभिगच्छन्ति । तथा वावशानाः कामयमानाः मतयः स्तोतारः सोमं यंति स्तोतुमभिगच्छन्ति ॥ ३ ॥

(वन्हिः) हवि पहुँचानेवाला यजमान (तिस्रः वाचः) ऋक् यजु सामरूप स्तुतियोंको (प्रेरयति) उच्चारण करता है (ऋतस्य) यज्ञकी (धीतिम्) धारण करनेवाली (ब्रह्मणः) महान् सोमकी (मनीषाम्) कल्याणरूप वाणीको उच्चारण करता है (गोपतिं, गावः यंति) वृषभ के समीप गौएँ जाती है तिसीप्रकार (पृच्छमानाः) पूछते हुए (वावशानाः) कामनावाले (मतयः) स्तोता (सोमं यंति) सोमके समीप स्तुति करनेको जाते हैं ॥ ३ ॥

२ २ ३२ ३१२ ३१२ ३२ ३२३
अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः
१२ ३ १२ ३२ ३२३ १२३ १२
समपृक्त रसम् । सुतः पवित्रं पर्य्येति रेभ-
३२३ १२ ३२ १ २
न्मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । वसिष्ठ ऋषिः । अस्य सोमस्य प्रेषा प्रेषतिर्गत्यर्थः (भ्वा० प०) क्विपि रूपम् । सावेकाच इति विभक्तेरुदात्तत्वं प्रेषा प्रेरकेण हेमना हिरण्येन पूयमानः हिरण्यपाणिरभिषुणोतीति हिरण्यसम्बंधः । तादृशः देवो दीप्यमानः अंशुः रसम् आत्मीयं देवेभिः देवैः सह समपृक्त सम्पर्कयति संयोजयति । पृची सम्पर्के (अदा० आ०) ततः सुतः अभिषुतः सोमः रेभन् शब्दायमानः पवित्रम् ऊर्णास्तुकेन निर्मितं पर्य्येति परिगच्छति । कथमिव ? होता देवानामाह्वाता ऋत्विक् मितेव निर्मातेव पशुमंति बद्धपशून् सद्म सदनानि यज्ञगृहान् पर्य्येति तद्वत् ॥ ४ ॥

(अस्य) इस सोमके (प्रेषा) प्रेरक (हेमना) हिरण्यसे (पूयमानः) पवित्र किया जाता हुआ (देवः) दिव्य सोम (रसम्) अपने रस को (देवेभिः) देवताओंके साथ (सम्पृक्त) संयुक्त करता है तदनन्तर (सुतः) खेंचाहुआ सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं, पर्येति) ऊनके पवित्रमेंको पात्रमें प्राप्त होता है (होता मिता, पशुमंति, सद्म, इव) जैसे देवताओंका आह्वान करनेवाला यज्ञका निर्माता ऋत्विक पशु युक्त यज्ञशालामें प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्य्य-
३ १ २ ३ १ २र
स्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । प्रतर्दन ऋषिः । सोमः अभिषूयमाणः पवते पात्रेषु क्षरति । कीदृशः ? मतीनां बुद्धिनाम् । यद्वा । मननीयानां स्तुतीनां जनिता जनयिता जनिता मंत्रे (६, ४, ५३) इति निपातेन, णिलोपः किञ्च दिवः द्युलोकस्य जनिता प्रादुर्भावयिता। तथा पृथिव्याः जनिता अग्नेः जनिता प्रकाशयिता । सूर्य्यस्य सर्वप्रेरकस्यादित्यस्य जनिता इन्द्रस्य जनिता पानेन मदस्य जनयिता । उत अपि च । विष्णोः व्यापकस्य जनिता जनयिता । एतत्सर्वं सोमेऽभिषूयमाणे भवति सोमेन हि देवताप्यायन्त इति ॥ ५ ॥

(मतीनाम्) बुद्धियोंका (जनिता) उत्पन्न करने वाला (दिवः) द्युलोकका (जनिता) प्रकट करनेवाला (पृथिव्याः) पृथिवीका (जनिता) पोषक (अग्नेः) अग्निका (जनिता) प्रकाशक (सूर्यस्य) सबके प्रेरक आदित्यका (जनता) तृप्तिकर्त्ता (इंद्रस्य) इंद्रका (जनिता) पीनेसे आनंददायक (उत) और (विष्णोः) व्यापक देवका (जनिता) तृप्तिकर्त्ता (सोमः) संपादन किया जाता हुआ सोम (पवते) पात्रमें प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
वाणीः वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा
२ ३ १ २
दयते वार्य्याणि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वसिष्ठ ऋषिः । त्रिपृष्ठं त्रीणि पृष्ठानि द्रोणकलशादिस्थानानि सवनानि वा यस्य स तथोक्तस्तम् । वृषणं वर्षकम् । वयोधाम् अन्नस्य दातारम् । अङ्गोषिणं आघोषन्तम् सोमम् वाणीः स्तोत्ररूपा वाचः अवावशन्त कामयन्ते शब्दायन्ते वा । वना वनानि उद-

कानि वसानः । आच्छादयन् वरुणो न वरुण इव सिन्धुः अपां स्यन्दयिता पर्य्यन्तप्रदेशानाच्छादयति तद्वत् । रत्नधाः रत्नानां दाता सोमः वार्य्याणि धनानि दयते स्तोतृभ्यः प्रयच्छति ॥ ६ ॥

(त्रिपृष्ठम्) तीन सवन वाले (वृषणम्) कामनाओंके दाता (वयोधाम्) अन्न देने वाले (अङ्गोषिणम्) ऊँचा शब्द करने वाले सोमकी (वाणीः अवावशन्त) स्तुतियें कामना करती हैं (वनाः) जलोंको (वसानः) छाता हुआ (सिन्धुः) जलोंको बहाने वाला (वरुणः इव) वरुण जैसे (रत्नधाः) रत्नोंको देनेवाला सोम (वार्याणि) धन (दयते) स्तोताओंको देता है ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्म जनयन् प्रजा भुवनस्य
३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
गोपाः वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो
३ १ २र
वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । पराशर ऋषिः । समुद्रः अस्मादापः संद्रवन्ति स समुद्रः अपां वर्षकः । गोपाः यज्ञस्य रक्षकः स सः प्रथमे विस्तृते भुवनस्य उदकस्य विधर्मन् विधारकेऽन्तरिक्षे प्रजाः जनयन् उत्पादयन् अक्रान् सर्वमतिक्रामति क्रमतेर्लङि तिपि इडभावे वृद्धौ च कृतायां सिङ्लोपे मकारस्य मो नो धातोरिति नकारे रूपम् वृषकामानां वर्षिता स्वानः अभिषूयमाणः । अद्रिः इन्दुः इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ ७ ॥

(समुद्रः) जलोंकी वर्षा करनेवाला (गोपाः) यज्ञका रक्षक (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करने वाला (स्वानः) अभिषव किया जाता हुआ सोम (प्रथमे) विस्तीर्ण (भुवनस्य) जलके (विधर्मन्) विशेषरूपसे धारण करने वाले अंतरिक्षमें (प्रजाः) प्रजाओंको (जनयत्) उत्पन्न करता हुआ (अक्रान्) सबको अतिक्रमण करता है ॥ ७ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३ ३ १ २
कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे
३ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १
पुनानः । नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं
२ ३ १ २
जनयत स्वधाभिः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। प्रस्कण्व ऋषिः। सृज्यमानः आ समन्ताद्विसृज्यमानोऽभिषूयमाणः हरिः हरितवर्णः सोमः कनिक्रन्ति पुनः पुनः शब्दायते क्रन्दतेर्यङ्लुकि, तिपि, इड्भावे, दाधर्त्तिदर्धर्तीत्यादिना निपतवनादभ्यासस्य निगागमः। अभ्यस्तस्वरः तथा पुनानः पूयमानः वनस्य वननीयस्य चास्य द्रोणकलशस्य जठरे सीदन् उपविशन् शब्दायते। किञ्च नृभिः कर्म नेतृभिर्ऋत्विग्भिः यतः संयतः सोम गाः गोविकारान् क्षीरादीन् आच्छादयन् निर्णिजं शुद्धम् आत्मनो रूपं कृणुते ग्रहादिषु करोति। अतोऽस्मै सोमाय मतिं मननीयां स्तुतिं स्वधाभिः हविर्भिः सह जनयत स्तोतारोऽजनयन् ह्रस्यान्तादेशाभावः छान्दसः। अदादेशः। यद्वा। हे स्तोतारः अस्मै सोमाय स्तुतिः जनयत उत्पादयत कुरुतेति यावत् ८

(आसृज्यमानः) सब ओरसे खेंचा जाता हुआ (हरिः) हरे वर्णका सोम (कनिक्रन्ति) वारं वार शब्द करता है, तथा (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (वनस्य) चाहने याग्य द्रोण कलशके (जठरे) भीतर (सीदन्) स्थित होता हुआ शब्द करता है (नृभिः) ऋत्विजों करके (यतः) दवाया हुआ सोम (गाः) गोदुग्धादिको आच्छादन करता हुआ (निर्णिजम्) अपने शुद्धरूपको (कृणुते) ग्रह आदिमें करता है अतः इस सोमके अर्थ (मतिम्) स्तुतिको (स्वधाभिः) हवियोंके साथ (जनयत) स्तोता करे॥ ८॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
परि पवित्रे अक्षाः सहस्रदाः शतदा भूरिदावा
३ २ ३ २उ ३क २र
शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ९ ॥

अथ नवमी। उशना ऋषिः। हे इंद्रः! वृष्णः वर्षकस्य ते तुभ्यं चतुर्थ्यर्थे षष्ठी एषः स्य सः सोमः मधुमान् माधुर्योपेतः वृषा वर्षकः पवित्रे पर्यक्षाः पर्यस्रवत् क्षरतेर्लुङ्रूपम्। स एव सहस्रदाः सहस्रसंख्याकस्य धनस्य दाता शतदाः शतसंख्याकस्य दाता भूरिदावा ततोऽपि भूरेर्दाता वाजी बलवान् सोमः शश्वत्तमम् अतिशयेन पुराणं बर्हिः यज्ञम् अस्थात् अधितिष्ठति। वृषा वृष्ण इति सहस्रदाः शतदाः इति च साम्न ऋचः पाठौ॥ ९॥

हे इन्द्र ! (वृष्णः) मनोरथपूरक (ते) तुम्हारे अर्थ (एषः) यह (स्यः) वह सोम (मधुमान्) मधुरता युक्त (वृषा) वरसने वाला (पवित्रे) दशापवित्रमें को (पर्यक्षाः) टपकता है, तथा वह ही (सहस्रदाः) सहस्रों संख्याका धन देने वाला (शतदाः) सैंकड़ों संख्याका धन देनेवाला (भूरिदावा) बहुतसा धन देनेवाला (वाजी) बलवान् सोम (शश्वत्तमम्) अत्यन्त पुरातन (बर्हिः) यज्ञमें (अस्थात्) स्थित, हुआ ॥ ९ ॥

१ २   ३ १ २   ३ २ ३ १   २र ३ २ ३

पवस्व सोम मधुमाꣳ ऋतावापो वसानो अधि

२ २ २ २   २ ३ १ २   ३ १ २

सानो अव्ये । अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २

मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १० ॥

अथ दशमी । प्रतर्दन ऋषिः । हे सोम ! मधुमान् मत्वर्थीयः तादृशस्त्वम् अपः वसतीवरीःएकधनाः वसानः आच्छादयन् अधि अधिकं सानौ समुच्छ्रिते अव्ये अविभवे पवित्रे पवस्व क्षर । ततः मदिन्तमः अतिशयेन मदकरः इन्द्रपानः इन्द्रेण पातव्यः मत्सरः मादयिता सोमः घृतवन्ति उदकवतः द्रोणानि द्रोणकलशान् अवरोह प्रादुर्भवसि । रोह सीद इति पाठौ ॥ १० ॥

(सोम) हे सोम ! (मधुमान्) मधुरतायुक्त तू (अपः) वसतीवरी नामक जलोंको (वसानः) आच्छादन करता हुआ (अधि)अधिक (सानौ) ऊँचे (अव्ये) ऊनके पवित्रे में (पवस्व) क्षरित हो, तदनन्तर (मदिन्तमः) अत्यंत मदकारी (इंद्रपानः) इंद्रके पीने योग्य (मत्सरः) आनंद देनेवाला सोम (घृतवन्ति) जल युक्त (द्रोणानि) द्रोणकलशों में (अवरोह) प्रकट होता है ॥ १० ॥

पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २उ   ३ २ ३ १ २   ३ १   २ ३ १ २

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते

२ १ २   ३ २   ३ १ २   ३ १   २र ३ २उ

अस्य सेना । भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ

३   १ २   ३ १ २

सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
शानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। वसिष्ठऋषिः। प्रहिन्वानः अध्वर्युभिः प्रेर्यमाणः जनिता उत्पादयिता रोदस्योः द्यावापृथिव्योः तयोर्जनयितृत्वं वृष्टिप्रदानहविःप्रापणाभ्याम्। तादृक् सोमो वाजम् अन्नं सनिष्यन् दास्यन् प्रायासीत् प्रगच्छति। इन्द्रं गच्छन्प्राप्नुवन् आयुधा आयुधानि संशिशानः सम्यक् तीक्ष्णीकुर्वन् इन्द्रं सहायगमनार्थं तीक्ष्णायुधः सन् विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि हस्तयोरादधानः अस्मभ्यं दानाय एवं कुर्वन्प्रायासीत्

(प्रहिन्वानः) अध्वर्युओंका प्रेरणा कियाहुआ (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीका (जनिता) वर्षा और हविको पहुँचानके द्वारा उत्पन्न करने वाला (वाजम्) अन्नको (सनिष्यन्) देताहुआ (आयुधा, संशिशानः) आयुधोंको सम्यक् प्रकारसे तीक्ष्ण करता हुआ (विश्वा) सकल (वसु) धनोंको (हस्तयाः आदधानः) हमें देनेके निमित्त हाथोंमें धारण करता हुआ (प्रायासीत्) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य धर्मं
३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ
द्युक्षोरनीके। आदीमायन् वरमा वावशाना
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। मृडीको वासिष्ठ ऋषिः। वेनतः वेनो वेनतेः कांतिकर्मणः (दै, ४, ३८) इति यास्कः। कामयमानस्य मनसः मनो मन्यतेः स्तुतिकर्मणः स्तोतुः वाक् स्तुतिलक्षणा यद्येनं तक्षत् संस्करोति। धर्मन् धारके यज्ञे ज्येष्ठस्य प्रशस्यस्य द्युक्षोः दीप्तस्तुतिकस्य टुक्षु शब्दे (अ० प०) इत्यस्मात् कुप्रत्ययः सवनस्य अनीके प्रमुखे यदा यज्ञेषु सवनमुखे स्तोतुर्वाक् सोमं स्तौतीत्यर्थः । आ अनन्तरमेव वरं वरणीयं दिष्टं देवानां मदाय पर्याप्तं पतिं सर्वस्वपालकं कलशे स्थितम् इन्दुम् ईम् एनं सोमं वावशानाः कामयमानाः गावः आयन् पयसा स्वीयेन मिश्रयितुम गच्छन्ति। धर्मन् धर्मणि इति पाठौ ॥ ५ ॥

(वेनतः) चाहेहुए (मनसः स्तोताकी (वाक्) स्तुतिरूप वाणी (यत्) जिसको (तक्षत्) संस्कारयुक्त करती है (धर्मन्) यज्ञमें (ज्येष्ठस्य) प्रशंसनीय (द्युक्षोः) सवनके (अनीके) आगे अर्थात्

जब यज्ञोंमें सवनके स्तोताकी वाणी सोमकी प्रशंसा करती है (आ) तदनन्तर ही (वरम्) श्रेष्ठ (जुष्टम्) देवताओंके मदके निमित्त पर्याप्त (पतिम्) सबके पालक (कलशे) कलशमें स्थित (ईम् इन्दुम्) इस सोमको (वावशानाः) चाहती हुई (गावः) गौएँ (अयन्) अपने दूधसे मिलानेको आती हैं ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य
३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
धीतयो धनुत्रीः। हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य
१ २ ३ २ ३ २ ३ २
द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। नोधा ऋषिः। साकमुक्षः उक्ष सेचने (भ्वा० प०) क्विपि रूपम्, तादृश्यः स्वसारः कर्मकरणार्थमितस्ततः सुष्ठुः गच्छन्त्यः अंगुलयः मर्जयन्त सोमं शोधयंति मृजु शौचालंकारयोः (चु० उभ०) ताः दशसंख्याकाः धीतयः अंगुलिनामैतत् (नै २, ५, ७) अंगुलयः धीरस्य समर्थस्य प्राज्ञस्य वा देवैर्ध्यातव्यस्य काम्यमानस्य वा सोमस्य धनुत्री, प्रेरयित्र्यो भवन्ति। ततः हरिः हरितवर्णः सोमः सूर्य्यस्य जाः प्रादुर्भूता जाया दिशस्ताः पर्य्यद्रवत् परितो गच्छति। सूर्य्यस्य तेजसा हि आविर्भवतीति दिशां तस्य जायात्वम्। अत्यः अतनशीलः वाजी न अश्व इव स्थितः सोमः द्रोणकलशं ननक्षे व्याप्नोति नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा (नै० २, १८, २) ॥ ६ ॥

(साकमुक्षः) एकसाथ सींचनेवाली (स्वसारः) कर्म करनेको इधर उधरको चलती हुई अंगुलियें (मर्जयन्त) सोमको शुद्ध करती हैं (दश धीतयः) वह दश अंगुलियें (धीरस्य) देवताओंके कामना कियेहुए सोमको (धनुत्रीः) प्रेरणा करनेवाली हैं, तदनन्तर (हरिः) हरे वर्णका सोम (सूर्य्यस्य जाः) सूर्यकी दिशाओंको (पर्यद्रवत) चारों ओर जाता है (अत्यः) गमनशील (वाजी न) अश्वकी समान सोम (द्रोणं ननक्षे) कलशमें व्याप्त होता है ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्द्धन्ते धियः
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सूरे न विशः। अपो वृणानः पवते कवीयान्

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
व्रजं न पशुवर्द्धनाय मन्म ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । काण्वो घोर ऋषिः । यद् यदा अस्मिन् सोमे वाजिनीव शुभः अश्वे यथा वस्त्रप्रभृत्यलङ्कारा भवंति । यदा वास्मिन् सोमे सूरं न सूर्य्ये न यथा सूर्य्ये विशः रश्मयः उद्दिता भवंति तदा धियः अंगुल्यः अधिस्पर्द्धन्ते अहं पुरस्ताच्छोधयाम्यहं पुरतः शोधयामीत्यहमिकया उपतिष्ठते । ततोऽयं सोमः अपः वसतीवरीः वृणानः आच्छादयन् पवते पात्रेषु क्षरति कलशानभिगच्छति । कीदृशः ? कवीयान् कविरिवाचरन् । यद्वा, कवयः स्तोतारः तानिच्छन् । तत्र दृष्टांतः, व्रजं न मन्म मननीयं बोद्धव्यं रक्षितव्यं गवां गोष्ठं पशुवर्द्धनाय गोपालः परिगच्छति यथ, तथा देवानां प्रीणनाय पात्राणि पवते सूर्य्ये सूरे इति, कवीयान् कवीयन् इति च साम्न ऋचः पाठः ॥ ७ ॥

(यद्) जब (अस्मिन्) इस सोमके विषयमें (वाजिनीव शुभः) घोड़के वस्त्रादि अलंकारोंकी समान (सूरे विशः न) जैसे सूर्यमें किरणोंका उदय होता है तैसे (धियः, अधिस्पर्धन्ते) मैं पहिले शुद्ध करूँगी मैं पहिले शुद्ध करूँगी, इसप्रकार अंगुलियें उपस्थित होती हैं, तदनन्तर यह सोम (अपः) वसतीवरी जलोंको (वृणानः) आच्छादन करता हुआ (कवीयान्) स्तोताओंकी इच्छा करताहुआ (पवते) कलशमें प्राप्त होता है (पशुवर्द्धनाय, मन्म, व्रजं न) जैसे कि-पशुओं की वृद्धि करनेके लिये रक्षा करने योग्य गोठमें गोपाल जाता है ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्व-
१ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
न्मदाय । हन्ति रक्षो बाधते पर्य्यरातिं वरिवस्कृ-
२ ३ १ २ ३ १ २
ण्वन् वृजनस्य राजा ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । मन्युर्वासिष्ठ ऋषिः । इंदुः क्षरणशीलः वाजी बलवान् गोन्योघाः गमनशीलनीचीनाधरसंघातः इंद्रे सहः बलकरं रसम् इंवन् प्रेरयन् सोमः मदाय तस्य मदार्थं पवते क्षरति । किञ्च रक्षः रक्षःकुलं हन्ति हिनस्ति । किञ्च अरातीः अरातीन् शत्रून् परिबाधते परितः संहरति । कीदृशः ? वरिवः वरणीयं कृण्वन् स्तोतृणां कुर्वन् वृजनस्य बलस्य राजा ईश्वरः साम इति ॥ ८ ॥

(इंदुः) क्षरणशील (वाजी बलवान् (गोन्योग्राः) गमनशील नीचेमेंको जानेवाला रससमूह (इंद्रे) इंद्रके निमित्त (सहः) बलदायक रसको (इन्वन्) प्रेरणा करनेवाला (वरिवः) धन (कृण्वन्) यजमानको देनेवाला (वृजनस्य) बलका (राजा) ईश्वर (सोमः) सोम (मदाय) इन्द्रको मद होनेके निमित्त (पवते) पात्रमें टपकता है (रक्षः) राक्षसोंको (हन्ति) नष्ट करता है (अरातीः) शत्रुओंको (परिबाधते) चारों ओरसे बाधा देता है ॥ ८ ॥

१ २ ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इंद्रो सरसि

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २३१ २

प्र धन्व । ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधा-

३ १ २ ३ १ २

श्चित्तकवे नरं धात् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । कुत्स ऋषिः । हे सोम ! अया अनया पव पवमानया धारया सह एना एनानि वसूनि धनानि पवस्व क्षर । पवा, पूङ् पवने (क्र्या० उ०) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३, २, १०१) इति विन्प्रत्यय आर्धधातुकलक्षणो गुणः । सावेकाचः (६, १, १६९) इति तृतीयाया उदात्तत्वम् । तथा हे इंदो ! त्वं मांश्चत्वे मन्यमानानां चातके सरसि उदके वसतीवर्याख्ये कलशे प्रधन्व प्रगच्छ । ततः यस्य यं प्रध्नश्चित् सर्वेषां प्रज्ञापकः मूलभूतो वा आदित्यः वातो न वात इव जूतिं वेगं कुर्वन् । किंच पुरुमेधाश्चित् बहुविधप्रज्ञ इन्द्रश्च तकवे तकतिर्गतिकर्मसु पठितः । अस्मादौणादिक उन्प्रत्ययः यस्येति (२, ३, ३७) कर्मणि षष्ठी, न लोकाव्ययेति (२ । ३ । ६९) षष्ठीप्रतिषेधश्छान्दसः, सोममभिगच्छतामित्यर्थः । यस्य यज्ञ इति जूतिं जूतः नरन्धात् नरंदात् इति त्र साम्न ऋचः क्रमेण पाठाः ॥ ९ ॥

हे सोम ! (अया) इस (पवा) पवमान धाराके साथ (एना) इन (वसूनि) धनोंको (पवस्व) वरस (इन्दो) हे सोम ! तू (मांश्चत्वे) मान्योंके चाहने योग्य (सरसि) वसतीवरी नामक कलशमें (प्रधन्व) पहुँच तदनंतर (यस्य) जिस सोमको (ब्रध्नश्चित्) सबका मूलभूत आदित्य (वातो न) वायुकी समान (नरम्) प्रेरक (जूतिम्) वेगको (धात्) धारण करता हुआ, और (पुरुमेधाश्चित्) अनेकों प्रकारकी बुद्धि वाला इंद्र भी (तकवे) प्राप्त होय ॥ ९ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
देवान् । अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्
२ ३ २ ३ १ २
सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ १० ॥

अथ दशमी । पराशर ऋषिः । महिषः महान् पूज्यो वा सोमः महत् प्रभूतं तत् कर्म चकार अकरोत् । किं तत् ? अपां गर्भः उदकानां गर्भभूतः जनयितृत्वाज्जन्यत्वाद्वा । स सोमः देवान् अवृणीत समभजतेति यत् तत् कृतवान् इति । किञ्च पवमानः पूयमानः । सोमः ओजः सोमपानजन्यं बलम् इंद्रे अदधात् न्यधात् । तथा इंदुः सोमः सूर्य्ये ज्योतिः तेजः अजनयत् ॥ १० ॥

(महिषः) महान् (सोमः) सोम (महत्) बहुतसे (तत्) उस कर्मको (चकार) करता हुआ, वह कर्म दिखाते हैं, कि-(यत्) जो (अपां गर्भः) जलोंका उत्पादक होनेसे गर्भ रूप यह सोम (देवान्) देवताओंको (अवृणीत) भजता हुआ और (पवमानः) पूयमान सोम (इंद्रे) इंद्रमें (ओजः) सोमपान जनित बलको (न्यधात्) धारण करता हुआ, तथा (इन्दुः) सोम (सूर्ये) सूर्यमें (ज्योतिः) तेजको (अजनयत्) उत्पन्न करता हुआ ॥ १० ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ २ ३ ३ १ २
असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता
३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ १
प्रथमा मनीषा । दश स्वसारो अधि सानो
१ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अव्ये मृजन्ति वह्निँ सदनेष्वच्छ ॥ ११ ॥

अथ एकादशी । कश्यप ऋषिः । वक्वा शब्दायमानः वच परिभाषणे (अ०३।० प०) वनिप् तादृशः पवमानः सोमः आजौ अजन्ति कर्मार्थमृत्विज इति आजिर्यज्ञः तस्मिन् धिया कर्मणा स्तोत्रेण वा साकम् असर्जि पात्रेषु सृज्यते । तत्र दृष्टांतः । रथ्ये यथा रथ्ये रथार्हे आजौ संग्रामनामैतत् । अजन्ति प्रक्षिपन्त्यायुधान्यत्रेति तस्मिन् । अश्वो यथा सृज्यते तद्वत् । कीदृशः मनोता यस्यां देवानां मनांसि प्रोतानि सः तथा च ब्राह्मणम् । तस्यां हि तेषां मनाꣳस्योतानि इति प्रथमा मुख्या

मनीषा मनस ईषा मनीषा स्तुतिः तद्वान्। यद्वा। धिया विदधाति स्तुतीरिति धीः स्तोता तेन स्तुतिः प्रेर्य्यते। किञ्च। दश स्वसारः दशसंख्याका अंगुलयः सदनेषु यज्ञगृहेषु पात्राण्यभिमुखीकृत्य वह्निं वोढारं सोमं सानौ समुच्छ्रिते अधिः सप्तम्यर्थानुवादकः अव्ये अविभवे अविबालेन कृते पवित्रे अञ्जन्ति प्रेरयन्ति। प्रथमा मनीषा प्रथमो मनीषी इति सदनेषु सदनानि इति च साम्न ऋचः पाठौ॥ ११॥

(मनोता) जिसमें देवताओंके मन ओतप्रोत होरहे हैं (प्रथमा) मुख्य (मनीषा) स्तुति कियाहुआ (वक्वा) शब्दायमान सोम (आजौ) यज्ञमें (धिया) स्तोत्रके साथ (रथ्ये यथा) जिस प्रकार संग्राममें घोड़ेको संसृष्ट किया जाता है तैसे (असर्जि) संयुक्त किया गया (दश स्वसारः) दश अंगुलियें (सदनेषु) यज्ञगृहोंमें, पात्रोंकी ओर को (वह्निम्) आनन्द पद पर पहुंचाने वाले सोमको (सानौ अधि) ऊँचे स्थान पर (अव्ये) ऊनके पवित्रे में को (अच्छ मृजन्ति) भले प्रकार प्रेरणा करते हैं॥ ११॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सोममच्छ। नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच
३ २ ३ १ २
विशन्त्युशतीरुशन्तम्॥ १२॥

अथ द्वादशी। प्रस्कण्व ऋषिः। अपामिव यथा उदकानाम् ऊर्मयः त्वरन्ते। इत् इति पूरणः। तद्वद् तर्तुराणाः कर्मणि देवान् स्तोतुं त्वरमाणाः तुरः त्वरणे जौहोत्यादिकः (आ०) यङ्लुगन्तस्य शानचि रूपम्। अभ्यासस्य उवर्णस्य रेफादेशश्छान्दसः। अभ्यस्तस्वरः तादृशा ऋत्विजः मनीषाः मनस ईशात्रीः स्तुतीः सोममच्छ सोमं प्रति प्रेरयन्ति। नमस्यन्तीः नमस्यन्त्यः सोमं योजयन्त्यः सत्यः तम् उपयन्ति च। उप समीपे गच्छन्ति। तमेव संयन्ति च सङ्गच्छन्ते। च वा योगे प्रथमा (८, १, ५९) इति न निघातः उशतीः कामयमानाः स्तुत्यः उशन्तं कामयमानं सोमम् आविशन्ति च प्रविशन्ति च॥ १२॥

(अपां ऊर्मयः इव) जैसे जलकी तरंगे शीघ्रता करती हैं तैसे ही (तर्तुराणाः इत्) कर्ममें देवताओंकी स्तुति करनेके निमित्त शीघ्रता करने वाले ऋत्विज (मनीषाः) स्तुतिओंको (सोमम् अच्छ) सोमके

प्रति (प्रेरयंति) प्रेरणा करते हैं (उशतीः) स्तुतियें (नमस्यन्तीः) सत्कार करती हुई (उशंतम्) कामना करने वाले (तम्) उस सोम को (उपयन्ति च) समीपमें पहुंचाती है (सं च) संयुक्त होती हैं (आविशन्ति च) और उसमें अपना प्रवेश भी करती हैं ॥ १२ ॥

पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
२ ३ १ ३ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानꣳ श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ॥१॥

पुरोजितीतिमुख्यास्तु नवर्चो बृहतीत्यसौ ।
आहर्य्यताय धृष्णवे शिष्टा अनुष्टुभः स्मृताः ॥
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात् तत्र तत्राभिदध्महे ॥

तत्र अष्टमे खण्डे—सैषा प्रथमा । श्यावाश्व ऋषिः । हे सखायः ! सखिभूताः समानाख्याना वा हे स्तोतारः ! वः यूयं पुरोजिती षष्ठ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः पुरः स्थितजयस्य अन्धसः अदनीयस्य सोमस्य स्वभूताय सुताय अभिषुताय मादयित्नवे अत्यन्तं मदकराय रसाय दीर्घजिह्व्यं दीर्घा जिह्वा अस्य स दीर्घजिह्वी दीर्घजिह्वी च छन्दसि (४,१, ५९) इति ङीषन्तत्वेन निपातितः। तादृशं श्वानं च अपश्नथिष्टन अपश्नथयत अपबाधध्वम् । यथा श्वा राक्षसा वा सुतं सोमं न लिहन्ति तथा कुरुतेत्यर्थः ॥ १ ॥

(सखायः) हे मित्र स्तोताओ (वः) तुम (पुरोजिती) जिसके सामने विजय स्थित है ऐसे (अंधसः) सोमके (सुताय) खेंचे हुए (मादयित्नवे) अत्यन्त मददायक रसके अर्थ (दीर्घजिह्व्यम्) लंबी जीभ वाले (श्वानम्) कुत्तेको (अवश्नथिष्टन) हटाओ ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
१ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ययातिर्नाहुष ऋषिः । पूषा पोषकः सर्वेषाम् । भगः भजनीयः रयिः धनहेतुः अयं सोमः पुनानः पवित्रे पूयमानः सन् अर्षति कलशमभिगच्छति । तथा विश्वस्य सर्वस्य भूमनः भूतजातस्य पतिः

पालयिता सोमः उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ व्यख्यत् स्वतजेसा प्रकाशयति। अनेन लोकद्वयपतित्वं सूचितम् ॥ २ ॥

(पूषा) पोषक (भगः) सेवनयोग्य (रयिः) धन प्राप्तिका कारण (अयम्) यह सोम (पुनानः) पवित्रमें शुद्ध होता हुआ (अर्षति) कलश में प्राप्त होता है तथा (विश्वस्य) सकल (भूमनः) प्राणिमात्रका (पतिः) पालन करने वाला (सोमः) सोम (उभे रोदसी) द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनोंको (व्यख्यत्) अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३॥

अथ तृतीया। ययातिर्नाहुष ऋषिः। मधुमत्तमाः अतिशयेन माधुर्योपेताः अत एव मन्दिनः मदकराः सुतासः अभिषुताः सोमाः पवित्रवन्तः पवित्रे वर्त्तमानाः सन्तः इंद्राय इंद्रार्थम् क्षरन् पात्रेषु क्षरन्ति अथ प्रत्यक्षस्तुतिः वः युष्माकं मदाः मदहेतवो रसाः देवान् इंद्रादीन् गच्छन्तु

(मधुमत्तमाः) अत्यंत मधुरतायुक्त (मन्दिनः) मदकारी (सुतासः) खेंचेहुए सोम (पवित्रवन्तः) पवित्रमें वर्त्तमान होतेहुए (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (क्षरन्) पात्रोंमें टपकते हैं (वः) हे सोमो ! तुम्हारे (मदाः) मदकारी रस (देवान्) इंद्रादि देवताओंको (गच्छन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। मनुः सांवरण ऋषिः। गातुवित्तमाः अतिशयेन मार्गस्य लम्भकाः इंदवः दीप्ताः सोमाः पवन्ते अस्मभ्यं मदर्थं क्षरंति आगच्छन्ति वा । कीदृशाः ? मित्राः देवानां सखिभूताः स्वानाः अभिषूयमाणाः अरेपसः पापरहिताः अत एव स्वाध्यः शोभनध्यानाः स्वर्विदः सर्वज्ञाः स्वानाः सुवानाः इति पाठौ ॥ ४ ॥

(गातुवित्तमाः) श्रेष्ठ मार्ग पर लेजाने वाले (मित्राः) देवताओंके मित्र रूप (स्वानाः) सुसिद्ध किये जाते हुए (अरेपसः) पाप रहित (स्वाध्यः) भले प्रकार ध्यान कराने वाले (स्वर्विदः) स्वर्ग प्रापक (इंदवः) दिपते हुए (सोमाः) सोम (पवन्ते) हमारे निमित्त आते हैं ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभी नो वाजसातमꣳ रयिमर्ष शतस्पृहम् ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ।

अथ पञ्चमी । अम्बरीष ऋजिश्वानौ द्वावृषी । हे इन्दो ! दीप्यमान सोम ! वाजसातमम् अत्यन्तं बलप्रदमन्नप्रदं वा धनं पुत्रं नः अस्माकम् अभ्यर्ष अभिगमय । कीदृशम् ? शतस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयम् । सहस्रभर्णसं बहुविधभरणम् अनेकपोषणयुक्तमित्यर्थः । तुविद्युम्नं द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति यास्कः बह्वन्नं बहुयशोयुक्तं वा । विभासहं महतः प्रकाशस्याभिभवितारम् अतितेजस्विनमित्यर्थः । शतस्पृहं पुरुस्पृहम् इति, विभासहं विश्वासहम् इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ ५ ॥

(इंदो) हे दीप्तिमान् सोम ! (शतस्पृहम्) सैंकड़ोंके चाहने योग्य (सहस्रभर्णसम्) सहस्रोंका भरण करने वाले (तुविद्युम्नम्) बहुतसे अन्न और यश वाले (विभासहम्) प्रकाशका तिरस्कार करने वाले अर्थात् अत्यंत तेजस्वी (वाजसातमम्) बलदायक (रयिम्) पुत्रधन को (नः) हमें (अभ्यर्ष) प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वत्सं न पूर्व आयुनि जातꣳ रिहन्ति मातरः ॥६॥

अथ षष्ठी । ऋभसूनूकाश्यपौ द्वयोः । यथा मातरः गावः पूर्वे प्रथमे आयुनि पयसि जातं वत्सं रिहन्त लिहन्ति तथा अद्रुहः अद्रोहाः वसतीवर्य्याख्या आपः इंद्रस्य प्रियं काम्यं सर्वैः काम्यमानं सोमम् अभि नवन्ते अभिगच्छन्ति ॥ ६ ॥

(न) जैसे (मातरः) बछड़ोंकी माता गौएँ (पूर्वे) पहिले (आयुनि) वयमें (जातम्) उत्पन्न हुए (वत्सम्) बछड़ेको (रिहंति) चाटती हैं, तैसे ही (अद्रुहः) द्रोह रहित वसतीवरी नामका जल (इंद्रस्य) इंद्र के (प्रियम्) प्यारे (काम्यम्) सबके चाहना किये हुए सोमको (अभिनवन्ते) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौꣳस्यम् ।

२ ३ उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २
शुक्राविं यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ७

अथ सप्तमी । छ० बृहती । हर्य्यताय सर्वैः स्पृहणीयाय धृष्णवे शत्रूणां धर्षणशीलाय सोमाय पौंस्यं पुंस्त्वस्याभिव्यञ्जकं वरधनुरातन्वन्ति धनुषि ज्यां कुर्वन्तीति । सोमस्य धाराविसर्गार्थं वितायमानं पवित्रमभिधीयते । तदेव विवृणोति विपां मेधाविनां अग्रे पुरस्तात् महीयुवः पूजाकामा अध्वर्यवः शुक्रवर्णानि गोपयांसिः असुराय बलवते निर्णिजे स्वरूपाय शोधनार्थं वयंति आच्छादयन्तीत्यर्थः । शुक्रा वियंत्यसुराय निर्णिज शुक्रावयंत्यसुराय निर्णिजम् इति साम्न ऋचः पाठौ ॥७॥

(हर्यताय) सबके इच्छा करने योग्य (धृष्णवे) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले सोमके अर्थ (पौंस्यम्) पुरुषत्वके प्रकाशक श्रेष्ठ (धनुरातन्वन्ति) धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं, यह एक प्रकारसे सोमकी धारा छोड़नेके निमित्त फैलायेहुए पवित्रेका वर्णन है, तिसको ही स्पष्ट करके कहते हैं, कि-(विपाम्) विद्वानोंके (अग्रे) आगे (महीयुवः) पूजा चाहने वाले अध्वर्यु (शुक्लाः) स्वेत गोदुग्धोंको (असुराय) बलवान् (निर्णिजे) स्वरूपके शुद्ध करनेको (वयन्ति) आच्छादन करते हैं ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यꣳ हर्य्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
यो देवान् विश्वाꣳ इत्परि मदेन सह गच्छति ८

अथ अष्टमी । ऋजिश्वाम्बरीषावृषी । हर्य्यतः सर्वैः स्पृहणीयं हरिं हरितवर्णं बभ्रुं बभ्रुवर्णं च त्यं तं सोमं वारेण वालेन पवित्रेण परि पुनन्ति परिशोधयन्ति । यः सोमः विश्वान् सर्वानिन्द्रादीन् देवानित् देवनेव मदेन मदकरेण रसेन सह परि गच्छति इति ॥ ८ ॥

(हर्यतः) सबके स्पृहा करनेयोग्य (हरिम्) हरे वर्णके (बभ्रुम्) बभ्रुवर्णके (त्यम) उस सोमको (वारेण) ऊनके पवित्रेसे (परिपुनन्ति) शुद्ध करते हैं (यः) जो सोम (विश्वान्) सकल देवान् इत्) इन्द्रादि देवताओंको ही (मदेन सह) मदकारी रसके साथ (परिगच्छति) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानमराधसँ हता मखं न भृगवः ॥ ९ ॥

अथ नवमी । प्रजापतिर्ऋषिः । सुन्वानाय अभिषूयमाणाय षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । अभिषूयमाणस्य अंधसः सोमस्य तत् प्रसिद्धं वचः वचनं योऽयं मर्त्तो न मर्त्य इव कर्मविघ्नकारी तवष्टन कामयतां न शृणोत्विति यावत् । तथा हे स्तोतारः ! अराधसं साधककर्मरहितम् । श्वानम् अपहत । तत्र दृष्टान्तः मखं न यथा पुरा अराधसं मखम् एतन्नामं भृगवोऽपहतवन्तः तथा अपहतेत्यर्थः । सुन्वानाय सुन्वानस्य इति वष्ट वृतं इति च साम्न ऋचः पाठौ ॥ ९ ॥

(सुन्वानाय) सुसिद्ध कियेजाते हुए (अन्धसः) सोमके (तत) प्रसिद्ध (वचः) वचनको (मर्त्तः) कर्ममें विघ्न करनेवाला (न प्रवष्ट) न सुने, तथा हे स्तोताओं ! (अराधसं, मखं, भृगवः, न) जैसे पहिले दक्षिणाहीन मखको भृगुओंने हटाया था तैसे (श्वानम्) कुत्तेको (अप-हत) दूर करो ॥ ९ ॥

पञ्चम ध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२उ
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो
३ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३२उ ३
अधि येषु वर्द्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि
२ ३ १ २ ३ २
रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

जगत्योऽभिप्रियाणीति मुख्या द्वादश सम्मताः ।
आद्यास्तिस्र ऋचो दृष्टाः कविनाम्ना महर्षिणा ।
उत्तरा विप्रकीर्णत्वाद्वक्ष्यन्ते ऋषयः पृथक् ॥

अथ नवमे खण्डे—सैषा प्रथमा । ऋ० कविः । छ० जगती । चनोहितः चन इत्यन्ननाम चायतेरसुनि चन इत्यौणादिकसूत्रेण निपातितः चनसेऽन्नाय हितः । यद्वा हितान्नः सोमः प्रियाणि जगतः प्रीणयितॄणि नामानि नमनशीलानि तान्युदकानि अभिपवते अभितः क्षरणं करोति । येषु अन्तरिक्षस्थितेषु उदकेषु यह्वः महानयं सोमः अधि-

वर्द्धते अधिकं प्रवृद्धो भवति अपां मध्ये सोमो वसति खलु। तत् वृहन् महान् सामः बृहतः महतः परिवृद्धस्य सूर्य्यस्य विष्वञ्चं विष्वगमनं रथम् अधि उपरि विचक्षणः विश्वस्य द्रष्टा सन् आरुहत् आरोहति। अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते(मनु० ३,७६ इति ॥१॥

(चनोहितः) भोजन करने योग्य और हितकारी सोम (प्रियाणि) जगत्को तृप्त करनेवाले (नामानि) जलोंको (अभिपवते) सब ओर से प्राप्त होता है (येषु) जिन जलोंमें (यह्वः) यह महान् सोम (अभिवर्द्धते) अधिक वृद्धिको प्राप्त होता है तदनंतर (बृहन्) वह महान् सोम (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यके (विश्वञ्चम्) सर्वत्रगमन करनेवाले (रथम्, अधि) रथके ऊपर (विचक्षणः) विश्वका द्रष्टा होता हुआ (आरुहत्) चढ़ता है ॥ १ ॥

३ १२ ३ १२३ २ ३ १ २ ३२३

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद्दे-

२३ १२ १ २ ३२ ३२३ १ २ ३ १

वेषु हरयः वि चिदश्नना इषयो आरातयोऽर्यो

२ ३ १ २ ३ १२

नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। अचोदसः अचोदनाः अनन्यप्रेरिताः इंदवः सोमाः नः अस्माकं प्रधन्वंतु प्रगच्छन्तु धन्वतिर्गतिकर्मा । कुत्र ? बृहद्देवेषु हरयः प्रभूतदेवयुक्तेषु यज्ञेषु यथा वा बृहद्देवकुलजेषु मध्ये ते इति सम्बंधः कीदृशा इन्दवः ? स्वनासः सूयमाना हरयः हरितवर्णाः।किञ्च अरातयः धनादिदानरहिताः नः अस्माकम् अर्य्यः अरयः इषयः इषोऽन्नानि इच्छन्तः अश्ननाः। अशनेन भोजनेन वियुक्ता एव संतु। किञ्च नोऽस्माकं धिया कर्माणि देवविषयाणि स्तोत्राणि सनिषन्तु देवान् सम्भजन्तु। देवेषु दिवेषु इति पाठौ। विचिदश्नाना इषयो अरातयोर्यो न संतु सनिषन्तुनः धिया इति छन्दोगाः। विचिनशन्न इषो अरातयोऽर्यो नः संतु सनिषयतो धिया इति बह्वृचाः ॥ २ ॥

(अचोदसः) अन्यकी प्रेरणासे रहित (हरयः) पापहारी वा हरेवर्णके (स्वानासः) सुसिद्ध कियेजाने वाले (इन्दवः) सोम (नः) हमारे (बृहद्देवेषु) अनेकों देवताओंसे युक्त यज्ञोंमें (प्रधन्वंतु) प्राप्त हों (अरातयः) धन आदिका दान न करनेवाले (नः) हमारे (अर्यः) शत्रु (इषयः) अन्नोंकी इच्छा करतेहुए (अश्ननाः विचित्) भोजन

से वियुक्त (संतु) हों (नः) हमारे (धिया) देवविषयक स्तोत्र (सनिष्यन्तु) देवताओंको प्राप्त हों ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ १ २ ३ २ ३
एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो
१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वपुषो वपुष्टमः अभ्यृ३ तस्य सुदुघा घृतश्चुतो
३ १ २ ३ ३ १ २
वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । एषः अयं सोमः मधुमान् मधुरसः कोशे द्रोणकलशे प्राचिक्रदत् प्रकर्षेण शब्दायते । कीदृश एषः इंद्रस्य वज्रः वज्रस्थानीयः बलकरत्वेन वज्रवत् प्रहरणसाधनत्वाद् वज्रत्वोपचारः एषः एव हि सोमः वपुषः बीजानां वप्तुरन्यः यस्मात् वपुष्टमः अतिशयेन वप्ता। बीजावापस्य सोमकर्तृकत्वात् सोमो वै रेतोधा इति श्रुतेः । ऋतस्य सत्यफलस्य सोमस्य धारा इति शेषः। ता अभ्यर्षन्ति अभिगच्छति कीदृश्यः? सुदुघः सुष्ठु दोग्ध्र्यः फलानाम् । घृतश्चुतः उदकस्य रसस्य वा क्षारयित्र्यः वाश्राः शब्दयंत्यः । पयसा युक्ता वाश्रा धेनवः इव लुप्तोपमसेतत् । वपुष्टमः वपुष्टरः इति अभ्यृतस्य अभीमृतस्य इति पयसा च धेनवः हयसेन धेनवः इति च छंदोगबह्वृचानां पाठः ॥ ३ ॥

(इंद्रस्य) इंद्रका (वज्रः) बलदायक होनेसे वज्ररूप (वपुषः) बीज बोनेवालोंसे (वपुष्टमः) श्रेष्ठ बीज बोनेवाला (एषः) यह (मधुमान्) रसयुक्त सोम (कोशे) द्रोणकलशमें (प्राचिक्रदत्) शब्द करता है (ऋतस्य) अमोघ फलवाले सोमकी (सुदुघः) फलोंको सुन्दरता से बरसानेवालीं (घृतश्चुतः) जलको गिरानेवालीं (वाश्राः) शब्द करती हुई धारायें (पयसा धेनवः च) दुधेर गौओंकी समान (अभ्यर्षन्ति) प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ ३ २उ ३ २ ३ १
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतँ सखा सख्युर्न
२र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र मिनाति सङ्गिरम् । मर्य्य इव युवतिभिः सम-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
र्षति सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। ऋषिगण ऋषिः इंदुः सोमः इंद्रस्य निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुदरं प्रो अयासीत् प्रकर्षेणैव गच्छति। गत्वा च सखा सखिभूतः सोमः सख्युः इन्द्रस्य सङ्गिरं सम्यक्गिरणाधारभूतमुदरं न प्रमिनाति न हिनस्ति। किञ्च। सः मर्य्य इव युवतिभिः मर्त्यो यथा तरुणीभिः सह सङ्गतो भवति तद्वत् अयमपि सोमः युवतिभिर्मिश्रणशीलाभिर्वसतीवरीभिरद्भिः सह समर्षति सङ्गच्छते अभिषवकाले। स च सोमः शतयामना शतयाम्ना अनेकया मनसा धनच्छिद्रोपेतेन पथा मार्गेण दशापवित्रसम्बन्धिना कलशे द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः। यद्वैकमेव वाक्यम्। यथा मर्यो युवतिभिः सह सङ्गच्छते एवं कलशो शतयाम्ना पथा संगच्छतेऽद्भिः। शतयामना शतयाम्ना इति पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य) इंद्रके (निष्कृतम्) संस्कारयुक्त स्थान उदरको (प्रो अयासीत्) अधिकतासे जाता है और जाकर (सखा) मित्ररूप सोम (सख्युः) मित्र इन्द्रके (सङ्गिरम्) सम्यक निगलेहुए के आधाररूप उदरको (न प्रमिनाति) कष्ट नहीं देता है और (युवतिभिः मर्य इव) जैसे तरुणियोंके साथ पुरुष संगत होता है तैसे ही मिलानेके वसतीवरी जलोंके साथ (समर्षत) मिलता है (सोमः) और वह सोम (शतयामना) अनेकों शोधनके छिद्र युक्त (पथा) दशापवित्र के मार्गसे (कलशे) द्रोणकलशमें प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानाम-
३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २र
नुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्व-
३ २ ३ १ २ ३ २
भिर्वृथा पाजाꣳसि कृणुते नदीष्वा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। कविर्ऋषिः। धर्ता सर्वस्य धारकः सोमः दिवः अंतरिक्षात् अंतरिक्षस्थिताद्दशापवित्रात् पवते पूयते। कीदृशः सोमः कृत्व्यः कर्त्तव्यः शोध्य इत्यर्थः। रसः रसात्मकः। देवानां दक्षः बलप्रदः। यद्वा। दक्षः प्रवर्द्धनीयो देवानामर्थाय। तथा नृभिः नेतृभिर्ऋत्विग्भिः अनुमाद्यः अनुमादनीयः स्तुत्यो वा। हरिः हरितवर्णः। सत्वभिः प्राणिभिः अस्मदादिभिः सृजानः सृज्यमानः अत्यो न अश्व इव स यथा अनायासेन गच्छति तद्वत्। वृथा अप्रयत्नेन वाजांसि बलानि स्वमय

वेगान् कृणुते कुरुते नदीषु वसतीवरीषु ताभिः सिक्त इत्यर्थः अयमभिषवसमयाभिप्रायः ॥ ५ ॥

(धर्त्ता) सबका धारक (क्रत्वयः) शोधन योग्य (रसः) रसरूप (देवानां दक्षः) देवताओंको बल देनेवाला (नृभिःअनुमाद्यः) ऋत्विजों के स्तुति करने योग्य (हरिः) हरे वर्णका सोम (दिवः) अन्तरिक्षमें स्थित दशापवित्रमेंसे (पवते) पवित्र होकर आता है (सप्तभिः) सात प्राणियोंसे (सृजानः) सुसिद्ध कियाजाता हुआ (अत्यो न) जैसा घोड़ा अनायास जाता है तैसे ही (वृथा) प्रयत्नके बिना ही (पाजांसि) अपने वेगोंको (नदीषु) वसतीवरी जलोंके प्रवाहोंमें (कृणुते) करता है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रति-

३ १ २२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

रीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशाँ

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्यविशन्मनीषिभिः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । कविर्ऋषिः । अयं सोमः पवते अभिषूयते कीदृशः सोमः मतीनां मतयः स्तोतारस्तेषां वृषा वर्षकः कामानाम् । विचक्षणः विद्रष्टा अन्हाम् उषसां दिवः द्युलोकस्यादित्यस्य वा प्रतरीता प्रवर्धयिता । किञ्च । सिंधूनां स्यन्दमानामुदकानां प्राणा प्रकर्षेण अनिति चेष्टते इति प्राणा कर्त्ता सोमः कलशान् अचिक्रदत् धारया अध्वनयत् प्रवेष्टुम् यद्वा । सिंधूनां तृतीयार्थे षष्ठी सिंधुभिरद्भिः प्राणा प्रा पूरणे (अ० प०) पूर्णः सोमः कलशान् अभि लक्ष्य क्रन्दते । किं कुर्वन् ? इंद्रस्य हार्दि हृदयम् आविशन् प्रविशन् मनीषिभिः मनसः ईशित्रीभिः स्तुतिभिः सहेति शेषः यद्वा । व्यवहितमपि मनीषिभिरित्येतत् पवत इत्यनेन सम्बध्यते । प्राणा इति प्राणा इति अचिक्रदत् अवीविशत् इति पाठौ ६

(मतीनां वृषा) स्तोताओंके मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (अन्हाम्) दिनोंका (उषसाम) उषः कालों का (दिवः) द्युलोकका वा आदित्यका (प्रतरीता) बढ़ानेवाला (सोमः) यह सोम (पवते) सुसिद्ध कियाजाता है और (सिंधूनाम्) जलोंसे (प्राणा) पूर्ण सोम (मनीषिभिः) स्तुतियोंके साथ (इंद्रस्य) इंद्रके (हार्दि, आविशन्) हृदयमें प्रवेश करना चाहता हुआ (कलशान् अभि)

कलशोंकी ओरको लक्ष्य करके (अचिक्रदत्) धारासे प्रवेश करतेमें शब्द करता है ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे
२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३
व्योमनि । चत्वार्य्यन्या भुवनानि निर्णिजे
१ २ ३ ३ १ २र
चारूणि चक्रे यदृतैरवर्द्धत ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । रेणुर्ऋषिः । अस्मै पवमानाय परमे उत्कृष्टे व्योमनि विविधम् ओम अवनं गमनं देवानामत्रेति व्योमा यज्ञः तस्मिन् स्थिताय । यद्वा । परमे व्योमन्यन्तरिक्षे वर्त्तमानाय त्रिः सप्त एकविंशतिसंख्याकाः धेनवः प्रीणयित्र्यो गावः सत्याम् यथार्थभूतम् आशिरम् आश्रयणसाधनं क्षीरादि दुदुह्रिरे दुहन्ति यद्वा । त्रिःसप्त द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंश इति । एतैः सर्वैः सह गोषु पय उत्पाद्यते तद्गावो दुहन्तीति । किंच । अयं सोमः अन्या अन्यानि चत्वारि भुवना उदकानि वसतीवरीस्तिस्रश्चैकधना इति तानि चतुःसंख्यानि चारूणि कल्याणानि निर्णिजे निर्णेजनाय परिशोधनाय परिपोषणाय वा चक्रे तदा करोति । यत् यदा अयम् ऋतैः यज्ञैः अवर्द्धत वर्द्धितवान् तदा करोति । दुदुह्रिरे दुदुह इति, परमे पूर्वे इति च पाठौ ॥ ७ ॥

(परमे व्योमनि) श्रेष्ठ यज्ञमें स्थित (अस्मै) इस सोम के अर्थ (त्रिःसप्त) इक्कीस (धेनवः) गौएँ (सत्याम्) यथार्थ (आशिरम्) दूध आदिको (दुदुह्रिरे) दुही जाकर पात्रोंमें पूर्ण करती हैं अर्थात् बारह मास पांच ऋतु तीन लोक और आदित्य, यह इक्कीस मिलकर गौओंमें दूधको उत्पन्न करते हैं उसको ही गौओंसे दुहाजाता है और यह सोम (यत्) जब (ऋतैः) यज्ञोंसे (अवर्द्धत) बढता है, तब (अन्या) और (चत्वारि) चार (भुवना) वसतीवरी आदि जलोंको (निर्णिजे) शुद्ध करनेके लिए (चारूणि) कल्याणरूप (चक्रे) करता है ७

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु
१ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३
रक्षसा सह । मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो

१ २ ३ २ ३ १ २
द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । वेनो भार्गव ऋषिः। हे सोम ! त्वं सुषुतः सन् इंद्राय तदर्थं परिस्रव परितो गच्छ रसं मुञ्च । अमीवा रोगः रक्षसा सह मा ते रसस्य मत्सत द्वय विनो द्रविणस्वन्त इह अप भवतु अपगतो वियुक्तो भवतु, ते तव रसस्य स्वांशं रसं पीत्वा मा मत्सत मा मद्यन्तु । कः ? द्वयाविनः द्वयं सत्यानृतं तेन युक्ताः पापिन इत्यर्थः। किञ्च इंदवः ते रसाः इह अस्मिन् यज्ञे द्रविणस्वन्तः अस्माकं धनवन्तः सन्तु भवन्तु ॥ ८ ॥

(सोम) हे सोम ! तू (सुषुतः) सुन्दर प्रकारसे सिद्ध कियाहुआ (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (परिस्रव) सब ओरसे रसको छोड (अमीवा) रोग (रक्षसा सह) राक्षसके साथ (अपभवतु) दूर हो (ते) तेरे (रसस्य) रसके अपने अंशको पीकर (मा मत्सत) मदयुक्त न हो, जोकि (द्वयाविनः) झूठ सत्य दोनोंसे युक्त पापी हैं । (इन्दवः) तेरे रस (इह) इस यज्ञमें (द्रविणस्वन्तः सन्तु) हमारे लिये धनवान् हो॥८॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो
३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभि गा अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययꣳ
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । भरद्वाजो वसुर्ऋषिः । सोमः असावि अभिषुतोऽभूत् कीदृशः सोमः ? अरुषः अरोचमानः वृषा वर्षकः हरिः हरितवर्णः । स च राजेव दस्मः दर्शनीयः सन् गाः उदकानि अभि लक्ष्य अचिक्रदत् शब्दङ्करोति स्वरसनिर्गमसमये । पश्चात् पुनानः पूयमानः अव्यम् अविभवं वारं बालं पवित्रम् अत्येषि हे सोम ! अतिक्रम्य गच्छसि ततः श्येनो न श्येन इव योनिं स्वीयं स्थानं घृतवन्तम् उदकवन्तम् आसदत् वसतीवरीष्वासीदतीत्यर्थः । अत्येषि पर्येति इति आसदत् आसदम् इति च पाठः ॥ ९ ॥

(अरुषः) दमकदार (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला (हरिः) हरे वर्णका (सोमः) सोम (असावि) संपादित हुआ (राजेव दस्मः) राजाकी समान दर्शनीय होता हुआ (गाः अभि) जलोंकी ओरका लक्ष्य करके (अचिक्रदत्) अपना रस निकलनेके समय शब्द करता

है, फिर (पुनानः) पवित्र होता हुआ (अव्यं वारम्) भेडीकी ऊनके पवित्रेमेंको (अत्येषि) छनकर निकलता है, तदनन्तर (श्येनः न) श्येन पक्षीकी समान (घृतवन्तम्) जलमय (योनिम्) अपने स्थान को (आसदत्) प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

२ ३२उ ३ १२ ३ २३ १ २ ३ २३
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यन्दतः गाव
२उ ३१२ ३ १२ ३१२ ३ १२
आ न धेनवः । बर्हिषदो वचनावन्तः ऊधभिः
३१२३ १२ ३१ २
परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ १० ॥

अथ दशमी । वत्सप्रीः ऋषिः । मधुमन्तः मदकररसयुक्ताः इन्दवः सोमाः देवं द्योतमानं सोमात्मकम् इन्द्रम् अच्छ प्रति प्रासिष्यदन्त परिस्यन्दन्ते ग्रहादिषु प्रक्षरन्ति । स्यन्दतेर्ण्यन्तस्य लुङि चङि रूपम् तत्र दृष्टान्तः । गाव आ न धेनवः पयस्विन्यः प्रीणयित्र्यः गावो यथा वत्सं प्रति पयांसि प्रस्रवन्ति तद्वत् । किञ्च । बर्हिषदः बर्हिषि सीदन्त्यः । वचनन्तः हम्भारवादिशब्दवन्तः उस्रियेति गोनाम ताादृश्यो गावः ऊधभिः पयआधारकैः स्वैः स्वैरूधोभिः तेभ्यः परिस्रुतम् परितः स्रवणशीलं निर्णिजं शुद्धं पयोभूतं सोमरसं धिरे दधिरे इन्द्रार्थं धारयन्ति ॥ १० ॥

(मधुमन्तः) मधुर रसवाले (इंदवः) सोम (देवं अच्छ) इंद्रदेवके प्रति (प्रासिष्यदन्त) ग्रह आदि पात्रोंमें प्राप्त होते हैं (न) जैसे (धेनवः) दूधसे तृप्त करनेवालीं (गावः) गौएँ (आ) अपने बछड़ों के प्रति दूध टपकाती हैं और (बर्हिषदः) यज्ञमें स्थित (वचनवन्तः) रम्भाती हुई (उस्रियाः) गौएँ (ऊधभिः) अपने दूधके थनोंसे (परिस्रुतम्) चारों ओरसे टपकनेवाले (निर्णिजम) शुद्ध दुग्धरूप सोम रसको (धिरे) इंद्रके निमित्त धारण करतीं हैं ॥ १० ॥

३ २ २र २र ३ १ ३ १२ ३ २ ३क
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुँ रिहन्ति मध्वा-
२र १ २ ३२ ३१२ ३ १ २
भ्यञ्जते । सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणँ
३ २ ३२३ १ २
हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृणते ॥ ११ ॥

अथ एकादशी । अत्रिऋषिः । सोमम् ऋत्विजः अञ्जते गोभिः तथा व्यञ्जते विविधमञ्जति समञ्जते सम्यक् अञ्जति । स्तुत्यर्थत्वादपुनरुक्तिः तथा क्रतुं बलकर्त्तारं रिहन्ति लिहन्ति आस्वादयन्ति देवाः । तथा पुनः मध्वा मधुना गव्येन अभ्यञ्जते । तमेव सोमं सिन्धोः उदकस्य रसस्याधारभूते उच्छ्वासे उच्छ्रिते देशे पतयन्तं गच्छन्तं पत्लृगतावित्यस्मात् स्वार्थिके णिचि वृद्ध्यभावश्छान्दसः उक्षणं सेक्तारम् हिरण्यपावाः हिरण्येन पुनन्तः पशुं द्रष्टारं पशुः पश्यतेरिति निरुक्तम् । अप्सु वसतीवरीषु गृभ्णते गृह्णन्ति । मध्वा मधुना इति अप्सु आप्सु इति च पाठः

ऋत्विज सोमको (अञ्जते) गौओंके दुग्धादिके साथ मिलाते हैं (व्यञ्जते) अनेकोंप्रकारसे मिलाते हैं (समञ्जते) सम्यक् प्रकारसे मिलाते हैं । देवता (क्रतुम्) बलकर्त्ता सोमको (रिहन्ति) स्वादलेते हैं और फिर (मध्वा) गोघृतसे (अभ्यञ्जते) मिलाते है उसही सोमको (सिन्धोः) जलके आधारभूत (उच्छ्वासे) उच्चदेशमें (पतयन्तम्) जाते हुए (उक्षणम्) सेचन करने वालेको (हिरण्यपावः) सुवर्णसे पवित्र करतेहुए (पशुम्) द्रष्टारूपसे (गृभ्णते) ग्रहण करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि
३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३
विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास
१ २र ३ १ २र
इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । पवित्र ऋषिः।हे ब्रह्मणस्पते ! मंत्रस्य स्वामिन् ! सोम ते पवित्रं शोभनमङ्गं विततं सर्वत्र विस्तृतम् । स प्रभुः प्रभविता त्वं गात्राणि पातुरङ्गानि पर्य्येषि परिगच्छसि । विश्वतः सर्वतः तव तत्पवित्रम् अतप्ततनूः पयोव्रतादिना असन्तप्तगात्रः आमः अपरिपक्वः नाश्नुते न व्याप्नोति । शृतासः इत् शृता पक्व परिपक्वा एव वहन्तः यागं निर्वहन्तः तत् पवित्रं समासत व्याप्नुवन्ति सन्तदाशत तत्समासत इति पाठौ ॥ १२ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे मंत्र के स्वामी सोम ! (ते) तेरा (पवित्रम्) श्रेष्ठ अङ्ग (विततम्) सर्वत्र फैला हुआ है (प्रभुः) शक्तिमान् तू (गात्राणि) पीनेवाले के अङ्गोंको (पर्य्येषि) प्राप्त होता है (विश्वतः) सब ओरसे तेरे उस पवित्रेका (अतप्ततनूः) पयोव्रत आदिसे जिसका

शरीर सन्तप्त नहीं हुआ है ऐसा (आमः) परिपाक रहित (नाश्नुते) व्याप्त नहीं होता है (शृतासः इत्) परिपक्व होकर ही (वहन्तः) यज्ञका निर्वाह करते हुए (तत्) उस पवित्रेमें (समाशत) व्यापते हैं १२

पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

२ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टे
३ २ ३ १ २ ३ १ २
जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥

इन्द्रमच्छेति खण्डेऽस्मिन् ऋचो द्वादश संस्थिताः ।
सकला उष्णिहस्तत्र वक्ष्यन्ते ऋषयः पृथक् ॥

तत्र दशमे खण्डे—सैषा प्रथमा । अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । श्रुष्टे श्रुष्टी क्षिप्रं जातासः जाताः इन्दवः पात्रेषु क्षरन्तः स्वर्विदः सर्वज्ञा हरयः हरितवर्णाः सुताः अभिषुताः इमे सोमाः वृषणं कामानां सेक्तारमिन्द्रम् अच्छ यंतु अभिगच्छन्तु ॥ १ ॥

(श्रुष्टे) शीघ्र (जातासः) सुसिद्ध हुए (इंदवः) पात्रोंमें टपकते हुए (स्वर्विदः) सर्वज्ञ (हरयः) हरे वर्णके (सुताः) खेंचेहुए (इमे) यह सोम (वृषणम्) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले इंद्रको (अच्छयन्तु) प्राप्त हों ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
द्युमन्तꣳ शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । चक्षुर्मानव ऋषिः । हे सोम ! जागृविः जागरणशीलस्त्वं प्रधन्व प्रक्षर । हे इन्दो ! इन्द्राय परिस्रव परितः पात्रेषु क्षर । किञ्च द्युमन्तं दीप्तियुक्तम् । स्वर्विदं सर्वस्य लम्भकं शुष्मं शत्रूणां शोषकं बलम् आभर आहर ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (जागृविः) जागरणशील तू (प्रधन्व) पात्रमें प्राप्त हो (इन्दो) हे सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (परिस्रव) पात्रमें चारों ओरसे बरस (द्युमन्तम्) दिपते हुए (स्वर्विदम्) स्वर्ग प्राप्त करानेवाले (शुष्म) शत्रुओंके शोषक बलको (आभर) दो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
२ ३ २ ३१ २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । पर्वतनारदावृषी । हे सखायः ! सखिभूताः ! स्तोतारः ! ऋत्विजः ! आ निषीदत स्तोतुमुपविशत । अथ पुनानाय पूयमानाय सोमाय प्रगायत प्रकर्षेण गायत तमभिष्टुत ततः अभिषुतं सोमं यज्ञैः यजनीयैः हविर्भिः मिश्रितैः श्रिये शोभार्थं परिभूषत परितोऽलंकुरुत । तत्र दृष्टान्तः शिशुं न यथा शिशुं बालं पुत्रं पितरः आभरणैरलंकुर्वन्ति तद्वत् ॥

(सखायः) हे मित्ररूप स्तोताओ (आ निषीदत) स्तुति करनेको बैठो (पुनानाय) पवित्र कियेजाते हुए सोमके अर्थ (प्रगायत) साम गान करो (शिशुम् न) जैसे पिता अपने बालक पुत्रको आभूषणोंसे सुशोभित करता है तैसे इस सोमको (श्रिये) शोभाके अर्थ (यज्ञैः) यजनके योग्य हवियोंसे (परिभूषत) अलंकृत करो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पर्वतनारदावृषी । हे सखायः ! ऋत्विजः ! वः यूयं मदाय देवानां मदाय पुनानं पूयमानं तं सोमम् अभिगायत अभिष्टुत तमिमं सोमं शिशुं न शिशुमिवालंकारैः क्षीरादिभिश्चालंकुर्वन्ति तद्वत् हव्यैः हविर्भिःमिश्रयणैः गूर्त्तिभिः स्तुतिभिश्च स्वदयन्त स्वादुकुरुत । हव्यैः यज्ञैः इति पाठौ ॥ ४ ॥

(सखायः) हे मित्र ऋत्विजो ! (वः) तुम (मदाय) देवताओंके मदके निमित्त (पुनानम्) सुसिद्ध किये जातेहुए (तम्) उस सोमकी (अभिगायत) स्तुति करो (शिशुं न) बालककी समान (हव्यैः) हवियों से (गूर्त्तिभिः) स्तुतियोंसे (स्वदयन्त) स्वादुकरो ॥ ४ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २
प्राणा शिशुर्महीनाꣳ हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३१२ ३२
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । त्रित ऋषिः । प्राणा यज्ञं कुर्वाणा इत्यर्थः । महीनां महतीनां मंहनीयानां वा अपां शिशुः शिशुस्थानीयः सोमः ऋतस्य यज्ञस्य दीधितिं दीप्तिवंतं प्रकाशकं वा स्वीयं रसम् हिन्वन् प्रेरयन् । विश्वा सर्वाणि प्रिया प्रियाणि हवींषि परि भुवत् परिभवति व्याप्नोति अपि च द्विता द्विधा भवति । दिवि पृथिव्यां च वर्त्तत इत्यर्थः प्राणा ऋाणा इति पाठः ॥ ५ ॥

(प्राणा) यज्ञविधिको परिपूर्ण करनेवाला (महीनाम्) पूजनीय (अपाम्) जलोंका (शिशुः) शिशुसमान सोम (ऋतस्य) यज्ञके (दीधितिम्) प्रकाशक अपने रसको (हिन्वन्) प्रेरणा करता हुआ (विश्वा) सकल (प्रिया) प्रिय हवियोंको (परिभुवत्)। व्यापता है और (द्विता) द्युलोक भूलोक दोनों स्थान पर वर्त्तमान होता है ॥ ५॥

१२ ३१२३ २३ १२ ३१२

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

२ ३२३ १२

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी मनुर्ऋषिः हे इंदो ! सोम ! देववीतये देवानां भक्षणाय ओजसा बलेन धाराभिः आत्मीयाभिः पवस्व क्षर । हे सोम ! मधुमान् मदकररसवांस्त्वं नः अस्मदीयं कलशं द्रोणाख्यम् आसद आसीद । सदेर्लङि रूपम् ॥ ६ ॥

(इन्दो) सोम ! (देववीतये) देवताओंके भक्षणके लिये (ओजसा) बलके साथ (धाराभिः) अपनी धाराओंसे (पवस्व) पात्रमें पूर्ण हो (सोम) हे सोम ! (मधुमान्) मदकारी रसवाला तू (नः) हमारे (कलशम् आसद) द्रोणकलशमें स्थित हो ॥ ६ ॥

१२ ३ २ ३२उ ३२३ १ २

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१२ ३१ २र ३ १२

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । अग्निर्ऋषिः । पुनानः पूयमानः सोमः ऊर्मिणा स्वीयया धारया अव्यम् अविभवं वारं वाले पवित्रं विधावति विविधं गच्छति । कीदृशः ? पवमानः पूतः वाचः स्तोभस्य अग्रे कनिक्रदत् पुनः पुनः शब्दं कुर्वन् विधावति । अव्यम् अव्यः इति साम्न ऋचः पाठः ॥७॥

(पवमानः) पवित्र (वाचः, अग्रे) स्तोत्रके आगे (कनिक्रदत्) वारं वार शब्द करताहुआ (पुनानः)सुसिद्ध क्रियाजाता हुआ (सोमः) सोम (ऊर्मिणा) अपनी धारासे (अव्यं वारम्, विधावति) ऊनके दशापवित्रमेंको नानाप्रकारसे गमन करता है ॥ ७ ॥

१ २३ १ २ ३२३ १ २ ३ १२
प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते ।
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । द्वितो नाम ऋषिः स्वात्मानं प्रत्याह । पुनानाय पवित्रेण पूयमानाय वेधसे कर्मणो विधात्रे सोमाय वचः स्तोत्रलक्षणं प्रोच्यते त्वया प्रोच्यताम् । किञ्च । मतिभिः स्तुतिभिः जुजोषते प्रीयमाणाय स्तुतिं प्रभर प्रकर्षेण धारय । तत्र दृष्टान्तः भृतिं न यथा भृतकाय भृतिं सम्पादयति तद्वत् । वच उच्यते वच उद्यते इति सामऋचः पाठौ

स्तोता अपने आत्मासे कहता है, कि–(पुनानाय) पवित्रसे शुद्ध होतेहुए (वेधसे) कर्मोंके विधाता (सोमाय) सोमके अर्थ (वचः) स्तोत्रको (प्रोच्यते) उच्चारण करो और (मतिभिः) स्तुतियोंसे (जुजोषते) प्रसन्न होनेवालेके अर्थ (प्रभर) अधिकतासे स्तुति करो (भृतिं न) जैसे कि–सेवकको धन देते हैं ॥ ८ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
१ २ ३ २ ३२ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ ९ ॥

अथ नवमी । पर्वतनारदावृषी । हे सुदक्ष ! सुबल ! हे इन्दो ! सोम ! सुतः अभिषुतस्त्वं नः अस्माकम् गोमत् यज्ञसाधनगोयुक्तं धनं धनिव धन्व वर्णविकारः गमय धन्वतिर्गत्यर्थः ततोऽहं शुचिं पूतन्दीप्यमानं वर्णं रसञ्च गोषु क्षीरादिषु अधिधारय अधिकं प्रापयामि । धनिव धन्व इति धारय दीधरम् इति च छंदोगबह्वृचानां पाठभेदाः ९

(सुदक्ष, इंदो) हे बलशाली सोम ! (सुतः) सुसिद्ध कियाहुआ तू (नः) हमें (गोमत्) गौओं सहित (अश्ववत्) घोड़ों सहित (धनिव) धन दो, तदनंतर मैं (शुचिम्)पवित्र और दिपतेहुए (वर्णम्) रस को (गोषु) गोरसमें (अधि धारय) अधिक पाऊँ ॥ ९ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ १० ॥

अथ दशमी । पर्वतनारदावृषी । हे सोम! वसुविदं धनस्य दातारं त्वा त्वाम् अस्मभ्यं धनादिदानार्थं वाणीः अस्मदीया वाचः अभ्यनूषत अभिष्टुवंति णु स्तवने (अदा० प०) वयं ते तव वर्णम् आवरकं रसं गोभिः गोविकारैः क्षीरादिभिः अभिवासयामसि अभिवासयामः अभित आच्छादयामः ॥ १० ॥

हे सोम (वसुविदम्) धनके दाता (त्वा) तुम्हें (अस्मभ्यम्) हमें धन आदि देनेके निमित्त (वाणीः) हमारी वाणियें (अभ्यनूषत) सब ओरसे स्तुति करती हैं और हम (ते वर्णम्) तुम्हारे रसको (गोभिः) गौओंके दुग्ध आदिसे (अभिवासयामसि) सब ओरसे आच्छादित करते हैं ॥ १० ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवते हर्यतो हरिरति ह्वराꣳसि रꣳह्या ।
३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ ११ ॥

अथ एकादशी । अग्निश्चाक्षुष ऋषिः । हर्यतः स्पृहणीयः हरिः हरितवर्णः सोमः रंह्या तृतीयायाः आकारः साधु वेगेन ह्वरांसि कुटिलानि अनृजूनि पवित्राणि अति पवते अतीत्य गच्छति अथ प्रत्यक्षस्तुतिः हे सोम ! त्वं स्तोतृभ्यः वीरवत् पुत्रयुक्तं यशः अभ्यर्ष अभिगमय प्रयच्छेत्यर्थः । अभ्यर्ष अभ्यर्षन् इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ ११ ॥

(हर्यतः) इच्छा करने योग्य (हरिः) हरे वर्णका सोम (रंह्या) श्रेष्ठ वेगसे (ह्वरांसि) तिरछे पवित्रेमेंको होकर (अति पवते) निकल कर जाता है, हे सोम ! तुम (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालोंको (वीरवत्) पुत्रयुक्त (यशः) कीर्ति (अभ्यर्ष) दो ॥ ११ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परि कोशं मधुश्चुतꣳ सोमः पुनानो अर्षति ।
३ २र ३ १ २ ३ १ २
अभि वाणीर्ऋषीणाꣳ सप्तानूषत ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । द्वित ऋषिः । सः पुनानः पूयमानः सोमः मधुश्चुतं मधुरसस्य च्यावयितारं द्रोणकलशं प्रति आत्मीयं रसं पर्यर्षति परि गमयति । तमिमं सोमम् ऋषीणां सप्त वाणीः सप्तच्छन्दांसि अभ्यनूषत अभिष्टुवन्ति । नू स्तवने कुटादिः (प०) सोमः पुनानो अर्षति अव्यये वारे अर्षति इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ १२ ॥

(पुनानः) वह पवित्र किया जाता हुआ (सोमः) सोम (मधुश्चुतम्) मधुरताको टपकाने वाले अपने रसको (कोशं, परि अर्षति) कलशमें पहुंचाता है, इस सोमको (ऋषीणाम्) ऋषियोंकी (सप्तवाणीः) सात छन्दोंवाली वाणियें (अभ्यनूषत) स्तुति करती हैं ॥ १२ ॥

पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ ३ १

महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

स्युः पवस्वेति खण्डेऽस्मिन्नृचोऽष्टौ ककुभोऽत्र तु ।
ससुन्वे इति गायत्री यवमध्येति केचन ॥
अक्षरव्यूहनादेषा ककुबेवेति केचन ।
एष धारया सूनः प्रगाथः काकुभोऽन्तिमः ॥
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात् तत्र तत्राभिदध्महे ॥

तत्र एकादशे खण्डे-सैषा प्रथमा । गौरवीतिः ऋषिः । छ० ककुप् हे सोम ! मधुमत्तमः अतिशयेन माधुर्योपेतस्त्वम् इंद्राय इंद्रार्थं मदः मदकरः सन् पवस्व क्षर । कीदृशः ? क्रतुवित्तमः अत्यन्तं प्रज्ञाया कर्मणो वा लम्भकः, महि महान् मंहनीयो वा द्युक्षतमः अत्यंतदीप्तः मदः हृष्टः १

सोम हे सोम (मधुमत्तमः) अत्यंत मधुरतायुक्त (क्रतुवित्तमः) प्रज्ञा वा कर्मका प्राप्त करानेवाला (महि) पूजनीय (द्युक्षतमः) परमदीप्त (मदः) हर्षदायक तू (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (मदः) मदकारी होता हुआ (पवस्व) पवित्र हो ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३२उ ३ १२ ३ १२ ३ ३ २

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।

१ २र ३ १ २

वि कोशं मध्यमं युव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। ऊर्ध्वसद्मा ऋषिः। हे इषस्पते! अन्नस्य पते! हे देव स्तोतव्य सोम! देवकामं त्वां वयमभिष्टुम इति शेषः। किञ्च। त्वं द्युम्नं द्योतमानं बृहत् प्रभूतं यशः अन्नम् अस्मभ्यम् अभिदीदिहि आभिमुख्येन प्रकाशय प्रयच्छेत्यर्थः। आमंत्रितस्याविद्यमानत्वेन पादादित्वान्न निघातः। किञ्च मध्यमम् अन्तरिक्षस्थितं कोशं मेघं वि युव वृष्ट्यर्थं गमय विश्लेषय। देवयुम् देवयुः इति पाठौ॥ २॥

(इषस्पते देव) हे अन्नके स्वामी स्तुति योग्य सोम (देवयुम्) देवताओंको प्राप्त होने योग्य तुम्हारी हम स्तुति करते हैं, तुम हमें (द्युम्नम्) दीप्यमान (बृहत्) बहुतसा (यशः) अन्न (अभिदीदिहि) अभिमुख होकर दो (मध्यमम) अन्तरिक्षमें स्थित (कोशम) मेघको (वियुव) वर्षाके लिए छिन्न भिन्न करो॥ २॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरँ

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

रजस्तुरम्। वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥ ३॥

अथ तृतीया ऋजिश्वा। ऋषिः हे ऋत्विजः! आ सोत सोममभिषुत। षुञ् अभिषवे (स्वा० उ०) लोटि छान्दसो विकरणस्य लुक्। तप्तनप्तनथनाश्च (पा० ७, १, १४५) इति तस्य तबादेशः। किञ्च। परि षिञ्चत परितः वसतीवर्यादिभिः सिञ्चत। कीदृशम्? अश्वं न अश्वमिव वेगिनम्। स्तोमं स्तोतव्यम् अप्तुरम् अंतरिक्षस्थितानामुदकानां प्रेरकं रजस्तुरं तेजसां वा प्रेरकम्। वनप्रक्षम् उदकैः सम्पृक्तम्। यद्वा काष्ठेषु पात्रेषु क्षारकं प्रकीर्णम् उदप्रुतं उदकं गच्छन्तं प्लवमानं सोममभिषुत अभिषिञ्चत। वनप्रक्षं वनक्रक्षम् इति साम्न ऋचः पाठौ॥३॥

हे ऋत्विजो! (अश्वं न) घोड़ेकी समान वेगवान् (स्तोमम्) स्तुतिके योग्य (अप्तुरम्) अंतरिक्षमें स्थित जलोंके प्रेरक (रजस्तुरम्) तेजोंके प्रेरक (वनप्रक्षम्) जलोंसे मिले हुए वा पात्रोंमें फैले हुए (उदप्रुतम्) जलमें जाते हुए सोमको (आ सोत) अभिषुत करो (परिषिञ्चत) चारो ओरसे वसतीवरी आदिसे सींचो॥ ३॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एतमु त्यं मदच्युतँ सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम्।

२ ३ १ २ ३ १ २

विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥ ३॥

अथ चतुर्थी। कृतयशा ऋषिः। दिवः देवान् कामयमाना ऋत्विजः एतं त्यमु सं.ममेव दुहम् अदुहन् दुहेर्लिङ्कि रूपं दुहन्ति स्म छान्दसो नकारस्य मकारः ग्रावाणो वत्सा ऋत्विजा दुहन्तीति तैत्तिरीयकब्राह्मणं कीदृशं सोमम्? मदच्युतं मदस्य प्रेरकं सहस्रधारम् बहुधारम् वृषभम् कामानां वर्षकं विश्वा सर्वाणि वसूनि धनानि बिभ्रतं धारयंतम् दिवोदुहम् इति दिवं दुहुम् इति पाठौ ॥ ४ ॥

(दिवः) देवताओंकी कामना करने वाले ऋत्विज् (मदच्युतम्) मद्के प्रेरक (सहस्रधारम्) अनेकों धारा वाले (वृषभम्) कामनाएँ पूरी करने वाले (विश्वा वसूनि) सकल धनोंको (बिभ्रतम्) धारण करने वाले (एतं त्यमु) इस सोमको ही (दुहम्) दुहने हुए ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्।

२ ३ १ २ ३ २

सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। ऋणव ऋषिः। छ० गायत्री। यः सः सोमः सुन्वे अभिसुषुवे ऋत्विग्भिः। यः सोमः वसूनां धनानां आनेता यश्च रायां रान्ति प्रयच्छन्ति क्षीरादिकमिति रायो गावस्तेषामानेता विद्यते यश्च सोमः सुक्षितीनां शोभनमनुष्याणां आनेता सोऽभिषुतोऽभूदिति ॥५॥

(यः) जो (वसूनाम्) धनोंका (यः) जो (रायाम्) दुग्ध आदि देने वाली गौओंका (यः) जो (इडानाम्) भूमियोंका (यः) जो (सुक्षितीनाम्) श्रेष्ठ मनुष्योंका (आनेता) लाने वाला है (सः) वह सोम (सुन्वे) ऋत्विजोंसे अभिषुत किया गया ॥ ५ ॥

२ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

त्वꣳ ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः

३ १२ ३१२

अमृतत्वाय घोषयन् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। शक्ति ऋषिः। छ० ककुप। हे पवमान! पूयमान! सोम! द्युमत्तमः अतिशयेन दीप्तिमान् त्वं हि त्वमेव दैव्यं देवसम्बन्धीनि जनिमानि जन्मानि देवानित्यर्थः। जानासीति शेषः। तानभि लक्ष्य अमृतत्वाय तेषाम् अमरणाय अङ्ग क्षिप्रं घोषयन् ऋत्विजो ग्रावा-

णीव शब्दमुदपादयन् उत्पादयंति हि—योगादनिघातः । घोषयन् घोषः इति पाठौ ॥ ६ ॥

(पवमान) हे पूयमान सोम (द्युमत्तमः) अत्यंत दीप्तिमान् (त्वम् हि) तू ही (दैव्यं जनिमानि) देवसंबंधी जन्मोंको अर्थात् देवताओं को जानते हो (अमृतत्वाय) उनके अमरणके लिए (अङ्ग) शीघ्र (घोषयन्) ऋत्विजोंसे शब्द उत्पन्न कराते हो ॥ ६ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ ३

एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।

१ २ ३ २ ३ १ २

क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । उरु ऋषिः । स्यः सः एषः सुतः अभिषुत सोमः अव्या वारेभिः अवेर्बालैः कृते पवित्रे धारया आत्मीयया पवते कलशमभिलक्ष्य क्षरति । कीदृशः ? मदिन्तमः मादयितृतमः । अपामिव उदकानाम् ऊर्मिः संघात इव क्रीडन् इतस्ततः संक्रीडमानः पवते अव्यावारेभिः अव्योवारेभिः इति साम्न ऋचः पाठभेदः ॥ ७ ॥

(मदिन्तमः) परम आनन्द देन वाला (अपां, ऊर्मिः, इव, क्रीडन्) जलके प्रवाहकी समान इधर उधरको क्रीड़ा करता हुआ (स्यः) वह (एषः) यह (सुतः) अभिषुत सोम (अव्याः वारेभिः) ऊनके पवित्रे मेंको (धारया) अपनी धारसे (पवते) कलशमें टपकता है ॥ ७ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र

य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृ-

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

न्तदोजसा । अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं

३ १ २ ३ १ २ १ ३ १ २ ३ १ २

वर्मीव धृष्णवा रुज । ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज ८

अथ अष्टमी । ऋजिश्वा ऋषिः । छ० ककुप् । यः सोमः उस्रियाः उत्सरणशीलाः अपियाः अप्याः आप इत्यन्तरिक्षनाम (नै० १, ३, ८) अस्माद् (भवे छन्दसि पा० ४, ४ ११०,) इति यत् अन्तरिक्षस्थाः । अहिप्रभृतिभिरसुरैः अपहृत्य निहिता गाः आपः अश्मनि मेघे अन्तः मध्ये स्थिता इत्यर्थः । ओजसा बलेन निरकृन्तत् निरच्छिनत् निरगा-

मयत अन्तरिक्षाद् वृष्टिमकार्षीदित्यर्थः। स त्वम् असुरैः अपहृतं गव्यम् गोसम्बन्धि अश्व्यम् अश्वेषु भवं व्रजं समूहं अभि तत्निषे अभितो व्याप्नोति। तनु विस्तारे छान्दसे। लिटि तनिपत्योश्छन्दसि (पा० ६,४, ९९) इत्युपधालोपः। किञ्च। हे धृष्णो शत्रुधर्षणशील सोम! स त्वं वर्मीव कवचीव आरुज असुरान् जहि। अपिया अन्तरश्मनि अप्या अन्तश्मनः इति छन्दोगबह्वृचानां पाठभेदाः॥ ८॥

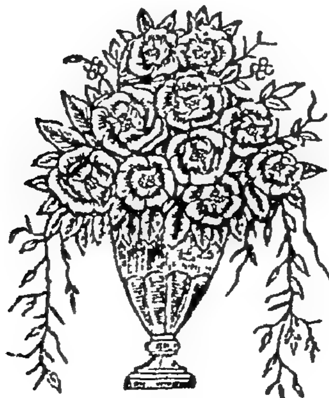
वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः॥ ५॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिक-मार्ग प्रवर्त्तक श्रीवीर बुक्क भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दोव्याख्याने पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः॥

(यः) जो सोम (उस्रियाः) बहनेवाले (अपियाः) अन्तरिक्षमें असुरोंके घरेहुए (अश्मनि अन्तः) मेघोंके भीतरके (गाः) जलोंको (ओजसा) बलसे (निरकृन्तत) छिन्न भिन्न करता है अर्थात् अन्तरिक्षमेंसे वर्षा करता है, वह तू सोम (गव्यम्) असुरोंके हरण किये हुए गौओंके (अश्व्यम्) अश्वोंके (व्रजम्) समूहको (अभितत्निषे) सब ओरसे व्याप्त करता है (धृष्णो) हे शत्रुओंको भय देनेवाले सोम! तुम (वर्मीव) कवचधारीकी समान (आरुज) असुरोंको नष्ट करो ८

पञ्चमाध्यायस्य एकादशः खण्डः समाप्तः

पावमानं पर्व समाप्तम्



॥ ओ३म् ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

आरण्यकं-पर्व

२ ३ १२३ १ २ ३ १ २ ३ १२३ १२ १२ २र
इन्द्र ज्येष्ठं न आभर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः । यद्दि-
३ १ २ ३ १ ३ २र
धृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ १ ॥
आरण्यकाभिधः षष्ठोऽध्यायो व्याक्रियतेऽधुना ॥
तत्रेन्द्रेत्यादिकानान्तु पञ्चपञ्चाशतां क्रमात् ।
ऋषिच्छन्दो दैवतं च तत्र तत्राभिदध्महे ॥ ३ ॥
तत्राद्याया ऋचो द्रष्टा भरद्वाजः प्रकीर्त्तितः ।
द्वितीयस्या वशिष्ठः स्यात्तृतीयाया ऋचः स्मृतः ॥४॥
वामदेवस्ततश्छन्दो बृहती त्रिष्टुबेव च ।
गायत्रीति क्रमादिन्द्रो भवेत्तिसृषु देवता ॥ ५ ॥

तत्र प्रथमे खण्डे-सैषा प्रथमा हे इंद्र ! ज्येष्ठं प्रशस्यतमम् ओजिष्ठं अतिशयेन बलकरम् पुपुरि पूरकम्, श्रवः अन्नम्, नः अस्मभ्यम्, आभर आहर प्रयच्छ । हे वज्रहस्त वज्रबाहो । हे सुशिप्र शोभनहनुक ! एवंभूत हे इन्द्र ! यत् अन्नं दिधृक्षेम, धारयितुमिच्छेम यच्चान्नं इमे परिदृश्यमाने, उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ, आपप्राः आपूरयंति, तदन्नमाहरेत्यन्वयः येनेमे चित्रवज्रहस्त इति बह्वृचानां पाठः ॥ १ ॥

(वज्रहस्त) हाथमें वज्र धारण करनेवाले (सुशिप्र) सुन्दर ठोड़ीवाले (इंद्र) हे इद्र ! (यत्) जिसको (दिधृक्षेम) हम धारण करना चाहते हैं और जिसको (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और भूमि (पप्राः) पूर्ण करते हैं, उस (ज्येष्ठम्) परम प्रशंसनीय (ओजिष्ठम्) अत्यंत बलदायक (पुपुरि) तृप्ति देनेवाले (श्रवः) अन्नको (नः) हमारे अर्थ (आभर) दीजिये ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १र २उ ३र ३ १ २ ३
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं

१ २   १ २   ३ २ ३ १ २   ३ २र ३
यदस्य । ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध
१ २   ३ २
उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया यः इंद्रः, जगतः जंगमस्य पश्वादेः, यतो राजा ईश्वरः भवति । चर्षणीनां मनुष्याणाञ्च राजा भवति । किञ्च अधिक्षमा [सप्तम्येकवचनस्य लुक्] क्षमायां विश्वरूपं, यत् धनमस्ति अस्य तस्यापि राजा भवति ततो ददाति दाशुषे वसूनि यजमानाय धनानि ददाति । स इंद्रः अस्माभिः उपस्तुतं सम्यक् स्तुतम्, राधः धनम्, अर्वाक् अस्मदभिमुखं चोदत् प्रेरयतु । अधिक्षमा—अधिक्षमि इति विश्वरूपं विपुरूपं इति, उपस्तुतं–उपस्तुत इति च सम्न ऋचः पाठभेदः ॥ २ ॥

(इंद्रः) जो इंद्र (जगतः) जंगम पशुआदिका (चर्षणीनाम्) मनुष्योंका (राजा) ईश्वर है, और (यत्) जो (अधिक्षमा) भूतल पर (अस्य) इसका (विश्वरूपम्) सब प्रकारका धन है, उसका भी ईश्वर है (ततः) उसमेंसे (दाशुषे) दान आदि करनेवाले यजमानको (वसूनि) सब प्रकारके धन (ददाति) देता है, वह इन्द्र (उपस्तुतम्) भलेप्रकार प्रशंसा कियेहुए (राधः) धनको (अर्वाक्) चित्) हमारी ओरको (चोदत्) प्रेरणा करे अर्थात् हमें देय ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २३क २र
यस्येदमा रजो युजस्तुजे जने वनँस्वः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया—रजोयुजः ज्योतिर्भिर्युक्तस्य (ज्योती रज उच्यत इति यास्कः) अत्यंततेजस्विनः । यस्य (इंद्रस्य) इदं पुरोवर्त्ति स्तोत्रयुक्तं हविरस्ति तद्धविः स्वः स्वर्गे सर्वत्र वा तुजे दातरि । जने यजमानविषये (वनं यतो वननीयं संभजनीयं खलु, अतः इन्द्रस्य दानं रंत्यं अत्यंतरमणीयम् । बृहत् प्रभूतं भवति ॥ ३ ॥

(रजोयुजः) ज्योतियोंसे युक्त अर्थात् अत्यंततेजस्वी (यस्य) जिस इंद्रका (इदम्) यह स्तोत्रयुक्त हवि है सो (स्वः) स्वर्गमें वा सर्वत्र (तुजे) दाता यजमानके विषयमें (वनम्) चाहना करने योग्य है, इसकारण निःसंदेह (इन्द्रस्य) इन्द्रका दान (रन्त्यम्) अतिरमणीय है (बृहत्) बहुतसा है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १ २
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमँ श्रथाय ।
१ २ ३ २ ३ १र २र ३ २ ३ १ २
अथादित्यव्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४॥

आद्ये ऋचो चतुष्पादे ह्येकपादयुतान्तिमा ।
शौनः शेपी गात्समदी वामदेवीति ताः क्रमात् ।
वारुणी पावमानी च वैश्वदेवीति संस्मृताः ॥

अथ चतुर्थी। हे वरुण ! उत्तमं उत्कृष्टं शिरसि बद्धम् । पाशम्, अस्मत् अस्मभ्यम् उच्छ्थाय उत्कृष्टं शिथिलं कुरु। अधमं निकृष्टं पादेऽवस्थितं पाशं अवश्रथाय अवाधस्तात् शिथिलीकुरु। मध्यमं नाभिदेशगतं पाशम्, विश्रथाय वियुज्य शिथिली कुरु। अथ अनन्तरं हे आदित्य अदितेः पुत्र वरुण ! वयं शुनःशेपाः तव व्रते त्वदीये कर्मणि। अदितये खण्डनराहित्याय। अनागसः अपराधसहिताः स्याम भवेम। अथादित्यव्रते वयं तव, अथावयमादित्यव्रते तव इति साम्न ऋचः पाठभेदः ।

(वरुण) हे वरुण (उत्तमम्) उत्तम शिरमें बँधे हुए (पाशम्) पाशको (अस्मत्) हमारे लिये (उत्-श्रथाय) ऊपरको ढीला करिये (अधमम्) निकृष्ट अर्थात् पैरोंमेंके पाशको (अव) नीचेको ढीला करिये (मध्यमम्) नभिदेशके मध्यम पाशको (वि) वियुक्त करिये अलग करके ढीला करिये (अथ) इसके अनन्तर (आदित्य) हे अदिति के पुत्र वरुण ! (वयम्) हम शुनःशेप (तव व्रत) तुम्हारे कर्ममें (अदितये) दुःख वा खण्डनसे रहित होनेके लिये (अनागसः) अपराधरहित (स्याम) होयँ ॥ ४ ॥

१ २ ३ १र ३ १ २ ३ १र २र ३
त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं विचिनुयाम
१ २ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३
शश्वत् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः
१ २ ३ २ ३ २
सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

अथ पंचमी। हे सोम ! पवमानेन पवित्रेण पूयमानेन। त्वया सहायेन। भरे (संग्राम-नाम नैं० २, १७, ६) संग्रामे। शश्वद् बहु। कृतं कर्त्तव्यम् वयं विचिनुयाम विशेषेण कुर्याम। यस्मात्तव साहाय्येन कर्माणि कुर्मः,

तत् तस्मात् अस्मान, मित्रः वरुणः अदितिः एतन्नामिकाः ।|सिंधुः एतदभिधाना । तथा पृथिवी उत अपि च द्यौः । एते मित्रादयः नः अस्मान् । मामहन्ताम् पूजयन्तु धनादिदानेन ॥ ५ ॥

(सोम) हे सोम (पवमानेन) पवित्रके द्वारा शुद्ध कियेजाते हुए (त्वया) तेरी सहायतासे (वयम) हम (भरे) संग्राममें (शश्वत्) बहुतसा (कृतम्) पराक्रम आदि कर्त्तव्य (विचिनुयाम) विशेषरूपसे करते हैं (तत्) तिस कारणसे (मित्रः) मित्र नामका देवता (वरुणः) वरुण नामका देवता (अदितिः) अदिति नामवाली देवी (सिन्धुः) सिन्धु (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्युलोक अर्थात् इनके अभिमानी देवता (नः) हमें (मामहन्ताम्) धन आदि देकर बड़ा करें ५

३ १ २र ३ २उ ३ २

इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । पूर्वस्यामृचि प्रकृता हे मित्रादयो देवाः । यूयं एकम् अद्वितीयं दानकर्मणि । इमं सोमं वृषणं कामानामभिवर्षकम् । कृणुत कुरुत । तथा इमां क्रियां फलाभिवर्षिकां कुरुत ॥ ६ ॥

पहिली ऋचामें कहे हुए हे मित्र आदि देवताओं ! तुम (एकम्) दान करनेमें अद्वितीय (इमम् इत्) इस एक सोमको ही (वृषणम्) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला (कृणुत) करो (माम्) मुझे भी फलोंकी वर्षा करनेवाली क्रियासे युक्त करो ॥ ६ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

३ १र २र

वरिवोवित्परिस्रव ॥ ७ ॥

गायत्र्यौ पावमान्यौ तु स न इत्यादिके ऋचौ ।
अमहीयुस्तयोरेषं छन्दोदैवतनिर्णयः ॥

अथ सप्तमी । हे सोम ! सः नः वरिवोवित् धनस्य लम्भकस्त्वं नः अस्माकं, युज्यवे यष्टव्यायेन्द्राय वरुणाय मरुद्भ्यः च परिस्रव धारया क्षर

हे सोम! (सः) वह (वरिवोवित्) हमें धनका प्राप्त करानेवाला तू (नः) हमारे (यज्यवे) यजनके योग्य अर्थात् पूजनीय (इन्द्राय) इंद्रके लिये (वरुणाय) वरुणके लिये (मरुद्भ्यः) मरुतोंके अर्थ (परिस्रव) धारासे टपको ॥ ७ ॥

३ १र २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

१ २
सिषासन्तो वनामहे ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । एना एनेनान्नेन सोमेन । मानुषाणां मनुष्याणां, विश्वानि द्युम्नानि अन्नानि, अर्यः अभिगच्छन्तः, सिषासन्तः सम्भक्तुमिच्छन्तश्च वयं वनामहे भजामहे ॥ ८ ॥

(एना) इस सोमसे (मानुषाणाम्) मनुष्योंके (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) अन्नोंको (अर्यः) प्राप्त होते हुए (सिषासन्तः) बाँटना चाहते हुए हम (आ वनामहे) यथोचित रूपसे बाँटते हैं ॥ ८ ॥

३ १ २   ३ २   ३ २ ३ १ २ ३ १   २   ३ १ २ ३   १ २
अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम
२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ९

अथ नवमी । त्रिष्टुभा अन्नदेवता आत्मानमेवाह-आत्मा एव ऋषिः । देवेभ्यः पूर्वं अग्निवरुणादिदेवेभ्यः पुरा अहमन्नं देवता अमृतस्य विनाशरहितस्य ऋतस्य सत्यस्य परब्रह्मणः सम्बन्धिनी, प्रथमजा अस्मि नाम प्रथमत एवोत्पन्ना भवामि खलु । यः पुमान् मां ददाति, अन्नरूपां मां अतिथ्यादिभ्यः ददाति, स इत् स एव, एवं परिदृश्यमानप्रकारेण, आवत् अवति सर्वान् प्राणिनो रक्षति यस्तु लोभयुक्तः सन् प्राणिभ्योऽन्नमदत्वा स्वयमेव तदन्नमत्ति, अन्नमदन्तं नानाविधान्नभक्षकं तं लोभिनमहमन्नं अन्नदेवता, अद्मि भक्षयामि विनाशयामीत्यर्थः ॥ ९ ॥

अन्नका अधिष्ठात्री देवता कहता है, कि–(अहम्) मैं अन्न (देवेभ्यः) अग्नि वरुण आदि देवताओंसे (पूर्वम्) पहिला हूँ, मैं (अमृतस्य) विनाशरहित (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमात्माका (प्रथमजा) सबसे पहिले उत्पन्न होनेवाला (नाम) प्रसिद्ध पदार्थ (अस्मि) हूँ (यः) जो पुरुष (माम्) मुझ अन्नको (ददाति) अतिथियोंके अर्थ देता है (सः—इत) वह ही (एवम्) इस दीखती हुई रीतिसे (आवत्) सब प्राणियोंकी रक्षा करता है और जो लोभयुक्त होकर प्राणियोंको अन्न नहीं देता है अर्थात् केवल अपने आप ही खालेता है (अन्नम्, अदन्तम्) नाना प्रकारके अन्नोंके खानेवाले (तम्) उस लोभीको (अहम्, अन्नम्) मैं अन्न देवता (अद्मि) खाजाता हूँ अर्थात् उसका नाश कर देता हूँ ॥ ९ ॥

षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च ।
१२ ३ २ ३ १ २
परुष्णीषु रुशत्पयः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे सैषा प्रथमा । श्रुतकक्ष ऋषिरिन्द्रो,गायत्री । अस्य सामर्थ्यमेवोपपादयति–हे इन्द्र ! कृष्णासु कृष्णवर्णासु गोषु तथा रोहिणीषु च वर्णादनुदात्तान्तोपधात्तो नः (४, १, ३९) इति ङीष् । परुष्णीषु रोहितवर्णासु "परुष्णी पर्ववतीति" यास्कः । पर्वशः पर्वशो नानावर्णासु च गोषु । रुशत् रोचतेर्दीप्तिकर्म्मणः, दीप्यमानं श्वेतम्, एतत् परिदृश्यमानं पयः क्षीरं त्वं, अधारयः धारयसि तस्मात्तद्बलं पूजयाम इति समन्वयः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! (कृष्णासु) काले वर्णकी (रोहिणीषु,) लालवर्णकी (च) और (परुष्णीषु) गण्डेदार अर्थात् अनेकों वर्णकी गौओंमें (एतत्) इस (रुशत्) दमकते हुए श्वेत (पयः) दूधको (त्वम्) तुमने (अधारयः) स्थापन किया है, इसकारण हम उसकी सामर्थ्य की प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति
१२ ३ २ ३ १ २ ३
भुवनेषु वाजयुः । मायाविनो ममिरे अस्य
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अरूरुचदिति त्र्येतां पवित्रो ह्यृवानृषिः । पवमानो देवता स्याच्छन्दश्च जगती स्मृता । उषसः सम्बन्धी, पृश्निः आदित्यः "पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुत एनम् (नै० २, १४) वर्ण" इति नैरुक्ताः। अग्रियः अग्र्यः मुख्यः सोमः । अरूरुचत् रोचयति । सः उक्षा जलस्य सेक्ता पर्जन्यः सन्,मिमेति भृशं शब्दायते । भुवनेषु भूतजातेषु, वाजयुः तेषामन्नमिच्छन् । मायाविनः माया प्रज्ञा तद्वन्तो देवाः अस्य सोमस्य मायया प्रज्ञया ममिरे निर्मितवन्तः । सोमस्य एकैकांशपानवशात् अग्न्यादयः स्वस्वव्यापारेण जगत् सृजन्तीत्यर्थः । तस्यास्य मायया, नृचक्षसः नृणां द्रष्टारः पितरः पालकाः देवा आङ्गिरसः पितरो वा गर्भं आदधुः धारयंति ओषधीषु । स चात्र सूर्यात्मा सामः स्तूयते । सूर्य-

रश्म्यनुगमाधीनवर्द्धनाच्चन्द्रस्य । यद्वा अयमुपसः पृश्निः सविता, अरूरुचत् रोचयति, रोचते वा सर्वं शिग्रं समानतत्सम्बन्धिने नृचक्षसो नृणां द्रष्टारः पितरो जगद्रक्षका रश्मयो गर्भमादधुर्वृष्ट्यर्थम् । मिमीते भुवनेषु बिभर्त्ति भुवनानि इति साम्न ऋचः पाठभेदः ॥ २ ॥

(उपसः) उषाका सम्बन्धी (पृश्निः) आदित्य नाम वाला (अग्रयः) मुख्य सोम (अरूरुचत्) स्वयं प्रकाशित होता है और सब को प्रकाशित करता है और वह (उक्षा) जल बरसाने वाला मेघरूप होकर (भुवनेषु) लोकोंमें (वाजयुः) बल और अन्नदेनेकी इच्छा करता हुआ (मिमीते) अत्यंत शब्द करता है अर्थात् गरजता है । (मायाविनः) प्रज्ञावाले देवताओंने (अस्य) इस सोमकी (मायया) प्रज्ञाके द्वारा (ममिरे) रचनाकी है अर्थात् अग्नि आदि देवता सोम के एक २ भागको पीनके प्रभावसे अपने २ व्यापारसे जगत्की रचना करते हैं, ऐसे इस सोमके प्रतापसे ही मनुष्योंको देखनेवाले पितर कहिये पालन करनेवाले देवता अथवा पितृपुरुष औषधोंमें (गर्भम्) गर्भको (आदधुः) धारण करतेहुए इसप्रकार यहाँ सूर्यात्मा सोमकी स्तुतिकी है । क्योंकि—सूर्यकी किरणोंका प्रवेश होने पर ही सोम बढ़ता है ॥ २ ॥

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इद्धर्यो सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रो वज्री हिरण्यया ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । द्वयोर्मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः द्रष्टा स्याद् गायत्री छन्द इंद्रो देवतेति । इंद्र इत् इंद्र एव, हर्योः हरिनामकयोरश्वयोः, सचा सह युगपत्, आ संमिश्लः सर्वतः संमिश्रयिता । कीदृशयोर्हर्योः वचोयुजा इंद्रस्य वचनमात्रेण रथे युज्यमानयोः सुशिक्षितयोरित्यर्थः । अयमिन्द्रः वज्री वज्रयुक्तः, हिरण्ययः हिरणमयः सर्वाभरणैरुपेत इत्यर्थः । ॥ ३ ॥

(इंद्र इत्) इंद्र ही (वचोयुजा) वचन मात्रसे रथमें जुड़ जाने वाले अर्थात् सुन्दर शिक्षा पाये हुए (हर्योः) हरि नामक अश्वों का (सचा) एक साथ (आसंमिश्लः) सर्वत्र मिला देने वाला है (इंद्रः) वह इंद्र (वज्री) वज्रधारी है और (हिरण्ययः) सकल आभूषणोंको धारण किये हुए है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र वाजेषु नोव सहस्रप्रधनेषु च ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे इंद्र ! उग्रः शत्रुभिरप्रधृष्यस्त्वं, उग्राभिः अप्रधृष्याभिः, ऊतिभिः अस्मद्द्वेष्यपरपक्षाभिः, वाजेषु युद्धेषु, नः अस्मान् अव रक्ष तथा सहस्रप्रधनेषु च सहस्रसंख्याकाश्वादिलाभयुक्तेषु महायुद्धेष्वपि रक्ष ॥ ४ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र । (उग्रः) महाबली होने के कारण किसी से न दबने वाले तुम (उग्राभिः) न दबने वालीं परम तेजस्वी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (नः) हमको (वाजेषु) साधारण युद्धों में (च) और (सहस्रप्रधनेषु) जिनमें सहस्रों हाथी घोड़े आदिका लाभ हो ऐसे महायुद्धोंमें भी (अव) रक्षा करिये ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २
प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हवि-
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
र्यत् । धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमाज-
३ १ ३
भारा वशिष्ठः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । अपश्यत्प्रथ इत्येतां त्रिष्टुभं प्रथनामकः । वैश्वदेवी भवेदेवं छन्दोदैवतनिर्णयः ॥ यस्य वसिष्ठस्य, प्रथः नाम पुत्रः, यस्य भरद्वाजस्य सप्रथः नाम पुत्रः, तयोर्मध्ये वसिष्ठः मम पिता अनुष्टुभस्य अनुष्टुप्छन्दसा युक्तस्य, हविषः धर्माख्यस्य, यद्धविः हविष्ट्वापादकं, रथन्तरं साम तद्रथन्तरं, धातुः धातृसंज्ञाद् देवात्, द्युतानात् द्योतमानात्सवितुश्च विष्णोश्च, आजहार आहृतवान् । हृग्रहोर्भ इति भत्वं रथशब्दोपपदात् । तरतेः संज्ञायां भृतॄवृजीति खच् । अरुर्द्विषदजन्तस्येति मुमागमः ॥ ५ ॥

(यस्य) जिस वसिष्ठका (प्रथः) प्रथ नामका पुत्र है (च) और जिस भरद्वाजका (सप्रथः) सप्रथ नामका पुत्र है,इन दोनोंमें (वसिष्ठः) मुझ प्रथके पिता वसिष्ठने (अनुष्टभस्य) अनुष्टप् छन्दसे युक्त (हविषः) धर्मका (यत्) जो (हविः) हविपनेको प्राप्त कराने वाला (रथन्तरम्) रथन्तर नामका सोम है उसको (धातुः) धाता नामके देवतासे (च) और (द्युतानात्) द्योतमान (सवितुः) सबके उत्पादक विष्णुसे (आजभारा) प्राप्त किया ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
नियुत्वा न्यायवागह्ययꣳ शुक्रो अयामि ते ।
१ २ ३ २ ३ २
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। नियुत्वानिति गायत्र्या वायुं गृत्समदोऽब्रवीत् ॥ हे वायो! नियुत्वान् नियुतो वाहनानि ; वायोः नियुतोरिति (१, १५, १०) निघण्टुः। तैर्युक्तस्त्वं, आगहि आगच्छ। अयं शुक्रो दीप्यमानः सोमः, ते तुभ्यं अयामि (यामेः कर्मणि लुङि रूपम्) नियतो गृहीत आसीत्, यतः सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतो यजमानस्य गृहं गन्तासि यातोऽसि ॥६॥

(वायो) हे वायुदेव ! (नियुत्वान्) वाहनोंसे युक्त होकर तुम (आगहि) आइये (अयम्) यह (शुक्रः) दीप्यमान सोम (ते) तुम्हारे लिए (अयामि) नियमके साथ ग्रहण किया गया है, क्यों कि तुम (सुन्वतः) सोमका रस तयार करने वाले यजमानके (गृहम्) घर को (गन्तासि) जाते हो ॥ ६ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी। नृमेधपुरुमेधौ द्वावृषी ऐन्द्र्या अनुष्टुभः ॥ हे अपूर्व्य त्वत्तो व्यतिरिक्तेन पूर्वेण वर्जितं हे मघवन् मंहनीयतम धनवन्निन्द्र! वृत्रहत्याय वृत्रासुरहननाय, यत् यदा त्वं, जायथाः उत्पन्नः प्रादुर्भूतोऽसि, तत् तदानीमेव पृथिवीं प्रथमानां अप्रथयः प्रसिद्धां दृढां अकरोः। उत अपि च दिवः द्यां द्युलोकं अन्तरिक्षेण अस्तभ्नाः निरुद्धामकार्षीः। ईदृशं वीर्यं त्वदन्यस्य न भवतीत्यर्थं द्योतयितुमपूर्व्येति पदम् ॥ ७ ॥

(अपूर्व्य) आपसे पहिले और कोई था ही नहीं ऐसे अनादि रूप (मघवन्) हे सकल धनोंके भण्डार इंद्र देव ! (वृत्रहत्याय) वृत्रासुर का नाश करनेके लिए (यत्) जिस समय तुम (जायथाः) प्रकट हुए थे (तत्) उसी समय तुमने (पृथिवीम्) पृथिवीको (अप्रथयः) प्रसिद्ध और दृढ़ कर दिया था (उत) और (दिवम्) द्युलोकको अन्तरिक्षसे (अस्तभ्नाः) अच्छे प्रकारसे स्थित कर दिया था। ऐसा प्रभाव और किसीमें है ही नहीं आप ही में है ॥ ७ ॥

षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

२ ३ १ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २र
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ १ ॥

अथ तृतीयखण्डे—सैषा प्रथमा । वामदेव ऋषिः प्रोक्तो मतीत्यस्याः प्रजापतिः । देवता स्यात्ततश्छन्दोऽनुष्टुप् सद्य इतीरितम् ॥ परमेष्ठी परमे लोके तिष्ठतीति परमेष्ठी प्रजापतिः, दिवि द्योतमाने स्वर्गे, द्यामिव द्योतमानां कान्तिमिव, मयि अस्मदीये शरीरे, वर्चः तेजः ब्रह्माख्यं दृंहतु वर्धयतु। अथो अपि च यशश्च दृंहतु अथो किञ्च यज्ञस्य यागस्य सम्बन्धि अतएव स उत्तमं पयः हविर्लक्षणमन्नञ्च दृंहतु ॥ १ ॥

(परमेष्ठी) परमलोकमें निवास करने वाला प्रजापति (दिवि) द्योतमान स्वर्गमें (द्यामिव) द्योतमान कान्तिकी समान (मयि) मेरे शरीरमें (वर्चः) ब्रह्मतेजको (दृंहतु) बढ़ावै और दृढ़ करै (अथो) और (यशः) कीर्तिको बढ़ा कर दृढ़ करै (अथो) और (यज्ञस्य) यज्ञसे सम्बंध वाला उत्तम (यत्) जो (पयः) हविरूप अन्न है उस का भी बढ़ावै और दृढ करै ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १र २र
सन्ते पयाꣳसि समुयन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्य-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भिमातिषाहः । आप्यायमानो अमृताय सोम
३ १र २र ३ १ २
दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । त्रिष्टुभः पावमान्याः स्याद्दृषिर्गौतमनामकः ॥ हे सोम ! अभिमातिषाहः अभिमातीनां शत्रूणां हन्तुः ते तव एवम्भूतं त्वां पयांसि श्रपणार्थानि क्षीराणि, संयंतु सङ्गच्छताम । तथा वाजाः हविर्लक्षणान्यन्नानि च त्वां सङ्गच्छन्ताम् । वृष्ण्यानि वीर्याणि च सङ्गच्छन्ताम् । हे सोम ! त्वं अमृताय आत्मनः अमृतत्वाय अमृतत्वाय आ समन्ताद्वर्द्धमानः सन्, दिवि नभसि स्वर्गे, उत्तमानि उद्गततमानि उत्कृष्टानि, श्रवांसि अन्नानि अस्माभिर्भोक्तव्यानि हविर्लक्षणानि धिष्व धारयते । क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति (पा० २, ३, १३) कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (अभिमातिषाहः) शत्रुओंका नाश करने वाले (ते) तुम्हें (पयांसि) श्रपणके लिए नियत किये हुए क्षीर (संयंतु)

प्राप्त हों तथा (वाजाः) हविरूप अन्न तुम्हें प्राप्त हों (वृष्णानि) वीर्य भी तुम्हें प्राप्त हों अर्थात् इन सबको आप ग्रहण करिये। हे सोम! तू (अमृताय) अपने अमरपनेके लिए (आ) सब ओरसे बढ़ते हुए (दिवि) स्वर्गमें (उत्तमानि) उत्तम (श्रवांसि) हमारे खानेके योग्य हविरूप अन्नोंको (धिष्व) धारण करते हो ॥ २ ॥

२ ३ १र २र ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अज-
३ २ १र २र ३ २ १ २ ३ १
नयस्त्वं गाः । त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षन्त्वञ्ज्यो-
२र ३ १र २र
तिषा वि तमो ववर्थ ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम! त्वं इमा भूम्यां वर्त्तमानाः, विश्वाः सर्वा ओषधीः अजनयः उत्पादितवानसि। तथा त्वं अपः तासामोषधीनाम् कारणभूतानि वृष्ट्युदकानि अजनयः। तथा त्वं गाः सर्वान् पशून् उद्पादयः। उरु विस्तीर्ण,अन्तरिक्षं त्वं आतनोः विस्तारितवानसि। तस्मिन्नन्तरिक्षे यत्तमः अस्मद्दृष्टिनिरोधकमन्धकारम्, तदपि त्वं ज्योतिषा आत्मीयेन प्रकाशेन विववर्थ विशिष्टं कृतवानसि। ववर्थ वृञ् वरणे लिट्स्थलि बभूथाततन्थजगृम्भववर्थेति (पा० ७, २, ६४) निपात्यते। आतनोः आततन्थ इति साम्न ऋचः पाठौ ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम! (त्वम्) तूने (इमाः) इन भूमि पर वर्त्तमान (विश्वाः) सकल (ओषधीः) ओषधियोंको (अजनयः) उत्पन्न किया है (त्वम्) तूने (अपः) इन ओषधियोंके कारण भूत वर्षाके जलोंको उत्पन्न किया है (त्वम्) तूने (गाः) गौ आदि सकल पशुओंको उत्पन्न किया है (उरु) विस्तार वाले (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षको (त्वम्) तूने (आतनोः) फैलाया है और उस अन्तरिक्षमें जो (तमः) हमारी दृष्टिको रोकनेवाला अन्धकार था उसको भी (त्वम्) तूने (ज्योतिषा) अपने प्रकाशसे (विववर्थ) अस्तव्यस्त वा नष्ट किया है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
१ २ ३ १ २
होतारꣳ रत्नधातमम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। अग्निमीळे मधुच्छन्दा गायत्र्येषाग्निसंस्तुतिः ॥ अग्निनामकं देवं ईडे स्तौमि। ईड स्तुताविति (अदा० आ०) धातुः, मन्त्रस्यास्य होत्रा प्रयुज्यमानत्वात् अहं होता स्तौमीति लभ्यते। कीदृशमग्निम्? यज्ञस्य पुरोहितम्, यथा राज्ञः पुरोहितस्तदभीष्टं सम्पादयति तथाग्निरपि यज्ञस्यापेक्षितं होमं सम्पादयति। यद्वा यज्ञस्य सम्बंधिनि पूर्वभागे आहवनीयरूपेणावस्थितम्। पुनः कीदृशम्? होतारं ऋत्विजम्। देवानां यज्ञेषु होतृनामक ऋत्विगग्निरेव। तथा च श्रूयते-अग्निर्वै देवानां होतेति। पुनरपि कीदृशम्? रत्नधातमम् यागरूपाणां रत्नानामतिशयेन धारयितारं पोषयितारं वा। अत्राग्निशब्दस्य यास्को बहुधा निर्वचनं दर्शयति अथातोऽनुक्रमिष्यामोऽग्निः पृथिवीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामो अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयतेऽङ्गं नयति सन्नममानाऽक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविर्न क्नोपयति न स्नेहयति त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिरितादक्तादग्धाद्वानीतात्स खल्वेते रकारमादत्ते गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा नी परस्तस्यैषा भवति (७, ४, १) इति ॥ ४ ॥

(यज्ञस्य) यज्ञके (पुरोहितम्) पुरोहित अर्थात् जैसे राजाका पुरोहित उसके अभीष्ट कार्यको सिद्ध करता है तैसे ही अग्नि भी यज्ञके अङ्गरूप होमको सिद्ध करता है अथवा जो यज्ञके पूर्वभागमें आहवनीय रूपसे स्थित होता है इस कारण पुरोहित नामक (होतारम्) देवताओंके यज्ञोंमें होता बनने वाले (रत्नधातमम्) याग रूप रत्नोंके अतिशय करके धारक और पोषक (अग्नि देवम्) अग्नि देवताकी (ईडे) स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

१ २ ३२र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १र
ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं
२र १ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १
नाम जानन्। ता जानतरभ्यनूषत क्षा आवि-
२ ३ १र २र ३ १ २
र्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। त्रिष्टुभा वामदेवोऽस्तौदग्निं ते मन्वतेति च। हे अग्ने ते स्तोत्रं कुर्वाणा अङ्गिरसः गोनां गवां वाचां सम्बन्धि नाम स्तुतिसाधकं शब्दमात्रं,प्रथमं पूर्वं अमन्वत अजानत, पश्चात्तस्या वाचः सम्बन्धीनि त्रिः सप्त एकविंशतिसंख्याकानि, परमं परमाण्युत्कृष्टानि नाम

नामानि स्तुतिसाधकानि स्तोत्राणि [जातावेकवचनम्] छन्दांसि वा [तानि च गायत्र्यादीनि जगत्यन्तानि सप्त अतिजगत्यादीनि अतिधृत्यंतानि सप्त कृतिप्रभृत्युत्कृतिपर्यंतानि सप्त] जानन् अजानन् अलभत, एवन्विधच्छन्दोयुक्तैर्मन्त्रैरग्निमस्तुवन्नित्यर्थः। ताः वाचः जानती सर्वं जानत्यः क्षाः [क्षियन्ति गच्छन्त्युषः कालं प्रापयन्ति ताः] अभ्यनूषत अस्तुवन्। ततः सूर्यस्य यशसा तेजसा सह अरुणीः अरुणवर्णा गावः आविर्भुवन् प्रादुरभूवन्। यद्वा ते अङ्गिरसः प्रथमं पुरातनं नाम एहि, सुरभि गुग्गुलुगन्धिनीति धेनुनामधेयं, अमन्वत उच्चारयामासुः। पश्चात्स्वभूतानि पणिभिरपहृतानि त्रिः सप्त रत्नान्यविन्दन्। तत उच्चारितं जानत्यो गावः, अभ्यनूषत हम्भारवलक्षणं शब्दमकुर्वत। तदानीमुषाः प्रादुरभूदिति। ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन्। ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः इति छन्दोगाः। ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन् धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन्। तज्जानतीरभ्यनूषत वा आविर्भुवन्नरुणी यशसा गोः—इति बह्वृचाः ॥ ५ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (ते) तुम्हारी स्तुति करने वाले अङ्गिरसोंने (प्रथमम्) पहिले (गोनाम्) वाणियोंमें (नाम) स्तुतिके साधक शब्द मात्रको (अमन्वत) जाना, पीछे उस वाणीके सम्बंधके (त्रिः सप्त) सात के तिगुने इक्कीस (परमम्) परम,उत्तम (नाम) स्तुतिके साधन स्तोत्र रूप नामोंको वा गायत्री आदि छन्दोंको (जानन्) जाना। अर्थात् जगती आदि छन्दोंसे युक्त मंत्रोंके द्वारा अग्निकी स्तुतिकी (ताः) उन स्तुतियों का (जानतीः) जानती हुई (क्षाः) प्रजाओंने उषःकालमें (अभ्यनूषत) स्तुति की, तदनंतर सूर्यके (यशसा) तेजके साथ (अरुणीः) दीप्तमती हुई (गावः) वह वाणियें (आविर्भुवन्) प्रकट हुईं ॥ ५ ॥

२ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क२र

समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।

२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १ २ ३ १ २

तमू शुचिं शुचयो दीदिवाꣳसमपान्नपातमुपयन्त्यापः

अथ षष्ठी। द्वतीयं त्रिष्टुबाग्नेयी दृष्टा गृत्समदेन सा। अन्यात्रर्पाणा आपः संयांति भृश्यां सङ्गच्छन्ते। अन्याश्च पूर्वं तत्रावस्थिताः उपयंति उपगच्छन्ति। ताः सर्वा आपः समानं सह नद्यः नदीभूत्वा,ऊर्वं समुद्रमध्ये वर्त्तमानं वडवानलं पृणयंति प्रीणयंति। पृण प्रीणने(प०तौदादिकः)

तमु तमेव अपान्नपातं, शुचिं निर्मलं दीदिवांसं दीप्यमानं। दीदिवेति छान्दसो दीप्तिकर्मा लिटः क्वसुः। वस्त्रेकाजाद्घसामिति नियमादिड-भावः छन्दसि नेति वचनाद् द्विवचनाभावः। एवम्भूतं शुचयः शुद्धा आप उपयंति समीपे गच्छन्ति। एष हि वैद्युताग्निरूपेण मेघे वर्त्तमानो-ऽस्मानर्जोजनदिति बुद्धया बड़वानलरूपेण वर्त्तमानं तं पर्युपासत इत्यर्थः। यद्वा अन्या एक धनाख्या आपः संयंति चात्वालोत्करयोर्मध्ये वसतीवरीभिः सङ्गच्छते। अन्या वसतीवर्याख्या आपश्च यंति उपग-च्छन्ति ऐकमत्यं प्राप्ता भवंति। एताश्च मिलित्वा यज्ञंसाधयंत्यः, तत्सा-ध्यवृष्टिद्वारा नद्यो भूत्वा ऊर्वं पृणन्तीत्यादि समानम्। एवं हि आपो वा अस्पर्धंत वयं पूर्वं यज्ञं वक्ष्याम इत्यादिको बह्वृचब्राह्मणविनियोग-श्चानुगृह्यते। अपान्नपातमुपयंत्यापः—परितस्थुरापः, इति साम्न ऋचः पाठभेदः॥ ६॥

(अन्यः) एक वर्षाके (आपः) जल (संयन्ति) भूमिमें जाकर पड़ते हैं (अन्याः) पहिलेसे ही भूमिमें स्थित दूसरे जल (उपयंति) उनमें मिलजाते हैं और वह सब जल (समानम्) मिलकर इकट्ठे हुए (नद्यः) नदीरूप होकर (ऊर्वम्) समुद्रके मध्यमें वर्त्तमान बड़वा-नलको (पृणन्ति) तृप्त करते हैं (तमु) उस ही (अपान्नपातम्) जलोंके पौत्र (शुचिम्) निर्मल (दीदिवांसम्) दीप्तिमान जलको (शुचयः) शुद्ध जल (उपयंति) समीपमें प्राप्त होते हैं॥ ६॥

१र २र ३ १ ३ २ १र २र ३ १ २र

आप्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री॥७॥

अथ सप्तमी। अस्तौदनुष्टुभा रात्रिं वामदेव ऋचानया। भद्रा सूर्य-प्रकाशसंतापं निवारयंती सुखकरी, युवतिः तमसो मिश्रयित्री रात्रिः आप्रागाद् आभिमुख्येन गच्छति, अह्नः चन्द्रमसः केतून् रश्मीन् समीर्त्सति सम्यक् संबन्धयितुमिच्छति च, अतएव भद्रा कल्याणी रात्री विश्वस्य सर्वस्य जगतः निवेशनी निवेशकारिणी अभूत् भवति अहनि स्वस्वव्यापारात् खिन्नान् सर्वप्राणिनः स्वाश्रयेषु स्वापयतीत्यर्थः

(भद्रा) सूर्यके प्रकाशसे होनेवाले सन्तापको निवारण करके सुख देनेवाली (युवतिः) अन्धकारको मिलानेवाली रात्रि (आ प्रागा) अभिमुख होकर आरही है। (अह्नः) चन्द्रमाकी (केतून्) किरणोंके

साथ (समीर्त्सति) सम्यक् प्रकारसे सम्बन्ध करना चाहती है, इस कारण ही (भद्रा) कल्याणी (रात्री) रात्रि (विश्वस्य) सकल (जगतः) जगत्की (निवेशनी) अच्छेप्रकारसे शयन करानेवाली (अभूत्) होती है अर्थात् दिनमें अपने २ व्यापारोंसे खिन्न हुए सब प्राणियोंको अपने आश्रयमें आराम देती है ॥ ७ ॥

३२ ३ १ २ ३ २ ३ २र ३ ३ ३ १ २
प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र
विदथा जातवेदसे । वैश्वानराय मतिर्न-
२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
व्यसे शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । वैश्वानरं जगत्याऽस्तौद्भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । प्रक्षस्य सम्प्रक्तस्य व्याप्तस्य । यद्वा पृक्षं हविर्लक्षणमन्नं तद्वतः । वृष्णः सेक्तुः, अरुषस्य आरोचमानस्य वैश्वानराय महः पूजायुक्तं बलं तेजो वा नु क्षिप्रं स्तौमि । अतएव नः अस्मदीयं, वचः वचनं विदथे यागे प्रयच्छति स्तौतीत्यर्थः । जातवेदसे जातप्रज्ञाय जातधनाय वा तमुद्दिश्येत्यर्थः । उक्तमेव प्रकारान्तरेणादरार्थमाह नव्यसे नवतराय वैश्वानराय अग्नये; शुचिः निर्मलाः स्तोतॄणां शोधयित्री वा चारुः कल्याणी मतिः मननीया स्तुतिश्च पवते मत्सकाशात्प्रभवति स्वयमेव गच्छतीत्यर्थः । सोमः इव यथा सोमः दशापवित्रात्स्रवति तद्वत् इत्यर्थः । प्रक्षस्य पृक्षस्य इति, महः—सहः इति प्रनोवोच—प्रनुवोचम् इति, जातवेदसे जातवेदसः इति नव्यसे–नव्यसि इति च साम्न ऋचः पाठभेदाः ॥ ८ ॥

हे वैश्वानर! (प्रक्षस्य) सर्वत्राव्याप्त वा हविरूप अन्नवाले (वृष्णः) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले (अरुषस्य) दीप्तिमान् जो तुम ऐसे तुम्हारे (महः) पूजनीय बल वा तेजको (नु) शीघ्र ही स्तुति करता हूँ, इस लिये ही (नः) हमारा (वचः) वचन (विदथे) यागमें (वैश्वानराय) सकल नरोंको अभिलषित पद पर पहुँचाने वाले अग्निदेवके अर्थ (प्र) प्राप्त होता है अर्थात् स्तुति करता है (नव्यसे) अति नवीन अर्थात् हविसे अत्यंत प्रज्वलित हुए (जातवेदसे) प्राणिमात्रको जाननेवाले (अग्नये) अग्निदेवके अर्थ (शुचिः) निर्मल अथवा स्तुति करनेवालोंके पापका नाश करके शुद्ध करदेने वाली (चारुः) कल्याणकारिणी (मतिः) मनन करने योग्य स्तुति (सोम इव) जैसे सोम दशापवित्रमेंको टपक जाता है तिसप्रकार (पवते) मेरे हृदयमेंसे स्वाभाविक ही निकलती है

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १र २र ३ १र
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपा-
२र ३ १ २ २ ३ १ २ ३ १
न्नपाच्च मन्म । मा वो वचाꣳसि परिचक्ष्याणि
३ २उ ३ १ २
वोचꣳ सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥ ९ ॥

अथ नवमी । एषा त्रिष्टुब्वैश्वदेवी भरद्वाजेन वीक्षिता ॥ विश्वे सर्वे देवाः मम मदीयं मन्म मननीयं यज्ञं यजनीयं पूजां हवींषि शृण्वन्तु गृह्णन्त्वित्यर्थः । अप.न्नपात् मध्यस्थानोऽग्निश्च, उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ अस्मदीयं स्तोत्रं शृण्वंतु चित्ते अवधारयंतु । अथ प्रत्यक्षकृताः । हे देवाः ! वः युष्माकं परिचक्ष्याणि परिवर्जनीयानि यानि वचांसि स्तोत्राणि मा वोचं न ब्रवीमि अपि तु समीचीनानीति। अतो वः युष्माकं अन्तमाः अन्तिकतमाः संतो वयं सुम्नेष्वित् युष्म भिर्दत्तेषु सुखेष्वेव वर्त्तमाना मदेम मोदेम ॥ यज्ञं-यज्ञियाः इति पाठौ ॥ ९ ॥

(विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) देवता (मम) मेरे (मन्म) मान्य करने योग्य (यज्ञम्) पूजा वा हविको (शृणवन्तु) ग्रहण करें (अपान्नपात्) देवताओंको हवि पहुँचानेवाला मध्यलोकका अग्नि (उभे) दोनों (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीलोकके अभिमानी देवता मेरे स्तोत्रको सुनकर चित्तमें धारण करें । हे देवताओं ! (वः) तुम्हारे लिये (परिचक्ष्याणि) त्यागने योग्य जो (वचांसि) वचन हैं उनको (मावोचम्) नहीं उच्चारण करता हूँ किन्तु सुन्दर स्तोत्रोंको उच्चारण करता हूँ, इसकारण (वः) तुम्हारे (अन्तमाः) अत्यंत समीप पहुंचते हुए हम (सुम्नेषु इत्) आपके दियेहुए सुखोंमें ही (मदेम) आमोद करें ॥ ९ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ २
यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १र
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम् ।
३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यशस्व्या३स्याः सꣳसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । वामदेवो महापंक्त्यास्तौति लिङ्गोक्तदेवता । द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्योः यशः मा स्तोतारं आविन्दतु लभतां प्राप्नोत्वित्यर्थः

किंच इंद्रबृहस्पती इन्द्रबृहस्पत्योः यशो मा मां विन्दतु।किञ्च भगस्य आदित्यस्य यशो मा मां विन्दतु। बहुलेन यशसा यशोमया मा प्रतिमुच्यताम्,न प्रमुच्यताम्। यशस्यस्याः अस्याः मम संसदः समूहस्य यशो न प्रमुच्यताम्। अहं प्रवदिता सर्वत्र प्रवक्ता स्यां भूयासम् ॥ १० ॥

हे देव ! (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोकका (यशः) यश (मा) मुझ स्तुति करनेवालेको (आविन्दतु) प्राप्त हो (इंद्रबृहस्पती) इंद्र और बृहस्पतिका (यशः) यश (मा) मुझे प्राप्त हो (भगस्य) आदित्यका (यशः) यश (मा) मुझे प्राप्त हो (मा प्रमुच्यताम्) इस बड़ेभारी यशसे मैं कभी विलग न होऊँ (अस्याः) इस (संसदः) सभा का (यशः) श्रेष्ठ यश कभी नष्ट न हो (अहम्) मैं (प्रवदिता) सर्वत्र प्रगल्भतासे बोलनेवाला (स्याम्) होऊँ ॥ १० ॥

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि

३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

वज्री। अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभि-

३ १ २

नत्पर्वतानाम् ॥ ११ ॥

अथैकादशी। दृष्टा हिरण्यस्तूपस्त्रिष्टुबेवेन्द्रदेवत्या। वज्री वज्रयुक्त इंद्रः प्रथमानि पूर्वसिद्धानि मुख्यानि वायानि वीर्याणि पराक्रमयुक्तानि कर्माणि चकार तस्य इंद्रस्य यानिवीर्याणि नुक्षिप्रं प्रवोचं प्रब्रवीमि,कानि वीर्याणीति ? तदुच्यते–अहिं मेघं अहन् हतवान् तदेकं वीर्यम् अनु पश्चात् अपः जलानि ततर्द हिंसितवान् भूमौ पातितवानित्यर्थः, इदं द्वितीयं वीर्यम्। पर्वतानां सम्बन्धिनीः वक्षणाः प्रवहरणशीला नदीः प्राभिनत् कूलद्वयकर्षणेन प्रवाहितवानित्यर्थः, इद तृतीयं वीर्यम् ॥

(वज्री) वज्रधारी इंद्रने (प्रथमानि) पूर्व सिद्ध वा मुख्य (यानि) जो (वीर्याणि) पराक्रमके कर्म (चकार) किये, उस इंद्रके उन पराक्रमोंको (नु) शीघ्र ही (प्रवोचम्) कहता हूँ। यह पराक्रम कौनसे हैं ? ऐसा कहो तो बताता हूँ, सुनो–(अहिम्) मेघको (अहन्) मारा यह एक पराक्रम है। (अनु) फिर (अपः) जलोंको (ततर्द) ताड़ना दी अर्थात् भूतल पर गिराया, वह दूसरा पराक्रम है (पर्वतानाम्) पहाड़ोंकी (वक्षणाः) बहनेवाली नदियोंके (प्राभिनत्) किनारोंको खोदकर प्रवाहित किया, यह तीसरा पराक्रम है ॥ ११ ॥

३ १२ ३ १२ ३ १२ ३२ ३ १ २३ १२
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं
३ २ ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र ३
म आसन् । त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं
१ २ ३ १ २ ३ १ २
ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम् ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । विश्वामित्र ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दस्त्वग्निरिति द्वयोः । उत्तराग्ने स्तुतिः पूर्वा स्तुतिः सर्वात्मनात्मना ॥ हे कुशिकाः ! भोक्तृभोग्यभावेन द्विविधं इदं सर्वं जगत् "एतावद्वा इदमन्नं चैवान्नादश्च सोम एवान्नमग्निरन्नादः" इति श्रुतेः । तत्र सकलभोक्तृवर्गरूपेणान्नादोऽग्निः । स च अग्निवाय्वादित्यभेदेन त्रेधा भूत्वा पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोकानधितिष्ठति । तदुक्तं वाजसनेयके—"स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं द्वितीयं वायुं तृतीयम्" इति । तत्र-सः अग्निः अहं जन्मना एव जातवेदा अस्मि, श्रवणमननादिसाधननैरपेक्ष्येण स्वभावत एव साक्षात्कृत परमात्मतत्त्वस्वरूपोऽस्मि । घृतं मे चक्षुः—यदेतद्विश्वस्यावभासकं मम स्वभावभूतं प्रकाशात्मकं चक्षुः तद् घृतं इदानीमत्यन्तं दीप्तम् । यदेतत् अमृत कर्मफलं दिव्यादिविविधविषयोपभोगात्मकं तत् मे मम आसन आस्ये वर्त्तते । सकलभोक्तृवर्गात्मना स्वयमेवावस्थानात् । एवं स्वात्मनः पृथिव्यधिष्ठातृरूपतामभिधाय वाय्वात्मनान्तरिक्षाधिष्ठातृतामाह-अर्को जगतः स्रष्टा प्राणः । सोऽर्चन्नचरत्तस्यार्चत आपोऽजायन्तार्चते वैमेकमभूदिति तदेवार्कस्यार्कत्वम्' इति श्रुतेः । स प्राणः अहं त्रिधातुः त्रिधात्मानं विभज्य तत्र वाय्वात्मना रजसः अन्तरिक्षस्य विमानः विमाता अधिष्ठातास्मि। तथा आदित्यरूपेण द्युलोकाधिष्ठातृतामाह अजस्रं ज्योतिः अनुपक्षीणं नित्यं तेजःप्रकाशात्मा द्युलोकाधिष्ठाता आदित्योऽप्यहमस्मि। एवं भोक्तृरूपतामात्मनोऽनुसन्धाय भोग्यरूपतामप्यनुसन्धत्ते यत् हविः भोग्यं प्रसिद्धमस्ति तत्सर्वमप्यहमेवास्मि । यद्वा । अहमग्निरस्मि, देवानां हविः प्रापणादङ्गनादिगुणविशिष्टोऽस्मि । किञ्च जन्मना उत्पत्त्या जातवेदा जातज्ञानोऽस्मि । उत्पत्तिक्षणमेव सर्वज्ञोऽहमस्मि अथवा जातं सर्वं स्वात्मतया वेत्तीति जातवेदाः सर्वात्मक इत्यर्थः तत्कथम् ? इत्युच्यते—घृतं मे चक्षुः यदेतद् घृतं प्रसिद्धमस्ति तन्मे चक्षुःस्थानीयम्, यथा लोके चक्षुर्भासकं गव्यं घृतमपि प्रक्षिप्तं ज्वालामुत्पादयत् मम भासकम् । अमृतम्-प्रभारूपं यदमृतमविनाशि ज्योतिः मे मम आसन् आस्ये वर्त्तते । त्रिधातुः प्राणापानव्यानात्मकस्त्रिधा वर्त्तमानो-

ऽर्कोऽर्चनीयो यः प्राणोऽस्ति सोऽप्यहमेवास्मि। तथा रजसोऽन्तरिक्षस्य विमानः-विशेषेण माता परिच्छेत्ता वायुश्चाहमस्मि। किञ्च अजस्रं ज्योतिः—नैरन्तर्येण तापकः सूर्यश्चाहमस्मि। किं बहुना, आज्यपुरोडाशादिरूपं यदेतद्धविरस्ति तदुपलक्षितं तत्सर्वमप्यहमस्मि। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इति श्रुतेः। तमनेकधाग्नेः सर्वात्मकत्वप्रतिपादनेन परब्रह्मत्वमुक्तं भवति। अजस्रम्—धर्म-इति साम्न ऋचः पाठभेदः ॥१२॥

हे कुशिको! यह सब जगत् भोक्ता और भोग्य दो भागोंमें बटा हुआ है। भोग्यका नाम अन्न और भोक्ताका नाम अन्नाद है। अग्नि ही सकल भोक्ताओंके रूपमें अन्नाद है। वही भूलोकमें अग्निरूपसे अन्तरिक्षमें वायुरूपसे और द्युलोकमें आदित्यरूपसे भोक्ता बना हुआ है। उनमेंका वह (अग्निः) अग्नि (अहम्) मैं (जन्मना एव) जन्मसे ही जातवेदा हूँ अर्थात् मुझे श्रवण मनन निदिध्यासन आदिकी आवश्यकता नहीं है किन्तु मैं स्वभावसे ही परमतत्त्वका साक्षात्कार किये हुए हूँ। (घृतम्) घृत (मे) मेरा (चक्षुः) चक्षु है अर्थात् जो विश्वका प्रकाशक मेरा स्वभावरूप प्रकाशस्वरूप चक्षु है वही घृत कहिये इस समय अत्यन्त दीप्त होरहा है और जो यह (अमृतम्) अमृत है अर्थात् दिव्य आदि नानाप्रकारका विषयोगभोगरूप कर्मफल है वह (मे) मेरे (आसन्) मुखमें है, क्योंकि—सकल भोक्तारूपसे मैं ही स्थित हूँ। इसीप्रकार अपनी पृथिवीकी अधिष्ठातृरूपताको कहकर अब अन्तरिक्षके अधिष्ठातृपनेको कहता है, कि-(अर्कः) जगत्को रचने वाला जो प्राण है वह मैं ही हूँ, मैं (त्रिधातुः) अपने आपको तीन भागमें विभक्त करके उसमें वायुरूपसे (रजसः) अन्तरिक्षका (विमानः) अधिष्ठाता हूँ। अब आदित्यरूपसे द्युलोकके अधिष्ठातापनेको कहता है कि—(अजस्रं ज्योतिः) कदापि क्षीण न होने वाला नित्य तेजःप्रकाशरूप द्युलोकका अधिष्ठाता आदित्य भी मैं ही हूँ।-इसप्रकार अपने भोक्तारूपको कहकर अब भोग्यरूपको भी कहता है, कि-जो कुछ (हविः) भोग्यरूपसे प्रसिद्ध वस्तु है वह (सर्वम्) सब (अस्मि) मैं ही हूँ ॥ अथवा ॥ मैं (अग्निः) देवताओंको हवि पहुँचानेवाला (अस्मि) हूँ (जन्मना) उत्पत्तिकालसे ही (जातवेदाः) ज्ञानवान् हूँ अथवा उत्पन्न हुए पदार्थमात्रको आत्मस्वरूपसे जाननेवाला सर्वात्मा हूँ क्योंकि (घृतं मे चक्षुः) जो यह प्रसिद्ध घृत है यह मेरा चक्षुःस्थानीय है अर्थात् जैसे लोकमें चक्षु प्रकाश देता है तैसे ही घृत भी अग्निमें डालने पर ज्वाला उत्पन्न करते समय मुझे प्रकाश देता है, (अमृतम्) प्रभारूप जो अविनाशी ज्योतिरूप अमृत है वह (मे) मेरे (आसन्) मुखमें है (त्रिधातुः)

प्राण अपान व्यानरूप तीन प्रकारसे वर्त्तमान पूजनीय जो प्राण है वह भी मैं ही हूँ। तथा (रजसः) अन्तरिक्षका (विमानः) विशेष रूपसे परिमाण करनेवाला जो वायु है वह भी मैं ही हूँ। और (अजस्त्रं ज्योतिः) निरन्तर ताप देनेवाला सूर्य भी मैं ही हूँ। अधिक क्या कहूँ (सर्वं हविः) घृत पुरोडाश आदिरूप जो हवि है सो सब भी मैं ही हूँ, अर्थात् मैं ही सर्वव्यापक परब्रह्म हूँ ॥ १२ ॥

२ ३ २ ३ १र २र ३ १र २र ३ १र २र३
पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणꣳ
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १र २र
सूर्यस्य। पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति
३ १ २ ३ १ २ ३ २
देवानामुपमादमृष्वः ॥ १३ ॥

अथ त्रयोदशी। अग्निः वेः गन्त्र्याः सर्वत्र व्याप्तायाः- विपः रिपो भूम्याः। अग्रं मुख्यं पदं स्थानं पाति रक्षति। यह्वः महानग्निः, सूर्यस्य चरणं चरत्यनेनेति चरणमन्तरिक्षं पाति। नाभा नाभौ अन्तरिक्षस्य मध्ये सप्तशीर्पाणं सप्तगणं मरुद्गणं पाति। दर्शनीयोऽयम् अग्निः उपमादं देवानामुपमादकं यज्ञं पाति रक्षति। पात्यग्निर्विपो अग्रम्-पाति प्रियं रिपो अग्रम्-इति पाठौ ॥ १३ ॥

(अग्निः) अग्निदेवता (वेः) सर्वत्र व्याप्त (विपः) भूमिके (अग्रम्) मुख्य (पदम्) स्थानको (पाति) रक्षा करता है (यह्वः) महान् अग्नि (सूर्यस्य) सूर्यके (चरणम्) मार्गरूप अन्तरिक्षको (पाति) रक्षा करता है (नाभा) अन्तरिक्षमें (सप्तशीर्षाणम्) मरुत्गणको (पाति) रक्षा करता है(ऋष्वः) यह दर्शनीय अग्नि (उपमादम्) देवताओंको आनन्द देनेवाले यज्ञको (पाति) रक्षा करता है ॥ १३ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

१ २ ३ १ २ ३ २
भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्त-
३ १ २ १र २र ३ १ २ ३ २ ३ १र २र
रासनि। स त्वन्नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो
३ १ २
दृशेऽदाः ॥ १ ॥

अथ चतुर्थे खण्डे-सैषा प्रथमा। वामदेव ऋषिः पंक्तिर्भ्राजन्त्यग्न इति द्वयोः। आग्नेयी प्रथमस्त्वया द्वितीया दृश्यते तयोः। समिधान ऋत्विग्भिः समिध्यमान! दीप्त! हे अग्ने! भ्राजन्ती प्रकाशमाना, आसनि आस्ये, अन्तर्मध्ये स्थिता त्वदीया जिह्वा हवींषि चरति भक्षयति। हे अग्ने! वसुवित् धनलम्भक त्वं अस्मभ्यं पयसा अन्नेन सह रयिं रमणीयं धनं, दृशे दर्शनाय वर्चः तेजश्च तेजस्वित्वम्वा अदा देहि।

(समिधान) ऋत्विजोंके द्वारा प्रज्वलित किये जातेहुए (दीदिवः) सर्वोपरि विराजमान (अग्ने) हे अग्निदेव! (भ्राजन्ती) प्रकाशमान (आसनि अन्तः) मुखके भीतर स्थित (जिह्वा) तुम्हारी जीभ हवि को (चरति) भक्षण करती है (सः) वह (वसुवित्) धन प्राप्त करानेवाला (त्वम्) तू (अग्ने) हे अग्निदेव! हमें (पयसा) अन्नके साथ (रयिम्) रमणीय धन (दृशे) दर्शनके लिये अर्थात् देखने योग्य (वर्चः) तेज वा तेजस्वीपना (अदाः) दो ॥ १ ॥

३ १र २र ३ १र २र
वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।
३ १र २र ३ १ २ ३ १र २र ३ १र २र
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः॥ २॥

अथ द्वितीया। वसन्तः इन्नु वसंत एव चैत्रवैशाखरूपो वसन्त ऋतुरेव रन्त्यः रमणीयो भवति। ग्रीष्म इन्नु ज्येष्ठाषाढ़रूपो ग्रीष्म ऋतुरेव,रन्त्यः रमणीयः। वर्षाणि वर्षा श्रावणभाद्रपदरूपेणावयवीभूतःप्रावृट् ऋतुरेव। रन्त्यः रमणीयः तान्यनु शरदः, आश्विनकार्त्तिकरूपेणावयवीभूत ऋतुः, रन्त्यः रमणीयः। हेमन्तः मार्गशीर्षपौषरूप एव रन्त्यः रमणीयः। शिशिर इन्नु, माघफाल्गुनरूप एव, रन्त्यः रमणीयः ॥ २ ॥

(वसन्तः, इन्नु) चैत्र वैशाख रूप वसन्त ऋतु ही (रन्त्यः) रमणीय होता है। (ग्रीष्मः इंनु) ज्येष्ठ आषाढ़रूप ग्रीष्म ऋतु ही (रन्त्यः) रमणीय होता है (वर्षाणि—अनु—शरदः) श्रावण भाद्रपदरूप वर्षा ऋतुके अनन्तर आश्विन कार्त्तिकरूप शरद (हेमन्तः) मार्गशीर्ष पौषरूप हेमन्त और (शिशिरः, इन्नु) माघ फाल्गुनरूप शिशिर ऋतु ही (रन्त्यः) रमणीय होता है॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
१र २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
स भूमिꣳ सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥३॥

अथ तृतीया। सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्रशीर्षाः सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वात् अनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः। यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम्। एवं सहस्राक्षत्वं सहस्रपादत्वञ्च स पुरुषो भूमिं ब्रह्माण्डगोलकरूपां सर्वतः, आसमन्तात् वृत्वा परिवेष्ट्य दशांगुलपरिमितं देशं, अत्यतिष्ठत् अतिक्रम्य व्यवस्थितः। दशांगुलमित्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतो व्याप्यावास्थित इत्यर्थः ॥३॥

(पुरुषः) सकल प्राणियोंकी समष्टि रूप ब्रह्माण्ड शरीरी विराट् नामक पुरुष (सहस्रशीर्षाः) सहस्रों कहिये अनन्तों शिर वाला है (सहस्राक्षः) अनन्तों नेत्र वाला है (सहस्रपात्) सहस्रों चरणवाला है, क्योंकि सकल प्राणियोंके मस्तक नेत्र चरण आदि उसके विराट शरीरके अन्तर्गत होनेसे उसके ही हैं (सः) वह (भूमिम्) ब्रह्माण्डगोलकरूपा भूमिको (सर्वतः) सब ओरसे (वृत्वा) लपेट कर (दशांगुलम्) दश अंगुलके देश हृदयको (अत्यतिष्ठत्) घेर कर स्थित है अर्थात् वह अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे बड़ेसे बड़ा और छोटेसे छोटा है, यह सब ब्रह्माण्ड भी उसके महान् कलेवरके भीतर है और प्रत्येक प्राणीके हृदयमें भी वही वर्त्तमान है ॥ ३ ॥

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
२ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनाऽनशने अभि ॥४॥

अथ पञ्चमी। योऽयं त्रिपात्पुरुषः संसारस्पर्शरहितो बहुलस्वरूपः सोऽयम्, ऊर्ध्वः उदैत्—अस्मादज्ञानकार्यात्संसाराद्बहिर्भूतः सन्, तत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्टः उत्कर्षेण स्थितवान्। अस्य योऽयं पादः लेशः सोऽयमिह मायायां प्रादुरभवत्, सृष्टिसंहाराभ्यां पुनः पुनरागच्छदिति [अस्य सर्वस्य जगतः परमात्मलेशत्वं भगवताप्युक्तम्-"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थिता जगत्,, इति] तथा मायायामागत्यानन्तरं विष्वङ् देवतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् व्यक्रामत् व्याप्तवान्। किं कृत्वा ? अशनानशने अभिलक्ष्य अशनं भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातं, अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम्। तदुभयथा यथा स्यात्तथाऽयमेव विविधो भूत्वा व्याप्तवानित्यर्थः ॥ ४ ॥

(त्रिपात् पुरुषः) वही संसारके स्पर्शसे रहित अनेकों रूप वाला

त्रिपाद् पुरुष (ऊर्ध्वः उदैत्) इस अज्ञानके कार्य रूप संसारसे अलग रहता हुआ अर्थात् संसारके गुण दोषोंके स्पर्शसे जुदा रह कर उत्कर्ष के साथ स्थित रहता है (अस्य) इस पुरुषका जो (पादः) एक अंश है वह (इह) यहाँ मायामें (पुनः) वार २ (अभवत्) प्रकट हुआ है अर्थात् सृष्टि संहारके द्वारा वार वार यहाँ आता है (तथा) माया में आनेके अनन्तर (विश्वङ्) देव मनुष्य पशु पक्षी आदि रूपसे अनेक होता हुआ (व्यक्रामत्) व्याप्त होता है (अशनानशने, अभि) भोजन आदिके व्यवहार वाला चेतन प्राणिसमूह और उससे रहित पहाड़ नदी आदि अचेतन रूपसे यही जगत्में फैलता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।

१ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५॥

अथ पञ्चमी । यत् इदं वर्त्तमानं जगत् तत्सर्वं पुरुष एव । यद् भूतं उत्पन्नं जगत्, यच्च भाव्यं भविष्यज्जगत् तदपि पुरुष एव । यथाऽस्मिन् काले वर्त्तमानाः प्राणिनः सर्वेऽपि चराचरात्मकपुरुषस्यावयवाः तथैव गतागामिनोऽपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः । एतदेवोभयं स्पष्टीक्रियते–अस्य पुरुषस्य सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्त्तीनि प्राणिजातानि पादः चतुर्थांशः । अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपं अमृतं विनाशरहितं सत् दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपे व्यवतिष्ठत इति शेषः । [यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म–इत्यनन्तस्य परब्रह्मणो हीयदन्तत्वाभावात्पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यन्तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षया अल्पमिति विवक्षितत्वात् पादत्वोपचारः] ॥ ५ ॥

(इदम्) यह जो वर्त्तमान जगत् है सो (सर्वम्) सब (पुरुषः, एव) पुरुष ही है (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न होचुका है (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) होने वाला है वह सब पुरुष ही है अर्थात् जैसे इस कालमें वर्त्तमान सकल प्राणी चराचरात्मक पुरुषके अवयव हैं तैसे ही जो पिछले कल्पोंमें होचुके और जो आगेके कल्पोंमें होने वाले हैं वह भी पुरुष ही हैं (सर्वा भूतानि) त्रिकालवर्त्ती सकल चराचर प्राणी (अस्य) इस पुरुषका (पादः) चतुर्थांश हैं (अस्य) इस पुरुषके (त्रिपात) शेष तीन पाद अर्थात् इसका अवशिष्ट स्वरूप;(अमृतम्) विनाश रहित

है और (दिवि) द्योतनात्मक स्वप्रकाशस्वरूपमें स्थित है। यद्यपि ब्रह्म सत्य-ज्ञान-अनन्तस्वरूप है, इस कारण ब्रह्मका तो कुछ परिमाण हो ही नहीं सकता, फिर उसके चार पाद माने ही कैसे जासकते हैं? तथापि पाद कहनेका यह अभिप्राय है, कि-यह जगत् ब्रह्मस्वरूपकी अपेक्षा बहुत ही अल्प है ॥ ५ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
३ १ २ ३ १ २र ३ १र २र ३ १ २
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। अतीतानागतवर्त्तमानरूपजगदाद्याधारो योऽस्ति तावान् सर्वोऽपि अस्य पुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेषः, न तु तस्य वास्तवं स्वरूपम्। वास्तवस्तु पुरुषः ततः महिम्नोऽपि ज्यायान् अतिशयेनाभ्यधिक इत्यर्थः। उत अपि च अमृतत्वस्य देवत्वस्य अयमीशानः स्वमायया, यत् यस्मात्कारणात् अन्नेन प्राणिनां भोग्येन अन्नेन निमित्तभूतेन, अतिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानजगदवस्थां प्राप्नोति तस्मात् प्राणिनां कर्मभोगाय जगदवस्थास्वीकारात् नेदं तस्य वस्तुतत्त्वमित्यर्थः ॥ ६ ॥

(तावान्) भूत भविष्यत् वर्त्तमानरूप जगत्का जो आधार आदि है वह सब ही (अस्य) इस पुरुषका (महिमा) सामर्थ्य विशेष है, वह उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। (पूरुषः) वास्तविक पुरुष तो (ततः अपि) उस महिमासे भी (ज्यायान्) अत्यंत अधिक है (उत) और (अमृतत्वस्य) देवत्वका (ईशानः) यह अपनी मायाके द्वारा स्वामी बना हुआ है (यत्) क्योंकि (अन्नेन) प्राणियोंके भोग्य कर्मफलरूप निमित्तसे (अतिरोहति) अपनी कारणावस्थाको लाँघ कर इस दीखती हुई जगत् अवस्थाको प्राप्त होता है, इस प्रकार प्राणियोंके कर्मफल भोगनेके लिए ही जगत् रूपताको ग्रहण करता है, वास्तवमें यह उसका स्वरूप नहीं है ॥ ६ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १र
ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः । स जातो
२र ३ २उ ३ १ २ ३२
अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी ! विष्वङ् व्यक्रामत्—इति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्चयते-ततः तस्मादपि पुरुषात् विराट् ब्रह्माण्डदेहः अजायत उत्पन्नः । [विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट्] विराजो अधिविराट् देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा पुरुषः तद्देहाभिमानी कश्चित् पुमानजायत। योऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स एव रूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत । [एतच्चाथर्वणिक उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति–"स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्य मूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैवेति] स जातः विराट् पुरुषः अत्यरिच्यत अतिरिक्तोऽभूत । विराट्व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभवत् । पश्चाद् देवादिजीवभावादूर्ध्वं भूमिं ससर्जेति शेषः । अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां पुरः ससर्ज [पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः] शरीराणि ॥ ७ ॥

(ततः) तिस आदि पुरुष या कारण पुरुषसे (विराट्) ब्रह्माण्ड शरीर (अजायत) उत्पन्न हुआ (विराजो अधि) उस विराट् देहके ऊपर (पूरुषः) उस देहका अभिमानी कोई पुरुष उत्पन्न हुआ जो सकल उपनिषत्सिद्धान्तोंके द्वारा जानने योग्य परमात्मा है वही अपने रूपसे प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्डका अभिमानी देवता रूप जीव हुआ (सः) वह (जातः) उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष (अत्यरिच्यत) विराट्से भिन्न देवता मनुष्य पशु पक्षी आदि रूप हुआ (पश्चात्) देव आदि जीवभावके अनन्तर (भूमिम्) भूमिको रचा (अथो) भूमिकी रचना के अनन्तर उन जीवोंके (पुरः) शरीरोंको रचा ॥ ७ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १र २र ३
मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथा-
१ २ ३ १र २र १ २ ३ १ २
ममितमभि योजनम् । द्यावापृथिवी भवतꣳ
३ १र २र ३ १ २
स्योने ते नो मुञ्चतमꣳहसः ॥ ८ ॥

मन्ये वामिति पञ्चर्चो वामदेवेन वीक्षिताः ।
अत्राद्यैकान्तिमे च द्वे त्रिष्टुभस्तासु चादिमा ॥
उपरिष्टाज्ज्योतिरिति वह्वृचैव विधीयते ।
अन्ये अनुष्टुभो द्यावापृथिव्योः प्रथमा तथा ॥
द्वितीयैन्द्री चतुर्थी च तृतीयाशीर्निजात्मनः ।
स्तुतिर्गवामन्तिमेति छन्दो दैवतनिर्णयः ॥

अथ अष्टमी। हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ वां युवां सुभोजसौ शोभनपालयित्र्याविति मन्ये अहं जानामि। हे द्यावापृथिव्यौ! अमितं अपरिमितं योजनं [युज्यते पुरुषोऽनेनेति योजनम्] धनादि तत् अभ्यप्रथेथाम् अभिविस्तारयतम्। हे द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ! युवां अस्माकं स्योने सुखरूपे स्वसुखकार्ये भवतम्। ते द्यावापृथिव्यौ नः अस्मान् अंहसः पापात् मुञ्चतं मोचयतम्॥ ८॥

(द्यावापृथिवी) हे द्युलोक और पृथिवी लोक के अभिमानी देवताओं! (वाम्) तुम दोनों (सुभोजसौ) सुन्दर पालन करने वाले हो ऐसा (मन्ये) मैं जानता हूँ (अमितम्) अनन्त (योजनम्) धन आदिको (अभ्यप्रथेथाम्) चारों ओरसे खूब बढ़ाओ (द्यावापृथिवी) हे द्युलोक और भूलोकके अभिमानी देवताओं! तुम हमारे (स्योने) सुख रूप (भवतम्) होओ (ते) वह द्यावापृथिवी (नः) हमें (अंहसः) पापसे (मुञ्चतम्) छुटावें॥ ८॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तन्त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः॥९॥

अथ नवमी। हे इंद्र! ते तव श्मश्रूणि हरी सोमपानेन हरितवर्णानि [तथा च श्रूयते—"इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभिः पुप्लुवे" शेश्छंदसि बहुलम् (६, १, ७०) इति हरिशब्दात्परस्य शेर्लुक्] उतो अपि च ते हरी अश्वौ हरितौ हरिद्वर्णौ, कवयः मेधाविनः पुरुषासः पुरुषाः, वनर्गवः [वननीयाः संभजनीयाः सेवनीया गावो येषान्ते वनर्गवः मध्यरेफश्छान्दसः। गोस्त्रियो (१, २, ४८) रिति ह्रस्वत्वम्] तादृशाः कवयः तं त्वा त्वां स्तुवन्ति॥ ९॥

(इंद्र) हे इंद्र (ते) तुम्हारी (श्मश्रू) दाढ़ीमूछ (हरी) हरे वर्णकी हैं (उतो) और (ते) तुम्हारे (हरी) घोड़े (हरितौ) हरे वर्णके हैं (वनर्गवः) गौओंके वा वेदवाणियोंके भक्त (कवयः) मेधावी (पुरुषासः) पुरुष (तम्) प्रसिद्ध (त्वां, स्तुवन्ति) तुम्हारी स्तुति करते हैं॥ ९॥

२उ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सꣳसृजामसि १०

अथ दशमी । वामदेव ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । आशासने विनियोज्या । हिरण्यस्य हितरमणीयस्य एतन्नामकस्य यद्वर्चः तेजोऽस्ति यद्वा अपि च गवाम् एतन्नामकानां यद्वर्चः तेजोऽस्ति । उत अपि च, सत्यस्य सर्वैः संमतस्य ब्रह्मणः यद्वर्चोऽस्ति तेन तैः, मा संसृजामसि सम्पादयामः । धनवन्तः पशुमन्तः श्रोत्रिया भवेमेति तात्पर्यार्थः ॥१०॥

(हिरण्यस्य) हितकारी रमणीय सुवर्णका (यत्) जो (वर्चः) तेज है (वा) और (गवाम्) गौओंका (यत्) जो (वर्चः) तेज है (उत) और (सत्यस्य) सबके मान्य सत्यस्वरूप (ब्रह्मणः) वेदका वा ब्रह्मका (वर्चः) जो तेज है (तेन) उससे (मा) अपनेको (संसृजामसि) युक्त होने की प्रार्थना करते हैं अर्थात् हे भगवन् ! हमें ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि-हम धनवान्, पशु वाले और ब्रह्मतेजस्वी तथा श्रोत्रिय हों ॥१०॥

अथैकादशी । विरप्शिन् विशेषेण रपणं व्यक्तवचनं तदस्यास्तीति विरप्शी तस्य संबोधने हे विरप्शिन् विशेषेण स्तोत्रविषये सत्यवाक् इंद्र! ते तव सहः शत्रूणामभिभवनरूपं ओजः बलं नः अस्मभ्यं दद्धि देहि [दधातेश्छान्दसं रूपं लोटि हेर्धिभावादिना] यस्मात्त्वं तस्य अस्य महतः बलस्य, ईशे ईश्वरो भवसि, अतो हे इंद्र ! नः अस्माकं क्रतुं न यज्ञमिव नृम्णं धनं स्थविरं अतिशयेन प्रवृद्धं, वाजं बलञ्च कृधि कुरु । किञ्च नोऽस्माकं शत्रून् वृत्रेषु आवरकेषु उपायेषु कृधि कुरु ॥ ११ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २ ३ १ २
सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विर-
२ ३ १ ३ १र २र ३ १ २ ३ २ ३
प्शिन् क्रतुन्न नृम्णꣳ स्थविरञ्च वाजं वृत्रेषु
१ २ ३ १ २
शत्रून्सहना कृधी नः ॥ ११ ॥

(विरप्शिन्) स्तुति करनेवालोंको स्पष्ट वचनसे सच्चा आशीर्वाद देने वाले (इंद्र) हे इंद्र ! (तत्) प्रसिद्ध (सहः) शत्रुओंको दवाने वाला (ओजः) वल (नः) हमें (दद्धि) दीजिये (हि) क्योंकि तुम (अस्य) इस (महतः) महान् वलके (ईशे) ईश्वर होते हो, इस कारण हे इंद्र ! (नः) हमारे (क्रतुं न) यज्ञके सदृश (नृम्णम्) धन (च) और (स्थविरम्) वहुत वढ़ा हुआ (वाजम्) वल (कृधि) करिये, तथा (नः) हमारे (शत्रून्) शत्रुओंको (वृत्रेषु) हमें वाधा देने वाले उपायोंके विषयमें (सहना) एक साथ हताश करिये ॥११॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रती-
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
र्द्व्यूध्नीः । उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा
२ २ ३ २ ३ १ २
आपस्सुप्रपाणा इहस्त ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । हे सहर्षभाः वृषभैः सहिताः । सहवत्सा वत्सैः सहिताः ! गावः ! द्व्यूध्नीः सायंप्रातः काले द्विविधान्यूधांसि यासां ताः द्व्यूध्नीः द्व्यूध्न्यः ! विश्वाः सर्वाणि नानारूपाणि बिभ्रतीः बिभ्रत्यः यूयं उदेत उद्गच्छत समृद्धाः आगच्छत । किञ्च उरुः बहुः पृथुः विस्तीर्णः [उरुः पृथुरिति शब्दाभ्यामायामविस्तारावुच्येते] अयं लोकः वो युष्माकं, अस्तु भवतु । इमा आपः, इह लोके भूतले अस्मिन् स्थाने सुप्रपाणाः सुखेन प्रकर्षेण पातुं योग्याः सन्तु तस्मादिह बहीभूताः स्त भवत उपविशतेति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ १२ ॥

हे गौओ ! (विश्वाः) सब (रूपाणि) रूपोंको (बिभ्रतीः) धारण करती हुई (सहर्षभाः) वृषभों सहित (सहवत्साः) बछड़ों सहित (द्व्यूध्नीः) सायं प्रातः कालमें दो प्रकारके पेनवाली होती हुई (उदेत) समृद्धिको प्राप्त होओ (उरुः) लम्बा (पृथुः) विस्तारवाला (अयम्) यह (लोकः) लोक (वः) तुम्हारे लिये (अस्तु) हो (इह) इस भूमि में (इमा आपः) यह जल (सुप्रपाणाः) सुखपूर्वक अधिकतासे पीने योग्य (स्त) हों, अतः तुम यहाँ वृद्धिके साथ रहो ॥ १२ ॥

॥ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयूꣳषि पवस आसुवोर्जमिषञ्च नः ।
३ १ २ ३ १ २
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १ ॥

चतुर्दशाग्न आयूंषीत्याद्यास्तत्र जगत्यसौ ।
विभ्राट् त्रिष्टुप् चित्रमिति गायत्र्यो द्वादशोत्तरः ॥
आद्याग्नेः पवमानस्य स्तुतिः सौर्यस्त्रयादेश ।
ऋषीणां विप्रकीर्णत्वात्तत्र तत्राभिदध्महे ॥
शतं वैखानसा एवं दृष्टवन्तो महर्षयः ।

अथ पञ्चमखण्डे-सैषा प्रथमा। हे अग्ने पवमानरूप! अस्माकमायूंषि अन्नान्येतन्नामकानि वा पवसे क्षरसि। न अस्माकं ऊर्जं अन्नरसं, इषमन्नश्च आसुव आभिमुख्येन प्रेरय। किञ्च। दुच्छुनां [रक्षोनामैतत] रक्षांसि आरे अस्मत्तो दूर एव, बाधस्व सम्पीडय।१।

(अग्ने) हे पवमानरूप अग्निदेव! (आयूंषि) हमारे अन्नोंको वा आयुओंको (पवसे) करते वा बढाते हो (नः) हमारे (ऊर्जम्) अन्नरससे उत्पन्न होनेवाले बलको (च) और (इषम्) अन्नको (आसुव) अभिमुख होकर भेजिये (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तोंकी समान राक्षसोंको (आरे) हमसे दूर ही (बाधस्व) पीड़ित कीजिये ॥ १ ॥

३ २   ३ १ २   ३ २र   ३ १ २ ३ १ २ ३
विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपता-
१ २   १ २   ३   १   २   ३ १ २ ३   १ २
वविह्रुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना
३ १   २   ३ १र   २र
प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा विराजति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। विभ्राण्नामक एतान्तु सूर्यपुत्रो ददर्श सः। विभ्राट् विभ्राजमानः विशेषेण दीप्यमानः सूर्यः बृहत परिवृढं, सोम्यं सोममयं मधु पिबत्। किं कुर्वन्! यज्ञपतौ यजमाने अविह्रुतं अकुटिलं अकण्टकं आयुर्दधत् अन्नं वा कुर्वन्। यः सूर्यो वातजूतः वातेन वायुना प्रेर्यमाणः सन् त्मना आत्मना स्वयमेव अभिरक्षति सर्वं जगदभिमृशन् पालयति [राशिचक्रस्य वायुप्रेर्यत्वात्सूर्यस्यापि तत्प्रेर्यत्वम्] स सूर्यः प्रजाः पिपर्त्ति वृष्ट्यादिप्रदानेन पूरयति पालयति वा, बहुधा विराजति विशेषेण दीप्यते च। पिपर्त्ति-पिपोष इति, बहुधा-पुरुधा इति च पाठौ२

(विभ्राट्) विशेषरूपसे दीप्यमान सूर्य (यज्ञपतौ) यजमानके विषैं (अविह्रुतम) निष्कण्टक (आयुः) आयु वा अन्नको (दधत) स्थापन करता हुआ (बृहत) बहुतसे (सोम्यम्) सोमयुक्त (मधु) मधुको (पिबतु) पिये (यः) जो सूर्य (वातजूतः) राशिचक्रके प्रेरक वायुके द्वारा प्रेरित होता हुआ (त्मना) स्वयं ही (अभिरक्षति) सब जगत्का अपनी किरणोंके द्वारा स्पर्श करताहुआ पालन करता है (प्रजाः) प्रजाओंको (पिपर्त्ति) वर्षा आदि देकर पोषण करता है (बहुधा, विराजति) विशेषरूपसे प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

२ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण-
३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य
३ १२ २र २ ३ १
आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। कुत्सा, देवानां दीव्यन्तीति देवा रश्मयः तेषां, देवानामेव वा प्रसिद्धानां। अनीकं तेजः समूहरूपं, चित्रं आश्चर्यकरं सूर्यमण्डलं, उद्गात् उदयाचलं प्रयासीत्। कीदृशम्? मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्च चक्षुः उपलक्षणमेतत्, एतदुपलक्षितानां जगतां चक्षुः प्रकाशकं चक्षुरिन्द्रियस्थानीयं वा। उदयं प्राप्यैव द्यावापृथिवी दिवञ्च, पृथिवीञ्च, अन्तरिक्षञ्च, आप्राः स्वकीयेन तेजसा आ समन्तादपूरयत्। इत्थम्भूतमण्डलान्तर्वर्त्ती सूर्यः अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकः परमात्मा जगतः जङ्गमस्य, तस्थुषश्च स्थावरस्य च आत्मा स्वरूपभूतः, स हि सर्वस्य स्थावरजङ्गमात्मकस्य कार्यवर्गस्य [कारणाच्च कार्य नातिरिच्यते। तथा च पारमर्षं सूत्रं–तदनन्यत्वमारम्भेण शब्दादिभ्यः इति] यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकं सर्वप्राणिजातस्य जीवात्मा! उदिते हि सूर्ये मृतप्रायं सर्वं जगत् पुनश्चेतनयुक्तं सत् उपलभ्यते [तथा च श्रूयते-योऽसौ तमो नुदति सर्वेषां प्राणानादायोदेतीति] ॥ ३ ॥

(देवानाम्) किरणोंका वा देवताओंका (अनीकम्) तेजःसमूहरूप (मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः, चक्षुः) मित्र, वरुण, अग्नि, आदि देवताओंका प्रकाशक वा चक्षु इन्द्रियरूप (चित्रम्) आश्चर्यकारी सूर्यमण्डल (उद्गात्) उदयाचल पर पहुंचा और उदयके प्राप्त होते ही (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोकको (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोकको (आप्राः) अपने तेजसे सब ओर पूर्ण करता हुआ (सूर्यः) वह सूर्य (जगतः) जंगमका (च) और (तस्थुषः) स्थावरका (आत्मा) जीवात्मा है अर्थात् वह सूर्य जड़ चेतन सब प्राणियोंका जीवात्मा है तब ही तो सूर्यके अस्त होने पर सब जगत् मृतप्राय होजाता है और सूर्य का उदय होते ही सबमें चेतनता दीखने लगती है।

१र २र ३ ३ १ ३ २ १ २ ३२
आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
३ १ २ ३ १ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥

आयङ्गौः पृश्निरित्यस्य सार्पराज्ञी समैक्षत ।
ऋचस्तिस्रो भवेदासां विकल्पेनात्मदेवता ॥

अथ चतुर्थी । गौः गमनशीलः, पृश्निः प्राप्तवर्णः व्याप्ततेजाः, अयं सूर्यः आक्रमीत् आक्रान्तवानुदयाचलं प्राप्तवानित्यर्थः, आक्रम्य च पुरः पुरस्तात्पूर्वस्यां दिशि, मातरं सर्वस्य भूतजातस्य निर्मात्रीं भूमिम्, असदत् आसीदति प्राप्नोति [सदेश्छान्दसो लेट्, लृदित्वाच्च्लेरङा देशः] ततः पितरं पालकं द्युलोकं च शब्दादन्तरिक्षं प्रयन् प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छन्स्वः सु अरणः शोभनगमनो भवति । यद्वा पितरं स्वर्ग-लोकं प्रवर्त्तते ॥ ४ ॥

(गौः) गमनके स्वभाववाला (पृश्निः) तेजसे व्याप्त (अयम्) यह सूर्य (आ अक्रमीत्) उदयाचलको व्याप्त होकर आक्रमण कर रहा है और व्याप्त होकर (पुरः) पूर्व दिशामें (मातरम्) सकल प्राणिमात्रका निर्माण करनेवाली भूमिको (असदत्) प्राप्त होरहा है और फिर (पितरम्) पालन करनेवाले द्युलोकको (च) और अन्तरिक्ष लोकको (प्रयन्) प्राप्त होता है (स्वः) शोभन गमनवाला होता है ॥ ४ ॥

३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ २
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
२र ३ १ २र
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । अस्य सूर्यस्य रोचना रोचमाना दीप्तिरन्तः शरीरमध्ये मुख्यप्राणात्मना चरति वर्त्तते । किं कुर्वती ? प्राणादपानती [मुख्य-प्राणस्य प्राणाद्याः पञ्चवृत्तयः । तत्र प्राणनं नाडीभिरूर्ध्वं वायोर्निर्गम-नम्] तथाविधात्प्राणनादनन्तरं अपानती [अपाननं नाडीभिरवाङ्-मुखं वायोर्नयनम्] तत् कुर्वन्ती [अपपूर्वादनतेर्लटः शतृ ३, २, १२४ अदादित्वाच्छपो लुक् २, ४, ७२ । उगितश्चेति ४, १, ६ ङीप् । शतुरनुम इति नद्या उदात्तत्वम] यद्वा अन्तः द्यावापृथिव्योर्मध्ये अस्य सूर्यस्य रोचना रोचमाना दीप्तिः, चरति गच्छति [रुच दीप्तौ, भ्वा० आ० । अनुदात्तेतश्च हलादेरिति ३, २, १४९ युच्] किं कुर्वन्ती ? प्राणात् प्राण-नादुदयादनन्तरं, अपानती सायाह्नसमयेऽस्तं गच्छंती, ईदृश्या दीप्त्या युक्तः, अत एव महिषो महान् सूर्यः । दिवं अन्तरिक्षं उदयास्तमयो-र्मध्ये व्यख्यत् विचष्टे प्रकाशयति [महेरचि महेष्टिषाजिति औणादि-कष्टिषच् प्रत्ययः । चक्षिङः ख्याञ् २, ४, ५४ । छान्दसे लुङि अस्यति-वक्तिख्यातीत्यादिना २, १, ५२ च्लेरङादेशः] ॥ ५ ॥

(अस्य) इस सूर्यकी (रोचना) दीप्ति अर्थात् चमक (प्राणात्) मुख्य प्राणकी प्राण आदि पाँच वृत्तियोंमेंसे नाड़ियोंके द्वारा वायुको ऊपरको लेजाकर (अपानती) उस वायुको नाडियोंके द्वारा अधोमुख करतीहुई (चरति) शरीरके भीतर मुख्य प्राणरूपसे रहती है ऐसी दीप्तिसे युक्त (महिषः) महान् सूर्य (दिवम्) अन्तरिक्षको (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

३ २उ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्रतिवस्तोरह द्युभिः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी त्रिंशद्धाम धामानि स्थानानि [वचनव्यत्ययः३, १, ३९] वस्तोः वासरस्य अहोरात्रस्यावयवभूतानि, अह शब्दोऽवधारणे । द्युभिः सूर्यस्य दीप्तिभिरेव, विराजति विराजते विशेषेण दीप्यते [व्यत्ययकवचनम् ३, १; ३९] मुहूर्त्तान्यत्र धामान्युच्यन्ते । पञ्चदश रात्रेः पंचदशाह्नः] पतङ्गाय पतति गच्छतीति पतङ्गः सूर्यः तस्मै सूर्याय स्तुतिरूपा वाक् प्रतिधीयते प्रतिमुखं स्तोतृभिर्विधीयते क्रियते । यद्वा वस्तो अन्हः त्रिंशत् धाम धामानि [घटिकानामैतत्] त्रिंशद् घटिका [अत्यन्तसंयोगे द्वितीया २, ३, ५] एतावत्कालं द्युभिः दीप्तिभिरसौ सूर्यो विराजति विशेषेण दीप्यते । तस्मिंश्च समये वाक् त्रयीरूपा, तस्मै पतङ्गाय प्रतिधीयते प्रतिमुखं धार्यते तं पूर्व सेवत इत्यर्थः । [श्रूयते हि—ऋग्भिः पूर्वान्हे दिवि देव ईयते यजुर्वेद तिष्ठति मध्ये अहः सामवेदेनास्तमये महीयते वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः" इति] यद्वात्विह सूक्ते सार्पराज्ञा आत्मस्तुतिस्तद्वा सूर्यात्मना स्तूयत इत्यवगन्तव्यम् ॥ ६ ॥

(वस्तोः) दिनकी (त्रिंशत् धाम) तीस घड़ी पर्यंत (द्युभिः) किरणोंसे (अह) निःसंदेह (विराजति) विशेषरूपसे दीप्त होता है, उस समय (वाक्) वेदवाणी (पतङ्गाय) तिस सूर्यके लिए (प्रति धीयते) प्रत्येक मुखमें धारण कीजाती है ॥ ६ ॥

२ ३ २ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।

१ २ ३ १ २

सूराय विश्वचक्षसे ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । त्ये तायवः, यथा प्रसिद्धास्तस्करा इव, नक्षत्राणि देवगेहरूपाणि [देवगृहा वै नक्षत्राणि इतिश्रुत्यन्तरात्] यद्वा इह लोके मानुषा ये स्वर्गमाप्नुवंति ते नक्षत्ररूपेण दृश्यंते । तथा च श्रूयते—यो वा इह यजते अमुं स लोकं नक्षते तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्, इति । यद्वा—तेषां सुकृतिनां ज्योतींषि नक्षत्राण्युच्यन्ते । "सुकृतां वा एतानि ज्योतींषि यन्नक्षत्राणीति" आम्नानात् । यास्कस्त्वाह—नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणो नेमानि नक्षत्राणीति च ब्राह्मणम्, इति] यथा-विधानि नक्षत्राणि अक्तुभिः रात्रिभिः सह अपयंति अपगच्छंति । विश्व-चक्षसे विश्वस्य सर्वस्य प्रकाशकस्य, सूर्याय सूर्यस्य आगमनं दृष्ट्वेति शेषः [तस्करा नक्षत्राणि च रात्रिभिः सह सूर्य आगमिष्यतीत्याकुला-यंतः इत्यर्थः] तायुरिति स्तेननाम, (नै० ३, २४, ७) तायुस्तस्कर इति तन्नामसु पाठात् । अक्तुरितिरात्रिनाम (नै० १, ७, ४) शर्वरी अक्तु-रिति तन्नामसु पाठात् ॥ ७ ॥

(विश्वचक्षसे, सूराय) सबके प्रकाशक सूर्यके लिए अर्थात् सूर्योदय कासमय होता देखकर (त्ये) प्रसिद्ध (तावयः, यथा) तस्करोंकी समान (नक्षत्रा) तारागण (अक्तुभिः) रात्रियोंके साथ (अपयंति) लुकजाते हैं ७

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अदृश्रन्नस्य केतवो विरश्मयो जनाँ२ अनु ।
१ २ ३ १ २
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । अस्य सूर्यस्य केतवः प्रज्ञापकाः, रश्मयो दीप्तयः, जनान् अनुव्यदृश्रन् जनान् सर्वान् अनुक्रमेण प्रेक्षन्ते, सर्वं जगत्प्रका-शयन्तीत्यर्थः । तत्र दृष्टांतः भ्राजंतः दीप्यमाना अग्नय इव । व्यदृश्रन् अदृश्रम्-इति पाठौ ॥ ८ ॥

(भ्राजंतः) दिपते हुए (अग्नयः इव) अग्नियोंकी समान (अस्य) इस (सूर्यस्य) सूर्यके (केतवः) अन्य पदार्थोंको दिखा देने वालीं (रश्मयः) किरणें (जनान्) सकल भूतोंको (अनुव्यदृश्रन्) क्रमसे देखती हैं अर्थात् क्रम २ से सब जगत्को प्रकाशित कर देती हैं ॥८॥

३१ २ ३ १२ ३ १ २
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
२ ३१ २ ३ २
विश्वमाभासि रोचनम् ॥ ७ ॥

अथ नवमी । हे सूर्य ! त्वं तरणिः प्रगन्ता अन्येन गंतुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गंतासि [तथा च स्मयते—"योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । एकेन निमिषार्धेन क्रममाणं नमोऽस्तु ते ॥" इति] यद्वा उपासकानाम् रोगात्तारयितासि । [आरोग्यम् भास्करादिच्छेत्, इति स्मरणात्] तथा विश्वदर्शतः विश्वैः सर्वैः प्राणिभिर्द र्शनीयः । [आदित्यदर्शनस्य चण्डालादिदर्शनजनितपापनिर्वर्हणहेतुत्वात् । तथा चापस्तम्बः–दर्शने ज्योतिषां दर्शनम्–इति, यद्वा विश्वं सर्वं भूतजातं दर्शनं द्रष्टव्यं प्रकाश्यं येन स तथोक्तः] तथा ज्योतिष्कृत् ज्योतिषः प्रकाशस्य कर्त्ता: सर्वस्य वस्तुनः प्रकाशयितेत्यर्थः । यद्वा चंद्रादीनाम् [रात्रौ हि अस्तसमये चंद्रादिषु सूर्यकिरणाः प्रतिफलिताः अतोऽन्धकारं निवारयन्ति । यथा द्वारस्य दर्पणोपरि निपतिताः सूर्यरश्मयो गृहान्तर्वर्त्ति तमो निवारयंति तद्वदित्यर्थः] यस्मादेवं तस्मात् विश्वं प्राप्तं रोचनं रोचमानमन्तरिक्षं आ समंताद्भासि प्रकाशयसि । यद्वा हे सूर्य अंतर्यामितया सर्वस्य प्रेरक परमात्मन्! तरणिः संसाराब्धेस्तारकोऽसि। यस्मात् त्वं विश्वदर्शतः विश्वैः सर्वैर्मुमुक्षुभिर्द र्शतो द्रष्टव्यः साक्षात्कर्त्तव्य इत्यर्थः [अधिष्ठानसाक्षात्कारे हि आरोपितं निवर्त्तते] ज्योतिष्कृत् ज्योतिषः सूर्यादेः कर्त्ता [तच्चाम्नायते–चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत, इति] ईदृशस्त्वं चिद्रूपतया विश्वं सर्वं दृश्यजातं रोचमानं दीप्यमानं यथा भवति तथा आभासि प्रकाशयसि [मैवं न्यक्करणे हि सर्वं जगत् दृश्यते, तथा चाम्नायते—तमेव भांतमनुभाति सेव तस्य भासा सर्वमिदं विभाति—इति] ॥ ९ ॥

(सूर्य) हे सूर्य ! तुम (तरणिः) जिसमेंको कोई नहीं जासकता ऐसे बड़े भारी मार्गमें जाते हो अथवा उपासकोंको रोगके पार करते हो (विश्वदर्शतः) पाप दूर करनेके निमित्त सकल प्राणी आप का दर्शन करते हैं अथवा तुम वस्तुमात्रको प्रकाशित करते हो (ज्योतिष्कृत, असि) चन्द्रमा आदि ज्योतियोंके कर्त्ता हो अर्थात् अस्त के समय सूर्य की किरणें चन्द्रमा आदिमें प्रतिविम्बित होकर अन्धकारका नाश करती हैं । जैसे कि–द्वारके शीशेपर पड़ी हुई किरणें घरके भीतर के अंधकारको दूर कर देती हैं, इस कारण ही हे सूर्यदेव ! (विश्वम्) सकल विश्वको (रोचनम्) दीप्तिमान करते हुए (आभासि) सर्वत्र चमक उठते हो ॥ ९ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ २२ ३ १ २

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।

३ २उ ३क ३ २
प्रत्यङ् विश्वथँ स्वर्दृशे ॥ १० ॥

अथ दशमी। हे सूर्य त्वं देवानाम् विशः मरुन्नामकान् देवान्। [मरुतो वै देवानां विशः—इति श्रुत्यन्तरात्, तान् मरुत्संज्ञकान् देवान्] प्रत्यङ् उदेषि, प्रतिगच्छन्नुदयं प्राप्नोषि तेषामभिमुखं यथा भवति तथेत्यर्थः। तथा मानुषान् मनुष्यान् प्रत्यङ् उदेषि। तेऽपि यथास्मदभिमुख एव सूर्य उदेतीति मन्यन्ते तथा विश्वं प्राप्तं स्वः द्यां लोकं दृशे द्रष्टुं प्रत्यङ् उदेषि, यथा स्वर्लोकवासिनो जनाः स्वस्याभिमुख्येन पश्यंति तथा उदेषीत्यर्थः। [एतदुक्तं भवति ये लोकाः पश्यंति ते जनाः सर्वेऽपि स्वस्याभिमुख्येन सूर्यं पश्यंतीति। तथा चाम्नायते—तस्मात्सर्व एव मन्यन्ते मां प्रत्युदगात्—इति]॥ १०॥

(सूर्य) हे सूर्य! तू (देवानाम्) देवताओंके (विशः) मरुत् नामक देवताओंके (प्रत्यङ् उदेषि) अभिमुख होकर उदयको प्राप्त होता है। (मानुषान्) मनुष्योंके (प्रत्यङ्) अभिमुख होकर उदयको प्राप्त होता है (विश्वम्) सकल (स्वः दृशे) द्युलोकके देखने को (प्रत्यङ्) उसके सन्मुख होकर उदयको प्राप्त होता है अर्थात् उदय होते समय जो भी देखते हैं वह यही समझते हैं, कि—सूर्य हमारे सन्मुख उदय हो रहा है॥ १०॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अनु।
१ २ ३ १ २
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ११ ॥

अथ एकादशी। हे पावक! सर्वस्य शोधक! वरुण अनिष्टवारक सूर्य! त्वं जनान् प्राणिनः, भुरण्यन्तं धारयंतम् पोषयन्तं वा इमं लोकं, येन चक्षसा प्रकाशेनानु पश्यसि अनुक्रमेण प्रकाशयसि तं प्रकाशं स्तुम इति शेषः। यद्वा उत्तरस्यामृचि सम्बन्धः, तेन चक्षसा उदेषीति। तथा च यास्केनोक्तम्—"तत्ते वयं स्तुम इति वाक्यशेषोऽपि। वोत्तरस्यामन्वयस्तेन व्याख्यातीति" (निरु० दै० ६, २२)॥ ११॥

(पावक) हे सबको शुद्ध करनेवाले (वरुण) हे अनिष्टके निवारक सूर्य! तुम (जनान्) प्राणियोंको (भुरण्यंतम) धारण करतेहुए वा पोषण करते हुए इस लोकको (येन, चक्षसा) जिस प्रकाशसे अनु पश्यसि) क्रमसे प्रकाशित करते हो, उस प्रकाशकी हम स्तुति करते हैं॥ ११॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

उद्द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।

२ ३ १ २

पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी। हे सूर्य ! त्वं पृथु सुविस्तीर्णं रजः लोकं [लोका रजांस्युच्यन्ते इति यास्कवचनात्] द्युलोकं द्यां अन्तरिक्षलोकं उदेषि उद्गच्छसि। किं कुर्वन् ! अहा अहनि अक्तुभिः सह, मिमानः उन्मानयम् [आदित्यगत्यधीनत्वादहोरात्रविभागस्य] तथा जन्मानि जननवन्ति भूतजातानि पश्यन् प्रकाशयन्। उद्याम्–विद्याम् इति पाठौ॥ १२ ॥

(सूर्य) हे सूर्य ! तुम (अहा) दिनोंको (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (मिमानः) नापते हुए तथा (जन्मानि) जन्म धारण करने वाले प्राणियोंको (पश्यन्) प्रकाशित करते हुए (पृथु) बड़े विस्तार वाले (रजः) द्युलोकको (द्याम्) अन्तरिक्ष लोकको (उदेषि) उदय होकर प्राप्त होते हो ॥ १२ ॥

१ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २२ ३क २र

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्र्यः ।

१ २ ३ १ २

ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ १३ ॥

अथ त्रयोदशी । सूरः सर्वस्य प्रेरकः सूर्यः । शुन्ध्युवः शोधिका अश्वस्त्रियः । तादृशीः सप्त सप्त संख्याकाः । अयुक्त स्वरथे योजितवान्। कीदृशीः ? रथस्य नप्त्र्यः न पातयित्र्यः याभिर्युक्तो रथो याति न पतति ईदृशीरित्यर्थः । एवंभूताभिस्ताभिरश्वस्त्रीभिः स्वयुक्तिभिः । स्वकीययोजनेन रथे सम्बद्धाभिः याति यज्ञगृहं प्रत्यागच्छति, अतस्तस्मै हविर्दातव्यमिति वाक्यशेषः ॥ १३ ॥

(सूरः)सबके प्रेरक सूर्यने (शुन्ध्युवः) शोधन करने वाली (रथस्य नप्त्र्यः) रथको न गिरानेवाली (सप्त) सात घोड़ियों को (अयुक्तः) अपने रथ में जोड़ा (स्वयुक्तिभिः) अपने जोतने से रथमें जुती हुई (ताभिः) उन घोड़ियों के द्वारा (याति) यज्ञके स्थानको प्राप्त होता है, इस लिये उसको हवि देना चाहिये ॥ १३ ॥

३१ २ ३२१ ३२ १२

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।

३ १ २

शोचिष्केशं विचक्षण ॥ १४ ॥

अथ चतुर्दशी । हेसूर्य! देवद्योतमान!विचक्षण सर्वस्य प्रकाशयितः सप्त सप्तसंख्याकाः, हरितः अश्वाः, रसहरणशीला रश्मयो वा त्वा त्वां वहन्ति प्राप्नुवन्ति । कीदृशं रथे अवस्थितमिति शेषः। तथा शोचिष्केशं शोचींषि तेजांस्येव यस्मिन् केशा इव दृश्यन्ते स तथोक्तस्तमिति ॥१४॥

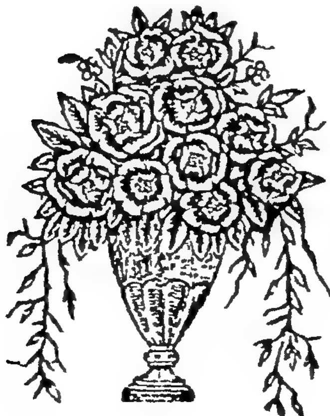
वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देवाद्विद्यातीर्थमहेश्वरः ।

इति श्रीराजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्क भूपाल-साम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे छन्दोव्याख्याने आरण्य पर्वाध्येतव्यः षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ।

(सूर्यदेव) हे द्योतमान सूर्यदेव ! (विचक्षण) हे सबके प्रकाशक (सप्त) गिने हुए सात (हरितः) घोड़े, वा रसको खेंचने वालीं किरणें (त्वा) आपको (वहन्ति) प्राप्त होती हैं.[कीदृशं त्वाम्] कैसे हैं आप (रथे) रथमें स्थित तथा (शोचिष्केशम्) तेज ही जिनके केशरूप हैं ॥ १४ ॥

षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ॥

॥ आरण्यकपर्व समाप्तम् ॥



ॐ

सामवेदसंहितायाः

उत्तरार्चिकस्य प्रथमप्रपाठके प्रथमार्द्धम्

अथ भाष्यावतरणिका ।

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ १ ॥
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्—
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ २ ॥
तत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः ।
आदिशत् सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने ॥ ३ ॥
ये पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात् ।
कृपालुः सायणाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः ॥ ४ ॥
व्याख्यातावृग्यजुर्वेदौ सामवेदेऽपि संहिता ।
छन्दोभिधाभूद् व्याख्याता व्याख्यास्यत्युत्तराभिधाम् ॥ ५ ॥
छन्दस्येकैकशोऽधीता ऋचः सामोद्भवाय हि ।
स्तोम-निष्पत्तये सूक्तान्युत्तरायामधीयते ॥ ६ ॥

स्तोमशब्देनोत्पत्तिषु सोमयागेषु प्रयुज्यमानास्त्रिवृत्पञ्चदशादयोऽभिधीयन्ते । अतएव तैत्तिरीयकाः प्रश्नोत्तराभ्यामिदमामनन्ति । तदाहुः—"कतमा वाव तानि ज्योतींषि य एतस्य स्तोमा इति ? त्रिवृत्पञ्चदश सप्तदश एकविंश एतानि वाव तानि ज्योतींषि य एतस्य स्तोमाः"—इति छन्दोगाश्च त्रिवृदादि--स्तोमानां स्वरूपं ब्राह्मण-द्वितीय तृतीययोरध्याययोः बहुधा समामनन्ति । ते च बहुभिरवान्तररूपोपेताः समाम्नाताः स्तोमा नवसंख्याकाः । तेषु पूर्वोक्तास्त्रिवृदादयश्चत्वारः त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिनवसंख्योपेतः स्तोमस्त्रिणव इत्युच्यते । छन्दोमनामकाः स्तोमास्त्रयः । तेषु चतुर्विंशाख्यस्तोमः प्रथमः । गायत्रीछन्दसा चतुर्विंशत्यक्षरोपेतेन मीयत इति छन्दोमः । चतुश्चत्वारिंशाख्यो द्वितीयः। स च त्रिष्टुप्छन्दसा मीयते । अष्टाचत्वारिंशाख्यस्तृतीयः । सोऽपि जगतीच्छन्दसा मीयते । नन्वथ ये ह्याम्नातलक्षणोपेतेभ्यस्त्रिवृदादिभ्योऽष्टादश-नवदशादि-नामका बहवः स्तोमा विद्यन्ते ।

तथा च तैत्तिरीयकः केषुचिदिष्टकोपधान--मंत्रेषु देवतावद्रूपेष्टकात्व-विवक्षया तान् स्तोमान् मनन्ति—"आशास्त्रिवृद्धान्तः पञ्चदशो व्योम सप्तदशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपोनवदशोऽभिवर्त्तः स विंशो धरुण एकविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भः पञ्चविंशः ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकविंशो ब्रध्नस्य विष्टपश्चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशोऽभिवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशः"-इति। एवन्तर्हि सन्त्येव बहूनि स्तोमान्तराणि, तेषां लक्षणानि तु ब्राह्मणान्तरानुसारेण सूत्रकारैरुत्पादितानि॥ ते च स्तोमाः सर्वेऽप्याज्यपृष्ठादि--स्तोत्रेषूपयुक्ताः "पञ्चदशान्याज्यानि, सप्तदशानि पृष्ठानि"—इत्यादिश्रुतिभ्यः स्तोम--विषया स्तोत्रविषयास्तन्निष्पादक--साम--विषयाश्च। सर्वेऽपि विचारा अस्माभिश्छन्दोव्याख्यानावतारवेलायामेव जैमिनीयान्यधिकरणान्युदाहृत्य प्रदर्शिताः॥ किं बहुना "एकं साम तृचे क्रियते स्तोत्रियम्"—इत्यादि—वचनैः स्तोत्रनिष्पादकस्य साम्नस्तृचप्रगाथादि—रूपाणि सूक्तान्याश्रयत्वेनोत्तराख्ये संहिता—ग्रन्थे समाम्नातानि। स च ग्रन्थ एकविंशतिसंख्यातैरध्यायैरुपेतः॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
३ २ ३ १ २र
अभि देवाँ इयक्षते॥ १॥

तत्र प्रथमाध्यायस्य प्रथमखण्डे प्रथमसूक्ते तृचे येयमृक् प्रथमा सैव साम्नायते—ऋषिः असितो देवलो वा। छ० गायत्री। पवमानः सोमः दे०। हे नरः नेतारः यज्ञस्य देवान् इन्द्रादीन् अभि इयक्षते आभिमुख्येन यष्टुमिच्छते पवमानाय क्षरते अस्मै अभिषूयमाणाय इन्दवे सोमाय उपगायत उपगानं कुरुत॥ १॥

(नरः) हे ऋत्विजो (देवान्, अभि, इयक्षते) देवताओंके अभिमुख होकर यजन करना चाहने वाले (पवमानाय) शुद्ध होकर टपकते हुए (अस्मै इंदवे) इस सोमके अर्थ (उपगायत) स्तुतिगान करो

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवं देवाय देवयु॥ २॥

अथ द्वितीया। हे सोम ! ते तव देवं देवनशीलं देवयु देवकामं रसं देवाय देवनशीलायेन्द्राय मधुना पयः गव्येन पयसा अथर्वाणः ऋषयः अभ्यशिश्रयुः अभ्यशिश्रयन् समकुर्वन्नित्यर्थः ॥ २ ॥

हे सोम ! (ते) तेरे (देवम्) प्रशंसनीय (देवयु) देवताओं के अभिलषित रसको (देवाय) इन्द्रके अर्थ (मधुना, पयः) मधुररस वाले गौके दूधसे (अथर्वाणः) ऋषियोंने (अभ्यशिश्रयुः) मिलाया। २

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।

१ २ ३ १ २

शꣳ राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हेराजन् दीप्यमानसोम ! स प्रसिद्धस्त्वं नः अस्माकं गवे शं सुखं पवस्व क्षर जनाय पुत्राय च शं पवस्व अर्वते अश्वाय च शं पवस्व ओषधीभ्यः च शं पवस्व ॥ ३ ॥

(राजन्) हे सोम (सः) प्रसिद्ध तू (नः) हमारी (गवे) गौओं के अर्थ (शम्) सुखरूप (जनाय) पुत्रके अर्थ (शम्) सुखरूप (अर्वत) घोड़े के निमित्त (शम्) सुखरूप (ओषधीभ्यः) ओषधियों के लिये (शम्) सुखरूप (पवस्व) पात्र में टपक ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।

१ २ ३ १ २र

सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ ३ ॥

अथ द्वितीयतृचे—प्रथमा। ऋ० कश्यपः। छ० गायत्री। दे० पवमानः सोमः। दविद्युतत्या रुचा अतिशयदीप्तया परिष्टोभन्त्या परितः शब्दायमानया कृपा धारया च युक्तः सोमः गवाशिरः गवाशिराः भवन्ति गव्येन पयसा मिश्रिता भवन्ति इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(दविद्युतत्या रुचा) अत्यन्त दिपती हुई कांतिसे (परिष्टोभन्त्या कृपा) चारों ओर को शब्द करती हुई धारा करके युक्त (शुक्राः) स्वच्छ (सोमाः) सोम (गवाशिरः) गोदुग्ध से मिलते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र

हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्।

१ २ ३ १ २

सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वाजी बलवान् सोमः हेतृभिः प्रेरकैः स्तोतृभिः हिन्वानः स्तोत्रैः स्मर्य्यमाणः हितः अभीष्टकारी सन् वाजं यागाख्यं युद्धम् आ अक्रमीत् आक्रामति। तत्र दृष्टान्तः यथा वनुषः हन्तारो भटाः सीदन्तः युद्धं प्रविशन्तः आक्रामंति तद्वदित्यर्थः ॥ २ ॥

(वाजी) बलवान् सोम (हेतृभिः) स्तोताओंसे (हिन्वानः) स्तोत्रों के द्वारा स्मरण किया हुआ (हितः) हितकारी होता हुआ (वाजम्) यज्ञको (अक्रमीत्) आक्रमण करता है (यथा) जैसे (वनुषः) योधा (सीदन्तः) युद्धके निमित्त रणभूमिमें प्रवेश करतेहुए आक्रमणकरते हैं२

३१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ऋधक् सोम स्वस्तये सञ्जग्मानो दिवा कवे।
१ २ ३ १ २ ३ २
पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! कवे! क्रान्तदर्शिन्! सूर्य्यः सुवीर्य्यः त्वं ऋधक् ऋध्नुवन्। तथा च यास्कः ऋधगिति पृथग्भावस्यानुप्रवचनं भवत्यथाप्यृध्नोत्यर्थे दृश्यते (निरु० नै० ४, २५) इति। सञ्जग्मानः सङ्गच्छानः स्वस्तये दृशे दर्शनाय दिवा दिवः विभक्तिव्यत्ययः। पवस्व क्षर दिवाकवे दिवाकविः इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम! (कवे) हे क्रान्तदर्शी! (सूर्यः) श्रेष्ठवीर तू (ऋधक्) चढ़ता हुआ (सञ्जग्मानः) संयुक्त होता हुआ (स्वस्तये) कल्याणके अर्थ (दृशे) दर्शनके अर्थ (दिवा) अन्तरिक्षसे (पवस्व) क्षरित हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १ ॥

तृतीय-तृचे-प्रथमा। ऋ० वैखानसः। छ० गायत्री। दे० पवमानः सोमः। मार्जनप्रसङ्गादाह—हे कवे! क्रान्तप्रज्ञ! हे वाजिन्! अन्नवन् सोम! पवमानस्य दशापवित्रेण पूयमानस्य ते तव सर्गाः सृज्यन्ते इति सर्गा धाराः। कीदृशाः? श्रवस्यवः छन्दसि परेच्छायां क्यच् (३, १, ८ वा०) यष्टॄणामन्नं कामयमानास्त्वदीया धाराः असृक्षत सृजन्ति निर्गच्छन्तीत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः—अर्वन्तो न यथा अश्वा मन्नु-

रातो निर्गच्छन्ति तद्वत् पवित्रान्निःसरन्तीत्यर्थः । प्रयोगापेक्षया चात्र धाराबाहुल्यम् ॥ १ ॥

(कवे, वाजिन्) हे क्रान्तदर्शी अन्नवान् सोम ! (पवमानस्य) दशापवित्रसे शुद्ध कियेजाते हुए (ते) तेरी (श्रवस्यवः) यजन करने वालोंको अन्न देना चाहनेवालीं (सर्गाः) धारायें (अर्वन्तो न) जैसे घोड़े घुड़शालमेंसे निकलते हैं तैसे (असृक्षत) निकलती हैं ॥१॥

२ ३ १ २ ३ २ ३१२३१२ ३ १२

अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये ।

१ २ ३ १ २

अवावशन्त धीतयः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । धारानिर्गमनप्रसङ्गादभिधीयते–मधुश्चुतं मधुररसस्य च्यावयितारं क्षारयितारं कोशं द्रोणकलशम् अच्छा अभिलक्ष्य अव्यये अविमये अविस्वभूते वारे बाले दशापवित्रे असृग्रं सोमाः ऋत्विग्भिरभिसृज्यन्ते सृजेःकर्मणि तिङ्गां तिङो भवन्तीति टरमादेशः । किञ्च । धीतयः अंगुलि नामैतत् धयन्ति पिबन्त्याभिरिति । अस्मदीया अंगुलयः अवावशन्त तान् सोमान् पुनः पुनार्मार्जनार्थं कामयन्ते ॥२॥

(मधुश्चुतम् कोशं, अच्छा) जिसमें मधुर रस टपकायाजाता है ऐसे द्रोणकलशमें (अव्यये, वारे) ऊनके दशापवित्रमें को (असृग्रम्) सोमोंको ऋत्विज् सिद्ध करते हैं (धीतयः) अंगुलियें (अवावशन्त) उन सोमोंको वार २ शुद्ध करना चाहती हैं ॥ २ ॥

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २

अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इन्दवः क्षरन्तः सोमाः समुद्रं सोमानामेकत्रैव सङ्गमनस्थानं द्रोणकलशम् अच्छ अभिगच्छन्ति । तत्र दृष्टान्तः—धेनवः पयःप्रदानेन जनानां प्रीणयित्र्यो नवप्रसूतिका गावः अस्तं गृहं यथा अभिगच्छन्तीति तद्वत् । किञ्च ते सोमाः ऋतस्य योनिं सत्यभूतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानम् आ अग्मन् आभिमुख्येन गच्छन्ति । गमेर्लुङि सिचो लुकि उपधालोपः ॥ ३ ॥

(इन्दवः) टपकते हुए सोम (समुद्रं, कलशं, अच्छ) सोमोंके एकत्र इकट्ठे होनेके स्थानरूप द्रोणकलशमेंको जाते हैं (न) जैसे (धेनवः) दूध देकर मनुष्योंको तृप्त करने वाली नवप्रसूता गौयें

(अस्तम्) अपने घरको जाती हैं तैसे ही वह सोम (ऋतस्य,योनिम्) सत्यस्वरूप यज्ञके स्थानको (आ अग्मन्) अभिमुख होकर जाते हैं।

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १२
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
१ २र ३ १ २
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ १ ॥

द्वितीयखण्डे प्रथमतृचे— प्रथमा। हे अग्ने अङ्गनादिगुणविशिष्ट। त्वम् आयाहि अस्मद्यज्ञं प्रत्यागच्छ। किमर्थम्? वीतये हविषां चरुपुरोडाशादीनां भक्षणाय। कीदृशः सन्? गृणानः अस्माभिः स्तूयमानः व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः। पुनश्च किमर्थम्? हव्यदातये देवेभ्यो हविःप्रदानाय। आगत्य च होता देवानामाह्वाता सन् बर्हिषि आस्तीर्णे दर्भे निषत्सि निषीद सदेः छान्दसः शपो लुक ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव! तुम (गृणानः) हमसे स्तुति कियेजाते हुए (वीतये) चरुपुरोडाश आदिका भक्षण करनेके निमित्त (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुंचानेके निमित्त (आयाहि) हमारे यज्ञमें आओ (होता) देवताओंका आह्वान करते हुए (बर्हिषि) बिछे हुए कुशों पर (निषत्सि) विराजो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
३१ २
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अङ्गिरः! अङ्गनादिगुणयुक्त! अङ्गिरसः पुत्र वा अग्ने! तं पूर्वोक्तगुणं त्वा त्वां समिद्भिः समिन्धन-हेतुभिः दारुभिः घृतेन आज्येन च वर्द्धयामसि वर्द्धयामः। अतो हे यविष्ठ्य युवतमाग्ने! बृहत्! महत् अत्यन्तं शोच दीप्यस्व ॥ २ ॥

(अङ्गिरः) हे सुन्दर अग्ने (तं, त्वाम्) इन कहेहुए गुणोंवाले तुम्हें (समिद्भिः) समिधाओंसे (घृतेन) घीसे (वर्द्धयामसि) प्रज्वलित करते हैं (यविष्ठ्य) हे अतितरुण अग्ने (बृहत्) अधिक (शोच) दीप्त हूजिये ॥ २ ॥

१ २ ३२ ३२ ३१ २
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवासति ।
३१२ ३१२
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया हे देव द्योतमानाग्ने ! स पूर्वोक्तगुणस्त्वं पृथु विस्तीर्णं श्रवाय्यं श्रवणीयं प्रशस्यं बृहत महत् सुवीर्य्यं शोभनवीर्य्योपेतं धनं न अस्मान् अच्छ विवाससि अभिगमय । अत्र वाजसनेयकम्-अच्छादेवविवाससीति तन्नोऽग्निमयेत्येवैतदाहेति ॥ ३ ॥

(देव) हे अग्निदेव ! (सः) पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त तुम (पृथु) विस्तीर्ण (श्रवाय्यम्) श्रवण करने योग्य (बृहत्) बहुत (सुवीर्यम्) सुन्दर वीरतायुक्त धन (नः) हमें (अच्छ विवाससि) प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

१ २ ३१ २र
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।
२ ३ १२
मध्वा रजाꣳसि सुक्रतू ॥ १ ॥

द्वितीयतृचे—प्रथमा । दे० मित्रावरुणः । ऋ० विश्वामित्र० । छ० गायत्री । सुक्रतू शोभनकर्माणौ, हे मित्रावरुणौ ! नः अस्माकम् गव्यूतिं गवां मार्गं गोनिवासस्थानं घृतैः क्षरणसाधनैः पयोभिरुदकैः आ उक्षतं समन्तात् सिञ्चतम् । अस्मभ्यं दोग्ध्रीः गाः प्रयच्छतमित्यर्थः किञ्च मध्वा मधुरेण सुरसेन रजांसि पारलौकिकानि अस्मदावासस्थानानि सिञ्चतम् ॥ १ ॥

(सुक्रतू) श्रेष्ठ कर्मवाले (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुण देवताओं ! (नः) हमारे (गव्यूतिम्) गौओंके निवासस्थानको (घृतैः) घृतके साधन दुग्धोंसे (आ उक्षतम्) चारों ओरसे सींचो (मध्वा) श्रेष्ठ रससे (रजांसि) हमारे पारलौकिक निवासस्थानोंको सींचो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १२ ३१ २र
उरुशꣳसा नमो वृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।
१ २
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । शुचिव्रता परिशुद्धकर्माणौ, हे मित्रावरुणौ ! उरुशंसा उरुभिः बहुभिः शंसनीयौ । यद्वात्र बृहच्छंसः शस्त्रं ययोस्तौ । नमो वृधा नमसा हविर्लक्षणेनान्नेन स्तोत्रेण वा वर्द्धमानौ । द्राघिष्ठाभिः

अत्यन्तदीर्घस्तुतिलक्षणाभिर्युक्तौ युवां दक्षस्य दक्षते समर्थो भवत्यनेनेति दक्षं धनं बलं वा तस्य मह्ना महत्त्वेन राजथः ईशाथे ॥ २ ॥

(शुचिव्रता) परमशुद्ध कर्मवाले हे मित्रावरुण देवताओं ! (उरुशंसा) अनेकोंके प्रशंसा करने योग्य (नमोवृधा) हविरूप अन्नसे वा स्तोत्रसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले (द्राघिष्ठाभिः) बड़ी २ स्तुतियोंसे युक्त तुम (दक्षस्य) धन वा बलके (मह्ना) महत्वसे (राजथः) दिपते हो।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।
३ १ २ २
पातꣳसोममृता वृधा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे मित्रावरुणौ ! जमदग्निना एतन्नामकेन महर्षिणा यद्वा जमदग्निना प्रज्वलिताग्निना विश्वामित्रेण गृणाना स्तूयमानौ युवां ऋतस्य यज्ञस्य योनौ देवयजनाख्ये देशे सीदतम् उपविशतं ऋतावृधा ऋतस्य कर्मफलस्य वर्द्धयितारौ युवां सोमं पातम् अस्माभिरभिपुतम् सोमं पिबतम् ॥ ३ ॥

हे मित्रावरुणौ ! (जमदग्निना) जमदग्नि नामके ऋषिसे वा प्रज्वलित अग्निसे (गृणाना) स्तुति किये जाते हुए तुम (ऋतस्य, योनौ) देवयजनस्थानमें (सीदतम्) विराजमान होओ (ऋतावृधा) कर्मफलके बढानेवाले तुम (सोमं पातम्) हमारे सम्पादन किये हुए सोम को पियो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

तृतीय तृचे-प्रथमा । ऋ० इरमिठिः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । हे इन्द्र ! त्वम् आयाहि अस्मद्यज्ञं प्रत्यागच्छ वयं ते त्वदर्थं सुषुमा हि सोममभिषुतवन्तः खलु तम् इमम् अभिषुतं सोमं त्वं पिब त्वदर्थं मम यदिदं बर्हिः वेद्यामास्तीर्णं दर्भम् आ सदः आसीद अभि निषीद ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (आयाहि) तुम मेरे यज्ञमें आओ, हमने (ते) तुम्हारे लिये (सुषुमा हि) निश्चय सोम सुसिद्ध किया है (इमं सोमम) इस सोमको (पिब) पियो, तुम्हारे लिये (मम) मेरे (एदं बर्हिः) इस वेदीमें बिछेहुए कुशासन पर (आ सदः) विराजमान हूजिये ।१।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
२ ३ १ २
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्र! ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मन्त्रेण युज्यमानौ केशिना केशिनौ केशवन्तौ हरी हरणशीलौ वा अश्वौ त्वा त्वाम् अवहताम् अभिप्रापयताम् । त्वं चास्मद्यज्ञमुपेत्य नः अस्माकं ब्रह्माणि स्तोत्राणि शृणु सम्यक् चित्ते धारय ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इन्द्र ! (ब्रह्मयुजा) मन्त्रयुक्त (केशिनौ) केशवाले (हरी) पापनाशक अश्व (त्वा) तुम्हे (अवहताम्) पहुंचावें और तुम हमारे यज्ञमें आकर (नः) हमारे (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंको (उप-शृणु) भले प्रकार चित्तमें धारण करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्माणस्त्वा युजा वयꣳसोमपामिन्द्र सोमिनः ।
३ १ २
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! ब्रह्माणः ब्राह्मणा वयं त्वां त्वां युजः योग्येन स्तोत्रेण हवामहे आह्वयामहे कथम्भूतम् ? सोमपां सोमस्य पातारम् । ईदृशा वयं सोमिनः सोमयुक्ताः सुतावन्तः अभिषुतैः सोमैरुपेताः । ब्रह्माणस्त्वा युजावयं-ब्रह्माणस्त्वावयं युजा—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (सोमिनः) सोमवाले (सुतावन्तः) सोमरसनिकाले हुए (वयम्) हम (ब्रह्माणः) ब्राह्मण (सोमपाम्) सोम पीनेवाले (त्वा) तुम्हे (युजा) योग्य स्तोत्रसे (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥३॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १२
इन्द्राग्नी आ गतꣳसुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २
अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥

चतुर्थतृचे-प्रथमा । ऋ० विश्वामित्रः । छ० गायत्री । दे० इन्द्राग्नी । इन्द्रश्चाग्निश्च इन्द्राग्नी देवौ सुतम् अभिषवादिभिः संस्कारैः संस्कृतम् अतएव वरेण्यम् वरणीयं सम्भजनीयमिमं सोमं प्रति गीर्भिः अस्मदीयाभिर्वाग्भिराहुतौ सन्तौ नभः नभसः स्वर्गाख्यात् स्थानात् आगतम् आगच्छतम् । आगत्य च धिया अस्माभिः क्रियमाणेन कर्मणा इषिता इषितौ प्रेरितौ युवाम् अस्य इमं सोमं पातं पिवतम् । यद्वा

धिया अस्मदीयया बुद्ध्या प्रेरितौ प्राप्तौ अस्मद्भक्त्या प्रेरितौ युवामिमं सोमं पिबतम् ॥ १ ॥

(इंद्राग्नी) इंद्र और अग्नि देवता (सुतम्) संस्कार किये हुए (वरेण्यम्) श्रेष्ठ सोमके लिए (गीर्भिः) हमारी स्तुतियोंसे, आह्वान किये हुए (नभः) स्वर्गसे (आगतम्) आओ और आकर (धिया) हमारी भक्तिसे (इषिता) प्रेरणा किये हुए तुम (अस्य) इस सोमको (पातम्) पियो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी जरितुः स चा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
३ १ २ ३ २ ३ २
अया पातमिमꣳ सुतम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्राग्नी ! जरितुः स्तोतुः सचा स्वर्गादिलक्षण-प्राप्तौ सहायभूतौ यज्ञः ज्योतिष्टोमादि-यज्ञ-साधनभूतश्चेतनः इंद्रियाणां चेतयिता आप्यायनकारी सन्नसौ सोमः जिगाति युवामभिगच्छति । अया अस्मदीयया स्तुतिलक्षणया अनया वाचा आहुतौ सन्तौ युवाम् सुतम् अभिषवादि संस्कारोपेतम् इमं पातं पिबतम् ॥ २ ॥

(इंद्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओं ! तुम (जरितुः) स्तुति करने वालेके (सचा) स्वर्गादिकी प्राप्तिमें सहायक हो (यज्ञः) यज्ञका साधन (चेतनः) इंद्रियोंको चेतना देने वाला सोम (जिगाति) तुम्हें प्राप्त होता है (अया) हमारी इस स्तुतिरूप वाणीसे आह्वान कियेहुए तुम (सुतम्) संस्कार किये हुए (इमम्) इस सोमको (पातम्) पियो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
१ २र ३ १ २
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । यज्ञस्य यज्ञसाधनभूतस्य सोमस्य जूत्या [जूतिः प्रेरणं सोमस्तावद्यजमानं प्रेरयति । साधनमुपलभ्य तत्साध्ये क्रतौ यजमानः प्रवर्तत इति हि तस्य प्रेरकत्वम्।तया प्रेरणरूपया जूत्या प्रेरितोऽहं स्तोता कविच्छदा कवीनां स्तोतॄणामुचितफलप्रदानेनोपच्छन्दकौ इंद्रमग्निं च युवां वृणे सम्भजे आगतौ च ताविन्द्राग्नी इह अस्मदीये अस्मिन् कर्मणि सोमस्य सोमेन सोमयागेन तृम्पतां तृप्यताम् ॥ ३ ॥

(यज्ञस्य) यज्ञके साधन सोमकी (जूत्या) प्रेरणासे प्रेरित हुआ मैं स्तोता (कविच्छदा) स्तुति करने वालोंको योग्य फल देकर तृप्त करने वाले इंद्र और अग्निदेवताको (वृणे) भजता हूँ आकर (ता) वह दोनों (इह) मेरे इस कर्ममें (सोमस्य) सोमयागसे (तृम्पताम्) तृप्त हों ३

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र
उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
उग्रꣳ शर्म महि श्रवः ॥ १ ॥

तृतीयखण्डस्य प्रथमतृचे-प्रथमा । ऋ० आङ्गिरसः अमहीयुः । छ० गायत्री दे० पवमानः सोमः । हे सोम ! ते तव सम्बंधिनः अंधसः रसस्य उच्चा उपरि जातं जन्म । अपि च दिवि द्युलोके सत् तव सम्बंधनं उग्रम् उद्गूर्णं शर्म सुखं महि महत् । श्रवः अन्नं भूमि भूमिष्ठैः यजमानै आदीयते ॥ दिविसद् दिविषद्—इति पाठौ ॥ १ ॥

हे सोम (ते) तेरे (अन्धसः) रसका (उच्चा) श्रेष्ठ (जातम्) जन्म है और (दिवि) द्युलोकमें (सत्) वर्त्तमान तेरा (उग्रम्) बलवान् (शर्म) सुख रूप (महि) बहुत (श्रवः) अन्न (भूमि) भूतलवासी यजमानोंसे (आददे) ग्रहण किया जाता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
३ १ २र
वरिवोवित्परि स्रव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम । वरिवोवित् धनस्य लम्भक ! पवमान ! नः अस्माकं यज्यवे यष्टव्याय इंद्राय वरुणाय च मरुद्भ्यः च परिस्रव धारया क्षर ॥ २ ॥

(वरिवोवित्) हे धन प्राप्त करनेवाले सोम ! (सः) वह तू (नः) हमारे (यज्यवे) यजन करने योग्य (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (वरुणाय) वरुण के अर्थ (मरुद्भ्यः) मरुतोंके अर्थ (परिस्रव) धारासे पात्रमें प्राप्त हो २

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।

१ २
सिषासन्तो वनामहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया ; मानुषाणां मनुष्याणां लब्धव्यानि एना एनानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि द्युम्नानि यज्ञसाधनानि धनानि हे सोम । त्वत्प्रसादात् आ आभिमुख्येन अर्य्यः अभिगच्छन्तः वयं सिषासन्तः सम्भक्तुमिच्छन्तश्च वनामहे त्वां सम्भजामहे ॥ ३ ॥

हे सोम (मानुषाणाम्) मनुष्योंके प्राप्त होने योग्य (एना) इन (विश्वा) सकल (द्युम्नानि) यज्ञके साधन धनोंको आपके अनुग्रह से (आ अर्य्यः) अभिमुख जाते हुए हम (सिषासन्तः) सेवा करना चाहते हुए (वनामहे) तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र १
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षति । आ
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सोदेवो हिरण्ययः ॥१॥

द्वितीयसूक्तरूपे प्रगाथे प्रथमा । छ० बृहती । ऋ० कश्यपः दे० पवमानः सोमः । हे सोम ! पुनानः पूयमानस्त्वम् अपः उदकानि वसतीवर्य्याख्यानि वसानः आच्छादयन् धारया अर्षसि पवित्रं गच्छसि, ततो रत्नधा रत्नानां रमणीयानां धनानां दाता च ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य योनिं स्थानम् आसीदसि । कीदृशस्त्वम्? उत्सः प्रस्यन्दनशीलः देवः द्योतमानः हिरण्ययः हिरण्मयः सुवर्णोत्पत्तिस्थानमित्यर्थः उत्सो देवः– उत्सो देव इति पाठौ ॥ १ ॥

हे सोम ! (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ तू (अपः) वसतीवरी जलोंको (वसानः) आच्छादन करता हुआ (धारया अर्षसि) धारा से पात्रमें पहुंचता है (रत्नधा) रमणीय धनोंका देनेवाला (उत्सः) प्रवाह रूप (देवः) चमकताहुआ (हिरण्ययः) सुवर्णका उत्पत्तिस्थान तू (ऋतस्य, योनिं; आसीदसि) सत्य स्वरूप यज्ञके स्थानमें विराजमान होता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नꣳसधस्थमासदत् ।
३ १ २ ३ २ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः २

अथ द्वितीया। मधु मदकरं प्रियं प्रीणनकारिदिव्यं दिवि भवम् ऊधः सोमवल्लीलक्षणं-दुहानः पवमानः सोमो देवः प्रत्नं पुरातनं सधस्थं सह तिष्ठन्त्यत्रेति सधस्थं स्थानमन्तरिक्षम् आसदत्आसीदिति सदेर्लुङिरूपं तदनन्तरम् आपृच्छ्यं कर्मणा पृष्टव्यं धरुणं कर्मणो धारयितारम् यजमानं वाजी अन्नवान सन् हे सोम! त्वम् अर्षसि तस्मै अन्नं दातुमतिगच्छसि। कीदृशः? नृभिः कर्मनेतृभिः ऋत्विग्भिः, धौतः अदाभ्यग्रहे-परिशोधितः तैरेनं चतुराधून्नोति पञ्च कृत्वः सप्त कृत्वो वा (१२, ५ १७)-इत्यापस्तम्बेन सूत्रितम्, विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा॥ नृभिर्धौतः नृभिर्धूतः—इति पाठौ॥ २॥

(मधु) मदकारी (प्रियम्) प्रसन्नता देने वाला (दिव्यम्) स्वर्गीय (ऊधः) रसको (दुहानः) टपकाताहुआ सोम (प्रत्नम्) पुरातन (सधस्थम्) अन्तरिक्ष स्थानको (आसदत्) प्राप्त होता है, तदनन्तर (वाजी) अन्नवान् (नृभिः धौतः) ऋत्विजोंका धोया हुआ (विचक्षणः) सबका विशेषरूपसे द्रष्टा तू हे सोम! (आपृच्छ्यम्) कर्मके विषयमें बूझने योग्य (धरुणम्) कर्मके धारण करनेवाले यजमानोंको (अर्षसि) अन्न देनेको प्राप्त होता है॥ २॥

१ २र २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो
३ १ २र २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अभि वाजमर्ष। अश्वं न त्वा वाजिनं मर्ज-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यन्तोऽच्छा बर्हीं रशनाभिर्नयन्ति॥ १॥

तृतीय तृचे—प्रथमा। ऋ० उशना काव्यः। छ० त्रिष्टुप्। दे० पवमानः सोमः। हे सोम! तु क्षिप्रं प्रद्रव अस्मद्यज्ञं प्रकर्षेणागच्छ। गत्वा च कोशं द्रोणकलशं परि निषीद निषण्णो भव। नृभिः नेतृभिः पुनानः पूयमानः सन् वाजम् अन्नं हवीरूपं त्वम् अभ्यर्ष अभिगच्छ। वाजिनं बलवन्तम् अश्वं न अश्वमिव तं यथा मार्जयन्ति तद्वत् वाजिनम् त्वां मार्जयन्तः शोधयन्तः अध्वर्यु-प्रमुखा ऋत्विजः बर्हिः अच्छ अस्मदीयं यज्ञं प्रति रशनाभिः रशनावदायताभिः अङ्गुलीभिः नयन्ति॥ १॥

हे सोम (तु) शीघ्र (प्रद्रव) हमारे यज्ञमें सुन्दरतासे आओ और आकर (कोशं, परिनिषीद) द्रोणकलशमें स्थित होओ (नृभिः पुनानः) होताओंसे शुद्ध किये जाते हुए (वाजम्) हविरूप अन्नको (अभ्यर्ष) प्राप्त होओ (वाजिनं, अश्वं, न) जैसे बलवान् घोड़ेको न्हवा-

कर स्वच्छ करते हैं तैसे (त्वा, मार्जयन्तः) तुझ बलवान् को शुद्ध करते हुए अध्वर्यु आदि ऋत्विज (बर्हिः, अच्छ) हमारे यज्ञमें (रशनाभिः) लंबी अंगुलियों से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३१ २र ३ २ ३२३ १ २
स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्ष-
३ २ ३१ २ ३ २ ३१ २ ३ २
माणः । पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो
३ २ ३१ २ ३ २
दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । स्वायुधः शोभनायुधः इंदुः सोमो देवः पवते स च देवः अशस्तिहा रक्षोहा वृजना वृजनानि उपद्रवाणि परिहृत्येति शेषः रक्षमाणः पिता पालकः देवानां तथा जनिता उत्पादकः सुदक्षः शोभनबलः दिवः विष्टम्भः विशेषेण स्तम्भयिता पृथिव्याः च धरुणः धारकः एवं महानुभावः पवते । वृजना—वृजन् इति पाठौ ॥ २ ॥

(स्वायुधः) श्रेष्ठ आयुध वाला (अशस्तिहा) राक्षसोंका नाशक (वृजना) उपद्रवों को दूर करके (रक्षमाणः) रक्षा करता हुआ (पिता) पालक (देवानां जनिता) देवताओं का उत्पादक (सुदक्षः) श्रेष्ठ बलवाला (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकका विशेषरूप से रोकने वाला (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवीका धारण करनेवाला (इन्दुः देवः) सोम देवता (पवते) संस्कारयुक्त होता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३१ २र ३१ २र ३ २ ३
ऋषिर्विप्रः पुर एता जनानामृभुर्धीर उशना
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
काव्येन । स चिद्विवेद निहितं यदा सामपी-
२ २ ३ २ ३ १ २
च्या३ं गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ऋषिः अतीन्द्रियद्रष्टा विप्रः मेधावी पुरः एता पुरतो गन्ता जनानां मनुष्याणां ऋभुः उरु भासमानः धीरः धीमान् उशनाः एतन्नामकः ऋषिः यः स चित् स एव काव्येन स्तोत्रेण विवेद लभते । किमिति उच्यते । आसां गोनां गवां सम्बन्धि यत् अपीच्यम् अन्तर्हितनामैतम् अन्तर्हितं नाम नामकमुदकं पयोलक्षणम् । कीदृशम् ? गुह्यं गोपनीयम् ॥ ३ ॥

(विप्रः) मेधावी (पुरः एता) वैदिक अनुष्ठानमें अग्रणी (जनानां ऋभुः) मनुष्योंमें बड़े प्रकाशवाला (धीरः) परमबुद्धिमान् (उशनाः ऋषिः) जो उशना नामवाला ऋषि है (सः चित्) वह ही (आसां, गोनाम्) इन गौओंका (यत्) जो (अपीच्यम) भीतर स्थित (गुह्यम्) गोपनीय (नाम) दुग्धरूप जल है उसको (काव्येन) स्तोत्रसे (विवेद) पाता है ॥ ३ ॥

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १२
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्रतस्थुषः १

अथ चतुर्थखण्डे प्रथमसूक्ते—प्रथमा । ऋ० वसिष्ठः । छ० बृहती दे० इंद्रः । हे शूर ! विक्रान्तेन्द्र ! त्वा त्वाम् अभि नोनुमः वयं भृशमभिष्टुमः । तत्र दृष्टान्तः—अदुग्धा इव धेनवः अकृतदोहा गावः आदरेण वत्सान् प्रति हम्भारवं कुर्वन्ति तद्वत् वयं स्तुमः इत्यर्थः । कीदृशम् ? अस्य जगतः जंगमस्य ईशानम् ईश्वरं तस्थुषः स्थावरस्य च ईशानं स्वर्दृशं सर्वदृशं सर्वज्ञमित्यर्थः ॥ १ ॥

(शूर) हे पराक्रमी इद्र (अदुग्धाः, धेनवः, इव) जैसे विना दुही गौएं आदरके साथ बछड़ोंकी ओरको रँभाती हैं तैसे हम (अस्य) इस (जगतः) जङ्गम जगत्के (ईशानम्) स्वामी (तस्थुषः) स्थावरके (ईशानम्) स्वामी (स्वर्दृशम्) सर्वज्ञ (त्वा) तुम्हें (अभिनोनुमः) वार २ प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो
२र ३ १ २
न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र
३ १ २ ३ १ २
वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे मघवन्निन्द्र ! दिव्यः दिवि भवः त्वावान् त्वत्सदृशः अन्यः न जायते । पार्थिवः पृथिव्यां भवोऽपि त्वावान् न जातः न जायते । दिव्यः पार्थिवो वा त्वावान् न जातः न च जनिष्यते नोत्पत्स्यते लोकद्वयेऽपि त्रिष्वपि कालेषु त्वादृशः कश्चिन्नास्ति त्वमेव समर्थो भवसीत्यर्थः । अश्वायन्त अश्वानिच्छन्तः वाजिनः वाजमन्न-

मिच्छन्तः । इच्छायामिन् प्रत्ययः । हविष्मन्तो वा गव्यन्तः गा इच्छन्तश्च वयं हे इन्द्र ! त्वा त्वां हवामहे आह्वयामः ॥ २ ॥

(मघवन्) हे इन्द्र ! (त्वावान्) तुम्हारी समान (अन्यः) दूसरा (दिव्यः) स्वर्गवासी (न) नहीं है (पार्थिवः) कोई भूतलवासी(न) नहीं है (न जातः) न कभी हुआ (न जनिष्यते) न कभी होगा (इंद्र) हे इंद्र (अश्वायंतः) घोड़ोंकी इच्छा करतेहुए (वाजिनः) धनकी इच्छा करते हुए (गव्यंतः) गौओंकी इच्छा करते हुए हम (त्वा) तुम्हे (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कया नश्चित्र आ भुवदूती सदा वृधः सखा ।
२ ३ १ २ ३ २
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

द्वितीयतृचे प्रथमा । ऋ० वामदेवः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । सदावृधः सदा वर्द्धमानः चित्रः चायनीयः पूजनीयः सखा मित्रभूतः इंद्रः कया ऊती ऊत्या तर्पणेन नः अस्मान् आ भुवत् आभिमुख्येन भवेत् ? शचिष्ठया प्रज्ञावत्तमया प्रज्ञासहितानुष्ठीयमानेन कया वृता ? केन वर्तनेन कर्मणा च अभिमुखो भवेत् ॥ १ ॥

(सदावृधः) सदा बढ़ता हुआ (चित्रः) विचित्र पराक्रमी (सखा) मित्ररूप इन्द्र (कया ऊती) किस तृप्तिकारक पदार्थसे (शचिष्ठया, कया, वृता) प्रज्ञा सहित अनुष्ठान किये हुए किस कर्मसे (नः आ भुवत) हमारे अभिमुख होय ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
कस्त्वा सत्यो मदानां मँहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मंहिष्ठः पूजनीयः सत्यः सत्यभूतः मदानां मादयितॄणां मध्ये कः मदकरः ? अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य रसः । दृढाचित् दृढमपि वसु शत्रुसम्बन्धि गवादिकं धनम् आरुजे आ समंतात् भङ्क्तुम् हे इन्द्र ! त्वा त्वां मत्सत् मादयेत् ॥ २ ॥

(मंहिष्ठः) पूजनीय (सत्यः) सत्य (मदानाम्) आनन्ददायक पदार्थोंमें (कः) कौन परम आनन्ददायक है (अन्धसः) सोमका रस (दृढाचित्) दृढ भी (वसु) शत्रुके धनको (आरुजे) सब ओर से नष्ट करनेको (त्वा) तुम्हें (मत्सत्) मद देय ॥ ४ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ २ ३ २
अभी षूणः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
३ १ २ ३ १ २
शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे इन्द्र ! सखीनां समानख्यातीनां जरितॄणाम् अविता रक्षिता त्वं न अस्माकं शतं शतसंखयाकम् ऊतये रक्षायै सु सुष्ठु अभि भवासि अभिमुखो भव । शतम्भवास्यूतये—शतंभवास्यूतिभिः इति पाठौ

(सखीनाम्) मित्ररूप (जरितॄणाम्) स्तोताओंका (अविता) रक्षक तुम (नः) हमें (शतं, ऊतये) सैंकड़ों रक्षाओंके अर्थ (सु) श्रेष्ठ प्रकारसे (अभि भवासि) अभिमुख हूजिये ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे

अथ प्रगाथरूपे तृतीयसूक्ते—प्रथमा । ऋ० नोधा । छ० बृहती । दे० इंद्रः ! नोधा नाम ऋषिरिन्द्रं स्तौति । हे ऋत्विग्यजमानाः ! दस्म दर्शनीयम् ऋतीषहम् ऋतयोः बाधकाः शत्रवः तेषामभिभवितारम् पुनः कीदृशम् ? वसोः वासयितुर्दुःखस्य विवासयितुर्निवारयितुः यद्वा बसोः पात्रे निवसतः तादृशस्य अंधसः सोम-लक्षणस्य अन्नस्य पानेन मंदानं मंदमानं मोदमानं वः षष्ठ्यर्थत्वेन युष्मत्सम्बंधिनः तं ह्वादशमिन्द्रं गीर्भिः स्तुतिलक्षणाभिर्वाग्भिः नवामहे नु स्तवने शब्दे वा अभिष्टुमः। कुत्रेति स्वसरेषु । अत्र यास्कः । स्वसराण्यहानि स्वयंसारीणि अपि वा स्वरादित्यो भवति स एतानि सारयतीति (निरु० नै ५, ४) सूर्य-नेतृकेषु दिवसेषु वयम् अभिष्टुमः अभितः शब्दयामः तत्र दृष्टांतः वत्सं न यथा धेनवो नवप्रसूतिका गावः स्वसरेषु सुष्ठु अस्यंते प्रेर्यन्ते गावोऽत्रेति स्वसराणि गोष्ठानि तेषु वत्समभिलक्ष्य शब्दयंति तद्वत् १

(स्वसरेषु, वत्सम् धेनवः, इव) जैसे गोठोंमें बछड़ोंकी ओरको गौएँ रंभाती है तैसे हे ऋत्विक् यजमानो ! तुम सूर्यके प्रेरक दिनोंमें (दस्मम्) दर्शनीय (ऋतीषहम्) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (वसोः) दुःखनिवारण करनेवाले (अंधसः) सोमके पीनेसे (मंदानम्) प्रसन्न होते हुए (वः) तुम्हारे (तम् इंद्रम्) उस इन्द्रको (गीर्भिः) वाणियोंसे (नवामहे) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

३२ ३२३१२ ३१२ ३१ २र३
द्युक्षथ्̐सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभो-
१२ ३२ ३ १२ ३ १२ ३१२
जसम् । क्षुमन्तं वाजथ्̐ शतिनथ्̐ सहस्रिणं
३१ २र
मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । द्युक्षं दीप्तिमंतं निवासस्थानम् अतिशयितदीप्तिमित्यर्थः । यद्वा द्युक्षं दिवि द्युलोके क्षियंतं निवसंतं सुदानुं शोभनदानं तविषीभिः बलैः आवृतम् आच्छादितम् । पुनः कीदृशम् ? पुरुभोजसं सोमादि-हविःप्रदानेन बहुभिर्यजमानैर्भोजयितव्यम् । यद्वा बहूनां पालयितारम् इंद्रम् क्षुमंतम् टु क्षु क्षये । शब्दवंतम् अनेन पुत्रादिकं लक्ष्यते स्तोत्रादीनि कुर्वाणं शतिनं सहस्रिणं शतसहस्रसंख्याक-धन-युक्तं गोमन्तम् गवादियुक्तं वाजम् अन्नं मक्षुः शीघ्रम् ईमहे याचामहे । यद्वा पूर्वार्द्धों वाजविशेषणत्वेन योजनीयः-प्रदीप्तं शोभनदान-योग्यं बलादियुक्तंबहुभिः पुत्रमित्रादिभिर्भोक्तव्य शब्दादि-युक्तम् अन्नम् इंद्रं याचामहे इति ॥ २ ॥

(द्युक्षम्) द्युलोकमें निवास करनेवाले (सुदानुम्) श्रेष्ठ दान देनेवाले (तविषिभिः) बलोंसे (आवृतम्) ढके हुए (पुरुओजसम्) जिन को सोमादि हवि देकर अनेकों यजमान भोजन कराते हैं ऐसे अथवा अनेकोंका पालन करने वाले इंद्रसे (क्षुमन्तम्) पुत्र पौत्रादिके कोलाहल युक्त (शतिनं, सहस्रिणम्) सैंकड़ों सहस्रों संख्याके धन से युक्त (गोमन्तम्) गौ आदिसे युक्त (वाजम्) अन्नको (मक्षु) शीघ्र (ईमहे) याचना करते हैं ॥ २ ॥

१२ ३१२३१२ ३१२३१२ ३१ २र
तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रथ्̐सबाध ऊतये । बृहद्गायन्तः
३१२ ३२ ३२उ ३ २ ३ १२
सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥

चतुर्थे प्रगाथे—प्रथमा । ऋ० कलिः । छ० बृहती । दे० इन्द्रः । हे ऋत्विजः ! वः यूयं तरोभिः वेगैरश्वैरुपेतं वेगैरेव वा विदद्वसुं वेदयद्वसुं धनावेदकम् इंद्रं सबाधः बाधासहिताः ऊतये रक्षणाय बृहद्गायन्तः बृहत्संज्ञकं साम गायन्तः सन्तः परिचरतेति शेषः । कुत्र ? इति,

तदुच्यते—सुतसोमे अभिषुतसोमके अध्वरे यज्ञे सोमयागे, अहञ्च स्तोता युष्मदर्थं हुवे आह्वयामि। कमिव? भरं न भरं भर्त्तारं कुटुम्बपोषकं कारिणं स्वहित-करणशीलं यथा स्वहित—कारणायाह्वयन्ति पुत्रादयस्तद्वत्, तथा भूतमिन्द्रं हुवे इति ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो! (वः) तुम (सुतसोमे, अध्वरे) सोमयागमें (तरोभिः) वेगवान् अश्वों सहित (त्रिदद्वसुम) धन देने वाले (इंद्रम्) इंद्रको (सबाधः) बाधा सहित हुए (ऊतये) रक्षाके लिए (बृहत् गायन्तः) बृहत् सामका गान करते हुए आराधना करो (भरं, न, कारिणं, हुवे) जैसे पुत्रादि अपना पोषण करने वालेको पुकारते हैं तैसे मैं स्तोता भी अपने हितकारी इंद्रका आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र २

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः। य

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३क २र

आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् २

अथ द्वितीया। सुशिप्रं शोभन-हनुकं शोभन—नासिकं वा शिप्रे हनुनासिके वा (६, १७)-इति यास्कः। यम् इंद्रम् दुध्राः दुर्द्धराः असुरादयः न वरन्ते संग्रामे न वारयंति, तथा स्थिराः देवाः न वरंते किञ्च मुरः मरणशीला मनुष्याः न वरंते, यः च इंद्रः अंधसः सोमलक्षणस्यान्नस्य मदे मदाय सोमपानजनिताय आदृत्य, शशमानाय सुन्वते अभिषवं कुर्वते जरित्रे स्तोत्रे च दाता भवति। किम्? उक्थ्यं स्तुत्यं धनम् तं हुवे इति पूर्वेण सम्बंधः। मदेषु शिप्रं—मदेसु क्षिप्रम्—इति षकारसकारौ पाठौ ॥ २ ॥

(सुशिप्रम्) सुन्दर ठोड़ी और नासिका वाले (यम्) जिस इंद्रको (दुध्राः) दुर्धर असुर (न वरंते) संग्राममें वारण नहीं कर सकते (स्थिराः न) देवता वारण नहीं कर सकते (मुरः) मरण शील मनुष्य वारण नहीं कर सकते (यः) जो (अंधसः) सोम रूप अन्नके (मदे) मदके लिए (आदृत्य) आदर करके (शशमानाय) प्रशंसा करनेवाले (सुन्वते) सोमका संस्कार करने वाले (जरित्रे) स्तोताके अर्थ (उक्थ्यं, दाता) धनका देनेवाला होता है, उस इंद्रकी हम याचना करते हैं ॥२॥

उत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।

१ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥

पञ्चमखण्डे, प्रथमतृचे—प्रथमा। ऋ० विश्वामित्रपुत्रो मधुच्छन्दः छ० गायत्री। दे० सोमः। हे सोम! इंद्राय पातवे पातुं सुतः अभिषुतः त्वं स्वादिष्ठया स्वादुतमया मदिष्ठया अतिशयेन मादयित्र्या धारया पवस्व क्षर॥ १॥

(सोम) सोम (इंद्राय, पातवे) इंद्रके पीनेके निमित्त (सुतः) संस्कार किया हुआ तू (स्वादिष्ठया) परम स्वादु (मदिष्ठया) परम आनन्द देने वाली (धारया) धारासे (पवस्व) क्षरित हो॥ १॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
१ २ ३ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। रक्षोहाः रक्षसां हन्ता विश्वचर्षणिः विश्वस्य द्रष्टा-सोमः अयोहते अयसा हिरण्येन हते। तथा च श्रूयते-हिरण्यपाणिर-भिषुणोति—इति द्रोणे द्रोणकलशेन अधिषवणफलकाभ्यां वा सधस्थं सहस्थानं योनिम् अभिषवस्थानम् अभ्यासदत् आभिमुख्येनासीदति। अयोहते-अयोहत द्रोणेन द्रुणा—इति च पाठौ॥ २॥

(रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करनेवाला (विश्वचर्षणिः) विश्वका द्रष्टा सोम (अयोहते) सुवर्णमय (द्रोणे) द्रोणकलशमें (सधस्थम्) साथ स्थित होनेके (योनिम्) संस्कार स्थानमें (अभ्यासदत्) अभि-मुख स्थित होता है॥ २॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वरिवोधातमो भुवो मꣳहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पर्षिराधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! त्वं वरिवोधातमः अतिशयेन धनानां दाता भुवः भव। वेदः वरिवः-इति धननामसु (निघ० २, १० ४'५) पाठात्। मंहिष्ठः दातृतमश्च भव। सर्वदातृत्वमत्रोच्यते इत्यपुनरुक्तिः। वृत्रहन्तमः अतिशयेन शत्रूणां हन्ता च भव। किञ्च मघोनां धनवतां शत्रूणां राधः धनञ्च पर्षि अस्मभ्यं प्रयच्छ। भुवः भव इति पाठौ॥ ३॥

हे सोम! तू (वरिवोधातमः) अधिक धनोंका दाता (मंहिष्ठः)

अन्य पदार्थोंका भी परमदाता (वृत्रहन्तमः) शत्रुओंका परम नाश-कर्त्ता (भुवः) हो (मघोनाम्) धनवान् शत्रुओंके (राधः) धनको (पर्षि) हमें दे ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

महि द्युक्षतमो मदः ॥ १ ॥

ऋ०गौरिवीतिः । छ०गायत्री । दे०पेन्द्रः । अथ प्रगाथरूपे द्वितीयसूक्ते प्रथमा । हे सोम ! मधुमत्तमः अतिशयेन माधुर्य्योपेतस्त्वम् इंद्राय इंद्रार्थं मदः मदकरः सन् पवस्व क्षर । कीदृशः ? क्रतुवि त्तमः अत्यंत-प्रज्ञायाः कर्मणो वा लम्भकः महि मंहनीयः द्युक्षतमः अत्यंतं दीप्तः मदः मदहेतुः ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (मधुमत्तमः) अत्यंत मधुरतायुक्त (क्रतुवित्तमः) बुद्धि वा कर्म फलका देने वाला (महि) पूजनीय (द्युक्षतमः) अत्यंत दीप्त (मदः) आनन्ददायक तू (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (मदः) मदकारी होता हुआ (पवस्व) पात्रमें प्राप्त हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ ३ २ ३ १ २

यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः

२ ३ १ २ ३क २र ३ २उ ३ २ ३ १ २

स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः २

अथ द्वितीया । वृषभः कामानां वर्षकः इंद्रः । हे सोम ! यस्य यंते त्वां पीत्वा वृषायते वृषभ इवाचरति किञ्च स्वर्विदः सर्वं जानतः अस्य तव पीत्वा पाने सति सु प्रकेतः शोभन—प्रज्ञः सः इंद्रः वृषभः शत्रूणाम् अन्नानि अभ्यक्रमीत् अभिक्रमति । तत्र दृष्टान्तः—न एतशः इत्यश्व-नाम (निघ० १, १४, १२) यथा अश्वः वाजं संग्रामम् अभिगच्छति तद्वत् ॥ स्वर्विदः स्वर्दृशः—इति पाठौ ॥ २ ॥

हे सोम ! (वृषभः) कामनाओंकी वर्षा करने वाला इंद्र (तस्य, ते, पीत्वा) जिस तुझको पीकर (वृषायते) वृषकी समान हो जाता है (स्वर्विदः, अस्य, पीत्वा) सबको जानने वाले तुझ पीने पर (सुप्र-केतः) श्रेष्ठ प्रज्ञा वाला (सः) वह इंद्र (इषः) शत्रुओंके अन्नोंको (अभ्य-क्रमीत्) वशमें कर लेता है (न) जैसे (एतशः) घोड़ा (वाजम्, अभिगच्छति) संग्राममें आक्रमण करता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः

ऋ० अग्निः । छ० उष्णिक् । दे० ऐन्द्रः । तृचात्मके तृतीयसूक्ते—प्रथमा । श्रुष्टे श्रुष्टीति । क्षिप्रनाम (नि० ६, १२) क्षिप्रं जातासः जाता इन्दवः पात्रेषु क्षरन्त स्वर्विदः सर्वज्ञाः हरयः हरितवर्णाः सुताः अभिसुताः इमे सोमाः वृषणं कामानां सेक्तारम् इंद्रम् अच्छ यंतु अभिगच्छन्तु । श्रुष्टे श्रुष्टी—इति पाठौ ॥ १ ॥

(श्रुष्टे) शीघ्र (जातासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) पात्रोंमें टपकते हुए (स्वर्विदः) सर्वज्ञ (हरयः) हरे वर्णके (सुताः) संस्कार किये हुए (इमे) ये सोम (वृषणम्) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (अच्छ यंतु) प्राप्त हों ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भराय संग्रामाय सानसिः भजनीयः सुतः अभिषुतः अयं सोमः इंद्रार्थं पवते क्षरति ग्रहादिषु क्षरति । ततः सोमः जैत्रस्य क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् (१, २, २७५ वा०)–इति कर्मणः सम्प्रदानसंज्ञा, चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (पा० २, ३, ३६,) जयशीलमिन्द्रं चेतति जानाति । यथा इंद्रः विदे लोकैर्ज्ञायते तथा जानाति ॥ २ ॥

(भराय) संग्रामके निमित्त (सानसिः) सेवन करने योग्य (सुतः) संस्कार किया हुआ (अयम्) यह सोम (इंद्रार्थम्) इंद्रके निमित्त (क्षरति) पात्रोंमें पहुंचता है (जैत्रस्य) विजयी इंद्रको (चेतति) जानता है (यथा विदे) जैसे कि वह लोकों करके जाना जाता है ।२।

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वज्रञ्च वृषणं भरत्समप्सु जित् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अस्येत् अस्य सोमस्यैव मदेषु सञ्जानेषु सानसिं सद्यः संभजनीयं ग्राभं गृहीतव्यं धनुः गृभ्णाति गृह्णाति हृग्रहोर्भ इछ-

न्दसि-इतिभत्वम् किञ्च अप्सुजित् उदकार्थं वृत्रस्य जेता। यद्वा, आप इत्यंतरिक्षनाम (निघ० १, ३, ८) अन्तरिक्षे अहिनामकस्य जेता इंद्रः वृषणं वर्षितारं वज्रं च स्वकीयमायुधं सम्भरत् सम्बिभर्त्तं। विभर्त्तेरडागमः॥ गृभ्णाति-गृह्णीत-इति पाठौ॥ ३॥

(अस्येत्) इस सोमके ही (मदेषु) मदोंके होनेपर (सानसिम्) सबके सेवनयोग्य (ग्राभम्) ग्रहण करनेयोग्य धनुषको (गृभ्णाति) ग्रहण करता है (अप्सुजित्) जलके निमित्तवृत्रासुरका जेता (इंद्रः) इंद्र (वृषणम्) कामनाओंको सिद्ध करनेवाले (वज्रम् च) अपने आयुध वज्रको भी (संभरत्) भले प्रकार धारण करे॥ ८॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
अप श्वानँश्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् १

ऋ० श्यावाश्वः। छं० अनुष्टुप्। दे० ऐन्द्रः। अथ चतुर्थसूक्ते प्रथमा। हे सखायः! सखिभूताः समानख्याता वा हे स्तोतारः! वः यूयं पुरोजितीः पूर्वसवर्णदीर्घः (पा० ७, १, ३८) पुरःस्थित-जयस्य अन्धसः अदनीयस्य सोमस्य स्वभूताय सुताय अभिषुताय मादत्निवे अत्यंतं मदकराय रसाय दीर्घजिह्व्यं दीर्घा जिह्वा यस्य सः दीर्घजिह्वी च छंदसि (४, १, ५९)-इति ङीपन्तत्वेन निपातितः तादृशं श्वानम् अप श्नथिष्टन अपश्नयत अपबाध, यथा श्वानो राक्षसा वा सुतं सोमं न लिहन्ति तथा कुरुतेत्यर्थः॥ १॥

(सखायः) हे स्तोताओ! (वः) तुम (पुरोजितीः) जिसके आगे जय स्थित है ऐसे (अन्धसः) खानेयोग्य सोमके (सुताय) संस्कार कियेहुए (मादयित्नवे) अत्यंत मदकारी रसके निमित्त (दीर्घजिह्व्यम्) लंबीजीभवाले श्वानको (अप श्नथिष्टन) दूर करो अर्थात् जिस प्रकार कुत्ते और राक्षस संस्कार किये हुए सोमको न चाटें वैसा करो

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः।
२ ३ २ ३ १ २ १
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः॥ २॥

अथ द्वितीया। सुतः अभिषुतः कृत्व्यः कृत्वीति कर्मनाम (निघ०

२, १, २०) कर्मणि साधुर्यः इंदुः सोमः पावकया पापानां शोधयित्र्या धारया परि प्रस्यन्दत परितः क्षरति। कथमिव ?.अश्वा न यथा अश्वो वेगेन प्रगच्छति तद्वत् ॥ २ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ (कृत्व्यः) कर्मका श्रेष्ठ साधनरूप (यः) जो (इंदुः) सोम (पावकया) पापोंको शुद्ध करनेवाली (धारया) धारासे (अश्वः न) जैसे कि-घोड़ा वेगके साथ चलता है तैसे (परि प्रस्यंदते) चारों ओरको बहता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २र ३ १ २ ३ ३ २ ३ २
तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया ।
३ १ २ ३ १ २
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। नरः कर्मनेतारः ऋत्विजः रोषं दुरोषतेर्हिंसार्थस्य (भ्वा० प०) रेफलोपे दीर्घाभावे ओषतेर्दाहार्थस्य (भ्वा० प०) वा थलि रूपमिति संदेहादनवग्रहः तन्दुर्वधंदुर्दहं वा सोमम् अभि लक्ष्य विश्वाच्या सर्वान् कामानञ्चित्र्या, कामान् प्रापयित्र्या धिया बुद्ध्या यज्ञाय यज्ञार्थम् 'अद्रयः संतु अदारणयुक्ता भवंतु ॥ यज्ञाय सन्त्वद्रयः यज्ञं हिन्वन्त्यद्रिभिः-इति पाठौ ॥ ३॥

(नरः) ऋत्विज (दुरोषम्) दाह न डालनेवाले अथवा पापोंको भस्म करनेवाले (तं, सोमं, अभि) उस सोमके प्रति (विश्वाच्या) सकल कामोंको पूरा करनेवाली (धिया) बुद्धिसे (यज्ञाय) यज्ञके अर्थ (अद्रयः संतु) आदरयुक्त हों ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ
अभि प्रियाणी पवते चनोहितो नामानि यह्वो
३ २ ३ १ २ १ २र ३ २ ३ २उ ३
अधि येषु वर्धते । आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि
२३ १ २ ३ २
रथं विश्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥

ऋ० कविः । छः जगती । दे० ऐन्द्रः । अथ पञ्चमसूक्ते-प्रथमा । चनोहितः चन इत्यन्ननाम चायतेरसुनि चन इत्यौणादिकं-सूत्रेण निपातितः चनसे अन्नाय हितः यद्वा हितान्नः सोमः प्रियाणि जगतः प्रीणयितॄणि नामानि नमनशीलानि तान्युदकानि अभि पवते अभितः करोति। येषु अंतरिक्षस्थितेषु उदकेषु यह्वः महानयं सोमः अधि

वर्द्धते अधिकं प्रवृद्धो भवति अपां मध्ये सोमो वसति खलु । ततः बृहत् महान् सोमः बृहतः महतः परिवृढस्य सूर्य्यस्य विष्वञ्चं विष्वग् गमनम् अधि रथम् उपरि रथं विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा सन् आ अरुहत् आरोहति ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते (मनु० ३ अ० ७६ श्लोक) इति ॥ १ ॥

(चनोहितः) हितकारी अन्नरूप सोम (प्रियाणि) जगत्को तृप्त करनेवाले (नामानि) जलोंको (अभिपवते) सब ओरसे पवित्र करता है (येषु) जिन अंतरिक्षमें स्थित जलोंमें (यह्वः) यह महान् सोम (अधिवर्द्धते) अधिक बढता है, तदनन्तर (बृहत्) यह महान् सोम (बृहतः) पूज्य (सूर्यस्य) सूर्यके (विष्वञ्चम्) सर्वत्र गमन करनेवाले (अधिरथम्) रथके ऊपर (विचक्षणः) सबका द्रष्टा होकर (आ अरुहत्) आरोहण करता है, क्योंकि-विधिपूर्वक अग्निमें दी हुई आहुति आदित्यको पहुंचती है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३२ ३ १ २र ३ २
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो
३ १ २र १ २ ३२ ३ १२३ २
अस्या अदाभ्यः । दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्याऽ३-
१ २ ३२ ३१ २ ३२ ३२
न्नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य जिह्वा मुख्यत्वेन जिह्वास्थानीयः सोमः प्रियं प्रियकरं मधु मदकरं रसं पवते क्षरति । कीदृशः वक्ता शब्दकृत्-यद्वा स्तोतृभिः क्रियमाणाः स्तुतयः साधीयस्य इतिप्रतिश्रवणस्य कर्त्ता अस्य धियः एतस्य कर्म्मणः पतिः पालयिता अदाभ्यः रक्षोभिर्हिंसितुमशक्यः पुत्रः यजमानः पित्रोः पिता माता उभयो अपीच्यम् अन्तर्हितं यत् नाम तौ जानीतो नामकरणवेलायां तस्मात्तयोरपरिज्ञायमानं दिवः द्युलोकस्य रोचनं दीप्यमानं तृतीयं नाम सोमेऽभिषूयमाणे अधि दधाति अत्यंतं धारयति नक्षत्रव्यावहारिकनाम्नी प्रभाष्य सोमयाजी तृतीयमस्य नाम-इति भगवता बौधायनेनोक्तम् ॥ अधिरोचनम्-अधिरोचने इति पाठौ ॥ २ ॥

(ऋतस्य) सत्यस्वरूप यज्ञका (जिह्वा) मुख्य होनेसे मानो जिह्वारूप (वक्ता) शब्द करनेवाला सोम (प्रियम्) प्रिय करनेवाले (मधु) मदकारी रसको (पवते) टपकाता है (अस्य धियः) इस कर्मका (पतिः) पालन करनेवाला (अदाभ्यः) राक्षस जिसकी हिंसा नहीं करसकते

ऐसा (पुत्रः) यजमान (पित्रोः अपीच्यम्) नामकरणके समय माता पिताके न जानेहुए (दिवः रोचनम्) द्युलोकको दीप्त करनेवाले (तृतीयं नाम) सोमका संस्कार होजानेपर सोमयाजी इस तीसरे नामको (अधिदधाति) अत्यंत धारण करता है ॥ २ ॥

१२ ३२ ३१२ ३ १ २ ३ २उ
अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः
३ १ २३ १२ ३२ ३१२ ३१२
कोश आ हिरण्यये । अभी ऋतस्य दोहना
३१ २ ३२३२३ १ २
अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । द्युतानः द्युतदीप्तौ (भ्वा० आ०) दीप्यमानो नृभिः कर्म्मनेतृभिर्ऋत्विग्भिः हिरण्यये हिरण्मयकोशे अधिषवणचर्मणि, तस्य हिरण्मयत्वं हिरण्यपाणिरभिषुणोति—इति हिरण्यसम्बन्धात् तादृशे कोशे यमानः छान्दसे कर्म्मणि लिटि कानचि रूपम् नियम्यमानः सोमः कलशान् द्रोणाभिधान् प्रति अवाचिक्रदत् अवक्रन्दति शब्दायते । ततः ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य दोहनाः दोग्धार ऋत्विजः इमं सोमम् अभ्यनूषत अभिष्टुवंति ग्रावाणोवत्सा ऋत्विजो दुहन्ति—इति तैत्तिरीयक—ब्राह्मणे एषां दोग्धृत्वमभिहितम् त्रिपृष्ठः त्रीणि सवनानि तान्येव पृष्ठानि यस्य स तथोक्तः त्रिषु च सवनेषु सोमस्य विद्यमानत्वात चित्रकादित्वादुत्तरपदान्तोदात्तत्वम् हे सोम ! तादृशस्त्वम् उषसः अधि याज्ञाहनि विराजसि अधिशीङ्स्थासाम् (१, ४, ४६)—इति द्वितीया तेष्वहस्सु विशेषेण दीप्यसे यद्वा राजिरन्तर्भावितण्यर्थः अहानि प्रकाशयसि । येमाणः—येमान—इति, अभीमृतस्य अभीसृतस्य—इति, विराजसि—विराजति—इति पाठः ॥३॥

(द्युतानः) दीप्यमान (नृभिः) कर्मकर्त्ता ऋत्विजोंसे (हिरण्यये) सुवर्णमय (कोशे) संस्कार करनेके कोशमें (येमानः) नियत किया जाता हुआ (कलशान् अवाचिक्रदत्) द्रोणकलशोंके प्रति शब्द करता है, तदनन्तर (ऋतस्य) सत्यस्वरूप यज्ञके (दोहनाः) सिद्ध करने वाले ऋत्विज (अभ्यनूषत) इस सोमकी स्तुति करते हैं (त्रिपृष्ठः) तीन सवनवाला तू सोम (उषसः, अधि) यज्ञके दिनोंको (विराजसि) प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ।

३ १ २   ३ १२ ३१ २ ३ १२

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे ।

१ २३ २ ३ १२ ३ १ २   ३ ३ ३ १   २र

प्रप्रवयममृतञ्जातवेदसं प्रियं मित्रन्न शꣳसिषम् ॥१॥

ऋ० तृणपाणिः शंयुः । छ० बृहती । दे० अग्निः । अथ षष्ठे खण्डे प्रथमसूक्ते प्रगाथे—प्रथमा । हे स्तोतारः ! वः यूयं यज्ञायज्ञा यज्ञे यज्ञे सर्वेषु यागेषु दक्षसे, अग्नये प्रवृद्धायाग्नये गिरा गिरा स्तुतिरूपया वाचा वाचा स्तोत्रं कुरुतेति शेषः । च-शब्दो भिन्नक्रमो वः इत्यस्मात् परो द्रष्टव्यः । यूयं च स्तोत्रं कुरुत । वयम् अपि तमग्निं प्रप्रशासिषम् प्रसमुपोदः पादपूरणे (८, १, ६०)—इति प्रशब्दस्य द्विरुक्तिः पादपूरणार्थो, व्यत्ययेनैकवचनम् (३, ४, ९८), छान्दसो लुङ् (७, १, ३) प्रशंसामः कीदृशम् ? अमृतम् मरणरहितं जातवेदसम् जातानां वर्द्धितारं जातप्रज्ञं जातधनं वा मित्रं सखिभूतमिव, प्रियम् अनुकूलम् । यद्वा, व्यत्ययेन (३, ४, ९८) त्वमित्यस्य वसादेशः, अग्नय इति च कर्मणि चतुर्थी, क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्—इति कर्मणः सम्प्रदानत्वात् । च-शब्दश्च चणिति निपातः, चेदर्थे वर्त्तते, दक्षस इति च दक्षेर्वृद्धिकर्म्मणः (भ्वा० आ०) अन्तर्भावितण्यर्थाल्लङि रूपम्, चण्योगात् निपातैर्यद्यदिहन्त० (८, १, ३०) इति निघातप्रतिषेधः । तत्रायमर्थः- हे स्तोतः ! त्वं यज्ञे यज्ञे इममग्निं गिरा गिरा स्तुत्या स्तुत्या दक्षसे च वर्द्धयसि चेत् वयमपि अमृतत्वादिगुणकं तं प्रशासामः ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! (वः) तुम (यज्ञा यज्ञा) प्रत्येक यज्ञमें (दक्षसे) प्रज्वलित होकर वृद्धिको प्राप्त हुए (अग्नये) अग्निके अर्थ (गिरा गिरा) अनेकों प्रकारकी वाणियोंसे स्तुति करो (च) और (वयम्) हम भी (अमृतम्) मरण रहित (जातवेदसम्) प्राणिमात्रके ज्ञाता (मित्रम् न) मित्रकी समान (प्रियम्) अनुकूल तिस अग्निकी (प्रशंसिषम्) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

३ १   २र   २ ३ १   २र ३ १   २र   ३ १

ऊर्जो नपातꣳ स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्य-

२   २ ३ १ २   ३ १   २र ३ २ ३ २ ३ २

दातये । भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता

३ १ २

तनूनाम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ऊर्जः अन्नस्य बलस्य नपातं पुत्रं प्रशंसिषमित्यनुषङ्गात् प्रशंसामेत्यर्थः । हिना-इति निपात-द्वय-समुदायो हीत्यस्यार्थे सः खलु अयम् अग्निः अस्मयुः अस्मान् कामयमानो भवति । वयञ्च हव्यदातये हव्यानां हविषां देवेभ्यो दात्रे तस्मा अग्नये दाशेम हवींषि दद्याम । स च अग्निः वाजेषु संग्रामेषु रक्षिता । वृधः वर्द्धकश्चास्माकं भुवत् भवतु । उत अपि च तनूनाम् तनयानामस्मत्पुत्राणाञ्च त्राता रक्षिता भुवत् भवतु ॥ २ ॥

(ऊर्जः) अन्न और बलके (नपातम्) पुत्रसमान अग्निकी हम प्रशंसा करते हैं (हिना) निश्चय (सः) वह (अयम्) यह अग्नि (अस्मयुः) हमारी कामना किया करता है, हम भी (हव्यदातये) देवताओंको हवि पहुँचाने वाले तिस अग्निके अर्थ (दाशेम) हवि देते हैं वह अग्नि (वाजेषु) संग्रामोंमें (अविता) रक्षा करनेवाला (वृधः) हमारी वृद्धि करनेवाला (भुवत्) हो (उत) और (तनूनाम्) हमारे पुत्रोंका (त्राता) रक्षा करनेवाला (भुवत्) हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।

३ १ २ ३ १ २

एभिर्वर्द्धास इन्दुभिः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ तृचात्मक-द्वितीये सूक्ते—प्रथमा । हे अग्ने ! एहि आगच्छ ते तुभ्यं च त्वदर्थं गिरः स्तुतिः इत्था इत्थमनेन प्रकारेण सुब्रवाणि सुष्ठु ब्रवाणीत्याशास्यते । ताः स्तुतीः शृण्वित्यर्थः । ऊ—इत्येतत् पूरकम् । इतराः असुरैः कृताः स्तुतीः शृण्विति शेषः तथा च ब्राह्मणम्–अग्न इत्थेतरा गिर इत्यसुर्य्या ह वा इतरा गिरः–इति । अपि च आगतस्त्वम् एभिः एतैः इन्दुभिः सोमैः वर्द्धासि वर्द्धस्व ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (एहि) आओ (ते) तुम्हारे लिये (गिरः) स्तुतियें (इत्था) इसप्रकार (सु ब्रवाणि) भले प्रकार उच्चारण करूँ और तुम उनको सुनो (ऊ) और (इतराः) दूसरोंकी स्तुतियोंको भी सुनो (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमोंसे (वर्द्धासे) बढो ॥ १ ॥

२ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।

२ ३ १ २
तत्र योनिं कृणवसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने! ते तव मनः अनुग्रहात्मकमन्तःकरणं यत्र यस्मिन् देशे क्व च कस्मिंश्चिद् यजमाने वर्त्तते, तत्र तस्मिन् यजमाने वर्त्तमाने उत्तरम् उद्गततरं श्रेष्ठं दक्षं बलकरमन्नं वा दधसे धारयसि तथा योनिं स्थानं च कृणवसे तस्मिन् यजमाने करोषि। तत्र योनिं तत्रासदः-इति पाठौ ॥ २ ॥

(ते) तुम्हारा (मनः) अनुग्रहरूप अन्तःकरण (यत्र) जहाँ (क्व च) किसी यजमानमें है (तत्र) तिस यजमानके यहाँ (उत्तरम्) श्रेष्ठ (दक्षम्) बलकारी अन्न (दधसे) स्थापन करते हो (योनिं कृणवसे) स्थानको भी करते हो ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २र
न हि ते पूर्त्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां पते।
२ ३ १ २
अथा दुवो वनवसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अग्ने! ते त्वदीयं पूर्तं पूरकं तेजः अक्षिपत् अक्ष्णो पातकं विनाशकं न हि भुवत् न भवतु सर्वदा अस्माकं दर्शनसामर्थ्यं करोतु। हे नेमानां पते! नेमशब्दोऽल्पवाची, मनुष्याणां मध्ये कतिपयानां यजमानानां पते! पालक! अथ अतः कारणात् दुवः दुवस्यति परिचरणकर्मा (निघ० ३, ५, ५) अस्माभिर्यजमानैः कृतं परिचरणं वनवसे सम्भजस्व ॥ ३ ॥

हे अग्ने! (ते) तुम्हारा (पूर्तम्) तेज (अक्षिपत्) नेत्रोंकी ज्योतिको नष्ट करने वाला (न हि भुवत्) न हो अर्थात् हम सदा तुम्हारे दर्शनकी शक्तिको धारण करें (नमानां पते) हे अग्ने! तुम मनुष्योंमें कुछ यजमानोंके रक्षक हो (अथ) इस कारणसे (दुवः) हम यजमानोंकी कीहुई सेवाको (वनवसे) स्वीकार करो ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः।
१ २ ३ १ २
वज्रिं चित्रँ हवामहे ॥ १ ॥

ऋ० सौभरिः। छ० गायत्री। दे० इंद्रः। अथ तृतीयसूक्ते, प्रगाथे-

प्रथमा । हे अपूर्व्य । त्रिषु सवनेषु प्रादुर्भूतत्वादभिनव ! हे वज्रिन् ! वज्रवन्निन्द्र ! भरंतः सोमलक्षणैरन्नैस्त्वाम् पोषयंतः वयम् चित्रं चायनीयं विविधरूपं वा त्वामु त्वामेव अवस्यवः रक्षणमात्मन इच्छन्तः सन्तः हवामहे आह्वयामः। तत्र दृष्टान्तः—स्थूरं न यथा भरन्तः व्रीह्यादिभिर्गृहं पूरयन्तो जनानां स्थूरं स्थूलं गुणाधिकं कच्चित् कञ्चित् पुरुषं यथा आह्वयंति तद्वत् । वज्रिन् वाज—इति पाठौ ॥ १ ॥

(अपूर्व्य) तीनों सवनोंमें प्रकट होनेसे नवीन (वज्रिन्) हे इंद्र ! (भरंतः, वयम्) सोमसे तुम्हारा पोषण करते हुए हम (चित्रं त्वामु अवस्यवः) पूजनीय तुमको ही अपना रक्षक चाहते हुए (हवामहे) आह्वान करते हैं (कच्चित्, स्थूरं न) जैसे कि अन्न आदिसे घरको भरने वाले किसी अधिक गुणवान्का आह्वान किया करते हैं ॥ १ ॥

१२ ३ १२ ३२३ २ ३ २३१२ ३ २
उप त्वा कर्म्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो
३ २ १ २र ३१२ ३२३ १ २
धृषत् । त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र
३ २
सानसिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । प्रथमपादः प्रत्यक्षकृतः । हे इंद्र ! कर्मन् अग्निष्टोमादिकर्मणि ऊतये रक्षणाय त्वा त्वाम् उप गच्छामः । द्वितीयः पादः परोक्षकृतः यः इंद्रः धृषत् धृष्णोति शत्रूनभिभवति ञिधृषा प्रागल्भ्ये (स्वा० प०) बहुलं छन्दसि (२, ४, ७३)—इति श्नप्रत्ययः युवा तरुणः उग्रः उद्गूर्णः स इंद्रः नः अस्मान् प्रति चक्राम आगच्छतु यद्वा चक्राम अस्मानुत्साहयुक्तान् करोति क्रमतेः सर्गार्थे व्यत्ययेन परस्मैपदम् । परोऽर्द्धर्च्चः प्रत्यक्षकृतः । सखायः समानख्याना बन्धुभूता वा वयं सानसि वनषण सम्भक्तौ (भ्वा० प०) सम्भजनीयम् अवितारं सर्वस्य रक्षितारं त्वामित् त्वामेव ववृमहे वृणीमहे संभजामहे । हि प्रसिद्धौ (हि प्रयोगादनिघातः ८, १, ३४) ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (कर्मन्) अग्निष्टोम आदि कर्ममें (ऊतये) रक्षाके लिए (त्वा, उपगच्छामः) तुम्हारी शरणमें प्राप्त होते हैं (यः) जो इंद्र (धृषत्) शत्रुओंका तिरस्कार करता है (युवा) तरुण (उग्रः) उग्र इंद्र (नः) हमारे समीप (चक्राम) आवै अथवा हमैं उत्साह युक्त करै (सखायः) बान्धव रूप हम (सानसिम्) सेवा करने योग्य (अवि-

तारम्) सबकी रक्षा करने वाले (त्वामित्, वव्रूमहे) तुम्हारा ही आराधन करते हैं (हि) यह बात प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

२ ३क २र ३ १२ ३ १२ ३१२३

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृ-

१२ ३२३ १ २ ३१२

ग्महे । उदेव ग्मन्त उदभिः ॥ १ ॥

ऋ० नृमेधः । छं० ककुप् । दे० ऐन्द्रः । अथ चतुर्थतृचे-प्रथमा । हे गिर्वणः ! गीर्भिः वननीय ! इंद्र ! अधा हि संप्रति हि त्वा त्वाम् कामे काममभिलषितमर्थम् ईमहे । यद्वा कामे कामान् कमनीयान् स्तोमान् उपससृग्महे उपसृजामः त्वाम् प्रापयाम इत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तमाह उदेव यथा उदकेन ग्मन्तः गच्छन्तः पुरुषाः उदभिः अञ्जलिनोत्क्षिप्योदकैः समीपस्थान् पुरुषान् क्रीड़ार्थं संसृजंति तद्वदित्यर्थः॥ काम ईमहे- ससृग्महे कामान्सहस्ससृजमहे-इति च पाठः । उदेवग्मंत उदेवयन्त—इति च पाठौ ॥ १ ॥

(गिर्वणः) स्तोत्रोंसे प्रार्थना करने योग्य (इंद्र) हे इंद्र ! (अधाहि) इस समय ही (त्वा) तुमको (कामे) अभिलषित पदार्थकी (ईमहे) याचना करते हैं (उपससृग्महे) आपको प्राप्त होते हैं (उदेव ग्मंतः) जैसे जल लेकर जाते हुए पुरुष (उदभिः) अञ्जलिसे जल उछाल कर समीपके पुरुषोंको क्रीड़ाके निमित्त प्राप्त होते हैं अर्थात् भिगो देते हैं १

१ २र ३ २ ३१२ ३१२

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्द्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

३ १ २ ३१ २

वावृध्वाꣳसं चिदद्रिवो दिवे दिवे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अद्रिवः ! वज्रिन् ! शूर ! इंद्र ! वार्णं यथोदकमुदकस्थानम् यव्याभिः नदीभिः अवनयः यव्याः-इति (निघ० १, १३, १२) नदी नामसु पाठात् वर्द्धन्ति वर्द्धयंति तथा ब्रह्माणि स्तोत्रैः वावृध्वांसम् चित् यथा निरुदकं देशं नदीभिः तथा न किन्तु प्रवृद्धमेव त्वा त्वां दिवे दिवे अन्वहं वर्द्धयन्ति स्तोतारः ॥ २ ॥

(अद्रिवः) वज्रधारी (शूर) हे शूर इंद्र ! (वार्णम्) जैसे महा समुद्रको (यव्याभिः) नदियें अपने जलसे (वर्द्धन्ति) बढ़ाती हैं तैसे ही स्तोता (वावृध्वांसं, चित्) बढ़े हुए ही (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंसे (त्वा) तुम्हें (दिवे दिवे) प्रतिदिन बढ़ा लेते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचो-
१ २ ३ १ २ ३ १ २
युजा। इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इषिरस्य गमनशीलस्येन्द्रस्य उरुयुगे महायुगे उरौ महति रथे इन्द्रवाहा इंद्रस्य वाहनभूतौ वचोयुजा वचनमात्रेणैव युज्यमानौ स्वर्विदा स्वर्गाख्यमिंद्रस्य स्थानं जानन्तौ हरी एतन्नामकावश्वौ गाथया स्तोत्रेण स्तोतारः युञ्जन्ति योजयन्ति ॥ उरुयुगे वचो युजा इंद्रस्य वाहा स्वर्विदा—इंद्रवाहा वचोयुजा—इति पाठौ ॥३॥

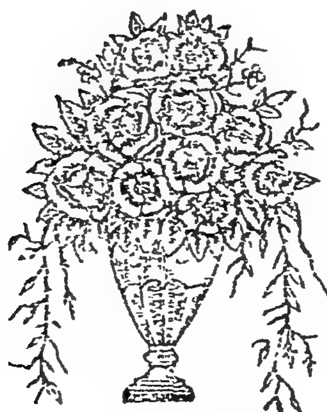
वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ १ ॥

इति श्रीमद्राराजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्क-भूपाल-साम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तरार्चिग्रन्थे प्रथमोऽध्यायः।

(इषिरस्य) गमनशील इंद्रके (उरुयुगे) बड़े जुए वाले (उरौ रथे) बड़े रथमें (इंद्रवाहा) इंद्रके घोड़े (वचोयुजा) वचनमात्रसे ही जुड़ जाने वाले हैं (स्वर्विदः) स्वर्गनामक इंद्रके स्थानको जानेवाले (हरी) हरि नामक घोड़ोंको (गाथया) स्तोत्रसे (युञ्जन्ति) स्तोता युक्त करते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः, प्रथमाध्यायश्च समाप्तः

——०——



अथ द्वितीयाध्याय आरभ्यते।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम्॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २र
पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वासाहꣳ शतक्रतुं मꣳहिष्ठं चर्षणीनाम्॥१॥

ऋ० श्रुतकक्षः छ० अनुष्टुप् दे० इन्द्रः। पान्तमाव इति प्रथम-खंडे तृचात्मके प्रथमे सूक्ते प्रथमा। हे ऋत्विजः! वः युष्मदीयम् अन्धसः सोमलक्षणमन्नम् आ पान्तम् आभिमुख्येन पिबंतं पा पाने (भ्वा० प०) छान्दसः शपो लुप् (२, ४, ७३) सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते इति न लोकाव्यय (२, ३, ६९)—इति षष्ठीप्रतिषेधाभावः, ततोऽन्धस इत्यस्य कर्तृकर्मणोः (२, ३, ६५)-इति षष्ठी। सोममाभिमुख्येन पिबंतमेतादृशम् इंद्रम् अभि प्रगायत प्रकर्षेण अभिष्टुत। कीदृशम्? विश्वासाहं सर्वेषां शत्रूणामभिभवितारं सर्वेषां भूतजातानां वा अतएव शतक्रतुं बहुविधप्रज्ञानं बहुविधकर्माणं वा चर्षणीनां मनुष्याणां मंहिष्ठं धनस्य दातृतमम्। यद्वा यजमानानां यष्टव्यत्वेन पूजनीयमिन्द्रं प्रगायतेत्यर्थः॥ १॥

हे ऋत्विजो! (वः) तुम्हारे (अन्धसः) सोमरूप अन्नको (आपान्तम्) अभिमुख होकर पीते हुए (इन्द्रं, अभि, प्रगायत) इंद्रकी अधिकतासे स्तुति करो। कैसा है वह इन्द्र (विश्वासाहम्) सब शत्रुओं का तिरस्कार करनेवाला (शतक्रतुम्) सैंकड़ों प्रकारके कर्म करने वाला (चर्षणीनां, मंहिष्ठम) मनुष्योंको धनका दाता होनेसे मान्य १

३ १ २ ३१ २ ३ २ १२
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या३ꣳ सनश्रुतम्।
२ ३ १ ३
इन्द्र इति ब्रवीतन॥ २॥

अथ द्वितीया। हे ऋत्विग्यजमानाः! पुरुहूतं यज्ञेषु बहुभिराहूतं पुरुष्टुतं बहुभिः स्तोत्रशस्त्रादिभिः स्तुतमतएव गाथान्यं गानयाग्यं

गातव्यं सनश्रुतं सनातनया प्रसिद्धम्, एवंविधं देवम् इंद्र इति, यूयं ब्रवीतन ब्रुवीध्वं, ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि (अदा० उ०)—इत्यस्य लडि व्यत्ययेन (३, ४, ९८) ध्वमस्तनबादेशः, अतएव गुणः ॥ २ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (पुरुहूतम्) यज्ञोंमें अनेकोंके पुकारेहुए (पुरुष्टुतम्) अनेकों स्तोत्रशस्त्रादिसे स्तुति किये हुए (गाथान्यम्) गानेयोग्य (सनश्रुतम्) सनातनसे प्रसिद्ध देवको (इंद्र, इति, ब्रवीतन) इंद्र नामसे कहो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २र ३ २
इन्द्र इन्नो महोनां दाता वजानां नृतुः ।
३ १ २ १ १ २
महाँ२ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इन्द्र इत् पूर्वोक्तलक्षण इन्द्र एव नः अस्मभ्यं महोनां मघोनां धनवतां पश्वादि-लक्षण—धनयुक्तानां वाजानाम् अन्नानां दाता भवतु । कीदृशः नृतुः नृतिश्रृधोःक्नुः-इति क्नुप्रत्ययः,ह्रस्वश्छान्दसः, सर्वस्य नर्त्तयिता, यद्वा, नृ नये, (क्र्या० आ० प०) औणादिक-तुप्रत्ययः, धातोर्ह्रस्वश्छान्दसः स्तोतृभ्यो गवादिनेता, अतएव महान् स इन्द्रः अभिज्ञु अभिगत-जानुकम् अस्मभ्यम् आ यमत् आयच्छतु ददातु । यद्वा स इंद्रः अभिज्ञु अस्मदभिमुखमागच्छत धनं स्वहस्तयोः परिगृह्य अस्मान् नयतु—धनं गृहीत्वा अस्मभ्यं ददात्वित्यर्थः ॥ मघोनाम्—महोनाम्—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(नृतुः) स्तुति करनेवालोंको गौएँ आदि पहुंचाने वाला (इंद्र इत) वह इन्द्रदेव ही (नः) हमैं (महोनाम्) पशुआदि धनयुक्त (वाजानाम्) अन्नोंके (दाता) देनेवाले हों (महाम्) सबके बड़े वह इन्द्रदेव (अभिज्ञु) हमारे सन्मुख आकर (आ यमत्) अन्न धनादि दें ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र व इन्द्राय मादनँ हर्यश्वाय गायत ।
१ २ ३ १ २
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः छ० त्रिष्टुप् । दे० इंद्रः । अथ द्वितीयतृचे, प्रथमा । हे सखायः ! स्तोतारः ! वः यूयं हर्यश्वाय हरिनामकाश्वोपेताय सोमपाव्ने सोमानां पात्रे मादनं मदकरं हर्षकरं स्तोत्रं प्रगायत ॥ १ ॥

(सखायः) हे स्तोताओं ! (वः) तुम (हर्यश्वाय) हरि नामक अश्ववाले (सोमपाव्ने) सोम पीनेवाले इन्द्रके अर्थ (मादनम्) हर्ष-दायक स्तोत्रको (प्रगायत) गाओ ॥ १ ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
शꣳसेदुक्थꣳ सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
३ २ ३ १ २
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । उत अपि च हे स्तोतः ! सुदानवे शोभन-दानाय सत्यराधसे सत्यधनायेन्द्राय उक्थं स्तोमं यथा नरः अन्ये स्तोतारः द्युक्षं दीप्तेः साधनभूतं स्तोत्रं शंसति, तद्वत् त्वमपि शंस उच्चारय । इदिति पूरणः । वयमपि चकृम स्तोत्रं करवाम ॥ २ ॥

(उत्) और हे स्तोतः (सुदानवे) श्रेष्ठ दानवाले (सत्यराधसे) सत्य धनवाले इन्द्रके अर्थ (उक्थम्) सोमको यथा जैसे (नरः) अन्य स्तोता (द्युक्षम्) दीप्तिके साधनभूत स्तोत्रको उच्चारण करते हैं तैसे ही तू भी (शंस) उच्चारण कर (इत्) हम भी (चकृम) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
१ २ ३ १ २
त्वꣳ हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! त्वं न अस्माकं वाजयुः अन्नकामो भव । हे शतक्रतो ! बहुविध-कर्मवन्निन्द्र ! त्वं नः अस्माकं गव्युः गोकामो भव । हे वसो ! वासयितरिन्द्र ! त्वं हिरण्ययुः हिरण्यकामोऽपि भव । छन्दसि परेच्छायामपि दृश्यते (वा० ३, ३, ८)—इति क्यच ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (वाजयुः) अन्न चाहने वाले हूजिये (शतक्रतो) हे अनेकों प्रकारके पराक्रम करनेवाले (त्वम्) आप (गव्युः) हमारी गौओंको चाहनेवाले हूजिये (वसो) हे व्यापक इंद्र ! (त्वम्) आप (हिरण्ययुः) हमारे निमित्त सुवर्ण चाहने वाले हूजिये

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।

१ २ ३ १ २
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः-प्रियमेधो वा । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीयतृचे, प्रथमा । हे इंद्र ! त्वायंतः त्वामात्मन इच्छंतः सखायः समानख्याना वयं तदिदर्थाः यद्विषयं स्तोत्रं तत्तदित् तदेवःअर्थः प्रयोजनं येषां, तादृशाः संतः त्वा त्वां जरामहे स्तुमहे । उ-इति पूरणः । कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्नाः अस्मदीयाः पुत्रादयश्च उक्थेभिः उक्थैः शस्त्रैर्जरन्ते त्वां स्तुवंति ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (त्वायंतः) तुम्हें अपना बनानेकी इच्छावाले (सखायः) मित्ररूप (तदिदर्थाः) जिस विषयकी स्तुति करते हैं वही है प्रयोजन जिनका ऐसे हम (त्वा) तुम्हारी स्तुति करते हैं (उ) और (कण्वाः) कण्वगोत्रवाले हमारे पुत्रादिक भी (उक्थेभिः) स्तोत्रोंसे (जरन्ते) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ २३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
२ ३ १ २
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे वज्रिन् ! वज्रवन्निन्द्र ! अपसः अपस्विनः कर्मवतः तव सम्बन्धिनि नविष्टौ अभिनवे यागे वर्त्तमानोऽहम् अन्यत् तद्विषयादन्यत् स्तोत्रं नघेम् नैव आपपन अभिष्टौमि पनतेः स्तुतिकर्मणः (भ्वा० आ०) उत्तमे णलि रूपम् तवेदु तवैव स्तोमैः स्तोमं स्तोत्रं चिकेत अभिजानामि त्वामेव सर्वदा स्तौमीत्यर्थः ॥ २ ॥

(वज्रिन्)हे वज्रधारी इंद्र ! (अपसः) कर्मके अधिष्ठाता (तव) तुम्हारे (नविष्टौ) नवीन यज्ञके विषे वर्त्तमान मैं (अन्यत्) उस विषयसे अन्य स्तोत्रको (नघेम्) नहीं (आपपन) प्राप्त होता हूँ (तवेदु) तुम्हारे ही (स्तोमैः) स्तोत्रको (चिकेत) जानता हूँ ।२।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
इच्छन्ति देवाः सुन्वंतं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
१ २ ३२ ३ १ २
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सुन्वंतं सोमाभिषवं कुर्वंतं यजमानं देवा इंद्रादयः

सर्वे इच्छंति रक्षितुम् स्वप्नाय न स्पृहयन्ति स्वप्नावस्थां तस्य सुन्वतो नेच्छन्ति सर्वदा प्रबुद्धमेव कुर्वतीत्यर्थः स्पृहेरीप्सितः (१, ४, ३६) कर्म्मणि चतुर्थी स्पृह ईप्सायां चुरादिरदंतः। यत एवमतः कारणात् अतन्द्राः अनलसाः देवाः प्रमादं प्रकर्षेण मदकरं तदीयं सोमं यंति शीघ्रं प्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

(सुन्वंतम्) सोमका संस्कार करते हुए यजमानको (देवाः) देवता (इच्छन्ति) रक्षा करना चाहते हैं (स्वप्नाय, न, स्पृहयंति) उसकी स्वप्नावस्थाको नहीं चाहते हैं, सदा जागृत रखते हैं इसी कारण (अतन्द्राः) आलस्यरहित हुए देवता (प्रमादम्) परमानन्ददायक उसके सोमको (यन्ति) शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

१ २३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राय मद्वने सुतं परिष्टोभन्तु नो गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

ऋ० श्रुतकक्षः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ चतुर्थतृचे प्रथमा । मद्वने माद्यतेः (दि० प०) क्वनिप् मदनशीलाय इंद्राय तदर्थं सुतं अभिषुतं सोमं नः अस्मदीयाः गिरः स्तुतिलक्षणाः वाचः परिष्टोभन्तु स्तोभतिः स्तुतिकर्मा (निघ० ३,१४,४) सोमं स्तुवन्तु । ततः कारवः स्तुतिकारिणः स्तोतारश्च अर्कं सर्वैरर्चनीयं सोमम् अर्चन्तु पूजयन्तु ॥ १ ॥

(मद्वने) सोमके मदको चाहनेवाले (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (सुतम्) संस्कार किये हुए सोमको (नः) हमारी (गिरः) वाणियें (परिष्टोभन्तु) स्तुति करें तदनन्तर (कारवः) स्तुति करनेवाले स्तोता भी (अर्कम्) अर्चना करने योग्य (सोमम्) सोमको (अर्चन्तु) पूजें १

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्तसꣳसदः ।
१ २ ३ २ २
इन्द्रꣳ सुते हवामहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यस्मिन् इंद्रे विश्वाः सर्वाः श्रियः कान्तयः अधि अधिकं भवन्ति अतिशयेन तेजस्वीत्यर्थः । किञ्च सप्त सप्तसङ्ख्याकाः संसदः सम्यग् यज्ञेषु कर्म्म करणार्थं सीदन्तीति संसदो होत्रकाः यस्मिन् रणन्ति सोमप्रदानार्थं रमन्ते यद्वा यं शब्दयन्ति स्तुवन्ति तं पूर्वोक्तलक्षणम् इंद्रं सुते सोमेऽभिषुते सति हवामहे वयं सोमपानायाह्वयामः ॥ २ ॥

(यस्मिन) जिस इंद्रमें (विश्वाः) सब (श्रियः) कांतियें (अधि, अधिक होती हैं और (सप्त) सात (संसदः) होता (रणन्ति) हवि देने को अनेकों मंत्रोंका उच्चारण करते हैं (इंद्रम) उस इंद्रको (सुते) सोम का संस्कार होजाने पर (हवामहे) हम आह्वान करते हैं ॥ २॥

१ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   १ २र

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्व-

३ १ २

र्द्धन्तु नो गिरः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। देवासः देवाः इंद्रादयः त्रिकद्रुकेषु आभिप्लविके-ष्वहःसुज्योतिर्गौरायुरिति त्रिकद्रुकाः तेषु चेतनः चिती संज्ञाने (भ्वा० प०) चेतन्ति ज्ञानन्ति अनेन स्वर्गादिकमिति चेतनो ज्ञानसाधनो यज्ञः तम अत्नत अतन्वत स्वैः स्वैः कर्म्मभिः पालनैश्च विस्तारितवन्तः तनु विस्तारे (तना० उ०) लङि बहुलं छन्दसि (२,४,७३) इति विकरणस्य लुक् तनिपत्योश्छन्दसि (६, ४, ९९)-इति उपधालोपः तमित् तमेव यज्ञं नः अस्माकं गिरः स्तुतिलक्षणा वाचः वर्द्धन्तु वर्द्धयन्तु॥ ३॥

(देवाः) देवता (त्रिकद्रुकेषु) ज्योति, गौ और आयुके देनेवाले दिनोंमें(चेतनम्)जिससे स्वर्ग आदि जाना जाता है ऐसे ज्ञानसाधन यज्ञ को (अत्नत) अपने २ कर्म और रक्षाओंसे फैलाते हुए (तम् इत) उस ही यज्ञको (नः) हमारी (गिरः) स्तुतियें (वर्द्धन्तु) बढ़ावें ॥ ३ ॥

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ १ २   ३ २ ३   १ २ ३   १ २   ३ १ २

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

१ २ ३ २उ   ३ १ २

एहीमस्य द्रवा पिब ॥ १ ॥

ऋ० इरिमिठिः। छ० गायत्री। दे० इंद्रः। अथ द्वितीयखण्डस्य प्रथम—तृचे प्रथमा। हे इंद्र! ते तुभ्यं त्वदर्थम् अयं सोमः बर्हिषि अधि वेद्यामास्तीर्णे दर्भे निपूतः नितरां दशापवित्रेण शोधितः अभि-षवादिसंस्कारैः संस्कृत इत्यर्थः। ईम् इदानीम् अस्य इमं सोमं प्रति एहि आगच्छ। आगत्य च यत्र रसात्मकः सोमो हूयते तं देशं प्रति द्रव शीघ्रं गच्छ तदनन्तरं सोमं पिब ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र! (ते) तुम्हारे अर्थ (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) वेदीमें बिछे हुए कुशों पर (निपूतः) दशापवित्रसे

संस्कार किया गया (ईम्) इस समय (अस्य) इस सोमके प्रति (एहि) आओ और आकर जहां रसरूप सोमका हवन किया जाता है तहां (द्रव) शीघ्र पहुँचो फिर (पिब) सोमको पिया ॥ १॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
शाचिगो शाचिपूजनायꣳ रणाय ते सुतः ।
१ २ ३ १ २
आखण्डल प्र हूयसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । शाचिगो शाचयः शका गावो यस्यासौ शाचिगुः यद्वा शच् व्यक्तायां वाचि (भ्वा० आ०) अस्मादौणादिक इप्रत्ययः शाचयः व्यक्ता प्रख्याता गावो रश्मयो वा यस्य तादृश ! हे शाचिपूजन ! पूज्यतेऽनेनेति पूजनम् स्तोत्रादि प्रख्यातपूजन ! ते तव रणाय रमणाय सुखजननाय अयं सोमः सुतः अभिषुतः अतः कारणात् हे आखण्डल शत्रूणामाखण्डयितः ! इंद्र ! प्रहूयसे प्रकृष्टाभिः स्तुतिभिराहूयसे । इत आगत्य इमं सोमं पिबेत्यर्थः ॥ २ ॥

(शाचिगो) समर्थ वा प्रसिद्ध किरणोंवाले (शाचिपूजन) प्रसिद्ध है पूजन जिसका ऐसे हे इंद्र! (ते रणाय) तुम्हे सुख प्राप्त होनेके निमित्त (अयम) यह सोम (सुतः) संस्कारसे शुद्ध किया है, इस कारण (आखंडल) हे शत्रुओंका मानखण्डन करनेवाले इंद्र ! (प्रहूयसे) श्रेष्ठ स्तुतियोंसे बुलाये जाते हो, तुम यहां आकर इस सोमको पियो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते शृङ्गवृषो णपात्प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
२र ३ १ २र
न्यस्मिं दध्र आ मनः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे शृङ्गवृषो णपात् ! शृङ्गवृषनामा कश्चित् ऋषिः तस्य चेन्द्रः स्वयमेव पुत्रतयाजज्ञे—इत्याख्यायिका । नपादित्यपत्यनाम हे शृङ्गवृष-पुत्र ! शृणन्ति हिंसन्तीति शृङ्गाणि रश्मयः, तैर्वर्षतीति शृङ्गवृडादित्यः, तस्य नपातयितः स्वकार्येऽवस्थानेऽवस्थापयितः सुवामन्त्रिते (२, १, २)-इति षष्ठ्यन्तस्य पराङ्गवद्भावेनामन्त्रितानुप्रवेशात् समुदायस्याष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । ईदृश ! हे इंद्र ! ते तव सम्बंधी प्रणपात् प्रकर्षेण न पातयिता रक्षिता, कुण्डपाय्यः कुण्डैः पीयते अस्मिन् सोम इति कुण्डपाय्यः क्रतुविशेषः । क्रतौ कुण्डपाय्य

सञ्ज्ञाय्यौ (३, १, १३०)—इति पिबतेरधिकरणे यत्प्रत्ययो युगागमश्च निपात्यते—एतत् संज्ञो यः क्रतुरस्ति अस्मिन् कुण्डपाय्य-क्रतौ मनः स्वान्तं आ नि दध्रे अभितो वर्द्धमानाः कुण्डपायिनामान ऋषयः पुरा निदधिरे सम्यक् त्वद्देवत्यं क्रतुमनुष्ठितवन्त इत्यर्थः । दधातेर्लिटि इरयोरे (६, ४, ७६)-इति रेभावः ॥ ३ ॥

(शृङ्गवृषः) शृङ्गवृष ऋषिके वा ज्योतियोंकी वर्षा करनेवाले परब्रह्मके (नपात) पुत्ररूप अथवा (शृङ्गवृषोणपात) किरणोंकी वर्षा करने वाले आदित्यको अपनी धुरीपर स्थापन करनेवाले हे इंद्र ! (ते) तुम्हारा (प्रणपात) पूर्णरूपसे रक्षा करनेवाला (कुण्डपाय्यः) जिसमें कुण्डियोंसे सोमरस पियाजाता है ऐसा (यः) जो यज्ञ है (अस्मिन्) इस यज्ञमें (मनः) अपने अन्तःकरणको (आ नि दध्रे) ऋषियोंने लगाया ।३।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभँ सं गृभाय ।

३ १ २र

महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

ऋ० कुसीदीः । छ० गायत्री । दे०इंद्रः । अथ द्वितीयतृचे, प्रथमा । हे इंद्र ! त्वं महाहस्ती महाहस्तवान् तदानीमेव नः अस्मदर्थं क्षुमन्तं शब्दवन्तं स्तुत्यमित्यर्थः । चित्रं चायनीयं ग्राभं ग्राहकं ग्रहणार्थं वा धनं दक्षिणेन हस्तेन नु क्षिप्रं आ संगृभाय आभिमुख्येन संगृहाण ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (महाहस्ती) बड़े२ हाथों वाले तुम (नः) हमारे लिए (द्युमन्तम्) स्तुतियोग्य (चित्रम) विचित्र (ग्राभम्) ग्रहण करने योग्य धनको (दक्षिणेन) दाहिने हाथसे (संगृभाय) अभिमुख होकर ग्रहण करो

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् ।

३ १ २र

तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! त्वा त्वां विद्म हि जानीमः खलु । कीदृशम् ?—इति ! तुविकूर्मिं बहुकर्माणम्, तुविदेष्णं बहुप्रदेयं, तुविमघम् बहुधनं तुविमात्रं बहुप्रमाणम् अवोभिः रक्षणैर्युक्तम् ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (तुविकूर्मिम्) अनेकों पराक्रमवाले (तुविदेष्णम्) बहुत है देने योग्य सम्पदा जिनके पास ऐसे (तुवीमघम्) बहुत धनवान्

(तुविमात्रम्) बड़े आकारके (अवोभिः) रक्षाकी सामग्रियोंसे युक्त (त्वा) तुम्हें (विद्महि) जानते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २

न हि त्वा शूर देवा न मर्त्तासो दित्सन्तम् ।

३ २उ ३ १ २

भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे शूर ! दित्सन्तं दातुमिच्छन्तं त्वा त्वां देवाः न हि वारयन्ते न निवारयन्ति खलु तथा मर्त्तासः मनुष्या अपि न वारयन्ते भीमं न गां भयजनकम् दृप्तम् वृषभं यवसे प्रवृत्तमिव, तं यथा वारयितुं न शक्नुवंति तद्वत् ॥ ३ ॥

(शूर) शूर ! (दित्संतम्) देनेकी इच्छा करने वाले (त्वा) तुम्हें (देवाः) देवता (न) नहीं (मर्त्तासः) मनुष्य (न) नहीं (वारयंते) निवारण कर सकते हैं (हि) यह बात निश्चित है (न) जैसे (भीमम्) भयदायक (गाम्) बैलको, घास खानेको प्रवृत्त होने पर (न वारयंते) कोई भी वारण नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अभि त्वा वृषभा सुते सुतꣳ सृजामि पीतये ।

३ १ २ ३ १ २

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥

ऋ० त्रिशोकः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीयतृचे, प्रथमा- हे वृषभ ! हे इंद्र ! त्वा त्वां सुते सोमेऽभिषुते सति सुतम् अभिषुतम् सोमम् पीतये पानाय अभिसृजामि तृम्प तृप्य । मदम् मदकरम् सोमम् व्यश्नुहि च ॥ १ ॥

(वृषभ) हे मनोरथपूरक इंद्र ! (त्वा) तुम्हे (सुते) सोमका संस्कार होने पर (सुतम्) सोमरसको (पीतये) पीनेके लिए (अभि- सृजामि) आह्वान करता हूँ (तृम्प) तृप्त हो (मदम्) आनंद दायक सोम को (व्यश्नुहि) व्याप्त हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

१ २ ३ १ २
मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! त्वा त्वां मूराः मूर्खाः मूढाः मनुष्याः अविष्यवः पालनकामाः मा दभन् मा हिंसन्तु । उपहस्वानः उपहसनपराश्च मा भवन्तु । ब्रह्मद्विषं ब्राह्मणानाम् द्वेष्टारं मा कीं वनः मा भजेथा ॥ ब्रह्मद्विषं ब्रह्मद्विषः-इति पाठौ ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (त्वा) तुम्हें (मूराः) मूर्ख मनुष्य (अविष्यवः) पालन की इच्छा करते हुए (मा दभन्) दुःख न दें (उपहस्वानः, मा) उपहास करने वाले भी न हों (ब्रह्मद्विषम्) ब्राह्मणोंका द्वेष करने वाले को (मा कीं वनः) सेवन मत करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
इह त्वा गोपरीणसं महे मदन्तु राधसे ।
१ २ ३ १ २ र
सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! त्वा त्वाम् इह अस्मिन् यज्ञे गोपरीणसं गव्येन पयसा सम्मिश्रम् सोमम् महे महते राधसे धनाय मदन्तु मनुष्या मादयंतु । त्वञ्च सोमम् यथा गौरः मृगः सरः पिबति तथा पिब ॥ परीणसं परीणसा-इति पाठौ ॥ ३ ॥

हे इंद्र (त्वा) तुम्हें (इह) इस यज्ञमें (गोपरीणसम्) गौके दूध से मिले हुए सोम का (महे) बहुतसे (राधसे) धनके निमित्त (मदन्तु) मनुष्य अर्पण करके आनन्दित करें तुम उस सोमको (यथा) जैसे (गौरः) मृग (सरः) सरोवरके जलको पीता है तैसे (पिब) पियो ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
१ २ ३ १ २
अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः प्रियमेधो वा । छं०गायत्री । दे०इंद्रः । अथ चतुर्थ तृचे—प्रथमा । हे वसो ! वासयितरिन्द्र ! इदं पुरोवर्त्तमानं सुतम् अभिषुतम् अन्धः अन्नम् सोमलक्षणं पिब । यथा-उदरं त्वदीयं जठरं सुपूर्णम् अतिशयेन सम्पूर्णं भवति तथेत्यर्थः । हे अनाभयिन् आ समन्तात् बिभेति इत्याभयी बिभेतेरौणादिक इनिः न आभयी अनाभयी तादृश ! हे इंद्र ! ते तुभ्यं त्वदर्थं ररिम उक्तलक्षणं सोमं दद्मः रा दाने (अ०३।० प०) छान्दसो (३, २, १०५) लिट् ॥ १ ॥

(वसो) हे व्यापक इंद्र (इदम्) इस (सुतम्) संस्कार कियेहुए (अन्धः) सोम रसको (पिब) पियो (उदरं, सुपूर्णम्) जिससे कि तुम्हारा पेट पूर्णतया भर जाय (अनाभयिन्) किसीसे भय न करने वाले हे इंद्र (ते) तुम्हें (ररिम) वह सोम अर्पण करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । नृभिः अध्वरस्य नेतृभिः ऋत्विग्भिः धौतः तृणाद्यपनयनेन शोधितः यद्वा धौतः धूतः आधूतः अदाभ्यग्रहे आधूनेन संस्कृतः तदनन्तरम् अश्नैः अश्मभिर्ग्रावभिः करणभूतैः सुतः अध्वर्युभिष्षुतः ततः अव्यावारैः अविमेषः तत्सम्बन्धिभिः वालैः परिपूतः शोधितः दशापवित्रस्य नाभिपूततया ऊर्णास्तुकया हि सोमः परिपूयते तदुक्तम् भगवता आपस्तम्बेन—शुक्लामूर्णास्तुकाम् यजमानाय प्रयच्छति तां शकटे दशापवित्रस्य नाभिम् कुरुते शुक्लञ्च लक्ष्याः पवित्रमोतं भवति—इति । नदीषु नद्यनास्वप्सु अश्वो न अश्वः इव निक्तः निर्णिक्तः शोधितः यथा अप्सु स्नातो अश्वः अपगतमलः सन् दीप्तो भवति एवं वसतीवर्याख्याभिरद्भिरभिषुतः सोमो दीप्तो भवतीत्यर्थः । ईदृशो यः सोमः तन्ते यवम्-इत्युत्तरया सम्बंधः ॥ धौतः—धूत—इति पाठौ ॥ २ ॥

(नृभिः) ऋत्विजों करकैः (धौतः) तृण आदि दूर करके संस्कार किया हुआ (अश्नैः) पाषाणोंसे (सुतः) निचोड़ा हुआ (अव्यावारैः) ऊनके दशापवित्रसे (परिपूतः) छना हुआ (नदीषु) जलोंमें (अश्वः न) अश्वकी समान (निक्तः) निर्मल किया हुआ ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र त्वास्मिंत्सधमादे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । तं पूर्वोक्तगुणं सोमं, हे इन्द्र ! ते त्वदर्थं यवं यथा यवमयं सवनीय-पुरोडाशमिव गोभिः गविभवैः क्षीरादिभिः श्रपणद्रव्यैः श्रीणन्तः मिश्रीकुर्वन्तः स्वादु रसवत्त्वेनास्वादनीयम् अकर्म अकार्ष्म करोतेर्लुङि मन्त्रे घस (२, ४, ८०)—इति च्लेर्लुक् । यस्मादेवं तस्मात्, हे इन्द्र ! त्वा त्वां तादृशं सोमं पातुम् अस्मिन् वर्त्तमाने सधमादे सहमादने यज्ञे आह्वयामीति शेषः ॥ ३ ॥

(तम्) उस संस्कार किये हुए सोमको हे इंद्र ! (ते) तुम्हारे लिये (यवं यथा) यवके पुरोडाशकी समान (गोभिः) गौके दुग्धादिसे (श्रीणन्तः) मिलातेहुए (स्वादु) स्वाद लेने योग्य (अकर्म) किया है, इसकारण (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वा) तुम्हें उस सोमके पीनेको (अस्मिन) इस (सधमादे) यज्ञमें आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खंडः समाप्तः

३१ २र ३१ २
इदथ्ँ ह्यन्वोजसा सुतथ्ँ राधानां पते ।
२ ३ २ १ २
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । अथ तृतीयखण्डे–प्रथमतृचे, प्रथमा । हे राधसां पते ! धनानां स्वामिन् ! गिर्वणः गीर्भिः स्तुतिभिः वननीय ! हे इंद्र ! ओजसा बलेनाविहितः त्वम् इदम् अनु अनेनानुक्रमेण उद्देशानुक्रमेणेत्यर्थः, सुतम् अभिषुतम् अस्य इमं सोमं नु क्षिप्रं पिब हि ॥ १ ॥

(राधानां, पते) धनोंके स्वामी (गिर्वण) स्तुतियोंसे आराधन करने योग्य हे इंद्र ! (ओजसा) बलसे युक्त तुम (इदम्, अनु) इस क्रमसे (सुतम्) संस्कार किये हुए (अस्य) इस सोमको (नु) शीघ्र (पिब), पियो

२ ३ १२ ३१ २र ३१ २र ३क२र
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।
१ २
स त्वा ममत्तु सोम्य ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! ते त्वदर्थं यः सोमः स्वधाम् अन्नम् अनु अनु सृज्य ग्रावभिः अभिषुतः असत् भवेत् अस्तेर्लेट्यडागमः । यद्वृत्तयोगान्न निघातः (८, १, ६६) आगमस्यानुदात्तत्वे धातुस्वरः (६, १, १६२) सुते तस्मिन् सोमेतन्वं स्वकीयं शरीरं नियच्छ प्रेरय सः सोमः, हे सोम्य ! सोमार्ह ! त्वा त्वां ममत्तु मादयतु ॥ २ ॥

हे इंद्र (ते) तुम्हारे निमित्त (यः) जो सोम (स्वधाम् अनु) अन्नके अनुसार पाषाणोंसे संस्कारयुक्त (असत्) होता है (सुते) उस सोमके सुसिद्ध होने पर (तन्वम्) अपने शरीरको (नियच्छ) प्रेरणा करो (सोम्य) हे सोमके योग्य (सः) वह सोम (त्वा) तुम्हें (ममत्तु) आनन्द देय ॥ २ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
प्र बाहू शूर राधसा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! सः सोमः ते तव कुक्ष्योः कुक्षेरुभयोः पार्श्वयोः प्राश्नोतु प्रकर्षेण व्याप्नोतु अशू व्याप्तावित्यस्य (स्वा० आ०) लोटि व्यत्ययेन परस्मैपदम् (३, १, ८५) निघातः (८, १ ७०) तथा ब्रह्मणा स्तोत्रेण सहितः स सोमः शिरः शरीरम् अवयविना अवयवो लक्ष्यते त्वच्छरीरं प्राप्नोतु । हे शूर ! विक्रान्तेन्द्र !राधसा धनेन निमित्तेन तव बाहू अपि प्राप्नोतु । राधसा-राधस-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (सः) वह सोम (ते) तुम्हारी (कुक्ष्योः) दोनों कोखोंमें (प्राश्नोतु) पूर्णरूपसे व्याप्त होय तथा (ब्रह्मणा) स्तोत्र सहित वह सोम (शिरः) तुम्हारे शिर आदि शरीरमें प्राप्त होय (शूर) हे पराक्रमी ! (राधसा) धनके निमित्त (बाहू) तुम्हारी बाहुओंको भी प्राप्त होय ॥ ३ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
१ २ ३ १ २
सखाय स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

ऋ० मधुश्छन्दः छ० गायत्री । दे० इंद्रः अथ द्वितीयतृचे प्रथमा तु शब्दः क्षिप्रार्थो निपातः द्वाभ्यामाङ्भ्याम् अन्वेतुम् इति शब्दोऽभ्यसनीयः । हे सखायः ! ऋत्विजः ! क्षिप्रम् अस्मिन् कर्मणि आगच्छत् आगच्छतः आदरार्थोऽभ्यासः । आगत्य च निषीदत उपविशत । उपविश्य च इंद्रम् अभिप्रगायत सर्वतः प्रकर्षेण स्तुत । कीदृशाः सखाय ? स्तोमवाहसः त्रिवृत्पञ्चदशादिस्तोमानस्मिन् कर्मणि वहन्ति प्रापयंतीति ॥ अर्त्ति-स्तु-सु-हु-सृ-धृ-क्षि-क्षु-भा-या-वा-पदि यक्षि-नीभ्यो मन् (उ० १, १३७)-इति स्तौतेर्मन्-प्रत्ययान्तः स्तोमशब्दो नित्वादाद्युदात्तः (६,१, १९७) । स्तोमं वहन्तीति स्तोमवाहसः वहि-हा-धाञ् वृभ्यश्छन्दसि--इत्यसुन् प्रत्ययः तत्र णिदित्यनुवृत्तेः अत उपधायाः (७, २, ११६) इत्युपधाया वृद्धिः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे (६, २, १३९) प्राप्ते गतिकारकयोरपि पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च (उ०, ४, २२६) इत्यौणादिकसूत्रात् समास आद्युदात्तः ॥ १ ॥

(स्तोमवाहसः) इस कर्ममें त्रिवृत् पञ्चदश आदि स्तोमोंको पहुँचानेवाले (सखायः) हे ऋत्विजो ! (तु) शीघ्र, (आ एत) इस कर्म में आओ (निषीदत) विराजो और (इंद्रम्, अभिप्रगायत) इन्द्रके निमित्त सामगान करो ॥ १ ॥

३ १२ ३ १ २र ३ १ २ २ ३
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रꣳ
२ ३ १ २ ३ २
सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। सखायोऽभिप्रगायतेति पदद्वयमत्रानुवर्त्तते। हे सखाय ऋत्विजः ! सचा यूयं सर्वे सह यद्वा सचा परस्परसमावयेन सुतःअभिषुते सोमे प्रवृत्ते सति इंद्रम् अभिप्रगायत। कीदृशमिन्द्रम् ? पुरूतमं पुरून् बहून् शत्रून् तमयति ग्लापयतीति पुरूतमः। तमु ग्लानौ (दि०, प०)-इति धातोर्ण्यन्तात् पचाद्यचि , चित्वान्तोदात्तेऽपि (६, १, १६३) कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरं (६, २, १३) बाधित्वा परादिश्छन्दसि बहुलम् ६, २, १९९)—इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् पुरूणां बहूनां वार्याणां वरणीयानां धनानाम् ईशानं स्वामिनम् ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो (सचा) इकट्ठे होकर (सुते) सोमका संस्कार होते समय पुरूतमम्) अनेकों शत्रुओं का नाश करनेवाले (पुरूणाम्) बहुत से (वार्याणाम्) धनोंके (ईशानम) स्वामी (इंद्रम्) इंद्रको स्तुति करो

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्या।
२ ३ १ २ ३ १ २र
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। घ—शब्दोऽवधारणार्थो निपातः सर्वैस्तच्छब्दैः सम्बध्यते। स घ स एवेन्द्रः पूर्वमन्त्रोक्तगुणविशिष्टः नः अस्माकं योगे पूर्वमप्राप्तपुरुषार्थस्य सम्बन्धे आ भुवत् आभिमुख्येन भवतु पुरुषार्थं साधयत्वित्यर्थः। भवतेर्गार्लिङि परतो लिङ्याशिष्यङ् (४, १, ८६) इत्यङ्प्रत्ययः, तस्य ङित्वेन गुणाभावात् उवङादेशः। स एव राये धनार्थम आभुवत् आभवतु पुरन्ध्या योषित्या भुवत्। यद्वा बहुविधायां बुद्धावाभुवत् पुरन्धिर्बहुधीः-इति यास्कः (६,१३) स एव वाजेभिः देयैः अन्नैः सह नः अस्मान् आगमत् आगच्छतु गमेर्लेट् तिप् इतश्च लोपः परस्मैपदेषु (३, ४, ९७)-इति इकार-लोपः बहुलं छन्दसि । (२, ४,

७३)—इति शपो लुक् लेटोडाटौ (३, ४, ९४) इत्यडागमः आगमा अनुदात्ताः इति तस्यानुदात्तत्वे धातुस्वर एव (६, १, १६२) शिष्यते३

(स घ) वह इंद्र ही (नः) हमारे (योगे) नवीन पुरुषार्थ विषय में (आ भवत्) अभिमुख हो अर्थात् हमारे पुरुषार्थको सिद्ध करे (सः) वह (राये) हमारी धनप्राप्तिमें अभिमुख हो (सः) वह (पुरन्ध्या) स्त्रीकी प्राप्ति वा अनेकों प्रकारकी बुद्धिकी प्राप्तिमें अभिमुख हो (सः) वह (वाजेभिः) देनेयोग्य अन्नोंके साथ (नः आगमत्) हमारे सन्मुख आवें ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
योगेयोगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीयतृचे प्रथमा योगेयोगे प्रवेशे तत्तत्कर्मोपक्रमे युजिर योगे (रु० उ०) हलश्च (३, ४, १२१)-इति उञ् चजोः कुघिण्यतोः (७, ३, ५२)—इति कुत्वम् घञो ञित्वादाद्युदात्तत्वम् (६, २, १९७) नित्यवीप्सयोः (८, १, ४) इति वीप्सायां द्विर्भावे सति आम्रेडितानुदात्तम् (८, १, ३) वाजे वाजे कर्म्मविघातनि तस्मिन् संग्रामे तवस्तरम् अतिशयेन बलिनम् इंद्रम् ऊतये रक्षार्थं सखायः सखिवत् प्रियाः वयं हवामहे आह्वयाम ॥ १ ॥

(सखायः) मित्रकी समान प्रिय हम (योगे योगे) प्रत्येक कर्मके आरंभकालमें (वाजे वाजे) विघ्नकर्त्ताओंके साथ प्रत्येक संग्राममें (तवस्तरम्) अत्यंत बलवान् (इंद्रम्) इंद्रको (ऊतये) रक्षाके लिये (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । प्रत्नस्य पुरातनस्य ओकासः स्थानस्य स्वर्गरूप सकाशात् तुविप्रतिं बहून् यजमानान् प्रतिगन्तारम् अत्र प्रतिशब्दो भीमसेनो भीम इतिवत्प्रतिगन्तृशब्दं लक्षयित्वा तद्द्वारा तदर्थं लक्षयति अतः प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोरितिवत् सत्यवचनान्निपात

त्वादनव्ययत्वे पूरणगुणेत्यादिना (२, २, ११) न षष्ठी-समासनिषेधः। नरं पुरुषमिन्द्रम् अनुहुवे अनुक्रमेण कर्म्मस्वाह्वयामि ह्वो लिटि बहुलं छन्दसि (६, १, ३४)—इति पूर्ववत्॥ सम्प्रसारण-परपूर्वत्वे द्विर्वचन—प्रकरणे छन्दसि वा (६, १, १ वा०)—इति वक्तव्यमिति द्विर्वचनाभावः । यद्वृत्तयोगादनिघातः (८, १ ६६) यम् ते त्वामिन्द्रम् पिता अस्मदीयो जनकः पूर्वं पुरा स्वकीयानुष्ठानकाले हुवे आहूतवान् तमाह्वयामीति पूर्वत्रान्वयः ॥ २ ॥

(प्रत्नस्य) पुरातन (ओकसः) स्वर्गरूप स्थानसे (तुविप्रतिम्) अनेकों यजमानोंके समीप आने वाले (नरम्) इंद्र पुरुषको (अनुहुवे) क्रमसे कर्मोंमें आह्वान करता हूँ (यं ते) जिन तुम इंद्रको (पिता) हम रे पिताने (पूर्वम्) पहिले अपने अनुष्ठानके समय (हुवे) आह्वान किया था

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।

१ २ ३ १ २ ३ १२

वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । यदि श्रवत् यद्ययमिन्द्रो नः अस्मदीयम् हवं आह्वानं शृणुयात्, तदानीं स्वयमेव सहस्रिणीभिः ऊतिभिः बहुभिः पालनैः वाजेभिः अन्नैश्च उप समीपे आ घ अवश्यम् आगमत् आगच्छेत् ॥३॥

(यदि) जो यह इंद्र (नः) हमारे (हवम्) आह्वानको (श्रवत्) सुनै, तो स्वयं ही (सहस्रिणीभिः ऊतिभिः सह) सहस्रों रक्षाके साधनों सहित (वाजेभिः) अन्नों सहित (उप) समीपमें (आ घ) अवश्य ही (आ गमत्) आवै ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३उ २र

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

विदे वृधस्य दक्षस्य महाँहि षः ॥ १ ॥

ऋ० नारदः । छ० उष्णिक् । दे० इंद्रः । अथ चतुर्थतृचे प्रथमा । सोमेषु सुतेषु अभिषुतेषु सत्सु हे इंद्र ! त्वं तान् पीत्वा क्रतुं कर्मणां कर्त्तारम् उक्थ्यं स्तोतारञ्च पुनीषे शोधयसि । यद्वा सोमेष्वभितेषु उक्थ्याख्यं क्रतुं यागं तैः सोमैः पुनीषे यजमानैः पूतं कारयसि । किमर्थम् ? वृधस्य वर्द्धकस्य दक्षस्य बलस्य विदे लाभाय सः तादृशस्त्वं महान् हि खलु,

अत एवं कर्त्तुं शक्नोषीत्यर्थः । इंद्र सतेषु इंद्र सुतेषु—इति, पुनीषे पुनीते-इति, दक्षस्य महाँ हिषः-दक्षसो महान्हिषः-इति च पाठौ १

(इंद्र) हे इंद्र (सोमेषु सुतेषु) सोमोंका संस्कार होने पर तुम उनको पीकर (वृधस्य, दक्षस्य, विदे) वृद्धि करने वाले बलकी प्राप्ति के लिए (क्रतुम्) कर्मकर्त्ताको (उक्थ्यम्) स्तोताको (पुनीषे) शुद्ध करते हो (सः) ऐसे तुम (महान् हि) अवश्य ही पूज्य हो ॥ १ ॥

१ २३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
स प्रथमे व्योमनि देवानथ्ँ सदने वृधः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सः इंद्रः प्रथमे प्रथिते विस्तीर्णे मुख्ये वा व्योमनि विशेषेण रक्षके च देवानां सदने सीदन्त्यस्मिन्निति सदनं स्थानं स्वर्गाख्यं तत्र स्थितः सन् वृधः यजमानानाम् वर्द्धयिता च भवति । तथा सुपारः सुष्ठु पारयिता प्रारब्धस्य सम्यक् परिसमापयिता सुश्रवस्तमः अतिशयेन शोभनं श्रवोऽन्नं यशो वा यस्य स तथोक्तः, समप्सुजित् सम्यक् अप्सुदकेषु प्राप्येषु सत्सु यत् तद्विघातनो वृत्रादेर्जेता, यद्वा आप इत्यन्तरिक्षनाम (नि० १, ३, ८) अन्तरिक्षे वर्त्तमानानामसुराणां जेता तमु हुवे इत्युत्तरत्र सम्बंधः ॥ २ ॥

(सः) वह इंद्र (प्रथमे) विस्तीर्ण वा मुख्य (व्योमनि) विशेष रूपसे रक्षक (देवानां, सदने) देवताओंके स्थान स्वर्गमें स्थित हो कर (वृधः) यजमानोंको बढ़ाने वाला (सुपारः) सुन्दरताके साथ प्रारब्धकर्मोंकी समाप्ति करने वाला (सुश्रवस्तमः) परमोत्तम अन्न वाला (समप्सुजित्) जो प्राप्तव्य जलका विनाश करने वाले वृत्रासुर को जीतने वाला है उसका ही आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । तमु पूर्वोक्तगुणमेव शुष्मिणं बलवन्तम् इंद्रं वाजसातये बलानामन्नानां वा सातिर्लाभो यस्मिन् तादृशाय भराय संग्रामाय यद्वा भ्रियन्ते तस्मिन् हवींषीति भरो यज्ञः प्रायेण संग्रामनामानि यज्ञनामत्वेन च दृश्यन्ते भराय यज्ञार्थं हुवे आह्वयामि । हे इंद्र ! त्वं सुम्ने

सुखे धने वा लिप्सिते सति नः अस्माकम् अन्तमः अन्तिकतमः सन्निकृष्टतमो भव तमेतादेश्चे ति अन्तिकशब्दस्य तादि लोपः वृधे वर्द्धनार्थञ्च सखा समानख्यानो मित्रभूतो भव ॥ तमुहुवे—तमुह्वे—इति पाठौ ॥३॥

(तमु) उस ही (शुष्मिणम्) बलवान् (इंद्रम्) इंद्रको (वाजसातये) जिसमें अन्न मिलता है ऐसे (भराय) यज्ञके लिए (हुवे) आह्वान करता हूँ। हे इंद्र ! तुम (सुम्ने) सुख वा धनको पानेकी इच्छा होने पर (अन्तमः) हमारे परम समीप (भव) होओ (वृधे) वृद्धिके निमित्त भी (सखा) मित्ररूप होओ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

३१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
३१ २र ३१ २ ३१ २र ३२३१२
प्रियं चेतिष्ठमरतिथ्ँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् १

ऋ० वसिष्ठः । छ० बृहती । दे० अग्निः । अथ चतुर्थे खण्डे प्रगाथरूपे-प्रथमसूक्ते प्रथमा । ऊर्जः बलस्य नपातं नपादित्यपत्यनाम (निघ० २, २, १३) पुत्रम् प्रियम् अस्माकम् चेतिष्टम् अतिशयेन ज्ञातारम् प्रज्ञापकं वा अरतिं गन्तारम् स्वामिनं वा स्वध्वरं शोभनयज्ञं विश्वस्य सर्वस्य यजमानस्य दूतम् अमृतं नित्यम् अग्निम् एना एतेन नमसा स्तोत्रेण हे ऋत्विग्यजमानाः ! वः युष्मदर्थम् आहुवे आह्वयामि ॥ १ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः) तुम्हारे लिए (एना, नमसा) इस स्तोत्रसे (ऊर्जः) बलके (नपातम्) पुत्र रूप (प्रियम्) हमारे अनुकूल (चेतिष्टम्) परम चेतना देने वाले (अरतिम्) स्वामी (स्वध्वरम्) श्रेष्ठ यज्ञ वाले (विश्वस्य) सकल यजमानोंके (दूतम्) दूत (अमृतम्) नित्य (अग्निम्) अग्निको (आहुवे) आह्वान करता हूँ॥१॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
स योजते अरुषा विश्व भोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवथ्ँ राधो जनानाम् २

अथ द्वितीया। सः अग्निः अरुषा आरोचमानौ विश्वभोजसा विश्वस्य पालयितारावश्वौ योजते स्वकीये रथे युनक्तु । यद्वा विश्वभोजसा विश्वस्य रक्षकेण अरुषा आरोचमानेन तेजसा योजते अयुज्यत तदनन्तरं यः अग्निः स्वाहुतः स्तोतृभिः सुष्ठु आहूतः सन् दुद्रवत् आनत्

देवान् प्रति भृशं द्रवतु । कीदृशः ? सुब्रह्मा शोभनस्तुतिकः शोभना न्नोवा यज्ञः यष्टव्यः सुशर्मा शोभनकर्मा च भवति ततः वसूनां वास-कानां जनानां यजमानानां सम्बन्धि राधः हविर्लक्षणं धनं देवं द्योत-मानमग्निम्प्रति गच्छत्विति शेषः ॥ २ ॥

(सः) वह अग्नि (अरुषा) दिपते हुए (विश्वभोजसा) विश्वका पालन करने वाले अश्वोंको (योजते) अपने रथमें जोड़ै । तदनन्तर (सुब्रह्मा) श्रेष्ठ अन्न वाला (यज्ञः) यजन यग्य (सुशर्मा) श्रेष्ठ कर्म वाला अग्नि (स्वाहुतः) सम्यक् प्रकारसे होमा हुआ (दुद्रवत) देव-ताओंको लानेक शीघ्रतासे जाय । तदनन्तर (वसूनाम्) यजमानोंका (राधः) हविरूप धन (देवम्) अग्निदेवको प्राप्त हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ २
प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी

ऋ० वसिष्ठः । छ० बृहती । दे० उषाः । अथ द्वितीयप्रगाथे-प्रथमा आयती आगच्छती उच्छती तमांसि विवासयन्ती वर्जयन्ती दिवः द्युलो-कस्य सूर्य्यस्य वा दुहिता पुत्री एवम्भूता उषाः प्रति अदर्शि सर्वैः प्रति दृश्यते । उ-इति पूरणः सैषा मही महत् तमः नैशमन्धकारम् चक्षुषा दर्शनेन । अप उ-इति निपातद्वयसमुदायः अपेत्यर्थे । वृणुते निवार-यति । एवं कृत्वा सूनरीजनानां सुष्ठुनेत्री उषाः ज्योतिः प्रकाशं कृणोति करोति ॥ वृणुते चक्षुषा—ऽयतिचक्षुषे—इति पाठौ ॥ १ ॥

(आयती) आती हुई (उच्छन्ती) अंधकारोंको दूर करतीहुई (दिवः) द्युलोककी (दुहिता) पुत्री (उषाः) उषा (प्रति अदर्शि) सबने देखी (उ) और वह (मही) बड़े (तमः) रात्रिके अन्धकारको (चक्षुषा) दर्शनसे (अप-उ-वृणुते) निवारण करती है (सूनरी) प्राणियोंको श्रेष्ठ प्रेरणा करने वाली उषा (ज्योतिः) प्रकाशको (कृणोति) करती है॥१॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि २

अथ द्वितीया । सूर्य्यः सर्वस्य प्रेरकः आदित्यः उस्रियाः रश्मीन् सचा सह युगपदेव उत्सृजते उद्गमयति । तथा उद्यन् उद्गच्छन् प्रादु-र्भवन् नक्षत्रं नभसि दृश्यमानं ग्रहनक्षत्रादिकम् अर्चिवत् दीप्तिमत्

करोति, सौरेण तेजसा हि नक्तं चन्द्रप्रभृतीनि नक्षत्राणि भासन्ते, सुषुम्नः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः—इति हि निगमान्तरम्। एवञ्च सति हे उषः! उषोदेवते! तव सूर्य्यस्य च व्युषि दिवासने प्रकाशने सति भक्तेन अन्नेन सङ्गमेमहि वयं गच्छेमहि। इत् शब्दः पूरकः॥ २॥

(सूर्यः) सबका प्रेरक आदित्य (उस्रियाः) किरणोंको (सचा) एकसाथ (उत्सृजते) प्रकाशित करता है तथा (उद्यत्) उदय होता हुआ (नक्षत्रम्) आकाशमें दीखनेवाले ग्रह नक्षत्रादिको (अर्चिवत्) प्रकाशयुक्त करता है अर्थात् सूर्यके तेजसे ही रातमें चन्द्रमा तारागण आदि प्रकाश करते हैं ऐसा होने पर (उषः) हे उषा देवता! (तव) तेरा (सूर्य्यस्य च) सूर्य्यका भी (व्युषि) प्रकाश होनेपर हम (भक्तेन) अन्नसे (सङ्गमेमहि, इत्) अवश्य ही संयुक्त हों॥ २॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना। अयं
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशꣳ हि गच्छथः॥१॥

ऋ० वसिष्ठः। छ० बृहती। दे० अश्विद्वयः। अथ तृतीये प्रगाथे-प्रथमा। इमाः दिविष्टयः दिवमिच्छन्त्यः प्रजा ऋत्विजोऽपि उ—इति चार्थे, हे अश्विना! उस्रा उस्रौ वासकौ वां हवन्ते आह्वयन्ति अयं स्तोतापि हे शचीवसो! कर्म्मधन! वां युवाम् अवसे अस्मद्रक्षणाय युवयोस्तर्पणाय वा अह्वे आह्वयामि। किमर्थम्? एवं प्रजा अपि, अयमपीत्यादरोक्तिरिति विशं विशं हि गच्छथः सर्वाः स्तुतिकर्त्रीः प्रजाः प्रति युवां गच्छथः खलु, तस्मादेवमुच्यते इति॥ १॥

(इमाः) यह (दिविष्टयः) स्वर्गकी इच्छा करनेवाली प्रजाएँ (उ) और ऋत्विज् भी (अश्विना) हे अश्विनी कुमारो! (उस्रौ) व्यापक (वाम्) तुम दोनोंको (हवन्ते) आह्वान करते हैं (शचीवसो) हे कर्मधन (अयम्) यह स्तोता भी (वाम्) तुम दोनोंको (अवसे) हमारी रक्षाके लिये वा तुम्हे तृप्त करनेके निमित्त (अह्वे) आह्वान करता हूँ (विशं, विशं, हि, गच्छथः) तुम स्तुति करनेवाली सब प्रजाओंके समीप अवश्य ही जाते हो॥ १॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथाꣳ सूनृतावते।
२ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अर्वाग्रथꣳ समनसा नियच्छतं पिबतꣳ सोम्यं मधु २

अथ द्वितीया । हे नरा ! नेतारावश्विनौ युवं युवां चित्रं चायनीयं भोजनं धनं दद्थुः धारयथे, तद्धनं सूनृतावते स्तुतिमते स्तोत्रे चोदेथां प्रेरयतम्, तदर्थं समनसा समानमनस्कौ सन्तौ रथं युवयोः सम्बन्धिनम् अर्वाग् अस्मदभिमुखं नियच्छतं नियमयतम्, तथा कृत्वा सोम्यं सोमसम्बधिनं मधु मधुरसञ्च पिबतम् ॥ २ ॥

(नरा) हे प्रेरक अश्विनीकुमारों ! (युवम्) तुम दोनों (चित्रम्) विचित्र प्रकारके (भोजनम्) धनको (दद्थुः) धारण करतेहो, वह धन (सूनृतावते) स्तुति करनेवालेको (चोदेथाम्) प्रेरित करो, इस कार्य के लिये (समनसा) एकमन होतेहुए (रथम्) अपने रथको (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (नियच्छतम्) थमाओ और (सोम्यम्) सोमके (मधु) मधुर रसको (पिबतम्) पियो ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अस्य प्रत्नामनु द्युतँ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।

१ २ ३ १ २र

पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ पञ्चमखण्डे-अस्यप्रत्नेति नवर्चसूक्ते प्रथमा । अस्य सोमस्य प्रत्नां पुरातनां द्युतं द्योतमानां तनुम् अनु शुक्रं दीप्तं सहस्रसाम् अभिलषितस्य अपरिमितस्य फलस्य दातारम् ऋषिम् अतीन्द्रियकर्मफलद्रष्टारं पयः पातव्यम् अह्रयः कवयः दुह्रे दुहन्ति ॥ १ ॥

(अस्य) सोमके (प्रत्नाम्) पुरातन (द्युतम्) दिपते हुए शरीर को (अनु) लक्ष्य करके (शुक्रम्) दीप्त (सहस्रसाम्) सहस्रों अभिलाषाओंके फलको देनेवाले (ऋषिम्) अतींद्रिय कर्मफलके द्रष्टा (पयः) पीने योग्य रसको (अह्रयः) कवि (दुह्रे) दुहते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २र

अयँ सूर्य इवोपदृगयँ सराँसि धावति ।

३ २ ३ २ ३ १ २र

सप्त प्रवत् आ दिवम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयं सोमः सूर्य इव यथा सूर्यः सर्वस्य लोकस्य उपद्रष्टा तथा कर्म्मणाम् उपदृक उपद्रष्टा अपि च अयं सोमः सरांसि त्रिंशत् उक्थपात्राणि-इति केचिद् वदन्ति अपरे तु त्रिंशदहोरात्राणि सरांसीति तानि धावति प्रतिगच्छति । तथा च यास्कः-तमेतद् याज्ञिका

वेदयन्ते त्रिशदुक्थपात्राणि माध्यन्दिने सवने एकदेवतानि तानि एतस्मिन् काले एकेन प्रतिधानेन पिबन्ति, तान्यत्र सरांस्युच्यन्ते—त्रिंशदपरपक्षस्य अहोरात्राः त्रिंशत् पूर्वपक्षस्येति नैरुक्ताः (५, ११) इति अपि च अयं सोमः दिवम् अधिकृत्य सप्त प्रवते सप्त नदीरातिष्ठति २

(अयम्) यह सोम (सूर्य इव) जैसे सूर्य सब लोकोंका द्रष्टा है तैसे (उपदृक्) कर्मों का द्रष्टा है और (अयम्) यह सोम (त्रिंशत्, धावति) तीस पात्रोंको अथवा तीस अहोरात्रोंको प्राप्त होता है और यह सोम (आदिवम) द्युलोकमें (सप्त प्रवते) सात प्रवाहों मे पहुँचता है

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।

१ २ ३ १ २र

सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। पुनानः पूयमानः अयं सोमः विश्वानि सर्वाणि भुवना भुवनानि सर्वेषां भुवनानाम् उपरि तिष्ठति। तत्र दृष्टान्तमाह—देवो न सूर्य्यः यथा सूर्य्यो देवः सर्वेषां भुवनानाम् उपरि तिष्ठति तद्वत् अयं सोमोऽपीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(पुनानः) पवित्र कियाजाता हुआ (अयं सोमः) यह सोम (विश्वानि भुवना) सकल भुवनोंके (उपरि, तिष्ठति) ऊपर विराजमान होता है (देवो न सूर्यः) जैसे कि—सूर्यदेव सब लोकोंके ऊपर विराजमान होते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।

१ २ ३ १ २

हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः। छं० गायत्री। दे० सोमः। अथ चतुर्थी। हरिः हरितवर्णः देवः द्योतमानः एषः सोमः प्रत्नेन पुराणेन जन्मना जननेन देवेभ्यः देवार्थं सुतः अभिषुतः सन् पवित्रे अर्षति आरोचते ॥ १ ॥

(हरिः) हरे वर्णका (देवः) दिपता हुआ (एषः) यह सोम (प्रत्नेन) पुरातन (जन्मना) उत्पत्तिसे (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (सुतः) संस्कार किया हुआ (पवित्रे) दशापवित्रमें (अर्षति) प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कवि-
२र
र्विप्रेण वावृधे ॥ २ ॥

अथ पञ्चमी । प्रत्नेन पुराणेन मन्मना साधनेन स्तोत्रेण युक्त इति शेषः । देवः द्योतमानः एषः सोमः देवेभ्यः देवार्थं कविः मेधावी सन् विप्रेण मेधाविना यजमानेन ऋत्विजा परिवावृधे परिवर्द्धते ॥ २ ॥

(प्रत्नेन) पुरातन (मन्मना) स्तोत्ररूप साधन करके (देवः) द्योतमान (एषः) यह सोम (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (कविः) मेधावी होता हुआ (विप्रेण) विवेकी यजमान और ऋत्विजके द्वारा (परिवावृधे) बढ़ता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परिषिच्यसे ।
१ २ ३ १ २
क्रन्दं देवाँ अजीजनः ॥ ३ ॥

अथ षष्ठी । प्रत्नमित् पुराणमेव पयः रसं दुहानः हे सोम ! पवित्रे परिषिच्यसे हे सोम ! त्वं क्रन्दन् शब्दं कुर्वन् देवान् इंद्रादीन् अजीजनः स्वसमीपे जनयति । यत्र सोमोऽभिषूयते तत्र देवा नियतं प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः । अजीजनः अजीजनत्-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(प्रत्नमित्) पुरातन ही (पयः) रसको (दुहानः) पात्रमें पूर्ण करता हुआ तू हे सोम ! (पवित्रे) दशापवित्रमें (परिषिच्यसे) टपकाया जाता है हे सोम ! तू (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (देवान्) इंद्रादि देवताओंको (अजीजनः) अपने समीपमें प्रकट करता है अर्थात् जहां सोमका संस्कार होता है तहां देवता अवश्य ही प्रकट होते हैं ३

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे ।
१ २ ३ २ ३ २
पवमान विदा रयिम् ॥ १ ॥

ऋ० असितः देवलो वा । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ सप्तमी । हे पवमान ! सोम ! उपशिक्ष त्वं समीपं कुरु । कान् ? उपतस्थुषः उपक्रम्य स्थितानस्मदभिमतानित्यर्थः । शत्रवे शत्रुषु अस्मद्विरोधिषु

भियसं भयम् आधेहि कुरु जय। किञ्च तेषां शत्रूणां रयिं धनं विदाः अस्मभ्यं विद्धि देहीत्यर्थः ॥ १ ॥

(पवमान) हे सोम (उपतस्थुषः) हमारे इच्छित पदार्थोंको (उपशिक्षा) हमारे समीप पहुँचाओ (शत्रवे) हमारे विरोधियोंमें (भियसम्) भयको (आधेहि) स्थापन करो अर्थात् हमारी विजय करो (रयिम्) शत्रुओंके धनको (विदाः) हमें दो ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् ।

१ २ ३ १ २

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ २ ॥

अथ अष्टमी-नवम्योर्ऋचोः प्रतीकमेवमाम्नातम्-उपशुजातमप्तुरम्-इति, उपास्मै गायता नरः-इति च। तेष्वष्टमी प्रदेशान्तरे आम्नाता— जातं सम्यक् प्रादुर्भूतम् अप्तुरम् वसतीवरीभिः अद्भिः प्रेरितम् भङ्गं शत्रूणां भञ्जकम् गोभिः गोर्विकारैः पयाभिः परिष्कृतम् अलंकृतं संस्कृतम् इन्दुं सोमं देवाः इन्द्रादयः उप उ-इति निपातद्वयसमुदायः उपेत्यस्यार्थे वर्त्तते सुष्ठु उप अयासिषुः उपागच्छन्ति ॥ २ ॥

(जातम्) भले प्रकारसे प्रकट हुए (अप्तुरम्) वसतीवरी जलोंके प्रेरणा करे हुए (भङ्गम्) शत्रुओंको नष्ट करनेवाले(गोभिः)गोदुग्ध आदिसे (परिष्कृतम्) संस्कार किये हुए (इन्दुम्) सोमको(देवाः) इंद्रादि देवता (उप-अयासिषुः) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १:२ ३ १ २

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।

३ २ ३ १ २र

अभि देवाँ इयक्षते ॥ ३ ॥

नवमीत्वेवमन्यत्राम्नाता-हे नरः! नेतारः ! यज्ञस्य देवान् इंद्रादीन् अभि इयक्षते आभिमुख्येन यष्टुमिच्छते यजमानाय क्षरते अस्मै अभिपूयमाणाय इन्दवे सोमाय उपगायत उपगानं कुरुत ॥ ३ ॥

(नरः) ऋत्विज (देवान्) इन्द्रादि देवताओंको (अभि इयक्षते) अभिमुख होकर यजन करना चाहते हैं (पवमानाय) यजमानके निमित्त संस्कार किये जाने हुए (अस्मै) इस (इंदवे) सोमके अर्थ (उपगायत) सामगान करो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ २३ १ २ ३१२
प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः।
१२ ३१ २
वनानि महिषा इव ॥ १ ॥

ऋ० आप्त्यः त्रितो वा। छ० गायत्री। दे० सोमः। षष्ठे खण्डे-प्रथमतृचे प्रथमा। विपश्चितः मेधाविनः ऊर्मयः प्रवृद्धाः सोमासःसोमाः अपः वसतीवर्याख्याः प्र नयन्ते प्राप्नुवन्ति। तत्र दृष्टांतः—वनानि महिषा इव यथा प्रवृद्धा मृगा वनानि प्राप्नुवंति तद्वत्। अपो नयंते-अपां नयन्ति-इति पाठौ॥ १॥

(विपश्चितः) मेधावी (ऊर्मयः)बढे हुए (सोमासः) सोम(आपः) वसतीवरी जलोंको (प्रनयन्ते) प्राप्त होते हैं (वनानि, महिषा इव) जैसे कि बढ़े हुए मृग वनको प्राप्त होते हैं॥ १॥

३ १ २र ३१२ ३२ ३२ ३ १ २
अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया।
२ ३ १ २
वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। अभि क्षरंतीति शेषः अभि शब्दश्रुतेरुचित-क्रियाध्याहारः। किं प्रति? द्रोणानि द्रोणकलशान् यद्यपि द्रोणकलश एक एव तथापि तत्प्राधान्यादितराण्यपि पात्राणि द्रोणानीत्युच्यंते। अथवा एकस्मिन्नेव पूजार्थं बहुवचनम्। के बभ्रवः बभ्रुवर्णाः सोमाः शुक्राः दीप्ताः केन प्रकारेण? ऋतस्य अमृतस्य धारया धाराकारेण। किञ्च वाजम्, अन्नं गोमंतं बहुगोयुक्तम् अक्षरन् क्षरन्ति अथवैकमेव वाक्यम्, उक्तविधाः सोमाः द्रोणानि प्रति अक्षरन् धारया। किं कुर्वंतः? गोमंतं वाजं प्रयच्छन्त इत्यर्थः। कस्मै प्रयोजनाय?॥ २॥

(बभ्रवः)बभ्रुवर्णके (शुक्राः) दिपते हुए सोम (ऋतस्य) अमृत की (धारया) धारारूपसे (द्रोणान्) द्रोणकलशादि पात्रोंमें (गोमन्तम्) गौओंसहित (वाजम) अन्नको देते हुए(अभ्यक्षरन्)टपकते हैं

३१ २र ३२३ १२ ३१२
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
१२ ३ १ २
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। सुताः अभिषुताः सोमाः इन्द्रादिदेवार्थम् अर्षन्तु गच्छन्तु। अर्षन्तु—अर्षन्ति—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सुताः) संस्कार किये हुए (सोमाः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (वायवे)वायुके अर्थ (वरुणाय) वरुणके अर्थ (मरुद्भ्यः) मरुतोंके अर्थ (अर्षन्तु) प्राप्त हों ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २

अꣳशो पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं

३ १ २

मधुश्चुतम् ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः। छ० बृहती। दे० सोमः। अथ प्रगाथात्मके-द्वितीय-सूक्ते प्रथमा। हे सोम ! त्वं देववीतये देवानां पानाय तदर्थम् अर्णसा वसतीवर्याख्येन प्रपिप्ये प्रप्यायसे। तत्र दृष्टान्तः—सिन्धुः न यथा सिन्धुः उदकेन प्रपिप्ये प्राप्यायते तद्वत् प्यायते। लिटि लिड्यङोश्च (६,१,२९) इति पी-भावः स त्वं मदिरो न मदकरः सुरादिरिव जागृविः जागरण-शीलः। यद्वा नेति सम्प्रत्यर्थे। इदानीं मदकरो जागरणशीलस्त्वम्। अंशोः लताखण्डस्य पयसा रसेन मधुश्चुतं मधुर-रसस्य क्षारयितारं कोशं द्रोणकलशम् अच्छ अभि गच्छसि ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! तू (देववीतये) देवताओंके पीनेके लिए(अर्णसा) वसतीवरी जलसे (सिन्धुः, न) जैसे सिंधु जलसे पूर्ण होता है वैसे (प्रपिप्ये) पूर्ण होता है, वह (मदिरो न) मदकारी वस्तुकी समान (जागृविः) जागरणशील तू (अंशोः) लताके टुकड़ेके (पयसा) रससे (मधुश्चुतम्) मधुर रसको वहानेवाले (कोशं, अच्छ) द्रोण-कलशमें प्राप्त होओ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १

आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न

२र १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १

मर्ज्यः। तमीꣳ हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा-

२र

गभस्त्योः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हर्यतः स्पृहणीयः प्रियः पीणयिता सूनुर्न सूनुरिव

मर्य्यः मार्जनीयः अर्जुनः स्वेतवर्णः सोमः अत्के रूपे विचित्रे आ अव्यत आवृणोति तम् ईम् एनम् सोमम् अङ्गुलयः नदीषु नदमानासु वसतीवरीषु । गभस्त्योः बाह्वो आ अभिमुखेन हिन्वन्ति प्रेरयन्ति । तत्र दृष्टांतः अपसः यथा वेगवन्तः शूराः जनाः रथं संग्रामेषु प्रेरयन्ति तद्वत् ॥ अर्जुनः अर्जुने—इति पाठौ ॥ २ ॥

(हर्यतः)चाहने योग्य (सूनुः न)पुत्रकी समान (मर्य्यः) संस्कार करने योग्य (अर्जुनः) स्वेत वर्णका सोम (अत्के) दर्शनीय होने पर (आ अव्यत) व्याप्त होता है (तम्) उस (ईम्) इस सोमको अङ्गुलियें (नदीषु) वसतीवरी जलोंमें (गभस्त्योः) बाहुओंके आहि-) न्वन्ति) अभिमुख प्रेरणा करती हैं (अपसः रथं,यथा) जैसे वेगवाले शूर पुरुष रथको संग्राममें प्रेरणा करते हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ २ ३ १ १ ३ १ २
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
३ २ ३ १ २
सुता विदथे अक्रमुः ॥ १ ॥

ऋ०श्यावाश्वः । छ०गायत्री । दे०सोमः । अथ तृतीयतृचे, प्रथमा । सोमासः सोमाः मदच्युतः मदस्राविणः सुताः अभिषुताः संतः विदथे यज्ञे मघोनां हविष्मतां नः अस्माकं श्रवसे अन्नाय कीर्त्तये वा प्र अक्रमुः प्रगच्छन्ति । मघोनां—मघोनः—इति पाठौ॥ १ ॥

(मदच्युतः) आनन्दका प्रवाह बहानेवाले (सोमासः) सोम (सुताः) संस्कारयुक्त होते हुए (विदथे) यज्ञमें (मघोनाम्) हविवाले (नः) हमारे (श्रवसे) अन्न और कीर्त्तिके लिये (प्र अक्रमुः) प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

१ २ २ १ २र ३ १ २र ३ २
आदीँहँसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
२ ३ १ २र
अत्यो न गोभिरज्यते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । आत् अपि च ईम् अयं सोमः हंसो यथा गणं जनसंघं स्वगतिविशेषेण स्वनेन वा प्रविशति, तद्वत् विश्वस्य सर्वस्य स्तोतृजनस्य मतिं स्तुतिं बुद्धिं वा अवीवशत् वशं नयति, स च सोमः अत्यो न अश्व इव गोभिः गव्यैरुदकैर्वा अज्यते सिच्यते स्निग्धो क्रियते॥२॥

(आत्) और (ईम्) यह सोम (हंसः, यथा) जैसे हंस (गणम्) जनसमूहमें अपनी गति वा स्वरके साथ प्रवेश करता है तैसे ही (विश्वस्य) सब स्तोताओंकी (मतिम्) स्तुति वा बुद्धिको (अवीवशत) वशमें करता है, वह सोम (अत्यो न) अश्वकी समान (गोभिः) गो-घृतादिसे (अज्यते) चिकना कियाजाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदीं त्रितस्य योषणो हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । आत् अपिच ईम् एनं हरिं हरितवर्णम् इंदुम् सोमं त्रितस्य ऋषेः योषणः अंगुलयः अद्रिभिः ग्रावभिः हिन्वन्ति । किमर्थम् इन्द्राय इंद्रस्य पीतये पानार्थम् ॥ ३ ॥

(आत्) और (ईम्) इस (हरिम्) हरे वर्णके (इंदुम्) सोमको (त्रितस्य) त्रित ऋषिकी (योषणः) अंगुलियें (इंद्राय पीतये) इंद्रके पीनेके लिये (अद्रिभिः) ग्रावाओंसे (हिन्वन्ति) प्रेरणा करती हैं॥३॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अया पवस्व देवयु रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।

२ ३ १ २

मधोर्धारा असृक्षत ॥ १ ॥

ऋ० अग्निः । छ० उष्णिक । दे० सोमः । अथैकर्चे चतुर्थसूक्ते-प्रथमा । हे सोम ! देवयुः देवान् कामयमानः त्वम् अया अनया धारया पवस्व क्षर । ततः रेभन् शब्दायमानः पवित्रं विश्वतः पर्येषि परि-गच्छसि । अनन्तरं मधोः मदकरस्य तव धाराः आत्मीयाः असृक्षत सृज्यन्ते । अत्र द्वितीय-तृतीय-पादौ व्यत्ययेन पाठौ ॥ १ ॥

हे सोम ! (देवयुः) देवताओंकी कामना करनेवाला तू (अया) इस धारासे (पवस्व) टपक, तदनन्तर (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं, विश्वतः, पर्येषि) दशापवित्रमें सब ओरको जाते हो, तदनं-तर (मधोः) मदकारी तुम्हारी (धाराः) धारायें (असृक्षत) बनती हैं

१ २ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पवते हर्यतो हरिरति ह्वराꣳसि रꣳह्या ।

३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

अथैकर्च्चे पञ्चमे-प्रथमा । हर्यतः स्पृहणीयः हरिः हरितवर्णः सोमः रंह्या तृतीयाया आकारः साधुवेगेन ह्वरांसि कुटिलानि अनृजूनि पवित्राणि अति पवते अतीत्य गच्छति । किं कुर्वन् ? स्तोतृभ्यः वीरवत् पुत्रयुक्तं यशः अभ्यर्षन् अभिगमयन् पवते ॥ २ ॥

(हर्यतः) चाहने योग्य (हरिः) हरे वर्णका सोम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके अर्थ (वीरवत्) पुत्र युक्त (यशः) यश (अभ्यर्षन्) प्राप्त करता हुआ (रंह्या) सुन्दर वेगसे (ह्वरांसि) तिरछे पवित्रोंमेंको (अतिपवते) निकलकर छनता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः ।
३ १ २ ३।१ ३ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानानमराधसᳫं हता मखन्न भृगवः ॥३॥

अथैकर्च्चे षष्ठे प्रथमा । सुन्वानाय षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (२, ३, ६२ वा०) सुन्वानस्य अभिषूयमाणस्य अन्धसः अदनीयस्य सोमस्य तत् प्रसिद्धं वचः वचनं घोषं मर्त्तः मारकः कर्म्मविघ्नकारी न प्र वष्ट न भजतां न शृणोत्विति यावत् । तथा हे स्तोतारः ! अराधसं साधककर्म्म-रहितं श्वानम् अपहत । तत्र दृष्टान्तः-मखं न यथा पुरा अपराद्धं मखम् पतन्तमानं भृगवः अपहतवंतः तथा अपहतेत्यर्थः ॥ प्रसु न्वानाय प्रसुन्वानस्य वष्ट वृत-इति पाठौ ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ १ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर—वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्क-भूपालसाम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रन्थे द्वितीयोऽध्यायः ।

(सुन्वानाय) संस्कार कियेजाते हुए (अन्धसः) सोमके (तत्) प्रसिद्ध (वचः) शब्दको (मर्त्तः) कर्म्ममें विघ्न करनेवाला (न, प्र, वष्ट) न सुने, तथा हे स्तोताओं ! (आराधसम्) साधककर्म्म रहित (श्वानम्) श्वानको (अपहत) दूर करो (भृगवः, मखं, न) जैसे पहिले दोषयुक्त मखको भृगुओंने दूर किया था ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्च्चिक द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः ।

द्वितीयाध्यायश्च समाप्तः

अथ तृतीयोध्याय आरभ्यते ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ—महेश्वरम् ॥ १ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
३ १ २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः छ० गायत्री । दे० पवमानः सोमः । तत्र पवस्व वाच इति पञ्चतृचात्मके प्रथमखण्डे-प्रथमतृचे—प्रथमा । हे सोम ! अग्रियः मुख्यः त्वं चित्राभिः पूजनीयैः ऊतभिः रक्षणीयैः सह वाचः अस्मदीयाः स्तुतीः प्रति पवस्व । उत्तरार्द्धं उक्तमेवार्थं विशदयति विश्वानि सर्वाणि काव्यानि स्तुत्यात्मकानि वाक्यानि अभि पवस्वेति १

(सोम) हे सोम (अग्रियः) मुख्य तू (चित्राभिः) पूजनीय (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (वचः) हमारी स्तुतियोंको (पवस्व) प्राप्त हो (विश्वानि) सब (काव्या) स्तुतिके वाक्योंको (अभि) प्राप्त हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
त्वᳫँ समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
१ ३
पवस्व विश्वचर्षणे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे विश्वचर्षण ! सर्वस्य द्रष्टः सोम ! अग्रियः मुख्याः त्वं वाचः ईरयन् प्रेरयन् समुद्रियाः आन्तरिक्षाणि अपः उदकानि पवस्व धारया क्षर ॥ विश्वचर्षणे-विश्वमेजय-इति छन्दोगबह्वृचानां पाठौ ॥२॥

(विश्वचर्षणे) हे सबके द्रष्टा सोम ! (अग्रियः) मुख्य तू (वाचः) वाणियोंको (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (समुद्रियाः) अन्तरिक्षके (अपः) ज़लोंको (पवस्व) धारासे प्राप्त हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २
तुभ्येम भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे ।
१ २ ३ १ २
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे कवे! क्रान्तकर्म्मन् सोम! तुभ्यं तव महिम्ने इमा इमानि भुवना भुवनानि तस्थिरे तिष्ठन्ति त्वामेव पुरस्कुर्वन्तीत्यर्थः। किञ्च धेनवः नवप्रसूतिकाः देवानां हविःप्रदायेन प्रीणयित्र्यो गावः तुभ्यं त्वदर्थमेव आशरं प्रयस्व मे-इति धावन्ति आगच्छन्ति॥ धावन्ति धेनवः-इति छन्दोगाः, अर्षन्ति धेनवः-इति बह्वृचाः॥ ३॥

(कवे) हे क्रांतकर्मा सोम! (तुभ्यम) तुम्हारी (महिम्ने) महिमाके अर्थ (इमा) यह (भुवना) भुवन (तस्थिरे) स्थित हैं (धेनवः) हवि देकर देवताओंको तृप्त करनेवाली गौएँ (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये ही (धावन्ति) आती हैं॥ ३॥

१२ ३ १२ ३२ ३१ २ ३२३ १२
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसे जने।
२ ३ २३ १२
विश्वा अप द्विषो जहि॥ १॥

ऋ० अमहीयुः। छ० गायत्री। दे० पवमानः सोमः। अथ द्वितीय-तृचे-प्रथमा। हे इंदो! सोम! सुतः अभिषुतः वृषा कामानां वर्षिता त्वं पवस्व धारया क्षर, जने जनपदे नः अस्मान् यशसः यशस्विनः कृधि कुरु, विश्वा विश्वान् सर्वान् द्विषः द्वेष्टॄन् शत्रून् अपजहि मारय च?

(इंदो) हे सोम! (सुतः) संस्कार कियाहुआ (वृषा) कामनाओं की वर्षा करनेवाला तू (पवस्व) धारासे पवित्र हो (जने) देशके पुरुषोंमें (नः) हमें (यशसः) कीर्त्तिमान् (कृधि) करो (विश्वा) सकल (द्विषः) शत्रुओंको (अपजहि) मारो॥ १॥

१ २ ३ २ ३१ २३१ २ ३२
यस्य ते सख्ये वयꣳ सासह्याम पृतन्यतः।
१२ ३ १ २३२
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे॥ २॥

अथ द्वितीया। हे इंदो! सोम! यस्य अस्मिन् यागे वर्त्तमानस्य ते तव सख्ये सखित्वे सति वयं स्तोतारः तव त्वदीये उत्तमे श्रेष्ठे द्युम्ने अन्ने तृप्तिः प्राप्ता तथा च यास्कः—द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा (निरु० नै० ५, ५)—इति पृतन्यतः युद्धमिच्छतः शत्रून् सासह्याम अभिभवेम द्वितीय-तृतीयपादौ व्यत्ययेन पाठौ॥ २॥

(इंदो) हे सोम (यस्य) इस यज्ञमें वर्त्तमान जिन (ते) तुम्हारे (सख्ये) मित्रभावके होने पर, हम स्तोता (तव) तुम्हारे (उत्तमे) श्रेष्ठ (द्युम्ने) अन्नमें तृप्तिको प्राप्त हुए हैं (पृतन्यतः, सासह्याम) युद्धकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंका हम तिरस्कार करें ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २

याते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।

१ २ ३ २

रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! ते तव या यानि भीमानि शत्रूणां भयङ्कराणि तिग्मानि तीक्ष्णानि आयुधा आयुधानि धूर्वणे शत्रुवधार्थं सन्ति तैः आयुधैः समस्य सर्वस्य शत्रोः निदः निन्दायाः न अस्मान् रक्ष पालय ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (ते) तुम्हारे (या) जा (भीमानि) शत्रुओंको भय देनेवाले (तिग्मानि) तीक्ष्ण (आयुधा) आयुध (धूर्वणे) शत्रुओं नाश करनेको हैं, उन आयुधोंके द्वारा (समस्य) सब शत्रुओंकी (निदः) निंदासे (नः) हमें (रक्ष) रक्षा करो ॥ ३ ॥

१२ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा सोमद्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।

२ ३ १ २

वृषा धर्म्माणि दध्रिषे ॥ १ ॥

ऋ० कश्यपः । अथ तृतीयतृचे—प्रथमा । हे सोम ! वृषा कामानां वर्षिता त्वं द्युमान् दीप्तिमान् असि । अपि च हे देव ! द्योतमान सोम ! वृषा त्वं वृषव्रतः वर्षणशीलकर्मासि । किञ्च हे सोम ! वृषा त्वं धर्माणि देवानां मनुष्याणाञ्च हितानि कर्माणि दध्रिषे धारयसि । दध्रिषे दधिषे इति पाठौ ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करने वाला तू (द्युमान्) दीप्तिमान् (असि) है, (देव) सोमके अधिष्ठात्री देव ! (वृषा) मनोरथपूरक तुम (वृषव्रतः) कामना पूर्ण करने के व्रतधारी हो (वृषा) मनोरथपूरक तुम (धर्माणि) देवता और मनुष्यों के हितकारी कर्मों को (दध्रिषे) धारण करते हो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २
वृष्णस्ते वृष्ण्यꣳशवो वृषा वनं वृषा सुतः ।
१ २र १ २र
स त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे वृषन् ! कामानां वर्षक ! सोम ! वृष्णोः वर्षितुः ते तव शवः बलं वृष्ण्यं वर्षणशीलं भवति वनं तव भजनमपि वृषावर्षणशीलं सुतः अभिषुतः तव रसोऽपि वृषा वर्षणशीलः स त्वं वृषेदसि वर्षणशील एवासि भवसि । सुतो मदः-इति सत्वं सत्यम् इति च पाठौ।

(वृषन्) हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले सोम ! (वृष्णोः) वर्षा करनेवाले (ते) तुम्हारा (शवः) बल (वृष्ण्यम्) वर्षा करनेवाला है (वनम्) तुम्हारा सेवन (वृषा) वर्षा करनेवाला है (सुतः) तुम्हारा संस्कार किया हुआ रस (वृषा) वर्षा करने वाला है (सः,त्वम्) वह तुम (वृषेत्, असि) वर्षणशील ही हो ॥ २ ॥

१ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
अश्वो न चक्रदो वृषा सङ्गा इन्दो समर्वतः ।
१ २ ३ १ २र
विनोराये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्दो ! सोम ! वृषात्वम् अश्वो न अश्व इव सञ्चक्रदः संक्रन्दसे । अपि च गाः पशून् अर्वतः अश्वांश्च अस्मभ्यं सम्प्रयच्छसीति शेषः । किञ्च नः अस्माकं राये धनाय दुरः द्वाराणिः विवृधि विवृतानि कुरु ॥ ३ ॥

(इन्दो) सोम ! (वृषा) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला तू (अश्वो न) अश्वकी समान (सञ्चक्रदः) शब्द करते हो और (गाः) पशुओंको (अर्वतः) घोड़ोंको भी हमें देते हो और (नः) हमारे (राये) धनके अर्थ (दुरः) द्वारोंको (विवृधि) खोलो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे ।
१ २ ३ १ २
पवमान स्वर्दृशम् ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः । छ० गायत्री । दे० पवमानः सोमः । अथ चतुर्थतृचे—प्रथमा । हे सोम ! त्वं वृषासि हि अभिमत-फलानां वर्षिता भवसि खलु । तस्मात् हे पवमान पूयमान ! वा सोम ! स्वर्दृशं सर्वस्य सूर्य्यस्य वा द्रष्टारं सर्वैर्देवैर्द्रष्टव्यं वा भानुना तेजसा

द्युमन्तं दीप्तिमन्तम् अतिशयेन तेजस्विनमित्यर्थः स्तुतिमन्तं वा त्वा त्वां वयं हवामहे यज्ञेषु आह्वयामहे ॥ १ ॥

हे सोम ! तू (हि) निश्चय (वृषासि) अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाला है, इसकारण (पवमान) हे सोम ! (स्वर्दृशम) सब देवताओं से देखने योग्य (भानुना) तेजसे (द्युमन्तम्) दीप्तिमान् (त्वा) तुम्हें (हवामहे) यज्ञोंमें आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १२ ३ १२ ३ १ २
यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः ।
१ २ ३ १ २
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वम् आयुभिः मनुष्यैः ऋत्विग्भिः मृज्यमानः अतिशयेन शोध्यमानः सन् अद्भिः वसतीवर्याख्याभिः यद् यदा परि षिच्यसे परितः षिच्यमानो भवसि तदानीं द्रोणे द्रोणकलशे गृह्यमाणः सन् सधस्थं स : तिष्ठन्त्यत्रेति सधस्थं स्थानं ग्रहचमसादिकम् अश्नुषे व्याप्नोषि । मृज्यमान आयुभिः मृज्यमानो गभस्त्यो-इति द्रोणे द्रुणा—इति च पाठौ ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (आयुभिः) ऋत्विजों करकै (मर्मृज्यमानः) अत्यन्त शुद्ध किया जाता हुआ (अद्भिः) वसतीवरी जलोंसे (यद्) जब (परिषिच्यसे) चारों ओरसे सींचा जाता है तब (द्रोणे) द्रोणकलशमें ग्रहण किया जाताहुआ (सधस्थं, अश्नुषे) ग्रह चमस आदि स्थानमें व्याप्त होता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
३ १ २ ३ १ २
इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे स्वायुध ! यज्ञे स्फ्य-कपालादीनि दशायुधानि-इत्यभिधीयन्ते शोभनानि यस्य स तथोक्तः । यद्वा धनुरादीन्यायुधानि यस्य सः, तादृश हे सोम ! त्वम् मन्दमानः मोदमानः सन् अन्तर्णीतण्यर्थः । देवान् स्वयं मादयन् सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं पुत्रादिकमस्माकम् आ पवस्व पवतिर्गत्यर्थः आ प्रापय । किञ्च हे इन्दो ! ग्रहेषु चमसेषु रक्षणशील ! सोम ! इह उ इहैव अस्मदीये यज्ञे सु आगहि सुष्ठु आगच्छ ॥ ३ ॥

(स्वायुध) जिस के यज्ञमें के स्फय कपाल आदि श्रेष्ठ आयुध हैं ऐसे हे सोम ! तू (मन्दमानः) देवताओंको आनन्द देताहुआ (सुवीर्यम्) श्रेष्ठ वीरतायुक्त पुत्रादि (आपवस्व) हमें प्राप्त करा और (इंदो) हे सोम ! (इह उ) हमारे इस यज्ञमें ही (सु आगहि) शोभन प्रकार से आओ ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।

३ १ २र

सखित्वमा वृणीमहे ॥ १ ॥

ऋ० अमहीयुः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ पञ्चमतृचे-प्रथमा हे सोम ! पवित्रम् अभ्युन्दतः पवित्रमभिद्रवतः पवमानस्य क्षरतश्च ते तव सखित्वं सख्यं वयम् अमहीयवः आङ्गिरसाः स्तोतारः आ वृणीमहे प्रार्थयामहे ॥ १ ॥

हे सोम ! हम स्तोता (पवित्रंअभ्युन्दतः) पवित्रेमें आर्द्र होनेवाले (पवमानस्य) टपकते हुए (ते) तुम्हारे (सखित्वम्) मित्रभावको (आवृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २

ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।

१ २

तेभिर्नः सोम मृडय ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! ते तव ये ऊर्मयः तरङ्गाः पवित्रं धारया अभि क्षरन्ति तेभिः तैः ऊर्मिभिः न अस्मान् मडय सुखय ॥ २ ॥

हे सोम ! (ते) तेरी (ये) जो (ऊर्मयः) तरंगें (धारया) धारा से (पवित्रं, अभिक्षरन्ति) पवित्रेमेंको बहकर जाती हैं (तेभिः) उन तरङ्गोंसे (नः) हमें (मृडय) सुख दो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

स न पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।

१ २ ३ १ २

ईशानः सोम विश्वतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! विश्वतः सर्वस्य जगत ईशानः ईश्वरः सः अभिपुतः पुमानः पूयमानः त्वं नः अस्मभ्यं रयिं धनं वीरवतीं पुत्राद्युपेतम् इषम् तम् आभर आहर ॥ ३ ॥

हे सोम (विश्वतः) सब जगत्‌के (ईशानः) ईश्वर हो (सः) वह तुम (अभिषुतः) संस्कार किये हुए (पुमानः) पवित्र तुम (नः) हमें (रयिम्) धन (वीरवतीम्) पुत्रयुक्त (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥३॥

सामवेदोत्तरार्च्चिके तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३१ २ ३ १२ ३ १२
अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
३ २ ३१२ ३१ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ द्वितीयखण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । अग्नेर्दूतत्वमेतन्मन्त्रव्याख्याने तैत्तिरीयब्राह्मणे समाम्नायते—अग्निर्देवानां दूत आसीदुशनाः काव्योऽसुराणाम्-इति तादृशं देवं दूतम् अग्निम् अस्मिन् कर्मणि वृणीमहे भजामः । कीदृशं होतारं देवानामाह्वातारं विश्ववेदसं सर्वधनोपेतं बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६, २, १०६)—इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् अस्य प्रवर्त्तमानस्य यज्ञस्य निदानत्वेन सुक्रतुं शोभनकर्माणं शोभनप्रज्ञं वा ॥ १ ॥

(होतारम्) देवताओं का आह्वान करनेवाले (विश्ववेदसम्) सकल धनों से युक्त (अस्य) इस यज्ञके आदिकारण होनेसे (सुक्रतुम्) श्रेष्ठ कर्मवाले (दूतम्) हवि पहुँचानेवाले (अग्निम्) अग्निदेवको (वृणीमहे) इस कर्म में आराधन करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १२
अग्निमग्निᳪं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
३ १ २ ३ २
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यद्यप्यग्निः स्वरूपेणैव एवं तथापि प्रयागभेदादाहवनीयादिस्थानभेदाद्वा बहुविधत्वमभिप्रेत्य अग्निम् अग्निम्-इति वीप्सा तं हवीमभिः आह्वानकरणैर्मन्त्रैः सदा हवन्त निरन्तरमनुष्ठातार आह्वयन्ति । कीदृशम् ? विश्पतिं विशां प्रजानां होत्रादीनां पालकं हव्यवाहं यजमान-समर्पितस्य हविषः देवान् प्रति वोढारम् अतएव पुरुप्रियं बहूनां देवानां प्रीत्यास्पदम् । अग्निमग्निम्—नित्यवीप्सयोः (८, १, ४)—इति वीप्सायां द्विर्भावः, तस्य परमाम्रेडितम् (८, १, २) इत्युत्तरस्य आम्रेडितसंज्ञायाम् अनुदात्तञ्च (८, १, ३)—इत्यनुदात्तत्वम् । हवीमभिः—ह्वेञ स्पर्द्धायां शब्दे च (भ्वा० उभ०) आह्वानकारणभूतेषु मन्त्रेषु स्वव्यापारस्वातन्त्र्यात् कर्तृत्वविवक्षया अन्येभ्यो-

ऽपि दृश्यन्ते (३, २, ७५)—इति कर्त्तरि मनिन्, तस्य छान्दस ईडागमः बहुलं छन्दसि (६, १, ३४)—इति धातोः सम्प्रसारणम् परपूर्वत्वं गुणावादेशौ, नित्त्वादाद्युदात्तत्वं (६, १, १९७)। सदा—सर्वैकान्येत्यादिना (५, ३, १५) सर्वशब्दाद्दाप्रत्ययः सर्वस्य सोऽन्यतरस्याम् (५, ३, ६)—इति सभावः व्यत्ययेनाद्युदात्तत्वम् (३, १, ८५) हवन्त-ह्वेञो लट् झस्य अन्तादेशः (७, १, ३) शेरभावश्छन्दसः (६, ४ ७६) शपि बहुलं छन्दसि (६, १, ३४)—इति सम्प्रसारणम् तिङ्ङतिङ (८, १, २८)—इति निघातः। विश्पतिं—पत्यावैश्वर्ये (६, २, १८)—इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरे प्राप्ते परादिश्छन्दसि (६, १, १९९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम्। हव्यवाहम्-वह प्रापणे (भ्वा० उभ०) वहश्च (३, २, ६४)—इति ण्वि-प्रत्ययः कृदुत्तरप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १३९)। पुरूणां प्रियं समासान्तोदात्तत्वम् (८, १, २२३,) ॥ २ ॥

(विश्पतिम्) प्रजाओंके वा होता आदिके रक्षक (हव्यवाहम्) यजमानके अर्पण किये हुए हविको देवताओंके समीप पहुँचाने वाले (पुरुप्रियम्) अनेकों देवताओंके प्यारे (अग्नि, अग्निम्) आहवनीय आदि अनेकों नामवाले अग्निको (हवीमभिः) आवाहनके मंत्रोंसे अनुष्ठान करनेवाले (सदा) सर्वदा (आहवन्त) आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २   ३ १ २   ३ २ ३ १ २
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
२ ३ १ २   ३ १ २
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अग्ने! जज्ञानः अरण्योरुत्पन्नः त्वं वृक्तबर्हिषे आस्तरणार्थं छिन्नेन बर्हिषा युक्ताय। तं यजमानमनुग्रहीतुम् इह कर्मणि हविर्भुजो देवानावह—नः अस्मदर्थं होता देवानमाह्वाता त्वम् ईड्योऽसि स्तुत्यो भवसि ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव! (जज्ञानः) अरणियोंसे उत्पन्न हुए तुम (वृक्तबर्हिषे) आस्तरणके निमित्त तोड़े हुए कुशोंसे युक्त यजमानके ऊपर अनुग्रह करनेको (इह) इस कर्ममें (देवान्) हविभोक्ता देवताओंको (आवह) बुलाओ (नः) हमारे लिये (होता) देवताओंका आह्वान करनेवाले तुम (ईड्यः, असि) स्तुतिके योग्य हो ॥ ३ ॥

३ २ ३ १   ३   ३ १ २ ३   १ २
मित्रं वयँ हवामहे वरुणँ सोमपीतये ।

२ ३ २ ३१२

या जाता पूतदक्षसा ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० गायत्री । दे० मित्रावरुणः । अथ द्वितीयतृचे प्रथमा । वयम् अनुष्ठातारः सोमपीतये सोमपानार्थं दासीभारादित्वात् पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं मित्रं वरुणं च उभावाह्वयामः । कीदृशावुभौ ? या जाता यौ जातौ सन्तौ प्रदेशं प्रादुर्भवन्तौ पूतदक्षसा शुद्धबलौ । पूञ् पवने (क्र्या० उभ०) निष्ठा (३, २, १०२) इति क्तः श्र्युकः किति (७, २, ११)-इति इट्प्रतिषेधः । पूतं दक्षौ ययोस्तौ बहुव्रीहौ प्रकृत्या (६, २, १)-इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥ या जाता जज्ञाना इति पाठः ॥

(वयम्) हम अनुष्ठान करनेवाले (सोमपीतये) सोम पीनेके निमित्त (या) जो (जाता) यज्ञस्थानमें प्रकट होते हुए (पूतदक्षसा) शुद्ध बलवाले हैं उन (मित्रम्) मित्र देवताको (वरुणम्) वरुण देवताको (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।

२ ३ १ २र

ता मित्रावरुणा हुवे ॥ २ ॥

अथ तृतीया । यौ मित्रावरुणौ ऋतेन सत्यवचनेन यजमानानुग्रहकारिणा ऋतावृधौ ऋतमवश्यम्भावितया सत्यं कर्मफलं तस्य वर्द्धकौ ऋतस्य सत्यस्य प्रशस्तस्य ज्योतिषः प्रकाशस्य पती पालकौ श्रुत्यन्तरे मित्रावरुणयोरदितिपुत्रत्वेन श्रुतत्वात् द्वादशादित्येष्वन्तर्भूतत्वेन ज्योतिषः पालकत्वं युक्तम् । श्रुत्यन्तरे च अष्टौ पुत्रासो अदितेरित्युपक्रम्य मित्रश्च वरुणश्चेत्यादिकमाम्नातम् । तौ मित्रावरुणौ । तथाविधैर्मित्रावरुणैः सुपां सुलुगिति (७, १, ३९) पूर्वसवर्णदीर्घं आकारः हुवे आह्वयामि । ह्वेञ् आत्मनेपदोत्तमपुरुषैकवचने सम्प्रसारणे (६, १ ३४) पूर्वरूपत्वे च (६, १, १०८) बहुलं छन्दसि (२, ४, ७३)—इति शपो लुक् टेरेत्वम् (३, ४, ७९) गुणे प्राप्ते क्ङिति च (१, १, ५)—इति प्रतिषेधः उवङादेशः (६, ४, ७७) तिङ्ङतिङः (८, १, २८)—इति निघातः ॥ २ ॥

(यौ) जो (ऋतेन) यजमानके ऊपर अनुग्रह करनेवाले सत्य वचनसे (ऋतावृधौ) अवश्य प्राप्त होनेवाले कर्मफलके वर्द्धक

(ज्योतिषः) प्रकाशके (पती) पालक हैं (ता) उन (मित्रावरुणा) मित्रावरुणको (हुवे) आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
१२ ३ १ २
करतां न सुराधसः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अयं वरुणः देवः अस्माकं प्राविता भुवत् प्रकर्षेण रक्षको भवतु । मित्रः च विश्वाभिः ऊतिभिः सर्वाभिः प्राविता भुवत् । तावुभावपि नः अस्मान् सुराधसः प्रभूतधनयुक्तान् करतां कुरुताम् । डुकृञ् करणे (उभ०) भौवादिकः, लोटस्तस्, तमस्ताम्, कर्त्तरि शप् गुणो रपरत्वम्, शपः पित्वादनुदात्तत्वम् (३, १, ४) तिङश्च लसार्वधातुकस्वरेण (६, १, १८६) धातुस्वरं (६,१,१६२) शिष्यते ॥ ३ ॥

(वरुणः) वरुणदेव (विश्वाभिः) सकल (ऊतिभिः) रक्षाओं सहित (मित्रः) मित्र देवता (प्राविता, भुवत्) हमारा अधिकतर रक्षक हो, वह दोनों (नः) हमें (सुराधसः) बहुतसे धनसे युक्त (करताम्) करें ।३।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
२ ३ १ २
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रो वा मधुच्छन्दः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । इंद्रमिद्गाथिन इति चतुरृचं तृतीयं सूक्तम् । तत्र प्रथमा । गाथिनः गीयमान—सामयुक्ता उद्गातारः इंद्रमित् इंद्रमेव बृहत् त्वामिद्धिहवामहे (छ० आ० ३, १, ५, २)—इत्यस्यानृच्युत्पन्नेन बृहन्नामकेन (आ० गा० १, १, २७) साम्ना अनूषत स्तुतवन्तः । णु स्तुतौ (तु०, प०) णो नः (६, १, ६५)—इति नत्वम्, लुङि व्यत्ययेनात्मनेपदम् (३, १, ८५) झस्य अदादेशः (७, १, ५) सिच्च इडभावः णकारस्य दीर्घत्वं छान्दसम् (६, १, १३३) धातोः कुटादित्वात् सिचो ङित्वेन (१, २, १) गुणाभावः (१, १, ५) अर्किणः अर्चन-हेतु—मन्त्रोपेता होतारः अर्केभिः उक्थरूपैर्मन्त्रैरनूषत । ये त्ववशिष्टा अध्वर्यवः ते वाणीः वाग्भिः यजूरूपाभिः इंद्रम् अनूषत अर्कस्य मन्त्रपरत्वं यास्कोक्तम् (५, ४) अर्को मन्त्रो यदनेनार्चन्तीति ॥ १ ॥

(गाथिनः) गाये जाने हुए सामसे युक्त उद्गाताओंने (इंद्रमित्)

इंद्रकी ही (बृहत्) बृहत्सामसे (अनूषत) स्तुति करी (अर्किणः) पूजनके मंत्र उच्चारण करने वाले होताओंने (अर्कैभिः) उक्थ मंत्रोंसे (इंद्रम) इंद्रकी स्तुतिकरी, शेष अध्वर्युओंने (वार्णाः) यजूरूप वाणियोंसे (इंद्रम्) इंद्रकी स्तुति करी ॥ १ ॥

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । इंद्रइत् इंद्र एव हर्योः हरिनामकयोः अश्वयोः सचा सह युगपत् आ सम्मिश्लः सर्वतः सम्यक् मिश्रयिता । कीदृशयाहर्योः ? वचोयुजा इंद्रस्य वचनमात्रेण रथे युज्यमानयोः सुशिक्षितयोरित्यर्थः । अयम् इंद्रः वज्री वज्रयुक्तः हिरण्ययः सर्वाभरणभूषित इत्यर्थः ॥ २ ॥

(वज्री) वज्रवाला (हिरण्ययः) सुवर्णके आभूषणोंको धारण किये हुए (इंद्र इत्) इंद्र ही (वचोयुजा) इंद्रके वचनमात्रसे रथमें जुड़नेवाले (हर्योः) हरिनामक घोडोंका (सचा) एक साथ (आ संमिश्लः) सब ओरसे भले प्रकार जोडनेवाला है ॥२॥

१ २ १ २ ३ १ २

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।

३ १ ३ १ २ ३ १ २

उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! उग्रः शत्रुभिरप्रधृष्यः त्वम् उग्राभिः अप्रधृष्याभिः ऊतिभिः अस्मद्रक्षणपरपक्षाभिः वाजेषु युद्धेषु नः अस्मान् अव रक्ष । तथा सहस्रप्रधनेषु च सहस्र-संख्याक-गजाश्वादि-लाभ-युक्तेषु महायुद्धेष्वपि रक्ष ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (उग्रः) शत्रुओंसे न दबनेवाला तू (उग्राभिः) प्रबल (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (वाजेषु) युद्धोंमें (सहस्रप्रधनेषु च) सहस्रों हाथी घोडोंके लाभसे युक्त युद्धोंमें भी (नः) हमारी (अव) रक्षा कर ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यꣳ रोहयद्दिवि ।

२उ ३ १ २
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अयम् इंद्रः दीर्घाय प्रौढ़ाय निरन्तराय चक्षसे दर्शनाय दिवि द्युलोके सूर्य्यमारोहयत् पुरा वृत्रासुरेण जगति यदापादितं तमस्तन्निवारणेन प्राणिनां दृष्टिसिध्यर्थम् आदित्यं द्युलोके स्थापितवानित्यर्थः । स च सूर्य्यः गोभिः स्वकीयरश्मिभिः अद्रिम् मेघम् व्यैरयत् विशेषेण दर्शनार्थं प्रेरितवान् प्रकाशितवानित्यर्थः अथवा इन्द्र एव गोभिः जलैर्निमित्तभूतैः अद्रिं मेघं व्यैरयत् विशेषेण प्रेरितवान् । पञ्चदशसंख्याकेषु रश्मि-नामसु खेदयः (१) किरणाः (२) गावः (३)—इति पठन्ति (निघ० १,५) त्रिंशत्संख्याकेषु मेघनामसु अद्रि (१) ग्रावा (२)—इति पठितम् (निघ० १, १०) ॥ ४ ॥

(इंद्रः) यह इंद्र (दीर्घाय) निरन्तर (चक्षसे) दर्शनके लिए (दिवि) द्युलोकमें (सूर्यम्) सूर्यको (आरोहयत्) स्थापन करता हुआ वह सूर्य (गोभिः) अपनी किरणोंसे (अद्रिम्) मेघको (व्यैरयत) प्रेरणा करता हुआ ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।
३ १ २ ३ १ २
धिया धेना अवस्यवः ॥ १ ॥

ऋ० मैत्रावरुणि वा वसिष्ठः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृचात्मके चतुर्थसूक्ते—प्रथमा । अवस्यवः रक्षणकामाः वयम् इंद्रे देवे अग्ना अग्नौ च बृहत् बृंहणं वर्द्धकं नमः हविर्लक्षणमन्नं सुवृक्तिं सुप्रवृत्ताम् स्तुतिञ्च आदरीयामहे प्रेरयामः । तथा च धिया कर्मणा युक्ता धेनाः वाङ्नामैतत् (निघ० १, ११, ३९) स्तुतिरूपा वाचः अभिप्रेरयामः १

(अवस्यवः) रक्षाकी इच्छा करने वाले हम (इन्द्रे) इंद्रदेवके विषय में (अग्ना) अग्निके विषैं (बृहत्) बढ़ाने वाले (नमः) हविरूप अन्न को (सुवृक्तिम्) सुन्दर स्तुतिको भी (आदीरयामहे) प्रेरणा करते हैं (धिया)कर्मसे युक्त (धेनाः) स्तुतिरूप वाणियोंको उच्चारण करते हैं १

१ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये
३ २ ३ १ २
सबाधो वाजसातये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ता हि तौ खलु इंद्राग्नी शश्वन्तः बहवः विप्रासः मेधाविनः जनाः ऊतये रक्षणाय इत्थम् अनेन प्रकारेण ईडते स्तुवन्ति तथा सबाधः समानम् परस्परम् बाध्यमाना जनाः वाजसातये अन्नसातये अन्नलाभाय ताविन्द्राग्नी ईडते । यद्वा वाजसातिः—इति संग्रामनाम (निघ० २, १७, ३६) संग्रामार्थम् ॥ २ ॥

(ता हि) उन इंद्र अग्निकी ही (शश्वन्तः) बहुतसे (विप्रासः) मेधावी पुरुष (ऊतये) रक्षाके लिए (इत्थम्) इस प्रकार (ईडते) स्तुति करते हैं तथा (सबाधः) परस्पर बाधाको प्राप्त हुए पुरुष (वाजसातये) अन्नकी प्राप्तिके लिए उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २३ २ ३ १ २

ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।

३ १ २ ३ १ २

मेधसाता सनिष्यवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। विपन्यतः स्तोत्रमिच्छन्तः प्रयस्वन्तः हविर्लक्षणेनान्नेनोपेताः सनिष्यवः सनिम् धनमात्मन इच्छंतः वयम् मेधसाता मेधानां यागानां सातौ सम्भजने निमित्तभूते सति हे इंद्राग्नी ! ता तौ वां युवां गीर्भिः स्तुतिभिः हवामहे ॥ विपन्यवः–विपन्यवे–इति पाठौ ॥ ३ ॥

(विपन्यवः) स्तुति करना चाहते हुए (प्रयस्वन्तः) हविरूप अन्नसे युक्त (सनिष्यवः) अपने लिए धनकी इच्छा करने वाले हम (मेधसाता) यज्ञानुष्ठानके निमित्त होने पर हे इंद्र अग्निदेव (ता) उन (वाम्) तुम्हें (गीर्भिः) स्तुतियोंसे (हवामहे) आह्वान करते हैं ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

विश्वा दधान ओजसा ॥ १ ॥

ऋ० वारुणिः वा भृगुः । छ० गायत्री । दे० सोमः । वृषापवस्वेति तृतीयखण्डे—प्रथमतृचे—प्रथमा । हे सोम ! त्वं वृषा स्तोतॄणामभिमत फलस्य वर्षकः सन् धारया त्वदीयया द्रोणकलशमागच्छ पवतिर्गतिकर्मा (निघ० २, १४, १०८) आगतस्त्वं यदा अस्माभिः इंद्राय दीयसे तदा मरुत्वते सहाया मरुतो यस्य सन्ति तस्मै इंद्राय मत्सरः मदकरश्च भव । कीदृशः ? विश्वा विश्वानि सर्वाणि व्याप्तानि वा धनानि ओजसा

आत्मीयेन बलेन युक्तः सन् स्तोतृभ्यः तानि दधानः प्रयच्छंस्त्वं माद्-यिता भवेति समन्वयः ॥ १ ॥

हे सोम ! तुम (वृषा) स्तोताओंको अभिमत फल देतेहुए (धारया) अपनी धारासे (पवस्व) द्रोणकलशमें आओ, और आने पर तुम जब हम इंद्रको अर्पण करें तब (विश्वा) सकल धन (ओजसा) अपने बलसे (दधानः) स्तोताओंको देते हुए (मरुत्वते) जिसके मरुत् सहायक हैं ऐसे इंद्रके अर्थ (मत्सरः) आनन्ददायक होओ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २
तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३ः पवमानः स्वर्दृशम् ।
३ १ २र ३ १ २
हिन्वे वाजेषु वाजिनम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे पवमान ! पूयमान पुनान वा सोम ! ओण्योः द्यावापृथिवी नामैतत् (निघ० ४, ३०, १५) तयोः धर्त्तारम् धारकम् अत एव स्वर्दृशं सर्वस्य द्रष्टारम्, सर्वैर्द्रष्टव्यं वा । वाजिनम् बलवन्तं तं पूर्वोक्तगुणं प्रसिद्धञ्च त्वा त्वाम् वाजेषु संग्रामेषु त्वाम् प्रेरयामि यद्वा वाजेषु विषयेषु प्रेरयामि, अन्नादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ २ ॥

(पवमान) हे शुद्ध सोम ! (ओण्योः) द्यावापृथिवीके (धर्त्तारम) धारण करनेवाले (स्वर्दृशम्) सबके देखने योग्य (वाजिनम्) बलवान् (तम्) तिन (त्वा) तुम्हें (वाजेषु) संग्रामोंमें वा देशोंमें प्रेरणा करता हूँ, तुम अन्न आदि दो ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
२ ३ १ १
युजं वाजेषु चोदय ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान! सोम! अया अय पय गतौ (भ्वा०,आ०) पच.द्यच् (३, १, १३४) तृतीयाया आकारः (७, १, ३९) कर्मार्थमितस्ततो गच्छन्तीभिः विपा विप प्रेरणे (चु०, उभ०) हवींष्यग्नौ प्रेरयन्तीति विपा अंगुलयः । एकवचनं छान्दसं प्रत्येक-विवक्षया वा एताभिर्मदीयाभिरंगुलिभिः चितः ज्ञातः निर्गतः अभिषुतः हरिः हरितवर्णः त्वं धारया सन्ततया पवस्व द्रोणकलशं ग्रहांश्च गच्छ । किञ्च युजम सखायम् इंद्रं वाजेषु संग्रामेषु चोदय प्रेरय । यदास्माभिरिन्द्रार्थं सोमा दीयन्ते तदानीमिन्द्रः स्तुत्याऽनेन हृष्टः सन् शत्रून् हन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

हे सोम ! (अया) इन (विपा) मेरी अंगुलियोंसे (चितः) संस्कार किया हुआ (हरिः) हरे वर्णका तू (धारया) निरन्तर धारा करके (पवस्व) द्रोणकलशमें प्राप्त हो और (युजम्) सखा इंद्रको (वाजेषु) संग्रामोंमें (चोदय) प्रेरणा कर ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेषि पृथि-
२ ३ २ १ २ ३ १ २र ३ १
वीमुत द्याम् । इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ
२ ३ १ २ ३ ३ ३ २
प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम् ॥ १ ॥

ऋ० उपमन्युः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा शोणः शोणवर्णः वृषा कश्चित् वृषभः गा· पशून् अभि लक्ष्य कनिक्रदत् शब्दं करोति एवं गाः स्तुतीः अभि कनिक्रदत् अभिशब्दायमानः तदेवाह-नदयन् शब्दमुत्पादयन् हे सोम ! त्वं पृथिवीम् उत अपि च द्याम् एतौ लोकौ एषि गच्छसि। किञ्च वग्नु, वाङ्नामैतत् (निघ०१,११,२५) तस्य वाक्सुशब्दः आजौ संग्रामे इंद्रस्येव इंद्रशब्द इव शृण्वे सर्वैः श्रूयते। ततः प्रचेतयन् आत्मानं सर्वेषां प्रज्ञापयन् इमां वाचम् अर्षसि समन्तादागमयसि उच्चैः शब्दायत इत्यर्थः॥ १ ॥

(शोणः) लालवर्णका (वृषा) कोई वृषभ (गाः) गौओंकी ओरको (अभि) लक्ष्य करके (कनिक्रदत्) शब्द करता है इसी प्रकार स्तुति रूप गौओंकी ओरको लक्ष्य करके (नदयन्) शब्द उत्पन्न करता है हे सोम ! तू (पृथिवीम) पृथिवीको (उत) और (द्याम) द्युलोकको (एषि) प्राप्त होता है (आजौ) संग्राममें (इंद्रस्य) इंद्रका (वग्नु,इव) शब्दकी समान (आशृण्वे) सर्वो करके सुना जाता है तदनंतर (प्रचेतयन्) अपना स्वरूप सबको जताता हुआ (इमाम्) इस (वाचम्) वाणीको (अर्षसि) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्त-
३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
मंशुम्। पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय
३ १ २
सोम परिषिच्यमानः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! रसाय्यः रसेरौणादिक अय्यप्रत्ययः (उ० ३, ९६) आस्वाद्यः पयसा पिन्वमानः क्षरंस्त्वम् ईरयन् मधुमन्तं माधुर्योपेतम् अंशुम् रसभावम् एषि प्राप्नोषि अंशुमष्टमात्रो भवति-इति यास्कः (निरु०) अनेन सोमरसोऽभिधीयते। किञ्च हे सोम ! परिषिच्यमानः अद्भिः परिषिक्तो भवंस्त्वं पवमानः पवित्रे पूयमानः सन् सन्तनिं तनु विस्तारे (त०, प०) इप्रत्ययः सन्ततां धारां कृण्वन् कुर्वन् इंद्राय इंद्रार्थम् एषि गच्छसि ॥ २ ॥

(रसाय्यः) स्वाद लेने योग्य (पयसा) गोदुग्धादिसे (पिन्वमानः) मिलता हुआ (मधुमन्तम्) मधुरतायुक्त (अंशुम्) रसभावको (ईरयन्) प्रेरणा करता हुआ (एषि) प्राप्त होता है और (सोम) हे सोम (परिषिच्यमानः) जलोंसे सिञ्चित होता हुआ तू (पवमानः) पवित्रे में शुद्ध होता हुआ (सन्तनिम्) धाराको (कृण्वन्) करता हुआ (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (एषि) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन्व-
३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
धस्नुम् । परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो
३ १ २ ३ २
अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! मदिरः मदकरः त्वम् उदग्राभस्य क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम्-इति कर्मणः सम्प्रदानसंज्ञा । चतुर्थ्यर्थे बहुलमिति षष्ठी । उदग्राभं उदकग्राहिणं मेघं नमयन् वृष्ट्यर्थं प्रह्वीकुर्वन् । कीदृशम् ? वधस्नुम् वृत्रवधेन प्रस्रवन्तम् मदाय मदार्थमेव पवस्व पात्रेषु क्षर । किञ्च रुशन्तम् आरोचमानम् श्वेतं वर्णं परि भरमाणः परितो बिभ्रत् सिक्तः पवित्रे सिच्यमानः त्वं गव्ययुः अस्माकं गा इच्छन् पर्येषि परिगच्छ । वधस्नु वधस्नैः—इति पाठौ ॥ ३ ॥

हे सोम ! (मदिरः) मदकारी तू (वधस्नुम्) वृत्रवधसे टपकते हुए (उदग्राभस्य) जल ग्रहण करने वाले मेघको (नमयन्) वर्षाके निमित्त नमाते हुए (मदाय) मदके निमित्त (पवस्व) पात्रमें पहुंचो और (रुशन्तम्) स्वेत (वर्णम) वर्णको (परि भरमाणः) सब ओर से धारण करता हुआ (सिक्तः) पवित्रेमें सींचा हुआ तू (गव्ययुः) हमारे निमित्त गौओंकी इच्छा करता हुआ (पर्येषि) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ १ २र ३ १ २
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ चतुर्थखण्डे प्रगाथरूपे प्रथमसूक्ते-प्रथमा । कारवः स्तोतारो वयं वाजस्य अन्नस्य सातौ सम्भजने निमित्तभूते सति हे इंद्र ! त्वाम् इत् हि त्वामेव हवामहे स्तुतिभिराह्वयामहे । हे इन्द्र ! सत्पतिं सतां पालयितारं श्रेष्ठम् त्वां नरः अन्येऽपि मनुष्याः वृत्रेषु आवरकेषु शत्रुषु सत्सु हवन्ते आह्वयन्ति तज्जयार्थम् । अपि च अर्वतः अश्वस्य सम्बंधिनीषु काष्ठासु यथा अश्वः क्रान्त्या तिष्ठति तासु काष्ठासु संग्रामेषु युद्धकामाश्च त्वामेवाह्वयन्ति अतो वयं त्वामेवाह्वयाम इत्यर्थः । सातौ साता—इति पाठौ ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (कारवः) स्तुति करने वाले हम (वाजस्य) अन्नके (सातौ) प्राप्तिके विषयमें (त्वाम्, इत्, हि) तुम्हें ही (हवामहे) स्तुतियोंसे बुलाते हैं और हे इंद्र (सत्पतिम्) श्रेष्ठ पुरुषोंकी रक्षा करने वाले तुम्हें (नरः) अन्य मनुष्य भी (वृत्रेषु) शत्रुओंके होनेपर (हवन्ते) बुलाते हैं और (अर्वतः) घोड़ेकी (काष्ठासु) दशाओं में अर्थात् संग्रामोंमें युद्धके अभिलाषी पुरुष (त्वाम्) तुम्हे पुकारते हैं १

१ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महःस्तवानो अद्रिवः
१ २उ ३क ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
गामश्वथँ रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे २

अथ द्वितीया । हे चित्र ! चायनीय ! वज्रहस्त ! वज्रबाहो ! अद्रिवः वज्रवन् यद्वा आदृणात्यनेनेत्यद्रिरशनिस्तद्वत् एवम्भूत हे इंद्र ! धृष्णुहा धृष्णुः शत्रूणां धर्षयिता महः महान् स तादृशस्त्वं स्तवानः अस्माभिः स्तूयमानः सन् गाम् रथ्यं रथवाहम् अश्वं च सं किर सम्यक् प्रयच्छ । जिग्युषे जितवते पुरुषाय भोगार्थं सत्रा महत् प्रभूतं वाजं न अश्वमिव यथा सत्रून् जितवते भोगार्थं बहु प्रयच्छसि तद्वत् ॥ २ ॥

(चित्र) विचित्र पराक्रमी (वज्रहस्त) हाथमें वज्रधारी (अद्रिवन्) हे इंद्र (धृष्णुया) शत्रुओंको तर्जना देनेवाला (महः) महान् तू (स्तवानः) हमसे स्तुति किया जाता हुआ (गाम्) गौएँ (रथ्यम्) घोड़े (सं किर) सम्यक् प्रकारसे दे (जिग्युषे) विजय पानेवाले पुरुषको भोगके निमित्त (सत्रा) बहुतसे (वाजं न) अश्वोंकी समान जैसे कि—शत्रुओंको

जीतने वालेको घोड़े आदि बहुतसे भोगनेके पदार्थ देते हो ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १

अभि प्र व सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे । यो

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति १

ऋ० प्रस्कण्वः । छं० बृहती । दे० इंद्रः । अथ द्वितीयसूक्ते प्रगाथे प्रथमा । पुरूवसुः, पश्वादिबहुधनोपेतः, यज्ञवाहुल्यात् बहुनिवासको वा मघवा धनवान् यः इंद्रः जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः अस्मभ्यं सहस्रेणेव सहस्रसंख्याकेन धनेनेव शिक्षति शिक्षतिर्दानकर्मा (निघ० ३, २०, ८) पश्वादिबहु-धनम् अस्मभ्यं प्रयच्छतीत्यर्थः । स इंद्रः यथाविदे यथास्माभिर्विज्ञायते तथा हे ऋत्विजः ! वः यूयं सुराधसं शोभनधनोपेतम् इंद्रम् ऐश्वर्य्ययुक्तं देवम् अभि आभि मुख्येन प्र अर्च्च प्रकर्षेणार्च्चत ॥ १ ॥

(पुरूवसुः) पशु आदि बहुतसे धनसे युक्त (मघवा) धनी (यः) जो इंद्र (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवाले हमैं (सहस्रेणेव) पशु आदि सहस्रों संख्याका धन (शिक्षति) देता है वह इंद्र (यथाविदे) जैसे हमसे जाना जाता है तैसे हे ऋत्विजो (वः) तुम (सुराधसम्) सुन्दर धन युक्त (इंद्रम्) ऐश्वर्यवान् देवताको (अभि, प्र, अर्च) अभिमुख हो कर अधिकतासे पूजो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

दाशुषे। गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि

३ १ २

पुरुभोजसः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । धृष्णुया धृष्णुः धर्षणशीलः पुरुषः शतानीकेव यथा ातसंख्याकानि शत्रुसैन्यानि प्रजिगाति जयार्थं प्रकर्षेण गच्छति, तद्वत् द्रः दाशुषे यजमानार्थं वृत्राणि यज्ञविघातकान् शत्रून् प्रजिगाति तततान् हन्ति किञ्च पुरुभोजसः बहुधनस्य अस्य इंद्रस्य सम्बंधीनि दत्राणि त्तानि धनानि प्र पिन्विरे यजमानार्थं प्रकर्षेण वर्त्तन्ते । तत्र दृष्टान्तः- ारेरिव यथा गिरेः सकाशात् रसाः उदकानि पिन्विरे प्रवर्त्तन्ते तद्वत् २

(धृष्णुया) दबाने वाला पुरुष (शतानीकेव) जैसे शत्रुसेनाओंके ऊपर (प्रजिगाति ;) विजय करनेको चढ़ कर जाता है ऐसे ही इंद्र (दाशुषे) यजमानके निमित्त (वृत्राणि) यज्ञविघातक शत्रुओं के ऊपर चढ़ाई करके जाता है और (हन्ति) उनको मारता है तथा (पुरुभोजसः) बहुत धन वाले (अस्य) इस इंद्रके (दत्राणि) देनेके धन (प्रपिन्विरे) यजमानोंके निमित्त अधिकतासे रहते हैं (गिरेः) रसाः इव) जैसे कि-पहाड़ों पर जल रहते हैं और वह तहाँसे वह कर मनुष्योंको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २
त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
१ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१॥

ऋ० मित्रावरुणो वा वसिष्ठः । छ० बृहती । दे० उषा । अथ तृतीयप्रगाथे—प्रथमा । हे वज्रिन् ! वज्रवन्निन्द्र ! यं त्वाम् भूर्णयः हविर्भरणशीलाः नरः कर्मणां नेतारो यजमानाः इदा अद्यः ह्यः पूर्वेद्युश्च अपीप्यन् सोममपाययन् । हे इंद्र ! सः त्वं स्तोमवाहसः स्तोत्रवाहसः स्तोत्रवाहकस्य मम स्तोत्रम् इह यज्ञे श्रुधि श्रृणु सस्वरं गृहञ्च तुर्या (९) स्वसराणि (१०)–इति (निघ० ३, ४) गृहनामसु पाठात् उपागहि उपागच्छ। स्तोमवाहसः–इति छन्दोगाः, स्तोमवाहसाम्–इति बह्वृचाः ।१।

(वज्रिन्) हे वज्रधारी इंद्र (त्वाम्) तुम्हे (भूर्णयः) हवि अर्पण करनेवाले (नरः) यजमान (इदा) आज (ह्यः) पहिले दिन (अपीप्यन्) सोम पिलाते हुए, हे इंद्र (सः) वह तुम (स्तोत्रवाहसः) मुझसे स्तोत्र धारण करनेवालेके स्तोत्रको (इह) इस यज्ञमें (श्रुधि) सुनो (स्वसरम्) घरको (उपागहि) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति
३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वेधसः । तव श्रवाᳬस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र
गिर्वणः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सुशिप्रिन् ! शोभनहनो ! हरिवः हरिनामकाश्वोपेत ! गिर्वणः गीर्भिर्वननीयेन्द्र ! त्वया त्वयि वेधसः परिचारकाः

आ भूषन्ति आभवन्ति, मत्स्व सोमेन मादय आत्मानम्। किञ्च तम् त्वा वयम् ईमहे याचामहे। किं वाच्यम्? इत्यत्राह—सुतेषु सोमेषु अभिषुतेषु सत्सु तव श्रवांसि अन्नानि उपमानि उपमानभूतानि, हे उक्थ्य! प्रशस्य! तव प्रसादात् सन्त्विति। सुशिप्रिन्—सुशिप्र-इति पाठौ॥ २॥

(सुशिप्रिन्) हे सुन्दर ठोडीवाले (हरिवः) हे हरिनामक घोड़ेवाले (गिर्वणः) हे वाणियोंसे प्रार्थना करने योग्य इंद्र! (त्वया) तुम्हारे विषयमें (वेधसः) सेवा करनेवाले (आभूषन्ति) प्रकट होते हैं (मत्स्व) अपनेको सोमसे तृप्त करो (उक्थ्य) हे प्रशंसा करने योग्य (सुतेषु) सोमोंका संस्कार होनेपर (तव) तुम्हारे (उपमानि) उपमानभूत (श्रवांसि) अन्न प्राप्त हों॥ २॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः।

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।
३ १२ ३ २
देवावीरघशꣳसहा॥ १॥

ऋ० आङ्गिरस अमहीयुः। छ० बृहती। दे० इंद्रः। पञ्चमखण्डे-प्रथमतृचे—प्रथमा। हे सोम! ते तव देवावीः देवकामः अघशंसहा राक्षसानां हन्ता वरेण्यः सर्वैर्वरणीयः मदः मदकरः यः रसः विद्यते, तेन अन्धसा अदनीयेन पवस्व क्षर॥ १॥

हे सोम! (ते) तुम्हारा (देवावीः) देवताओंकी कामना करने वाला (अघशंसहा) राक्षसोंका नाशक (वरेण्यः) श्रेष्ठ (मदः) मदकारी (यः) जो रस है (तेन) उस (अन्धसा) सेवन करने योग्य रससे (पवस्व) पात्रमें पहुँचो॥ १॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
जघ्निर्वृत्रममित्रियꣳ सस्निर्वाजं दिवेदिवे।
१ २ ३ १ २
गोषातिरश्वसा असि॥ २॥

अथ द्वितीया। हे सोम! त्वम् अमित्रियं अमित्रभवं वृत्रं शत्रुं जघ्निः असि हन्ता भवसि। किञ्च दिवे दिवे प्रतिदिनं वाजं संग्रामं सस्निः सम्भक्तोऽसि। अपि च गोषातिः गवां सातिर्दातासि, अश्वसाः अश्वानां दाता चासि गोषातिः—गोदाउ—इति पाठौ॥ २॥

हे सोम! तुम (अमित्रियम) शत्रु (वृत्रम) वृत्रको (जघ्निः, असि)

मारनेवाले हो और (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वाजम्) संग्रामको (सस्निः) सेवन करते हो (गोषातिः) गौओंका दान करनेवाले हो (अश्वसा) घोडोंका दान करने वाले हो ॥ २ ॥

१ २ ३२ २ ३ २ ३२ ३१ २
सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः ।
१ २ ३ २उ ३ २
सीदं छ्येनो न योनिमा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम! त्वं सूपस्थाभिः शोभनोपस्थानाभिः धेनुभिः गोभिः गोविकारैः पयोभिरित्यर्थः । सम्मिश्लः सम्मिश्रितः श्येनः न यथा श्येनः शीघ्रमागत्य स्थानमासीदति तद्वत् योनिं स्वकीयं स्थानम् आसीदन्, न—इति संप्रत्यर्थे इदानीम् अरुषः भुवः आरोचमानो भव ॥ भुवः भवः-इति वा पाठौ ॥ ३ ॥

हे सोम ! तुम (सोपस्थाभिः) श्रेष्ठ आकृतिवालीं (धेनुभिः) गौओं के दुग्धादिसे (संमिश्लः) मिलेहुए (श्येनः, न) जैसे बाज शीघ्र ही आकर अपने स्थान पर बैठजाता है तैसे ही (योनिम्, आसीदन्) अपने स्थान पर स्थित होते हुए (न) इस समय (अरुषःभुवः) दीप्यमान हूजिये ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३१
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ १ ॥

अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा । पूषा पोषकः सर्वेषां भगः भजनीयः रयिः धनहेतुः अयं सोमः पुनानः पवित्रे पूयमानः सन् अर्षति कलशमभिगच्छति । तथा विश्वस्य सर्वस्य भूमनः भूतजातस्य पतिः पालयिता सोमः उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ व्यख्यत् स्वतेजसा प्रकाशयति अनेन लोकद्वयवर्त्तित्वं सूचितम् ॥ १ ॥

(पूषा) सबका पोषक (भगः) आराधना करने योग्य (रयिः) धनका हेतु (अयम्) यह सोम (पुनानः) दशापवित्रमें शुद्ध होता हुआ (अर्षति) कलशमें प्राप्त होता है तथा (विश्वस्य) सब (भूमनः) प्राणिमात्रका (पतिः) पालन करनेवाला (सोमः) सोम (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनोंको (व्यख्यत्) अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । प्रियाः प्रियतमाः घृष्वयः अत्यन्तदीप्ताः, यद्वा अहं प्रथमतः स्तौमि, अहं पुरस्तात् स्तौमि-इति परस्परं स्पर्द्धमानाः गावः स्तुति-लक्षणा वाचः मदाय सोमस्य मदार्थं समनूषत संस्तुवन्ति, उ प्रसिद्धौ यद्वा गावो धेनवः सोमस्य मदाय शब्दायन्ते । ततः पवमानासः पूयमानाः इंदवः दीप्ताः सोमासः सोमा पथः मार्गान् कृण्वते क्षरणार्थं कुर्वन्ति ॥ २ ॥

(प्रियाः) परम प्यारी (घृष्वयः) अत्यन्त दीप्त अथवा पहिले मैं स्तुति करूं, पहिले मैं स्तुति करूं इस प्रकार स्पर्धा करनेवाली (गावः) स्तुतिकी वाणियें (मदाय) सोमके मदके निमित्त (समनूषत) स्तुति करती हैं (उ) यह बात प्रसिद्ध है (पवमानासः) शुद्ध किये जाते हुए (इंदवः) दीप्त (सोमासः) सोम (पथः) क्षरणके मार्गोंको (कृण्वते) करते हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
१ २र ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ओजिष्ठः ओजस्वितमः यः तृतीयो रसोऽस्ति तं श्रवाय्यं श्रवणीयं रसम् आभर अस्मभ्यमाहर । किञ्च यः रसः पञ्च चर्षणीः पञ्चजनान् निषादपंचमान् चतुरो वर्णान् अभि तिष्ठति । अपि च येन रसेन वयं रयिं धनं च वनामहे सम्भजामहे यद्वा येन त्वां रयिं याचामहे तमाभर ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम (यः) जो तीसरा रस (ओजिष्ठः) शक्तिमान् है (श्रवाय्यम्) उस दुग्धादिसे मिलानयोग्य रसको (आभर) हमें दो और (यः) जो रस (पञ्च चर्षणीः) चारों वर्ण सहित निषाद वर्णके मनुष्योंको (अभितिष्ठति) प्राप्त होता है (येन) जिस रससे हम (रयिम्) धनको (वनामहे) याचना करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रत-
३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
रीतोषसां दिवः । प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचि-

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

क्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥ १ ॥

ऋ० भार्गवः कविः । छ० बृहती । दे० सोमः । अथ तृतीयतृचे—प्रथमा । अयं सोमः पवते अभिषूयते । कीदृशः सोमः ? मतीनां मतयः स्तोतारः तेषां वृषा वर्षकः कामानां विचक्षणः विद्रष्टा अह्नाम् उषसाम् दिवः द्युलोकस्य आदित्यस्य वा प्रतरीता प्रवर्द्धयिता किञ्च सिन्धूनां स्यन्दमानानाम् उदकानां प्राणा प्राणयिता चेतयिता अनितेः (अदा० प०) शानचि बहुलं छन्दसि (२, ४, ७३)—इति शब्विकरणस्य लुक् सुपां सुलुगित्याकारः (७, १, ३९) कलशान् अचिक्रदत् शब्दं करोति प्रवेष्टुम् । किं कुर्वन् ? इंद्रस्य हार्दि हृदयम् आविशन् प्रविशन् मनीषिभिः मनस ईषितृभिः स्तुतिभिः स्तुत इति शेषः । व्यवहितमपि मनीषिभिरित्येतत् पवत इत्यनेन सम्बध्यते ॥ अह्नाम् अह्नः—इति उषसाम् उषसः—इति, प्राणा क्राणा—इति, अचिक्रदत्—अवीवशत् इति च पाठः ॥ १ ॥

(मतीनां, वृषा) स्तुति करनेवालोंके मनोरथोंको पूरा करनेवाला (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (अह्नाम्) दिनोंका (उषसाम्) उषःकालों का (दिवः) द्युलोकका (प्रतरीता) बढ़नेवाला (सिन्धूनाम्) बहने वाले जलोंका (प्राणा) बढ़ानेवाला या उनको चेतना देनवाला (मनीषिभिः) स्तुतियोंसे प्रशंसा किया हुआ (सोमः) सोम तुम (इंद्रस्य) इंद्रके (हार्दि) हृदयमें (आविशन्) प्रवेश करना चाहते हुए (कलशान्, अचिक्रदत्) कलशोंकी ओरको शब्द करते हो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २र ३ १ २

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशा-

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३

ꣳ असिष्यदत् । त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षर-

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न्निन्द्रस्य वायुꣳ सख्याय वर्धयन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयंसोमःमनीषिभिःमेधाविभिः अध्वर्य्वादिभिः पवते पूयते । यद्वा अयं मनीषिभिर्द्धाराभिः पवते क्षरति । कीदृशोऽयम् ? पूर्व्यः पुराण कविः मेधावी नृभिः नेतृभिः अध्वर्य्वादिभिः यतः सन् कोशान् कलशान् प्राप्त परि असिष्यदत् परितः स्यन्दते स्रवति । त्रितस्य त्रिषु स्थानेषु लोकेषु विस्तृतस्य इंद्रस्य यजमानस्य सम्बन्धि

नाम नामकमुदकं जनयन् उत्पादयन् मधु मधुरं रसं क्षरन् क्षरति किं कुर्वन्? इंद्रस्य सख्याय सखित्वाय वायुं वर्द्धयन् प्रवृद्धं कुर्वन्॥ असिष्यन् अचिक्रदत्—इति पाठौ वायुं वायोः—इति च वर्द्धयन्-कर्त्तवे—इति च ॥ २ ॥

(पूर्व्यः) पुरातन (कविः) मेधावी सोम (मनीषिभिः) अध्वर्यु आदि के द्वारा (पवते) पवित्र किया जाता है और (नृभिः) अध्वर्यु आदिकोंसें (यतः) नियमित किया हुआ सोम (कोशान्) कलशोंमें प्राप्त होनेको (पर्यसिष्यदत्) चारों ओरको बहता है (त्रितस्य) तीनों लोकों में फैलेहुए (इंद्रस्य) इंद्रके (नाम) जलको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (मधु) मधुर रसको (इंद्रस्य) इंद्रके (सख्याय) मित्रभावके लिये (वायुम्) वायुको (वर्द्धयन) बढ़ाता हुआ (क्षरन्) पात्रमें टपकता है २

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

अयं पुनान उषसो अरोचयदयꣳ सिन्धुभ्यो अभ-

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३

वदु लोककृत् । अयं त्रिःसप्त दुदुहान आशिरꣳ

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। अयं सोमः पुनानः पूयमानः उषसः अरोचयत् अदीपयत्। अयं सिन्धुभ्यः स्यन्दमानेभ्यः वसतीवरीभ्यः अभवत् समृद्धो भवति। उ—इति पूरणः। कीदृशोऽयम्? लोककृत् लोकानां कर्त्ता वर्षकृत्वाद्रेतोधारकत्वाच्चास्य लोककृत्त्वम्। अयं सोमः त्रिःसप्त एकविंशतिं गाः ऋङ्मुखेन आशिरं दुदुहानः दुहानः दोहस्य प्रयोजकत्वात् कर्त्तोपचारः। मत्सरः मदकरः चारु रमणीयं पवते क्षरति। किमर्थम्? हृदे हृदयाय हृदय—गमनाय॥ अरोचयत्–विरोचयत् इति पाठौ॥ ३॥

(लोककृत्) वर्षा करने वाला वा वीर्य स्थापन करनेवाला होनेसे लोकोंका कर्त्ता (अयम्) यह सोम (पुनानः) संस्कार किया जाता हुआ (उषसः) उषाको (अरोचयत्) प्रकाशित करता हुआ (सिन्धुभ्यः) वहनेवाले वसतीवरी जलोंसे (अभवत्) समृद्ध होता है (अयम्) यह सोम (हृदे) हृदयमें जानेके लिये (त्रिः सप्त) इक्कीस गौओंको (दुदुहानः) दुहता हुआ (मत्सरः) मदकारी (चारु) रमणीय (पवते) वहता है॥ ३॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः।

३ १ २र ३२३१ २उ ३२ ३२
एवा ह्यसि वीरयुरेव शूर उत स्थिरः ।
३२ ३ २ ३ १२
एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

ऋ० अङ्गिरस-श्रुतकक्षो वा । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । एवाहीति षष्ठे खण्डे—प्रथमतृचे—प्रथमा । हे इंद्र ! त्वं वीरयुः वीरान् युद्धकर्म्मणि समर्थान् शत्रून् हन्तुं कामयमानः एव असि भवसि खलु । हि प्रसिद्धौ अतएव त्वं शूरः सामर्थ्यवान् एव भवसि । उत अपि च स्थिरः संग्रामे धैर्य्यवान् भवसि एकत्र स्थित्वैव शत्रून् सम्प्रहरसीत्यर्थः । एवं सति ते तव मनः राध्यं स्तुतिभिः आराधनीयम् एव । यतोऽनेन मनसा त्वं शत्रुवधं संग्रामे धैर्य्यादिकं करोषीति तव मन एव सवः स्तुत्यमित्यर्थः ॥ १ ॥

हे इंद्र ! तू (वीरयुः) युद्ध कर्म्ममें समर्थ शत्रुओंको मारनेकी कामना करता हुआ (एव) ही (असि) है (हि) क्योंकि-तू (शूर एव) शूर ही है (उत) और (स्थिरः) धैर्यवान् है, इसीकारण (ते) तुम्हारा (मनः) मन (राध्यम्, एव) स्तुतियोंसे आराधना करने योग्य ही है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ १३ १ २
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
१ २ ३ १ २
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे तुविमघ ! तुविरिति बहु नाम (निघ० २,१,१) बहुधन इंद्र ! विश्वेभिः सर्वैः धातृभिः कर्म्मधारकैः यद्वा देवानां हविर्दानेन पोषयितृभिः सर्वैः यजमानैः तव रातिः गवाश्वादिदानं धायि तैर्धार्य्यत एव, दधातेर्लुङि कर्म्मणि रूपम् । चित् एवार्थे । अथ अनन्तरमेव हे इंद्र ! एवंविधस्त्वं नः अस्माकं यष्टॄणामपि सचा धनादिदानेन, कर्म्मसहायो भव ॥ इंद्रनस्सचा-इंद्रमेसचा-इति पाठौ ॥ २ ॥

(तुवीमघ) हे बहुत धनवाले (इंद्र) इंद्र ! (विश्वेभिः) सकल (धातृभिः) देवताओंको हवि देकर पोषण करनेवाले यजमानों करके (रातिः) तुम्हारा दिया हुआ गौ घोडा आदि धन (धायि चित्) धारण किया ही जाता है (अथ) और हे इन्द्र ! ऐसे तुम (नः) हम यजन करनेवालोंके (सचा) धन आदि देकर कर्म्ममें सहायक हूजिये ॥ २ ॥

२उ ३१२ ३१ २र
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
१ २ ३२३ १२
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे वाजानां पते ! अन्नानां पते ! बलानां वा, हे इंद्र! तन्द्रयुः निष्कारणं निवृत्तकर्मत्वादालस्ययुक्तः ब्रह्मेव ब्राह्मण इव त्वं मा उ षु भुवः सुष्ठु मा भव सर्वदा अस्मत्—कर्मरतो भवेत्याशासनम् । तदेवाह—सुतस्य अभिषुतस्य ततः गोमतः गव्येन क्षीरेण दध्ना वा मिश्रणवतः सोमस्य पात्रेण मत्स्व माद्य हृष्टो भव ॥ ३ ॥

(वाजानां पते) अन्नोंके बलोंके स्वामी हे इंद्र ! (तन्द्रयुः) निष्कारण कर्मानुष्ठान त्यागकर आलस्य युक्त हुए (ब्रह्मेव) ब्राह्मण की समान तुम (मा उ षु भुवः) न हूजिये अर्थात् सदा हमारे कर्म्म में रत रहिये यह प्रार्थना है (सुतस्य) संस्कार किये हुए (गोमतः) गोदुग्धादिसे मिलेहुए सोमके पात्रसे (मत्स्व) आनन्दित हूजिये ॥३॥

२ ३ १ २ ३१२ ३ १२
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
३ १ २ ३२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥१॥

ऋ० मधुच्छन्दः । छ० अनुष्टुप् । दे० इंद्रः । द्वितीयतृचे—प्रथमा । विश्वाः सर्वाः गिरः अस्मदीयाः स्तुतयः इन्द्रम् अवीवृधम् वर्द्धितवत्यः वृधेर्णिचि चङि उऋ त् (७, ४, ७)—इत्यनुवृत्तौ नित्यं छन्दसि (७ ४, ८)—इति ऋकारस्य ऋकार-विधानात् लघूपधगुणाभावः,निपातस्वरः (८, १, २८) कीदृशमिन्द्रम् ? समुद्रव्यचसं समुद्रवद् व्याप्तवन्तं, रथीनां रथ-युक्तानां योद्धॄणां मध्ये रथीतमम् अतिशयेन रथयुक्तं, वाजानाम अन्नानां पतिं स्वामिनं सत्पतिं सतां सन्मार्गवर्त्तिनां पालकं पत्यावैश्वर्य्ये (६, २, १८)-इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥ १ ॥

(विश्वाः) सकल (गिरः) हमारी स्तुतियोंने (समुद्रव्यचसम्) समुद्रकी समान व्याप्त (रथीनां, रथीतमम्) रथोंवाले योधाओंमें श्रेष्ठ रथी (वाजानाम्) अन्नोंके (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) संमार्गमें चलनेवालोंकी रक्षा करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (अवीवृधन्) बढ़ाया १

३ १ २ ३ २ ३ १ २
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे शवसस्पते! बलस्य पालकेन्द्र! ते तव सख्ये अनुग्रहप्रयुक्ते सखित्वे वर्त्तमाना वयं वाजिनः अन्नवन्तः भूत्वा मा भेम शत्रुभ्यो भीतिं प्राप्ता मा भूम। अतः त्वाम् अभयहेतुम् अभि प्र णोनुमः सर्वतः प्रकर्षेण स्तुमः णु स्तुतौ (अदा०, प०) णो नः (६, १, ६५) इति नत्वम्, यङो लुक्(२, ४, ७४) प्रत्ययलक्षणेन (१,१,६२) सन्यङोः (६, १, ९)—इति द्विर्भावः, गुणो यङ्लुकोः (७, ४, ८२)-इत्यभ्यासस्य गुणः प्रत्ययलक्षणेन धातुसंज्ञायां (३, १, ३२) लटो मस् (३, ४, ७८) अदादिवद्भावात् शपो लुक् (२, ४, ७२) कीदृशं त्वाम्? जेतारं युद्धेषु जयशीलम् अपराजितं क्वापि पराजय-रहितम्। प्रनोनुमः प्रणोनुमः—इति पाठौ ॥ २ ॥

(शवसस्पते) बलके रक्षक (इंद्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारे (सख्ये) मित्रभावमें वर्तमान हम (वाजिनः) अन्नवाले होकर (मा भेम) शत्रुओं से न डरें (जेतारम्) युद्धोंमें विजय पानेवाले (अपराजितम्) कहीं भी पराजय न पाये हुए (त्वाम्) तुम्हें (अभि प्र णोनुमः) अभय पाने के लिये सब प्रकारसे प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यदा वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३

अथ तृतीया। इन्द्रस्य सम्बन्धिन्यः रातयः धनदानानि पूर्वीः अनादिकाल-सिद्धाः, अस्येन्द्रस्य सर्वदा यष्टृभ्यः धनदानमेव स्वभाव इत्यर्थः, एवं सति इदानीन्तनोऽपि यजमानः स्तोतृभ्यः ऋत्विग्भ्यः गोमतः गोसहितस्य वाजस्य अन्नस्य पर्य्याप्तं मघं धनं यदा मंहते दक्षिणारूपेण ददाति, तदानीं रातयः बहु-धन-दान-पूर्वकाणीन्द्रस्यात्म—विषयाणि रक्षणानि न विदस्यन्ति विशेषेण नोपक्षीयन्ते। यदा यदि—इति पाठौ। मघं, रेक्णः, रिक्थं—इत्यादिष्वष्टाविंशतिसंख्याकेषु धननामसु (निघ० २, २०) मघशब्दः पठितः। दातिदाशति-इत्यादिषु दशसु दानकर्मसु मंहते-इति पठितम् (निघ० ३, २०, १०)। पूर्वीः—पुरुशब्दस्य वोतोगुणवचनात् (४, १, ४४)—इति ङीप्, आद्यस्योकारस्य दीर्घश्छान्दसः, जसि दीर्घाज्जसि च (६, १, १०५)-इति निषेधं बाधित्वा वा छन्दसि (६, १, १०६)-इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम्, ङीपः प्रत्ययस्वरेणोदात्तत्वम्। मंहते-शपः पित्वादनु-

दात्तत्वम्, तिङश्च ल–सार्वधातुकस्वरेण तिङ्ङतिङः (८, १, २८)—इति निघातो न भवति निपातैर्यद्यदिहन्त (८, १, ३०)–इति निषेधात्

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ–महेश्वरः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्तक-श्रीवीर-बुक्क-भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे तृतीयाऽध्यायः।

(इन्द्रस्य) इन्द्रके (रातयः) धनके दान (पूर्वीः) अनादिकाल से होते आये हैं अर्थात् यज्ञ करनेवालों को धन देनेका इंद्रका स्वभाव ही है, इसकारण इस समयका यजमान भी (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों को (गोमतः) गौओं सहित (वाजस्य) अन्नका (मघम्) धन (यदा) जब (मंहते) दक्षिणारूपसे देता है तब (रातयः) बहुतसा धन, दे कर इंद्रकी कीहुई अपनी रक्षाएँ (न वि दस्यन्ति) विशेष रूपसे नहीं घटती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः
तृतीयोऽध्यायश्च समाप्तः।



अथ चतुर्थोऽध्याय आरभ्यते ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे, तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ ३ ॥

३१ २ ३१२ ३२ ३१२३ १२
एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
१ २ ३१ २र
विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः । छ० गायत्री । दे० सोमः। प्रथमखण्डे---एते असृग्रमिति प्रथमतृचे--प्रथमा । तत्र तिरः पवित्रं तिर्य्यग् गच्छन्तं दशापवित्रं प्रति आशवः शीघ्रगामिनः एते पवमाना इन्दवः सोमाः विश्वानि सर्वाणि सौभगा सौभगानि धनानि अभि लक्ष्य असृग्रम् ऋत्विग्भिः सृज्यन्ते ॥ १ ॥

(तिरः पवित्रम्) तिरछे दशा पवित्रके प्रति (आशवः) शीघ्रगामी (एते) यह (इंदवः) सोम (विश्वानि) सकल (सौभगा) सौभाग्यदायक धनोंको (अभि) लक्ष्य करके (असृग्रम्) ऋत्विजों के द्वारा सुसिद्ध किये जाते हैं ॥ १ ॥

३१ २ ३२ ३२ ३२ ३१२ ३ १२
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः ।
१२ ३२ ३ १२
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वाजिनः बलवन्तः सोमाः पुरु बहूनि दुरिता दुरितानि विघ्नन्तः विशेषेण नाशयन्तः तोकाय अस्माकं पुत्राय सुगा अतिसुख रूपाणि धनानि अर्वतः अश्वांश्चात्मना आत्मना स्वयमेव कृण्वतः ददत इत्यर्थः । ऋत्विग्भिः सृज्यन्त इति पूर्वेण सम्बन्धः । त्मना-तन इति पाठौ अर्वतः अर्वते---इति च ॥ २ ॥

(वाजिनः) अन्न वा बल देनेवाले सोम (पुरु) बहुतसे (दुरिता) पापोंको (विघ्नन्तः) विशेषरूप से नष्ट करतेहुए (तोकाय) हमारे पुत्रके लिये (सुगा) अति सुखरूप धनोंको (अर्वतः) घोड़ोंको भी (त्मना) स्वयं ही (कृण्वन्तः) देते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३क २र ३ २
कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
इडामस्मभ्यꣳ संयतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सोमाः अस्माकं गवे अस्मभ्यं च संयन्तं यदस्मात् संयच्छति । तद् वरिवः धनम् इडाम् अन्नञ्च कृण्वन्तः कुर्वन्तः सुष्टुतिम् अस्मदीयां शोभनां स्तुतिम् अभ्यर्षन्ति आभिमुख्येन गच्छन्ति ३

(सोमाः) सोम (गवे) हमारी गौओंके लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (संयतम्) दृढ़ (वरिवः) धनको (इडाम्) अन्नको (कृण्वन्तः) करतेहुए (सुष्टुतिम्) हमारी सुन्दर स्तुतिको (अभ्यर्षन्ति) अभिमुख होकर प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीयतृचे प्रथमा । मनौ अधि मनुष्ये यागं कुर्वाणे सति । यद्वा मनावधि मनुर्मन्तव्यो यज्ञस्तस्मिन् पवमानः पूयमानः पुनानो वा राजा राज-शब्देन सोमोऽभिधीयते सोमं राजानमकृण्वन् (य० मा० २९, ७२)-इत्यादिषु दृष्टत्वात्, स राजा सोमः मेधाभिः स्तुतिभिः सह ईयते गच्छति । कुत्र अन्तरिक्षेण आकाशमार्गेण द्रोणकलशं प्रति यातवे यातुम् । द्रोणाभिगमन-काले हि स्तोतृभिः स्तूयते खलु ॥ १ ॥

(मनौ,अधि) मनुष्य के यज्ञ करने पर (पवमानः) पूयमान (राजा) सोम (मेधाभिः) स्तुतियों के साथ (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्गसे द्रोण कलशमें (यातवे) प्राप्त होनेको (ईयते) जाता है ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणो देववीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! देववीतये देवानां पानाय देवानां कामाय वा सुष्वाणः अभिषुतो वा त्वं सहः शत्रुभिर्भवनसमर्थं बलं जुवः जु-इति गत्यर्थः शत्रून् प्रति शीघ्रगमनं यद्वा सर्वतो गमनशीलं बलम् ।

किञ्च न—इति चार्थे वर्चसे वर्चदीप्तौ (भ्वा० आ०) दीप्त्यै सर्वत्र प्रकाशनाय रूपं च नः अस्मभ्यम् आ भर आहर प्रयच्छ ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (देववीतये) देवताओंके पीनेके लिये (सुष्वाणः संस्कार किया हुआ तू (सहः) शत्रुओंका तिरस्कार करने में समर्थ बलको (जुवः) सर्वत्र फैलने वाले बलको (न) और (वर्चसे) सर्वत्र दीप्तिके लिये रूपको (न) हमें (आभर) दो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

आ न इन्दो शातग्विनं गवां पोषँ स्वश्व्यम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २

वहा भगत्तिमूतये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्दो ! पात्रेषु क्षरणशील ! दीपनशील ! वा हे सोम ! शातग्विनं शतसहस्रसंख्याकाभिः गोभिः युक्तम् गवाम् पोषम् गवादीनां पुष्टिवर्द्धनं स्वश्व्यं शोभनाश्व-संघ-सहितं भगत्ति भगदत्ति भजनीय—धन—दानञ्च ऊतये रक्षणाय नः अस्माकम् आवह प्रापय । गवादींश्च तेषां वृद्धिं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (शातग्विनम्) सैंकड़ों गौओंसे युक्त (गवां पोषम्) गौओंको पुष्टि देनेवाले (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ोंके समूहसे युक्त (भगत्तिम्) ऐश्वर्यके दानको (नः) हमारे समीप (आवह) पहुंचाओ ३

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतँ सधस्थेषु महोदिवः ।

१ २ ३ १ २

चारुँ सुकृत्ययेमहे ॥ १ ॥

ऋ० कविः । छ० गायत्री । दे० सोमः । तन्त्वा नृम्णानीति पञ्चर्चं तृतीयम् सूक्तम्, तत्र प्रथमा । महोदिवः महतो द्युलोकस्य सधस्थेषु सह-स्थानेषु स्थितं, नृम्णानि धनानि बिभ्रतं अस्मदर्थं धारयन्तम् चारुम् कल्याणं हे सोम ! तं तादृशं पवमान-लक्षणं त्वा त्वां सुकृत्यया शोभन-क्रियया ईमहे धनानि याचामहे ॥ १ ॥

(महोदिवः) महान् द्युलोकके (सधस्थेषु) स्थानोंमें स्थित (नृम्णानि) धनोंको (बिभ्रतम्) हमारे निमित्त धारण करते हुए (चारुम्) कल्याणरूप (तम्) तिस (त्वा) तुझको (सुकृत्यया) सुन्दर अनुष्ठानके द्वारा (ईमहे) याचना करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २

संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।

३ १ २र ३ १ २
शतं पुरो रुरुक्षणिम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! संवृक्तधृष्णुं संवृक्ताः संछिन्नाः धृष्णवो धर्षणशीलाः शत्रवो येनासौ संवृक्तधृष्णुः तम् उक्थ्यं उक्थार्हं प्रशस्यम्, महामहिव्रतं महीयबहु-कर्माणं, मदं मदकरं शतं बहूनि पुरः शत्रूणाम् पुराणि रुरुक्षणिं विनाशयंतम्, त्वां धनानाम् ईमहे इति सम्बंधः ॥ २ ॥

(संवृक्तधृष्णुम्) नष्ट किये हैं उग्र शत्रु जिसने ऐसे (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (महामहिव्रतम्) अनेकों महत्वके कार्य्य करने वाले (मदम्) मदकारी (शतम्) सैंकड़ों (पुरः) शत्रुओंके नगरोंको (रुरुक्षणिम्) नष्ट करने वाले तुमसे धनकी याचना करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३क२र १ २ ३ २
अतस्त्वा रयिभ्ययद्राजानꣳ सुक्रतो दिवः ।
३ १ २ ३ १ २
सुपर्णो अव्यथी भरत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सुक्रतो ! शोभनकर्मन् ! पवमान सोम ! रयिः रयिम् धनम् प्रति अभि अयत् अभिगमयति राजानम् त्वा त्वाम् अतः दिवः [अमुष्मात् द्युलोकात् अव्यथी व्यथारहितः सुपर्णः श्येनवत् भरत् आहरत् । तथा च श्रूयते—आदाय श्येनो अभरत् सोमम् (ता० ब्रा०)-इति । अव्यथी-अव्यथिः—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ कर्म्मवाले सोम ! (रयिः, अभि, अयत्) धनके समीप पहुंचाने वाले (राजानम्) दिपते हुए (त्वा) तुम्हें (अतः दिवः) इस द्युलोकसे (अव्यथी) व्यथारहित (सुपर्णः) सुपर्ण (आभरत्) लाता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
३ १ २र
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अधा अथ विचर्षणिः कर्मणाम् विद्रष्टा अभिष्टिकृत् यजमानानाम् अभीष्ट-फलस्य कर्त्ता सोमः इंद्रियं स्वकीयं फलं हिन्वानः प्रेरयन् ज्यायः प्रशस्यतरं महित्वं महत्त्वम् आनशे प्राप्नोति ॥ ४ ॥

(अधा) और (विचर्षणिः) कर्मोंका विशेषरूपसे द्रष्टा (अभिष्टि-कृत्) यजमानोंको इच्छित फल देने वाला सोम (इंद्रियम्) अपने फल

को (हिन्वानः) प्रेरणा करता हुआ (ज्यायः)परम श्रेष्ठ (महित्वम्) महिमाको (आनशे) फैलाता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २३ १ २र ३ १ २
विश्वस्मा इ स्वर्दृशे साधारणꣳ रजस्तुरम् ।
३ २ ३२ ३ १ २
गोपामृतस्य विभरत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । रजस्तुरम् उदकस्य प्रेरकम् ऋतस्य यज्ञस्य गोपाम् गोपयितारं विश्वस्मै सर्वस्मै स्वर्दृशे देवाय साधारणम् इत् समानम् आवसन्तं सोमं विः पक्षी श्येनो भरत् स्वर्गादाहरत् ॥ ५ ॥

(रजस्तुरम्) जलके प्रेरक (ऋतस्य) यज्ञके (गोपाम्) रक्षक (विश्वस्मै) सकल (स्वर्दृशे) देवताओंके अर्थ (साधारणम्, इत्) समान भावसे पहुंचने वाले सोमको (विः) सुपर्ण (भरत) स्वर्गसे लाता हुआ ॥ ५ ॥

३१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
१ २ ३ १ २र
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १ ॥

ऋ० कश्यपः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृचात्मके चतुर्थसूक्ते—प्रथमा । हे इन्दो ! सोम ! मनीषिभिः ऋत्विग्भिः मृज्यमानः शोध्यमानः त्वम् इषे अस्माकमन्नाय धारया पवस्व क्षर । रुचा रोचमानेनान्धसा गाः पशून् अभीहि अभिगच्छ ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम (मनीषिभिः) ऋत्विजोंसे (मृज्यमानः) शुद्ध किया जाता हुआ तू (इषे) हमारे अन्न के लिए (धारया) धारा से (पवस्व) पात्रमें पहुंच (रुचा) दिपते हुए अन्नरूपसे (गाः) पशुओं को (अभीहि) प्राप्त हो ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २
पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।
१२ ३ २ ३ १ २
हरे सृजान आशिरम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे गिर्वणः । गीर्भिर्वननीय ! हरे ! हरितवर्ण सोम ! आशिरं क्षीरं प्रति सृजानः विसृज्यमानः पुनानः पूयमानः त्वं जनाय जनार्थं वरिवः धनम् ऊर्जम् अन्नञ्च कृधि कुरु ॥ २ ॥

(गिर्वणः) वाणियोंसे प्रार्थना करने योग्य (हरे) हे हरितवर्ण सोम (आशिरम्) दूधमें को (सृजानः) छोड़ा हुआ (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ तू (जनाय) यजमानोंको (वरिवः) धन (ऊर्जम्) अन्न (कृधि) दे ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् ।

३ २ ३ १ २ ३ २

द्युतानो वाजिभिर्हितः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! वाजिभिः हविर्लक्षणान्नयुक्तैर्यजमानैः सह द्युतानः दीप्यमानः देववीतये यज्ञार्थं पुनानः पूयमानः हितः हितकरः त्वम् इंद्रस्य निष्कृतं स्थानं याहि गच्छ । हितः-यतः-इति पाठौ ॥ ३ ॥

हे सोम ! (वाजिभिः) हवि धारण करने वाले यजमानोंके साथ (द्युतानः) दिपता हुआ (देववीतये) यज्ञके निमित्त (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (हितः) हितकारी तू (इंद्रस्य) इंद्रके (निष्कृतम्) स्थान को (याहि) जा ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।

३ २ ३क २र

हव्यवाड्जुह्वास्यः ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । द्वितीयखण्डे-प्रथमतृचे--प्रथमा । अग्निः आहवनीयाख्यः तस्मिन् प्रक्षिप्यमाणेन अग्निना निर्मन्थन-प्रणीतेन वा सह समिध्यते सम्यक् दीप्यते । कीदृशोऽग्निः ? कविः मेधावी गृहपतिः यजमान—गृहस्य पालकः युवा नित्य-तरुणः हव्यवाट् हविषो वोढा वहतेः वहश्च (३, २, ६४)-इति ण्विः प्रत्ययः । णित्वादुपधावृद्धिः (७, २, ११६) गतिकारकोपपदात् कृत् (६,२,१३९)-इत्युत्तर--पद-प्रकृतिस्वरत्वम् जुह्वास्यः जुहूरूपेण मुखेन युक्तः । हूयते अनयेति जुहूः श्रुजुवच्च (उ० २, ६१,)—इति क्विप्, तत्सन्नियोगाद् (३, २, १७८ वा०) दीर्घश्च, श्लुवद्भावात् द्विर्भावः, चुत्वजश्त्वे, प्रातिपदिकस्वरेणान्तोदात्तः (फि० १, १) जुह्वास्यं यस्येति बहुव्रीहौ पूर्वपद प्रकृतिस्वरत्वेन स एव शिष्यते (८, २, १) शेषनिपातः, यणादेशे-

उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य (८, २, ४)-इत्याकारः स्वरितः

(कविः) मेधावी (गृहपतिः) यजमानके घरका रक्षक (युवा) नित्य तरुण (हव्यवाट्) हवि पहुंचाने वाला (जुह्वास्यः) जुहू रूप मुख वाला (अग्नि) आहवनीय अग्नि (अग्निना) मथ कर बने ये हुए अग्निके साथ (समिध्यते) भले प्रकारसे दीप्त होता है ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति ।

१ २ ३ १ २

तस्य स्म प्राविता भव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने! देव! यः हविष्पतिः यजमानः दूतं त्वाम् सपर्य्यति परिचरति। तस्य यजमानस्य प्राविता भवस्म अवश्यं रक्षको भव। हूयंत इति हविः अर्चि-शुचि (उ० २, १०७)-इत्यादिना इसिः, प्रत्ययस्वरेण इकार उदात्तः (३, १, ३), हविषः पतिः हविष्पतिः नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य (८, ३, ४५)-इति षत्वम् पत्यावैश्वर्य्ये (६, २, १८)-इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। सपर्य्यति-सपरशब्दात् कण्ड्वादिभ्यो यक् (२, १, २७)—इति यक् धातुप्रकरणात् गुणप्रतिषेधाद्य- र्थात् यकः कित्वाच्च सपरशब्दस्य धातुत्वात्ततो विहितस्य यक आर्द्ध- धातुकत्वे सति अतो लोपः (६, ४, ४८)—इति लोपः सनाद्यन्ता धातवः (३, १, ३२)—इति धातुसंज्ञायां तिप् कर्त्तरि शप् (३, १, ६८) तस्मिन् पूर्वस्य अतो गुणे (६, १, ९६)-इति पररूपत्वम् यकः प्रत्यय-स्वरेणोदात्तत्वम् (३, १, ३) शपा सह एकादेशस्य एकादेश उदात्त० (८, २, ५)-इत्युदात्तत्वम् तिङ्ङतिङ (८, १ २८)-इति इति निघातो न भवति यद्वृत्तान्नित्यम्(८, १, ६६)-इति प्रतिषेधात्

(अग्ने देव) हे अग्निदेव! (यः) जो (हविष्पतिः) यजमान (दूतम्) देवताओंको हवि पहुँचानेवाले (त्वाम्) तुम्हे (सपर्यति) आराधन करता है (तस्य) उसका (प्राविता) पूर्णतया रक्षक (भव स्म) अवश्य हो ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।

१ २

तस्मै पावक मृडय ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हविष्मान् हविर्युक्तः यः यजमानः देववीतये देवानां हविर्लक्षणहेतुयागार्थम् अग्निम् आविवासति अग्नेः समीपे विशेषेणागत्य परिचर्य्या करोति। हे पावक! अग्ने! तस्मै मृडय तं यजमानं सुखय। देववीतये–वी गतिप्रजनकान्त्यशनखादनेषु (अदा० उभ०) इत्यस्मादशनार्थात् क्तिन् देवानां वीतिर्यस्मिन् यागे स देववीतिः बहुव्रीहौ पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वम् नब्विषयस्यानिसन्तस्य (फि० २, ३) इति पर्युदासाद्धविः शब्दोदात्तः, मतुपः सर्वानुदात्तत्वात् स एव शिष्यते। आविवासति–वा गति–गन्धनयोः (अदा० प०)—अस्मादन्तर्भावितण्यर्थादागमयितुमिच्छतीत्यर्थे सन् आह्वानेच्छा परिचर्य्यायां पर्य्यवस्यतीति विवासति–शब्दः परिचर्य्यार्थे निघण्टौ (३; ५, १०) पठितः, द्विर्भावः अभ्यासस्य ह्रस्वः (७, ४, ५९) सन्यतः (७, ४, ७९)-इति इत्वम् अग्निया द्विर्नित्यम् (६, १, १९७)–इत्याद्युदात्तत्वम्, तिङ्ङतिङः (८, १, २८)–इति निघातो न भवति यद्वृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६–इति प्रतिषेधात् तिङि चोदात्तवती (८, १, ७१)-इत्याङो सह सुपेत्यत्र (२, १, ४) सहेति योगविभागादाङस्तिङा सह समासे समासान्तोदात्तत्वे प्राप्ते (८, १ २२३) परादिश्छन्दसि बहुलम् (६, २, १९९)–इत्युत्तर–पदाद्युदात्तत्वम्। तस्मै—क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् (२, ३, १३ वा०)–इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी ॥ ३ ॥

(पावक) हे अग्ने! (यः) जो (हविष्मान्) हवियुक्त यजमान (देववीतये) देवताओंके यजनके लिये (अग्निम्, आविवासति) अग्नि के समीप आकर विशेष रूपसे परिचर्या करता है (तस्मै) उस यजमानके अर्थ (मृडय) सुखदो॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।

१ २ ३ २ ३ १ २

धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥ १ ॥

ऋ० मधुश्छन्दः। छ० गायत्री। दे० मित्रावरुणौ। अथ द्वितीयतृचे प्रथमा। अहमस्मिन् कर्म्मणि हविः-प्रदानाय पूतदक्षं पवित्रबलं मित्रं हुवे आह्वयामि। ह्वयतेः बहुलं छन्दसि (२, ४, ७३)–इति शपो लुकि सति हवः सम्प्रसारणम् (६, १, ३२)–इत्यनुवृत्तौ बहुलं छन्दसि (६, १, ३४)–इति सम्प्रसारणे उवङादेशः तिङ्ङतिङः (८, १, २८)–इति निघातः। तथा रिशादसं रिशानां हिंसकानाम् अदसमत्तारम् वरुणञ्च

हुवे । कीदृशौ मित्रावरुणौ ? घृताचीं घृतमुदकमञ्चति भूमिं प्रापयति या धीः येन कर्मणा तां घृताचीं धियम् साधन्ता साधयन्तौ राध साध संसिद्धौ (दि० प०)—इत्यस्मादन्तर्भावितण्यर्थाल्लटः शत्रा-देशे (६, १, १६१) श्नुं बाधित्वा व्यत्ययेन (३, १, ८५) शप अनु-पदेशत्वात् उपरि शतृ प्रत्ययस्य ल सार्वधातुकानुदात्तत्वम् द्वितीया द्विवचनस्य शपश्च अनुदात्तौ सुप्पितौ (३, १, ४) इत्यनुदात्तत्वे धातोः (६, १, १६२)—इति धातुस्वर एव शिष्यते सुपां सुलुक्० (७, १, ३९)—इत्यादिना विभक्तेराकारादेशः ॥ १ ॥

मैं इस कर्म में हवि देनेके निमित्त (पूतदक्षम्) पवित्र बलवाले (मित्रम्) मित्र देवताको (रिशादसम्) हिंसकोंके भक्षक (वरुणं, च) वरुणको भी (हुवे) पुकारता हूँ, वह मित्र और वरुण देवता (घृताचीं) जिससे कि—भूमिपर जल पहुँचाते हैं ऐसे (धियम्) कर्मको (साधन्ता) सिद्ध करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २
ऋतेन मित्रावरुणावृधावृतस्पृशा ।
१ २ ३ १ २
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे मित्रावरुणौ! मित्रश्च वरुणश्चेति मित्रावरुणौदेवता द्वन्द्वे च (६,३,२६)–इति पूर्वपदस्यानङादेशः तादृशौ युवां क्रतुं प्रवर्त्त-मानमिमं सोमयागम् आशाथे, आनशाथे व्याप्नुवन्तौ छन्दसि लुङ्-लङ्-लिटः (३, ४, ६)–इति वर्त्तमाने लिट् नुडभावश्छान्दसः । केन ? ऋतेन अवश्यम्भावितया सत्येन फलेन अस्मभ्यं फलं दातुमित्यर्थः । कीदृशौ युवाम् ? ऋतावृधौ ऋतमित्युदकनाम (निघ० १, १२, ६) सत्यं वा यज्ञं वा–इति यास्कः उदकादीनामन्यतमस्य वर्द्धयितारौ । अत एव ऋतस्पृशा उदकादीन् स्पृशन्तौ । कीदृशं क्रतुम ? बृहन्तम् अङ्गरुपा-ङ्गैश्चातिप्रौढम् ॥ २ ॥

(मित्रावरुणौ) हे मित्र और वरुण देवता तुम (ऋतावृधौ) सत्य-और यज्ञके बढ़ाने वाले हो (ऋतस्पृशौ) सत्यका ही स्पर्श करते हो तुम (बृहन्तम्) अङ्ग उपाङ्गोंसे पूर्ण (क्रतुम) इस सोमयागको (ऋतेन) सत्यफलसे (आशाथे) युक्त करते हो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।

१ २   ३ १ २
दक्षं दधाते अपसम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। मित्रावरुणा मित्रवरुणौ एतौ देवौ नः अस्माकं दक्षम् बलम् अपसं कर्म्म च दधाते पोषयतः कीदृशौ? कवी मेधाविनौ तुविजाता तुविजातौ बहूनामुपकारकतया समुत्पन्नौ उरुक्षया बहुनिवासौ मित्रावरुणौ-मित्रशब्दः प्रातिपदिक—स्वरेणान्तोदात्तः (फि० १, १) वरुणशब्दो नित्स्वरेणाद्युदात्तः (६, १, १९७)। तुविजातौ—बहूनामुपकारकतया तत्सम्बन्धित्वेन जाताविति षष्ठीसमासे समासान्तोदात्तत्वम् (८, १, २२३) चतुर्थीसमासे हि क्ते च (६, २, ४५)—इति क्वचित् पूर्वपदप्रकृतिस्वरः स्यात्। उरूणाम् बहूनां क्षयौ उरुक्षयौ क्षि निवास-गत्योः (तु० प०)-इति धातोः क्षियन्त्यस्मिन्निति क्षय इत्यधिकरणे एव अच्-प्रत्ययांतस्य चितः (६, १, १६३)—इत्यन्तोदात्तत्वे प्राप्ते क्षयो निवासे (६, १, २०१)-इत्याद्युदात्तत्वं विहितम्, समासे तु समासस्य (८, १, २२३) इत्यन्तोदात्तत्वं बाधित्वा कृदुत्तरप्रकृतिस्वरेण (६, २, १३९) प्राप्तु मुत्तरपदाद्युदात्तत्वम्। यद्यपि थाथादिस्वरेणान्तोदात्तत्वेन बाध्यते तथापि पदादिश्छन्दसि बहुलम (६, २, १९९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वं द्रष्टव्यम्। दक्षः—दक्षतेरुत्साहकर्मणो ञित्वादाद्युदात्तः (६, १, १९७)। आप्यते फलमनेनेत्यपः कर्म्मः,आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा (उ० ४, १०९ दौ वृ०)—इत्यन्नन्तस्य अपसस्पारे इत्यादौ नित्त्वा (६, १, १९७) दाद्युदात्तस्यापसशब्दस्यात्र व्यत्ययेन प्रत्ययाद्युदात्तत्वम् (३, १, ३) ॥ ३ ॥

(कवी) मेधावी (तुविजाता) अनेकों उपकारक रूपसे उत्पन्न हुए (उरुक्षया) अनेकों यजमानोंके यहाँ निवास करनेवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवता (नः) हमारे (दक्षम्) बलको (अपसम्) कर्मको (दधाते) पुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १   २र   ३ १   २र
इन्द्रेण सꣳ हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।
३ १   २ ३ १ २
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥

ऋ० मधुच्छन्दः। छ० गायत्री। दे० मरुद्गणः। अथ तृतीयतृचे प्रथमा। हे मरुद्गण! त्वम् इन्द्रेण सञ्जग्मानः संगच्छमानः सं दृक्षसे हि सम्यग् दृश्येथाः खलु अवश्यमस्माभिर्द्रष्टव्यमित्यर्थः! कीदृशेने-

न्द्रेण ? अबिभ्युषा भीति-रहितेन कीदृशाविन्द्रमरुद्गणौ ? मन्दू नित्य-प्रमुदितौ समानवर्चसा तुल्य-दीप्ती, पुरा कदाचित् वृत्र-वध-दशायाम् इंद्रस्य सखायः सर्वे देवा वृत्र-श्वासेनापसारितास्तदानीमिन्द्रस्य वृत्रसम्बन्धि—सकल सेना—जयार्थं मरुद्भिः सङ्गमो भूतः-सोऽयमर्थो वृत्रस्य त्वा श्वसथा (छ० आ० ४, १, ४, २, १७६ पृ०)-इति मन्त्रे संगृहीतः । इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन्-इति ब्राह्मणे (ता०) प्रपञ्चितश्च इंद्रशब्दः परमैश्वर्यवन्तं मरुद्गणञ्चाभिधत्ते तदानीमिन्द्रस्य सम्बोधनं बहिरेवाध्याहर्त्तव्यम् । तथा चेयमृक् यास्केनैवं व्याख्याता—इन्द्रेण हि सन्दृश्यसे संगच्छमानोऽबिभ्युषा गणेन मन्दू मन्दिष्णू युवां स्थोऽपि वा मन्दुरा तेनेति स्यात् समानवर्चसेत्येतेन व्याख्यातम् (४, १२)-इति । सन्दृक्षसे-सम्पश्येथाः । दृशेश्चेति वक्तव्यम् (७, १, ७ वा०)-इत्यात्मनेपदम्, दृशेः लिङर्थे लेट् (३, ४, ७) इति प्रार्थनायां लेट् थासस्से (३, ४, ८०) लेटोऽडाटौ (३, ४, ९४)-इत्याडागमः सिब्बहुलं लेटि (३, १, ३४)—इति सिप्संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः (प० शे० ९३)—इति गुणाभावः । व्रश्चादिना (८, २, ३६) षत्वम् । षढोः कः सि (८, २, ४१)—इति कत्वम् आदेशप्रत्ययथोः (८, ३, ६९)-इति सिपः षत्वम् । बहुलग्रहणात् सिपः परस्ताच्छबपि भवति, सिपो व्यवधानात् पश्यादेशो न भवति शपः पित्वादनुदात्तत्वम् (३, १, ४) उत्तरस्य लसार्वधातुकानुदात्तत्वम (६, १,१८६) धातुस्वर एव शिष्यते (६, १, १६२) हिशब्दयोगात् तिङ्ङतिङः (८, १, २८,)—इति निघातो न भवति । हि च (८, १, ३४)--इति प्रतिषेधात् । सञ्जगमानः--गमेः सम्पूर्वात् छन्दसि लुङ्लङ्लिटः (३, ४, ६)—इति वर्त्तमाने लिट् । समो गम्यृच्छि० (१, ३, २९)--इत्यात्मनेपद—विधानात् लिटः कानजादेशः (३, २, १०६) द्विर्भावः (६, १, ८) हलादिः शेषः (७, ४, ६०) अभ्यासस्य चुत्वम् (७, ४, ६१, गमहन० (६, ४, ९८)—इत्युपधा—लोपः, कानचश्चित्त्वादन्तोदात्त्वम्, गतिसमासे (२, २, १८) कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्त्वम् (६, २, १३९) । अबिभ्युषा—ञिभी भये (जु०, प०) पूर्ववल्लिट् (३, ४, ६) शेषात् कर्त्तरि० (१, ३, ७८)—इति परस्मैपदम्, क्वसुश्च (३, २, १०७)—इति लिटः क्वसुरादेशः तस्य कित्वाद् गुणाभावः (१, १, ५) अभ्यासस्य ह्रस्वजश्त्वे (७, ४, ६९)—(८, ४, ५४) कादिनियमात् प्राप्त इट् (७, २, १३) वस्वेकाजाद्घसाम् (७, २, ६७)—इति नियमात् निवर्त्तते नञ् समासे तृतीयैकवचने भत्वाद् वसोः सम्प्रसारणम

(६, १, १३१)—इति वकारस्य उकारादेशः, सम्प्रसारणाच्च (६, १, १०८)-इति पूर्वरूपत्वं बाधित्वा एरनेकाच (६, ४, ८२)-इति यणादेशः अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १६८) पूर्वेण सह संहितायामोकारस्य एङः पदान्तादति (६, १, १०९)—इति पररूपत्वे प्राप्ते प्रकृत्यान्तः पादमव्यपरे (६, १, ११५)—इति प्रकृतिभावः। मन्दू- मद स्तुति—मोद-मद स्वप्न—कान्ति-गतिषु (भ्वा०, आ०) इदितो नुम् धातोः (७, १, ५८)-इति नुमागमः कुरित्यनुवृत्तौ खरु शंकु पीयु नीलंगु लिगु (उ० १, ३६)-इत्यत्राविभक्तिकनिर्देशाद्धन्तेर्हिङ्गिति- वद्धातवन्तरादपि कुरित्युक्तम् प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः (३, १, ३) द्विवचने सौ, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (६, २, १०४) तृतीयैकवचने च सुपां सुलुक्० (७, १, ३९)—इत्यादिना पूर्वसवर्णदीर्घत्वम्। समानं वर्चो ययोरिति वा यस्येति बहुव्रीहिः द्विवचने सुपां सु—लुक्० (७१, ३९)- इत्याकारः समान—पदस्य प्रातिपदिकान्तोदात्तत्वम् (फि० १, १) बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृति—स्वरेण (८, २, १) तदेवावशिष्यते ॥ १ ॥

(मन्दू) नित्य प्रसन्न (समानवर्चसा) तुल्य तेजस्वी मरुत्गण (अविभ्युषा) निर्भय (इंद्रेण) इन्द्रके (सं जग्मानः) साथ हो।तेहुए (संदृक्षसे हि) अवश्य ही भले प्रकारसे दर्शन दो ॥ १ ॥

१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। अहेत्यवधारणार्थः। आत् अह वर्षर्तोरनन्तरमेव स्वधामनु इतः परं जनिष्यमाणमन्नमुदकं वा अनुलक्ष्य महतो देवाः पुनः गर्भत्वम् आ ईरिरे मेघ—मध्ये जातस्य गर्भाकारं प्रेरितवन्तः प्रतिसंवत्सरमेवं कुर्वन्तीति दर्शयितुं पुनःशब्दः प्रयुक्तः। कीदृशा मरुतः ? यज्ञियं यज्ञार्हं नाम दधानाः धारयन्तः। सप्तसु गणेषु मरुतामीदृक् वातानामीदृक् चेत्यादीनि यज्ञयोग्यानि नामान्यत्राम्नातानि। अन्धः- इत्यादिष्वष्टाविंशति—संख्याकेष्वन्ननामसु ऊर्क् (१५) रसः (१६) स्वधा (१७)-इति पठितम्, निघ० २, ७) अर्णः-इत्यादिष्वेकशत- संख्याकेषूदक--नामसु च तेजः (९६) स्वधा (९७) अक्षरम् (९८)- इति पठितम् (निघ० १, १२)। आत्—अह निपातावाद्युदात्तौ (फि० ४, १२)। स्वधा—स्वं लोकं दधाति पुष्णातीति स्वधा, आतो-

ऽनुपसर्गे कः (३, २, ३) कृदुत्तरप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १६९) । अनु-पुनः—शब्दौ निपातावाद्युदात्तौ (फि०, ४, १२) । गर्भस्य भावो गर्भ-त्वं प्रत्ययस्वरः (३, १, ३) । एरिरे—अन्तर्भावितण्यर्थात् इण् गतौ (अदा० प०)—इत्यस्मादनुदात्तेतः परस्य लिटो झस्य इरेच् चित्त्वा-दन्तोदात्तः (६, १, १६२) सहसुपा (२, १, ४)—इत्यत्र सुपा योग-विभागादाङा सह तिङः समासस्य (८, १, २२३)—इत्यन्तोदात्तत्वम् इजादेश्च गुरुमतोनृच्छः (३, १, ३६)—इत्याम् न भवति मन्त्रत्वात् अह शब्द--योगान्निघाताभावः तु—पश्यप्रश्यताहैः पूजायाम् (८, १, ३९)—इति निषेधात् । दधानाः—शानचश्चित्वादन्तोदात्तत्वे प्राप्ते (६, १, १६२) अभ्यस्तानामादिः (६, १, १८९)—इत्याद्युदात्तत्वम् । यज्ञमर्हति यज्ञियम्, यज्ञर्त्विग्भ्यां घ-खञौ (५, १, ७१)—इति घ-प्रत्ययः । आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् (७, १, २) इतीयादेशः प्रत्ययस्वरेण इकार उदात्तः (३, १, ३) ॥ २ ॥

(आत् अह) वर्षा ऋतुके अनन्तर ही (स्वधामनु) आगेको होने वाले अन्न और जलकी ओरको (यज्ञियं, नाम दधानाः) यज्ञके योग्य नामको धारण करते हुए (मरुतः) मरुत् देवता (पुनः गर्भत्वम्) मेघोंके भीतर फिर जलको (ईरिरे) प्रेरणा करते हुए ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अस्ति किञ्चिदुपाख्यानम् पणिभिर्देवलोकाद् गावो-ऽपहृताः, अन्धकारे प्रक्षिप्ताः, ताश्चेन्द्रो मरुद्भिः, सहाजयत—इति । एतच्च बहृचानुक्रमणिकायां सूचितम् । पणिभिरसुरैर्निगूढा गा अन्वेष्टुं सर-मादेवशुनीन्द्रेण प्रेषिता ता ऋग्भिः पणयो मित्रीयन्तः प्रोचुः इति । मंत्रां-तरेऽपि दृष्टांततया सूचितम्—निरुद्धा आपः पणिनेव गावः—इति तदेव उपाख्यानमभिप्रेत्योच्यते—हे इंद्र ! वीडुचित् दृढमपि दुर्गमस्थानम् आरुजत्नुभिः अभिमञ्जद्भिः वह्निभिः वोढृभिः अन्यत्र नेतुं समर्थैः मरुद्भिः सहितस्त्वं गुहाचित् गुहायामपि स्थापिता उस्रियाः गाः अन्व-विंदः अन्विष्य लब्धवानसि । ओजः (१) पाजः (२)-इत्यादिष्वष्टा-विंशतिसंख्याकेषु बल--नामसु दक्षः (१३) वीलु (१४) च्यौत्नम् (१५)—इति पठितम् । (८; ९) नव--संख्याकेषु गो,-नामसु

अघ्न्या (१) उस्रा (२) उस्त्रिया (३)-इति पठितम् नि० (२ ११) वीडु-प्रातिपदिक-स्वरः (फि० १, १)। चित्-आदिरुदात्तः । आरुजत्नुभिः—रुजो भङ्गे (तु० प०) इत्यस्मादौणादिकः कत्नुच् प्रत्ययः, कित्त्वाद् (१, १, ५) गुणाभावः, चित्वादन्तोदात्तत्वम् (६, १, १६) समासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च (६, २, १६०) । गुहासप्तम्यां डादेशः (७, १, ३९) ग्रामादीनाञ्च (फि० २, १५)-इत्याद्युदात्तः । वह्निभिः-वहि-श्रि यु-श्रु-ग्ला-हा-त्वरिभ्यो निः (उ० ४, ५१) इति नि-प्रत्ययः, नित्वादाद्युदात्तः । अविंदः-शेमुचादीनाम् (७,१, १९)-इति नुमागमः, लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः (६, ४, ७१) । वसंतीति उस्त्रियाः, वसोः कर्त्तरि यक् प्रत्ययः, षत्वाभावश्च, बाहुलकादूहनीयः (३, १, ८५) उक्तं हि यत्र पदार्थविशेषमुक्तं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तद् ग्राह्यम् (३, १, ८५ भा०)-इति इकारः प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः (३, १, ३) ॥ ३ ॥

एक उपाख्यान है, कि—पणियोंने देवलोकसे गौओंको हर लिया और अंधकारमें डालदीं, उनको इंद्रने मरुतोंको साथ लेकर जीता उसी का आभास इस मंत्रमें मिलता है-(इंद्र) हे इंद्र (वीडुचित्) दृढ़ दुर्गस्थानको भी (आरुजत्नुभिः) चारों ओरसे तोड़ने वाले (वह्निभिः) अन्यत्र लेजानेको समर्थ (मरुद्भिः) मरुतों सहित तुमने (गुहाचित्) गुहामें स्थापित भी (उस्त्रियाः) गौओंको (अन्वविंदः) पाया ॥ ३ ॥

१ २३ १२ ३२ ३१ २र ३२३२
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
३ १ २र
इन्द्राग्नी न मर्द्धतः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः। छ० गायत्री । दे० इंद्राग्नी । अथ चतुर्थे तृचे प्रथमा। ता तौ तादृशौ इंद्राग्नी हुवे आह्वये । ययोः इंद्राग्न्योः पुरापूर्वस्मिन् काले कृतं विश्वं सर्वम् इदम् पूर्वास्वृक्षु कीर्तितं वीर्य्यं पप्ने पन्यते ऋषिभिः स्तूयते-ताविन्द्राग्नी हुवे इत्यन्वयः । तौ चेन्द्राग्नी न मर्द्धतः मर्द्धतिः हिंसाकर्मा (निघ० २, १९ १४) स्तोत्दन् अहिंस्रः । अतोऽस्मान् आहुती रक्षतामिति भावः ॥ १ ॥

(ता) उन (इंद्राग्नी) इंद्र अग्निको (हुवे) आह्वान करता हूँ (ययोः) जिन इंद्र और अग्निका (पुरा) पूर्वकालमें (कृतम्) किया हुआ (विश्वम्) सब (इदम्) पहिली ऋचाओंमें वर्णन किया हुआ पराक्रम (पप्ने) ऋषियोंसे स्तुति किया जाता है वह इंद्र और अग्नि

स्तोताओंकी (न) नहीं (मर्द्धतः) हिंसा करते हैं इस कारण हमारी आहुतियोंकी रक्षा करें ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उग्रा विघनिता मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
१ २ ३ १ २
ता नो मृडात ईदृशे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। उग्रा उग्रौ उद्गूर्णबलौ अतएव मृधः शत्रून् विघनिता विघनितौ विशेषेण हतवन्तौ इंद्राग्नी हवामहे आह्वयामहे। तौ चेन्द्राग्नी ईदृशे अस्मिन् संग्रामे नः अस्मान् मृडातः सुखयताम् यद्वा मृडातिः उपदयाकर्मा नोऽस्माकं मृडातः उपदयां कुरुताम् ॥ २ ॥

(उग्रा) परमबली (मृधः, विघनिता) शत्रुओंके नाशक (इंद्राग्नी) इंद्र और अग्निको (हवामहे) आह्वान करते हैं, वह इंद्र अग्नि (ईदृशे) इस संग्राममें (नः) हमैं (मृड़यातः) सुख दैं ॥ २ ॥

२ ३ ३ १ २र ३ १ २र
हथो वृत्राण्यार्य्या हथो दासानि सत्पती ।
३२उ २ ३ १ २
हथो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे इंद्राग्नी ! आर्य्या आर्य्यः कर्मानुष्ठातृभिः कृतानि वृत्राणि उपद्रवजातानि हथः हिंसथः। तथा सत्पती सतां पालयितारौ सन्तौ दासानि दासाः कर्महीनाः शत्रवः तैः कृतानि चोपद्रवजातानि हथः। अपि च विश्वाः सर्वाः द्विषः द्वेष्ट्रीः शत्रुभृताः प्रजाः अप हथः विनाशयथः अतोऽस्माकममयेवमेव कुरुतामिति भावः। हथः हन इति पाठौ ॥ ३ ॥

हे इंद्राग्नी (आर्या) कर्मानुष्ठान करने वालोंके किये हुए (वृत्राणि) उपद्रवोंको (हथः) नष्ट करते हो (सत्पती) सत्पुरुषोंके रक्षक होते हुए (दासानि) कर्म हीन शत्रुओंके किए हुए उपद्रवोंको नष्ट करते हो और (विश्वाः) सकल (द्विषः) द्वेष करने वाले शत्रओंको (अपहथः) विनष्ट करते हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो
३ १
मदच्युतः ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छं०बृहती । दे०सोमः । अथ तृतीयखण्डे प्रथमतृचे-प्रथमा । आयवः गमन—शीलाः सोमासः सोमाः मद्यम् मदकरम् मदम् आत्मीयं रसम् अभिपवन्ते अभितो निर्गमयन्ति । कुत्रेत्युच्यते समुद्रस्य अंतरिक्षस्य अधिविष्टपे अधिकं समुच्छ्रिते पवित्रे यद्वा समुद्रस्य यस्मात् समुद्द्रवन्ति रसास्तस्य कलशस्य अधि उपरि विष्टपे स्थाने पवित्रे निर्गमयन्ति । कीदृशाः ? मनीषिणः मनस ईशितारो मत्सीरसः मदकराः मदच्युतः मदस्राविणः ॥ विष्टपे विष्टपि-इति पाठौ मदच्युतः-स्वर्विदः इति च ॥ १ ॥

(आयवः) गमनशील (मनीषिणः) मनके ईश (मत्सरासः) मदकारी (मदच्युतः) मदस्रावी (सोमासः) सोम (समुद्रस्य) कलश के (अधि विष्टपे) ऊपर पवित्रस्थानमें (मद्यम्) मदकारी (मदम्) अपने रसको (अभिपवन्ते) सब ओरसे निकालते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
तरत्समुद्रं पवमान ऊर्म्मिणा राजा देव ऋतं
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ १ २ ३
बृहत् । अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान
३ २ ३ २
ऋतं बृहत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीयो । पवमानः पूयमानः देवः द्योतमानः बृहत् अत्यंतम् ऋतम् सत्यम्भूतः राजा सोमः समुद्रम् अन्तरिक्षं कलशं वा ऊर्मिणा धारया तरत् तरति हिन्वानः प्रेर्य्यमाणः । ऋतम्बृहत् अत्यतं सत्यभूतः स सोमः मित्रस्य वरुणस्य मित्रावरुणयोः धर्मणा धारणार्थं प्र अर्षा प्राप्नोति प्रकर्षेण गच्छति । अर्षा अर्षन्-इति पाठौ ॥ २ ॥

(पवमानः) शुद्ध किया जाता हुआ (देवः) दीप्यमान (बृहत्) अत्यन्त (ऋतम्) सत्यस्वरूप (राजा) सोम (समुद्रम्) कलश को (ऊर्मिणा) धारा करके (तरत्) तैरता है (हिन्वानः) प्रेरणा किया हुआ (ऋतम्बृहत्) अत्यंत सत्यस्वरूप वह सोम (मित्रस्य वरुणस्य) मित्रावरुणके (धर्मणा) धारणके लिए (प्रअर्षा) प्रकर्ष करके आता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २३क२र
नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः ३

अथ अध्यास्यारूपा तृतीया । नृभिः कर्म-नेतृभिः ऋत्विग्भिः येमानः नियम्यमानः हर्य्यतः स्पृहणीयो विचक्षणः विद्रष्टा देवः दीप्यमानः समुद्र्यः अन्तरिक्षे भवः राजा सोमः इन्द्रार्थं पवते इति शेषः । येमाणः येमानः इति पाठौ ॥ ३ ॥

(नृभिः) ऋत्विजों करके (येमानः) नियमित कियाहुआ (हर्यतः) चाहने योग्य (विचक्षणः) विशेष द्रष्टा (देवः) दीप्यमान (समुद्र्यः) अंतरिक्षमें उत्पन्न हुआ (राजा) सोम इंद्रके निमित्त पवित्र होता है ।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १
तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निः ऋतस्य धीतिं

२र ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १
ब्रह्मणो मनीषाम् । गावो यन्ति गोपतिं पृच्छ-

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥ १ ॥

ऋ० पराशरः । छ० त्रिष्टुप् । दे०सोमः अथ द्वितीयातृचे-प्रथमा । वह्निः वोढा यजमानः तिस्रो वाचः ऋग्यजुः सामात्मिकाः स्तुतिः प्रेरयति । तथा ऋतस्य यज्ञस्य धीतिं धारयित्रीं ब्रह्मणः परिवृढस्य सोमस्य मनीषां मनस ईशित्रीं कल्याणीं वाचं प्रेरयति । किञ्च गोपतिम् वृषभम् यथा गावोऽभिगच्छन्ति तद्वत् गवां स्वामिनं सोमं गावः पृच्छमानाः पृच्छन्त्यः सत्यः यन्ति स्व-पयसा मिश्रयितुम् अभिगच्छन्ति । तथा वावशानाः कामयमानाः मतयः स्तोतारश्च सोमम् यन्ति स्तोतुमभिगच्छन्ति ॥ १ ॥

(वह्निः) यजमान (तिस्रः वाचः) ऋक्—यजु—सामरूप तीन वाणियोंको (प्रेरयति) उच्चारण करता है (ऋतस्य) यज्ञकी (धीतिम्) धारण करने वाली (ब्रह्मणः) सोमकी (मनीषाम्) कल्याणी वाणी को उच्चारण करता है (गावः) गौएँ (गोपतिम्) जैसे वृषभको (यंति) प्राप्त होती हैं तैसे ही (पृच्छन्त्यः) बूझती हुई अर्थात् रंभाती हुई (सोमम्) सोमको अपने दूधसे मिलानके निमित्त (यन्ति) प्राप्त होती हैं (वावशानाः) कामना करते हुए (मतयः) स्तोता भी स्तुति करने को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
सोम गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १
मतिभिः पृच्छमानाः । सोमः सुत ऋच्यते पूय-
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । धेनवः प्रीणयित्र्यो गावः सोमम् वावशाना कामयमाना भवन्ति, विप्राः मेधाविनः स्तोतारः सोमं मतिभिः स्तुतिभिः पृच्छमानाः पृच्छन्तो भवन्ति सुतः अभिषुतः सोमः पूयमानः ऋत्विग्भिः ऋच्यते क्षरति । तथा त्रिष्टुभः त्रिष्टुब्रूपाः अर्काः अस्माभिः क्रियमाणा एते मंत्राः सोमे सन्नवन्ते सङ्गच्छन्ते । सोमस्सुत ऋच्यते पूयमानः— इति छन्दोगाः, सोमः—सुतः पूयते अज्यमानः—इति बह्वृचाः ॥ २ ॥

(धेनवः) तृप्त करने वाली (गावः) गौएँ (सोमम्) सोम को (वावशानाः) चाहती रहती हैं (विप्राः) स्तुति करनेवाले (सोमम्) सोमको (मतिभिः) स्तुतियोंसे (पृच्छमानाः) बूझने वाले होते हैं (सुतः) संस्कार किया हुआ (सोमः) सोमा (पूयमानः) ऋत्विजों से शोधा जाता हुआ (ऋच्यते) पात्रमें टपकता है (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप्रूप (अर्काः) यह हमारे उच्चारण किये हुए मंत्र (सोमे) सोममें (संनवन्त)मिलते हैं ॥ २॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
स्वस्ति। इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं
३ २ ३ १ २
जनया पुरन्धिम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! परिषिच्यमानः परितः पात्रेषु सिंच्यमानः पूयमानः त्वं नः एवा अस्माकमेव स्वस्ति अविनाशम् आ पवस्व प्रापय। किञ्च बृहता महता मदेन मदकर—रसेन अहम् इंद्रम् आविश प्रविश । तथा वर्द्धय वाचं स्तुति-लक्षणां प्रसिद्धां कुरु। किञ्च पुरन्धिं बहुधियं प्रज्ञानं जनया अस्मभ्यमुत्पादय। वाक्यभेदादनिघातः ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (परिषिच्यमानः) सब ओरसे पात्रोंमें सींचा जाता हुआ तू (नः एव) हमारे ही (स्वस्ति) कल्याणको (पवस्व) पहुंचा और (बृहता) बहुतसे (मदेन) मदकारी रसरूपसे (इंद्रम्)

इंद्रके आत्मामें (आविश) प्रवेश कर तथा (वाचम्) स्तुतिरूपा वाणी को (वर्द्धय) प्रसिद्ध कर (पुरन्धिम्) अनेकों प्रकारके कर्मविषयक ज्ञानको (जनया) हमारे विषै उत्पन्न कर ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ।

१ २र ३ १ २र३ २ १ २
यद्याव इन्द्र ते शतꣳ शतं भूमिरुता स्युः । न त्वा
३ २३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वज्रिन्त्सहस्रꣳ सूर्य्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥

ऋ॰ पुरुहन्मा: छं॰ बृहती । दे॰ इन्द्रः । अथ चतुर्थखण्डे प्रगाथरूपे-प्रथमसूक्ते-प्रथमा । हे इन्द्र ! ते तव प्रति मानार्थं यद् यदि द्यावः द्युलोकाः शतं शतसंख्याकाः स्युः तथापि नाश्नुवन्ति । उत अपि च भूमिः भूम्यः ते तव मूर्त्ति-प्रतिबिम्बाय शतं स्युः तथापि न अश्नुवन्ति हे वज्रिन् ! त्वा त्वाम् सहस्रं सूर्य्याः अगणिता अपि सूर्य्याः न अनुभवन्ति न प्रकाशयन्तीत्यर्थः । न तत्र सूर्य्यो भाति (मु॰ उप॰)-इति श्रुतेः। किं बहुना जातं पूर्वमुत्पन्नं किञ्चित् त्वामनु नाष्ट नाश्नुते तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ नाश्नुवाते सर्वेभ्योऽतिरिच्यसे इत्यर्थः ।ज्यायान् पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाद् दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः इति (बृ॰ उप॰) श्रुतेः॥१॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (ते) तुम्हारी समता करनेको (यत्) जो (द्यावः) द्युलोक (शतम्) सौ (स्युः) हों, तो भी बराबर नहीं होसकते (उत) और (भूमीः) भूमियें (ते) तुम्हारी मूर्त्तिके प्रतिबिम्बके लिये (शतम्) सौ हों (न) तो भी बराबर नहीं होसकतीं (वज्रिन्) हे वज्रधारी (त्वा) तुम्हें (सहस्रम) सहस्रों (सूर्याः) सूर्य (न, अनु) प्रकाशित नहीं करसकते, अधिक क्या कहैं पहिले उत्पन्न हुआ कोई पदार्थ भी (नाष्ट) तुम्हारी बराबरी नहीं करसकता (रोदसी) द्यावापृथिवी भी तुम्हें नहीं पहुँचसकते अर्थात् तुम सबसे बड़े हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
शवसा अस्माꣳ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिन्
३ १ २ ३ १ २
चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे वृषन् ! अभिमतवर्षकेन्द्र ! त्वम् आ पप्राथ आ पूरयसि व्याप्नोषि । कानि ? । विश्वा सर्वाणि वृष्ण्या वर्षकाणि बलानि शत्रुसम्बधीनि । केन साधनेन ? महिना महता शवसा बलेन स्वीयेन अथवा वृष्ण्येत्येतच्छवोविशेषणम् । तथा सति अभिमतवर्षकेण महता बलेन अस्मदीयानि बलानि पूरयसीत्यर्थः । अथ तथा कृत्वा हे शविष्ठ ! बलवत्तम ! गोमति बहुभिः गोभिर्युक्ते व्रजे शत्रुसम्बन्धिनिमित्ते सति अस्मान् अव रक्ष । हे मघवन् ! धनवन् ! वज्रिन् वज्रयुक्तेन्द्र ! कैः साधनैः ? चित्राभिः नानाविधैः ऊतिभिः रक्षणैरिति ॥ २ ॥

(वृषन्) हे अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! तुम (वृष्ण्या) इच्छित फल देनेवाले (महिना) बड़े (शवसा) अपने बल करके (विश्वा) हमारे सकल बलोंको (आपप्राथ) पूर्ण करते हो और ऐसा करके (शविष्ठ) ! हे महाबली ! (मघवन्) हे धनवन् (वज्रिन्) हे वज्रधारी इंद्र ! (गोमति) अनेकों गौओंसे पूर्ण (व्रजे) गोठमें (विचित्राभिः) नानाप्रकारकी (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (नः) हमारी (अव) पालना करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते १

ऋ० मेधातिथिः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा हे वृत्रहन् ! इंद्र ! त्वा त्वाम् वयं घ वयं खलु सुतावन्तः आपः न आप इव प्रवणमभिगच्छामः । पवित्रस्य सोमानां प्रस्रवणेषु वृक्तबर्हिषः तीर्णबर्हिषः स्तोतारश्च त्वां पर्युपासते ॥ १ ॥

(वृत्रहन्) हे इंद्र ! (त्वाम्) तुम्हे (वयं घ) हम ही (सुतावंतः) अभिषव करते हुए (आपः, न) जलोंकी समान नम्र होकर प्राप्त होते है (पवित्रस्य) सोमका (प्रस्रवणेषु) क्षरण होनेपर (वृक्तबर्हिषः) कुशास्तरण करनेवाले (स्तोतारः) स्तोता (पर्युपासते) तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २र ३ १ २ ३ २ १ २ ३ २

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः । कदा

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

सुतं तृषाण ओक आ गमादिन्द्र स्वब्दीव वꣳसगः ॥

अथ द्वितीया। हे वसो! वासयितरिन्द्र! त्वा त्वां सुते अभिषुते सोमे निरेके निर्गमे उक्थिनः नरः नेतारः स्वरन्ति शब्दायन्ते। अपि चेन्द्रः सुतं सोमं प्रति तृषाणः तृष्यन् स्वब्दीव स्वभूतशब्द-इव वंसगः वननीय-गमनो वृषभः शब्दं कुर्वन् कदा ओकः स्थानम् आगमत् आगच्छेत् ॥ २ ॥

(वसो) हे व्यापक इंद्र! (सुते) संस्कार कियेहुए सोमके (निरेके) निकलने पर (उक्थिनः) स्तुति पढ़नेवाले (नरः) ऋत्विज (त्वा) तुम्हारे निमित्त (स्वरन्ति) ऊँचे स्वरसे मन्त्र पढ़ते हैं और इन्द्र (सुतम्) सोमके प्रति (तृषाणः) तृष्णा युक्त होताहुआ (वंसगः) सुन्दरगमन वाला (स्वब्दीव) अपना हर्षसूचक शब्द करता हुआ सा (कदा) कब (ओकः) स्थानको (आगमत्) आवेगा ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम्।

३ १ २ ३ १ २र

पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे।३।

अथ तृतीया। हे धृष्णो! धर्षकेन्द्र! कण्वेभिः कण्वान् मेधाविनः स्तोतॄन् अनुषेध्य विभक्ति—व्यत्ययः (३, १, ८५) सहस्रिणं सहस्र-संख्याकं वाजम् आदर्षि प्रयच्छसि। हे मघवन्! धनवन्! विचर्षणे विद्रष्टरिन्द्र! धृषत धृष्टं पिशङ्गरूपं गोमन्तम् वाजं मक्षू शीघ्रम् ईमहे याचामहे त्वामिति शेषः ॥ ३ ॥

(धृष्णो) हे तर्जना देनेवाले इंद्र! (कण्वेभिः) प्रवीण स्तोताओं को (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्याका (वाजम्) अन्न बल और धन (आदर्षि) देते हो (मघवन्) धनवान् (विचर्षणे) हे विशेषद्रष्टा इंद्र! (धृषत्) धृष्ट (पिशङ्गरूपम्) सुवर्णकी समान दमकतेहुए (गोमन्तम) गौओं सहित (वाजम) धनको (मक्षू) शीघ्र (ईमहे) याचना करते हैं३

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्।

ऋ० वसिष्ठः। छ० बृहती। दे० इंद्रः। अथ प्रगाथरूपे तृतीयसूक्ते-प्रथमा। तरणिरित् युद्धादौ कर्मणि त्वरित एव पुमान् पुरन्ध्या महत्या धिया युजा सहायभूतया वाजम् अन्नं सिषासति सम्भजते पुरुहूतं बहु-

भिराहूतम इंद्रम गिरा स्तुत्या हे यजमानाः ! वः युष्मदर्थम् अहम् आनमे आनतमभिमुखं कुर्वे । तत्र दृष्टांतः नेमिं चक्रस्य वलयम् सुद्रुवं शोभनदारुं तष्टेव यथा वर्द्धकिः दारु-नेमिमानमयते तद्वदित्यर्थः ।

(तरणिरित्) युद्धादि कर्ममें शीघ्रतासे प्रवृत्त हुआ पुरुष (युजा) सहायता देनेवाली (पुरंध्या) बड़ीभारी बुद्धिसे वा सहायता करने वाले अधिक कर्मानुष्ठानसे (वाजम्) अन्नको (सिषासति) प्राप्त होता है। हे यजमानो ! (वः) तुम्हारे निमित्त मैं (गिरा) स्तुतिके द्वारा (पुरुहूतम्) अनेकोंके पुकारेहुए (इंद्रम) इन्द्रको (आनमे) अभिमुख करता हूँ (सुद्रवं, नेमिं तष्टा, इव) जैसे कि-बढ़ई पहियेकी गोलाईके श्रेष्ठ काठको नमाकर अपने अनुकूल करलेता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तꣳ रयिर्नशत्।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्य्यें दिवि ॥

अथ द्वितीया । द्रविणोदेषु धनदातृषु पुरुषेसु दुष्टुतिः असमीचीना स्तुतिः न शस्यते नाभिधीयते। किञ्च स्रेधन्तं हिंसन्तं धनदातृविषयकस्तुत्यादि-कर्माण्यकुर्वन्तमित्यर्थः, एवम्भूतं जनं रयिः धनं न नशत् न व्याप्नोति । तथा हे मघवन् धनवन्निंद्र ! पार्य्यें दिवि सौत्ये दिवसे मावते मत्सदृशाय स्तोत्रे देष्णं दातव्यं यत् धनमस्ति तत् तुभ्यं त्वत्तः सकाशात् सुशक्तिरित् शोभन-स्तुतिक एव स्तोता लभत इति शेषः ॥ न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते-इति छन्दोगाः,न दुष्टती मर्त्यो विंदते वसु इति बह्वृचाः ॥ २ ॥

(द्रविणोदेषु) धन देनेवाले पुरुषोंके विषयमें (दुष्टुतिः) अनुचित स्तुति (न शस्यते) नहीं उच्चारणकी जाती है (स्रेधन्तम्) धन देने वालेकी स्तुति आदि न करनेवालेको (रयिः) धन (न नशत्) नहीं प्राप्त होता है तथा (मघवन्) हे धनवान् इंद्र ! (पार्य्यें दिवि) सोम संस्कारके दिन (मावते) मुझसमान स्तोताके अर्थ (देष्णम्) देने योग्य (यत्) जो धन है (तुभ्यम्) तुमसे (सुशक्तिरित्) सुन्दर स्तुति करनेवाला ही पाता है ॥ २ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थ खण्डः समाप्तः ।

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।
१ २ ३ १ २
हरिरेति कनिक्रदत् ॥ १ ॥

ऋ० त्रित आप्त्यो वा । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ पञ्चमे खंडे प्रथमतृचे-प्रथमा । तिस्रो वाचः ऋगादिभेदेन उदीरते प्रोद्गायन्ति ऋत्विजः । धेनवः आशिरेण प्रीणयित्र्यो गावः मिमन्ति शब्दायंते दोहार्थम्, हरिः हरितवर्णः सोमश्च कनिक्रदत् शब्दं कुर्वन् एति गच्छति द्रोणकलशम् ॥ १ ॥

(तिस्रो वाचः) ऋक्, यजु, साम भेदसे तीन वाणियोंको (उदीरते) ऋत्विज उच्चारण करते हैं (धेनवः) दुग्धसे तृप्त करने वाली (गावः) गौएँ (मिमंति) रँभाती हैं (हरिः) हरे वर्णका सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (एति) द्रोणकलशको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि ब्रह्मीरनूषतं यह्वीर्ऋतस्य मातरः
३ १ २ ३ १ २र
मर्जयन्तीर्दिवःशिशुम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ब्रह्मीः ब्राह्मण—प्रेरिताः यह्वीः महत्यः यह्वः—इति महन्नाम (निघ० ३, ३, १३) शिशु ऋतस्य यज्ञस्य मातरः निर्मात्र्यः स्तुतयः दिवः द्युलोकात् शिशुं-स्थानीयं सोमम् मर्जयन्तीः पावयन्तीः अभ्यनूषत स्तुवन्ति तृतीयस्यामितोदिवि सोम आसीदित्यादि श्रुतेः द्युशिशुत्वं तस्य ॥ मर्जयंतीः ममृ ज्यंते—इति पाठे ॥ २ ॥

(ब्रह्मीः) ब्राह्मणोंकी प्रेरणा करी हुई (यह्वीः) बड़ी (ऋतस्य) यज्ञकी (मातरः) निर्माण करने वालीं स्तुतियें (दिवः) द्युलोकसे (शिशुम्) शिशुरूप सोमको (मर्जयन्तीः) पवित्र करती हुईं (अभ्यनूषत) प्रशंसा करती हैं ॥ २ ॥

३१ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ १
रायः समुद्राँश्चतुरोऽस्मभ्यँ सोम विश्वतः।
१ २ ३ १ २
आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । रायः धनस्य सम्बन्धिनश्च चतुरः समुद्रान् मणिमुक्तादि—धनपूर्णानित्यर्थः । तादृशान समुद्रान् अस्मभ्यम् अर्थाय हे

सोम ! विश्वतः सर्वतः आ पवस्व। तथा सहस्रिणः अपरिमितान् कामान् आपवस्व प्रयस्व चतुःसमुद्रस्य धन-विशेषप्राप्ते तन्मध्यगतधन-भूमि-स्वामित्वमन्तरेणासम्भवात् चतुस्समुद्र-सहित-भूमण्डल-स्वामित्वमेवाशास्ते यजमानः ॥ ३ ॥

(रायः) धनवाले (चतुरः समुद्रान्) चार समुद्रोंको (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (सोम) हे सोम (विश्वतः) सब ओरसे (आपवस्व) दो तथा (सहस्रिणः) सहस्रों कामनाओंको दो ॥ ३ ॥

३२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।
३ १ २ ३१ २ ३ १ २
पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः।

ऋ० यजातिः। छ०अनुष्टुप्। दे०सोमः। अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा। मधुमत्तमाः अतिशयेन माधुर्य्योपेताः अत एव मन्दिनः मदकराः सुतासः अभिषुताः सोमाः पवित्रवन्तः पवित्रे वर्त्तमानाः सन्तः इंद्राय इंद्रार्थम् अक्षरन् पात्रेषु क्षरन्ति । अथ प्रत्यक्षकृतः-वः युष्माकं मदाः मदहेतवः रसाः देवान् इंद्रादीन् गच्छन्तु ॥ १ ॥

(मधुमत्तमाः) अत्यंत मधुरतायुक्त (मन्दिनः) मदकारी (सुतासः) संस्कार कियेहुए सोम (पवित्रवन्तः) दशापवित्रमें पहुंचतेहुए (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (अक्षरन्) पात्रोंमें प्राप्त होते हैं (सोमाः) हे सोमो ! (वः) तुम्हारे (मदाः) मदकारी रस (देवान्) इंद्रादि देवताओंको (गच्छन्तु) प्राप्त हों ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वाचस्पतिमखस्यते विश्वस्येशान ओजसः॥ २ ॥

अथ द्वितीया। इन्दुः सोमः इंद्राय इंद्रार्थं पवते कलशे क्षरति इति देवासः स्तुतिकारिणः स्तोतारः अब्रुवन् वदन्ति यदा स्तोतार एवं ब्रुवंति तदानीं वाचः स्तुतेः पतिः पालयिता यद्वा शब्दस्य स्वामी अत्यंतं शब्दायमान इत्यर्थः तादृशः सोमः मखस्य ते स्तुतिभिः पूजामिच्छति लालसायां सुगागमः। कीदृशः ? ओजसः बलवतः विश्वस्य सर्वस्य ईशानः प्रभुः ॥ ओजसः-ओजसा-इति पाठौ ॥ २ ॥

(इन्दुः) सोम (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (पवते) कलश में टपकता है (इति) ऐसा (देवासः) स्तुति करने वाले (अब्रुवन्) कहते हैं

(वाचः) स्तुतिका (पतिः) रक्षक (ओजसः) बलवान् (विश्वस्य) विश्व का (ईशानः) प्रभु सोम (मखस्यते) स्तुतियोंसे पूजाको चाहता है २

३ १ २ ३ १ २ ३ २
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सोमस्पती रयीणाᳬं सखेन्द्रस्य दिवे दिवे ॥ ३॥

अथ तृतीया । सहस्रधारः बहुविध-धारोपेतः सोमः पवते क्षरति । कीदृशः ? समुद्रः समुद्द्रवन्ति रसः रस-स्थानीयः वाचमीङ्खयः ईखं-तेर्ण्यन्तस्य सुप्युपपदे खश् प्रत्ययः । स्तुतीनां प्रेरयिता रयीणां धनानां पतिः प्रभुः यद्वा रयीणां हविषो द्रातृणाम् यजमानानां पतिः पालयिता दिवेदिवे प्रत्यहम् इंद्रस्य सखा मित्रभूतः सोमः पवते । सोमस्पतिः सोमः पतिः–इति पाठौ ॥ ३ ॥

(समुद्रः) रसरूप (वाचमीङ्खयः) स्तुतियोंका प्रेरक (रयीणाम्) धनोंका (पतिः) स्वामी (दिवे दिवे) प्रति दिन (इंद्रस्य) इंद्रका (सखा) मित्ररूप (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओं वाला (सोमः) सोम (पवते) कलशमें प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि
१ २ ३ १ २ १ २ ३ २र ३ १ २
पर्येषि विश्वतः । अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
३ २ ३ १ २र ३ १ २र
शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥ १ ॥

ऋ० पवित्रः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृतीयतृचे-प्रथमा । हे ब्रह्मणस्पते ! मन्त्रस्य स्वामिन् सोम ! ते पवित्रम् शोधकमङ्गं विततं सर्वत्र विस्तृतम् । सः प्रभुः प्रभविता त्वं गात्राणि पातुरङ्गानि पर्य्येषि परिगच्छसि विश्वतः सर्वतस्तव तत् पवित्रम् अतप्ततनूः पयोव्रतादिना असन्तप्तगात्रः आमः अपरिपक्वः न अश्नुते न व्याप्नोति शृतासः इत् शृता एव परिपक्का एवं वहन्त यागं निर्वहन्तः तत् पवित्रम् समाशत व्याप्नुवन्ति ॥ सन्तदाशत–तत्समाशात—इति पाठौ ॥ १ ॥

(ब्रह्मणस्पते) हे मंत्रोंके स्वामी सोम (ते) तेरा (पवित्रम्) शोधन करने वाला अङ्ग (विततम्) सर्वत्र फैला हुआ है (प्रभुः)

समर्थ तू (गात्राणि) पीने वालेके अङ्गोंको (पर्य्येषि) प्राप्त होता है (विश्वतः) सब ओर तेरा वह पवित्र (अतप्ततनूः) पयोव्रत आदिसे शरीर में सन्ताप न पाता हुआ (आमः) परपाक रहित (न अश्नुते) व्याप्त नहीं होता है (शृतासः,इत्) परिपक्व हुए ही (वहन्तः) यज्ञका निर्वाह करते हुए (तत्) उस दशा पवित्रको (समाशत) व्याप्त होते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २३उ
तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो
२र १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
व्यथिरन् । अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठ-
२र ३ १ २
मधि रोहन्ति तेजसा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । तपोः शत्रूणां तापकस्य सोमस्य पवित्रं शोधकमङ्गं दिवस्पदे द्युलोकस्योत्थिते स्थाने विततं विस्तृतम् । तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत्—इति ब्राह्मणम् । अस्य तन्तवः अंशवः अर्चन्तः दीप्यमानाः व्यस्थिरन् विविधं तिष्ठन्ति पृथिव्यां हविर्द्धाने वा अस्य सोमस्य आशवःशीघ्रगामिनःरसाःपवितारं पावयितारं यजमानम् अवन्ति रक्षन्ति होमद्वारा पश्चाद्धुता दिवः द्युलोकस्य पृष्ठं पृष्ठभागम उन्नतदेशम् तेजसा स्वप्रकाशेन सार्द्धम् अधिरोहन्ति आरोहणं कुर्वन्ति ॥ अर्चन्तः शोचन्तः इति पाठौ अधिरोहन्ति तेजसा अधितिष्ठन्ति चेतसा इति पाठौ।

(तपोः) शत्रुओंके तापक सोमका (पवित्रम्) शोधक अङ्ग (दिवस्पदे) द्युलोकके ऊँचे स्थानमें (विततम्) फैलाहुआ है (अस्य) इसकी (तन्तवः) किरणें (अर्चन्तः) दिपती हुई (व्यस्थिरन्) अनेकों प्रकारसे स्थित होती हैं (अस्य) इस सोमके (आशवः) शीघ्रगामी रस (पवितारम) संस्कार करनेवाले यजमानको (अवन्ति) रक्षा करते हैं (दिवः) द्युलोकके (पृष्ठम्) स्थानको (तेजसा) अपने प्रकाशके साथ (अधिरोहन्ति) चढ़ते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुव-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
नेषु वाजयुः । मायाविनो ममिरे अस्य मायया
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । उषसः सम्बन्धि पृश्निः आदित्यः पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुत एनं वर्णः—इति निरुक्तम् (२. १४) अग्रियः मुख्यः सोऽयम् अरूरुचत् रोचयति । स उक्षा जलस्य सेक्ता भुवनेषु भूतजातेषु मिमेति मिनोति उदकं प्रक्षिपतीत्यर्थः । वाजेयुः तेषामन्नमिच्छन् मायाविनः माया प्रज्ञा तद्वन्तः देवा अस्य सोमस्य मायया प्रज्ञया ममिरे निर्मितवन्तः सोमस्यैकैकांशपानवला अग्न्यादयः स्व—स्वव्यापारेण जगत् सृजन्तीत्यर्थः । तथा अस्य मायया नृचक्षसः नृणां द्रष्टारः पितरः पालका देवाः अङ्गिरसः पितरो वा गर्भम् आदधुः धारयन्ति ओषधीषु च । अत्र सूर्य्यात्मकः सोमः स्तूयते । सूर्य्यरश्म्यनुगमाधीदर्शनाच्चेन्द्रस्य अयमुषसः पृश्निः सविता अरूरुचत् रोचते रोचयति वा सर्वं शिष्टं समानं तत्सम्बन्धिनः नृचक्षसः नृणां द्रष्टारः पितरो जगद्रक्षका रश्मयो गर्भमादधुः वृष्ट्यर्थम् ॥ मिमेति भुवनेषु विसर्त्ति भुवनानि इति पाठौ ॥ ३ ॥

(उषसः) उषावाला (पृश्निः) आदित्य (अग्रियः) मुख्यरूपसे (अरूरुचत्) प्रकाश करता है (उक्षा) जलकी वर्षा करनेवाला वह (भुवनेषु) सकल लोकोंमें (मिमेति) जल डालता है (वाजेयुः) सब लोकोंके लिये अन्न चाहता है (मायाविनः) रचनाकी शक्तिवाले देवता (अस्य) इस सोमकी (मायया) शक्तिसे (ममिरे) अपने २ व्यापारसे जगत्को रचते हुए तथा (अस्य) इस सोमकी शक्ति करके (नृचक्षसः) मनुष्योंके द्रष्टा (पितरः) पालन करनेवाले पितृ नामक देवता ओषधियोंमें (गर्भम्) गर्भको (आदधुः) धारण करते हुए ॥३॥

सामवेदोत्तरार्च्चिके चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ २ २ ३ २ ३ १ २

प्र मᳲहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।

३ १ २ ३ १ २

उपस्तुतासो अग्नये ॥ १ ॥

ऋ० सोभरिः । छ० ककुप्सतोबृहती । दे० अग्निः । अथ षष्ठे खण्डे—प्रथमसूक्तप्र—गाथे प्रथमा । हे उपस्तुतासः ! उपस्तोतारः ! यूयं मंहिष्ठाय दातृतमाय ऋताव्ने ऋतवते यज्ञवते वा बृहते महते शुक्रशोचिषे दीप्ततेजसे अग्नये प्र गायत स्तोत्रं पठत ॥ १ ॥

(उपस्तुतासः) उपस्थित होकर स्तुति करनेवाले हे स्तोताओं! तुम (मंहिष्ठाय) परमदाता (ऋताव्ने) यज्ञवाले (बृहते) महान् (शुक्रशोचिषे)

प्रदीप्त तेजवाले (अग्नये) अग्निके अर्थ (प्रगायत) स्तोत्र पढ़ो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
आ वꣳसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्या-
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३
हुतः । कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा
१ २ ३ १ २
वाजेभिरागमत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मघवा धनवान् द्युम्नी अन्नवान् यशस्वी वा । तथा च यास्कः—द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वा (५, ५)—इति समिद्धः सम्यग् दीप्तः आहुतः आभिमुख्येन हुतः अग्निः वीरवत् पुत्रवत् यशः यशस्करम् अन्नम् आवंसते यजमानेभ्य आ प्रयच्छति, तस्य अस्य अग्नेः भवीयसी अस्मासु अतिशयेन भवितुं योग्या सुमतिः अनुग्रह-बुद्धिः नः अस्मान् अच्छ प्रति वाजेभिः अन्नैः सह कुवित् बहुवारम् । सलिलम् कुविदिति बहु–नाम (निघ० ३, १, १२) आगमत् आगच्छतु भवीयसी–नवीयसी—इति पाठौ ॥ २ ॥

(मघवा) धनवान् (द्युम्नी) अन्नवान् वा यशस्वी (समिद्धः) प्रज्वलित हुआ (आहुतः) अभिमुख होकर होमा हुआ अग्नि (वीर-वत्) पुत्रयुक्त (यशः) यश करनेवाले अन्नको (आवंसते) यजमानों को देता है (अस्य) इस अग्निकी (भवीयसी) हमारे विषयमें अत्यन्त होनेको योग्य (सुमतिः) अनुग्रहकी बुद्धि (नः, अच्छ) हमारे प्रति (वाजेभिः) अन्नों सहित (कुवित्) अनेकों वार (अगमत्) आवै ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
३ १ २ ३ १ २
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥

ऋ० गोपुक्त—अश्वसूक्तो वा । छ० उष्णिक । दे० इंद्रः । अथ द्वितीयतृचे—प्रथमा । हे अद्रिवः ! वज्रवन् इन्द्र ! ते त्वदीयं तं मदम् सोमपान–जनितं हर्षं गृणीमसि गृणीमः प्रशंसामः । गृ शब्दे क्र्यादिः प्वादीनां ह्रस्वः (७, ४, ८०), इदन्तोमसि (७, १ ४६)—इति मस इगागमः । कीदृशम् ? वृषणं वर्षितारं कामानां पृक्षु पृतनासु संग्रा-

मेषु सासहिं शत्रूणाम् अभिभवितारं लोककृत्नुं लोकस्य स्थानस्य कर्त्तारं हरिश्रियं हरिभ्याम् अश्वाभ्यां श्रयणीयं सेव्यम्, उ शब्द एषः समुच्चये पादपूरणे वा पृक्षु-पृत्सु-इति पाठौ ॥ १ ॥

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इंद्र ! (ते) तुम्हारे (वृषणम्) मनोरथ पूरक (पृक्षु) संग्रामोंमें (सासहिम्) शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले (लोककृत्नुम्) लोकके कर्त्ता (उ) और (हरिश्रियम्) हरि नामक अश्वों करके सेवन करने योग्य (मदम्) सोमपानजनित हर्षकी (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन ज्योतीꣳष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! येन आत्मीयेन मदेन आयवे औवंशेयाय मनवे विवस्वतःपुत्राय च ज्योतींषि सूर्यादीनि वृत्रादिभिरावृतानि तद्धरणेन विवेदिथ अलम्भयः प्रज्ञापितवान् प्रकाशितवानसीत्यर्थः तेन मदेन मन्दानः मोदमानस्त्वम् अस्य बर्हिषः वृद्धस्य यज्ञस्य विराजसि विशेषेण दीप्यसे । यद्वा अस्येति तृतीयार्थे षष्ठी,अनेन बर्हिषा वृद्धेन मदेन हृष्यन् विराजसि विशेषेण दीप्यसे ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (येन) जिस अपने मदसे (आयवे) बडी आयुवाले (मनवे) वैवस्वत मनुके अर्थ (ज्योतींषि) सूर्यादि ज्योतियोंके तत्त्वको (विवेदिथ) प्रकाशित करते हुए (मन्दानः) उस मदसे प्रसन्न होते हुए तुम (अस्य बर्हिषः) इस बढे हुए मद करके हर्षको प्राप्त होकर (विराजसि) विशेष शोभा पाते हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! ते त्वदीयं तत् प्रसिद्धं बलम् अद्याचित् अद्यापि पूर्वथा पूर्वस्मिन् काले इव उक्थिनः शस्त्रिणः स्तोतारः अनुष्टुवन्ति क्रमेण प्रशंसन्ति । स त्वं वृषपत्नीः वृषा पर्जन्यः पतिर्यासां तादृशीः अपः दिवेदिवे प्रतिदिवसं जय स्वायत्तं कुरु ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (ते) तुम्हारे (तत्) उस प्रसिद्ध बल की (अद्याचित्)

अब भी (पूर्वथा) पूर्वकाल की समान(उक्थिनः) मंत्रोंकेज्ञाता (अनुष्टुवन्ति) क्रमसे प्रशंसा करते हैं, वह तुम (वृषपत्नीः) मेघ है पति जिनका ऐसे जलोंको (दिवेदिवे) प्रतिदिन (जय) अपनेवशमें करो॥३॥

३ १ २२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्य्यति ।
३ १ २ १ १ २ ३ १ २ ३१ २
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥१॥

ऋ० तिरश्ची । छ० अनुष्टुप् । दे० इंद्रः । तृतीयतृचे—प्रथमा । हे इन्द्र ! यः त्वा त्वां सपर्य्यति सपरशब्दः कण्ड्वादिः हविर्भिः परिचरति । तादृशस्य तिरश्च्याः—एतन्नामकस्य ऋषेर्मम हवं स्तुतिभिस्त्वद्विषयमाह्वानं श्रुधि शृणु । श्रुत्वा च हे इंद्र ! त्वं सुवीर्यस्य शोभनवीर्योपेतस्य यद्वा वीरे पुत्रे भवं वीर्यं सुपुत्रवतः गोमतः गवादिपशुमतः, रायः धनस्य दानेन अस्मान् पूर्द्धि पूरय । एतत्सामर्थ्यं कुत इत्यत आह—त्वं महान् गुणाधिकः श्रेष्ठश्च असि भवसि खलु ॥ १ ॥

(यः) जो (त्वा) तुम्हें (सपर्यति) हवि समर्पण करके आराधना करता है ऐसे (तिरश्च्याः) मुझ तिरश्ची ऋषि के (हवम्) आह्वान को (इंद्र) हे इंद्र ! (श्रुधि) सुनो और सुनकर तुम (सुवीर्यस्य) श्रेष्ठ पुत्रयुक्त (गोमतः) गौ आदि पशुयुक्त (रायः) धनके दानसे हमें (पर्द्धि) पर्ण करो, क्योंकि–तुम (महान्) सबसे बड़े (असि) हो॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
२ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चिकित्विमनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२॥

अथ द्वितीया।हे इंद्र!यः यजमानःनवीयसीं नवतरां पुनःपुनःक्रियमाणतया मन्द्रां मदकरीं गिरं स्तुतिलक्षणां वाचं ते त्वदर्थम् अजीजनत् उदपीपदत् अकार्षीदित्यर्थः । तस्मै स्तोत्रे त्वं प्रत्नां पुरातनीम् ऋतस्य सत्यस्य सम्बन्धि, यद्वा तृतीयार्थे षष्ठी (३,३,६३) सत्येन पिप्युषीं प्रवृद्धां लिड्यङोश्च (६, १, २९)-इति प्यायतेः पीभावः तादृशः चिकित्विन्मनसं कित ज्ञाने क्वसौ रूपम् अकारस्येकारश्छान्दसः चिकित्वांसि ज्ञानानि सर्वेषां हृदयानि ययेति अभयं क्रियमाणं यत्तत्र रक्षणम् तत् सर्वेषां हृदयं प्रज्ञापयतीति । ततः अतीन्द्रियार्थदर्शिकां धियं त्वदीयं रक्षणाख्यं कर्म तस्मै कुरु ॥ यस्त इंद्र—इन्द्रयस्ते–इति व्यत्ययेन पाठो ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (यः) जो यजमान (नवीयसीम्) वारंवार करनेसे परम नवीन (मंद्राम्) आनन्ददायक (गिरम्) स्तुतिरूप वाणीको (ते) तुम्हारे अर्थ (अजीजनत्) उत्पन्न करता हुआ, तिस स्तोता के निमित्त तुम (प्रत्नाम्) पुरातन (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्यसे वढ़ीहुई (चिकित्विन्मनसम्) अतीन्द्रिय विषय को दिखाने वाली (धियम्) बुद्धिको करो ॥ २ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ।

अथ तृतीया । ऋषयः तम् परस्परमाहुतं पूर्वोक्तलक्षणम् उ-इत्यवधारणे तमेव इन्द्रम् स्तवामः स्तुतिभिः स्तुमः । यम् इन्द्रं गिरः अस्माकं स्तुतयः उक्थानि शस्त्राणि च वावृधः प्रावर्द्धयन् । तं स्तुमः ततो वयम् अस्य इन्द्रस्य पुरूणि बहूनि पौंस्यानि वीर्याणि सिषासन्तः, षण सम्भक्तौ सनीडभावपक्षे आत्वे कृते रूपं सनोतेरनः (८, ३, १०८)-इति सांहैतिकम् षत्वम् । तानि वीर्याणि सम्भक्तमिच्छन्तः सन्तो वनामहे तमिन्द्रं स्तुतिभिः सम्भजामहे ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीर-बुक्क भूपालसाम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे चतुर्थोऽध्यायः ।

हम (तम्) पूर्वोक्त लक्षणोंवाले (उ) ही (इंद्रं स्तवामः) इंद्र की स्तुति करते हैं (यम्) जिस इंद्रको (गिरः) हमारी स्तुतियें (उक्थानि) शस्त्र भी (वावृधुः) वढ़ातेहुए, इसकारण हम (अस्य) इस इंद्रके (पुरूणि) बहुतसे (पौंस्यानि) पराक्रमोंको (सिषासन्तः) आराधना करने की इच्छा करतेहुए (वनामहे) प्रार्थना करते हैं ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः॥

चतुर्थाध्यायश्च समाप्तः



पंचमाध्याय आरभ्यते।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे, तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम्॥ ५॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्
१ २ ३ १ २ १ २ २ ३ १ २ ३
पयसा धरीमणि। प्रान्तरिक्षात्स्थाविरीस्ते असृक्षत
१ ३ ३ १ २ ३ १ २
ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः॥ १॥

ऋ० ऋषिगणाः। छ० जगती। दे० सोमः। तत्र प्रथमे खण्डे प्रात-आश्विनीरिति तृचं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा—हे पवमान सोम! ते तव आश्विनीः व्याप्ताः अशु व्याप्तौ (स्वा० आ०) तस्मादौणादिको विनिः ततोऽव्ययत्ययेनाद्युदात्तः धेनवः प्रीणयित्र्यः दिव्याः दिवि भवाः दिवः पतन्त्यो धाराः पयसा युक्ताः धरीमणि धारके द्रोणकलशे प्र असृग्रन् गच्छन्ति ये वेधसः विधातारः ऋत्विजः हे सोम! ऋषिषाण! ऋषिभिः सम्भक्तत्वात् त्वा त्वाम् मृजन्ति अभिषुण्वन्ति ते वेधसः स्थाविरीः स्थविरा धाराः अन्तरिक्षात् सकाशात् प्र असृक्षत पात्रं प्रति सृजन्ति॥ धेनवः धीजुवः—इति पाठौ, प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षतः-प्रातऋषयः स्थाविरीरसृक्षत—इति च॥ १॥

(पवमान) सोम! (ते) तेरी (आश्विनीः) व्यास (धेनवः) तृप्त करनेवाली (दिव्याः) अन्तरिक्षसे पड़नेवालीं धारायें (पयसा) दूधसे युक्त हुई (धरीमणि) द्रोणकलशमें (प्र असृग्रन्) पहुँचती हैं (ये) जो (वेधसः) ऋत्विज (ऋषिषाणः) ऋषियोंके सेवन करे हुए सोम! (त्वा) तुम्हें (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (ते) वह ऋत्विज् (स्थाविरीः) धाराओंको (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (प्र असृक्षत) पात्रमें पहुंचाते हैं॥ १॥

३ २ ३ १ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२
उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि

३ १ २   १ २   ३ २ ३   १   २   ३   २ ३ २ ३
यन्ति केतवः । यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः
२ ३   १   २र   ३ १ २
सत्ता नि योनौ कलशेषु सीदति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । पवमानस्य पूयमानस्य ध्रुवस्य स्वयमविचलितस्य सतः विद्यमानस्य सोमस्य केतवः प्रज्ञापका रश्मयः उभयतः इतश्चामुतश्च परि यन्ति परितो गच्छन्ति । अभिषवसमये एवं भवति । यदि यदा पवित्रे दशापवित्रे हरिः हरितवर्णोऽयं सोमः अधि मृज्यते तदानीं सत्ता सदनशीलोऽयं योनौ योनिषु स्थानेषु कलशेषु द्रोणकलशादिपात्रेषु निषीदति निषण्णो भवति । योनौ योना-इति च पाठौ ॥ ३ ॥

(पवमानस्य) संस्कार कियेजाते हुए (ध्रुवस्य) स्वयं अविचल (सतः) विद्यमान सोम की (केतवः) ज्ञापन करने वालीं किरणें (उभयतः) इधर उधरको (परियन्ति) जाती हैं (यदि) जब (पवित्रे)दशा पवित्रमें (हरिः) हरे वर्णका सोम (अधिमृज्यते) शोधित कियाजाता है तब (सत्ता) स्थित होनेवाला यह सोम (योनौ) पात्ररूप स्थानोंमें (निषीदति) स्थित होता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २   ३   १ २   ३ १ २
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे
३ १   २र   ३ १ २   ३   १ २   ३
सतः परि यन्ति केतवः । व्यानशी पवसे सोम
१ २ ३   २ ३ १   २ ३   १ २
धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे विश्वचक्षः ! सर्वस्य द्रष्टः सोम ! प्रभोः परिवृढस्य सतः ते तव ऋभ्वसः ऋभ्वा—इति महन्नाम । महांतः केतवः रश्मयः विश्वा विश्वानि सर्वाणि धामानि तेजःस्थानानि देव-शरीराणि परियंति परितो गच्छन्ति प्रकाशयंतीत्यर्थः । हे सोम ! व्यानशी व्यापनशीलस्त्वं धर्म्मणा धारकेण रसनिष्पंदेन पवसे पूयसे । किञ्च विश्वस्य भुवनस्य पतिः स्वामी त्वं राजसि ईश्वरो भवसि ॥ प्रभोष्टेसतः परियंति,प्रभोस्ते सतः परियंति-इति पाठौ,व्यानशी व्यानशि इति,धर्म्मणा धर्म्मभिः—इति च ॥ ३ ॥

(विश्वचक्षः) हे सबके द्रष्टा सोम ! (प्रभोः) शक्तिमान् (सतः) विद्यमान (ते) तेरी (ऋभ्वसः) वड़ी (केतवः) किरणें (विश्वा)

सकल (धामानि) तेजस्वी देवशरीरोंको (परियन्ति) सब ओरसे प्रकाशित करती हैं (सोम) हे सोम ! (व्यानशी) व्यापक स्वभाव वाला तू (धर्मणा) रसके निकलनेसे (पवसे) शुद्ध होता है (विश्वस्य, भुवनस्य) सकल भुवनोंका (पतिः) स्वामी तू (राजसि) विराजमान होता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
१ २ ३ २ ३ २
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १ ॥

ऋ० अमहीयुः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीयतृचे—प्रथमा । पवमानः पूयमानः सोमः बृहत् महत् वैश्वानरं वैश्वानराख्यं ज्योतिः तेजः दिवः द्युलोकस्य चित्रं विचित्रं तन्यतुं न अशनिमिव अजीजनत् अजनयत ॥ १ ॥

(पवमानः) पवित्र कियाजाताहुआ सोम (बृहत्) बड़े (वैश्वानरम्) वैश्वानर नामक (ज्योतिः) तेजको (दिवः) द्युलोकके (चित्रम्) विचित्र (तन्यतुं, न) वज्रकी समान (अजीजनत्) उत्पन्न करताहुआ ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।
२ ३ ३ १ ३
वि वारमव्यमर्षति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे राजन् ! दीप्यमान ! पवमान ! पूयमान ! सोम ! तव त्वदीयः मदः मदकरः अदुच्छुनः रक्षोवर्जितः रसः अव्यम् अविमयं वारं वालं दशापवित्रम् वि अर्षति अभिगच्छति । पवमानरसस्तव पवमानस्य ते रसः—इति पाठौ ॥ २ ॥

(राजन्) दीप्तिमान् (पवमान) हे पयमान सोम ! (तव) तेरा (मदः) मदकारी (अदुच्छुनः) राक्षसोंसे वर्जित (रसः) रस (अव्यं वारम्) ऊनके दशापवित्रमेंको होकर (विअर्षति) पात्रमें जाता है ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ २
पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् ।
२ ३ २ ३क २र ३ २
ज्योतिर्विश्वꣳ स्वर्दृशे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! पवमानस्य ते त्वदीयः रसः दक्षः द्युमान् दीप्तिमान् विराजति प्रकाशते । न केवलं स्वयमेव प्रकाशते किन्तु विश्वं व्याप्तं स्वः सर्वं ज्योतिः तेजः दृशे द्रष्टुं करोतीति शेषः । पवमानस्य ते रसः—पवमानरसस्तव—इति पाठौ ॥ ३ ॥

हे सोम ! (पवमानस्य) संस्कार किये जाते हुए (ते) तेरा (दक्षः) बलकारी (द्युमान्) दीप्तिमान् (रसः) रस (विराजति) प्रकाशित होता है और (विश्वम्) व्याप्त (स्वः) सब (ज्योतिः) तेजको (दृशे) देखने योग्य करता है ॥ १ ॥

२उ ३ १ २र ३२ ३२ ३ १ २

प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

अन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ प्रयद्गाव इति षडृचं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । यत् ये अभिषुताः सोमाः गावः न उदकानीव तानि यथा तूर्णमधः पतन्ति तद्वत् गाव एव वोपमीयन्ते ता यथा स्वं गोष्ठं प्रत्याशु गच्छन्ति तद्वत अथवा गावः स्तुतिवचनाः यथा स्तुत्यं प्रति क्षिप्रं प्राप्नुवन्ति तद्वत् भूर्णयः क्षिप्राः त्वेषाः दीप्ताः अयासः अयाः गमनशीलाः कृष्णं कृष्णवर्णम् अपत्वचम् अपकृष्टां त्वचं घ्नन्तः विनाशयन्तः ईदृग्भूता ये सोमः प्र अक्रमुः तान् स्तुम इति शेषः ॥ यत्–ये–इति पाठौ ॥ १ ॥

(गावः, न) जलोंकी समान (भूर्णयः) शीघ्रगामी (त्वेषाः) दिपते हुए (अयासः) गमनशील अर्थात् बहने वाले (कृष्णाम्) कालेवर्णकी (अपत्वचम्) बुरी त्वचाको (अपघ्नन्तः) विनष्ट करते हुए (यत्) जो सोम (प्र अक्रमुः) पात्रमें प्राप्त हुए उनकी हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३२ ३ १ २ ३क २र

सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् ।

३ २ ३ १ २ ३ ३ २

साह्याम दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सुवितस्य शोभनं प्राप्तस्य सोमस्य सम्बन्धिनम् अतिसेतुम् रक्षोविषयं बन्धनं वनामहे सोमकर्तृकं रक्षसां बन्धनं स्तुम इत्यर्थः । कीदृशम् ? दुराय्यम् दुष्प्रापणीयम् किञ्च अव्रतम् यज्ञादि

कर्म-रहितं दस्युं शत्रुं साह्याम अभिभवेम ॥ दुराध्यं-दुराप्यं साह्याम साह्यांसः—इति पाठः ॥ २ ॥

(सुवितस्य) सुन्दरतासे प्राप्तहुए सोमके (दुराध्यम्) कठिनता से प्राप्त होने योग्य (अतिसेतुम्) राक्षसों के बन्धनको (वनामहे) याचना करते हैं और (अव्रतम्) यज्ञादि कर्मरहित (दस्युम्) शत्रुका (साह्याम) तिरस्कार करें ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।

१ २ ३ १ २ ३ २

चरन्ति विद्युता दिवि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । शृण्वे श्रूयते । कः?स्वनः । किमिव ?वृष्टेः वर्षणस्य स्वन इव तस्य यथा महान् स्वनः श्रूयते तद्वत् प्रभूतरस-पात-समये श्रूयते । कस्य स्वन इति ? तत्राह-पवमानस्य पूयमानस्य शुष्मिणः बलवतः तस्यैव विद्युतः दीप्तयः दिवि अन्तरिक्षे चरन्ति ॥ ३ ॥

(वृष्टेः) वर्षाके (स्वनः, इव) शब्दकी समान (पवमानस्य)संस्कार किये जातेहुए सोमका शब्द अधिक रस निकलने के समय (श्रूयते) सुनाजाता है (शुष्मिणः) तिस बलवान् सोमकी (विद्युतः) दीप्तियें (दिवि) अन्तरिक्षमें (चरन्ति) विचरती हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १२

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।

१ २ ३ १ २

अश्ववत्सोम वीरवत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे इंदो ! सोम ! अभिषुतः त्वं महीम इषम् महदन्नम् आ पवस्व । कीदृशम् अन्नम्?गोमद् गोभिर्युक्तम् हिरण्यवत् सुवर्णो-पेतं अश्ववत अश्वोपेतम् वीरवत् पुत्रयुक्तम् ॥ अश्ववत्सोमवीरवत् अश्वावद्राजवत्सुतः—इति पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्दो सोम) हे पात्र में टपकनेवाले सोम ! तुम (महीम्) बहुतसे (इषम्) अन्नको (गोमद्) गौओं सहित (हिरण्यवत्) सुवर्ण सहित (अश्ववत) घोड़ों सहित (वीरवत्) पुत्र सहित (आपवस्व)दो॰४

१ २ ३ २ ३ १ २र

पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।

३ २उ ३ २ ३ १ २
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । हे विश्वचर्षणे ! विश्वस्य द्रष्टः ! सोम ! स त्वं पवस्व क्षर रसम् । तथा कृत्वा तेन रसेन मही रोदसी द्यावापृथिव्यौ आ पृण आ पूरय । उषाः उषसः एकदेशवाचिनोषः-शब्देनाहान्युपलक्ष्यन्ते तत्प्राधान्यात् अहानि रश्मिभिः सूर्यो न सूर्य्य इव । पवस्व विश्वचर्षणे पवस्व विश्वचर्षण-इति पाठौ ॥ ५ ॥

(विश्वचर्षणे) हे विश्वके द्रष्टा सोम ! (पवस्व) रसको टपका और उस रससे (मही रोदसी) द्यावा पृथिवीको (आ पृण) पूर्ण करो (सूर्यः, रश्मिभिः, उषाः न) जैसे कि-सूर्य अपनी किरणोंसे दिन के समयको पूर्ण करता है ॥ ५ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
परि नः शर्म्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
१ २ ३१२ ३ १ २
सरा रसेव विष्टपम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे सोम ! नः अस्मभ्यं शर्म्मयन्त्या सुखयन्त्या धारया विश्वतः सर्वतः पार सरा परिसर परिचर । रसेव रसेनेव विष्टपं भूलोकम् । यद्वा रसा नदी स्थानम् सा प्रवणरूपमिव ॥ परिनः परिण इति पाठौ ॥ ६ ॥

(सोम) हे सोम ! (नः) हमैं (शर्म्मयन्त्या) सुख देने वाली (धारया) धारासे (विष्टपम्) भूलोकको (रसेव) जल करके जैसे (विश्वतः) सब ओरसे (परिसरा) फैलो ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।
१ २ ३२उ ३ १२
यत्रा देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥

ऋ० बृहन्मतिः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीयखण्डे— आशुरर्षेति षडृचं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे बृहन्मते ! महामते ! सोम ! प्रियेण देवानां प्रियतमेन धाम्ना शरीरेण धारया आशुः शीघ्रः सन् पर्य्यर्ष परिगच्छ, यत्र देवाः इन्द्रादयः वर्त्तन्ते—इति ब्रुवन् उच्चारयन, तं देशं गच्छामीति ब्रुवन्नित्यर्थः ॥ १ ॥

(वृहन्मते) हे महामते सोम ! (प्रियेण) देवताओंके प्यारे (धारया) अपने शरीर रूप धारासे (आशुः) शीघ्र (पर्यर्ष) आओ (यत्र) जहाँ (देवाः) इंद्रादि देवता हैं (इति) ऐसा (ब्रुवन्) कहते हुए १

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।

३ २ ३ १ २र

वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अनिष्कृतम् असंस्कृतं यजमानं स्थानं वा परिष्कृण्वन् संस्कुर्वन् जनाय इषः अन्नानि यातयन् निर्गमयन् दिवः अंतरिक्षात् वृष्टिं परि स्रव ॥ २ ॥

(अनिष्कृतम्) संस्कार रहित यजमान वा स्थानको (परिष्कृण्वन्) संस्कारयुक्त करता हुआ (जनाय) यजमान (इषः) अन्न(यातयन्)पहुंचाता हुआ (दिवः) अंतरिक्षसे (वृष्टिम्) वर्षाको (परिस्रव) बरसा २

३ २उ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २

अयथ्ठँ स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।

१ २ ३ १ २र

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सः अयं सोमः पवित्रे आ सिच्यमानः—इति शेषः सिन्धोः जलस्य ऊर्मा ऊर्मौ संघाते वि अक्षरन् विविधम् क्षरति । स इत्युक्तम्, कः इत्याह ? दिवस्परि द्युलोकस्योपरि रघुयामा लघुगमनः देवप्राप्तौ, सोऽयमिति सम्बन्धः ॥ ३ ॥

(यः) जो (दिवस्परि) द्युलोकसे ऊपर (रघुयामा) धीमी गति वाला होता है क्योंकि द्युलोकमें देवता मिलजाते हैं (सः) वह (अयम्) यह सोम (पवित्रे) दशा पवित्रमें (आ) सींचा जाता हुआ (सिन्धोः) जलके (ऊर्मा) समूहमें (वि अक्षरम्) अनेकों धारोंसे टपकता है ॥३॥

३ १ २ ३ १ २ २उ ३ १ २ ३ १ २

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।

३ १ २ ३ १ २

विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । सुतः अभिषुतः सन् पवित्रे दशा पवित्रे आ—इत्यनर्थकः ओजसा बलेन शीघ्रम् एति गच्छति । कीदृशः सन् ? त्विषिम्

दीप्तिं दधानः धारयन्, विचक्षणः सर्वं पश्यन्, विरोचयन् दीपयंश्च किम्? देवानिति शेषः ॥ ४ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ सोम (त्विषिम्) दीप्तिको (दधानः) धारण करता हुआ (विचक्षणः) सबको देखता हुआ (विरोचयन्) देवताओंको दीप्त करता हुआ (पवित्रे) दशापवित्रमें (आ ओजसा) पूर्ण बलसे (शीभम्) शीघ्र (एति) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

३ १२ ३२३ १२ ३१२ ३२

आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।

१२ ३१२

इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । सुतः अभिषुतः सोमः परावतः दूरनामैतत् दूरस्थान् अथो अपि च अर्वावतः अन्तिकस्थांश्च देवान् आ विवासन् रसेन परिरक्षणायेत्यर्थः । इंद्राय इंद्रार्थम् मधु मधुसदृशः सोमः सिच्यते ॥ ५ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ सोम (परावतः) दूरके (अथो) और (अर्वावतः) समीपके देवताओंको (आविवासन्) रसके द्वारा सेवन करता हुआ (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (मधु) मधुकी समान सोम (सिच्यते) सींचा जाता है ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ १२ ३ १ २

समीचीना अनूषत हरिँ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। समीचीनाः सम्यगञ्चिताः सङ्गताः स्तोतारः अनूषत स्तुवन्ति किञ्च सोमं हरिं हरितवर्णं हिन्वन्ति प्रेरयन्ति गमयन्ति अद्रिभिः ग्रावभिः । किमर्थं हिन्वन्ति? इंदुं सोमम् इंद्राय इन्द्रस्य पीतये पानाय६

(समीचीनाः) सुन्दर प्रकारसे इकट्ठे हुए स्तोता (अनूषत) स्तुति करते हैं (इन्दुम्) सोमको (इंद्राय, पीतये) इंद्रके पानके निमित्त (हरिम्) हरेवर्णके सोमको (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (हिन्वन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥ ६ ॥

३ २ ३ २३१२३ १२ ३२३ १२

हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।

३१ २र ३ १२

महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः भृगुः वा। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ तृचात्मके द्वितीयसूक्ते—प्रथमा। उस्रयः कर्मार्थं निवसन्त्यः सर्वत्र गन्त्र्य इत्यर्थः जामयः एकस्याः पंक्तेः उत्पन्नत्वात् परस्परं बंधुभूताः स्वसारः अंगुलिनामैतत् (निघ० २, ५, १३)। सुष्ठु कर्म्मसु प्रेर्य्यन्ते ऋत्विग्भिरिति स्वसारः अंगुलयः, महीयुवः सोमाभिषवं कामयमानाः सन्तः सूरं सुवीर्य्यं सोमे पीते वीर्य्यं भवतीति शोभनं वीर्य्यं कारणं वा सर्वेषां कर्मणि प्रेरकं वा, तादृशम् पतिम् सर्वस्य स्थावर-जङ्गम-जातस्य स्वामिनं, यस्माद् देवार्थमिज्यतेऽत एव महाम् देवेभ्यो दीयमानत्वेन महांतं महनीयं वा इंदुम् ग्रहेषु स्यन्दमानं सोमं हिन्वंति प्रेरयंति हिवि प्रीति-गत्योः (भ्वा० प०)-इति धातोरेतद्रूपं स्वादि ॥ १ ॥

(उस्रयः) कर्मके निमित्त सर्वत्र जानेवालीं (जामयः) परस्पर बंधुभूत (स्वसारः) अंगुलियें (महीयुवः) सोमके संस्कारको चाहती हुईं (सूरम्) श्रेष्ठ वीरता वाले (पतिम्) स्थावर जङ्गम सबके स्वामी (महाम्) पूजनीय (इंदुम्) पात्रोंमें टपकते हुए सोमको (हिन्वंति) प्रेरणा करतीं हैं ॥ १ ॥

१२ ३१२३ ३१ ३१२ ३२
पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः।
२ ३ २३ १ २
विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे पवमान! दशापवित्रेण पूयमान! यद्वा पुनान शुद्ध! सोम! रुचारुचा रुच दीप्तौ (भ्वा० आ०) सर्वेण तेजसा हे देव! दीप्यमान! देवेभ्यः देवार्थं सुतः अभिषुतः त्वं विश्वा व्याप्तानि सर्वाणि बहूनि वसूनि धनानि आ विश अस्मान् प्रापय यद्वा सर्वाणि वसूनि वासस्थानानि ग्रहादीनि आविश समंतात् प्रविश ॥ देवेभ्यस्सुतः-देवेभ्यस्परि-इति पाठौ ॥ २ ॥

(रुचारुचा) पूर्ण तेजसे (देव) दीप्यमान (पवमान) हे शुद्ध सोम! (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (सुतः) संस्कार किया हुआ तू (विश्वा) बहुतसे (वसूनि) धनोंको (आविश) हमें दो ॥ २ ॥

१ २ ३२ ३२ ३२ ३ १२
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः।
३१२ ३१२
इषे पवस्व संयुतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान ! पूयमान ! पुनान ! वा सोम ! सुष्टुतिं शोभनस्तुति-युक्तां वृष्टिं देवेभ्यः देवानां दुवः सुपां सुलुक् (७, १, ३९)—इति चतुर्थ्यां लुक् दुवसे परिचरणाय आ पवस्व आ गमय त्वम् यथा मदीयया स्तुत्या वृष्टिर्भवति तथा कुर्वित्यर्थः । किञ्च अस्माकम् इषे अन्नार्थञ्च संयतं सम्यगस्मान् सङ्गच्छतीति वृष्टिं कुरु यद्वा दुवः परिचर्यामभिलक्ष्य क्रियमाणां सुष्टुतिं शोभन—स्तुतिरूपां वृष्टिं बहुशः स्तुतिमित्यर्थः, एतां देवेभ्यः प्रापय ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुतिवाली (वृष्टिम्) वर्षाको (देवेभ्यः) देवताओंके अर्थ (दुवः) परिचर्याके निमित्त (आपवस्व) पहुँचाओ (इषे) हमारे अन्नके अर्थ (संयतम्) भले प्रकार हमें प्राप्त होनेवाली वर्षा करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
सुविताय नव्यसे । घृतप्रतीको बृहता दिवि-
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
स्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ १ ॥

ऋ० शतम्भरः । छ० जगती । दे० अग्निः । अथ तृतीयखण्डे, प्रथमतृचे प्रथमा । जनस्य गोपा गोपयिता रक्षिता, जागृविः जागरणशीलः सदा प्रबुद्धः सुदक्षः सुबलः सर्वैः श्लाघनीयबलः, सः अग्निः नव्यसे नवतराय सुविताय लोकानां कल्याणाय अजनिष्ट जातः ततः घृत—प्रतीकः घृतेन प्रज्वलिताङ्गः बृहता महता दिविस्पृशा द्युलोकं प्राप्नुवता तेजसा युक्तः, शुचिः शुद्धः, एवंविधोऽग्निः भरतेभ्यः ऋत्विग्भ्यः तत्तदर्थं द्युमत् दीप्तिमत् यथा भवति तथा भाति प्रकाशते१

(जनस्य) यजमानका (गोपा) रक्षक (जागृविः) सदा जागता रहने वाला (सुदक्षः) श्रेष्ठ बलवान् (अग्निः) अग्नि देवता (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) लोकोंके कल्याणके निमित्त (अजनिष्ट) प्रकट हुआ, तदनन्तर (घृतप्रतीकः) घृतसे प्रज्वलित अङ्गोंवाला (बृहता) बड़े (दिविस्पृशा) द्युलोकमें पहुँचनेवाले तेजसे युक्त (शुचिः) शुद्ध अग्नि (भरतेभ्यः) ऋत्विजोंके अर्थ (द्युमत्) दीप्तिमान् होकर (भाति) प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ १ ३ १२ ३१ २र
त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दं शिश्रि-
३ १ २र १ २ ३ १२३ १ २ ३१
याणं वनेवने । स जायसे मथ्यमानः सहो मह
२र ३ १२ ३१२
त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! अङ्गिरसः-एतन्नामका ऋषयः गुहा गुहायां हितं निहितं निगूढं वनेवने वृक्षे शिश्रियाणम् आश्रितम् त्वाम् अन्वविन्दम् अलभन्त । महत् महता सहः सहसा बलेन युक्तः स त्वं मथ्यमानः जायसे हे अङ्गिरः! अङ्गिरसां प्रकृतिभूत! त्वां सहसस्पुत्रम् आहुः२

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (अङ्गिरसः) अङ्गिरा नामक ऋषि (गुहाहितम्) गुहामें स्थित (वनेवने) हरएक वृक्षमें (शिश्रियाणम्) आश्रित (त्वाम्) तुम्हे (अन्वविन्दम्) प्राप्त होतेहुए (महत्) बड़े (सहः) बलसे युक्त (सः) वह तू अग्नि (मथ्यमानः) मथा जाता हुआ (जायसे) प्रकट होता है (अङ्गिरः) हे अङ्गिराओंके प्रकृतिरूप! (त्वाम) तुझे (सहसः)बलका (पुत्रम्) पुत्र (आहुः) कहते हैं ॥२॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे
२र १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १
समिन्धते । इन्द्रेण देवैः सरथꣳ स बर्हिषि सीदन्नि
२र ३ १ २ ३ १ २
होता यजथाय सुक्रतुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । नरः कर्मणां नेतारः ऋत्विजः यज्ञस्य यागस्य केतुं प्रज्ञापकं पुरोहितं यजमानैः पुरस्कृतम् इन्द्रेण देवैः सरथं देवानां तेषां मान्यत्वात् समानरथम् अग्निं त्रिषधस्थे त्रिस्थाने विहारप्रदेशे प्रथमं समिन्धते सम्यग् दीपयन्ति । ततः सुक्रतुः शोभनकर्मा होता देवानामाह्वाता सः अग्निः बर्हिषि बर्हिर्युक्ते तस्मिन् स्थाने यजथाय यज्ञाय निषीदन् न्यषीदत् प्रतिष्ठितोऽभवदिति यावत् ॥ समिन्धते–समीधिरे इति पाठौ ॥ ३ ॥

(नरः) कर्म करनेवाले ऋत्विज (यज्ञस्य) यज्ञके (केतुम्) ज्ञापक (पुरोहितम्) यजमानों करके आगे कियेहुए (देवैः, सरथम्) देवताओंकी समान रथवाले (अग्निम्) अग्निको (त्रिषधस्थे) तीन

स्थानोंमें (प्रथमम्) पहिले (समिन्धते) सम्यक् प्रकारसे प्रज्वलित करते हैं तदनन्तर (सुक्रतुः) श्रेष्ठ कर्म्म वाला (होता) देवताओंका आह्वान करने वाला (सः) वह अग्नि (बर्हिषि) कुशाओंवाले स्थान में (यजथाय) यज्ञके निमित्त (निषीदन्) प्रतिष्ठा किया गया ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।

२उ ३ १ २ ३ १ २

ममेदिह श्रुतथँ हवम् ॥ १ ॥

ऋ० गृत्समदः । छ० गायत्री । दे०मित्रः वरुणो वा । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा—हे ऋतावृधा ! ऋतस्य सत्यस्य वा वर्द्धकौ ! मित्रावरुणा हे मित्रावरुणौ ! वां युवाभ्याम् अयं सोमः सुतः अभिषुतः । यस्मादेवं तस्मात् इह अस्मिन् यज्ञे ममेत् मदीयमेव हवम् आह्वानं श्रुतं शृणुतम् ॥

(ऋतावृधा) सत्यको बढ़ाने वाले (मित्रावरुणा) हे मित्र और वरुण देवताओं (वाम्) तुम्हारे निमित्त (अयम्) यह (सोमः) सोम (सुतः) शुद्ध किया है, इस कारण (इह) इस यज्ञमें (ममेत्) मेरे ही (हवम्) आह्वानको (श्रुतम्) सुनो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।

३ १ २

सहस्रस्थूण आशाते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । राजानौ ईश्वरौ दीप्यमानौ वा अनभिद्रुहा अनभिद्रोग्धारौ मित्रा वरुणौ ध्रुवे स्थिरे उत्तमे उत्कृष्टे सहस्रस्थूणे सदसि स्थाने आशाते उपविशतः तावागच्छतामिति शेषः ॥ २ ॥

(राजानौ) ईश्वर (अनभिद्रुहा) द्रोह न करने वाले मित्रावरुण देवता (ध्रुवे) स्थिर (उत्तमे) श्रेष्ठ (सहस्रस्थूणे) सहस्रों खंभोंवाले (सदसि) सभास्थानोंमें (आशाते) आवें ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र३ १ २

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।

१ २ ३ १ २

सचेते अनवह्वरम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सम्राजा सम्राजौ आदित्यौ सर्वेषां शास्तारौ घृतासुती

घृताग्नौ तन्नां महित्वं घृतान्नावस्तु इति मन्त्रान्तरात् आदित्या अदितेः पुत्रौ दानुनस्पती दानुनः धनस्य देवस्य वा पती स्वामिनौ ता तौ मित्रावरुणौ अनवह्वरम् अकुटिलं यजमानं सचेते हविर्भक्षणाय सेवेते ३

(सम्राजा) आज्ञासे ही सबका शासन करने वाले (घृतासुती) घृत ही है अन्न जिनका ऐसे (आदित्या) अदितिके पुत्र (दानुनस्पती) धनके स्वामी (ता) वह मित्रावरुण (अनह्वरम्) सरलप्रकृति यजमानको (सचेते) हवि भक्षण करनेको सेवन करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
२ १ २ ३ १ २र
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥

ऋ० राहुगणगोतमः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीयतृचे प्रथमा । तत्र शाठ्यायनिन इतिहासमाचक्षते—आथर्वणस्य दधीचो जीवता दर्शनेन असुराः पराबभूवुः । अथ तस्मिन् स्वर्गते सति असुरैः पूर्णा पृथिव्यभवत् । अथैन्द्रस्तैरसुरैः सह योद्धुमशक्नुवंस्तमृषिमन्विच्छन् स्वर्गम् गत इति शुश्राव । अथ पप्रच्छ तत्रस्यान्—नेह किमस्य किञ्चित् परिशिष्टमङ्गमस्ति ?—इति, तस्मा अवोचन्—अस्त्येतदाश्वं शीर्षं, येन शिरसा अश्विभ्यां मधुविद्यां प्राब्रवीत्, तत्तु न विद्मः यत्राभवत्—इति । पुनरिन्द्रोऽब्रवीत्—तदन्विच्छत—इति । तद्धान्वेषिषुस्तच्छर्य्यणावत्यनुविद्या जहुः । शर्यणावद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्द्धं सरः स्यन्दते । तस्य शिरसोऽस्थिभिरिन्द्रोऽसुरान् जघान—इति । अप्रतिष्कुतः परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूल-शब्द-रहितः इंद्रः आथर्वणस्य दधीचः-एतत्संज्ञकस्य ऋषेः अस्थभिः पार्श्वशिरः—सम्बन्धिभिरस्थिभिः नवतीर्नव नवसंख्याकाः नवतीः दशोत्तराष्टशत-संख्याकाः (८१०) तथाहि-लोकत्रयवर्त्तिनो देवान् जेतुमादायासुरी माया त्रिधा सम्पद्यते, त्रिविधा सा अतीतानागतवर्त्तमानकाल-भेदेन तत्काल-वर्त्तिनो देवान् जेतुं पुनरपि प्रत्येकं त्रिगुणिता भवति एवं नव सम्पद्यन्ते पुनरपि उत्साहादि-शक्तित्रय रूपेण त्रैगुण्ये सति सप्तविंशतिः सम्पद्यते, पुनः सात्विकादिगुणत्रयभेदेन त्रैगुण्ये सति एकोत्तरा अशीतिः सम्पद्यते,—एवं चतुर्भिस्त्रिकैर्गुणितायाः मायाया दशसु दिक्षु प्रत्येकमवस्थाने सति नवनवतयः सम्पद्यन्ते । एवंविधमायारूपाणि वृत्राणि आवरकाण्यसुरजातानि जघान हतवान् दधीचः—दधि अञ्चतीति दध्यङ् अञ्चतेः ऋत्विगित्यादिना (३, २ ५९) क्विन, अनिदितामिति

(६, ४, २४) न-लोपः, षष्ठ्येकवचनेअचः (६, ४, १३८)-इत्यकार-लोपे चाविति (६, ३, १३८) दीर्घत्वम्, उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्त्युदात्तत्वविधानेन तद्वाध्यते। अस्थ्यक्षिः-छन्दस्यपि दृश्यते (७, १, ७६)-इति अनजादावपि अस्थि-शब्दस्यानङादेशः स चोदात्तः ॥ १ ॥

(अप्रतिष्कुतः) प्रतिकूलशब्द रहित (इंद्रः) इंद्र (दधीचः) दधीचि ऋषिकी (अस्थिभिः) हड्डियोंसे (नवतीः) नब्बै वार (नव) नौ अर्थात् आठ सौ दश (वृत्राणि) असुरोंके मायावी रूपोंको (जघान) नष्ट करता हुआ ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्।
१ २ ३ १ २
तद्विदच्छर्य्यणावति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। पर्वतेषु पर्ववत्सु गिरिषु अपश्रितम् अपगत्य स्थितम् अश्वस्य अश्व-सम्बंधि दधीचः यत् शिरः इच्छन् इन्द्रो वर्तते, शर्य्यणावति एतत्संज्ञके सरसि तत् शिरः विदत् अज्ञासीत् ज्ञात्वा तदाहृत्य, तदीयैः अस्थिभिः वृत्राणि जघान-इति पूर्वस्यामृचि संबंधः इच्छन्-इषु इच्छायां तुदादित्वाच्छप्रत्ययः। विदत्-वेत्तेर्लुङि व्यत्ययेन च्लेः अङादेशः। शर्यणावति—शर्यणा नामानो देशास्तेषामदूरभवं सरः शर्यणावत् मध्वादिषु शर्यणाशब्दस्य पाठात् मध्वादिभ्यश्च (४, २, ८६)-इति चातुरर्थिको मतुप्, संज्ञायाम् (८, २, ११)-इति मतुपो वत्वम्, मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् (६, ३, ११९)-इति दीर्घः ॥ २ ॥

(पर्वतेषु) पर्वतोंमें (अपश्रितम्) लेजाकर धरे हुए (अश्वस्य) अश्वसंबंधी दधीचिका (यत्) जो (शिरः) शिर है उसको (इच्छन्) इंद्र चाहता हुआ (शर्यणावति) सरोवरमें (तत्) उसको (विदत्) जानता हुआ और उसको लाकर असुरोंका संहार करा ॥ २ ॥

२उ ३ २ ३ २ ३ १ २३क २र
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।
३ २ ३ १ २ ३ २
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। अत्राह अस्मिन्नेव गोः गंतुः चंद्रमसः गृहे मण्डले त्वष्टुः दीप्तस्य आदित्यस्य सम्बंधि अपीच्यं रात्रावंतर्हितं स्वकीयं यत् नाम तदादित्यस्य रश्मयः इत्था इत्थमनेन प्रकारेण अमन्वत अजानन्

उदकमये स्वच्छे चंद्रबिम्बे सूर्य्य—किरणाः प्रतिफलंति तत्र प्रतिफलिताः किरणाः सूर्य्ये यादृशीं संज्ञां लभंते तादृशीं चंद्रेऽपि वर्त्तमानां लभन्त इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति—यद्रात्रावन्तर्हितं सौरं तेजस्तच्चन्द्रमण्डलं प्रविश्य अहनीव नैशं तमो निवार्य्य सर्वं प्रकाशयति, ईदृग्भूत-तेजसा युक्तः सूर्य्यश्चेन्द्र एव द्वादशस्वादित्येषु इन्द्रस्यापि परिगणितत्वात् । अतोऽहोरात्रयोः प्रकाशकः इंद्र एवेति इंद्रस्तुतेः प्रतीयमानत्वादिन्द्रो देवतेत्येतदुपपन्नं भवति । अत्र निरुक्तम् अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्यमादित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः—इत्यपि निगमोभवन्ति सोऽपि गौरुच्यते-अत्राहगोरमन्वत-इति (२,६,) अत्राह गोः सममंसतादित्यरश्मयः स्वनामापीच्यमपगममपचितमपिहितमन्तर्हितं वा (४, २५)—इति ॥ अमन्वत-मनु अवबोधने (त० आ०) । अपीच्यम्—अपपूर्वाच्चिनोतेर्निपातनाद् यत् अतएवाभिमतरूपसिद्धिः यद्वा अपिपूर्वादञ्चतेः ऋत्विग (३, २, ५९)-इत्यादिना क्विन् अनिदिताम् (६, ४, २४)—इति न-लापः अपिगते निर्गते भवमपीच्यम् भवे छन्दसि (४, ४, ११०)—इति यत् अचः (६, ४, १३८)—इत्यकारलोपे चौ (६, ३, १३८)—इति दीर्घत्वम् अपीच्योऽप्रकाशः-इति भट्टभास्करमिश्रः । इत्था-इदम्—शब्दाच्च था हेतौ च छन्दसि (५, ३, २६)—इति प्रकारवचने थाप्रत्ययः यदि तत्रेदं-शब्दो नानुवर्तते तदानाम् इदमस्थमुः (५, ३, २४)-इति थमुः प्रत्ययः अव्ययादाप् सुपः (२, ४, ८२)—इति सुग्लुकं बाधित्वा सुपां सु-लुक् (७, १, ३९)-इत्यादिना डादेशः । चंद्रमसः चंद्रमाह्लादनं मिमीते निर्मिमीते—इति चंद्रमाः चंद्रेमोडित् (उ०, ४, २२७)—इत्यसि प्रत्ययः दासीभारादिषु पठितत्वात् पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् पूर्वपदञ्च स्फायितञ्चि (, ,) इत्यादिना रक्-प्रत्ययान्तत्वादंतोदात्तम् ॥ ३ ॥

(अत्राह) इसमें ही (गोः) गमन करनेवाले (चंद्रमसः) चंद्रमा के (गृहे) मण्डलमें (त्वष्टुः) आदित्यकी (अपीच्यम्) रात्रिमें अंतर्हित हुई अपनी जो (नाम) वह आदित्यकी किरणे हैं (इत्था) इसप्रकार (अमन्वत) इंद्र जानता हुआ अर्थात् जलमय स्वच्छ चंद्रबिम्बमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित होकर वैसा ही प्रकाश करती हैं ऐसा तेजस्वी सूर्य चंद्रमा ही है । बारह आदित्योंमें इंद्रको भी गिना है इसप्रकार दिनरातका प्रकाशक इंद्र ही है, इसकारण यह इंद्रकी ही स्तुति हुई ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
३ २ ३ ३ १ २
अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० गायत्री । दे० इंद्राग्नी । अथ चतुर्थतृचे-प्रथमा हे इंद्राग्नी ! इयं पूर्व्यस्तुतिः पूर्व्या स्तुतिः मुख्या स्तुतिः कस्य सम्बन्धिनी ? मन्मनः स्तोतुः अस्मत् वसिष्ठात् वां युवाभ्यां युवयोरर्थम् अभ्रात् मेघात् वृष्टिरिव वह्वी सती अजनि प्रादुर्भूता तां शृणुतमित्युत्तरत्र सम्बन्धः ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इंद्र और अग्नि देवताओं (इयम्) यह (पूर्व्यस्तुतिः) मुख्य स्तुति (अस्य) इस (मन्मनः) स्तोताओंसे (वाम्) तुम्हारे निमित्त (अभ्रात्) मेघसे (वृष्टिः, इव) वर्षाकी समान (अजनि उत्पन्न हुई ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
श्रृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्राग्नी ! जरितुः स्तोतुः हवम् आह्वानं युवां शृणुतम् । श्रुत्वा च गिरः तदीयाः स्तुतीः वनतं सम्भजतम् । तथा ईशाना ईश्वरौ युवां धियः अनुष्ठितानि कर्माणि पिप्यतं तैस्तैः फलैः पूरयतम् ॥ २ ॥

(इंद्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओं ! (जरितुः) स्तोताके (हवम्) आह्वानको (शृणुतम्) सुनो और (गिरः) उसकी स्ततियोंको (वनतम्) सेवन करो (ईशाना) ईश्वररूप तुम (धियः) कर्मोंको (पिप्यतम्) फलोंसे पूर्ण करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
१ २ ३ २
मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे नरा ! नतारौ ! इंद्राग्नी ! नः अस्मान् पापत्वाय हीनभावाय मा रीधतम् मा वशं नयतम् तथा अभिशस्तये शत्रुभिः कृतायाभिशंसनाय मा रीरधतम् तथा निदे निन्दनाय मा रीरधतं मा वशीकुरुतम् ॥ ३ ॥

(नरा) कर्मके प्रेरक (इंद्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओं (नः) हमें (पापत्वाय) हीनभावके अर्थ (मा रीधंतम्) वशमें मतकरो (अभिशस्तये) शत्रुकी कीहुई हिंसा के लिये (मा) वश में न करो (निद्रे) निंदाके लिये (नः) हमें (मा) वशमें न करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

ऋ० दृढच्युत् । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ चतुर्थखण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । हे हरे ! हरितवर्ण पापहर्त्तर्वा सोम ! दक्षसाधनः दक्षो बलं तस्य साधनो मदः मदकरश्च त्वं पवस्व क्षर । किमर्थम् ? देवेभ्यः इंद्रादिभ्यः पीतये पानाय तथा मरुद्भ्यः वायवे च पीतये पवस्व ॥ १ ॥

(हरे) हे पाप दूर करनेवाले सोम ! (दक्षसाधनः) बलका साधन (मदः) मदकारी तू (देवेभ्यः) इंद्रादि देवताओंके (मरुद्भ्यः) मरुतोंके (वायवे) वायुके (पीतये) पीनेके लिये (पवस्व) पात्रमें टपक ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
१२ ३ १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयं सोमः । सं शोभते देवैः सह । कीदृशः सोमः ? वृषा वर्षकः कविः क्रान्तदर्शी योनौ स्थाने स्वीये अधि अधिष्ठितः प्रियः प्रियोभूतः सर्वेषां यद्वा प्रीणयिता पवमानः क्ष न् अदाभ्यः केनाप्यहिंसितश्च भवति अत एव सोमः सं शोभते ॥ २ ॥

(वृषा) कामवर्षक (कविः) क्रांतदर्शी (योनौ अधि) अपने स्थानपर स्थित (प्रियः) सबको तृप्त करनेवाला (पवमानः) संस्कार किया जाता हुआ (अदाभ्यः) किसीसे भी हिंसा न कियाहुआ सोम (देवैः) देवताओंके साथ (संशोभते) श्रेष्ठ शोभा पाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ २उ ३ १ २
पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् ।

१ २ ३ १ २र
धर्मणा वायुमारुहः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे पवमान ! सोम ! धिया कर्मणा अस्मद्व्यापारेण अंगुल्या वा हितः धृतः सन् कनिक्रदत् शब्दं कुर्वन् योनिं स्थानं द्रोणकलशं च अभि आरुहः आभिमुख्येन आरोहणं कुरु प्रविशेत्यर्थः तदेवाह—धर्म्मणा कर्म्मणा वायु वायुसम्बन्धिपात्रमित्यर्थः तदारुहः प्रविश ॥ आरुहः आविशः—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (धिया) हमारे व्यापार वा अंगुलिसे (हितः) धारण किया हुआ (कनिक्रदत्) शब्दसहित (योनिं, अभि आरुहः) द्रोणकलशमें अभिमुख होकर प्रवेश कर (धर्मणा) कर्मके द्वारा (वायुम्, आरुहः) वायुदेवता के पात्र में प्रवेश कर ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
तवाहꣳ सोम रारण सख्य इन्द्रो दिवेदिवे ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीꣳ
३ १ २
रति ताꣳ इहि ॥ १ ॥

ऋ० मैत्रावरुण वसिष्ठः। छ बृहती। दे० सोमः अथ प्रगाथरूपे द्वितीयसूक्ते—प्रथमा। हे इन्दो ! स्यन्दमान सोम ! तव सख्ये सखिकर्मणि अहं दिवेदिवे अन्वहं रारण रमे रणेर्लिटि उत्तमणलि रूपम् हे बभ्रो ! बभ्रु वर्ण सोम ! पुरूणि बहूनि रक्षांसि मां तव सख्ये स्थितं नि अव चरन्ति नीचीनं चरंति बाधन्ते ये मां बाधन्ते तान् परिधीन् अति इहि अतीत्य गच्छ जहीति यावत् ॥ १ ॥

(इंदो) हे टपकते हुए सोम ! (तव सख्ये) तुम्हारे हितकारी कर्म में (अहम्) मैं (दिवे दिवे) प्रतिदिन (रारण) लगा रहता हूँ (बभ्रो) हे बभ्रु वर्ण सोम ! (पुरूणि) बहुतसे राक्षस (माम्) तुम्हारी मित्रता में स्थित मुझे (नि अव चरन्ति) बाधा देते हैं (तान्) उन (परिधीन्) शत्रुओंको (अति) नष्ट करो ॥ १ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्रऊधनि ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ १ २
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २ ॥

अथ द्वितीया ! हे बभ्रो ! बभ्रुवर्ण-सोम ! उत अपि च नक्तम् उत अपि च दिवा अहोरात्रयोः सख्याय सख्यार्थं तव ऊधनि समीपे अहं रमे इति शेषः।ते वयं घृणा दीप्त्या तपन्तं ज्वलंतं परः परस्थानस्थितं सूर्य्यं तदात्मकं त्वाम् अति पप्तिम तत्र स्थितं त्वां प्राप्तुमतिपतेम। कथमिव ? शकुना इव यथा सुपर्णादयः पक्षिणः सूर्य्यमतिगच्छन्ति तद्वत् पत लृगतौ अस्माच्छान्दसो लिटि तपिपत्योश्छन्दसि (६, ४, ९९)-इत्युपधा-लोपः ॥ दुहानः सख्याय-इति पाठौ ॥ २ ॥

(बभ्रो) हे बभ्रुवर्ण सोम ! (उत) और (नक्तम्) रातमें (उत) और (दिवा) दिनमें मित्रभावके लिये (तव) तुम्हारे (ऊधनि) समीप (अहम्) मैं लगा रहता हूँ (ते) वह हम (घृणा) दीप्तिसे (तपंतम्) प्रज्वलित हुए (परः) परस्थानमें स्थित (सूर्यम्) सूर्य रूप तुझे (शकुना इव) पक्षियोंकी समान (अतिपप्तिम) प्राप्त हों ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥

ऋ० बृहन्मतिः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृतीय-तृचे-प्रथमा । पुनानः पूयमानः विचर्षणिः विद्रष्टा सोमः विश्वा सर्वान् मृधः हिंसकान् शत्रून् अभि अक्रमीत् अतिक्रान्तवान् तं विप्रं मेधाविनं धीतिभिः कर्मभिरभिषवादिभिः स्तुतिभिर्वा शुम्भन्ति दीपयंति अलं-कुर्वन्ति ॥ १ ॥

(पुनानः) संस्कार किया जाता हुआ (-विचर्षणिः) विशेष द्रष्टा सोम (विश्वा) सब (मृधः) हिंसक शत्रुओंको (अक्रमीत्) अतिक्रमण करता हुआ (विप्रम्) उस मेधावी सोमको (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (शुम्भन्ति) दीप्त करते हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ ३ ३ २ ३ १ २ ३ २

आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम्।

३ १ २र

ध्रुवे सदसि सीदतु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। अयम् अरुणः अरुणवर्णः सोमः योनिं स्थानं द्रोण-कलशम् आरुहत् आरोहति, ततो वृषा कामानां वर्षकः इंद्रः सुतम्

अभिषुतं सोमं गमद् गच्छति, गत्वा ध्रुवे सद्सिस्थिरे स्थाने द्युलोकाख्ये सीदति निवसति इंद्रो वृषासुतम् इन्द्र वृषासुतः—इति पाठौ ॥ २ ॥

(अरुणः) लाल वर्णका सोम (योनिम् आरुहत्) द्रोणकलशमें प्रवेश करता है, तदनन्तर (वृषा) कामोंकी वर्षा करनेवाला (इंद्रः) इंद्र (सुतम्) शुद्ध हुए सोमको (गमत्) प्राप्त होता है और (ध्रुवे, सद्सि) द्युलोक नामक अचल स्थानमें (सीदति) निवास करता है

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नूनो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यथ्ँ सोम विश्वतः ।

१ २ ३ १ २

आ पवस्व सहस्त्रिणम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! अभिषुतस्त्वं हे इन्दो ! नः अस्मभ्यम् नु क्षिप्रं महां महान्तं सहस्त्रिणम् असङ्ख्यातं रयिं धनं विश्वतः आ पवस्व सर्वतः परिस्रव ॥ ३ ॥

(इन्दो) पात्रमें जाते हुए (सोम) हे सोम तू (नः) हमें (नु) शीघ्र (महाम्) बहुत (सहस्त्रिणम्) सहस्रों संख्याका (रयिम्) धन (विश्वतः) सब ओरसे (आपवस्व) दो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः ।

२ ३ १ २ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २ ३

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्य्य-

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

श्वाद्रिः सोतुर्बाहुभ्याथ्ँ सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

ऋ० मैत्रावरुण-वसिष्ठः । छ० विराट् । दे० इंद्रः । अथ पञ्चम-खण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । हे इंद्र ! सोमं पिब स सोमः त्वा त्वाम् मन्दतु मादयतु, हे हर्य्यश्व ! हरिसंज्ञकाश्ववन् ! इंद्र ! ते त्वदर्थं सोतुः अभिषवकर्त्तुः बाहुभ्याम् अर्वा रश्मिभ्यामश्व इव सुयतः सुष्ठु परि-गृहीतः अद्रिः ग्रावा यं सोमं सुषाव अभिषवं करोषि, स मन्दत्विति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (सोमं, पिब) सोमको पियो, वह सोम (त्वा, मन्दतु) तुम्हें आनन्द देय (हर्यश्व) हे हरि नामक घोडोंवाले इन्द्र (ते) तुम्हारे निमित्त (सोतुः) अभिषव करनेवालेकी (बाहुभ्याम्) भुजाओंसे (अर्वा न) लगामोंसे खिंचे हुए घोडेकी समान (सुयतः)

भले प्रकार ग्रहण किया हुआ (अद्रिः) पाषाण (यत्) जिस सोमको (सुषाय) अभिषव करता हुआ वह सोम तुम्है आनंद देय ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३२ ३ १२ ३१ २ ३
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्य्यश्व
१ २ १ २र
हथ्ँसि स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे हर्यश्व ! इंद्र ! ते तव युज्यः योग्यः चारुः समीचीनः मदः मदकरः यः सोमः अस्ति विद्यते येन च पीतेन सोमेन वृत्राणि आवरकादीनि राक्षसादीनि हंसि, हे प्रभूवसो ! प्रभूतधन इंद्र ! त्वा त्वां सः सोमः मदतु मादयतु ॥ २ ॥

(हर्यश्व, इन्द्र) हे हरिनामक घोडोंवाले इन्द्र (ते) तेरा (युज्यः) योग्य (चारुः) सुन्दर (मदः) मदकारी (यः) जो सोम (अस्ति) है (येन) जिस सोमको पीनेसे (वृत्राणि) राक्षसादिकोंको (हंसि) नष्ट करते हो (प्रभूवसो) वहुत धनवाले हे इन्द्र ! (सः) वह सोम (त्वा) तुम्हैं (मदतु) आनन्द देय ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३
बोध सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति
१ २ ३ १ २र ३ १ २
प्रशस्तिम् । इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे मघवन् ! इन्द्र ! ते तव प्रशस्तिं स्तुतिरूपां यां वाचं वसिष्ठः नामर्षिः अर्चति वहति, इमां वसिष्ठस्य सम्बन्धिनीं वाचं सु आ बोध सुष्ठु अभिबुध्यस्व किञ्च इमा इमानि ब्रह्म ब्रह्माणि हवीरूपाण्यन्नानि सधमादे यज्ञे जुषस्व सेवस्व ॥ ३ ॥

(मघवन्) हे इंद्र ! (ते) तेरी (प्रशस्तिम्) स्तुतिरूप (याम्) जिस (वाचम्) वाणीको (वसिष्ठः) श्रेष्ठ जितेन्द्रिय (अर्चति) धारण करता है (इमाम्) इस वसिष्ठकी वाणीको (सु आ बोध) भले प्रकार स्वीकार करो (इमा) इन (ब्रह्म) हविरूप अन्नोंको (सधमादे) यज्ञशालामें (जुषस्व) सेवन करो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं
३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ १ ३ २ ३ १ २ ३ १
जजनुश्च राजसे । क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्र-

२र ३१२ ३ १२
भोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥ १ ॥

ऋ० त्रिशोकः रेभो वा । छ० अतिजगती । दे० इन्द्रः । अथ द्वितीय-तृचे—प्रथमा। विश्वाः सर्वाः व्याप्ता वा पृतनाः पृङ् व्यायामे (तु०, आ०) व्याप्रियन्ते इति पृतनाः सेनाः परस्परं सङ्गताः सत्यः अभिभूतरम् शत्रूणामित्यर्थः अभिभवितारम् इन्द्रम् ततक्षुः आयुधादिभिः तीक्ष्णीचक्रुः आयुधवन्तमश्ववन्तञ्च चक्रुरित्यर्थः यद्वा पृतना इति संग्राम नाम (निघ० २, १७, १८) व्याप्रियन्ते अत्रेति पृतनाः संग्रामाः, सर्वानेव संग्रामानभिभावुकमिन्द्रं नरः नेतारः स्तोतारः अन्योऽन्यं सङ्गताः स्तुतिभिः तीक्ष्णमकुर्वन् , सुतोतिबलवान् भवतीति यद्वा यष्टारो हविःप्रदानेन वीर्यवन्तं कुर्वन्तीति किञ्च स्तोतारः राजसे राजतेः तुमर्थे असे प्रत्ययः (३, ४, ९) आत्मनो विराजनार्थं प्रकाशनार्थं सूर्यात्मानमिन्द्रं जजनुः जनयामासुः स्तोत्र-शस्त्रैः स्व यशो प्रादुर्भावयन्नित्यर्थः । किञ्च क्रत्वा ईदृशमिन्द्रम् आमुरीम् शत्रूणामाभिमुख्येन मारयितारम् उग्रम् उद्गूर्णबलम् अतएव ओजिष्ठम् ओजस्वितमम् तरसं प्रवृद्धं तरस्विनम् संग्रामे शत्रुवधार्थं वेगवन्तं बलवन्तं वा एतम्भूतमिन्द्रं धनार्थं स्तुवन्ति ॥ क्रत्वेवरेस्थेमनि—क्रत्वावरिष्ठं वरे—इति पाठौ ॥ १ ॥

(विश्वाः) सकल (पृतनाः) संग्रामोंको (अभिभूतरम्) तिरस्कार करनेवाले (इंद्रम्) इंद्रको (नरः) स्तोता (सजूः) इकट्ठे होकर (ततक्षुः) स्तुतियोंसे तीक्ष्ण करतेहुए (राजसे) अपना प्रकाश होनेके निमित्त (जजनुः) सूर्यरूप इंद्रको अपने स्तोत्रोंसे प्रकट करते हुए (क्रत्वे) अपने विघ्नकर्त्ताओंका नाश आदि कर्मके लिये (वरे) श्रेष्ठ (स्थेमनि) स्थानमें स्थित (आमुरिम्) शत्रुओंको मारनेवाले (उग्रम्) परमबली (ओजस्विनम्) परमतेजस्वी (तरसम्) बढ़ेहुए (तरस्विनम्) बली इन्द्रको धनके निमित्त स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः २

अथ द्वितीया। नेमिम् अरान् यथा नेमिर्व्याप्नोति तद्वदिन्द्रः सर्वं व्याप्नुते

तादृशं नमनशीलमिंद्रं चक्षसा दर्शनसाधनेनैव विप्राः मेधाविनः अभिस्वरे अभिस्वरेण गीताय स्तोत्राय इंद्रविषयं स्तोत्रं कर्त्तुमित्यर्थः नमन्ति नमस्कुर्वन्ति। कीदृशम्? मेषम् इंद्रो मेषो भूत्वा मेधातिथिं स्वर्गमनयत् तस्मात् मेधातिथेर्मेषभूतमिति यावत्। इदानीं यजमानः स्तोतृनाह--अपि च हे स्तोतारः! सुदीतयः शोभनदीप्तयः अद्रुहः कस्याप्यद्रोग्धारः वः यूयं छान्दसो वसादेशः तरस्विनः कर्मसु स्तोत्रेषु वा त्वरायुक्ताः संतः इंद्रस्य कर्णे श्रोत्र–समीपे ऋक्वभिः अर्चनयुक्तैर्मन्त्रैः यद्वा ऋचो बह्व्यो येषु सन्ति तैः स्तोत्रादिभिः संस्तुतः इंद्रो यथा युष्मदीयानि स्तोत्रादीनि शृणोति तथा सम्यगभिष्टुतेत्यर्थः। अभिस्वरे—अभिस्वरा—इति पाठौ॥ २॥

(विप्राः) ऋत्विज (अभिस्वरे) ऊँचे स्वरसे इंद्रका स्तोत्र पढ़नेको (मेषम्) मेषरूप (नेमिम्) सर्वव्यापक इंद्रको (नमन्ति) नमस्कार करते हैं। यजमान कहता है, कि—हे स्तोताओं! (सुदीतयः) सुन्दर कांतिवाले (अद्रुहः) किसीसे भी द्रोह न करने वाले (वः) तुम (अपि) भी (तरस्विनः) कर्म करने और स्तुति पढ़ने में त्वरायुक्त होतेहुए (कर्णे) इंद्रके कानके समीप (ऋक्वभिः) पूजन के मंत्रोंसे (सम) भले प्रकार स्तुति करो॥ २॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रꣳ सोमस्य पीतये।

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स्वःपतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ३

अथ तृतीया। रेभासः रेभृ शब्दे (भ्वा० आ०) शब्दयितारः स्तोतारः यद्वा रेभासः कश्यपपुत्रा रेभाः एतन्नामका ऋषयः इन्द्रम् उ इन्द्रमेव समस्वरन् सम्यगशब्दयन् समस्तुवन्। किमर्थम्? सोमस्य पीतये सोमपानाय यद् यदा स्वस्पतिः स्वर्गस्य पालयिता धनस्य स्वामी वा इन्द्रः वृधे यजमानादिवर्द्धनाय भवति, तदा धृतव्रतः धृतकर्मेन्द्रः ओजसा बलेन ऊतिभिः मरुद्भिः पालनैश्च वा सह सङ्गच्छते स्तुतिभिर्बलं मरुद्भिः पालनैश्चेन्द्रस्य भवतीत्यर्थः॥ समु समीम्–इति पाठौ, स्वष्पतिः स्वर्पतिम् इति च॥ ३॥

(रेभासः) शब्द करनेवाले स्तोता (सोमस्य, पीतये) सोमको पीनेके लिये (इन्द्रम्, उ) इन्द्रकी ही (समस्वरन्) भलेप्रकार स्तुति करते हुए (यद्) जब (स्वष्पतिः) स्वर्गका पालक इन्द्र (वृधे) यज-

मान आदिकी वृद्धि करनेवाला होता है तब (धृतव्रतः) कर्मको धारण करने वाला इंद्र (ओजसा) बल करके (ऊतिभिः) रक्षाओं करके (सम्) युक्त होता है ॥ ३ ॥

१ २र ३ २उ ३ १२ ३ १ २
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे १

ऋ० पुरुहन्माः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ प्रगाथरूपे तृतीयसूक्ते प्रथमा । यः इंद्रः चर्षणीनाम् मनुष्याणाम् राजा स्वामी रथेभिः रथैः याता आगन्ता च अध्रिगुः अधृतगमनाऽश्वैः, विश्वासां पृतनानां सेनानां तरुता तारकः, यः च वृत्रहा वृत्रं हतवान, ज्येष्ठम् गुणैर्ज्यायांसं तं महाभागमिन्द्रं गृणे स्तौमि ॥ १ ॥

(यः) जो इंद्र (चर्षणीनाम्) मनुष्योंका (राजा) स्वामी है (रथेभिः) रथोंके द्वारा (याता) आगमन करनेवाला है (अध्रिगुः) जिसकी गतिको कोई नहीं रोकसकता (विश्वासां,पृतनानाम्) सकल सेनाओंका (तरुता) तारक है (यः) जो (वृत्रहा) वृत्रासुरका नाशक है (ज्येष्ठम्) उस बड़े इंद्रको (गृणे) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं तँ शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महां देवो न सूर्यः २

अथ द्वितीया । हे पुरुहन्मन् ! ऋषे ! त्वं तम् इंद्रं शुम्भ हविः प्रदानादिना अलंकुरु । किमर्थम् ? अवसे रक्षणाय । एवमात्मा स्वात्मानम् सम्बोध्य ब्रवीति-यस्य तव विधर्त्तरि विधारके इंद्रे द्विता द्वित्वम् अस्ति-औग्र्यमनौग्र्यम् तव शत्रून् हन्तुमुद्यतत्वं, त्वदनुग्रहाय अनुग्रहश्चेति द्वैतमस्ति, तत्रौग्र्यं दर्शयति-दर्शतः दर्शनीयः महान् प्रभूतः वज्रः देवो न सूर्यः द्योतमानः सूर्य्य इव स्थितः हस्तेन करेण प्रतिधायि प्रतिनिहितो भवति ॥ हस्तेन हस्ताय-इयि पाठौ, महान्देव-महोदेवः-इति च २

(पुरुहन्मन्) हे अनेकों शत्रुओंका नाश करने वाले इंद्रके उपासक यजमान ! (अवसे) रक्षाके निमित्त (तं इंद्रम्) उस इंद्र को (शुम्भ) हवि आदि देकर सुशोभित कर (यस्य) जिस तेरे (विध-

तरि) विशेष रक्षक इंद्रमें (द्विता) तेरे शत्रुओंके ऊपर उग्रता और तेरे ऊपर अनुग्रह यह दो भाव हैं (दर्शतः) दर्शनीय (महान) बड़ा (वज्रः) वज्र (देवः सूर्यः न) द्योतमान सूर्यकी समान (हस्तेन) हाथ करके (प्रतिधायि) धारण करता है ॥ २ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

१ २   ३ २   ३ २   ३ १   २र   ३क २र ३ २
परि प्रिया दिवः कविर्वयाँसि नप्त्योर्हितः ।
३ १ २   ३ १ २
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥ १ ॥

ऋ० असित—देवलः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ षष्ठखण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । कविः मेधावी कविक्रतुः कान्त—प्रज्ञः क्रान्त-कर्मा नप्त्योः अधिषवणफलकयोः हितः निहितः सोमः दिवः द्युलोकस्य परि प्रिया अति प्रियाणि वयांसि प्राणः । स्वानैः सुवानः—इति पाठौ

(कविः) मेधावी (कविक्रतुः) कर्मसाधक बुद्धि युक्त (नप्त्योः) अधिषवणके फलकों पर (हितः) स्थापन किया हुआ सोम (दिवः) द्युलोकके (परि प्रिया) अतिप्यारे (वयांसि) पाषाणोंसे सिद्ध हुआ, (स्वानैः) अध्वर्युओंके द्वारा (परियाति) प्राप्त होता है ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २   ३ १ २
स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
३ २ ३ १   २ ३ १ २
महान्मही ऋतावृधा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । जातः उत्पन्नः शुचिः विशुद्धः महान् हविरुत्तमः सः सोमाख्यः सूनुः पुत्रः मही महत्यौ ऋतावृधा यज्ञस्य वर्द्धयित्र्यौ जाते विश्वस्य जनयित्र्यौ मातरा आत्मनो मातरौ द्यावापृथिव्यौ अरोचयत् रोचयति दीपयति ॥ २ ॥

(जातः) प्रकट हुआ (शुचिः) विशुद्ध (महान्) सब हवियों में श्रेष्ठ (सः) वह सोम नामक (सूनुः) पुत्र (मही) महान् (ऋतावृधः) यज्ञके बढ़ाने वाले (जाते) विश्वके उत्पादक (मातरा) अपने माता पिता द्यावा पृथिवीको (अरोचयत्) प्रकाशित करता है

२ ३ १ २ ३ १ २ ३   १ २ ३   १ २   ३ १ २
प्र प्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।

३क२र ३ १ २

वीत्यर्ष पनिष्टये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम ! प्र प्र अत्यन्तं क्षयाय तव निवासभूताय अद्रुहः अद्रुहे अद्रोग्धे पन्यसे स्तोत्रे जनाय मनुष्याय वीति वीत्यै भक्षणाय जुष्टः पर्य्याप्तः त्वं पनिष्टये स्तुतये अर्ष अङ्ग प्रति गच्छ ॥ अद्रुहः अद्र हे-इति पाठौ, पनिष्टये-ननिष्टया-इति च ॥ ३ ॥

हे सोम ! (प्र प्र क्षयाय) तेरे अत्यन्त निवासभूत (अद्र हः) द्रोह न करनेवाले (पन्यसे) स्तोता (जनाय) मनुष्यके अर्थ (वीति) भक्षण करनेको (जुष्टः) पर्याप्त तू (पनिष्टये) स्तुतिके लिये (अर्ष) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वᳬं ह्या३ंग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः।

३ १ २ ३ १ २

अमृतत्वाय घोषयन् ॥ १ ॥

ऋ० शक्तिः। छ० ककुप्। दे० सोमः। अथ प्रगाथे द्वितीयसूक्ते प्रथमा। हे पवमान ! पूयमान ! दैव्य देवसम्बन्धि सोम ! द्युमत्तमः अतिशयेन दीप्तिमान् त्वं हि त्वमेव अङ्ग क्षिप्रं घोषयन् शब्दयन् शब्दं कुर्वन् जनिमानि देवसम्बन्धीनि जन्मान्यभिलक्ष्य अमृतत्वाय अमरणाय आगच्छेति शेषः। दैव्य दैव्या इति पाठौ, घोषयन्-घोषः इति च १

(दैव्य) देवसम्बन्धी (पवमान) हे सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यंत दीप्तिमान् (त्वं हि) तू ही (अङ्ग) शीघ्र (घोषयन्) शब्द करता हुआ (जनिमानि) देवसम्बन्धी जन्मोंकी ओरको ध्यान रखकर (अमृतत्वाय) अमरपनेको प्राप्त हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

येना नवग्वा दध्यङ्पोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३

देवानᳬं सुम्ने अमृतस्य चारुणा येन श्रवाᳬं

१ २

स्याशत ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। नवग्वा नवनीय-गतिः यद्वा नवभिर्मासैर्मखस्यानुष्ठानात् दध्यङ्-एतन्नामकः अङ्गिराः येन सामेन पणिभिरपहृतानां द्वारम् अपोर्णुते अपच्छादयति विवृतमकार्षीत् विप्रासः तत् मुख्याः सर्वे मेधाविनोऽङ्गिरसः येन च सोमेन आपिरे तैरपहृता गाः आप्नुवन् किञ्च देवानाम् इंद्रादीनां सुम्ने सुखे यज्ञेन सञ्जाते सति चारुणः कल्याणस्य अमृतस्य उदकस्य सम्बन्धीनि श्रवांसि अन्नानि येन च सोमेन यजमानाः आशत व्याप्नुवन् अलभन्त, स त्वं देवानाममरणायागच्छेति पूर्वेण सम्बन्धः। नवग्वा-नवग्वौ—इति पाठौ, आशत-आनशु—इति च ॥ २ ॥

(नवग्वा) श्रेष्ठ वर्त्तावबाला (दध्यङ्) ऋषि (येन) जिस सोमके द्वारा (द्वारम्) यज्ञद्वारको (अपोर्णुते) खोलता है (विप्रासः) उसको आदि लेकर अन्य ऋत्विज (येन) जिस सोमके द्वारा (आपिरे) पणियोंकी हरीहुई गौओंको प्राप्त हुए (देवानाम्) इंद्रादि देवताओंको (सुम्ने) यज्ञके द्वारा सुख प्राप्त होनेपर (चारुणः) श्रेष्ठ (अमृतस्य) जलके (श्रवांसि) अन्नोंको (येन) जिस सोमके द्वारा यजमान (आशत) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१२ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।

१२ ३ ४ २र ३ १ २

अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १ ॥

ऋ० अग्निः। छ० उष्णिक्। दे० सोमः। अथ तृतीयतृचे-प्रथमा। पुनानः पूयमानः सोमः ऊर्मिणा स्वीयया धारया अव्यम् अवेः सम्बन्धिनं बालं पवित्रं वि धावति विविधं गच्छति। कीदृशः सोमः? पवमानः पूयमानः स्तोत्रस्य अग्रे कनिक्रदत् पुनः पुनः शब्दं कुर्वन् विधावति। अव्यम्-अव्ये-इति पाठौ॥ १ ॥

(पुनानः) सिद्ध किया जाता हुआ (सोमः) सोम (ऊर्मिणा) अपनी धारसे (अव्यं वालम) ऊनके पवित्रमेंको (विधावति) अनेकों मार्गसे जाता है (पवमानः) पवित्र हुआ (वाचः) स्तोत्रके (अग्रे) आगे (कनिक्रदत्) वार २ शब्द करता हुआ जाता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम् ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वाजिनं वलवंतं वा वने वननीये वसतीवर्याख्ये उदके क्रीडन्तं संक्रीड़मानम् अत्यविम् अविशब्देन तद्रोमकृतं पवित्रमभिधीयते अतिक्रान्तपवित्रं सोमम् ऋत्विजः, धीभिः स्तुतिभिः मृजन्ति शोधयंति यद्वा, धीभिः-वर्णलोपश्छान्दसः धीभिः अंगुलिभिः सृजंति किञ्च त्रिपृष्ठं त्रीणि पवित्राणि द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदात्मकानि पात्राणि स्पृशतीति त्रीणि सवनानि वा स्पृशतीति स तथोक्तः तम् सोमं मतयः स्तुतयः अभि समस्वरन् अभितः संस्तुवंतीति ॥ सृजंति हिन्वंति इति पाठौ ॥ २ ॥

(वाजिनम्) वलवान् (वने) वसतीवरी नामक जलमें (क्रीडन्तम्) क्रीड़ा करते हुए (अत्वयिम्) दशा पवित्रमेंको निकलेहुए सोम को (धीभिः) स्तुतियोंसे वा उंगलियोंसे (मृजन्ति) ऋत्विज शुद्ध करते हैं (त्रिपृष्ठम्) द्रोणकलश आधवनीय और पूतभृत् नामक तीन पात्रोंको स्पर्श करनेवाले सोमको (मतयः) स्तुतियें (अभि समस्वरन्) चारों ओरसे प्रशंसा करती हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २
असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वांत्सप्तिर्न वाजयुः ।
३ १ २र ३ १ २
पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वाजयुः यजमानामन्नमिच्छन् मीढ्वान् सेक्ता स सोमः कलशान् अभि लक्ष्य, कलशेषु असर्जि असृज्यत । तत्र दृष्टांतः-सप्तिर्न यथा सर्पणशीलोऽश्वः-संग्रामे सृज्यते तद्वत् । ततः पुनानः पूयमानः सोमं वाचं शब्दं जनयन् उत्पादयन् असिष्यदत् पात्रेषु स्यन्दते। मीढवान्-मेल्हा—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(वाजयुः) यजमानोंके अन्नको चाहनेवाला (मीढवान्) सींचनेवाला वह सोम (कलशान्, अभि) कलशोंमें (असर्जि) छोड़ा गया (सप्तिः, न) जैसे कि—चलनेवाला घोड़ा संग्राममें छोड़ा जाता है, तदनंतर (पुनानः) सोम (वाचम्) शब्दको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (असिष्यदत्) पात्रोंमें पहुंचता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२ ३ २
सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो
२ १ २ २ ३ २ १ १ २र ३ १ २र
जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्य्यस्य
३२

३ १ २ ३ १ २र

जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ १ ॥

ऋ० प्रतर्द्दनः । छ० बृहती । दे० सोम । अथचतुर्थतृचे-प्रथमा । सोमः अभिषूयमाणः पवते पात्रेषु क्षरति । कीदृशः ? मतीनां बुद्धीनां यद्वा, मननीयानां जनिता जनयिता, जनिता मन्त्रे (६, ४, ५३)—इति निपातनाण्णिलोपः । किञ्च दिवः द्युलोकस्य जनिता प्रादुर्भावयिता, तथा पृथिव्याः जनिता अग्नेः जनिता प्रकाशयिता, सूर्य्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्यादित्यस्य जनिता इन्द्रस्य जनिता तेन मदस्य जनयिता उत अपि च विष्णोः व्यापकस्य जनिता जनयिता,-एतत्सर्वं सोमेऽभिषूयमाणे भवतीति १

(मतीनाम्) बुद्धियोंका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (दिवः) द्युलोकका (जनिता) प्रकट करनेवाला (पृथिव्याः) पृथिवीका (जनिता) बढ़ानेवाला (अग्नेः) अग्निका (जनिता) प्रकाशक (सूर्यस्य) सूर्यका (जनिता) प्रकाशक (इन्द्रस्य) इंद्रका (उत) और (विष्णोः) विष्णुका (जनिता) प्रकटकर्त्ता (सोमः) सोम (पवते) पात्रोंमें पहुंचता है १

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २ १ २ ३

मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणाᳬंस्वधितिर्वनानाᳬं

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया सोमः एवंरूपो भवति—देवानां स्तोत्रकारिणामृत्विजां ब्रह्मा ब्रह्माख्यर्त्विक्स्थानीयो भवति यद्वा, देवानां द्योतमानानामिन्द्रादीनां ब्रह्मा राजा भवति । तथा कवीनां क्रांत-प्रज्ञानां पदवीः स्खलंति पदानि साधुत्वेन यो योजयति स पदवीः, वी गत्यादिषु (अदा० उभ०)-इत्येतस्मात् क्विपि रूपम, तथा विप्राणां मेधाविनां मध्ये ऋषिः भवति । यः परोक्षं पश्यति स ऋषिः ऋषिर्दर्शनात् (निरु० २, १, ११)—इति, मृगाणां महिषो भवति महिषाख्यो बलवान् राजा भवति। तथा गृध्राणां पक्षिविशेषाणां श्येनः शंसनीयः पक्षिराजो भवति, वनानां वनतिहिंसाकर्मा हिंसकानां छेदकानां मध्ये स्वधितिः एतन्नामकश्छेदकोऽसि । एवम्प्रभावः सोमः रेभन् शब्दायमानः सन् पवित्रम् ऊर्णास्तुकेन कृतम् अत्येति अतिगच्छति ॥ २ ॥

(देवानाम्) स्तुति करनेवाले ऋत्विजोंमें (ब्रह्मा) ब्रह्मा नामक ऋत्विजरूप (कवीनाम्) परमबुद्धिमानोंमें (पदवीः) सुन्दर प्रकार से पदोंकी योजना करनेवाला (विप्राणाम्) विप्रोंमें (ऋषिः) परोक्ष विषयको देखनेवाला (मृगाणाम्) पशुओंमें (महिषः) महिष नामक बलवान् राजा (गृध्राणाम्) पक्षियोंमें (श्येनः) प्रशंसा योग्य श्येन पक्षिराज (वनानाम्) हिंसकोंमें (स्वधितिः) स्वधिति नामक (सोमः) सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) दशापवित्रमेंको निकलता है

१ २ ३ २ ३ २३ ३ २ ३ २ ३ १ २

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पव-

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १

मानो मनीषाः । अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या

२ ३ १ २र ३ १

तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। पवमानः सोमः मनीषाः मनस ईशिता हृदयङ्गमान् प्रावीविपत् प्रकर्षेण विपर्य्ययति प्रेरयति सिंधुर्न स्यंदमान-नदीव वाचः शब्दस्य ऊर्मिं न यथा प्रेरयति तद्वत्। किञ्च वृषभः कामानामुदकानां वा वर्षकः सोमः अन्तः अन्तर्हितं वस्त्रजातं पश्यन् अवराणि दुर्बलैः वारयितुमशक्यानि इमा वृजना इमानि आ तिष्ठति आसीदति। किं कुर्वन्? गोषु जानन् गवां जयाय जानानः सन् परबलानि प्रविशति॥ स्तोमान्—स्तोमः—इति पाठौ॥ ३॥

(सिंधुः, वाचः, ऊर्मिम्, न) जैसे बहती हुई नदी शब्दके समूह को प्रेरणा करती है तैसे ही (पवमानः) सोम (मनीषाः) मनको प्रिय लगनेवाले (गिरस्तोमान्) शब्दसमूहोंको (प्रावीविपत्) अधिकता से प्रेरणा करता है (वृषभः) मनोरथपरक सोम (अन्तः) भीतरके वस्त्रोंको (पश्यन्) देखता हुआ (गोषु जानन्) गौओंकी विजयका ज्ञान रखता हुआ (अवराणि) दुर्बलोंसे निवारण न होनेवाले (इमा-वृजना) इन बलोंको (आतिष्ठति) प्राप्त होता है॥ ३॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।

२ ३ २ ३ १ २
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

ऋ० प्रयागः अग्निः वा । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ तृचत्रयात्मके सप्तमे खण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । अध्वराणाम् अहिंस्यानाम् बलिनाम् नप्त्रे बन्धुं सहस्वते बलवन्तं विभक्तिव्यत्ययः (३, १, ८५) वृधन्तं ज्वालाभिर्वर्द्धमानं पुरूतमम् अतिशयेन बहुमग्निं हे ऋत्विजः ! वः यूयम् अच्छ अभिगच्छत । उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारः॥ १ ॥

हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (अध्वराणाम्) बलवानोंके (नप्त्रे) बान्धवः (सहस्वते) बलवान् (वृधन्तम्) ज्वालाओंसे बढ़ते हुए (पुरूतमम्) अत्यन्त अधिक (अग्निम्) अग्निके प्रति (अच्छ) प्राप्त होओ १

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
३ २उ ३ १ २
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयम् अग्निः न अस्मान् तक्ष्या विकर्त्तव्यानिरूपेव त्वष्टा रूपाणि वर्द्धकिरिव यथा येन प्रकारेण आ भुवत आ भवति प्राप्नोति तथैनमग्निमभिगच्छतेत्यर्थः । किञ्च वयम् अस्य अग्ने क्रत्वा प्रज्ञानेन युक्ताः यशस्वतः यशस्वन्तो भवामेति शेषः ॥ २ ॥

(अयम्) यह अग्नि (नः) हमें, (त्वष्टा) बढ़ई (तक्ष्या, रूपा इव) ठीक करने योग्य काष्ठोंको जैसे (आभुवत्) प्राप्त होता है तैसे प्राप्त हो तथा हम (अस्य) इस अग्निके (क्रत्वा) ज्ञानसे युक्त होकर (यशस्वतः) कीर्तिमान् हो ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
२उ ३ १ २
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मनुष्याणां विश्वाः सर्वाः श्रियः सम्पदः देवेषु देवानां मध्ये यः अयम् अग्निः अभि गच्छति सः अग्निः नः अस्मानपि वाजैः अन्नैः उपागमत् उपागच्छतु ॥ ३ ॥

(देवेषु) सब देवताओंमें (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि, मनुष्यों की (विश्वाः) सर्व (श्रियः) सम्पदाओंको (अभिपत्यते) प्राप्त होता

है, वह अग्नि (नः) हमें (वाजैः) अन्नोंके साथ (उपागमत) प्राप्त हो ३

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा हे इन्द्र ! सुतम् अभिषुतम् इमम् सोमं पिब कीदृशम् ? ज्येष्ठम् अतिशयेन प्रशस्यं मदम् मदकरम् अमर्त्यम् अमारकम् सोमपान-जन्यो मदो मदान्तरवत् मारको न भवतीत्यर्थः तथा ऋतस्य यज्ञस्य सम्बधिनि सादने गृहे वर्त्तमानाः शुक्रस्य दीप्तस्यास्य सोमस्य धारा त्वाम् अक्षरन् आभिमुख्येन सञ्चलन्ति त्वां प्राप्तुं स्वयमेवागच्छन्तीत्यर्थः ज्येष्ठम्—प्रशस्य—शब्दादीयसुनि ज्य च (५, ३, ६१)-इति ज्यादेशः अक्षरन्-क्षर सञ्चलने (भ्वा०, प०) छान्दसो लङ् (३, ४, ६) ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (ज्येष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसनीय (मदम्) हर्षदायक (मर्त्यम्) अन्य मादक पदार्थोंकी समान रेड न करने वाले (सुतम्) संस्कार किये हुए (इमम्) इस सोमको (पिब) पियो (ऋतस्य) यज्ञकी (सादने) शालामें वर्त्तमान (शुक्रस्य) दीप्तिमान् सोमकी (धाराः) धारायें (त्वाम्) तुम्हें (अक्षरन्) प्राप्त होने को अभिमुख जाती हैं ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे २

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! यद् यस्मात् त्वं हरी—एतत्संज्ञावश्वौ यच्छसे रथे योजयसि तस्मात् त्वद् त्वत्तोऽन्यः कश्चित् रथीतरः अतिशयेन रथवान् नकिः नास्ति अन्येषामीदृगश्वयुक्तरथाभावात् त्वा त्वाम् अनु लक्ष्य मज्मना बलनामैतत (निघ० २,९, २३) बलेन सदृशोऽपि न किः न ह्यस्ति स्वश्वः शोभनाश्वो नकिः आनशे न प्राप इंद्र इव बलाश्वयोरसाधारणत्वात् इन्द्रसदृशो बलवान् अश्ववान् लोके कश्चिदपि नास्तीत्यर्थः । न किष्ट्वत्—युष्मत्तत्ततक्षु षवन्तः पादम् (८, ३, ११३)—इति षत्वम् । रथीतर ?—अतिशयेन रथी तयोरपि

इंद्रथिनः—इति ईकारांतादेशः । यच्छसे—यमेर्व्यत्ययेनात्मनेपदम् । स्वश्वः-बहुव्रीहावाद्युदात्तं दासीत्युत्तर-पदाद्युदात्तश्च । आनशे-अश्नोतेश्च (७, ४, ७२)-इति अभ्यासादुत्तरस्य नुट् ॥ २ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (यत्) जिसकारण तुम (हरी) अपने हरि नामक घोड़ोंको (यच्छसे) रथमें युक्त करते हो इसकारण (त्वत्) तुमसे अन्य (रथीतरः) श्रेष्ठ रथी (नकिः) नहीं है (त्वा, अनु) तुम्हारी समान कोई (मज्मना) बल करकै भी (न किः) नहीं है (स्वश्वः) श्रेष्ठ अश्ववाला भी (न किः, आनशे) तुम्हारी समता को नहीं पाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥३॥

अथ तृतीया । हे ऋत्विजः ! इंद्राय नूनं क्षिप्रम् अर्चत पूजनं कुरुत। एतदेव स्पष्टीक्रियते-उक्थानि अप्रगीत-मन्त्रसाध्यानि शास्त्राणि स्तोत्राणि च ब्रवीतन ब्रूत । सुताः अभिषुताः इंदवः सोमा त्वाम् अमत्सु आगतमिन्द्रं मत्तं कुर्वन्तु अनन्तरं ज्येष्ठं प्रशस्यतमं सहः सहस्विनं बलवन्तम् तमिन्द्रं नमस्यत नमस्कुरुत ब्रवीतन-ब्रवीतेर्लोटि तप्तनप्तनथनाश्च (७, १, ४५)—इति तनबादेशः । अमत्सु—मदी हर्षे (भ्वा० आ०) छांदसः प्रार्थनायां लुङ् आगमानुशासनस्य नित्यत्वादिडभावः। नमस्यत—नमोवरिवश्चित्रङः (३, १, १९)-इति क्यच् । सहः-युगकारेकाररेफाश्च वक्तव्याः-इति मत्वर्थीयस्य लुक् ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजो ! (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (नूनम्) शीघ्र (अर्चत) पूजन करो (उक्थानि) श्रेष्ठ मन्त्रसाध्य स्तोत्रोंको (ब्रवीतन) उच्चारण करो (सुताः) संस्कार कियेहुए (इंदवः) सोम (अमत्सु) आये हुए इंद्रको आनन्ददायक हों, तदनन्तर (ज्येष्ठम) अत्यन्त प्रशंसनीय (सहः) बलवान् इंद्रको (नमस्यत) नमस्कार करो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
१ २ ३ १ २ ३ १ १ ३ २र ३ १ २
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ॥१॥

ऋ० छ० दे० सन्दिग्धः । अथ तृतीयतृचे—प्रथमा । यानि मया

हवींषि दत्तानि तानि प्र वह आ याहि आगच्छ शूर वीर्य्यवन्! उपसर्गाक्षराणि—हरिह अथवा हरितवर्णा हया यस्य स हरिहयः तस्य सम्बोधनं क्रियते—हे हरिह! छांदसो यकारलोपः पिबा सुतस्य सोमस्य उपसर्गाक्षराणि-मतिर्नमधोश्चकानः चारुः शोभनः मदाय भक्षणाय ॥ १ ॥

(हरिह) हरेवर्णके अश्वोंवाले (शूरः) वीर्यवान् (इन्द्र) हे इंद्र ! (आयाहि) आओ (प्रवह) मेरे दियेहुए हवियोंको स्वीकार करो (चारुः) सुन्दर तुम (मदाय) आनन्द प्राप्तिके लिये (न) इससमय (चकानः) चाहना करतेहुए (सुतस्य) संस्कार किये हुए सोमके (मतिः) चेतनता देनेवाले (मधोः) मधुरसको (पिब) पियो

१ २ ३२३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

इन्द्रं जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न । अस्य

३ २ ३ २ १ २ ३ १२ ३ १ २

सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इंद्र! जठरम् उदरं नव्यं न नवतरं पृणस्व पूरयस्व मधोः मधुरस्य दिवो न अस्य सोमस्य सुतस्य अभिषुतस्य स्वर्नःस्वर्गस्थेव उप त्वा उप समीपे त्वाम् मदाः सुवाचः शोभनवाचः अस्थुः स्थितवंतः ।

(इंद्र) हे इंद्र ! (सुतस्य) संस्कार किये हुए (अस्य) इस (मधोः) मधुर सोमके (दिवः, न) द्युलोकके से (सुवाचः) सुन्दर स्तुतियोंसे युक्त (मदाः) हर्ष (त्वा, उप,अस्थुः) तुम्हारे समीप प्राप्त हुए हैं (स्वन) स्वर्गकी समान (उठरम्) अपने उदरको (नव्यं न,) अपूर्वसा (पृणस्व) पूर्ण करो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न । बिभेद

३ २उ ३ १ २ ३उ ३ २ ३ १ २

बलं भृगुर्न ससाहे शत्रून्मदे सोमस्य ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। इंद्रः तुराषाट् तुरि सीदति यः सः तुराषाट् मित्रो न मित्र इव जघान वृत्रं शत्रुं यतिर्न—उपसर्गाक्षराणि बिभेद भिन्दस्य बलं बलो नाम दानवस्तं बलं भृगुर्न त्रीणि त्रीणि पदान्तेषु उपसर्गाक्षराणि भवन्ति ससाहे सहितवान् शत्रून मदे भक्षणे कृते सोमस्य तथा च निविदापदे विहितस्य षोडशिनः। अस्य मदे जरित इत्यारभ्य बहूनि वीर्य्ययुक्तानि कर्माणि ॥ ३ ॥

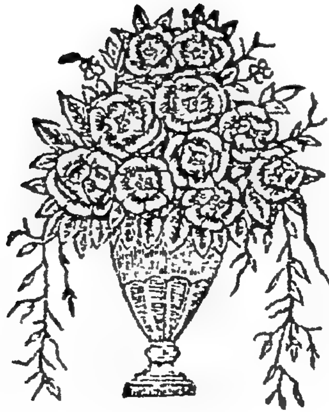
वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्तक-श्रीवीर-बुक्क भूपाल-साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे पञ्चमोऽध्यायः ।

(तुराषाट्) युद्धमें धैर्यधारी (इंद्रः) इंद्र (मित्रो न) मित्र देवता की समान (वृत्रम्) शत्रुको (जघान) मारता हुआ (यतिर्न, बलम्) बलदानवको (बिभेद) छिन्न भिन्न करता हुआ (सोमस्य) सोमका (मदे) मद होनेपर (भृगुर्न, शत्रून्) भृगु जैसे शत्रुओंको (ससाहे) सहता हुआ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

पञ्चमाध्यायश्च समाप्तः



॥ श्रीहरिः ॥

षष्ठोऽध्याय आरभ्यते

अस्मिन्नध्याये सोमः स्तूयते ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ—महेश्वरम् ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्व-

२ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३

र्पितः । त्वथँ सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर

१ २ ३ १ २र

उप गिरेम आसते ॥ १ ॥

ऋ० सिकतानिवारी तथा पृश्न्योजाः । छ० जगती । दे० सोमः । तत्र गोवित्पवस्वेति प्रथमे खण्डे प्रथमतृचे-प्रथमा । हे इन्दो ! सोम ! त्वम् पवस्व क्षर । कीदृशस्त्वं ? गोवित् गवाम् लम्भकः वसुवित् धनस्य लम्भकः हिरण्यवित् हिरण्यस्य लम्भकः रेतोधाः रेत उदकं तस्य धातौ-षधीनाम् यद्वा रेतः प्रजननसामर्थ्यम् तस्य धारयिता भुवनेषु उदकेषु अर्पित भो सोम ! कीदृशस्त्वं ? सुवीरोऽसि शोभनवीर्योऽसि भवसीति विश्ववित् सर्वस्य वेत्तासि । यस्मादेवं तस्मात् तादृशं त्वा त्वाम् इमे नरः नेतारः गिरा स्तुत्या उपासते । नरः विप्राः—इति पाठौ ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (गोवित्) गौएँ प्राप्त करनेवाला (वसुवित्) धन प्राप्त कराने वाला (हिरण्यवित्) सुवर्ण प्राप्त कराने वाला (रेतोधाः) उत्पादक शक्ति को धारण करानेवाला (भुवनेषु) जलोंमें (अर्पितः) अनेकों बीजरूपसे स्थित तू (पवस्व) पात्रमें पहुंच (सोम) हे सोम तू (सुवीरः) श्रेष्ठ वीर (विश्ववित्) विश्वको जाननेवाला (असि) है (तम्) तिस (त्वा) तुझे (इमे) यह ऋत्विजः (गिरा) स्तुतिसे (उपासते) उपासना करते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ २ १ २ ३

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ

१ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २
ता वि धावसि । स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यव
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
द्वयथँ स्याम भुवनेषु जीवसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । भो सोम ! त्वं विश्वतः सर्वेषु भुवनेषु, नृचक्षा असि नृणां द्रष्टा भवसि । हे पवमान ! पुनान सोम ! वृषभ अपां वर्षक ! ताः अपः वि धावसि विविधं गच्छसि, स त्वं न अस्माकं पवस्व क्षर किञ्च वसुमत् बहुभिर्वसुभिर्वासकैर्गवादिद्रव्यैर्युक्तं तथा हिरण्यवत् बहुभिः हिरण्यैर्युक्तं धनम् । वयञ्च वसुभिर्हिरण्यैश्च युक्तः भुवनेषु लोकेषु जीवसे जीवितुं प्रभवः स्याम भवेम ॥ २ ॥

(पवमान) संस्कार किये जाते हुए (वृषभः) कामनापूरक (सोम) हे सोम ! (विश्वतः) सब भुवनोंमें (नृचक्षाः, असि) मनुष्योंका साक्षी है (ताः) उनमें (वि धावसि) अनेकों रूपोंसे पहुंचता है (सः) वह तू (नः) हमारे लिए (पवस्व) क्षरित हो और हम (वसुमत्) गौ आदि धन युक्त (हिरण्यवत्) बहुतसे सुवर्णधनसे युक्त (भुवनेषु) लोकोंमें (जीवसे) जीवित रहनेको (स्याम) समर्थ हों ॥२॥

३ २ ३ १ २र ३ १२ ३ १ २
ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो
३ १ २ ३क २र १ २ ३ १ २ ३२उ ३
हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पय
१ २ ३ २ २ ३ १ २
स्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्दो सोम ! ईशानः सर्वस्य स्वामी त्वम् इमा इमानि भुवनानि भूतजातानि ईयसे गच्छसि ईङ् गतौ (दि० आ०) दिवादिभ्यः श्यन् (३, १, ६९)—इति श्यन् । किं कुर्वन् ? हरितः हरितवर्णाः सुपर्ण्यः सुपतनाः अश्वा रथे युञ्जानः योजयन, ताः सुपर्ण्यः ते तव सम्बन्धिन्यः मधुमत् माधुर्योपेतं घृतं दीप्तम् पय उदकं क्षरन्तु हे सोम ! तव व्रते कर्मणि तिष्ठन्तु कृष्टयः मनुष्याः सर्वे । ईयसे—वीयसे-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (ईशानः) सबका स्वामी तू (हरितः) हरे

वर्णके (सुपर्व्यः) सुन्दर चलने वाले इन्द्रके घोड़ोंको (युञ्जानः) रथ में युक्त करता हुआ (इमाः) इन (भुवनानि) सकल लोकोंको (ईयसे) प्राप्त होता है (ताः) वह (ते) तेरे (मधुमत) मधुरतायुक्त (घृतम्) दीप्तमान (पयः) जलको (क्षरन्तु) वर्षावें (सोम) हे सोम ! (कृष्टयः) मनुष्य (ते) तेरे (व्रते) कर्ममें (तिष्ठन्तु) स्थित हों ॥३॥

१ २ ३ २ ३ १ २

पवमानस्व विश्वविस्प्र ते सर्गा असृक्षत ।

१ २ ३ २ १ १ २

सूर्य्यस्येव न रश्मयः ॥ १ ॥

ऋ० कश्यपः । छ० गायत्री । दे०सोमः । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा । हे विश्ववित् ! विश्वस्य द्रष्टः । सोम ! पवमानस्य क्षरतः ते तव सर्गाः सृज्यमाना धारा सूर्य्यस्येव रश्मयः सूर्य्यस्य किरणा इव प्रकाशमानाः नः—इति सम्प्रत्यर्थः । इदानीं प्रासृक्षत प्रासृज्यन्त ॥ १ ॥

(विश्ववित्) हे विश्वके द्रष्टा सोम ! (पवमानस्य) संस्कार हुए (ते) तेरी (सर्गाः) धारें (सूर्यस्य,रश्मयः, इव) सूर्य की किरणों की समान (न) इस समय (प्रासृक्षत) प्रकाशमान होती हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २

केतुं कृण्वं दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।

३ १ २

समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! समुद्रः समुद्द्रवन्ति यस्माद्रसाः स समुद्रः स त्वं केतुं प्रज्ञानं कृण्वन् कुर्वन् अस्माकं विश्वा रूपा विश्वानि रूपाणि दिवः अन्तरिक्षात् अभ्यर्षसि अभि पवसे पिन्वसे नानाविधानि च धनानि अस्मभ्यं प्रयच्छसि ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम ! (समुद्रः) रसोंको बहानेवाला तू (केतुम्) चेतनताको (कृण्वन्) करता हुआ (विश्वा, रूपा) हमारे सकल रूपोंको (दिवः परि) अंतरिक्षसे (अभ्यर्षसि) पवित्र करता है (पिन्वसे) हमें नानाप्रकारके धन देता है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।

१ २ ३ १ २र

क्रन्दं नृदेवो न सूर्यः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान ! सोम ! देवः न सूर्य्यः द्योतमानः सूर्य्यं इव जज्ञानः प्रादुर्भूतस्त्वं विधर्मणि विधारके दशापवित्रे क्रन्दन् ध्वनन् वाचम् शब्दम् इष्यसि प्रेरयसि । जज्ञानः—हिन्वान इति पाठौ क्रंदन् अक्रान्-इति च ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (देवः, सूर्यः, न) दीप्तिमान सूर्यकी समान (जज्ञानः) प्रकट हुआ तू (विधर्मणि) दशापवित्रमें (क्रन्दन्) ध्वनि करता हुआ (वाचम्) शब्दको (इष्यसि) प्रेरणा करता है ॥ ३ ॥

१ २र ३ १२ ३ १ २

प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।

३ २ ३ १ २

श्रीणाना अप्सु वृञ्जते ॥ १ ॥

ऋ० असितो वा देवलः । छ० गायत्री । दे० सोमः । प्रसोमास इति सप्तर्च्चं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । पवमानासः पूयमानाः इन्द्वः दीप्ताः सोमासः सोमाः प्राधन्विषुः धन्वतिर्गतिकर्मा (निघ०२,१४, ६४) प्रगच्छन्ति किञ्च श्रीणानाः गोभिः श्रयमाणाः अप्सु वसतीवरीषु वृञ्जते गच्छन्ति व्रज व्रजी गतौ (भ्वा०, प०) व्यत्ययेनात्मनेपदम् सम्पृच्छा भवन्तीत्यर्थः । वृञ्जते-मृजन्त—इति पाठौ ॥ १ ॥

(पवमानासः) पूयमान (इन्द्वः) दीप्तियुक्त (सोमासः) सोम (प्राधन्विषुः) प्राप्त होते हैं (श्रीणानाः) गोदुग्धादिसे मिलते हुए (अप्सु) वसतीवरी जलोंमें (वृञ्जते) पहुंचते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।

३ १ २र

पुनाना इन्द्रमाशत ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । गावः गमनशीलाः इन्द्वः सोमाः अभि अधिन्विषु दशापवित्रमभिगच्छन्ति । किमिव ? प्रयता प्रवणता देशेन यतीः गच्छन्त्यः आपः नः आप इव, पश्चात् पुनाना इन्द्रं प्रीणयितुम् आशत व्याप्नुवन् ॥ २ ॥

(गावः) गमन करनेवाले (इन्द्वः) सोम (प्रवता) नीचे स्थानमेंको (यतीः) जाते हुए (आपः, न) जलोंकी समान (अभि, अध-

न्विषुः) दशापवित्रमें पहुंचते हैं, फिर (पुनानाः) संस्कारयुक्त हुए (इंद्रम्) तृप्त करनेके अर्थ इंद्रका (आसत) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
१ २ ३ १ २र
नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान ! सोम ! इंद्राय इंद्रस्य मादनः मादयिता त्वं प्रधन्वसि प्रगच्छसि पवित्रम् । तदेवाह—नृभिः नेतृभिर्ऋत्विग्भिः यतः गृहीतः विनीयसे हविर्धानात् । मादनः-पातवे इति पाठौ ॥ ३ ॥

(पवमान, सोम) हे संस्कार किये जातेहुए सोम ! (इंद्राय,मादनः) इंद्रको हर्षदायक तू (प्रधन्वसि) दशापवित्रमें पहुंचता है (नृभिः) यतः) ऋत्विजोंके द्वारा ग्रहण करके (विनीयसे) हविर्धानसे ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे इन्दो ! त्वं यद् यदा अद्रिभिः ग्रावभिः सुतः अभिषुतः पवित्रं दशापवित्रं परिदीयसे परिगच्छसीत्यर्थः । तदा इंद्रस्य धाम्ने स्थानाय धारकायोदराय वा अरं पर्याप्तोऽसि । परिदीयसे परिधावसि—इति पाठौ ॥ ४ ॥

(इन्दो) हे सोम ! तू (यद्) जब (अद्रिभिः) पाषाणोंसे (सुतः) अभिषव किया हुआ (पवित्रम्) दशापवित्रको (परिदीयसे) प्राप्त होता है तब (इंद्रस्य) इंद्रके (धाम्न) उदरस्थानके लिये (अरम्) पर्याप्त होता है ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
त्वꣳ सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । हे सोम ! नृमादनः नृणां मादयिता चर्षणीधृतिः चर्षणीभिः ऋत्विग्भिः प्रजाभिः धृतस्त्वं पवस्व । यः त्वं सस्निः शुद्धः

अनुमाद्यः स्तुत्यः स पवस्वेति समन्वयः । चर्षणीधृतिः—चर्षणीमहे-इति पाठौ ॥ ५ ॥

(सोम) हे सोम ! (नृमादनः) मनुष्योंको आनन्द देने वाला (चर्षणीधृतिः) ऋत्विजोंसे वा प्रजाओं से धारण किया हुआ (त्वम्) तू (पवस्व) सुसिद्ध हो (यः) जो तू (सस्निः) शुद्ध (अनुमाद्यः) स्तुतिके योग्य है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २

पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः ।

१ २ ३ १ २र

शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी : हे सोम वृत्रहन्तमः शत्रूणामतिशयेन हन्ता त्वं पवस्व क्षर । कीदृशस्त्वम् ? उक्थेभिः शस्त्रैः अनुमाद्यः स्तुत्यः शुचिः शुद्धः पावकः अन्यस्य शोधकः अद्भुतः महान्,एवं महानुभावः पवस्व । वृत्रहन्तमः वृत्रहन्तम—इति पाठौ ॥ ६ ॥

हे सोम ! (उक्थेभिः) वैदिक मंत्रोंसे (अनुमाद्यः) स्तुति करने योग्य (शुचिः) शुद्ध (पावकः) औरों को पवित्र करनेवाला (अद्भुतः) महान् (वृत्रहन्तमः) शत्रुओं का नाशक तू (पवस्व) सुसिद्ध हो ६

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।

३ १ २ ३ २

देवावीरघशꣳसहा ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । सुतः अभिषुतः मधुमान् माधुर्योपेतः स सोमः शुचिः स्वयं शुद्धः पावकः शोधकश्च उच्यते तथा देवावीः देवानामविता तर्पयिता अघशंसहा अघं पापं शंसतीत्यघशंसा असुरास्तेषां हन्तेति चोच्यते सुतः स मधुमान सुतस्य मध्वः—इति पाठौ ॥ ७ ॥

(सुतः) संस्कार किया हुआ (मधुमान्) मधुरतायुक्त (सः) वह सोम (शुचिः) स्वयं पवित्र (पावकः) दूसरोंको शुद्ध करने वाला (देवावीः) देवताओं को तृप्त करनेवाला (अघशंसहा) पापको अच्छा माननेवाले असुरोंका नाशक (उच्यते) कहाजाता है ॥ ७ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत ।

३ १ २ ३ १ २र

साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥

ऋ० असित-देवलः छं० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीय-खण्डे-प्रकविरिति सप्तर्चं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । कविः मेधावी सोमः देववीतये देवानां पानाय अव्यो वारेभिः अविसम्बन्धिभिः वालैः दशापवित्रेण अव्यत अव्यते प्राप्यते साह्वान् शत्रूणां सोढा सोमः विश्वा स्पृधः सर्वान् संग्रामान् हिंसकान् वा अभिभवतीति शेषः अव्यावारेभिरव्यत-अव्योवारेभिरर्षति—इति पाठौ ॥ १ ॥

(कविः) सोम (देववीतये) देवताओंके पीनेके लिये (अव्यावारेभिः) ऊनके दशापवित्रके द्वारा (अव्यत) पाया जाता है (साह्वान्) शत्रुओंको सहनेवाला सोम (विश्वाः स्पृधः) सकल संग्रामोंका व हिंसकोंका तिरस्कार करता है॥१॥

१ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति ।

१ २ ३ १ २

पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । स हि ष्मा स खलु पवमानः सोमः जरितृभ्यः स्तोतृभ्यःगोमन्तं बहुभिर्गोभिर्युक्तं सहस्रिणं सहस्रसंख्याकं वाजम् अन्नम् वा आभिमुख्येन इन्वति व्याप्नोति प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ २ ॥

(पवमानः) शुद्ध कियाजाता हुआ (स हि ष्म) वह सोमही निश्चय (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवालोंको (गोमन्तम्) बहुतसी गौओं से युक्त (सहस्रिणम्) बहुतसे (वाजम्) अन्नको (आ इन्वति) अभिमुख होकर देता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।

१ २ ३ १ २

स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! त्वं चेतसा स्वीयेनास्मदनुकूलेन चित्तेन विश्वानि सर्वाणि धनानि मती मत्या अस्मत् स्तुत्या मृज्यसे दशापवित्रेण शोध्यसे । ततः पवसे रसं क्षरसि । एवम्भूतः सः त्वं नः अस्मभ्यं श्रवः अन्नं विदः देहीति शेषः ॥ मृज्यसे-मशसे-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! तू (मती) हमारी स्तुतिसे (मृज्यसे) दशा

पवित्रके द्वारा शोधा जाता है (सः) वह तू (नः) हमें (चेतसा) चित्तसे (विश्वानि) सकल धन (श्रवः) अन्न (विदः) दे ॥ ३ ॥

३क २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवꣳ रयिम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे सोम ! त्वं बृहद् यशः महतीं कीर्त्तिम् अभ्यर्ष अभिगमय मघवद्भ्यः हविष्मद्भ्यः अस्मभ्यं ध्रुवं रयिं धनं च अभ्यर्ष किंच इषम् अन्नं स्तोतृभ्यः अस्मभ्यम् आभर आहर ॥ ४ ॥

हे सोम (मघवद्भ्यः) हवि अर्पण करनेवाले (स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंको (बृहत) बड़ा (यशः) यश (ध्रुवम्) ठहरनेवाला (रयिम्) धन (अभ्यर्ष) दो (इषम्) अन्न (आभर) दो ॥ ४ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २
त्वꣳ राजेव सुव्रतो गिरः सोमाविवेशिथ ।
३ १ २
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥

अथ पंचमी । हे वह्ने ! यज्ञादेर्वोढः ! अद्भुत ! सोम ! सुव्रतः सुकर्मा पुनानः त्वं राजा इव गिरः अस्मदीयाः स्तुतीःआविवेशिथ आविशसि ।

(वह्ने) यज्ञादिका निर्वाह करनेवाले (अद्भुत) महान् (सोम) हे सोम (सुव्रतः) सुन्दर कर्मवाला (पुनानः) संस्कार किया जाता हुआ तू (राजा इव) राजाकी समान (गिरः) हमारी स्तुतियोंको (आविवेशिथ) स्वीकार करता है ॥ ५ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
१ २ ३ १ २
सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । सः सोमः वाह्नः यज्ञादेर्वोढा अप्सु अन्तरिक्षे वर्त्तमानः दुष्टरः दुःखेन अन्यैस्तरणीयः मृज्यमानः शोध्यमानः गभस्त्योः हस्तयोः एवम्भूतः सन् चमूषु पात्रेषु सीदति ॥ ६ ॥

(वाह्नः) यज्ञका निर्वाह करनेवाला (सः) वह (सोमः) सोम (अप्सु) वसतीवरी जलोंमें (दुष्टरः) दुस्तर (गभस्त्योः) हाथोंमें

(मृज्यमानः) संस्कार किया जाता हुआ (चमूषु) पात्रोंमें (सीदति) स्थित होता है ॥ ६ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
क्रीडुर्मखो न मᳫँहयुः पवित्रᳫँ सोम गच्छसि ।
१२ ३ २ ३ १ २
दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । हे सोम ! क्रीडुः क्रीडन-शीलस्त्वं मंहयुः मंहतिर्दान कर्म्मा (निघ० ३, २०, १०) दानेच्छुः, मखो न दानमिव पवित्रं गच्छसि । किं कुर्वन् ? स्तोत्रे स्तुतिकर्त्रे सुवीर्यं शोभन-वीर्यं दधत् प्रयच्छन् ॥७॥

(सोम) हे सोम (क्रीडुः) क्रीड़ा करनेवाला (मखो न) यज्ञकी तुल्य (मंहयुः) दानकी इच्छा वाला तू (स्तोत्रे) स्तुति करने वालेको (सुवीर्यम्) सुन्दर वीरता (दधत) देताहुआ (पवित्रम्) दशापवित्र पर (गच्छसि) जाता है ॥ ७ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव ।
१ २ ३ १ २
विश्वा च सोम सौभगा ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ यवयवमिति चतुऋर्चं द्वितीयं सूक्तं तत्र प्रथमा । हे सोम ! त्वं नः अस्मभ्यम् पुष्टंपुष्टम् अत्यन्तं बहुलं यवंयवं पुनः पुनर्युतं रसम् अन्धसा अन्नरूपया धारया परिस्रव क्षर तत्र प्रार्थयितुस्तृष्णयात्यन्तं पीडितत्वात् आबाधे च (८, १, १०)-इति द्विर्भावः । आबाधनमाबाधः पीडा प्रयोक्तृधर्मो नाभिधेयधर्म्म इत्युक्तम् । अपि च विश्वा विश्वानि सौभगा सौभगानि धनानि-परिस्रव अस्मभ्यं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (नः) हमें (पुष्टं पुष्टम्) बहुत अधिक (यवं यवम्) वार वार युक्त हुए रसको (अन्धसा) धारासे (परिस्रव) वहा (च) और (विश्वा) सकल (सौभगा) सौभाग्योंको हमें दे १

२ ३ २ ३ २३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्दो सोम! अन्धसः अन्नरूपस्य तव सम्बन्धी स्तवः स्तवनं स्तोत्रं तथा ते तव यथा जातं यथा प्रादुर्भूतमस्ति तथा त्वं प्रिय प्रीणयितरि बर्हिषि अस्मद्यज्ञे नि सदः निषण्णो भव ॥ २ ॥

(इन्दो) हे सोम (अन्धसः) अन्नरूप (ते) तेरा (स्तवः) स्तोत्र तथा (तव) तेरे निमित्त (यथा) जैसे (जातम्) प्रकट हुआ है तैसे (प्रिये) तृप्त करने वाले (बर्हिषि) हमारे यज्ञमें (निषदः) स्थित हो

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा ।

३ १ २ ३ १ २

मक्षुतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। उत अपि च हे सोम! नः अस्माकं गोवित् गोप्रदः अश्ववित् अश्वप्रदश्च त्वं मक्षुतमेभिः मक्षुतमैः अतिशयेन शीघ्रै अहभिः अहोभिर्द्युभिः अन्धसा पवस्व अन्नरूपया धारया क्षर ॥ ३ ॥

(उत) और (सोम) हे सोम (नः) हमें (गोवित्) गौएँ देने वाला (अश्ववित्) घोडे देने वाला तू (मक्षुतमेभिः अहभिः) अति शीघ्र दिनों करके (अन्धसा) अन्नरूप धारासे (पवस्व) बरस ॥३॥

२ २ २ ३ १ २र३ २ ३ १ २ ३ १ २

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।

१ २

स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। हे सहस्रजित्! असंख्यात-शत्रूणां जेतः! सोम! यः भवान् जिनाति शत्रून् जयति स्वयं शत्रुभिः न जीयते। प्रकारान्तरेण तदेवाह—शत्रुमभीत्य स्वयमेव शत्रुमागत्य हन्ति किन्तु तेन न हन्यते इति शेषः। एवम्भूतः सः त्वं धारया क्षर ॥ ४ ॥

(सहस्रजित्) हे सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाले सोम! (यः) जो तू (जिनाति) शत्रुओंको जीतता है (न जीयते) और स्वयं शत्रुओं से नहीं जीता जाता है (शत्रुम्, अभीत्य, हन्ति) शत्रुको तिरस्कृत करके मारता है (सः) वह तू (पवस्व) धारासे बरस ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रन्निन्द ऊतये ।

१ २ ३ २ ३ १ २

ताभिः पवित्रमासदः ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः । छं० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते-प्रथमा । भो इन्दो ! सोम ! ते तव मधुश्चुतः मधुर-रसस्य श्च्योतयित्र्यः याः धाराः ऊतये रक्षणाय असृग्रन् सृज्यन्ते ताभिः त्वं पवित्रम् आसदः आसीद ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम ! (ते) तेरी (मधुश्च्युतः) मधुररस टपकाने वालीं (याः धाराः) जो धारें (ऊतये) रक्षाके लिये (असृग्रन्) रची जाती हैं (ताभिः) उन धारोंसे (पवित्रं, आसदः) दशापवित्रमें स्थित हो

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया ।
१ २ ३ २ २ २ ३ २
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! सः अभिषुतः त्वम् अव्यया आविमयानि वाराणि वालानि तिरः तिरस्कुर्वन् ऋतस्य यज्ञस्य योनिं कारणभूतं दशापवित्रम् आसीदन् आभिमुख्येन उपविशन् इन्द्राय इन्द्रस्य पीतये पानाय अर्ष क्षर । ऋतस्य योनिमासीदन्–योनावनेषु–इति पाठौ ॥ २ ॥

हे सोम ! (सः) वह तू (अव्यया वाराणि) ऊनके बालोंको (तिरः) तिरस्कार करता (ऋतस्य, योनिम्) यज्ञके कारणभूत दशा पवित्रको (आसीदन्) अभिमुख होकर प्रवेश करता हुआ (इंद्राय, पीतये) इंद्रके पीनेके अर्थ (अर्ष) प्राप्त हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वꣳ सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः ।
३ २ ३ १ २र
वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम! स्वादिष्ठः स्वादुतमः वरिवोवित् अस्मदभिलषितस्य धनस्य लम्भकश्च त्वम् अङ्गिरोभ्यःअङ्गिरसामर्थाय घृतं दीप्तं पयः क्षीरवत् सारभूतं परिस्रव परिक्षर । त्वं सोम–त्वमिन्दो इति पाठौ

(सोम) हे सोम ! (स्वादिष्ठः) परमस्वादवाला (वरिवोवित्) हमारे इच्छित धनको प्राप्त करानेवाला तू (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिराओंके निमित्त (घृतम्) दिपतेहुए (पयः) दूधकी समान सारको (परिस्रव) बरस।

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

२ ३ १ २ ३क२र ३ २ ३ १ २ ३ १
तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उप-
२ ३ १ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
सामिवेतयः । यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
परि स्वयं चिनुषे अन्नमासनि ॥ १ ॥

ऋ० अरुणः । छ० जगती । दे० अग्निः । अथ तृतीयखण्डे-प्रथम-तृचे प्रथमा । अग्नेः अङ्गनादि-गुण-युक्तस्य तव श्रियः रश्मिलक्षणा विभूतयः चिकित्रे प्रज्ञायंते । तत्र दृष्टांतः—वर्षस्येव विद्युतः यथा वर्षितुर्मेघस्य सम्बन्धिनो विद्युतः उषसामिवेतयः यथा चोषसाम् एतयः गमनशीलाः व्याप्ताः प्रकाशाः प्रज्ञायन्ते तद्वदित्यर्थः । कदेत्यत्राह—यद् यदा त्वम् ओषधीः व्रीहियवाद्याः वनानि अरण्यानि च अभिसृष्टोऽसृष्टः दग्धुं विसृष्टः सन् स्वयम् आत्मना आसन आस्ये मुखे अन्नम् अदनीयं स्थावर—लक्षणं परि चिनुषे परिक्षिपसीत्यर्थः । विद्युतोऽग्नेः-विद्युतश्चित्रा—इति उषासन्नकेतवः-उपसामिमेतयः-इति पाठौ ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (यद्) जब तुम (ओषधीः) धान जौ आदि अन्नोंको (च) और (वनानि) वनोंको (असृष्टः) भस्म करनेको छूटे हुए (स्वयं, आसन्) अपने मुखमें (अन्नम्) स्थावर जङ्गम जगत् को (परिचिनुषे) डालते हो, तब (तव) तुम्हारी (श्रियः) किरणें-रूप विभूतियें (वर्षस्य, विद्युतःइव) वर्षा करनेवाले मेघकी बिजलियों की समान (उषसां, ऊतयः इव) उषाकालके फैलानेवाले प्रकाशों की समान (चिकित्रे) जानी जाती हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३
वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना
१ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ २
वेविषद्वितिष्ठसे । आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृ-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
थक्शर्धाँस्यग्ने अजरस्य धक्षतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने! त्वं यद् यदा वातोपजूतः वायुना कम्पितः वशान् कान्तान् वनस्पतीन् अनु प्रति तृषु क्षिप्रम् इषित प्रेषितश्च सन् अन्ना अन्नानि अदनीयानि वनस्पत्यादीनि स्थावराणि वेविषत् व्या-

प्लुवन् वितिष्ठसे इतस्ततो गच्छति तदानीम् अजरस्य जरारहितस्य धक्षतः दहनः ते तव शर्धांसि तेजांसि यथा रथ्यः रथिनः तद्वत् आ पृथक् पृथगान्ययन् गच्छन्ति । अजरस्य अजराणि—इति पाठौ ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्ने (यद्) जब तू (वातोपजूतः) वायुसे कंपित हुआ (वशान् अनु) वनस्पतियों में (तृषु) शीघ्र (इषितः) भेजा हुआ (अन्नाः) खाने योग्य वनस्पति आदि स्थावरोंमें (वेविषत्) व्यापता हुआ (वितिष्ठसे) इधर उधरको जाता है, तब (अजरस्य, धक्षतः, ते) जरारहित, भस्म करना चाहते हुए तेरे (शर्धांसि) तेज (रथ्यः यथा) रथियोंकी समान (पृथक्) अद्भुत प्रकारके (आयतन्ते) प्रतीत होते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निँ होतारं परि-
१ २ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ २उ
भूतरं मतिम् । त्वामर्भस्य हविषः समानमित्त्वां
१ ३ २ ३ २
महो वृणते नान्यं त्वत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मेधाकारं प्रज्ञायाः कर्त्तारं विदथस्य यज्ञस्य प्रसाधनम् प्रकर्षेण साधकं होतारं देवानामाह्वातारं परिभूतरम् अतिशयेन शत्रूणामभिभवितारं मतिं मन्तारं यं त्वाम् अग्निम् वयमृत्विजः वृणीमहे—इति शेषः । हे अग्ने ! त्वामित् त्वामेव अर्भस्य अल्पस्यास्य हविषः पुरोडाशादिकस्य भक्षणार्थमिति शेषः समानमित् सहैव ऋत्विजः वृणते प्रार्थयन्ते महः महतः सोमात्मकस्य हविषः भक्षणार्थं त्वामेव वृणते त्वत् त्वत्तः अन्यम् अतिरिक्तं देवं न वृणते । परिभूतरं-परिभूततम्—इति छन्दोगवह्वृचानां पाठौ, त्वामर्भस्य हविषः-तमिदर्भे-हविषि—इति, इत्वाम्महो तमिम्महो—इति च ॥ ३ ॥

(मेधाकारम्) बुद्धिके कर्त्ता (विदथस्य, प्रसाधनम्) यज्ञके परम साधन (होतारम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले (परिभूतरम्) शत्रुओंका परम तिरस्कार करनेवाले (मतिम्) मनके प्रेरक (अग्निम्) अग्निको हम ऋत्विज प्रार्थना करते हैं । हे अग्ने (त्वामित्) तुम्हें ही (अर्भस्य, हविषः) थोड़े हविके भक्षण करनेको (त्वामित्) तुम्हें ही (महः) बहुतसे हविके भक्षण करनेको हम ऋत्विज (समानम्) इकट्ठे

होकर (वृणते) प्रार्थना करते हैं (त्वत्) तुमसे (अन्यम्) दूसरे देवताको (न) नहीं प्रार्थना करते ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पुरूरुणां चिध्यस्त्यवो नूनं वा वरुण ।
२ ३ १ २ ३ २
मित्र वर्ष्ठँसि वाथ्ठँ सुमतिम् ॥ १ ॥

ऋ० उरुचक्री । छ० गायत्री । दे० मित्रावरुणौ । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा । हे मित्रावरुणौ ? वां युवयोः पुरूरुणा प्रथमार्थे तृतीया (३,१,८५) पुरोरपि बहुतरम् अथवा पुरु च तदुरु च पुरूरु अत्यन्तं बहुतरमित्यर्थः तादृक् अवः रक्षणं नूनं निश्चयेन अस्ति ।हे हि प्रसिद्धौ चिदिति पूरणः हे वरुण ! हे मित्र ! वां युवयोः सुमतिम् अनुग्रहबुद्धिम् वंसि सम्भजेयम् ॥ १ ॥

हे मित्रावरुण ! (त्वाम्) तुम दोनोंकी (पुरूरुणा) अधिकसे अधिक (अवः) रक्षा (नूनम्) निश्चय (अस्ति) है (हि) यह प्रसिद्ध है (चित्) और (वरुण) हे वरुण (मित्र) हे मित्र ! (वाम) तुम्हारी (सुमतिम्) अनुग्रहबुद्धिको (वंसि) सेवन करूँ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ता वाथ्ठँ सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च ।
३ १ २
वयं वां मित्रा स्याम ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अद्रुह्वाणा ! हे अद्रोग्धारौ ! ता तौ प्रसिद्धौ वां युवां सम्यक्, स्तुम इति शेषः । स्तोतारः वयम इषम् अन्नं धाम च आश्रयम् अश्यामः प्राप्नुयाम । हे मित्रा ! मित्रावरुणौ ! वां स्तोतारो वयं स्याम भवेम समृद्धा इति शेषः युवाभ्यां स्वभूता वा स्याम । धाम च-धायसे—इति पाठौ, मित्रा-रुद्रा—इति च ॥ २ ॥

हम स्तोता (अद्रुह्वाणा) द्रोह न करनेवाले (ता) प्रसिद्ध (वाम्) तुम दोनोंकी (सम्यक्) भले प्रकार स्तुति करते हैं (वयम्) हम (वाम्) तुम्हारे (मित्रा) मित्र (स्याम) हों (इषम्) अन्नको (च) और (धाम) स्थानको (अश्यामः) पावें ॥२॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथाथ्ठँ सुत्रात्रा ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २
साह्याम दस्यूं तनूभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे मित्रा ! मित्रावरुणौ देवौ ! युवां न अस्मान् पायुभिः रक्षणैः पातं रक्षतम् । उत अपि च सुत्रात्रा शोभनेन त्राणेन त्रायेथां पालयेथाम् इष्टप्राप्त्यनिष्ट-परिहार-भेदेन भेदः—स्तोत्रादि वैकल्प्याच्छत्रोर्वा त्रायेथाम् अभिमत-प्रापणेन रक्षतमित्यर्थः । वयञ्च तनूभिः पुत्रादिभिः सहिताः स्वीयैरङ्गैर्वा दस्यून् शत्रून् साह्याम अभिभवेम ॥ मित्रा—रुद्रा—इति पाठौ, त्रायेथां त्रायेताम्—इति साह्याम तु स्याम—इति च ॥ ३ ॥

(मित्रा) हे मित्रावरुण देवताओं ! तुम (नः) हमें (पायुभिः) रक्षाके साधनोंसे (पातम्) रक्षा करो (उत) और (सुत्रात्रा) श्रेष्ठ रक्षक पदार्थ देकर (त्रायेथाम्) पालन करो हम भी (तनूभिः) पुत्रादि सहित (दस्यून्) शत्रुओंको (साह्याम) दबावें ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ १ २ २र
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः ।
१ २ ३ २ ३ २
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥ १ ॥

ऋ० कुरुसुतिः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीयतृचे-प्रथमा । हे इंद्र ! त्वं पीत्वा ओजसा बलेन सह उत्तिष्ठन् शिप्रे हनू अवेपयः अकम्पयः मदावेशादिति भावः । किं पीत्वा ? चमू चम्वोरधिषवणफलकयोः सुतम् अभिषुतम् सोमम् ॥ पीत्वा-पीत्वी-इति पाठौ ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र ! तू (चमू) पात्रोंमें (सुतम्) अभिषुत (सोमम्) सोमको (पीत्वा) पीकर (ओजसा, सह) बलके साथ (उत्तिष्ठन्) उठताहुआ (शिप्रे) ठोड़ीको (अवेपयः) कम्पायमान कर ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३र
अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । स्पर्धमान । शत्रुभिः सह स्पर्द्धाङ्कुर्वाण ! इन्द्र ! त्वा त्वाम् अनु लक्ष्य उभे रोदसी उभे अपि द्यावापृथिव्यौ मदेतां हृष्येताम् यद् यदा दस्युहा भवः शत्रूणां हन्ता भवसि तदा मदेतामिति सम्बन्धः ॥ स्पर्द्धमानमदेतां कृष्यमाणमकृयेताम्-इति पाठौ ॥ २ ॥

(स्पर्धमान, इंद्र) शत्रुओंके साथ स्पर्धा करनेवाले इंद्र (त्वा) अनु) तुम्हारे प्रति (उभे, रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवी (मदेताम्) प्रसन्न हों (यद्) जब तुम (दस्युहा) शत्रुओंका नाश करने वाले (भवः) होते हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम् ।

२ ३ १ २ ३क२र

इन्द्रात्परि तन्वं मम ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अष्टापदीम् अष्टाभिर्दिग्भिश्चाष्टपदीं नवस्रक्तिम् उपरिस्थितेनादित्येन नवस्रक्तिम् आसु दिक्षु व्याप्तामित्यर्थः ऋतावृधं यज्ञस्य वृद्धिं कुर्वन्तीं वाचं स्तुतिमयीं परिपूर्णात् तन्वं तनूं न्यूनां सतीम् अहम् परि ममे न्यूनेयत्तां करोमीत्यर्थः । कात्स्र्येन स्वरूपं स्तुत्या विषयीकर्तुमशक्यत्वादिति भावः ॥ ऋतावृधम्–ऋतास्पृशम्—इति पाठः ॥ ३ ॥

(अष्टापदीम्) चार दिशा और चार कोण इन आठ चरण वाली (नवस्रक्तिम्) ऊपर आदित्य सहित नौ स्थानमें व्याप्त (ऋतावृधम्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाली (वाचम्) स्तुतिको (तन्वम्) परिपूर्ण होनेसे न्यूनरहीको (अहम्) मैं (परिममे) परिमाण करता हूं, क्योंकि पूर्णरूप स्तुतिका विषय नहीं होसकता ॥

१ २ ३ २ ३ २ १ २र

इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत ।

१ २ ३ २

पिबतꣳ शम्भुवा सुतम् ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० इंद्राग्नी । अथ चतुर्थे—तृचे-प्रथमा । हे इन्द्राग्नी ! युवाम् इमे स्तोमाः स्तोतारः अभ्यनूषत अभिष्टुवन्ति । हे शम्भुवा ! सुखस्य भावयिताराविन्द्राग्नी ! सुतम अभिषुतम् अस्मदीयं सोमं पिबतम् ॥ १ ॥

(इंद्र ग्नी) हे इंद्र अग्नि (युवाम्) तुम्हें (इमे) यह (स्तोमाः) स्तोता (अभ्यनूषत) प्रशंसा करते हैं (शम्भुवा) हे सुख देनेवाले इंद्राग्नी (सुतम्) संस्कार कियेहुए हमारे सोमको (पिबतम्) पियो १

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

या वाꣳ सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।

१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी ताभिरागमत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे नरा ! नेतारौ ! इंद्राग्नी ! वाम् युवयोः स्वभूताः पुरुस्पृहा पुरुभिर्बहुभिः स्पृहणीयाः दाशुषे हवींषि दत्तवते यजमानार्थम् उत्पन्नाः नियुतः अश्वाः सन्ति हे इंद्राग्नी ! ताभिः नियुद्भिः सह आगतम् आगच्छतम् ॥ २ ॥

(नरा) प्रेरणा करने वाले (इंद्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवता। (वाम्) तुम्हारे (पुरुस्पृहा) अनेकोंके चाहने योग्य (दाशुषे) हवि अर्पण करने वाले यजमानके निमित्त उत्पन्न हुए (याः) जो (नियुतः) घोड़े (सन्ति) हैं (ताभिः) उनके द्वारा (आगतम्) आओ ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
ताभिरागच्छतं नरोपेदᳫँ सवनᳫँ सुतम् ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे नरा ! नेताराविन्द्राग्नी ! सूयतेऽभिसूयत इति सवनः सामः इदं सवनम् इमं सोमं सुतम् अभिषुतम् उप प्रति यद्वा, इदम् प्रातः सवनम् उप अस्मिन् सवने सुतमभिषुतं सोमं प्रति ताभिः नियुद्भिः आगच्छतम् । किमर्थम् ? सोमपीतये अस्य सोमस्य पानार्थम् ३

(नरा, इंद्राग्नी) हे प्रेरक इंद्र अग्नि देवताओं ! (इदम्, सुतं सवनम्, उप) इस संस्कार कियेहुए सोमके समीप (सोमपीतये) सोम पीनेको (ताभिः) उन अश्वोंके द्वारा (आगच्छतम्) आओ ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य तृतीय खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
२ ३ २ ३ २ ३ २
सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ १ ॥

ऋ० भृगुः—जमदग्निः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ चतुर्थखण्डे, प्रथम—तृचे—प्रथमा । हे सोम ! पवमान ! द्युमत्तमः अतिशयेन दीप्तिमान् वनेषु अरण्येषु मध्ये योनौ स्वकारण-भूते पर्वतादिस्थाने आसीदन् सर्वतो गच्छंस्त्वं द्रोणानि प्रयोगबाहुल्यापेक्षमेतत् बहुवचनम् द्रोणकलशान् अभि लक्ष्य रोरुवत् पुनः पुनः भृशं वा शब्दं कुर्वन् अर्ष आगच्छ दशापवित्रमध्यान्निर्गतः सोमः अविच्छिन्नधारया

द्रोणकलशे पतन शब्दम् करोति खलु । योनौ वनेष्वा-श्येनोमयोनिमा इति पाठौ ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यंत दीप्तिमान तू (वनेषु) वनोंमें (योनौ) अपने कारण पर्वतादिके विषैं (आसीदन्) स्थित होता हुआ (द्रोणानि, अभि) द्रोण कलशोंकी ओरको (रोरुवत्) बार २ शब्द करता हुआ (अर्ष) प्राप्त हो ॥ १ ॥

२ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
१ २ ३ १ २
सोमा अर्षन्तु विष्णवे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अप्सा वसतीवरी—नामधेयानामपाम् सम्भक्तारः वनषण सम्भक्तौ (भ्वा, प०) जनसनेति (३, २, ६७) विट्, आत्वं विड्वनोरिति (६, ४, ४१,) तादृशाः सोमाः अर्षन्तु द्रोणकलशमागच्छन्तु । किमर्थम् ? इंद्राय सर्वदेवानां प्रथमत एव इंद्रः सोमान् पिबति, तस्मात् तदनु वायुरुक्तः तस्मै च वायवे, तदनन्तरम् वरुणः सोमान् पिबति तस्मै च वरुणाय, ततो मरुद्भ्यः एतन्नामकेभ्यो देवेभ्यः, विष्णवे सर्वजगद्व्यापिने एतन्नामकाय देवाय च-एतेभ्यः सर्वेभ्यः सोमा आगच्छन्त्वित्यर्थः ॥ सोमा अर्षन्तु-सोमो अर्षति-इति पाठौ ॥२॥

(अप्सा) जलोंमें मिलने वाले (सोमाः) सोम (इंद्राय) इंद्रके अर्थ (वायवे) वायुके अर्थ (वरुणाय) वरुणके अर्थ (मरुद्भ्यः) मरुत् देवताओंके अर्थ (विष्णवे) जगद्व्यापी विष्णु देवताके अर्थ (अर्षन्तु) द्रोणकलशमें आवैं ॥ २ ॥

१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इषं तोकाय नो दधदस्मभ्य सोम विश्वतः ।
१ २ ३ १ २
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! त्वं नः अस्माकं तोकाय पुत्राय इषम् अन्नं दधत् विदधद् प्रयच्छन् सहस्रिणम् सहस्रसंख्याकम् धनम् विश्वतः सर्वतः अस्मभ्यम् च आपवस्व आ प्रापय अस्मभ्यम् पुत्राय च अन्न-धनादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (अस्माकम) हमारे (तोकाय) पुत्रके अर्थ

(इषम्) अन्न (दधत्) देता हुआ (सहस्रिणम्) सहस्रों संख्याका धन (विश्वतः) सब ओरसे (अस्मभ्यम्) हमें (आपवस्व) पहुंचा ३

१ २ ३ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २
सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥

ऋ० गोतमः । छ० बृहती । दे० सोमः । अथ प्रगाथरूपे द्वितीय-सूक्ते—प्रथमा । सोतृभिः अभिषुण्वद्भिः ऋत्विग्भिः स्वानः अभिषूय-माणः सोमः अवीनां स्नुभिः मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम् (६, १, ६३) इति सानु-शब्दस्य स्नुभावः समुच्छ्रितैर्वालैः पवित्रैः अधि याति अधिकं गच्छति । उ-इति प्रसिद्धौ । अश्वया इव वडवया इव हरिता हरित-वर्णया धारया याति मन्द्रया मदकारिणा द्रोणकलशमधिगच्छति ॥ उष्वाणः उषुवाणः—इति पाठौ ॥ १ ॥

(सोतृभिः) संस्कार करनेवाले ऋत्विजों करके (स्वानः) अभि-षव किया जाता हुआ (सोमः) सोम (अवीनाम, स्नुभिः) भेड़ोंकी ऊनके पवित्रोंमेंको (अधियाति) अधिक वेगसे जाता है (उ) यह प्रसिद्ध है (अश्वया इव) घोड़ीके द्वारा जैसे (हरिता, धारया) हरी धारासे (मन्द्रया, धारया)मदकारिणी धारासे (याति) द्रोणकलश में जाता है ॥ १ ॥

३ २३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
३ २३ ३ १ २ ३ १
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥२॥

अथ द्वितीया॥ गोमान् गोयुक्तः सोमः अनूपे निम्ने देशे कलशे गोभिः गोर्विकारैः क्षीरादिभिः सह अक्षाः क्षरन्ति । तदेवोच्यते—सः सोमः आत्मनो मिश्रणार्थम् दुग्धाभिः गोभिः सह अक्षाः क्षरति क्षरतेर्लुङि रूपम् । किञ्च समुद्रम् न यथा समुद्रमुदकानि गच्छति तद्वत् संवर-णानि सम्भजनीयानि रसरूपाणि अन्नानि द्रोणकलशम् अग्मन् गच्छ-न्ति गमेर्लुङि च्लेर्लुकि रूपम् । किञ्च मन्दी मदकरः सोमः मदाय मदार्थं तोशते हन्यते अभिषूयते तोशतिर्वधकर्मा (निघ० २, १९, २९)२

(गोमान) गौओं वाला (सोमः) सोम (अनूपे) द्रोणकलशमें (गोभिः) गोघृतादिके साथ (अक्षाः) टपकता है (सोमः दुग्धाभिः

अक्षाः) सोम अपने मिश्रणके निमित्त गौओंके साथ प्राप्त होता है (समुद्रं, न, संवरणानि, अग्मन्) जैसे समुद्रमें जल जाते हैं तैसे रस रूप अन्न द्रोणकलशमें जाते हैं (मन्द्री, मदाय, तोशते) मदकारी सोम मदके निमित्त कूटा जाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३क २र ३ १ २र ३ १ २

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।

१ २ ३ १ २र

तन्नः पुनान आभर ॥ १ ॥

ऋ० असितः—देवलो वा । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृतीय-तृचे—प्रथमा । हे सोम ! यत् चित्रम् चायनीयम् उक्थ्यम् स्तुत्यं दिव्यं दिवि भवम् पार्थिवम् पृथिवी—सम्बन्धश्च यत् वस्तु धनमस्ति तत् नः अस्मभ्यम् पुनानः पूयमानः सन् आभर आहर ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (यत्, चित्रं, उक्थ्यम्, दिव्यं, पार्थिवम् वसु) जो विविध प्रकारका प्रशंसा करने योग्य स्वर्गीय और पार्थिव धन है (तत् पुनानः, नः आभर) वह सब शुद्ध किया जाता हुआ तू हमें दे १

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषा पुनान आयूँषि स्तनयन्नधिबर्हिषि ।

२ ३ २उ ३ १ २

हरिः सन् योनिमासदः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! आयूंषि यजमानादीनामृत्विजां जीवित-कालान् पुनानः शुद्धं कुर्वन् वृषा कामानां वर्षकस्त्वं स्तनयन् शब्दम् कुर्वन् अधि बर्हिषि अधीति सप्तम्यर्थानुवादी आस्तीर्णे दर्भे हरिः सन् हरितवर्णः सन् योनिं स्वकीयं स्थानम् आसदः आसीद् आयूंषि आयुः षु—इति पाठौ, आसदः आसदत्—इति च ॥ २ ॥

(आयूंषि, पुनानः) यजमान आदिकी आयुको पवित्र करता हुआ (वृषा, स्तनयन्) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला और शब्द करता हुआ (अधि, बर्हिषि, हरिः सन्) बिछे हुए कुशोंपर हरे वर्णका होताहुआ (योनिं, आसदः) अपने स्थान पर स्थित हो ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

युवथ्ँ हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।

३ १ २ ३ १ २

ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! त्वम् इन्द्रश्च युवं हि युवां खलु स्वःपती सर्वस्य स्वामिनौ स्थः भवथः । तथा गोपती गवां पालकौ ईशाना ईश्वरौ सन्तौ धियः अस्मदीयानि कर्माणि पिप्यतम् । प्यायपुत । युवं-हि स्थः स्वःपती—युवं हि स्वःस्वर्पति-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सोम, च, इन्द्रः) हे सोम ! तू और इन्द्र (युवं, हि, स्वःपती, स्थः) तुम दोनों निःसन्देह सबके स्वामी हो (गोपती, ईशाना, धियं पिप्यतं) गौओंके पालक और सकल ऐश्वर्योंके अधिपति होतेहुए हमारे कर्मोंको पुष्ट करो ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्याध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

२उ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र ३

तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे सवाजेषु

१ २

प्रनोऽविषत् ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० पंक्तिः । दे० इंद्रः । अथ पञ्चमखण्डे प्रथम-तृचे-प्रथमा । वृत्रहा वृत्रस्यावरकस्य वृष्टिनिरोधकस्य मेघस्यासुरस्यवा हंता यद्वा आवरकाणां शत्रूणां हन्ता इन्द्रः मदाय हर्षार्थं शवसे बलनामैतत् (निघ० २, ९, ३) बलार्थञ्च नृभिः यज्ञस्य नेतृभिः ऋत्विग्भिः वृधे स्तोत्र-शस्त्र-रूपाभिः स्तुतिभिः प्रवर्द्धितो बभूव । स्तुत्या हि देवता प्राप्त-बला सती प्रवर्द्धते तम् इत् तमेवेन्द्रम् महत्सु प्रभूतेषु आजिषु संग्रामेषु ऊतिं रक्षां कुर्वन्तमिति शेषः । हवामहे अस्माकं रक्षणाय आह्वयामहे उत अपि च ईम् एनम् एवम्भूतमिन्द्रम् अर्भे अल्पे संग्रामे हवामहे अस्म भिराहुतः स चेन्द्रः वाजेषु संग्रामेषु नः अस्मान् प्राविषत् प्रावतु प्रकर्षेण-रक्षतु ऊतिमर्भे—ऊतेमर्भे—इति पाठौ ॥ वावृधे—कर्मणि लिट् तुजादित्वाद्-भ्यासस्य दीर्घत्वम् । नृभिः—सावेकाच (६, १, १६८)-इति प्राप्तस्य विभक्त्युदात्तत्वस्य नृचान्यतरस्यां (६, १, १८४)-इति प्रतिषेधः । हवामहे-ह्वयतेर्लटि ह्वः (६, १, ३३)—इत्यनुवृत्तौ बहुलञ्छन्दसि (६, १, ३४)—इति सम्प्रसारणम्, शपि गुणावादेशौ । अविषत्-अव-रक्षणे(भ्वा०प०)लेट्य डागमः,इतश्च लोपः(३,४,९)इति इकार लोपः सिब्ब-हुलं लेटि(३,१,३४)इति सिप्,तस्यार्द्धधातुकत्वात् वलादिलक्षण इट्॥१॥

(वृत्रहा, इंद्रः) शत्रुओंका नाशक इंद्र (मदाय, शवसे) मदके अर्थ और बलके अर्थ (नृभिः) ऋत्विजोंके द्वारा स्तुतियोंसे अधिक बली किया गया (तम्, इत्, महत्सु, आजिषु) तिस ही इन्द्रको बड़े संग्रामोंमें (अर्भे) छोटे संग्राममें (ऊति, हवामहे) अपनी रक्षाके लिये पुकारते हैं (सः, वाजेषु, नः, प्राविषत) वह संग्रामोंमें हमारी पूर्ण रक्षा करे ॥ १ ॥

२ ३ १ २३ २उ ३ १ २ ३ २
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादृदिः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि
३ १ २र ३ १ २
सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे वीर ! शत्रुक्षेपण—कुशलेन्द्र ! त्वं सेन्यः असि सेनार्हो भवसि त्वमेको सेना-सदृशो भवसीत्यर्थः । हि यस्मादेवं तस्मात् प्रभूतं शत्रूणां धनं परादृदिः परादाता शत्रूणां परांमुखं यथा भवति तथा आदाता असि भवसि दभ्रस्य चित् अल्पस्य नामैतत् अल्पस्यापि तव स्तोतुः वृधः वर्द्धयितासि तथा यजमानाय यागं कुर्वते सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते पुरुषाय शिक्षसि अपेक्षितं धनं ददासि शिक्षतिर्दानकर्मा (निघ० ३, २०, ८१) यस्मात् ते तव वसु धनं भूरि बहुलं अक्षयं धनं विद्यते ददासीति तस्मात् भावः । परादृदिः डु दाञ् दाने (जुहो०उ०)आदृगमहनजन (३, २, १७१)-इति किप्रत्ययः लिड्वद्भावात् द्विर्वचने ह्रस्वत्वम् आतो लोप इटि च (६, ४, ६४)-इत्याकारलोपः । वृधः—वृधेरन्तर्भावितण्यर्थात् इगुपध—लक्षणः कः । सुन्वते—शतुरनुमः (६, १, १७३)—इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ॥ २ ॥

(वीर, हि, सेन्यः, असि) हे शत्रुनाश करनेमें कुशल इंद्र ! क्योंकि तू सेनाके योग्य है अर्थात् तू अकेला ही सेनाकी समान है, इस कारण (भूरि, परादृदिः, असि) शत्रुओंके बहुतसे धनको उनसे प्रतिकूल होकर छीनलेने वाला है (दभ्रस्य चित् वृधः) छोटेसे भी अपने स्तोताका धनादिसे बढानेवाला है (सुन्वते, यजमानाय, शिक्षसि) सोमका अभिषव करनेवालेको और याग करनेवालेको धन देता है (ते, भूरि, वसु) तेरे पास बहुतसा धन है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्।
३ १ २ ३ २ ३ २३२उ २ १ २र
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरीकछँ हनः कं वसो
३ १ २ ३ १ २
दधोऽस्माछँ इन्द्रवसौ दधः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। अत्रेदमाख्यानम्—रहूगणपुत्रो गोतमः कुरु-सृञ्जयानां राज्ञां पुरोहित आसीत्, तेषां राज्ञां परैः सह युद्धे सति स ऋषिः अनेन सूक्तेन इन्द्रं स्तुत्वा स्वकीयानां जयं प्रार्थयामास—इति तस्य च तत्पुरोहितत्वं वाजसनेयिभिराम्नातम्—गोतमो ह वै राहूगण उभयेषां कुरु-सृञ्जयानां पुरोहित आसीत्—इति। यत् यदा आजयः संग्रामाः उदीरते उद्गच्छन्ति उत्पद्यन्ते तदानीं धना धनं धृष्णवे यो धृष्णुः धर्षयिता शत्रूणां जेता भवति तस्मै धीयते निधीयते, जयतो धनं भवतीत्यर्थः। हे इंद्र! त्वं तादृशेषु युद्धेषु प्रवृत्तेषु मदच्युता शत्रूणां मदस्य गर्वस्य च्यावयितारौ हरी त्वदीयावश्वौ युङ्क्ष्व स्व-रथे योजय, योजयित्वा च कञ्चिद्राजानं तव परिचरणमकुर्वन्तं हनः हन्याः कञ्चन त्वां परिचरन्तं वसौ वसूनि धने दधः स्थापय। उदीरते—ईर गतौ (आ०) अदादिकः, अनुदात्तेतत्वाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे (६,१,१८६) धातुस्वर एव शिष्यते, यद्वृत्तान्नित्यम् (८,१,६६)—इति निघात प्रतिषेधः। धना—सुपां सुलुक् (७,१,३९) इति डादेशः। युङ्क्ष्वा—युजिर योगे (रु० उभ०) अन्तर्भावितण्यर्थाल्लोटिबहुलञ्छन्दसि (२,४,७३ इति विकरणस्य लुक्, द्व्यचोऽतस्तिङः (६, ३, १३५)—इति संहितायां दीर्घत्वम्। हनः हन्तेर्लेटि सिप्यडागमः हनश्च दधश्च च.र्थप्रतीतेः चादिलोपे विभाषा (८, १, ६३) इतिप्रथमायास्तिङविभक्तेर्निघातप्रतिषेधः। वसौ—लिङ्गव्यत्ययः। दधः-दध धारणे (भ्वा० आ०) लेटि व्यत्ययेन परस्मैपदम्॥ ३॥

(यत आजय उदीरते) जब संग्राम उत्पन्न होते हैं, तब (धृष्णवे धना,धीयते) शत्रुओंको जीतनेवालेके अर्थ धन स्थापन किये जाते हैं हे इंद्र उन संग्रामोंके समय तुम (मदच्युता, हरी, युङ्क्ष्व) मद टपकानेवाले अपने घोड़ोंको रथमें जोड़ो (कम्,हनः) अपनी आराधना न करनेवाले किसी राजाको मारो (कम्, वसौ, दधः) किसी अपने उपासक राजाको धनमें स्थापित करो (इंद्र, अस्मान्, वसौ, दधः) हे इंद्र! हमें धनमें स्थापित करो॥ ३॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ ३क२र
स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्य्यः ।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा
२ ३ १ ३ ३ १ २
वस्वीरनुस्वराज्यम् ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० पंक्तिः । दे० इंद्रः । अथ द्वितीयतृचे—प्रथमा । स्वादोः स्वादुभूतस्य रसयुक्तस्य इत्था विषूवतः इत्थमनेन प्रकारेण सर्वयज्ञेषु व्याप्तियुक्तस्य मध्वः मधोः मधुररसस्य सोमस्य क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् (१, ४, ३२ वा०)—इति कर्मणः सम्प्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । एवंविधं सोमं गौर्य्यः गौरवर्णा गावः पिबन्ति । या गावः शोभथाः वचन-व्यत्ययः इंद्रेण सह शोभन्ते वृष्णा कामाभिवर्षकेन्द्रेण सयावरीः सह यान्त्यो गच्छन्त्यः सत्यः मदन्ति हृष्टाः भवन्ति । ता इंद्रपीतस्य सोमस्य शेषं पिबन्तीत्यर्थः । वस्वीः पयः—प्रदानेन निवासकारिण्यः ता गावः स्वराज्यं स्वस्येन्द्रस्य यत् राज्यं राजत्वं तदनु लक्ष्यावस्थिता इति शेषः । विषूवन्तः—विष्लृ व्याप्तौ (जु० उभ०) अस्मादौणादिकः कुप्रत्ययः ततो मतुप् ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् (६, १, १७६)—इति मतुप उदात्तत्वम्, अन्येषामपि दृश्यते (६, ३, १३७)—इति संहितायां दीर्घव्यत्ययेन मतोर्वम । मधो जसादिषु छन्दसि वा वचनम (१, ४, ७ इति घेर्ङिति (७, ३ १११)—इति गुणाभावे यणादेशः गौर्य्य-षिद्गौरादिभ्यश्च (४, १, ४१) इति ङीष्जसि यणादेशे उदात्तस्वरितयोर्यणः (८, २, ४)-इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम । सयावरीः—या प्रापणे (अ०१० प०) आतोमनिन् (३, २, ७४)-इति वनिप्, वनोर च (४, १, ७)—इति ङीब्रेफौ । मदन्ति-मदी हर्षे (दि प०) श्यनि प्राप्ते व्यत्ययेन (३, १, ८५) शप् । वस्वीः—वस निवासे (भ्वा० प० शृस्तृस्निहि (उ०, १, १०)—इत्यादिना वसेरुप्रत्ययः, धान्यानत् (उ० १, ९) इत्यनुवृत्तेराद्युदात्तत्वं वोतो गुणवचनात् (४, १, ४४)- इत्यत्र गुणवचनात् ङीबाद्युदात्तार्थम् (४, १, ४४ भा०)-इति वचनात् वसुशब्दात् ङीपि यणादेशः, जसि वाच्छन्दसि (६, १, १०६)-इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् । स्वराज्यम्अकर्मधारये राज्यम् (६, २, ३०)- इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् ॥ १ ॥

(स्वादोः, इत्था विषूवतः, मधोः, गौर्यः पिबन्ति) स्वादु रसयुक्त इस प्रकार सकल यज्ञोंमें व्यापक मधुरसवाले सोमको गौर वर्णकी गौएँ

पीती हैं (या, इन्द्रेण, शोभथाः) जो गौएँ इंद्रके साथ शोभा पाती हैं (वृष्णा, सयावरीः, मदन्ति) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाले इन्द्रके साथ जातीहुई प्रसन्न होती हैं, क्योंकि इन्द्रके पिये हुए सोमके शेषभागको पीती हैं (वस्वी, स्वराज्यम् अनु) दूध देकर निवास करने वाली वह इन्द्रके अपने राज्यमें स्थित हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

ता अस्य पृशनायुवः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रꣳ हिन्वन्ति सायकं

२ ३ १ २ ३ १ २

वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ताः पूर्वोक्ताः अस्य इन्द्रस्य पृशनायुवः स्पर्शनकामाः पृश्नयः नानावर्णाः गावः इन्द्रेण पातव्यं सोमं पयसा श्रीणन्ति मिश्रीकुर्वन्ति इन्द्रस्य प्रियाः प्रीतिहेतुभूताः या धेनवः सायकं शत्रूणामन्तकारकं वज्रम् आयुधं हिन्वन्ति शत्रुषु प्रेरयंति इन्द्रो यथा शत्रुषु वज्रं प्रेरयति तथेन्द्रस्य मदमुत्पादयन्तीत्यर्थः । अन्यत् पूर्ववत् । हिन्वन्ति हिवि प्रीणनार्थः (भ्वा प०) इदित्वान्नुम् । सायकं—षो अन्तकर्मणि (दि० प०) ण्वुल्यान्वे युगागमः ॥ २ ॥

(ताः, अस्य, पृशनायुवः, पृश्नयः, सोमं, श्रीणन्ति) वह इस इंद्रके स्पर्शको चाहनेवाली अनेकों वर्णकी गौएँ इन्द्रके पीनेके योग्य सोमको अपने दूधसे मिलाती हैं (इन्द्रस्य, प्रियाः धेनवः) इन्द्रकी प्रीतिकी कारण वह गौएँ (सायकं, वज्रम्, हिन्वंति) शत्रुओंके अन्तकारी वज्ररूपी शस्त्रको शत्रुओंमें प्रेरणा करती हैं अर्थात् इन्द्रको ऐसा मद देती हैं, कि–वह शत्रुओंके ऊपर वज्र छोडता है (वस्वीः, स्वराज्यम् अनु) दूध देकर निवास करनेवाली वह इन्द्रके अपने राज्यमें स्थित हैं

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

ता अस्य नमसा सहः सपर्य्यति प्रचेतसः । व्रता-

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

न्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्

अथ तृतीया । प्रचेतसः प्रकृष्टज्ञानाः ताः गावः अस्य इन्द्रस्य सहः बलं नमसा स्वकीयेन पयोरूपेणान्नेन सपर्यन्ति परिचरन्ति पुरूणि बहूनि अस्य इन्द्रस्य व्रतानि शत्रुवधादिरूपाणि वीर्य्य-कर्माणि सश्चिरे

सेविरे ज्ञातव्यतया इत्यर्थः। किमर्थम् ? पूर्वचित्तये युयुत्सूनां शत्रूणां पूर्वमेव प्रज्ञापनाय अनेन युध्यमाना वृत्रादयः सर्वे मरणं प्राप्ताः किमर्थं भवद्भिः प्राणास्त्यज्यन्त इति तेषां बोधनायेत्यर्थः। अन्यत्पूर्ववत्। पूर्वचित्तये चिती सञ्ज्ञाने (भ्वा० प०) भावे क्तिन् मरुद्वृधादित्वात् पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् ॥ ३ ॥

(प्रचेतसः, ताः) श्रेष्ठ ज्ञानवालीं वह गौएँ (अस्य, सहः, नमसा, सपर्यन्ति) इस इंद्रके बलको अपने दूधरूप अन्नसे आराधन करती हैं (पूर्वचित्तये) युद्ध करनेवाले शत्रुओंको पहिले ही ज्ञापन करनेके लिये अर्थात् इसके साथ युद्ध करके पहिले कितने ही शत्रु मरणको प्राप्त होगए तुम अपने प्राण क्यों खोते हो, यह जतानेके लिये (अस्य, पुरूणि, व्रतानि, सश्चिरे) इसके अनेकों वीरताके कर्मोंको जानने योग्य समझकर सेवन करती हुई ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
असाव्यꣳशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः ।
३ २उ ३ १ २
श्येनो न योनिमासदत् ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः । छः गायत्री । दे० सोमः अथ षष्ठे खण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा। गिरिष्ठाः पर्वतजातः अंशुः सोमः मदाय मदार्थम् असावि अभिषुतः अप्सु वसतीवरीषु दक्षः प्रवृद्धश्च भवति। किञ्च श्येनो न यथा श्येनः पक्षी वेगेनागत्य स्थानमासीदति तद्वदयं सोमः योनिं स्वकीयं स्थानम् आसदत् आसीदति ॥ १ ॥

(गिरिष्ठाः, अंशुः) पर्वतमें उत्पन्न हुआ सोम (मदाय, असावि) मदके लिये सुसिद्ध किया गया (अप्सु, दक्षः) वसतीवरी जलोंमें बढता है (श्येनो, न, योनिम्, आसदत्) जैसे श्येन पक्षी वेगसे आकर बैठ जाता है, तैसे ही यह सोम अपने स्थान पर स्थित होता है ॥१॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। यत् देववातं देवैःप्रार्थितं शुभ्रं शोभनम् अन्धः अन्नस्वरूपं नृभिः नेतृभिः सुतम् अभिषुतम् अप्सु वसतीवरीषु धौतं शोधितं सोमं गावः पशवः पयोभिः आशिरैः स्वदन्ति स्वादयन्ति। धौतं सुतः धुतः सुतः-इति पाठौ ॥ २ ॥

(देववातं, शुभ्रं, अंधः) देवताओंके प्रार्थना किये हुए सुन्दर और अन्न रूप (नृभिः, सुतम) ऋत्विजों करके संस्कार किये हुए (अप्सु, धौतुम्) वसतीवरी जलोंमें धोये हुए सोमको (गावः, पयोभिः स्वदंति) गोएँ अपने दुग्धसे स्वादयुक्त करती हैं ॥ २ ॥

२ २२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय ।

२ ३ १२ ३ १ २

मधो रसथ्ँ सधमादे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। आत् अनन्तरम् हेतारं प्रेरकम् ईम् एनं मधोः मधुरस्य सोमस्य रसं सधमादे यज्ञे अमृताय अमरणाय अशूशुभत् ऋत्विजः शोभयन्ति। तत्र दृष्टान्तः–अश्वं न यथा प्रेरका अश्वं संग्रामे शोभयंति तद्वत्। हेतारं–हेतारः–इति पाठौ, मधोः–मध्वः–इति च ॥ ३ ॥

(आत्) अनन्तर (होतारं, ईम, मधोः रसम्) प्रेरक इस सोमके रस को (सधमादे, अमृताय, अशूशुभत्) यज्ञमें अमर भाव पाने को ऋत्विज शोभायमान करते हैं (अश्वं, न) जैसे सवार संग्राममें घोड़े को शोभायमान करते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३२३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।

१ २र ३ १ २

वि कोशं मध्यमं युव ॥ १ ॥

ऋ० ऊर्द्ध्वसद्मः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ प्रगाथरूपे द्वितीयसूक्ते—प्रथमा। हे इषस्पते अन्नस्य पते ! देव ! स्तोतव्य सोम द्युम्नम् द्योतमानं बृहत् प्रभूतं यशः अन्नरूपं देवयुं देवान् कामयमानं हविर्लक्षणं त्वदीयं रसम् अभि दिदीहि अस्मभ्यमाभिमुख्येन प्रकाशय प्रयच्छेत्यर्थः यद्वा, हे सोम ! यशोऽन्नं देवयुं देवानिच्छन्तं यजमानमभिलक्ष्य प्रकाशय आमन्त्रितस्याविद्यमानवत्वेन (८, १, १९) पदादित्वादनिघातः। किंच मध्यमम् अंतरिक्ष-स्थितं कोशं मेघं वियुव वृष्ट्यर्थं विगमय विश्लेषय। देवयुं–देवयुः–इति पाठौ ॥ १ ॥

(इषस्पते, देव) हे अन्नके स्वामी स्तुतिके योग्य सोम ! (द्युम्नं बृहत् यशः, देवयुं, अभिदिदीहि) द्योतमान बहुतसे अन्न रूप देवताओंके चाहने योग्य हवि रूप अपने रसको हमारे अभिमुख होकर प्रकाशित

कर (मध्यम, कोशं, विसुव) और अंतरिक्षमें स्थित मेघको वर्षाके लिए छोड़ ॥ १ ॥

१ २ ३क २र २ २ ३ २उ ३ २
आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३
विश्पतिः । वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन्
१ २ ३ १ २
गविष्टये धियः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सुदक्ष ! शोभन-बल ! चम्वोः अधिषवण-फलकयोः सुतः अभिषुतः त्वम् वह्निः न विश्पतिः सर्वासाम् प्रजानां बोढा राजेव विशां प्रजानां बोढा सन् आवच्यस्व आगच्छस्व कलशमापवस्व वच्चेर्गत्यर्थस्य व्यत्ययेन श्यनि रूपम् । किञ्च त्वम् अपः अपाम् उदकादीनां रीतिं व्याप्तां गतिं वृष्टिं दिवः द्युलोकात् पवस्व कुरु । किं कुर्वन् गविष्टये गामात्मन इच्छते यजमानाय धियः कर्माणि जिन्वन् प्रेरयन् ॥ अपोजिन्वन् अपाजिन्व—इति पाठौ ॥ २ ॥

(सुदक्ष) हे सुन्दर बलवाले (चम्वोः, सुतः) अधिषवणके पात्रोंमें अभिषव किया हुआ तू (वह्निः, न, विश्पतिः) प्रजाओंके धारक राजा की समान (विशाम्) प्रजाओंका धारण करनेवाला होता हुआ (आवच्यस्व) कलशमें प्राप्त हो (गविष्टये, धियः, जिन्वन्) यजमानके अर्थ कर्मोंको प्रेरणा करता हुआ (अपः, रीतिं, दिवः, पवस्व) जलों की वर्षाको द्युलोकसे कर ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्राणा शिशुर्महीनाथँ हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

ऋ० पर्वतनारदौ । छ० उष्णिक् । दे० सोमः । अथ तृतीयतृचे—प्रथमा । प्राणा ते अनितेः शानच्चि बहुलम् छन्दसि (२, ४, ३७) इति विकरणस्य लुक् सुपाम् सुलुग् (७, १, ३९)—इति सुप् आकारादेशः यज्ञस्य प्रापयिता चेष्टयिता महीनां महतीनाम् मंहनीयानाम् वा अपाम् शिशुः पुत्र—स्थानीयः सोमः ऋतस्य यज्ञस्य दीधितिं प्रकाशकं धारकं वा सर्वार्थं रसं हिन्वन् प्रेरयन् विश्वा सर्वाणि प्रिया प्रियाणि हवींषि परिभुवत् परिभवति व्याप्नोति अध अपि च द्विता द्विधा भवति दिवि च पृथिव्याञ्च वर्त्तत इत्यर्थः । प्राणा—काणा—इति पाठौ ॥ १ ॥

(प्राणा, महीनां, शिशुः) चेष्टा देनेवाला वा यज्ञकी पूर्तिका साधन जलोंका पुत्र रूप सोम (ऋतस्य, दीधितिं, हिन्वन्) यज्ञके प्रकाशक वा धारक अपने रसको प्रेरणा करता हुआ (विश्वा, प्रिया, परिभुवत्) सकल प्रिय हवियोंमें व्याप्त होता है (अध, द्विता) और द्युलोक तथा पृथिवी दोनों स्थानोंमें रहता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २र ३ २

उप त्रितस्य पाष्योऽ३रभक्त यद्गुहा पदम् ।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । त्रितस्य एतन्नामकस्य ऋषेस्तोतुर्मम यज्ञे गुहा गुहायाम् हविर्द्धाने वर्त्तमानयोः पाष्योः पाषाणवदृढयोः अधिषवणफलकयोः पदं स्थानं सोमः यत् यदा उप अभक्त समभजत । अध अनन्तरं यज्ञस्य धामभिः च धारकैः सप्त सप्तभिश्छन्दोभिः गायत्र्यादिभिः प्रियम् प्रीणयितारं सोमम् अभि ष्टुवन्ति ऋत्विजः अपि वा सप्त सर्पणशीलैर्वसतीवर्य्यादिभिरुदकैः सोममभिषुण्वन्ति ॥ २ ॥

(त्रितस्य, गुहा) त्रित नामक ऋषिकी गुहारूप हविर्धानमें वर्त्तमान (पाष्योः, पदम्) पाषाणकी समान दृढ़ अधिषवण फलकोंमें स्थानको सोम (यत्, उप, अभक्त) जब प्राप्त किया (अध) तब (यज्ञस्य, धामभिः, सप्त) यज्ञको धारण करनेवाले गायत्री आदि सात छन्दोंके द्वारा (प्रियं, अभि) तृप्त करने वाले सोमकी ऋत्विज स्तुति करते हैं २

१ २ २ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम् ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सोमः त्रितस्य मम यज्ञस्य स्वभूतानि त्रीणि सवनानि धारया आत्मीयया वि धारया । किञ्च पृष्ठेषु सामसु रयिं दातारमिन्द्रम् ऐरयत् आयमनु सुक्रतुः शोभन—यज्ञः स्तोता अस्य इंद्रस्य योजना संयोजनादीनि स्तोत्राणि वि मिमीते करोति दस्मादेवं तस्मादिन्द्रं सामसु प्रेरयत्वित्यर्थः । पेरयत्—परया—इति पाठौ ॥ ३ ॥

सोम ! (धारया) अपनी धारासे (त्रितस्य, त्रीणि) मुझ त्रितके तीन सवनोंको (पृष्ठेषु, रयिम्, ऐरयत्) सामगानोंमें धन देने वाले इंद्रको प्रेरणा करे, क्योंकि (सुक्रतुः, अस्य, योजना, विमिमीते) श्रेष्ठ यज्ञ वाला स्तोता इस इंद्रके स्तोत्रोंको उच्चारण करता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
१ २ ३ १ २ ३२ ३ १२
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥ १ ॥

ऋ० रेभः । छ० अनुष्टुप् । दे० सोमः । अथ चतुर्थतृचे—प्रथमा । हे सोम ! सुतः अभिषुतः त्वम् इंद्राय विष्णवे च अन्येभ्यो मित्रादिभ्यः देवेभ्यः मधुमत्तरः अतिशयेन माधुर्य्योपेतः सन् वाजसातये अन्न—लाभाय पवित्रे धारया पवस्व क्षर वाजसातये—वाजसातमः—इति पाठौ, मधुमत्तरः मधुमत्तमः—इति च ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (सुतः) संस्कार कियाहुआ तू (इंद्राय, विष्णवे देवेभ्यः मधुमत्तरः) इंद्रकेअर्थ विष्णुके अर्थ तथा अन्य देवताओंके अर्थ अत्यन्त मधुरता युक्त होता हुआ (वाजसातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (पवित्रे, धारया, पवस्व) दशा पवित्रमेंको धारसे टपक ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २
त्वाᳫँ रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
३ २ ३ २३ ३ २ ३ १२ ३ १२
वत्सं जातं न मातरः पवमाना विधर्म्मणि ॥२॥

अथ द्वितीया । हे पवमान ! पूयमान सोम ! विधर्मणि विविधम् हविषां धारके यज्ञे अद्रुहः द्रोह—वर्जिताः धीतयः अंगुल्यः धीतय इति अंगुलिनाम (नि० २, ५, ७) हरिं हरितवर्णपवित्रे स्थितं त्वां रिहन्ति लिहन्ति निष्पीडनार्थम् स्पृशन्तीत्यर्थः । तत्र दृष्टांतः—वत्सं जातम् न. मातरः, मातरः मातृ—भूता गावः उत्पन्नं वत्सं यथा लिहन्ति तद्वत् ॥ धीतयः—मातरः—इति पाठौ, मातरः—धेनवः—इति च ॥ २ ॥

(पवमान) हे पूयमान सोम ! (विधर्मणि) अनेकों हवियोंके धारक यज्ञमें (अद्रुहः धीतयः) द्रोहरहित अंगुलियें (हरिं, पवित्रे, त्वां, रिहन्ति) हरे वर्णके पवित्रमें स्थित तुझे निचोड़नेके लिए स्पर्श करती हैं (जातं, वत्सं, गावः, न) उत्पन्न हुए बछड़ेको जैसे गौएँ चाटती हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २र
त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
१ २ ३ १ २ ३ १२ ३ २
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ॥३॥

अथ तृतीया । हे महिव्रत महाकर्मन् सोम ! त्वं द्यां द्युलोकं पृथिवीं च अति जभ्रिषे अत्यंतं बिभर्षि डुभृञ् धारणपोषणयोः (तं० उ०) तस्य छान्दसे लिटि (३, ४, ६) सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात् अत्र इडागमः । अंतरिक्षे सोमात्मना, पृथिव्यां लता-रूपेणेति एवं लोकद्वयवर्तित्वम् । हे पवमान ! क्षरन् ! त्वं महित्वना महत्वेन युक्तः सन् द्रापिं कवचं प्रति अमुञ्चथाः प्रतिमुञ्चसि संवृणोऽसि ॥ ३ ॥

(महिव्रत) हे कर्मके महान् साधक सोम ! (त्वम्) तुम (द्यां, च पृथिवीं, च अतिजभ्रिषे) द्युलोक और पृथिवीलोकको अत्यंत धारण करते हो (पवमान) संस्कारयुक्त होताहुआ (महित्वना, द्रापिं; प्रति अमुञ्चथाः) महत्वसे युक्त होकर कवचको ढकते हो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह
२ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
इन्वन्मदाय । हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वरिवस्कृण्वन्वृजनस्य राजा ॥ १ ॥

ऋ० मन्युः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अथ पञ्चमतृचे—प्रथमा इंदुः क्षरण-शीलः सोमः वाजी बलवान् गोन्योघा गमनशील-नीची-नाम-रस-संघातः इंद्रे सहः बलकरं रसम् इंवन् प्रेरयन् सोमः मदाय अस्य, मदार्थं पवते क्षरति । किञ्च रक्षः राक्षस--कुलं हंति हिनस्ति । किञ्च अरातिं शत्रुं परि बाधते परितः संहरति । कीदृशः ? वरिव वरणीयं धनं कृण्वन् स्तोतॄणां कुर्वन् वृजनस्य बलस्य राजा ईशिता सोम इति । अरातिम् आरातीः—इति पाठौ ॥ १ ॥

(वाजी) बलवान् (गोन्योघा) गमनशील रसका समूहरूप (इंदुः सोमः) टपकने वाला सोम (इंद्रे, सहः, इन्वन्) इंद्रके विषें बलदायक रसको प्रेरणा करताहुआ (मदाय,, पवते) इंद्रके मदके लिये बरसता है (वृजनस्य, राजा) बलका स्वामी सोम (वरिवः, कृण्वन्) स्तोताओंको धनदान करताहुआ (रक्षः, हन्ति) राक्षसोंका नाश करता है (अरातिं, परिबाधते) शत्रुओंको चारों ओरसे पीड़ा देता है ॥१॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रि-

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दुग्धः इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य
३ १ २र
मत्सरो मदाय ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अध अथ अनन्तरम् अद्रिदुग्धः ग्रावभिर्दुग्धोऽभिषुतः सोमः मध्वा मदकारिण्या धारया पृचानः देवान् सम्पर्चयन् रोम अविरोमभिः कृतं पवित्रं तिरः तिरस्कृत्य व्यवधायकं कृत्वा पवते कलशेषु क्षरति । किञ्च इंद्रस्य सख्यं सखिभावं कर्म वा जुषाणः सेवमानो देवः द्योतमानः मत्सरः मदकरः इंदुः सोमः देवस्य इन्द्रस्य मदाय मदार्थं पवसे क्षरति ॥ २ ॥

(अध) अनन्तर (अभिदुग्धः) पाषाणोंसे कुचल कर निचोडा हुआ सोम (मध्वा,धारया) मदकारी धारासे (पृचानः) देवताओंको तृप्त करता हुआ (रोम, तिरः पवते) ऊनी पवित्रमेंको छनकर निकलता है (इन्द्रस्य, सख्यम् जुषाणः) इन्द्रके सखाभावको सेवन करता हुआ (देवः मत्सरः, इन्दुः) द्योतमान, मदकारी सोम (देवस्य; मदाय, पवते) इन्द्रके मदके निमित्त बरसता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ ३ १ २
अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवांस्तेन रसेन
३ २ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
पृञ्चन् । इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो
३ २ ३ १ २
अव्यत सानो अव्ये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । धर्माणि धारकाणि व्रतानि कर्माणि ऋतुथा ऋतोः काले वसानः आच्छादयन् इन्दुः सोमः पुनानः पूयमानः सन् अभिपवते कलशानभिलक्ष्य क्षरति । कीदृशः ? देवः क्रीडन-शीलः स्वेन आत्मीयेन रसेन इन्द्रादीन पृञ्चन सम्पर्चयन् संयोजयन् । तमिमं सोमं दश दशसंख्याकाः क्षिपः अंगुलि-नामैतत् (नि० २, ५, ३) कर्मार्थं प्रेर्यंत इति तत्संख्याका अंगुलयः सानो समुच्छ्रिते अव्ये अविभवे पवित्रे अव्यत गमयंति यद्वा तत्र पवित्रे पूयमानं सोमम् अव्यत गच्छन्ति । वी गत्यादिषु(अ०२०प०)लङि व्यत्ययेनात्मनेपदम्॥ व्रतानि प्रियाणि—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(धर्माणि, व्रतानि, ऋतुथा, वसानः) यजमानके धारणकर्त्ता कर्मों को ऋतुके समय व्याप्त करता हुआ (पुनानः) पूयमान (इन्दुः, अभि-पवते) सोम कलशमें बरसता है (देवः) दीप्तिमान् सोम (स्वेन, रसेन, देवान्, पृञ्चन्) अपने रससे इंद्रादि देवताओंको संयुक्त करता हुआ (दश, क्षियः, सानो, अव्ये, अव्यत) उस सोमको दश अंगुलियें ऊँचे दशापवित्रमें पहुँचाती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्यः षष्ठः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३
आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् । यद्ध
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषꣳ
३ २ ३ १ २
स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

ऋ० वसुश्रुतः घस्रो वा। छ० पंक्तिः । दे० अग्निः । अथ सप्तमे खण्डे प्रथम-सूक्ते-प्रथमा। हे अग्ने ! द्युमंतं दीप्तिमंतम् अजरम् अजीर्णम् ते त्वाम् आ सर्वतः इधीमहि दीपयामः । यत् ह यदा खलु ते तव स्या सा पनीयसी स्तुत्या समित् दीप्ति द्यवि द्युलोके दीदयति दीप्यते तदा हे अग्ने ! स्तोतृभ्यः अस्मभ्यम् इषम् अन्नम् आभर आहर ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (द्युमन्तं, अजरं, ते, आ, इधीमहि) दीप्तिमान् जरारहित तुम्हें सब ओरसे दीप्त करते हैं (यत्, ह, ते, स्या, पनीयसी, समित्) जब निश्चय तुम्हारी वह प्रशंसायोग्य दीप्ति (द्यवि, दीदयति) द्युलोकमें दिपती है तब हे अग्ने ! (स्तोतृभ्यः, इषं, आभर) हम स्तोताओंको अन्न दो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
आ ते अग्न ऋचाहविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यꣳ हूयत
१ २ ३ २ ३ १ २
इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे ज्योतिषस्पते ! दीप्तेः स्वामिन् ! अग्ने ! शुक्रस्य

दीप्तस्य ते तुभ्यम् ऋचा मन्त्रेण सह हविः आ आभिमुख्येन हूयते। हे सुश्चन्द्र ! सुष्ठ्वाह्लादक ! शोभनहिरण्य वा हे दस्म ! शत्रूणामुपक्षयितः ! शिष्टं गतम् ॥ ज्योतिषः शोचिषः इति पाठौ ॥ २ ॥

(सुश्चन्द्र) श्रेष्ठ आनन्ददायक (दस्म) शत्रुनाशक (विश्पते) प्रजापालक (हव्यवाट्) हवि पहुँचानेवाले (ज्योतिषस्पते, अग्ने) हे प्रकाशके स्वामी अग्निदेव ! (शुक्रस्य ते) दीप्तिमान तेरे अर्थ (ऋचा, हविः, आ, हूयते) मंत्रके साथ हवि अभिमुख होकर होमा जाता है (स्तोतृभ्यः, इषं, आभर) हम स्तोताओंको अन्न दो ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २
उभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ
३ २ ३ २ २
स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सुश्चन्द्र ! शोभनाह्लादक ! शोभनहिरण्य ! वा, अग्ने ! उभे दर्वी दर्व्यौ हविः-पूर्णे जुहूप्रभृति आसनि आस्ये आ श्रीणीषे आश्रयसि पचसि वा उतो अपि च नः अस्मान् उक्थेषु यागेषु उत्पुपूर्याः उत्पूरय फलैः। हे शवसस्पते बलस्य पालयितः ! इषमित्यादि गतम्

(शवसस्पते,विश्पते,सुश्चन्द्र) बलके स्वामी, प्रजाओंके पालक हे ईद्र (उभे, दर्वी, आसनि श्रीणीषे) हविसे भरे जुहू आदि दोनों पात्रों का अपने मुखमें लेकर पचा जाते हो (उतो) और (उक्थेषु, नः, उत्पुपूर्याः) और यागोंमें हमें फलोंसे पूर्ण करते हो (स्तोतृभ्यः, इषं, आभर) हम स्तोताओंको अन्न दो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥

ऋ० नृमेधः । छ० उष्णिक् । दे० इन्द्रः । अथ तृतीयतृचे-प्रथमा । हे उद्गातारः ! इन्द्राय बृहत् एतन्नामकं साम गायत उच्चरत । कीदृशाय ? विप्राय मेधाविने बृहते महते ब्रह्मकृते वृष्टिद्वारा हविर्लक्षणस्यान्नस्य कर्त्रे विपश्चिते विदुषे पनस्यवे स्तुतिमिच्छते । ब्रह्मकृते-धर्मकृते-इति पाठौ ॥ १ ॥

हे उद्गाताओ ! (विप्राय, बृहते, ऋतावृते, विपश्चिते, पनस्यते, इंद्राय) मेधावी, महान, वर्षाके द्वारा हविरूप अन्नके कर्त्ता विद्वान् और स्तुति चाहनेवाले इन्द्रके अर्थ (बृहत्, साम, गायत) बृहत् नाम सामकागान करो

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वँ सूर्य्यमरोचयः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

विश्वकर्म्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! त्वम् अभिभूः शत्रूणाम् अभिभविता असि भवसि किञ्च त्वम् सूर्य्यम् आदित्यम् अरोचयः तेजोभिरदीपयः, किञ्च विश्वकर्मा विश्वस्य कर्त्तासि विश्वदेवः सर्वदेवश्चासि तथा च यजुर्ब्राह्मणम्–अग्नि वा अन्वन्या देवता इन्द्रमन्वन्या इति अतः महान् सर्वाधिकोऽसि ॥ २ ॥

(इंद्र, त्वं, अभिभूः, असि) हे इन्द्र ! तू शत्रुओंका तिरस्कार करने वाला है (त्वं, सूर्यं, अरोचयः) तुम सूर्यको तेजोंसे दीप्त करते हो (विश्वकर्मा, विश्वदेवः, महान्, असि) विश्वके कर्त्ता, सकल देवरूप और सबसे बडे हो ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २३ २ १२ ३२ ३२

विभ्राजं ज्योतिषा स्वा३रगच्छो रोचनं दिवः ।

३ १ २ ३ १ २

देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! त्वं ज्योतिषा तेजसा दिवः आदित्यस्य रोचनं प्रकाशम् अधिकरणत्वेन स्वः स्वर्गं विभ्राजत् प्रकाशयन् अगच्छः अप्राप्नोः किञ्च देवाः सर्वाः ते तव सख्याय मित्रत्वाय येमिरे, स्वं स्वमात्मानं नियमितवन्तः अस्माकम् इन्द्रः सखा यथा स्यादिति सर्वे देवाः प्रयत्नमकार्षुरित्यर्थः ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (ज्योतिषः, रोचनम्) तेजसे आदित्यके प्रकाशक (स्वः, विभ्राजन्) स्वर्गको प्रकाशित करता हुआ (आगच्छः) प्राप्त हो (देवाः, ते सख्याय येमिरे) सब देवता तेरे मित्रभावको पाने के लिये अपनी आत्माको वशमें करते हुए ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ २ १ २
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियꣳ रजः सूर्यो न रश्मिभिः १

ऋ०गोतमः। छ० अनुष्टुप्। दे० इन्द्रः। अथ तृतीयतृचे-प्रथमा। हे इंद्र! ते त्वदर्थं सोमः असाविअभिषुतोऽभूत्। हे शविष्ठ अतिशयेन बलवन्! अत एव धृष्णो शत्रूणां धर्षयितः! इंद्र! आगहि देवयजनदेशमागच्छ, आगतञ्च त्वा त्वाम् इन्द्रियं सोमपानेनोत्पन्नं प्रभूतं सामर्थ्यम् आ पृणक्तु आपूरयतु। रजः अन्तरिक्षं रश्मिभिः किरणैः सूर्य्यो न यथा सूर्य्यः पूरयति तद्वत् शविष्ठः—शवस्विन् शब्दादिष्ठनि विन्मतोर्लुक्, टेः (६, ४, ११५)—इति टिलोपः, पादादित्वान्निघाताभावः (८, १, १९)। गहि—गमेर्लेटि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७३)—इति शपो लुक्, अनुदात्तोपदेश (६, ४, ३७)—इत्यादिना अनुनासिकलोपः, तस्य असिद्धवदत्राभात्(६, ४, १२)—इत्यसिद्धत्वाद्धेर्लुगभावः।

(इंद्र, ते, सोमः, असावि) हे इन्द्र! तेरे निमित्त सोमका संस्कार किया जाचुका है (शविष्ठ, धृष्णा, आगहि) हे अत्यन्त बलवान्! शत्रु को दबानेवाले इन्द्र यहाँ यज्ञशालामें आओ (सूर्यः, रश्मिभिः, रजः, न) जैसे सूर्य किरणोंसे अन्तरिक्षको पूर्ण करता है तैसे (त्वा, इन्द्रियं आपृणक्तु) तुझे सोमपानसे उत्पन्न हुई बड़ीभारी सामर्थ्यसे पूर्ण करे १

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना २

अथ द्वितीया। हे वृत्रहन्! शत्रूणां हन्तः! इंद्र! रथम् आ तिष्ठ आरोह। यस्मात् ते हरी त्वदीयावश्वौ ब्रह्मणा स्तोत्रलक्षणेन मंत्रेण युक्ता रथेऽस्माभिर्योजितौ सुपां सुलुग् (७, १, ३९)—इत्याकारः तस्मात् त्वं रथमातिष्ठ। ते मनः त्वदीयं मनश्च ग्रावा अभिषवार्थं प्रवृत्तः पाषाणः वग्नुना वञ्चनीयेनाभिषवशब्देन वृचेर्गश्च (उ० ३, ३३)—इति-नु प्रत्ययो गकारश्चान्तादेशः अर्वाचीनम् अस्मदभिमुखं सुकृणोतु सुष्ठु करोतु

(वृत्रहन् रथं आतिष्ठ) हे इंद्र! रथ पर चढ़ो (ते हरी ब्रह्मणा युक्ता) तेरे हरिनामक घोड़े हमने मंत्रसे जोड़ दिये हैं (ग्रावा) अभिषवका पाषाण (वग्नुना) मनको खैंचनेवाले शब्दसे (ते मनः) तेरे मनको (अर्वाचीनं सुकृणोतु) श्रेष्ठतासे हमारे सन्मुख करे॥ २॥

२ ३ १ ३र ३ १ २
इन्द्रमिद्धरी वहताऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
१ २ ३ २र ३ २ ३ १ २
ऋषीणाथ्ँ सुष्टुरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। अप्रतिधृष्णशवसं केनाप्यधर्षितबलमहिंसितबलमित्यर्थः। इंद्रमित् इंद्रमेव ऋषीणां वसिष्ठादीनां मानुषाणाम् अन्येषां मनुष्याणाञ्च सुष्टुतीः शोभनाः स्तुतीः यज्ञञ्च हरी अश्वौ उप वहतः समीपं प्रापयतः। यत्र यत्र स्तुवंति यजंते तत्र सर्वत्रेन्द्रमश्वौ प्रापयत इत्यर्थः। मानुषाणाम् मनोर्जातौ (४, १, १६१)-इति मनुशब्दादञ् षुगागमश्च ॥ ऋषीणां सुष्टुतीः ऋषीणाञ्च स्तुतीः-इति पाठौ ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे षष्ठोऽध्यायः

(अप्रतिधृष्टशवसं इंद्रं इत्) किसीके भी तिरस्कार न करनेयोग्य बलवाले इंद्रको ही (ऋषीणाम् मानुषाणाम्) ऋषि और मनुष्योंकी (सुष्टुतीः) सुन्दर स्तुतियें (यज्ञञ्च) यज्ञको भी (हरी उप वहतः) अश्व पहुँचाते हैं अर्थात जहाँ यज्ञ और स्तुति होती है तहाँ तहाँ अश्व इंद्रको पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

सामवेद उत्तरार्चिके षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः
षष्ठाध्यायश्च समाप्तः



॥ श्रीहरिः ॥

सप्तमोऽध्याय आरभ्यते

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ—महेश्वरम् ॥ ७ ॥

१ २३१२ ३१२ ३२३२ ३१२
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां
३ २ ३१२ १२ ३१२ ३१२ ३क २र
जनिता विभूवसुः । दधाति रत्नꣳ स्वधयोरपीच्यं
३१२ ३१ २ ३१ २र
मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १ ॥

ऋ० सिकतानिवारि-ऋषिगणः छ० जगती । दे० सोमः । तत्र प्रथम-खण्डे—प्रथमतृचे—प्रथमा । यज्ञस्य अग्निष्टोमादे ज्योतिः दीपकः सोमः प्रियम् इन्द्रादीनां प्रियभूतं मधु मधुरसं पवते पूयते दशापवित्रेण शोध्यत इत्यर्थः । रस विशेष्यते—पिता पालकः जनिता फलस्य उत्पादकः विभूवसुः प्रभूतधनः तेन सम्पादयितुं शक्यत्वात् तादृशः सोमरसः स्वधयोः स्वधा—इति द्यावापृथिव्योर्नाम (निघ० ३, ३०, १) अपीच्यम्–इति चान्तर्हितस्य (निघ० ३, २५, ६) द्यावापृथिव्योर्मध्येऽन्तर्हितं रत्नं रमणीयं धनं दधाति स्थापयति यजमानेषु स एव पुनर्विशेष्यते—रसः रसयिता मदिन्तमः मादयितृतमः मत्सरः स सोमः इन्द्रियः इन्द्रेण जुष्टः इन्द्रिय–वर्द्धको वा ॥ १ ॥

(यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञका प्रकाशक सोम (प्रियं मधु पवते) इन्द्रादि देवताओंके प्यारे मधुररसको बरसाता है (पिता) पालन करनेवाला (जनिता) फल उत्पन्न करनेवाला (विभूवसुः) बहुत धनी (मदिन्तमः) अति मदकारी (मत्सरः) आनन्ददायक (इन्द्रियः) इन्द्रका सेवन कियाहुआ (रसः) सोमका रस (स्वधयोः अपीच्यं रत्नं दधाति) द्यावापृथिवीमें अन्तर्हित धन यजमानोंके लिये स्थापन करता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३१ २३क २र ३१२३२ ३१२
अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो

२ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
विचक्षणः। हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजा-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
नोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। सोमः वाजी वेगवान् यद्वा, अश्वसदृशः अभिक्रन्दन् अभितः शब्दं कुर्वन् कलशं द्रोणकलशम् अर्षति गच्छति। कीदृशः दिवः द्योतमानस्य अन्तरिक्षस्य दशापवित्रलक्षणस्य पतिः पालकः स्वामी यद्वा द्युलोकस्य स्वामी दिवि हि सोम उत्पन्नः तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत्-इति श्रुतेः। शतधारः परिमित-धारोपेतः विचक्षणः विशेषेण द्रष्टा हरिः हरितवर्णः सोमरसः मित्रस्य मित्रवर्द्धितकरस्य यज्ञस्य सदनेषु सीदति निषण्णो भवति। कीदृशः सन्? सिन्धुभिः स्यन्दन् साधनैः अविरोमभिः दशापवित्रावयवैः मर्मृजानः शोध्यमानः वृषा वर्षकः फलानाम् ॥ २ ॥

(दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी (शतधारः) सैंकड़ों धारोंवाला (विचक्षणः) बुद्धिवर्द्धक (वाजी) बलवान् (हरितः) हरे वर्णका सोम रस (अभिक्रन्दन् कलशं अर्षति) शब्द करताहुआ कलशमें पहुँचता है (सिंधुभिः अविभिः मर्मृजानः वृषा) टपकानेके साधन ऊन के दशापवित्रोंसे शुद्ध कियाजाताहुआ मनोरथोंका पूरक सोम (मित्रस्य सदनेषु सीदति) मित्रकी समान हितकारी यज्ञके पात्रोंमें स्थित होता है

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अग्रे सिंधूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो
२र २ ३ १ २ ३ १ २र
गोषु गच्छसि। अग्रे वाजस्य भजसे महद्धनꣳ
२ २ ३ १ २
स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! त्वं सिंधूनां स्यन्दन-स्वभावानाम् अग्रे उदकानाम् अग्रे पुरस्तात् पवमानः पूयमानः सन् अर्षसि गच्छसि वृष्ट्युदकं जनयितुमाहुतिद्वारान्तरिक्षे गच्छसीत्यर्थः। तथा वाचः माध्यमिकाया अपि अग्रियः प्राग्र्यः पूज्यः सन् गच्छसि। तथा गोषु रश्मिषु तेषामग्रे गच्छसि। तथा वाजस्य शत्रूणामन्नस्य लाभायेति

शेषः, तदर्थं महाधनं संग्रामं भजसे सेवसे । कीदृशः सन् ? स्वायुधः शोभन-प्रहरणसाधनायुधः । हे सोम ! तादृशस्त्वं सोतृभिः अभिषुण्वद्भिः अध्वर्य्वादिभिः सूयसे अभिषूयसे ॥ ३ ॥

हे सोम ! तू (सिंधूनां, अग्रे,पवमानः,अर्षसि) जलोंसे पहिलेपवित्र होता हुआ जाता है अर्थात् वर्षाका जल उत्पन्न करनेको पहिले ही आहुतिके द्वारा अन्तरिक्षमें पहुँच जाता है (वाचः, अग्रियः, गच्छसि) मध्यमा वाणीका पूज्य होकर जाता है (गोषु, अग्रे, गच्छसि) किरणों से आगे जाता है (वाजस्य) शत्रुओंका अन्न पानेके लिये (स्वायुधः, महत्, धनं भजसे) श्रेष्ठ आयुधवाला होकर संग्रामका सेवन करता है (सोमः, स्नोतृभिः, सूयसे) तैसा तू हे सोम ! अध्वर्यु आदिके द्वारा निचोड़ा जाता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।

३ १ २ ३ १ २र

शुक्रासो वीरयाशवः ॥ १ ॥

ऋ० कश्यपः । छ० गायत्री । दे०सोमः । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा । वाजिनः बलवंतः शुक्रासः दीप्ताः आशवः वेगवन्तश्च सोमासः सोमाः गव्यया यजमानस्य गवेच्छया तथा अश्वया अश्वेच्छया तथा वीरया वीराः पुत्र—भृत्यादयः तेषामिच्छया प्र असृक्षत प्रासृज्यन्त रसार्थां विसृज्यन्ते ॥ १ ॥

(वाजिनः, शुक्रासः आशवः सोमासः) बलवान् दीप्तिमान वेगवान् सोम (गव्यया, अश्वया, वीरया) यजमानके लिये गौओंकी इच्छासे घोड़ोंकी इच्छासे और पुत्र सेवक आदिकी इच्छासे (प्र असृक्षत) रसोंको छोड़ते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

पवन्ते वारे अव्यये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ऋतायुभिः यज्ञेच्छुभिः अध्वर्यु-प्रभृतिभिः शुम्भमानाः अलंक्रियमाणाः गभस्त्योः हस्तयोः हस्ताभ्यां मृज्यमानाः शोध्यमानाः वारे वाले दशापवित्रे । कीदृशे ? अव्ये अविमये पवन्ते पूयंते ।

(ऋतायुभिः शुम्भमानाः) यज्ञको चाहनेवाले अध्वर्यु आदि करके

सुशोभित कियेहुए (गभस्त्योः, मृज्यमानाः) हाथोंसे शुद्ध किये हुए सोम (अव्ये वारे) ऊनके पवित्रमें (पवंते) सुसिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
१ २ ३ २र
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ते सोमाः अभिषूयमाणाः दाशुषे हविःप्रदात्रे यजमानाय विश्वा सर्वाणि वसु वासकानि गवादि-धनानि आपवन्तां सर्वतः क्षरन्तु । विश्वेत्युक्तं कथं वसूनां विश्वत्वमिति ? उच्यते- दिव्यानि दिवि भवानि पार्थिवा पृथिवी-सम्बद्धानि अन्तरिक्ष्या अन्तरिक्षाणि अन्तरिक्षे भवानि एवमुक्तप्रकारेण विश्वानीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(ते) वह (सोमः) सोम (दाशुषे) हवि अर्पण करनेवाले यजमानके अर्थ (दिव्यानि पार्थिवा, अन्तरिक्ष्या) स्वर्गीय, भूलोकके और अन्तरिक्षके (विश्वा, वसु) गौ आदि सकल धन (आपवन्ताम्) बरसावें

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पवस्व देववीरति पवित्रꣳ सोम रꣳह्या ।
१ २ ३ १ २र
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० गायत्री दे० सोमः । पवस्वेतिदशर्चें तृतीये सूक्ते—प्रथमा । हे सोम ! देववीः देवकामः त्वं रंह्या, वेगेन पवित्रं यथा भवति अति पवस्व अतिक्षर । किञ्च हे इन्दो ! वृषा सेचकस्त्वं इन्द्रम् आविश प्रविश ॥ १ ॥

(सोम ! देववीः) हे सोम ! देवताओंकी कामनावाला तू (रंह्या, पवित्रं अतिपवस्व) वेगके साथ पवित्र भावसे बरस (इंदो वृषा इंद्रम् विश) हे सोम ! कामनाओंकी वर्षा करनेवाला तू इंद्रको प्राप्त हो ॥१॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।
१ २र ३ १ २
आयोनिं धर्णसिः सदः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्दो ! सोम ! वृषा सेवकामीष्टदाता वर्णकः द्युम्नवत्तमः यशस्वितमः धर्णसिः धर्ता त्वं मही महत् प्सरः पानीयम्

अन्धः अन्नम् आवच्यस्व अस्मान् प्रति आगमय किञ्च योनिम् स्वकीयम् स्थानम् आसदः आसीद च ॥ २ ॥

(इन्दो) हे सोम (वृषा द्युम्नवत्तमः धर्णसिः) सेवकको अभीष्ट फल देने वाला परम कीर्तिमान् तथा धारण करने वाला तू (महिप्सरः आवच्यस्व) बहुतसा अन्न जल हमारे पास पहुंचा (योनिं आसदः) अपने स्थान पर स्थित हो ॥ २ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
३ १ २ ३ १ २
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सुतस्य अभिषुतस्य वेधसः अभिलषितस्य विधातुर्यस्य सोमस्य धारा प्रियम् प्रीतिकरम् मधु अमृतम् अधुक्षत दुग्धे । स सुक्रतुः सुकर्मा सोमः अपः वसतीवरीः वसिष्ट आच्छादयति ॥ ३ ॥

(सुतस्य वेधसः धारा) अभिषव किये हुए इच्छित पदार्थको देने वाली सोमकी धारा (प्रियं मधु अधुक्षत) प्रसन्न करनवाले अमृतको पात्रमें पूर्ण करती है (सुक्रतुः अपः वसिष्ट) श्रेष्ठकर्मका साधक सोम वसतीवरी जलोंको आच्छादन करता है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ १
महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
१ २र ३ १ २
यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे सोम ! त्वं यद् यदा यज्ञे गोभिः गोविकारैः पयोभिः वासयिष्यसे आच्छादयिष्यसे तदा महान्तं गुणैः प्रवृद्धं त्वा अनु त्वामति सिन्धवः स्यन्दमानाः महीः महत्यः आपः अर्षन्ति गच्छन्ति ॥४॥

हे सोम ! (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब तू गौके दुग्धादि से मिलाया जाता है, तब (महान्तं, त्वा अनु सिन्धवः महीः आपः अर्षन्ति) गुणोंसे तेरे प्रति बढ़ते हुए बहुतसे जल प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
१ २ ३ १ २ २ २
सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। समुद्रः समुद्द्रवन्ति अस्माद्रसा इति समुद्रः विष्टम्भः दिवः स्वर्गस्य धरुणः धर्त्ता च अस्मयुः अस्मत्कामः सोमः अप्सु उदकेषु मामृजे मर्मृज्यते पवित्रेभिषिच्यते चेत्यर्थः ॥ ५ ॥

(समुद्रः) रसोंको वहाने वाला (दिवः विष्टम्भः धरुणः) स्वर्गका थामने वाला और धारण करने वाला (अस्मयुः सोमः) हमारी कामना वाला सोम (पवित्रे अप्सु मामृजे) पवित्रमेंको वसतीवरी जलोंमें बार बार शोधा जाता है ॥ ५ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।

१ २र

सꣳ सूर्येण दिद्युते ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । वृषा कामानां वर्षकः हरिः हरितवर्णः महान् सर्वोत्तमः मित्रः न यथा सखा तद्वत् दर्शतः दर्शनीयः यः सोमः अचिक्रदत् शब्दं करोति । सोऽयं सोमः सूर्य्येण सह सन्दिद्युते समित्येकीभावे सूर्य्येण सह द्योतत इत्यर्थः ॥ रोचते—इति बहृचानां पाठः ॥ ६ ॥

(वृषा हरिः महान्)मनोरथ पूरे करनेवाला हरे वर्णका और सर्वोत्तम (मित्रः न दर्शत.) मित्रकी समान दर्शनीय जो सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है वह सोम (सूर्य्येण संदिद्युते) सूर्यके साथ दिपता है ६

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।

२ ३ १ २ ३ १ २

याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । हे इन्दो ! ते तव ओजसा बलेन अपस्युवः कर्मेच्छासम्बन्धिन्यः ताः गिरः स्तुतयः मर्मृज्यन्ते शोध्यन्ते । याभिः गीर्भिः त्वं मदाय क्षरन् शुम्भसे अलङ्क्रियसे ॥ ७ ॥

(इन्दो ते ओजसा) हे सोम ! तेरे बलसे (अपस्युवः गिरः मर्मृज्यन्ते) कर्मकी इच्छाके सम्बन्धवाली स्तुतियें शोधी जाती हैं (याभिः मदाय शुम्भसे) जिस स्तुतिकी वाणियोंसे तुम मदके अर्थ सुन्दर बनाये जाते हो ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।

२ ३ १ २ ३ २
तव प्रशस्तये महे ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। लोककृत्नु लोकस्य कर्त्तारं तं त्वा सोमं घृष्वये शत्रूणां घर्षण—शीलाय मदाय ईमहे याचामहे। सोम! पातुमिति शेषः। किमर्थम्? इति उच्यते—तव महे महते प्रशस्तये प्रशंसनाय॥ ८॥

हे सोम! (तव महे प्रशस्तये) तेरी बड़ी प्रशंसा होने के लिए (लोककृत्नुम तं त्वा) लोकके कर्त्ता तिस तुझको (घृष्वये मदाय) शत्रुओंको रगड़ने वाले मदके अर्थ (ईमहे) पीनेको प्रार्थना करते हैं ८

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २
गोषा इन्दो नृषा अश्वसा वाजसा उत।
३ २ ३ १ २ ३ २
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ९ ॥

अथ नवमी। हे इन्दो! क्रियमान सोम! यज्ञस्य ज्योतिष्टोमादेः पूर्व्यः पुराणः नित्यः आत्मा स्वरूपभूतः सोमस्य यज्ञस्वरूपत्वं प्रसिद्धम्। तादृशस्त्वं गोषा अस्मभ्यं गवां दाता असि भवसि नृषा नृणां पुत्र—भृत्यादीनां दातासि अश्वसाः अश्वानां दाता चासि उत अपि च वाजसा अन्नानां दाता चासि॥ ९॥

(इन्दो) हे सोम! (यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा) ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ का पुरातन आत्मारूप तू (गोषा नृषा अश्वसा उत वाजसा असि) हमें गौएँ देने वाला पुत्र सेवक आदि मनुष्य देने वाला घोड़े देने वाला और अन्नोंको दाता है॥ ९॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया।
३ १ २ ३ १
पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ इव ॥ १० ॥

अथ दशमी। हे इन्दो! सोम! इंद्रियम् इंद्रेण जुष्टम् इंद्रियस्य वीर्यस्य वा वर्द्धकम् रसम् मधोः मदकरस्य अमृतस्य धारया पर्जन्यो वृष्टिमान् इव यथा वर्षवान् पर्जन्यो मेघः तथा अस्मभ्यं मेधातिथिभ्यः पवस्व क्षर॥ १०॥

(इन्दो) हे सोम! (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वर्षा करनेवाले मेघ की समान (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (इंद्रियम्) इंद्रके सेवन किये

हुए वा वीरताके वर्द्धक रसको (मधोः धारया पवस्व) अमृतकी धारा रूपसे बरसा ॥ १० ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥

ऋ० हिरण्यस्तूपः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीय-खंडे-सनाचेति दशर्चे प्रथमे सूक्ते, प्रथमा । हे महिश्रवः ! महदन्न ! पवमान सोम ! सन अस्मद्यागे यजनीयान् देवान् भज जेषि च याग—विघ्नकारिणो राक्षसांश्च जय । अथ देवान् प्राप्य राक्षसांश्च जित्वा अनन्तरं नः अस्मान् वस्यसः श्रेयसः कृधि कुरु श्रेयोऽस्मभ्यं देहीत्यर्थः

(महिश्रवः पवमान सोम) हे बहुत अन्नवाले संस्कारयुक्त सोम ! (सन) हमारे यज्ञमें पूजनीय देवताओंका सेवन कर (च जेषि च) और यज्ञमें विघ्न करने वाले राक्षसोंको जीत भी (अथ) देवताओंको पावे और राक्षसोंको जीतनेके अनंतर (नः वस्यसः कृधि) हमें कल्याण युक्त करो ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ १ २ ३ १ २
सना ज्योतिः सना स्वा३ र्विश्वा च सोम सौभगा ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वं ज्योतिः तेजः सन अस्मभ्यं प्रयच्छ । अपि च स्वः स्वर्गम् सन अस्मभ्यम् देहि । विश्वा विश्वानि सौभगा सौभाग्यानि सन सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

(सोम) हे सोम (ज्योतिः सन) हमें तेज दे (स्वः च विश्वा सौभगा सन) स्वर्ग और सकल सौभाग्य हमें दे (अथ न वस्यसः कृधि) इसके अनंतर हमें कल्याण युक्त कर ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम ! त्वं दक्षं बलं सन अस्मभ्यं देहि उत अपि च क्रतुं यज्ञं सन मृधः हिंसकान् शत्रूंश्च अप जहि मारय। सिद्धमन्यत्

(सोम) हे सोम ! (दक्षं क्रतुं सन) बल और यज्ञका फल हमें दे (मृधः अपजहि) शत्रुओंको मार (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनंतर हमें कल्याणका भागी कर ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। हे पवीतारः ! सोमस्य शोधयितार ऋत्विजः ! सोमं पुनीतन पावयत दशापवित्रेण शोधयत किमर्थम् ? इंद्राय पातवे इंद्रस्य पानाय। गतमन्यत् ॥ ४ ॥

(पवीतारः) हे सोमका संस्कार करने वाले ऋत्विजों ! (इंद्राय पातवे) इंद्रके पीनेके लिए (सोमम् पुनीतन) सोमको दशापवित्रसे शुद्ध करो (अथ नः वस्यसः कृधि) इस के अनन्तर हमें कल्याणका भागी करो ॥ ४ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्वꣳ सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। हे सोम ! त्वं तव क्रत्वा तव ऊतिभिः त्वत्कर्तृकाभिः रक्षाभिश्च नः अस्मान् सूर्ये आ भज प्रापय। सिद्धमन्यत् ॥ ५ ॥

हे सोम ! (त्वम्) तू (तव क्रत्वा तव ऊतिभिः) अपनी की हुई रक्षाओंसे (नः सूर्ये आभज) हमें सूर्यके विषै उपासनामें लगा (अथ नः वस्यसः कृधि) इसके अनन्तर हमें कल्याणका भागी कर ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्।

१ २ ३ १ २

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी। हे सोम ! तव क्रत्वा प्रज्ञानेन तव ऊतिभिः पालनैश्च ज्योक् चिरं पश्येम सूर्यं पश्यामः द्रक्ष्यामः। सिद्धमन्यत् ॥ ६ ॥

हे सोम ! (तव क्रत्वा) तेरे दिये हुए ज्ञानके द्वारा (तव ऊतिभिः) तुम्हारी रक्षाओंमें रह कर (ज्योक सूर्यं पश्येम) चिरकाल पर्यन्त सूर्य को देखें (अथा नः वस्यसः) कृधि) इसके अनंतर हमें कल्याणका भागी करो ॥ ६ ॥

३क २र ३ १२ ३१२ ३२
अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसꣳ रयिम् ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । हे स्वायुध ! शोभनायुध सोम ! त्वं द्विबर्हसं द्वया-र्द्यावापृथिव्योः स्थानयोः परिदृढं रयिं धनम् अभ्यर्ष स्तोतृभ्यः अभिग-मय सिद्धमन्यत् ॥ ७ ॥

(स्वायुध सोम) हे श्रेष्ठ आयुधोंवाले सोम (द्विबर्हसं रयिं अभ्यर्ष) द्यावापृथिवी दोनों स्थानके अत्यन्त दृढ़ धनको हम स्तोताओंके अर्थ दो (अथा नः वस्यसः कृधि) अनन्तर हमें कल्याणका भागी करो ।७।

३ २ १ २ ३ १ २ ३१२ ३ २
अभ्या३र्षानपच्युतो वाजिंत्समत्सु सासहिः ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी । हे सोम ! समत्सु संग्रामेषु अनपच्युतः शत्रुभिरनाहतः सासहिः शत्रूणामभिभविता त्वम् अभ्यर्ष अभिगच्छ क्षर । गतमन्यत् ॥

(वाजिन्)हे बलवान् सोम!(समत्सु अनपच्युतः) संग्रामोंमें शत्रुओं से न दबनेवाला (सासहिः) शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला तू(अभ्यर्ष) द्रोणकलशमें प्राप्त हो (अथा नः वस्यसः कृधि) इसके अनन्तर हमें कल्याणका भागी कर ॥ ८ ॥

२ ३१२ ३ १२ ३ १२
त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥

अथ नवमी । हे पवमान ! शोध्यमान सोम ! त्वां विधर्मणि विविध-फलस्य धारके यज्ञे यज्ञैः यज्ञ-साधनैः स्तोत्रैः अवीवृधन् यजमाना वर्द्धयन्ति । गतमन्यत् ॥ ९ ॥

(पवमान) हे शोधेजाते हुए सोम ! (त्वां विश्वभोगियज्ञैः अवीवृधन्) तुम्हें अनेकों फलोंवाले यज्ञमें यज्ञके साधन स्तोत्रोंसे यजमान बढ़ाते (अथा नः वस्यसः कृधि) ऐसे होकर तुम हमें कल्याणका भागी करो ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
१ २ ३ १ २
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे इन्दो ! यागेषु क्लिद्यमान सोम ! त्वं चित्रं नानाविधम् अश्विनम् अश्ववन्तञ्च विश्वायुं सर्वगामिनं रयिं धनं नः अस्मभ्यम् आ भर आहर । गतमन्यत् ॥ १० ॥

(इंदो) हे सोम ! तू (नः) हमारे अर्थ (चित्रं अश्विनं विश्वायुं रयिं नः आभर) नानाप्रकारके अश्वोंवाले सर्वगामी धनको हमें दे (अथ नः वस्यसः कृधिः) इसके अनन्तर हमें कल्याणका भागीकर ॥ १० ॥

२ ३ २ ३ १ १ १ १ २ ३ १ २र
तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
२ ३ २ २ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ १ ॥

ऋ० उचथ्यः । छ० गायत्री । दे० सोमः । तरत्समन्दीति चतुर्ऋचे द्वितीयसूक्ते-प्रथमा । मन्दी देवानां हर्षकरः स सोमः तरत् स्तोतृन् पाप्मनः सकाशात् तारयन् धावति दशपवित्रादधः क्षरति । तदेव दर्शयति-सुतस्य अभिषुतस्य अन्धसः देवानामन्नात्मकस्य सोमस्य धारा धावतीति । पुनरपि तदेवाहात्यन्तादरार्थं तरत्समन्दीधावति इति । यद्वास्या ऋचो यास्केनोक्तोऽर्थो द्रष्टव्यः यद्यथा-तरति स पापं सर्वं मन्दीयं स्तौति धावति गच्छत्यूर्ध्वां गतिं धारासुतस्यान्धसो धाराभिषुतस्य सोमस्य मन्त्रपूतस्य वाचा सुतस्य (निरु० १३, ६)-इति ॥ १ ॥

(मन्दी सः) देवताओंको हर्षदायक वह सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारता हुआ दशापवित्रसे नीचे गिरता है (सुतस्य अन्धसः धारा) अभिषव कियेहुए देवताओंके अन्नरूप सोमकी धारा (धावति) दशापवित्रसे नीचे गिरती है (मन्दी सः) देवताओंको हर्षदायक वह सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारताहुआ दशापवित्रसे नीचे टपकता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः ।

२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वसूनां धनानाम् उस्रा उत्सरणशीला प्रदात्री देवी द्योतमाना स्तूयमाना वा यस्य सोमस्य धारा मर्त्तस्य मनुष्यं यजमानम् अवसः रक्षितुं वेद जानाति। सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

(वसूनां उस्रा) सब प्रकारके धन देनेवाली (देवी) दिपतीहुई जिस सोमकी धारा (मर्त्तस्य अवसः वेद) यजमानकी रक्षा करनेको जानती है (सः मन्दी) वह देवताओंको आनन्द देनेवाला सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारता हुआ दशापवित्रसे नीचे गिरता है

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। 'ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः' ध्वस्रः कश्चिद्राजा तथा पुरुषन्तिश्च, तयोरुभयोरत्रेतरयोग-विवक्षया द्विवचनं द्रष्टव्यं सहस्राणि धनानां सहस्राणि आ दद्महे वयं प्रतिगृह्णीमः। तदस्माभिः प्रतिगृहीतं धनमुत्तममस्त्विति ऋषिः सोमं प्रार्थयत इति सोमस्य स्तुतिः। सिद्धमन्यत्। यथा अवत्सार एतयोर्धनानि प्रतिजग्राह एवं तरन्तपुरुमीढौ प्रतिजगृहतुः। तथा च शाट्यायनकम्-अथ ह वै तरन्तपुरुमीढौ वैदश्वौ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्यः बहु प्रतिगृह्य गरगिराविव मेनाते तौ ह स्मांगुल्या सातं प्रतिमृशाते तावकामयेतामसातत्ना विवेद सातंस्यादात्तमिवैव न प्रतिगृहीतमिति भावे तच्चतुर्ऋचमपश्यतांतरेण प्रत्यैनां तयोर्वैतयोरसातं सातमभवदात्तमिवैव न प्रतिगृहीतं स यः प्रतिगृह्य कामयेत इत्यादि ॥ ३ ॥

(ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः) ध्वस्र और पुरुषन्तिके (सहस्राणि) सहस्रों संख्याके धनको (आदद्महे) हम ग्रहण करते हैं। वह धन हमारे लिये शुभ हो (मन्दी सः) देवताओंको आनन्द पहुँचानेवाला वह सोम (तरत् धावति) यजमानोंको तारता हुआ चलाजाता है ॥ ३ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ ययोस्त्रिँशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
२ ३ २ ३ १ २
तरत्स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। ययोः ध्वस्र-पुरुषन्त्योः त्रिशतं त्रीणि शतानि सहस्राणि च तना वस्त्राणि आ दद्महे वयं प्रतिगृह्णीमः तयोरस्माभिः प्रतिगृहीतं तत् सर्वम् अप्रतिगृहीतमस्त्विति सोमम् ऋषिः प्रार्थयत इति सोमस्यैव स्तुतिः। गतमन्यत् ॥ ४ ॥

(ययोः) जिन ध्वस्र और पुरुषन्तिके (त्रिशतं सहस्राणि च) तीन सौ और सहस्र भी (तना) वस्त्रोंको (सादद्महे) हम स्वीकार करते हैं। हे सोम! वह सब हमें शुभ हो (मन्दी सः) देवताओंको आनन्ददायक वह सोम (तरत् धावति) स्तोताओंको पापसे तारताहुआ दशापवित्रसे नीचे गिरता है ॥ ४ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २

एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे।

३ १ २ ३ १ २

मदिन्तमस्य धारया ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः। छ० गायत्री। दे० सोमः। एते सोमा इति तृचं तृतीयं सूक्तम्—तत्र, प्रथमा। मदिन्तमस्य देवानां मादयितृतमस्य रसस्य सम्बन्धिन एते सोमा अभिषुताः सरूपाः गृणानाः स्तूयमानाः महे महते श्रवसे अस्माकं बलाय धारया असृक्षत गच्छन्ति ॥ १ ॥

(मदन्तिमस्य) देवताओंको परमानन्ददायक रसवाले (एते सोमाः) यह सोम (गृणानाः) स्तुति कियेजाते हुए (महे श्रवसे) हमारे बड़े भारी बलके लिये (धारया, असृक्षत) धारसे पात्रमें जाते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ ३ २ १ २

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि।

३ १ २ ३ १ २

सनद्वाजः परि स्रव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे सोम! वीतये देवानां भक्षणाय नृम्णा नृम्णानि धनवत् प्रियतराणि गव्यानि गो-सम्बन्धीनि क्षीरादीनि पुनानः पूयमानः सन् अभ्यर्षसि अभिगच्छसि। हे सोम! सनद्वाजः दीयमानान्नः त्वं परि परितः स्रव दशापवित्रादधः क्षर ॥ २ ॥

हे सोम! (वीतये) देवताओंके भक्षण करनेके लिये (नृम्णा गव्यानि) परमप्रिय गौके दूध घी आदिको (पुनानः अभ्यर्षसि) पवित्र करता हुआ पात्रमें जाता है (सनद्वाजः परिस्रव) अन्न देनेवाला तू दशापवित्रमेंको बरस ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः।
३ २ ३ १ २
गृणानो जमदग्निना ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। उत अपि च हे सोम! जमदग्निना जमदग्नि-नाम्ना ऋषिणा मया गृणानः स्तूयमान त्वं न अस्माकं गोमतीः गोभिर्युक्तानि परिष्टुभः परितः स्तोतव्यानि सर्वाणि इषः अन्नानि देहीत्यर्थः।

(उत) और हे सोम! (जमदग्निना गृणानः) जमदग्निसे स्तुति कियाजाता हुआ तू (नः) हमारे अर्थ (गोमतीः) गौओंसे युक्त (परिष्टुभः) सब ओरसे स्तुति करने योग्य (विश्वाः इषः) सकल अन्नों को (अर्ष) दे ॥ ३ ॥

इति सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इमᳬ स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा
३ १ २ ३ २३ ३ १ २ ३ १ २र
मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य सᳬसद्यग्ने
३ १ २र ३ १ २र
सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

ऋ० कुत्सः। छ० जगती। दे० अग्निः। इमं स्तोममिति तृतीयखंडे-प्रथम-तृचे,प्रथमा। अर्हते पूज्याय जातवेदसे जातानामुत्पन्नानां विदित्रे, जात-प्रज्ञाय जात-धनाय वा अग्नये मनीषया निशितया बुद्ध्या इमम् एतत्सूक्तरूपं स्तोमं रथमिव यथा तक्षा रथं संस्करोति तथा सम्महेम सम्यक् पूजितं कुर्मः। अस्याग्नेः संसदि सम्भजने नः अस्माकं प्रमतिः प्रकृष्टा बुद्धिः भद्रा हि कल्याणी समर्था खलु अतस्तया बुद्ध्या स्तुम इत्यर्थः। हे अग्ने! तव सख्ये अस्माकं त्वया सह सखित्वे सति वयं मारिषाम हिंसिता न भवामः अस्मान् रक्षेत्यर्थः। अर्हते—अर्ह पूजायाम् (भ्वा० प०) अर्ह प्रशंसायामिति (३, २, १३३) लटः शत्रादेशः शपः पित्त्वादनुदात्तत्वम् (३, १, ४) शतुश्चादुपदेशाल्लसार्वधातुकस्वरेणाद्युदात्तत्वम् (६, १, १८६)। महे—मह पूजायाम् (भ्वा० प०) रिषाम रिष हिंसायां (भ्वा० प०)व्यत्ययेन शः (३, १, ८५)। तव-युष्मदस्मदोर्ङसि (६,१, २११)-इत्याद्युदात्तत्वम् ॥ १ ॥

(अर्हते जातवेदसे) पूजनीय अग्निके अर्थ (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धिसे (इमं स्तोमम्) इस सूक्तरूप स्तोत्रको (रथं इव) जैसे बढ़ई रथको संस्कारयुक्त करता है तैसे (संमहेम) सम्यक् प्रकारसे पूजित करते हैं (अस्य संसदि) इस अग्निकी सम्यक् प्रकार आराधना करने में (नः प्रमतिः) हमारी श्रेष्ठ बुद्धि (भद्रा हि) कल्याणरूप है इसमें कुछ सन्देह नहीं है (अग्ने) हे अग्निदेव (तव सख्ये) हमारी तुम्हारे साथ मित्रता होने पर (वयं मा रिषामः) हम किसीसे हिंसा न पावें अर्थात् हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भरामेध्मं कृणवामा हवीꣳषि ते चितयन्तः पर्व-
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
णा पर्वणा वयम् । जीवातवे प्रतराꣳ साधया
१ २र ३ १ २र ३ १ २र
धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! त्वद्यागार्थम् इध्मम् इन्धनसाधनम् एकविंशति-द्रव्यात्मकं समित् समूहं भराम सम्भराम सम्पादयाम । तदनु ते तुभ्यं हवींषि चरुपुरोडाशादिलक्षणान्यन्यानि वयं कृणवाम करवाम। किं कुर्वतः ? पर्वणा पर्वणा प्रतिपक्षमावृत्ताभ्यां दर्शपूर्णमासाभ्यां चितयन्तः त्वां प्रज्ञापयन्तः । स त्वं जीवातवे अस्माकं जीवनौषधाय चिरकालावस्थानाय धियः कर्माणि अग्निहोत्रादीनि प्रतरां प्रकृष्टतरं साधय निष्पादय। अन्यत् समानम् ॥ चितयन्तः—चिती संज्ञाने (भ्वा० प०) सञ्ज्ञापूर्वस्य विधेरनित्यत्वात् लघूपध-गुणाभावः । पर्वणा-नित्यवीप्सयोः (८, १, ४) इति वीप्सायां द्विर्भावः तस्य परमाम्रेडितम् (८, १, २)-इति परस्य म्रेडित-सञ्ज्ञायाम् अनुदात्तत्वम् (८, १, १९) । प्रतरां तरबन्तात् प्रशब्दात् क्रियाप्रकर्षे वर्त्तमानात् किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे (५, ४, ११)-इत्याम्-प्रत्ययः ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्ने ! (इध्मं भराम) तेरे यागके लिये इक्कीस पदार्थों की समिधाओंके समूहको सम्पादन करते हैं (वयम्) हम (पर्वणा पर्वणा) पूर्णिमा और अमावस्याको दर्शपौर्णमास यागोंके द्वारा (चितयंतः) तुम्हें ज्ञापन करते हुए (ते) तुम्हारे अर्थ (हवींषि कृणवाम) चरु पुरोडाश आदि हवियोंको करते हैं, वह तू (जीवातवे) हमारे चिरकाल जीवनके लिये (धियः प्रतरां साधय) अग्निहोत्र आदि कर्मोंको उत्तमताके साथ सिद्ध करो (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) हे अग्निदेव!

हमारी तुम्हारे साथ मित्रता होने पर हम किसीसे हिंसित न हों ॥२॥

३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३   २ ३   २ ३ २ ३ १
शकेम त्वा समिधꣳ साधया धियस्त्वे देवा हवि-
२३ १ २   १ २ ३ १   २२३ २
रदन्त्याहुतम् । त्वमादित्याꣳ आ वह तान् ह्यू३
१   २ २ ३ १   २ २   ३ १ २ २
श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! त्वा त्वां समिधं सम्यगिद्धं कर्त्तुं शकेम शक्ता भूयास्म । त्वञ्च धियः अस्मदीयानि दर्शपूर्णमासादीनि कर्माणि साधय निष्पादय । त्वया हि सर्वं निष्पद्यन्ते यस्मात् त्वे त्वयि अग्नावाहुतम् ऋत्विग्भिः प्रक्षिप्तम् चरुपुरोडाशादिकं हविः देवा अदन्ति भक्षयन्ति तस्मात्त्वं साधयेत्यर्थः । अपि च त्वम् आदित्यान् अदितेः पुत्रान् सर्वान् देवान् आवह अस्मद् यज्ञार्थमानय । तान् हि इदानीं वयम् उश्मसि कामयामहे । अन्यत् पूर्ववत्॥ शकेम—शक्लृ शक्तौ (भ्वा०प०) लिङ्याशिष्यङ् (३, १, ८६) अङुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे (६, १, १८६) अङ एव स्वरः शिष्यते। समिधम्—ञिइन्धी दीप्तौ (रु० आ०) अस्मात् सम्पदादिलक्षणं कर्मणि क्विप् । त्वे—सुपां सुलुगिति (७,१,३९) सप्तम्येकवचनस्य शे-आदेशः । उश्मसि—वश कान्तौ (अदा० प०) इदन्तोमसि (७, १, ४६) अदादित्वाच्छपो लुक् (२, ४, ७२) ग्रहिज्येत्यादिना सम्प्रसारणम् (६, १, १६) ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (त्वा समिधं शकेम) हम तुम्हें सम्यक् प्रकार प्रज्वलित कर सकें। तुम भी (धियः साधय) हमारे दर्शपूर्णमास आदि कर्मों को सिद्ध करो (त्वे आहुतम् हविः) तुझ अग्निमें ऋत्विजोंके द्वारा होमे हुए चरु पुरोडाश आदि हविको (देवाः अदन्ति) देवता भक्षण करते हैं (त्वं आदित्यान आवह) तुम अदितिके पुत्र सब देवताओंको हमारे यज्ञमें लाओ (तान् हि उश्मसि) उनको इस समय हम चाहते हैं (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषामः) हे अग्निदेव ! हमारी तुम्हारे साथ मित्रता होने पर हम किसीसे हिंसित न हों ॥ ३ ॥

१ २ ३   २ ३ १ २   ३ १ २   ३ १ २
प्रति वाꣳ सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।
३ १ २   ३ २ ३
अर्य्यमणꣳ रिशादसम् ॥ १ ॥

ऋ० वशिष्ठः । छं० गायत्री । दे० आदित्यः । अथ द्वितीयतृचे—प्रथमा । हे मित्रावरुणौ ! मित्रम् त्वाम् वरुणं च, वां युवां रिशादसम् शत्रूणामत्तारम् अर्य्यमणं च प्रति प्रत्येकम् गृणीषे स्तुवे । कदा ? इति उच्यते-सूरे सूर्य्य देवे उदिते सति प्रातरित्यर्थः ॥ १ ॥

हे मित्रावरुण देवताओं ! (सूरे उदिते) सूर्य देवका उदय होने पर अर्थात् प्रातःकालके समय (मित्रम्) तुझ मित्र देवताको (वरुणम्) वरुणको (वाम्) तुम दोनोंको (रिशादसम्) शत्रुओंको खाने वाले (अर्यमणम्) अर्यमा देवताका (प्रति गृणीषे) प्रत्येककी स्तुति करता हूँ

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे ।

३ १ २र ३ १ २

इयं विप्रा मेधसातये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हिरण्यया हित—रमणीयेन राया धनेन सहितया अवृकाय आहस्याय शवसे अस्माकम् बलाय इयम् इदानीम् क्रियमाणा मतिः स्तुतिर्भवत्विति शेषः ॥ हिरण्यया-इत्यत्र सुपां सुलुगिति (७, १, ३९) तृतीयैकवचनस्य याजादेशः किञ्च हे विप्राः प्राज्ञाः ! इयम् एव स्तुतिः मेधसातये यज्ञ-लाभाय च भवतु ॥ २ ॥

(इयं मतिः) इस समय की हुई यह हमारी स्तुति (हिरण्यया) हितकारी और रमणीय (राया) धनसहित (अवृकाय शवसे) किसी से खण्डित न होनेवाले बलकी प्राप्तिके लिये हो (विप्राः) हे विप्रों ! (इयम्) यह स्तुति (मेधसातये) हमारी यज्ञप्राप्तिके लिये हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।

२ ३क २र

इषथ्ँ स्वश्च धीमहि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे देव वरुण ! ते तव स्तोतारः स्याम समृद्धा भवेम न केवलं वयमेव यजमानाः किन्तु सूरिभिः स्तोतृभिः ऋत्विग्भिः सह, तथा हे मित्र ! देव ! ते वयं सूरिभिः सह स्याम भवेम । किञ्च इषम् अन्नं स्वश्च स्वकञ्च धीमहि धारयामहे ॥ ३ ॥

(देव वरुण) हे वरुणदेव ! (सूरिभिः सह) ऋत्विजों सहित (ते) तेरे स्तोता हम (स्याम) सम्पत्तिमान् हों (मित्र) हे मित्र (ते) तेरे

स्तोता हम ऋत्विजों सहित सम्पत्तिमान् हों (इषम् च स्वः धीमहि) अन्न और स्वर्गको वा सुवर्णको धारण करें ॥ ३ ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

ऋ० त्रिशोकः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृचात्मके तृतीय—सूक्ते—प्रथमा । हे इंद्र ! त्वम् विश्वाः सर्वाः द्विषः द्वेष्टीः शत्रुसेनाः अप भिन्धि विदारय । तथा बाधः हिंसकान् मृधः संग्रामान् त्वं परि जहि परिभावय । हे सोम ! वासकेन्द्र ! स्पार्हं स्पृहणीयं द्वेष्ट्रीणां वसु धनम् यदस्ति तत् आभर ॥ १ ॥

हे इंद्र ! तुम (विश्वाः द्विषः अपभिन्धि) सकल शत्रुसेनाओंको विदीर्ण करो (बाधः मृधः परिजहि) हिंसक संग्रामोंका तुम तिरस्कार करो (स्पार्हं वसु) शत्रुओंका जो ललचाने वाला धन है (तत् आभर) वह हमें दो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र३ २ ३ १ २
यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ते त्वां विभक्ति—व्यत्ययः (३, १, ८५) दत्तस्य दत्तं भूरि बहु यस्य यत् धनम् सर्वत्र कर्म्मणि षष्ठी वेदितव्या । विश्वं सर्वं तद्धनम् आनुषक्—इति आनुपूर्व्या सततं सर्वो मनुष्यो वेदति जानाति तत् स्पार्हं स्पृहणीयं वसु आभर ॥ २ ॥

हे इंद्र (ते दत्तस्य भूरेः यस्य) तुम्हें दिये हुए बहुतसे जिस (विश्वम्) सकल धनको (आनुषक् वेदति) मनुष्य आनुपूर्वीसे निरंतर जानता है (तत् स्पार्हं वसु) उस चाहने योग्य धनको (नः आभर) हमें दो ॥२॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
१ २ ३ १ २र
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! त्वया च वीडौ दृढे परैः कम्पयितुमशक्ये

यत् धनं पराभृतं विन्यस्तं यत् च स्थिरे स्वयमचले पराभृतं यत् च विपर्शाने विमर्शन—क्षमे पराभृतं तत् स्पार्हं स्पृहणीयम् वसु आ भर आहर ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! तुमने (यत् वीळौ) जो धन दूसरोंसे विचलित न होने वाले मनुष्योंमें (यत् स्थिरे) जो धन स्वयम् अचल मनुष्यमें (यत विपर्शाने) जो धन विचारशील मनुष्यमें (पराभृतम्) स्थापन किया है(तत् स्पार्हं वसु नः आभर)वह इच्छा करने योग्य धन हमें दो

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।

१ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

ऋ० श्यावाश्वः । छ० गायत्री । दे० इंद्राग्नी । अथ तृचात्मकम् चतुर्थं सूक्तम्—तत्र प्रथमा । इंद्राग्नी ! युवाम् यज्ञस्य ज्योतिष्टोमादेः ऋत्विजा स्थः ऋत्विजौ ऋतौ काले काले यष्टव्या भवथः । अतो वाजेषु संग्रामेषु कर्मसु यज्ञात्मकेषु च सस्नी संस्नातौ शुद्धौ सन्तौ तस्य तम् वां हे इंद्राग्नी ! बोधतम् अथवा तस्य मम स्तुतिं जानीतम् ॥ १ ॥

(इंद्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओं ! तुम (हि) निश्चय (यज्ञस्य ऋत्विजाः स्थः) ज्योतिष्टोम आदि यज्ञके समय समय पर यजन करने योग्य हो (वाजेषु कर्मसु) संग्रामोंमें और यज्ञरूप कर्मोंमें (सस्नी) शुद्ध होते हुए (तस्य बोधतम्) तिस स्तुतिको जानो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।

१ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्राग्नी ! तोशासा शत्रून् हिंसन्तौ रथयावाना रथेन गच्छन्तौ वृत्रहणा वृत्रस्य हन्तारौ अपराजिता केनाप्यपराजितौ तस्य तं मां बोधतम् ॥ २ ॥

(तोशासा रथयावाना वृत्रहणा अपराजिता इंद्राग्नी) शत्रुओंको मारने वाले रथमें यात्रा करने वाले वृत्रासुरके नाशक किसीसे भी पराजय न पाये हुए हे इंद्र और अग्नि देवताओं (तस्य बोधतम) तिस मेरी स्तुतिको जानो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे इंद्राग्नी ! वां युवाम् उद्दिश्य नरः यज्ञस्य नेतारः अद्रिभिः ग्रावभिः मदिरम् मदकरं मधु सोमात्मकम् अमृतम् अधुक्षन् अपूरयन्। सिद्धमन्यत् ॥ ३ ॥

(इंद्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओं ! (वाम्) तुम्हारे अर्थ (अद्रिभिः मदिरं मधु अधुक्षन्) ऋत्विजोंने पाषाणोंसे मदकारी सोम रूप अमृत को निचोड़ कर पात्रोंमें भरा है (तस्य बोधतम्) तिस मेरी स्तुतिको तुम जानो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ १ ॥

ऋ० कश्यपः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथेन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति चतुर्थखण्डे—तृचात्मके प्रथम—सूक्ते प्रथमा। हे इन्दो ! सोम ! मधुमत्तमः अतिशयेन मधुमान् त्वम् अर्कस्य अर्चनीयस्य यज्ञस्य योनिम् स्थानम् आसदम् उपवेष्टुम् मरुत्वते इंद्राय इंद्रार्थम् पवस्व क्षर ॥ १ ॥

(इन्दो) हे सोम (मधुमत्तमः) अति मधुरता युक्त (अर्कस्य योनिम् आसदम्) पूजनीय यज्ञके स्थानमें बैठनेको (मरुत्वते इंद्राय पवस्व) मरुतों सहित इंद्रके अर्थ बरस ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ।
१ २ ३ १ २
सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे सोम ! तं पवमानं त्वा त्वां धर्णसिं धर्त्तारं विप्राः प्राज्ञाः वचोविदः स्तोतारः परिष्कृण्वन्ति अलंकुर्वन्ति। अपि च त्वा त्वां आयवः मनुष्याः सम्मृजन्ति सम्यक् शोधयन्ति ॥ २ ॥

हे सोम ! (तं धर्णसिं त्वाम्) तिस धारण करने वाले तुझको

(विप्राः वचोविदः) बुद्धिमान् स्तोता (परिष्कृण्वन्ति) सुशोभित करते हैं (आयवः त्वा सम्मृजन्ति) मनुष्य तुझको भले प्रकार शोधन करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे कवे ! क्रान्तकर्मन् सोम ! पवमानस्य क्षरतः ते तव रसं मित्रः अर्य्यमा च वरुणः च मरुतः च एते सर्वे देवाः पिबन्तु । ३ ।

(कवे) हे कर्मसाधक सोम ! (पवमानस्य ते रसम्) संस्कार कियेहुए तेरे रसको (मित्रः) मित्र देवता (अर्यमा) अर्यमा देवता (वरुणः) वरुण देवता (मरुतः) मरुत् देवता (पिबन्तु) पियें ॥३॥

३ १ २ ३ १ २र
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० बृहती । दे० सोमः । मृज्यमानेति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम्—तत्र प्रथमा । हे सुहस्त्या ! हस्ते भवा हस्त्या अंगुल्यः शोभनांगुलिकसोम ! मृज्यमानः शोध्यमानः त्वं समुद्रे अन्तरिक्षे कलशे वा वाचं शब्दम् इन्वसि प्रेरयसि । किञ्च हे पवमान ! पूयमान सोम ! पिशङ्गं हिरण्यैः पिशङ्गवर्णं बहुलं प्रभूतं पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं रयिं धनम् अभ्यर्षसि स्तोतॄणामभि क्षरसि प्रयच्छसि ॥ १ ॥

(सुहस्त्या) हे सुन्दर अंगुलियोंके सुधारे हुए सोम (मृज्यमानः, समुद्रे वाचम् इन्वसि) शोधन कियाजाताहुआ, तू कलशमें शब्दको प्रेरणा करता है (पवमान) हे पूयमान सोम ! (पिशङ्गं पुरुस्पृहं बहुलं रयिं अभ्यर्षसि) तुम स्तोताओंको सुवर्णके कारण पीतवर्ण अनेकोंके चाहने योग्य बहुतसा धन देते हो ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
३ १ २ ३ १ २र ३ १
देवानाᳬँ सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो

२
अर्षसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयं सोमः वृषः वृषभसदृशः सन् पुनानः अभिषूयमाणः सर्वं शोधयत अव्यये अविमये वारे वाले पवित्रे पवमानः पूयमानः सन् वने वननीये उदके काष्ठे कलशे वा अचिक्रदत् शब्दमकरात् । अथ प्रत्यक्षवादः । हे सोम ! पवमान ! त्वं गोभिः गव्यैः क्षीरादिभिः अञ्जानः अञ्जयमानः सन् निष्कृतं संस्कृतं देव नां स्थानम् अर्षसि गच्छसि ॥ २ ॥

(वृषः पुनानः) मनोरथ पूर्ण करनेवाला सोम संस्कार कियाजाता हुआ सबको शुद्ध करे (अव्यये वारे पवमानः) ऊनके दशापवित्रमें छानाजाता हुआ (वने अचिक्रदत्) जलमें शब्द करता हुआ (सोम) हे सोम (पवमान) पूयमान तू (गोभिः अञ्जानः) गौके दुग्ध घृतादि से मिलाया जाताहुआ (निष्कृतम् अर्षसि) देवताओंके संस्कार किये स्थानको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
१ २ ३ १ २
समादित्येभिरख्यत ॥ १ ॥

ऋ० अमहीयुः । छ० गायत्री । दे० सोमः । एतमुत्यमिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्-तत्र प्रथमा । सिंधुमातरं यस्य सोमस्य सिन्धवो नव मातरो भवन्ति । त्यं तम् एतम् इमम् सोमं दश क्षिपः दशसंख्याका अङ्गुलयो मृजन्ति शोधयंति । अपि च सोऽयम् आदित्येभिः आदित्यैः समख्यत सङ्गच्छते ॥ १ ॥

(सिन्धुमातरम्) नौ समुद्र हैं माता जिसकी ऐसे (त्यं एतम्) तिस इस सोमको (दश क्षिपः मृजन्ति) दश अंगुलियें शोधती हैं और यह (आदित्येभिः समख्यत) आदित्योंके साथ मिलता है ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
१ २र ३ १ २
सꣳ सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सुतः अभिषुतः सोमः पवित्रे इन्द्रेण समम् एति सङ्ग-

च्छते । उत अपि च वायुना समेति सूर्य्यस्य रश्मिभिः किरणैरपि समेति

(सुतः) अभिषव किया जाता हुआ सोम (पवित्रे) कलशमें (इन्द्रेण सम् एति) इन्द्रके साथ युक्त होता है (उत वायुना आ) और वायुके साथ युक्त होता है (सूर्यस्य रश्मिभिः सम्) सूर्यकी किरणोंके साथ मिलता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ १ २

स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।

१ २ ३ १ २र

चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! मधुमान् मधुररसः चारुः कल्याण-रूपश्च सोऽभिषुतः त्वं नः अस्माकम् यज्ञे भगाय भगाख्याय देवाय वायवे पूष्णे च मित्रे मित्राय देवाय वरुणाय च पवस्व क्षर ॥ ३ ॥

हे सोम ! (मधुरः चारुः सः) मधुर रसवाला कल्याणरूप वह तू (नः) हमारे यज्ञमें (भगाय वायवे पूष्णे मित्रे वरुणे च पवस्व) भग वायु पूषा मित्र और वरुण देवताके अर्थ वरस ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।

३ २ ३ २ ३ २ २

क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ पञ्चमे खण्डे-रेवतीर्न-इति तृचात्मकं सूक्तम्—तत्र प्रथमा । क्षुमन्तः अन्नवन्तः याभिः गोभिः सह मदेम हृष्येम इंद्रे सधमादे अस्माभिः सह हर्षयुक्ते सति नः अस्माकं ता गावः रेवतीः क्षीराज्यादिधनवत्यः तुविवाजाः प्रभूत-बलाश्च सन्तु ॥ रेवती—रयि—शब्दात् मतुपि रयेर्मतौ बहुलम्(६, १, ३४ वा०)-इति सम्प्रसारणम् परपूर्वत्वे छन्दसीरः (८, २, १५)—इति मतुपो वत्वम् वाच्छन्दसि (६, १, १०६)-इति पूर्वसवर्णदीर्घः रेशब्दाच्च मतुप उदात्तत्वं वक्तव्यम् (६, १, १७६ वा०)—इति रे-शब्दादुत्तर-स्यापि भवतीति पूर्वमेवोक्तम् । सधमादे—मद तृप्तियोगे चौरादिकः सह मादयतीति सधमादः सधमादस्थयोश्छन्दसि (६, ३, ९६)-इति सह-शब्दस्य सध आदेशः थाथादिना (६, २, १४४)—उत्तर-

पदान्तोदात्तत्वे प्राप्ते परादिश्छन्दसि बहुलं (६, २, १९९)–इति उत्तर पदाद्युदात्तत्वम्। तुविवाजाः बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८,२,१)। क्षुमन्तः–टु क्षु रु कु शब्दे (अदा० प०) अस्मात् क्विपितुगभावश्छन्दसः ह्रस्वनुड्भ्यां मतुप् (६, १, १७६)–इति मतुप उदात्तत्वम्। मदेम मदी हर्षे (दि० प०) व्यत्ययेन शप् अदुपदेशाल्लसार्वधातुकानुदात्तत्वे शपः पित्त्वादनुदात्तत्वम् ततो धातुस्वरः शिष्यते ॥ १ ॥

(क्षुमन्तः) अन्नवान् हम (याभिः) जिन गौओंके साथ (मदेम) आनंद भोगते हैं (इंद्रे सधमादे) इंद्रके हमारे साथ हर्षयुक्त होने पर (नः) हमारी वह गौएँ (रेवतीः तुविवाजाः) घी दूध आदि वाली और बलवाली हों ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
आ घ त्वावां त्मना युक्त स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः
३ २उ ३ २ ३क २र
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे धृष्णो ! धार्ष्ट्ययुक्तेन्द्र ! त्वावान् त्वत्सदृशो देवताविशेषः त्मना आत्मना अस्मदनुग्रहबुद्धया युक्तः ईयानः अस्माभिर्याच्यमानः स्तोतृभ्यः स्तोतॄणामनुग्रहाय तदभीष्टमर्थं घ अवश्यम् आ ऋणोः आनीय प्रक्षिपतु। तत्र दृष्टान्तः-चक्र्योः रथस्य चक्रयोः अक्षन्न यथा अक्षं प्रक्षिपति तद्वत्॥ त्वावान् वतुप्प्रकरणे युष्मदस्मद्भ्यां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम् (५, २. ९४ वा०) इति वतुप् प्रत्ययोत्तरपदयोश्च (७, २, ९८)—इति मपर्य्यन्तस्य त्वादेशः आ सर्वनाम्नः (६,३,९१) इति दकारस्यात्वं वतुपः पित्त्वादनुदात्तत्वे (३,१,४) प्रातिपदिकस्वरः शिष्यते। त्मना-मंत्रेष्वाङ्यादेरात्मनः (६,४, १४१)–इत्याकार-लोपः। धृष्णो–ञि धृषा प्रागल्भ्ये असिगृधि-धृ षि क्षिपेः क्नु आमन्त्रितानुदात्तत्वम्। ईयानः ईङ् गतौ (दि०आ०) छन्दसि लिट् (३,२,१०५) तस्य लिटः कानज्वा (३,२,१०७)–इति कानजादेशः अचिश्नुधातु (६,४,७७) इत्यादिना इयङादेशः चितः (६, १, १६३)–इत्यन्तोदात्तत्वम्। ऋणोः ऋण गतौ (तना० उ०) लङि व्यत्ययेन तिपः सिपि (३, १, ८५) इतश्च (३, ४, ९७)–इतीकारलोपः तनादिकृञ्भ्य उः (३, १, ७९) सार्वधातुकगुणः (७, ३, ८४) बहुलञ्छन्दस्यमाङ्योगेऽपि—इत्यडागमाभावः विकरणस्वरेणान्तोदात्तत्वम्। अक्षम्—अक्षस्यादेवनस्य

(फि० २, १२)-इत्याद्युदात्तत्वम् । चक्रयोः-अकारस्येकारश्छान्दसः (३, १ ८५) ॥ २ ॥

(धृष्णो) हे धृष्टतायुक्त इंद्र ! (त्वावान्) तुझसा देवता (त्मना युक्तः) हमारे ऊपर अनुग्रह बुद्धिसे युक्त होकर (ईयानः) हमारा याचना किया हुआ (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके ऊपर अनुग्रह करनेको उनके इच्छित पदार्थको (घ आ ऋणोः) अवश्य ही लाकर डालै (चक्रयोः अक्षं न) जैसे कि रथके पहियोंमें धुरी डालते हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २र ३ २
आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
३ २उ ३ १ २र
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे शतक्रतो ! इंद्र ! यत् दुवः धवं कमितार्थरूपम् स्तोतृभिः आसव्यमस्ति तं कामं जरितृणां स्तोतृमनुग्रहाय आ ऋणोः आनीय प्रक्षिपसि । तत्र दृष्टान्तः—शचीभिः कर्मभिः शकटोचित-व्यापार-विशेषैः अक्षं न यथा अक्षं प्रक्षिपति तद्वत् । शचीभिः-शची-शब्दः शार्ङ्गरवादित्वात् (४,१,७३) ङीबन्तत्वादाद्युदात्तः (३,१,४) ३

(शतक्रतो) हे इंद्र ! (यत् दुवः कामम्) जो इच्छितधनकी प्राप्ति रूप स्तोताओंकी कामना है उसको (जरितृणाम्) स्तोताओंके ऊपर अनुग्रह करनेको (आऋणोः) लाकर डालो (शचीभिः अक्षं न) जैसे कि गाड़ीके योग्य व्यापारोंसे धुरीको लाकर डालते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
२ ३ ३. १ २
जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥ १ ॥

ऋ० मधुच्छन्दः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । सुरूपकृत्नुमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । सुरूपकृत्नुं शोभनरूपोपेतस्य कर्मणः कर्त्तारमिन्द्रम् ऊतये अस्मद्रक्षणार्थम् द्यविद्यवि प्रतिदिने जुहूमसि आह्वयामः ॥ द्यो-शब्दः प्रातिपदिक-स्वरेणान्तोदात्तः (फि० १, १) नित्यवीप्सयोः (८, १, ४)—इति द्विर्भावः । तस्य परमाम्रेडितम् (८, १, २) अनुदात्तञ्च (८, १, ३) द्वितीयानुदात्तत्वम् । जुहूमसि—इत्यत्र इदन्तोमसि (७, १, ४६)—इति इकार आगमः,

प्रत्यय-स्वरेण (३, १, ३) इकार उदात्तः आह्वाने दृष्टान्तः—गोदुहे गोधुगर्थं गां दोग्धीति गोधुक्, सत्सु द्विषेत्यादिना (३, २, ३१) क्विप्, कृदुत्तरप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १३९) सुदुघाम् इव सुष्ठु दोग्ध्रीं गामिव यथा लोके यो दोग्धा तदर्थं तस्य आभिमुख्येन दोहनीयां गामाह्वयन्ति तद्वत् सुष्ठु दुग्धे इति सुदुघा, दुहः कप्घश्च (३,२, ७०)—इति कप्प्रत्ययः हकारस्य च घकारः, कित्त्वात् गुणाभावः (१, १, ५) कपः पित्त्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरेणोकार उदात्तः (६, १, १६२) ॥ १ ॥

(सुरूपकृत्नुम्) सुन्दररूपयुक्त कर्मके कर्त्ता इंद्रको (ऊतये) अपनी रक्षाके लिये (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन (जुहूमसि) आह्वान करते हैं (गोदुहे सुदुघां इव) जैसे गौएं दुहने वालेके लिये सुन्दर दूध देने वाली गौओंको पुकारते हैं ॥ १ ॥

१२ ३ २३१ २३ १२
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
३२उ ३२३ १२
गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोमपाः सोमस्य पातरिन्द्र ! सोमं पातुं नः अस्मदीयानि सवना सवनानि त्रीणि उप समीपे आ गहि आगच्छ सवना—सूयते सोम एष्विति सवनानि सुपो डादेशः (७, १ ३९) टिलोपश्च (६, ४, १४३) लिति (६, १, १९३)—इति प्रत्ययात् पूर्वस्याकारस्य उदात्तत्वम् । गहि-इत्यत्र गमेः बहुलञ्छन्दसि (२,४,७३) इति शपो लुक् हेर्ङित्वादनुदात्तोपदेशेत्यादिना (६, ४, ३७) मकारलोपः, अतो हेः (६, ४, १०५)—इत्याभीय--शास्त्रीये लुकि कर्त्तव्ये असिद्धवदत्राभात् (६, ४ २२)-इति आभाच्छास्त्रीयो मकार-लोपोऽसिद्धवद् भवति । आगत्य च सोमस्य सोमं पिब, रेवतः धनवतः तव मदः हर्षः गोदा इत् गोप्रद एव, त्वयि हृष्टे सति अस्माभिर्गावो लभ्यन्त इत्यर्थः ॥ २ ॥

(सोमपाः) हे सोम पीनेवाले इंद्र ! सोम पीने को (नःसवना उप आगहि) हमारे तीनों सवनोंके समीप आओ (सोमस्य पिब) सोम को पियो (रेवतः मदः) धनवान् तुम्हारा प्रसन्न होना (गोदा इत) गोओंकी प्राप्ति कराने वाला ही है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।

२ ३ १ २ ३ १ २
मा नो अति ख्य आगहि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया।अथ सोमपानानन्तरं हे इन्द्र ! ते तव अन्तमानाम् अंतिकतमानामतिशयेन तव समीपवर्त्तिनां सुमतीनां शोभन-मति-युक्तानां शोभन-प्रज्ञानां पुरुषाणां मध्ये स्थित्वा विद्याम वयं त्वां जानीयाम यद्वा, सुमतीनां शोभन-बुद्धीनां कर्मानुष्ठान-विषयाणां लभार्थमित्यध्याहारः बहुव्रीहिपक्षे पूर्वपद-प्रकृति-स्वरापवादो नञ् सुभ्याम् (६, २, १७२)-इत्युत्तर-पदान्तोदात्तः। कर्मधारय-पक्षेऽपि अव्ययंपूर्वपद-प्रकृति-स्वरापवाद-कृत्स्वरेणान्तोदात्तत्वैव (६, २, १३९)। अतो मतुपि ह्रस्वादन्तोदात्ताच्च सुमतिशब्दात् परस्य नामो नाम-अन्यतरस्याम् (६, १, १७७)-इत्युदात्तत्वम्। त्वमपि नः अस्मान् अति अतिक्रम्य माख्यः अ येशं त्वत्स्वरूपं मा प्रकथय ख्या प्रकथने (अदा० प०) इत्यस्य लुङि अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् (३, १, ५२)। आगहि गमे शपो लुकि ङ्कित्वादनुदात्तोपदेशेति (६, ४, ३७) मकारलोपस्यासिद्धवदत्राभादिति (६, ४, २२) असिद्धवद्भावात् अतो हेः (६, ४, १०५)—इति लुङ् न भवति ॥ ३ ॥

(अथ) सोमपानके अनन्तर हे इन्द्र (ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम) तेरे अत्यन्त समीप वर्त्तमान सुन्दर बुद्धिवाले पुरुषों में स्थित होकर हम तुम्हें जानें तुम भी (आगहि) आओ और (नः अति) हमें छोड़कर (माख्यः) हमसे अन्य पुरुषसे अपना स्वरूप मत कहो ॥३॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ १ ३ १ २
उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
त्वा महीनाᳬं सम्राजं चर्षणीनाम् । देवी

२र ३ १ २र
जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ १ ॥

ऋ० मान्धाता । छ० महापंक्तिः । दे० इन्द्रः ! उभे यदिन्द्र रोदसीति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तं तत्र प्रथमा हे इन्द्र ! उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ यत् यः त्वम् आ पप्राथ स्वतेजसा आपूरयसि प्रा पूरणे, आदादिकः (५०) छान्दसो लिट् (३, २, १०५) उषा इव यथा उषाः स्व-भासा सर्वं जगदापूरयति तद्वत् त्वं महीनां महतां देवानामपि महान्तम् अधिकं चर्षणीनां मनुष्याणामपि सम्राजम् ईश्वरम्-इंद्रं

त्वा त्वाम् देवी देवनशीला जनित्री साधु-जनयित्री अदितिः अजीजनत अतः कारणात् सा भद्रा कल्याणी प्रशस्ता जाता जनेर्ण्यन्तात् साधु-कारिणि तृन् (३, २, १३४) जनिता मंत्रे (६, ४, ५३)—इति इडादौ णिलोपो निपात्यते, ऋन्नेभ्य इति ङीप् (४, १, ५) ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनों को (यत् आपप्राथ) जो तू पर्ण करता है (उषा इव) जैसे कि उषा अपने प्रकाशसे सब जगत्को भर देती है (महीनां महांतम्) बड़ोंके बड़े (चर्षणीनां सम्राजं त्वा) मनुष्योंके ईश्वर तुमको (देवी जनित्री) अदिति देवीरूपा माता (अजीजनत्) उत्पन्न करती हुई। इस कारण वह (भद्रा, जनित्री अजीजनत्) श्रेष्ठ माता हुई ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १

पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः । देवी

२र ३ १ २र

जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । दीर्घम् आयतम् अंकुशं सृणिं यथा बिभर्षि एवमायतां शक्तिं हे मन्तुमः ! मन्तु ज्ञाने तद्वान् ! मतुवसो रुः (८,३,१)इति सम्बुद्धौ नकारस्य रुत्वम् हे इंद्र ! बिभर्षि धारयसि । डु भृञ् धारण-पोषणयोः जौहोत्यादिकः श्लौ भृञामित् (७, ४, ७६)–इत्यभ्यासस्येत्वम् हे मघवन् धनवन्निन्द्र ! यथा पूर्वेण देहस्य पूर्वभागे वर्त्तमानेन पदा पादेन अजः छागः वयां शाखां आकर्षति तथा पूर्वोक्तया शक्त्या आकृष्यामः शत्रून् नियच्छसि—यमेर्लेट्यडागमः बहुलं छन्दसि (२, ४ ७३)—इति शपो लुक् । गतमन्यत् ॥ २ ॥

(मन्तुम) हे ज्ञानवान् इंद्र ! (दीर्घं अंकुशं यथा) बड़े अंकुशकी समान (शक्तिं बिभर्षि) शक्ति नामक शस्त्रको धारण करते हो (मघवन्) हे धनवान् इंद्र (यथा अजः पूर्वेण पदा) जैसे बकरा अगले चरणसे (वयां, यमः) शाखाको खेंचता है तैसे तुम शत्रुओंको खेंचते हो (देवी जनित्री अजीजनत्) अदिति देवीने तुमको प्रकट किया है (भद्रा जनित्री अजीजनत्) इस कारण वह श्रेष्ठ माता हुई ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २

अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम् ।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्मथ्ँ अभिदासति ।

३ १ २र ३ १ २र

देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । दुर्हणायतः दुःखप्रद-हरणमाचरतः मर्त्तस्य मनुष्यस्य शत्रोः स्थिरं दृढं बलम् अव तनुहि अवनतं नीचीनं कुरु । स्म इति पूरकः । तम् शत्रुम् ईम एनम् अधस्पदं पादयोरधस्ताद्वर्त्तमानं कृधि कुरु । यः शत्रुः अस्मान् अभिदासति उपक्षिपति । समानमन्यत् ॥ ३ ॥

(दुर्हणायतः मर्त्तस्य) दुःखदायक हरण करनेवाले मनुष्यके शत्रुके (स्थिरं अवतनुहि) दृढ बलको क्षीण करो (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें मारना चाहता है (तम् ईम्) उस इस शत्रुको (अधस्पदं कृधि) अपने चरणके नीचे दबा हुआ करो (देवी जनित्री अजीजनत्) तुम्हें अदिति देवी रूपा माताने प्रकट किया है (भद्रा जनित्री अजीजनत्) इस कारण वह श्रेष्ठ माता हुई ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।

१ २ ३ १ २

मदेषु सर्वधा असि ॥ १ ॥

ऋ० असितो देवलो वा । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ षष्ठे खंडे परिस्वान इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । अयं सोमः पवित्रे दशापवित्रे पर्यक्षरत् परितः क्षरति । कीदृशः सन् ? स्वानः शब्दायमानः सुवानः—इति बह्वृचानाम् पाठः सूयमानः गिरिष्ठः गिरिस्थायी ग्रावसु वर्त्तमान इत्यर्थः । हे सोम ! स त्वम् मदेषु मादकेषु सोतृषु सर्वधा असि सर्वस्य धाता दाता च भवसि ॥ १ ॥

(गिरिष्ठाः स्वानः सोमः) पाषाणोंके मध्यमें स्थित शब्द करता हुआ सोम (पवित्रे पर्यक्षरत्) दशा पवित्रमेंको चारों ओरको टपकता है हे सोम ! तू (मदेषु सर्वधा असि) मदकारी सवन करने वालोंमें सबका पोषण करने वाला है ॥ १ ॥

२उ ३ २ ३ २उ ३ १ ३ १ २र

त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।

१२ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वं विप्रः विविधं प्रीणयिता विप्रसदृशो वा त्वञ्च कविः मेधावी अतस्त्वम् अंधसः अन्नात् जातम् मधु मधुररसं प्रयच्छसीति शेषः ॥ २ ॥

हे सोम ! (त्वं विप्रः) तू विशेष तृप्त करने वाला है (त्वं कविः) तू बुद्धिवर्धक है इस कारण तू (अंधसः जातं मधु प्र) अन्नसे उत्पन्न हुए मधुररसको देता है (मदेषु सर्वधा असि) मादकोंमें सबका धारक है ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत ।
१२ ३ १ २
मदेषु सर्वधा असि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! त्वे त्वयि पीतिं पानं विश्वे देवासः सर्वे देवाः सजोषसः समानपीतयः सन्तः आशत प्राप्नुवन् ॥ ३ ॥

हे सोम (विश्वे देवासः) सकल देवता (सजोषसः) समान प्रीतिवाले होकर (त्वे पीतिम्) तेरे पानको (आशत) प्राप्त हुए (मदेषु सर्वधा असि) तू मादकोंमें सबका धारण वा सकल मनोरथोंका दाता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
२ ३ १ २ ३ २
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १ ॥

ऋ० ऋणवः । छ० गायत्री । दे० सोमः । ससुन्वे-इति-प्रगाथात्मकं द्वितीयम् सूक्तम्, तत्र, प्रथमा । सः सोमः सुन्वे अभिषुवे ऋत्विग्भिः यः सोमः वसूनाम् धनानाम आनेता यश्च रायाम् रान्ति प्रयच्छन्ति क्षीरादिकमिति रायो गावः तेषामानेता यश्च इडानाम् अन्नानाञ्च; यश्च सोमः सुक्षितीनाम् सुनिवासानाम् शोभन—मनुष्य-युक्तानां गृहाणाम आनेता विद्यते, सोऽभिषुतोऽभूदिति ॥ १ ॥

(यः सोमः) जो सोम (वसूनां आनेता) धनोंका लाने वाला है (यः रायाम्) जो दूध वाली गौओंका लाने वाला है (यः इडानाम्) जो अन्नोंका लाने वाला है (यः सुक्षितीनाम) जो सुन्दर पुत्र भृत्यादि

युक्त स्थानोंको देने वाला है (सः सुन्वे) वह सोम ऋत्विजोंके द्वारा सुसिद्ध किया गया ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा
१ २ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३
भगः । आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्र-
१ २ ३ २
मवसे महे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! यस्य प्रसिद्धस्य ते तव रसम् इंद्रः पिबात् पिबति पा पाने (भ्वा० प०) लेट्यडागमः यस्य यञ्च सोमं मरुतः पिबन्ति, वा अपि च अर्य्यमणा एतन्नामकेन देवेन सह भगः देवः यस्य यं सोमं पिबति, येन सोमेन मित्रावरुणा मित्रावरुणौ वयम् आ करामहे अभिमुखीकुर्महे । तथा महे महते अवसे रक्षणाय येन च सोमेन इंद्रम् अभिमुखीकुर्महे, तं त्वामभिषुणोमीत्यर्थः ॥ २ ॥

हे सोम ! (यस्य ते इंद्रः पिबात्) जिस तेरे रसको इंद्र पीता है (यस्य मरुतः) जिसको मरुत् पीते हैं (वा) और (अर्यमणा भगः यस्य) अर्यमाके साथ भग देवता जिसको पीता है (येन महे अवसे मित्रावरुणा आ, इंद्र आ) जिस सोमके द्वारा बड़ी भारी रक्षाके लिए मित्रावरुण देवताको अभिमुख करते है और इंद्र देवताको अभिमुख करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥ १ ॥

ऋ० पर्वतनारदौ । छ० उष्णिक् । दे० सोमः । तं व इति तृचात्मकं तृतीयम् सूक्तम्, तत्र प्रथमा हे सखायः ! ऋत्विजः ! वः यूयम् मदाय देवानाम् मदार्थं पुनानम् पूयमानम् तं सोमम् अभि गायत अभिष्टुत । तम् इमं सोमं शिशुम् न शिशुमिव अलङ्कारैः क्षीरादिभिश्च स्वादूकुर्वन्ति, तद्वत् हव्यैः हविर्भिः मिश्रणैः गूर्तिभिः स्तुतिभिश्च स्वदयन्त स्वादूकुर्वन्ति ॥ २ ॥

(सखायः) हे मित्र ऋत्विजो ! (वः मदाय पुनानं तं अभि गायत) तुम देवताओंके मदके लिए पयमान सोमकी स्तुति करो (शिशुम् न)

जैसे बालकको आभूषणोंसे और दुग्ध आदि पिलानेसे सुन्दर करते हैं तैसे ही सोमको (हव्यैः गूर्त्तिभिः स्वदयन्त) हवि और स्तुतियोंसे स्वादयुक्त करो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
३ १ २र ३ २ ३ १ २
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हिन्वानः प्रेर्यमाणः इन्दुः सोमः वसतीवरीभिः समज्यते सम्यक् सिक्तो भवति । तत्र दृष्टान्तः—वत्स इव वत्सो यथा मातृभिः गोभिः समक्तो भवति, तद्वत् । कीदृशः देवावीः देवानां रक्षकः, मदः मदकरः मतिभिः स्तुतिभिः परिष्कृतः अलंकृतः भूषणार्थे सम्पर्युपेभ्यः (६, १, १३७)—इति सुडागमः, परिनिविभ्यः (८, ३, ७०) इति सुटः षत्वम् ॥ २ ॥

(देवावीः मदः मतिभिः परिष्कृतः हिन्वानः इन्दुः समज्यते) देवताओंका रक्षक आनन्ददायक और स्तुतियोंसे शोभायमान प्रेरणा कियाजाता हुआ सोम वसतीवरी जलोंसे भले प्रकार सींचाजाता है (मातृभिः वत्सः इव) जैसे कि—बछड़ा माता गौओंके द्वारा प्रेमसे सींचा जाता है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अयं दक्षाय साधनोऽयꣳ शर्धाय वीतये ।
३ १ ३ २ ३ १ २ ३ २
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अयं सोमः दक्षाय बलाय वर्धनाय वा साधनः साधयिता भवति, तथा अयं सोमः शर्द्धाय बलाय वीतये देवानां भक्षणार्थं च भवति, सुतः अभिषुतः, अयं सोमः देवेभ्यः इन्द्रादिभ्यः मधुमत्तरः अतिशयेन माधुर्ययुक्तो भवति अत्यन्तं मदकरो भवतीति वा ॥३

(अयं दक्षाय साधनः) यह सोम बल बढ़ानेके लिये साधन है (अयं शर्धाय वीतये) यह सोम बलप्राप्ति और देवताओंके भक्षण के लिये है (अयं सुतः देवेभ्यः मधुमत्तरः) यह सोम अभिषव किया हुआ इन्द्रादि देवताओंके लिये परम मधुरतायुक्त होता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सोमा पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १ ॥

ऋ०मनुः । छ०अनुष्टुप् । दे० सोमः । सोमाः पवन्त इति–तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा । गातुवित्तमाः अतिशयेन मार्गस्य लम्भकाः इन्दवः दीप्ताः सोमाः पवन्ते अस्मभ्यम् अस्मदर्थं क्षरन्ति आगच्छन्ति वा । कीदृशाः ? मित्राः देवानां सखिभूताः स्वानाः सुवानाः अभिषूयमाणाः अरेपसः पाप-रहिताः अतएव स्वाध्यः शोभन-ध्यानाः स्वर्विदः सर्वज्ञाः स्वर्गप्रापका वा ॥ १ ॥

(मित्राः) देवताओंके मित्ररूप (स्वानाः) संस्कार कियेजाते हुए (अरेपसः स्वाध्यः) पापरहित और ध्यान करनेमें सुन्दर (स्वर्विदः गातुवित्तमाः इन्दवः सोमाः) सर्वज्ञ वा स्वर्गदायक मार्गके प्राप्त कराने वाले और दीप्तियुक्त सोम (अस्मभ्यम् पवन्ते) हमारे अर्थ कलशमें प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२॥

अथ द्वितीया । पूताः पवित्रेण परिपूताः विपश्चितःमेधाविनः दध्याशिरः दध्ये मिश्रणाः घृते वसतीवर्य्याख्ये उदके जिगत्नवः गमन—शीलाः ध्रुवाः तत्र स्थैर्य्येण वर्त्तमानाः ते सोमासः सोमाः सूरासः न सूर्य्या इव दर्शतासः पात्रेषु सर्वैर्दर्शनीया भवन्ति ॥ २ ॥

(पूतासः विपश्चितः) पवित्र और बुद्धिको बढानेवाले (दध्याशिरः घृते जिगत्नवः) दधिसे मिले और वसतीवरी जलमें जानेवाले (ध्रुवाः ते सोमासः) तिस पात्रमें स्थिर रहनेवाले वह सोम (सूरासः न) सूर्योंकी समान (दर्शतासः) पात्रोंमें सबके दर्शन योग्य हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गोः अनुडुहः अधित्वचि अधिषवणचर्मणि चिताना ज्ञायमाना अद्रिभिः ग्रावभिः विविधैः सुष्वाणासः स्तूयमानाः वसुविदः

वसुनो लम्भका एते सोमाः अस्मभ्यम् इषम् अन्नम् अभितः समस्वरन् सम्यक् शब्दयन्ति प्रयच्छन्तीति यावत् ॥ ३ ॥

(गौः अधि त्वचि) गौकी कांतिरूप दूधमें (चितानाः) दीखने वाले (विअद्रिभिः सुष्वाणासः) अनेकों प्रकारके पाषाणोंसे कूटेजाते हुए (वसुविदः) धन देनेवाले यह सोम (अस्मभ्यं अभितः इषं समस्वरन्) हमें चारों ओरसे अन्न देते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो
१ २ ३ १२ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १
सरसि प्रधन्व । ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं
२३१२ ३१२३ १२
पुरुमेधाश्चितकवे नरं धात् ॥ १ ॥

ऋ० कुत्सः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अयापवेति–तृचात्मकं पञ्चमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे सोम ! अया अनया पवा पवमानया धारया एना एतानि वसूनि धनानि पवस्व क्षर । पवा—पूञ् पवने (क्र्या० प०) अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३,२, १७८)-इति विच् प्रत्ययः आर्द्धधातुक–लक्षणो गुणः सावेकाच (६, १, १६८)—इति तृतीयाया उदात्तत्वम् । तथा हे इन्दो ! त्वं मांश्चत्वे मन्यमानानां चातके सरसि उदके वसतीर्व्याख्ये प्रधन्व प्रगच्छ । यस्य सोमस्य शोधने सति ब्रध्नश्चित् सर्वेषां प्रज्ञापको मूलभूतो वा आदित्योऽपि वातः न वायुरिव जूतिं वेगं प्राप्तः सन् किञ्च पुरुमेधश्चित् बहुविध–प्रज्ञ इन्द्रोऽपि तकवे तकतिर्गति—कर्मसु पठितः (निघ०२, १४, ६९) अस्मादौणादिक उन प्रत्ययः । सोमं गच्छते महां नरं कर्मनेतारं पुत्रं धात् ददातु प्रयच्छतु स त्वं प्रधन्वेति पूर्वेण सम्बन्धः॥ यस्य अत्र–इति पाठौ जूति-जतः इति धात् दात्—इति च ॥ १ ॥

हे सोम ! (अया पवा) इस पवित्र करने वाली धारा से (एना वसूनि) इन धनों को (पवस्व) बरसा (इन्दोमांश्चत्वे सरसि प्रधन्व) हे सोम ! प्रतिष्ठा करने वालोंको प्राप्त होनेवाला वसतीवरी जलमें पहुँच (यस्य) जिस सोमका शोधन होने पर (ब्रध्नश्चित्) सबका मूलभूत आदित्य भी (वातः न) वायुकी समान (जूतिम्) वेगको प्राप्त हुआ (पुरुमेधश्चित्) अधिक बुद्धिवाला इन्द्र भी (तकवे मह्यम्) सोमको प्राप्त होने वाले मुझे (नरं धात्) यज्ञादि कर्म करने वाला पुत्र देय ॥ १ ॥

१२ २ ३१ २३१ २३१ २ ३ २ ३१ २
उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य
३२ ३२ ३१२ ३२ २र ३२उ
तीर्थे । षष्टिᳬं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न
३१ २ ३१२
पक्वं धूनवद्रणाय ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! उत अपि च श्रवाय्यस्य सर्वैः श्रवणीयस्य तव श्रुते प्रसिद्धे यद्वा, षष्ठ्यर्थे चतुर्थी श्रुतशब्दस्य तीर्थे स्थाने नः अस्माकं स्वभूते यज्ञे एना अनया पवया पूयमानया धारया अधिकं पवस्व क्षर । नैगुतः नीचीनं गन्तवे न शब्दायन्त इति निगुतः शत्रवः तेषां हन्तृत्वेन सम्बन्धी सोऽयं सोमः षष्टिं षष्टिसंख्याकानि सहस्रा सहस्राणि वसूनि धनानि रणाय शत्रूणां जयार्थं धनवत् अस्मान-कम्पयत् प्रायच्छदिति यावत् । कथमिव ? वृक्षं न पक्व-फलं वृक्षं यथा कम्पयति फलार्थी, तद्वत् ॥ २ ॥

हे सोम (उत) और (श्रवाय्यस्य तीर्थे) सबके सुननेयोग्य तेरे स्थान (नः श्रुते) हमारे प्रसिद्ध यज्ञमें (एना पवया) इस पवित्र धारासे (पवस्व) बरस (नैगुतः) सोम (षष्टिं सहस्रा वसूनि) साठ सहस्र धनोंको (रणाय) शत्रुओंके जीतनेके लिये (धूनवत्) हमें देताहुआ (वृक्षं न पक्वम्) जैसे पक्के फलों वाला वृक्ष फलार्थीका फल देता है ॥ २ ॥

२३१ २३ २३ १२ ३ १ २र ३
महीमे अस्य वृष नाम शूषे माᳬंश्चत्वे वा
१२ ३ १२ १२ ३१२ ३२३
पृशने वा वधत्रे । अस्वापयन्निगुतः स्नेहय-
२ ३२३ २३१२ ३२
च्चापमित्राᳬं अपाचितो अचेतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मही महते प्रभूते वृषनाम सुपां सुलुगिति (७,१,३९) सुपो लुक् वृषनामनी वर्षण—नमने, शराणां वर्षणं, शत्रूणां नमनम्, इमे एते द्वे कर्मणी अस्य सोमस्य शूषे सुखकरे भवतः ये च कर्मणी मांश्चत्वे अश्वनामैतत् (निघ० १, १४, १८) अश्वैः क्रियमाणे युद्धे तत्साध्यत्वाद् युद्धमिह गृह्यते वा अपि वा पृशने स्पर्शनसाध्ये बाहु-

युद्धे वधत्रे शत्रूणां हिंसन-शीले भवतः । सोऽयं निगुतः नीचैः शब्दायमानान् शत्रून् अस्वापयत् असूषुपत् अवधीदित्यर्थः । किञ्च स्नेहयत् प्राद्रवयत् संग्रामाच्छत्रून् । अथ प्रत्यक्षः । हे सोम ! स त्वम् अमित्रान् शत्रून् अपचित अपगमय । तथा च अपाचितः अग्निचयनमकुर्वतः नास्तिकांश्च इतः अस्मच्छकाशात् अपचित अपागमय अञ्चतिर्गतिकर्मा (श्वा० प०) ॥ ३ ॥

(महो) बहुत (वृषनाम) बाणोंका बरसाना और शत्रुओंको नमाना (इमे अस्य शूषे) यह दोनों कर्म इस सोमके सुखदायक होते हैं । जो कर्म (मांश्चत्वे) घोड़ोंके द्वारा होने वाले युद्धमें (व्रा पृशने) या बाहुयुद्धमें (वा वधत्रे) अथवा शत्रुनाशन युद्धमें (निगुतः अस्वापयन्) शत्रुओंको मारता हुआ (स्नेहयत्) युद्धके शत्रुओंको भागता हुआ । हे सोम (अमित्रान् अपचित) शत्रुओंको दूर कर (अपाचितः इतः) अग्निहोत्र न करने वालोंको हमारे पाससे अलग कर ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ १ ३क २र
अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः १

ऋ० बन्धुः । छ० द्विपदा—त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथ सप्तम-खंडे प्रथमतृचे, प्रथमा । हे अग्ने ! वरूथ्यः वरणीयः सम्भजनीयः । यद्वा वरूथैः परिधिभिर्वृतः त्वं न अस्माकम् अन्तमः अन्तिकतमः भुवः भव । उत अपि च त्राता रक्षकः शिवः सुखकरश्च भव भुवः—भव— इति पाठौ ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (वरूथ्यः) भजनेयोग्य (त्वम) तू (नः अन्तमः) हमारे अत्यन्त समीप (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) सुखकारी (भव) हो ॥ १ ॥

१२३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः

अथ द्वितीया । वसुः वासकः अग्निः सर्वेषामग्रणीः वसुश्रवाः व्याप्तान्नस्त्वं अच्छ आभिमुख्येन नक्षि अस्मान् व्याप्नुहि । द्युमत्तमः अतिशयेन दीप्तिमान् त्वं रयिं पश्वादिलक्षणं धनं दाः अस्मभ्यं देहि ॥ द्युमत्तमः—द्युमत्तमम्—इति पाठौ ॥ २ ॥

(वसुः) व्यापक (वसुश्रवाः) व्यापक अन्नवाला (अग्निः) सबका अग्रणी अग्नि तू (अच्छ नक्षि) हमारे अभिमुख होकर व्याप्त हो (द्युमत्तमः रयिं दाः) अत्यन्त दीप्तिमान् तू हमें धन दे ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥

अथ तृतीया हे शोचिष्ठ अतिशयेन शोचिष्मन् ! दीदिवः स्वतेजोभिर्दीप्ताग्ने ! तं त्वां सुम्नाय सुखाय सुम्नमिति सुखनामैतत्(निघ० ६, ३, १७) तदर्थं सखिभ्यः समानख्यातिभ्यः पुत्रेभ्यः सुखार्थश्च नूनम् ईमहे याचामहे।

(शोचिष्ठ दीदिवः) हे अत्यन्त कान्तिमान् अपने तेजोंसे दीप्तअग्निदेव ! (तं त्वा सुम्नाय सखिभ्यः) ऐसे तुम्हें सुखके लिये और पुत्रादि हितकारियोंके लिये (नूनं ईमहे) अवश्य ही प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः १

ऋ० आप्त्यः। छ० द्विपदा-त्रिष्टुप्। दे० विश्वेदेवाः अथ द्वितीयतृचे—प्रथमा इमा इमानि परिदृश्यमानानि भुवनानि नु क्षिप्रं सीषधेम साधयेम वशीकरवाम। वाम्-इति पूरकः यद्वा, इमानि सर्वाणि भूतजातानि अस्मभ्यं कं सखं सीषधेम साधयन्तु, पुरुषव्यत्ययः (३, १, ८५) इन्द्रश्च विश्वे सर्वे अन्ये देवाः च स्तुत्या प्रीत्या इमम् अर्थम् साधयन्तु सीषधेम-सीषधाम—इति पाठौ ॥ १ ॥

(इमा भुवनानि) यह सब भुवन (नु कं सीषधेम) शीघ्र ही हमारे सुखका साधन करें (इन्द्रः च विश्वे देवाः च) इन्द्र और विश्वेदेवा भी मेरे इस मनोरथको सिद्ध करें ॥ १ ॥

३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यज्ञं च नस्तन्वञ्च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु २

अथ द्वितीया। न अस्माकं यज्ञं ज्योतिष्टोमादिकञ्च यागं तन्वं शरीरञ्च प्रजां पुत्रादिकञ्च आदित्यैः अदिति-पुत्रैः अन्यैर्देवैः सह वर्त्तमानः इन्द्रः सीषधातु साधयतु। सहसीषधातु-सहचीकृपाति-इति पाठौ ॥ २ ॥

(आदित्यैः सह इन्द्रः) अदितिके पुत्र अन्य देवताओं सहित इन्द्र (नः यज्ञं च तन्वं च प्रजाञ्च सीषधातु) हमारे यज्ञको भी शरीरको भी और सन्तानको भी सफलमनोरथ करें ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् ३

अथ तृतीया। आदित्यैः अदिति-पुत्रैः मित्रादिभिः मरुद्भिश्च सगणः

गण-सहितः इन्द्रः अस्माकम् अस्मभ्यम् भेषजानि औषधानि करत करोतु ॥ भेषजाकरत्-भूत्वविताततनूनाम-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(आदित्यैः मरुद्भिः सगणः इन्द्रः) अदितिके पुत्र मित्रादि देवता मरुत और गणों सहित इन्द्र (अस्मभ्यं भेषजा करत) हमारे लिये कार्यसाधक औषधोंका सम्पादन करे ॥ ३ ॥

१ २र

प्र वोऽर्चोप ॥ १ ॥

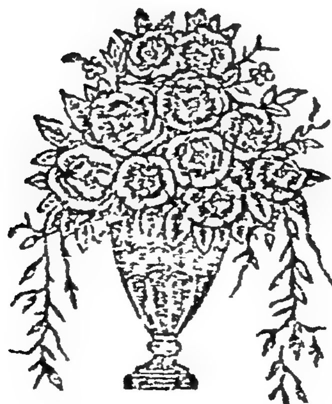
ऋ० सम्पात ऋषिः । छ० द्विपदा-त्रिष्टुप् । दे०उषा । अथैकर्गात्मकं सूक्तं प्रवोर्चोपेति, चतुरक्षरात्मिका काचिदियमिष्टा पा यथा बहृचानां भद्रन्नो अपिवातयमनः-इत्येक एव पाद ऋगात्मकश्च तद्वत् । हे ऋत्विग्यजमानाः वः यूयम् उप समीपे प्रार्च्च प्रकर्षेणेन्द्रं पूजयत ॥ १ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हे ऋत्विक् यजमानो ! (वः उप प्रार्च्च) तुम समीप होकर इंद्रका भले प्रकार पूजन करो ॥ १ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः सप्तमाध्यायश्च समाप्तः ।



॥ श्रीहरिः ॥

अथाष्टमोऽध्याय आरभ्यते

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ—महेश्वरम् ॥ ८ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
विवक्ति । महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा
२ ३ २ ३क २र ३ १ २
वराहो अभ्येति रेभन् ॥ १ ॥

ऋ० असित-देवलौ । छ० गायत्री । दे० सोमः तत्र प्रकाव्यमिति प्रथमे खण्डे—द्वादशर्चे प्रथमे सूक्ते-प्रथमा । उशनेव एतान्नामक ऋषिरिव काव्यं कवि-कर्म स्तोत्रं ब्रुवाणः उच्चारयन् देवः स्तोता देवानाम् इन्द्रादीनां जनिमा जन्मानि प्र विवक्ति प्रकर्षेण ब्रवीति । वच परिभाषणे (अदा० प०) व्यत्ययेन विकरणस्य श्लुः (३, १, ३९) बहुलम्छन्दसि (७, ४, ७८)—इत्यभ्यासस्येत्वम् महिव्रतः प्रभूतकर्मा शुचिबन्धुः । बध्नन्ति शत्रूनिति बन्धूनि तेजांसि बलानि वा । दीप्ततेजस्कः पावकः पापानां शोधकः वराहः वरश्च तदहश्च वराहः राजाहःसखिभ्यष्टच् (५, ४, ९१)-इति टच् समासांतः तस्मिन्नहनि अभिषूयमाणत्वेन तद्वान् अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् (५, २, १७) तादृशः सोमः रेभन् रेभनं शब्दं कुर्वन् पदा पदानि पात्राणि अभ्येति अभिगच्छति यद्वा, यथा कश्चन वराहः पदा पादेन भूमिं विक्रममाणः शब्दं करोति तद्वत् ॥ १ ॥

(उशना इव) उशना ऋषिकी समान (काव्यं ब्रुवाणः देवः) स्तोत्रका उच्चारण करता हुआ स्तोता (देवानां जनिमा प्र विवक्ति) इन्द्रादि देवताओंके प्रकट होनेको उत्तमतासे कहता है (महिव्रतः) अनेकों पराक्रमवाला (शुचिबंधुः पावकः वराहः) दीप्त तेजवाला पापों का शोधक श्रेष्ठ दिनमें संस्कार किया हुआ सोम (रेभन् पदा अभ्येति) शब्द करता हुआ पात्रोंमें जाता है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३१ २ ३ २३ २ २३ ३ १ २
प्र हꣳसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा
३ २३ १२ ३ १२ ३१२
अयासुः । अङ्गोषिणं पवमानꣳ सखायो दुर्मर्षं
३ १ २र ३२
वाणं प्र वदन्ति साकम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हंसासः शत्रुभिर्हन्यमाना हंसा इव आचरन्तो वा वृषगणाः एतन्नामका ऋषयः अमात् शत्रूणाम् बलात् त्रासिताः सन्तः तृपला तृपलं सुपाम् सुलुगिति सोराकारादेशः (७, १, ३९) तृपल-शब्दः क्षिप्रवाची तदुक्तं यास्केन—तृपप्रहारी क्षिप्रप्रहारी (निरु० ६० ५, १२)—इति क्षिप्रं प्रहारिणं वग्नुम् अभिषवशब्दम् अच्छ आभिलक्ष्य अस्तम् यज्ञगृहम् प्रायासुः प्रायासिषुः प्रगच्छन्निति । ततः सखायः स्तुत्य-स्तोतृत्वलक्षणेन सम्बन्धेन सखिभूताः स्तोतारः अङ्गोषिणं सम्यरभिग-न्तव्यं यद्वा अङ्गोषिणं स्तोत्रार्हं दुर्मर्षं शत्रुभिः दुर्धरं दुःसहम् एवंविधं पवमानं सोमम् उद्दिश्य वाणं वाद्यविशेषं साकं सहैव प्र वदन्ति प्रवा-दयन्ति तदुपलक्षितं गानं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

(हंसासः वृषगणाः) शत्रुओंके सताये हुए वृषगण नामक ऋषि (अमात्) शत्रुओंके बलसे त्रसित हो (तृपला, वग्नुं, अच्छ, अस्तम्, प्रायासुः) शीघ्र ही अभिषवके शब्दको ओरको लक्ष्य करके यज्ञशाला में पहुंचे (सखायः) मित्र रूप स्तोता (अङ्गोषिणं, दुर्मर्षम्, पवमानं, वाणं साकं प्रवदन्ति) स्तोत्रके योग्य शत्रुओंको असह्य सोमके निमित्त वाणनामक बाजेको एक साथ बजाते हुए ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २
स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं
३ १ २र ३ १२ ३ १ २ ३
मिमते न गावः । परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सः सोमः उरुगायस्य बहुभिः स्तुत्यस्य आत्मनः जूतिं गतिं योजते युनक्ति अन्तरिक्षे प्रेरयति । वृथा क्रीडन्तम् अनायासेन विहरन्तं गच्छन्तं सोमं गावः अन्यो गन्तारः न मिमते न परिच्छिन्दन्ति

मातुम् न शक्नुवन्ति इत्यर्थः। किञ्च तिग्मशृङ्गः शृण्वन्ति हिंसन्ति तमांसीति शृङ्गाणि तेजांसि तीक्ष्ण—तेजस्कः परीणसम् बहुनामैतत् (निघ० ३, १, ७) बहुविधं तेजः कृणुते करोतु अन्तरिक्षे वर्त्तमानो यः सोमः दिवा अहनि हरिः हरितवर्णः ददृशे दृश्यते न प्रकाशत इत्यर्थः नक्तं रात्रौ तु ऋज्रः ऋजुगामी विस्पष्टः प्रकाशयुक्तो दृश्यते। ददृशे—दृशेः कर्मणि लिटि रूपम् ॥ ३ ॥

(सः उरुगायस्य जूतिम् योजते) वह अनेकोंसे स्तुति किये हुए अपनी, गतिको अन्तरिक्षसे प्रेरणा करता है (वृथा क्रीडन्तम् गावः न मिमते) अनायास गमन करते हुए सोमकी गतिका अन्य गमन करने वाले माप नहीं कर सकते (तिग्मशृङ्गः परीणसम् कृणुते) तीक्ष्णतेज वाला अन्तरिक्षचारी सोम अनेकों प्रकारके तेजको फैलाता है (दिवा हरिः ददृशे) दिनमें हरे वर्णका दीखता है (नक्तम् ऋज्रः) रात्रि में स्पष्ट प्रकाशयुक्त दीखता है ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्र स्वानासो रथा इवार्वन्तो न श्रवस्यवः।
१ २ ३ १ २
सोमासो राये अक्रमुः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। स्वानासः अभिषव—वेलायामुपरवेषु शब्दं कुर्वन्तः सोमासः सोमाः रथा इव यथा शब्दम् कुर्वन्तो रथाः तथा, अर्वन्तो न यथा शब्दम् कुर्वन्तो अश्वा तथा, श्रवस्यवः शत्रुभ्यः सकाशादन्नमिच्छन्तो राये यजमानानां धनाय प्राक्रमुः प्रगच्छन्ति ॥ ४ ॥

(स्वानासः सोमासः)अभिषवके समय पात्रोंमें शब्द करते हुए सोम (रथा इव) शब्दायमान रथोंकी समान (अर्वन्तो न) हींसते हुए घोड़ोंकी समान (श्रवस्यवः) शत्रुओंसे अन्न लेना चाहते हुए (राये प्राक्रमुः) यजमानोंके धनके लिए पराक्रम करते हैं ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ २ ३ १ २र
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः।
१ २ ३ १ २
भरासः कारिणामिव ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। रथा इव युद्धदेशं प्रति यथा रथाः तथा हिन्वानासः यागदेशम् प्रति गच्छन्तः सोमाः ऋत्विजाम् गभस्त्योः बाह्वोः दधन्विरे

धीयन्ते । तत्र दृष्टान्तः—भरासः भराः कारिणामिव यथा भारवाहानां वाहोर्द्धीयन्ते तद्वत् ॥ ५ ॥

युद्धमें जातेहुए (रथा इव) रथोंकी समान (हिन्वानासः) यज्ञमें जाते हुए सोम (गभस्त्योः दधन्विरे) ऋत्विजोंकी भुजाओंमें स्थापन किये जाते हैं (भरासः कारिणां इव) भारवाहियोंके हाथोंमें जैसे ॥५॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । सोमासः सोमाः प्रशस्तिभिः प्रशस्ताभिः स्तुतिरूपाभिः वाग्भिः राजानो न तथा राजानः सप्तधातृभिः सप्त—होत्राभिः यज्ञो न यथा च यज्ञः तथा गोभिः गोर्विकारैः पयोभिः अञ्जते अज्यते संस्क्रियत इति ॥ ६ ॥

(सोमासः) सोम (प्रशस्तिभिः राजानः न) स्तुति रूप वाणियों से राजे जैसे (सप्त धातृभिः यज्ञः न) सात ऋत्विजोंसे यज्ञ जैसे (गोभिः अञ्जते) गाघृतादिसे संस्कार किये जाते हैं ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
१ २ ३ १ २
मधो अर्षन्ति धारया ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । स्वानासः सुवानाः अभिषूयमाणाः इन्दवः सोमाः बर्हणा महत्या गिरा स्तुति—रूपया वाचा युक्ताः सन्तः मदाय मदार्थम् मधोः मधुर—रसस्य धारया परि अर्षन्ति परितो गच्छन्ति । परिस्वानासः-परिसुवानासः-इति पाठौ, मधोः सुतः-इति च ॥ ७ ॥

(स्वानासः इन्दवः) अभिषव किये जाते हुए सोम (बर्हणा गिरा) बड़ी भारी स्तुतिरूप वाणीसे युक्त होकर (मदाय मधोः धारया परि अर्षन्ति) मधुके लिए मधुर रसकी धारासे चारों ओरसे बरसते हैं ॥ ७॥

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम्
२ ३ २ ३ १ २
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ८ ॥

अथ अष्टमी। विवस्वतः दीप्तिमतः इंद्रस्य आपानासः आपानभूताः उषसः भगम् शोभाम् जिन्वन्तः प्रेरयन्तः सूराः सरन्तः सोमाः अण्वम् वि तन्वते अभिषव-वेलायामुपरवेषु शब्दम् कुर्वन्ति। जिन्वन्तः-जनम्-इति पाठौ ॥ ८ ॥

(विवस्वतः आपानासः) इंद्रके पीनेकी वस्तुरूप (उषसः भगम् जिन्वन्तः) उषाकी शोभाको फैलाते हुए (सूराः) सोम (अण्वं वितन्वते) अभिषवके समय शब्दका करते हैं ॥ ८ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।
२ ३ १२ ३ १२
वृष्णो हरस आयवः ॥ ९ ॥

अथ नवमी। मतीनां कारवः स्तुतीनां कर्त्तारः प्रत्नाः पुराणाः वृष्णः सेचकस्य स मस्य हरसः आहर्त्तारः आयवः मनुष्याः ऋत्विजः द्वारा यज्ञस्य द्वाराणि अप ऋण्वन्ति विवृण्वन्ति ॥ ९ ॥

(मतीनाम् कारवः) स्तुतियोंके कर्त्ता (प्रत्नाः) पुरातन (वृष्णः हरसः) सोमको लाने वाले (आयवः) मनुष्य ऋत्विज (द्वारा अप ऋण्वंति) यज्ञके द्वारोंको खोलते हैं ॥ ९ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः।
३ १ २र ३ १ २
पदमेकस्य पिप्रतः ॥ १० ॥

अथ दशमी। समीचीनासः समीचीनाः जामयः जाति-सदृशाः एकस्य सोमस्य पदम् स्थानं पिप्रतः पूरयन्तः सप्त होतारः यज्ञे आशत व्याप्नुवति। आशत-आसत-इति पाठौ, जानयः-जामय-इति च ॥१०॥

(समीचीनासः) श्रेष्ठ (जानयः) जातिमें सदृश (एकस्य पदम् पिप्रतः) सोमके स्थानको पूर्ण करते हुए (सप्त आशत) सात होता व्यापते हैं अर्थात् कर्मानुष्ठानमें लगते हैं ॥ १० ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे।
३ १ २र ३ १ २
कवेरपत्यमा दुहे ॥ ११ ॥

अथैकादशी॥ नाभिं यज्ञस्य नाभिभूतं सोमं नः अस्माकं नाभा नाभौ अहम् आददे सोमं पीत्वा नाभिस्थाने करोमीत्यर्थः। किमर्थम्? चक्षुषा सूर्य्यं दृशे द्रष्टुम्। किञ्च, कवेः क्रांत-कर्मणः सोमस्य अपत्यम् अंशुम् आ दुहे आ पूरयामि। चक्षुषा सूर्य्य दृशे—चक्षुश्चिः त्सूर्य्यं सचा-इति पाठौ॥ ११॥

(चक्षुषा सूर्यं दृशे) चक्षुसे सूर्यके देखनेको (नाभिं नः नाभा आददे) यज्ञकी नाभिरूप सोमको मैं अपनी नाभिमें ग्रहण करता हूँ अर्थात् सोमको पीकर नाभिस्थानमें पहुँचाता हूँ (कवेः अपत्यं आदुहे) सोमकी किरणको पूर्ण करता हूँ॥ ११॥

३ २　३ २　३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २　३ २
अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।
१२　　३ १ २
सूरः पश्यति चक्षसा॥ १२॥

अथ द्वादशी। सूरः सुवीर्य्यः इंद्रः चक्षसा चक्षुषा दिवः दीप्तस्य आत्मनः प्रियं पदम् अध्वर्युभिः गुहा गुहायां हृदये हितं निहितं पीतं सोमम् अभिपश्यति॥ प्रियम् प्रिया-इति पाठौ॥ १२॥

(सूरः) श्रेष्ठ पराक्रमवाला इंद्रः (चक्षसा) चक्षुसे (दिवः प्रियं पदम्) अपने प्रीतिपात्र (गुहाहितम्) अध्वर्युओं करके हृदयमें स्थापन किये हुए अर्थात् पिये हुए सोमको (अभिपश्यति) देखता है १२.

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २　३ १　२र ३ १ २ ३ १ २
असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः।
३　१　२ ३　१ २
विदाना अस्य योजना॥ १॥

ऋ० जमदग्नि असित—देवलाः। छ० गायत्री। दे० सामः। अथ द्वितीयखण्डे असृग्रमिति द्वादशर्चं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। अस्य अनेन यजमानेन कृतान् योजना तद्देवतायोग्यान् सम्बन्धान् विदानाः जानन्तः सुश्रियः शोभन-श्रयणाः इन्दवः सोमाः धर्मन् कर्मणे ऋतस्य यज्ञस्य पथा मार्गेण असृग्रम् हविर्द्धानात् सृज्यन्ते। योजना—योजनम्—इति पाठौ॥ १॥

(अस्य योजना विदानाः) इस यजमानके किये हुए तिन देवताओं

के योग्य संबंधोंको जानते हुए (सुश्रियः इन्दवः) शोभायमान सोम (धर्मन् ऋतस्य पथा असृग्रम्) कर्ममें यज्ञके मार्गसे रचेजाते हैं ॥ १ ॥

२३ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो विगाहते ।

३ २ ३ २ ३ १ २

हविर्हविःषु वन्द्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हविःषु हविषां मध्ये वन्द्यः स्तुत्यः हविः हविरात्मकः यः सोमः महीः महतः अपः वसतीवरीः विगाहते तस्य मधोः सोमस्य अग्रियः मुख्या धाराः प्रपतन्तीत्यर्थः ॥ मधोः मध्वः-इति पाठौ

(हविःषु वन्द्यः हविः) हवियोंमें प्रशंसाके योग्य हविरूप सोम (महीः अपः विगाहते) बहुतसे जलोंको विलोड़न करता है (मधोः अग्रियः धाराः प्र) सोमकी मुख्य धारें पड़ती हैं ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने ।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २

सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अग्रियः हविषां मध्ये मुख्यः सोमः युजाः युक्ताः वाचः प्रकरोतीत्यर्थः । एतदेव दर्शयति वृषः कामानां वर्षकः सत्यः सत्यभूतः अध्वरः हिंसावर्जितः सोमः सद्म यज्ञगृहं अभि प्रति वने उदके अचिक्रदत् शब्दं करोतीत्यर्थः ॥ वृषो अचिक्रदत्–वृषावचिक्रदत्–इति पाठौ ॥ ३ ॥

(अग्रियः युजाः वाचः प्र) हवियोंमें मुख्य सोम युक्त वाणियोंको प्रकट करता है (वृषः सत्यः अध्वरः) मनोरथपूरक सत्यस्वरूप हिंसासे रहित सोम (सद्म, अभि, वने, अचिक्रदत्) यज्ञशालाके प्रति जलमें शब्द करता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।

२र ३ १ २

स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी कवि क्रांतकर्मा सोमः नृम्णा नृम्णानि बलानि पुनानः

शोधयन् काव्या काव्यानि कवि-कर्माणि स्तोत्राणि यद् यदा परि अर्षति परिगच्छति तदा स्वः स्वर्गे वाजी बलवान् अन्नवान्वेन्द्रः सिषासति यागं प्रत्यागन्तुं स्वकीयं दलं सम्भक्तुमिच्छति ॥ पुनानः-वसानः इति पाठौ ॥ ४ ॥

(कविः नृम्णा पुनानः) सोम बलोंका शोधन करता हुआ (काव्या यद् परिअर्षति) स्तोत्रोंको जब प्राप्त होता है तब (स्वः वाजी सिषासति) स्वर्गमें बलवान् अन्नवान इन्द्र यज्ञमें आनेको अपने बलका सेवन करना चाहता है ॥ ४ ॥

१२ ३ २३ ३ २ ३ १ २
पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । यद् यदा ईम् एनं सोमं वेधसः कर्मणां कर्त्तारः ऋत्विजः ऋण्वन्ति प्रेरयन्ति तदा पवमानः क्षरन्नेष सोमः स्पृधः स्पर्द्धमानान् याग-विघ्नकारिणः राक्षसादीन् अभिसीदति नाशयितुमभिगच्छति । तत्र दृष्टान्तः-विशः राजा इव यथा राजा विशः स्पर्द्धमानान् मनुष्यान् नाशयितुमभिगच्छति तद्वत् ॥ ५ ॥

(यद् ईम् वेधसः ऋण्वन्ति) जब इस सोमको कर्मोंके कर्त्ता ऋत्विज प्रेरणा करते हैं तब (पवमानः स्पृधः अभिसीदति) बरसता हुआ यह सोम स्पर्धा करनेवाले यज्ञमें विघ्नकारी राक्षसादिको नष्ट करनेको पहुँचता है (विशः राजा इव) जैसे कि राजा स्पर्धा करने वाले मनुष्योंको नाश करनेको जाता है ॥ ५ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २३ ३ १ २
अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।
३ १ २ ३ २
रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हरिः हरितवर्णः प्रियः देवानां प्रियतम एव सोमः वनेषु उदकेषु सम्पृक्तः अव्याः अवेः वारे वाले सीदति किञ्च रेभः अभिषव-वेलायाम् उपरवेषु शब्दं कुर्वन् मती मत्या स्तुत्या वनुष्यते सेव्यते ॥ ६ ॥

(हरिः प्रियः) हरे वर्णका और देवताओंका प्यारा सोम (वनेषु) जलोंमें मिला हुआ (अव्याः वारे परिसीदति) ऊनके पवित्रमें छनता

है (रेभः मती वनुष्यते) अभिषवके समय शब्द करता हुआ स्तुतिसे सेवन किया जाता है ॥ ६ ॥

२ ३१ ३२ ३ १२ ३१ २र

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।

२ ३ १ २ ३ १२

रणा यो अस्य धर्मणा ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । यः यजमानः अस्य सोमस्य धर्मभिः कर्मभिः क्रयणाभिषवादिभिः रणा रमते, सः यजमानः वायुम्, इन्द्रम् अश्विना अश्विनौ च मदेन साकं सह गच्छति प्राप्नोति ॥ ७ ॥

(यः, अस्य, धर्मणा, रणा) जो यजमान सोमके क्रयण अभिषव आदि कर्मोंसे क्रीड़ा करता है (सः वायुं इन्द्रम् अश्विना मदेन साकं गच्छति) वह यजमान वायु इंद्र और अश्विनीकुमारको मदके सहित पाता है ॥ ७ ॥

२ ३१ २र ३ २३ १२ ३१२

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः ।

३ १ २ ३ १ २

विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । येषां यजमानानां मधोः सोमस्य ऊर्मयः तरङ्गा मित्रावरुणा मित्रावरुणौ देवौ भगं भगाख्यं देवञ्च प्रति पवन्ते क्षरन्ति, ते यजमानाः अस्य सोमस्य इदं सोमं विदानाः जानन्तः शक्मभिः सुखैः सङ्गच्छन्तः इति शेषः ॥ ८ ॥

जिन यजमानोंकी (मधोः ऊर्मयः) सोमकी तरङ्गें (मित्रावरुणा भगं पवन्ते) मित्रावरुण देवता और भग देवताके अर्थ वरसी हैं वह यजमान (अस्य सोमस्य विदानाः) इस सोमको जानते हुए (शक्मभिः) सुखोंसे युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २

अस्मभ्यꣳ रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।

२ ३ १ २ ३ १ २

श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ ९ ॥

अथ नवमी । हे रोदसी द्यावापृथिव्यौ ! युवां मध्वः देवानां मादयितुः वाजस्य सोमात्मकस्यान्नस्य सातये लाभाय अस्मभ्यं रयिं

धनं श्रवः अन्नञ्च वसूनि वासकान्यन्यान्यपि पश्वादीनि सञ्जितं सञ्जयन्तं प्रयच्छतमित्यर्थः ॥ ९ ॥

(रोदसी) हे द्यावापृथिवीके अधिष्ठात्री देवताओं ! तुम (मध्वः वाजस्य सातये) देवताओंको हर्ष देनेवाले सोमरूप अन्नके लाभके लिये (अस्मभ्यं रयिं श्रवः वसूनि संजितम्) हम धन अन्न और पशु आदि सम्पत्तियें दो ॥ ९ ॥

२ ३ १२ ३२३ १२३१ २

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

२ ३१ २३१२

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १० ॥

अथ दशमी । हे सोम ! यष्टारो वयं ते तव स्वभूतं दक्षं बलम् अद्य अस्मिन् यागादिने आ आभिमुख्येन वृणीमहे सम्भजामहे । कीदृशम् ? मयोभुवं सुखस्य भावकम् वह्निं धनादीनां प्रापकम् पान्तं शत्रुभ्यो रक्षकम् पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं कामानाम् ॥ १० ॥

हे सोम ! हम यजन करनेवाले (ते दक्षं अद्य आवृणीमहे) तेरे बलकी आज अभिमुख होकर आराधना करते हैं । वह तेरा बल (मयोभुवम्) सुखको उत्पन्न करनेवाला (वह्निम्) धनादिकी प्राप्ति करानेवाला (पान्तम्) शत्रुओंसे रक्षा कराने वाला और (पुरुस्पृहम्) कामनासिद्धिके निमित्त अनेकों के चाहने योग्य है ॥ १० ॥

२ ३१ २र २उ ३ १२३१२

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।

२ ३१ २३१२

पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ११ ॥

अथैकादशी । हे सोम ! मन्द्रं मदकरं स्तुत्यं वा त्वाम् आ वृणीमहे वरेण्यं सर्वैर्वरणीयं सम्भजनीयञ्च किञ्च विप्रं मेधाविनं त्वां तथा मनीषिणं मनस ईषा मनीषा तद्वन्तं स्तुतिमन्तं वा त्वामावृणीमहे प्रत्येकं विशेषणापेक्षया आ-इत्युपसर्गः कृतः किञ्च पान्तं सर्वेषां रक्षकम् पुरुस्पृहं बहुभिः स्पृहणीयं च त्वां संभजामहे ॥ ११ ॥

हे सोम ! (मन्द्रम् आ) मदकारी तेरी आराधना करते हैं (वरेण्यं आ) सबके सेवनीय तेरी सेवा करते हैं (विप्रम् आ) तुझ बुद्धिमान्की आराधना करते हैं (मनीषिणम् आ) तुझ स्तुतिवाले की आराधना करते हैं (पान्तं पुरुस्पृहं आ) सबकी रक्षा करने वाले और अनेकोंके चाहने योग्य तेरी आराधना करते हैं ॥ ११ ॥

२ ३१ २र३२३१ २ ३२
आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
२३१ २३१२
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । हे सुक्रतो ! शोभन-प्रज्ञ ! सोम ! त्वदीयं रयिं धनम् वयम् आ पृणीमहे । किञ्च सुचेतनम् चिती सञ्ज्ञाने (भ्वा० प०) भावे औणादिक उन् प्रत्ययः सुज्ञानञ्च । किञ्च तनूषु अस्मत्पात्रेषु च धनं सुज्ञानञ्च त्वम् आ विधेहि यद्वा पुत्रार्थं वयमावृणीमहे । तथा पान्तं सर्वस्य रक्षकं पुरुस्पृहं बहुभिर्यष्टृभिः काम्यमानं त्वां सम्भजामहे ॥ १२ ॥

(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले सोम ! (रयिं आ) धनकी प्रार्थना करते हैं (सुचेतनं आ) श्रेष्ठ ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं (तनुषु आ) अपने पुत्रोंमें धन और श्रेष्ठ ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं (पान्तं पुरुस्पृहं आ) सबकी रक्षा करनेवाले और अनेकोंके चाहने योग्य तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३१२ ३१ ३२१ २३ १ ३२३२उ
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ
३२३ २ ३२ ३२३१ २३ १२
जातमग्निम् । कविँ सम्राजमतिथिं जनाना-
३२३१२ ३२
मासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० त्रिष्टुप् । दे० वैश्वानरः अग्निः । अथ तृतीय-खण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । मूर्द्धानम् शिरोभूतम् कस्य ? दिवः द्युलो—कस्य पृथिव्याः प्रथितायाः भूमेः अरतिं गन्तारम् यद्वा गन्तव्यम् स्वा-मिनं वैश्वानरं विश्वेषाम् नराणां सम्बंधिनम्-ऋते ऋतमिति सत्यस्य यज्ञस्य वा नाम (निघ० ३, १०, ६) । निमित्त-सप्तम्येषा (२, ३, ३६ वा०) ऋतनिमित्तम् आ आभिमुख्येन जातम् सृष्ट्यादावुत्पन्नं कविम् क्रांतदर्शिनम् सम्राजम सम्यग्राजमानं जनानाम् यजमानानाम् अतिथिं हविर्वहनाय सततम् गन्तारं यद्वा अतिथिवत पूज्यम । आसन् आसनि द्विर्नायाथे सप्तमी (३, १, ८५) अग्निलक्षणेनास्येन हि देवा हवींषि भुञ्जते नः अस्माकम् पात्रं पातारं रक्षकं वैश्वानरमग्निं देवाः स्तोतारः

ऋत्विजः देवा यत्र वा आ जनयन्त यज्ञाभिवृद्धये न अजीजनन् अरण्योः सकाशात् उदपादयन् आसन्नः पात्रम्-आसन्नापात्रम्-इति पाठौ ॥१॥

(दिवः मूर्धानम्) द्युलोकके मस्तकरूप (पृथिव्याः अरतिम) पृथिवीके स्वामी (वैश्वानरम्) सकल मनुष्योंसे संबन्ध रखनेवाले (ऋते आ जातम्) यज्ञके निमित्त सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए (कविं सम्राजम्) क्रान्तकर्मा और भलेप्रकार विराजमान (जनानां अतिथिम्) यजमानोंके अतिथिकी समान पूजनीय (आसन) देवताओंके मुखरूप (नः) हमारे (पात्रम्) रक्षक वैश्वानर अग्निको (देवाः) देवता वा ऋत्विज (आजनयन्त) यज्ञमें अरणियोंसे प्रगट करते हुए ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
त्वां विश्वे अमृत जायमानꣳ शिशुं न देवा
३ १ २र२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
अभि सं नवन्ते । तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वा-
१ २ ३ १ २र
नर यत्पित्रोरदीदेः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अमृत ! मरण-रहिताग्ने ! विश्वे देवाः स्तोतारः जायमानम् अरण्योः सकाशात् उत्पद्यमानं शिशुं न पुत्रमिव त्वा अभि सं नवन्ते अभिसंस्तुवन्ति यद्वा, दीव्यन्तीति देवा रश्मयः ते सर्वे जायमानं त्वामभिसन्नवन्ते अभिगच्छन्ति, यथा पितरः पुत्रमभिगच्छन्ति, अपि च हे वैश्वानर अग्ने ! यद् यदा पित्रोः पालयित्र्योः द्यावापृथिव्योर्मध्ये अदीदेः दीप्यसे, तदानीं तव त्वदीयैः क्रतुभिः कर्मभिः ज्योतिष्टोमादिभिर्यागैः अमृतत्वम् देवत्वम् आयन् यजमानाः प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

(अमृत) हे अमर अग्ने (विश्वे देवाः) सकल स्तुति करनेवाले (जायमानं त्वाम्) अरणियोंसे प्रकट होते हुए तुझको (शिशुं न अभि सं नवन्ते) बालककी समान सराहते हैं (वैश्वानर) हे अग्ने ! (यद्, पित्रोः अदीदेः) जब पालन करनेवाले द्यावापृथिवीके मध्यमें दीप्त होता है, तब यजमान (तव क्रतुभिः अमृतत्वं आयन्) तेरे ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंके द्वारा देवभावको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
नाभिं यज्ञानाꣳ सदनꣳ रयीणां महामाहाव-

३ १ २र ३ २ ३क २र ३ १ २
मभि सं नवन्त । वैश्वानरथ्ँ रथ्यमध्वराणां
३ १ २ ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य कतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । नाभिं यज्ञानां, सदनं रयीणां धनानां स्थानमेकनिलयं महां महान्तम् आहावं आहूयन्ते अस्मिन्नाहुतय इत्याहावः तादृशम् यद्वा वृष्ट्युदकधाराणामाहावस्थानीयमेवम्भूतम् अग्निम् अभि सं नवन्त स्तोतारः सम्यक् स्तुवन्ति । तथा वैश्वानरं विश्वेषां नराणां सम्बन्धिनम् अध्वराणां यज्ञानां रथ्यं रथिनं, यथा रथी स्वरथं नयति तद्वन्नेतारं गमयितारम् यज्ञस्य केतुं प्रज्ञापकम् एवंविधमग्निं देवाः स्तोतार ऋत्विजो देवा एव वा जनयन्त जनयन्ति मन्थनेनोत्पादयन्ति ॥ ३ ॥

(यज्ञानां नाभिम्) यज्ञोंके नाभिरूप (रयीणां सदनम्) धनोंके अद्वितीय भण्डार (महाम्) बड़े (आहावम्) जिसमें आहुति दीजाती हैं ऐसे अग्निको (अभिसंनवन्ते) ऋत्विज् भलेप्रकार स्तुति करते हैं तथा (वैश्वानरं अध्वराणां रथ्यम्) सकल मनुष्योंके संबन्धी यज्ञोंके निर्वाहकर्त्ता (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञके ज्ञापक अग्निको (देवाः जनयन्त) देवता वा ऋत्विज मन्थनसे उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
१ २ ३ २ ३ २
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

ऋ० यजतः । छ० गायत्री । दे० मित्रावरुणौ । अथ द्वितीय-तृचे प्रथमा । हे मदीया ऋत्विजः ! वः यूयमित्यर्थः । मित्राय वरुणाय विपा व्याप्तया गिरा स्तुत्या गायत स्तुतिं कुरुत स्तुत्या स्तुनेत्येतत् पाकं पचतीतिवत् । हे महिक्षत्रौ प्रभूत-बलौ युवाम् ऋतं यज्ञं बृहत् महत् अपि प्रशस्तं स्तुत्यर्थमागच्छतमिति शेषः । अथवा महत् प्रभूतम् ऋतं स्तोत्रं शृणुतमिति शेषः ॥ १ ॥

हे मेरे ऋत्विजो ! (वः मित्राय वरुणाय) तुम मित्रावरुणके अर्थ (पिवा गिरा गायत) व्यापक वाणीसे स्तुति करो (महिक्षत्रौ) हे अधिक बलवाले मित्रावरुण देवताओं ! (ऋतम) यज्ञमें (बृहत्) बहुत सी स्तुतिके लिये आओ ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । या यौ मित्रश्च वरुणश्च परस्परापेक्षया च-शब्दः उभा उभौ सम्राजा सम्राजानौ सर्वस्य स्वामिनौ घृतयोनी उदकस्योत्पादकौ देवा द्योतमानौ देवेषु मध्ये प्रशस्ता प्रकर्षेण स्तुतौ तौ स्तुत्या गायतेति पूर्वत्रान्वयः ॥ २ ॥

(या मित्रश्च वरुणश्च) जो मित्र और वरुण (उभा) दोनों (सम्राजा) सबके स्वामी (घृतयोनी) जलके उत्पादक (देवा) प्रकाशवान् (देवेषु प्रशस्ता) सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं उनकी स्तुति करो ॥२॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ता तौ देवौ नः अस्मदर्थं पार्थिवस्य पृथिवीसम्बद्धस्य दिव्यस्य दिवि भवस्य च महः महतः रायः धनस्य शक्तं समर्थम् भवतं दातुमिति शेषः हे देवौ ! वां युवयोः महि महत् पूज्यं क्षत्रं बलं देवेषु प्रसिद्धं स्तुम इति शेषः ॥ ३ ॥

(ता) वह मित्रावरुण देवता (नः) हमें (पार्थिवस्य) भूलोकके (दिव्यस्य) द्युलोकके (महः रायः) बहुतसे धनके देनेको (शक्तम्) समर्थ हों । हे देवताओ ! (वाम्) तुम दोनोंके (देवेषु महि) देवताओंमें पूजनीय (क्षत्रम्) बलकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ २ ३२ ३ १ २
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

ऋ० मधुच्छन्दाः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीय-तृचे-प्रथमा । चित्रभानो ! हे विचित्र-दीप्ते ! इन्द्र ! अस्मिन् कर्मणि आयाहि आगच्छ । सुताः अभिषुताः इमे सोमाः त्वायवः त्वां कामयमाना वर्त्तन्ते अण्वीभिः अंगुलिनामैतत् (निघ० २, ५, २) ऋत्विजामंगु-

लिभिः सुता इत्यन्वयः। किञ्च ते सोमाः तना नित्यं पूतासः शुद्धाः ऊर्णा—पवित्रेण शोधितत्वात् ॥ १ ॥

(चित्रभानो इन्द्र) हे विचित्र प्रकाशवाले इंद्र ! (आ याहि) इस कर्ममें आइये (अण्वीभिः सुताः) ऋत्विजोंकी अंगुलियोंसे सिद्ध किये हुए (तना पूतासः) नित्य शुद्ध (इमे) यह सोम (त्वायवः) तुम्हारे हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
२ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्द्र ! त्वम् आयाहि अस्मिन् कर्मणि आगच्छ। किमर्थम्? वाघतः ऋत्विङ्नामैतत् (निघ० ३, १८ ३) ऋत्विजः ब्रह्माणि वेद—रूपाणि स्तोत्राणि उप एतुम्। कीदृशस्त्वम् ? धिया अस्मदीयया प्रज्ञया इषितः प्राप्तः अस्मद्भक्त्या प्रेरित इत्यर्थः। विप्रजूतः यथा यजमान-भक्त्या प्रेरितः तथान्यैरपि विप्रैः मेधाविभिः ऋत्विग्भिः प्रेरितः। कीदृशस्य ? वाघतः ? सुतावतः अभिषुतसोमयुक्तस्य ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (धिया इषितः) हम यजमानोंकी भक्तिसे प्रेरणा किये हुए (विप्रजूतः) ऋत्विजों करके प्रेरणा किये हुए तुम (सुतावतः वाघतः) अभिषव किये सोमवाले ऋत्विजके (ब्रह्माणि) वेदरूप स्तोत्रोंको (उप) स्वीकार करनेके लिये (आयाहि) इस कर्म में आओ

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
३ १ २ ३ १ २
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हरि—शब्दः इंद्र—सम्बन्धिनोरश्वयोर्नामधेयम् हरी इंद्रस्य लोहितोऽग्नेः (नि० १, १५, १२)—इति तद्दीयाश्व—नामत्वेन पठितत्वात् हे हरिवः ! अश्वयुक्तेन्द्र ! त्वं ब्रह्माणि आनेतुम् आ याहि कीदृशस्त्वम्? तूतुजानः त्वरमाणः आगत्य च अस्मिन् सुते सोमाभिषव-युक्ते कर्मणि नः अस्मदीयं चनः अन्ननामैतत् (निरु० नै ६, १६) हविर्लक्षणमन्नं दधिष्व धारय स्वीकुरुष्वेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(हरिवः) हे इंद्र ! तुम (तूतुजानः) शीघ्रता करते हुए (ब्रह्माणि

उप) वेदरूप स्तोत्रोंके स्वीकार करनेको (आयाहि) इस कर्ममें आओ (सुते नः चनः दधिष्व) सोमके अभिषववाले इस कर्ममें हमारे हविरूप अन्नको धारण करो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० इन्द्राग्नी । अथ चतुर्थे-तृचे-प्रथमा । हे स्तोतः ! तम् अग्निम् ईडिष्व स्तुहि यः अग्निः अर्चिषा ज्वालारूपेण तेजसा विश्वा सर्वाणि वना वनान्यरण्यानि परिष्वजत् परिष्वजति परितो वेष्टयति यश्च तानि वनानि जिह्वया ज्वालया दग्ध्वा कृष्णा कृष्णवर्णानि कृणोति तमीडिष्वेति सम्बन्धः ॥ १ ॥

(यः अर्चिषा विश्वा वना परिष्वजत्) जो अग्नि ज्वालारूप तेज से सकल वनोंको घेर लेता है । और (जिह्वया कृष्णा कृणोति) ज्वाला से जलाकर कृष्ण वर्णके करदेता है हे स्तोतः (तं ईडिष्व) उस अग्नि की स्तुति करो ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः मर्त्यः मनुष्यः इद्धे दीप्ते अग्नौ सुम्नं सुखकरं हविः इंद्रस्य चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (२, ३, ६२) इंद्राय आविवासति परिचरति प्रयच्छति तस्य मर्त्यस्य द्युम्नाय द्योतमानायान्नाय तदर्थं सुतराः सुखेन तरणीयाः अपः उदकानि वृष्ट्यात्मकानि इंद्रः करोत्विति शेषः २

(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (इद्धे) प्रज्वलित अग्निमें (इंद्रस्य सुम्नं आविवासति) इंद्रके अर्थ सुखदायक हविको अर्पण करता है । उस मनुष्यके (द्युम्नाय सुतराः अपः) अन्नके लिये सुखसे पार पाने योग्य वर्षाके जलों को इंद्र करे ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्राग्नी । तातौ युवां वाजवतीः अन्नवतीः इषः इष्यमाणाः वृष्टीः यद्वा, वाजी वलं तद्वती इषः अन्नानि आशून् शीघ्र-गान् अर्वतः अश्वांश्च नः अस्मभ्यं पिपृतम् पूरयतम् प्रयच्छतम् । किमर्थम् ? इंद्रम् अग्निश्च आ वोढवे आ समन्तात् वोढुं, हविर्भिः प्रापयंतु ३

हे इन्द्र अग्नि देवताओं ! (ता) वह तुम (इन्द्रं च अग्निं आ वोढवे) इन्द्र और अग्निको सब ओरसे हवि पहुंचानेके लिये (नः) हमें (वाजवतीः इषः) वलयुक्त अन्न (आशून् अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े (पिपृतम्) दो

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य तृतीय खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतथ्ँ सखा

२ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३

सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् । मर्य्य इव युव-

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

तिभिः समर्षति सोम कलशे शतयामना पथा १

ऋ० सिकतानिवारी ऋषिगणः छ० जगती । दे० इन्द्रः । अथ चतुर्थ—खण्डे, प्रथम-तृचे—प्रथमा । इन्दुः सोमः इन्द्रस्य निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुदरं प्रो अयासीत् प्रैव गच्छति, गत्वा च सखा सखिभूतः सख्युः इन्द्रस्य सङ्गिरं सम्यग् गिरणाधारभूतम् उदरं नप्रमिनाति हिनस्ति किञ्च मर्य्य इव युवतिभिः मर्त्तो यथा तरुणीभिः स्त्रीभिः सह सङ्गतो भवति तद्वदयमपि सोमो युवतिभिर्मिश्रणशीलाभिर्वसतीवरीभिरद्भिः सह समर्पते सङ्गच्छते अभिषव-काल-पश्चात् सोमः शतयामना अनेकयामनसाधन-वित्तोपेतेन पथा मार्गेणदशापवित्रसंबन्धिना कलशे द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः । यद्वैकमेव वाक्यम्-यथा मर्य्यो मर्यो युवतिभिः सह सगच्छते एव कलशे शतयामनापथा सङ्गच्छते ॥ शतयामना-शतयाम्ना—इति पाठौ ॥ १ ॥

(इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य निष्कृतं प्रो अयासीत्) इन्द्रके उदररूप स्थानको प्राप्त होता है और प्राप्त होकर (सखा सख्युः न सङ्गिरं प्रमिनाति) मित्ररूप हुआ मित्र इन्द्रके उदरमें नहीं समाता है (मर्यः युवतिभिः इव) मनुष्य जैसे तरुणी स्त्रियोंके साथ मिलता है तैसे (सोमः समर्षति) सोम वसतीवरी जलोंके साथ मिलता है । अभि-

पव कालके पीछे सोम (शतयामना पथा कलशे) अनेकों साधन-सामग्रीवाले दशापवित्रके मार्गसे द्रोणकलशमें जाता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संव-
१ २ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ २
रणेष्वक्रमुः । हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि
३ २ ३ २ ३ १ २
धेनवः पयसे दसिश्रयुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोमाः ! वः युष्माकं धियः ध्यातारः मन्द्रयुवः मदकरं शब्दं कामयमानाः पनस्युवः स्तुतिं कामयमानाः विपन्यवः—स्तोतृ-नामैतत् स्तोतारः संवरेषु तृणकटा—वरणापेतेषु याग—ग्रहेषु प्राक्रमुः प्रक्रमन्ते । तदेवाह—स्तुभः, स्तोतारः हरिं हरितवर्णं क्रीडन्तं क्रीडनशीलं सोमम् अभ्यनूषत अभिष्टुवन्ति धेनवः अपि पयसा स्वीयेन क्षीरेणैव इत् इमं सोमम् अभिलक्ष्य अशिश्रयुः अधिकं श्रीणन्ति संवरणेषु—संवनेषु—इति पाठौ, हरिं क्रीडन्तं सोमम्मर्नाया—इति च पयसेदसिश्रयुः—पयसेमभिश्रयुः—इति च ॥ २ ॥

हे सोमो (वः धियः) तुम्हारा ध्यान धरनेवाले (मन्द्रयुवः, पनस्युवः विपन्यवः) मदकारी शब्दको चाहनेवाले और स्तुतिके अभिलाषी स्तोता (संवरणेषु प्राक्रमुः) यज्ञमण्डपोंमें कर्मानुष्ठानोंमें लगते हैं, (स्तुभः हरिं क्रीडन्तं अभ्यनूषत) स्तोता हरे वर्णके क्रीडनशील सोमकी स्तुति करते हैं (धेनवः पयसा इत् अभिशिश्रयुः) गौएँ अपने दूधसे इस सोमकी ओरको लक्ष्य करके अधिक दुग्ध देती हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व
१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमान ऊर्मिणा । या नो दोहते त्रिरहन्नस-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
श्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्य्यम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्दो ! दीप्त ! सोम ! पवमानः त्वं नः अस्माकं संयतं संगृहीतं पिप्युषीं प्रवृद्धम् इषम् अन्नम् ऊर्मिणा प्रवाह—रूपेण तदीयेन रसेन पवस्व प्रयच्छेत्यर्थः । या इट् नः अस्माकम् अहन् अहनि अहः त्रिः त्रिषु सवनेषु असश्चुषी अप्रतिबन्धी दोहते । किम् ? क्षुमत

२ ३१ २र३२३१ २ ३२
आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।
२३१ २३१२
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥

अथ द्वादशी । हे सुक्रतो ! शोभन-प्रज्ञ ! सोम! त्वदीयं रयिं धनम् वयम् आ पृणीमहे । किञ्च सुचेतनम् चिती सञ्ज्ञाने (भ्वा० प०) भावे औणादिक उन् प्रत्ययः सुज्ञानञ्च । किञ्च तनूषु अस्मत्पात्रेषु च धनं सुज्ञानञ्च त्वम् आ विधेहि यद्वा पुत्रार्थं वयमावृणीमहे । तथा पान्तं सर्वस्य रक्षकं पुरुस्पृहं बहुभिर्यष्टृभिः काम्यमानं त्वां सम्भजामहे ॥ १२ ॥

(सुक्रतो) हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले सोम ! (रयिं आ) धनकी प्रार्थना करते हैं (सुचेतनं आ) श्रेष्ठ ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं (तनुषु आ) अपने पुत्रोंमें धन और श्रेष्ठ ज्ञानकी प्रार्थना करते हैं (पान्तं पुरुस्पृहं आ) सबकी रक्षा करनेवाले और अनेकोंके चाहने योग्य तेरी हम आराधना करते हैं ॥ १२ ॥

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३१२ ३१ ३२१ २३ १ ३२३२उ
मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ
३२३ २ ३२ ३२३१ २३ १२
जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनाना-
३२ ३ १२ ३२
मासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० त्रिष्टुप् । दे० वैश्वानरः अग्निः । अथ तृतीय-खण्डे प्रथमतृचे—प्रथमा । मूर्द्धानम् शिरोभूतम् कस्य ? दिवः द्युलो-कस्य पृथिव्याः प्रथितायाः भूमेः अरतिं गन्तारम् यद्वा गन्तव्यम् स्वा-मिनं वैश्वानरं विश्वेषाम् नराणां सम्बंधिनम् ऋते ऋतमिति सत्यस्य यज्ञस्य वा नाम (निघ० ३, १०, ६) । निमित्त-सप्तम्येषा (२, ३, ३६ वा०) ऋतनिमित्तम् आ आभिमुख्येन जातम् सृष्ट्यादावुत्पन्नं कविम् क्रांतदर्शिनम् सम्राजम सम्यग्राजमानं जनानाम् यजमानानाम् अतिथिं हविर्वहनाय सततम् गन्तारं यद्वा अतिथिवत पूज्यम । आसन् आसनि द्वितीयार्थे सप्तमी (३, १, ८५) अग्निलक्षणेनास्येन हि देवा हवींषि भुञ्जते नः अस्माकम् पात्रं पातारं रक्षकं वैश्वानरमग्निं देवाः स्तोतारः

३ १ २र ३ २ ३क २र ३ १ २
मभि सं नवन्त । वैश्वानरᳪ रथ्यमध्वराणां
३ १ २ ३ १ २ ३ २
यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । नाभिं यज्ञानां, सदनं रयीणां धनानां स्थानमेकनिलयं महां महान्तम् आहावं आहूयन्ते ·अस्मिन्नाहुतय इत्याहावः तादृशम् यद्वा वृष्ट्यु दकधाराणामाहावस्थानीयमेवम्भूतम् अग्निम् अभि सं नवन्त स्तोतारः सम्यक् स्तुवन्ति । तथा वैश्वानरं विश्वेषां नराणां सम्बन्धिनम् अध्वराणां यज्ञानां रथ्यं रथिनं, यथा रथी स्वरथं नयति तद्वन्नेतारं गमयितारम् यज्ञस्य केतुं प्रज्ञापकम् एवंविधमग्निं देवाः स्तोतार ऋत्विजो देवा एव वा जनयन्त जनयन्ति मन्थनेनोत्पादयन्ति ॥ ३ ॥

(यज्ञानां नाभिम्) यज्ञोंके नाभिरूप (रयीणां सदनम्) धनोंके अद्वितीय भण्डार (महाम्) बड़े (आहावम्) जिसमें आहुति दी जाती हैं ऐसे अग्निको (अभिसंनवन्ते) ऋत्विज् भलेप्रकार स्तुति करते हैं तथा (वैश्वानरं अध्वराणां रथ्यम्) सकल मनुष्योंके संबन्धी यज्ञोंके निर्वाहकर्त्ता (यज्ञस्य केतुम) यज्ञके ज्ञापक अग्निको (देवाः जनयन्त) देवता वा ऋत्विज मन्थनसे उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
१ २ ३ २ ३ २
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

ऋ० यजतः । छ० गायत्री । दे० मित्रावरुणौ । अथ द्वितीय-तृचे प्रथमा । हे मदीया ऋत्विजः ! वः यूयमित्यर्थः । मित्राय वरुणाय विपा व्याप्तया गिरा स्तुत्या गायत स्तुतिं कुरुत स्तुत्या स्तुतेत्येतत् पाकं पचतीतिवत् । हे महिक्षत्रौ प्रभूत—बलौ युवाम् ऋतं यज्ञं बृहत् महत् अपि प्रशस्तं स्तुत्यर्थमागच्छतमिति शेषः । अथवा महत् प्रभूतम् ऋतं स्तोत्रं शृणुतमिति शेषः ॥ १ ॥

हे मेरे ऋत्विजो ! (वः मित्राय वरुणाय) तुम मित्रावरुणके अर्थ (पिवा गिरा गायत) व्यापक वाणीसे स्तुति करो (महिक्षत्रौ) हे अधिक बलवाले मित्रावरुण देवताओ ! (ऋतम) यज्ञमें (बृहत्) बहुत सी स्तुतिके लिये आओ ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
३ २ ३ १ २ ३ २
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । या यौ मित्रश्च वरुणश्च परस्परापेक्षया च-शब्दः उभा उभौ सम्राजा सम्राजानौ सर्वस्य स्वामिनौ घृतयोनी उदकस्योत्पादकौ देवा द्योतमानौ देवेषु मध्ये प्रशस्ता प्रकर्षेण स्तुतौ तौ स्तुत्या गायतेति पूर्वत्रान्वयः ॥ २ ॥

(या मित्रश्च वरुणश्च) जो मित्र और वरुण (उभा) दोनों (सम्राजा) सबके स्वामी (घृतयोनी) जलके उत्पादक (देवा) प्रकाशवान् (देवेषु प्रशस्ता) सब देवताओंमें श्रेष्ठ हैं उनकी स्तुति करो ॥२॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । ता तौ देवौ नः अस्मदर्थं पार्थिवस्य पृथिवीसम्बद्धस्य दिव्यस्य दिवि भवस्य च महः महतः रायः धनस्य शक्तं समर्थम् भवतं दातुमिति शेषः हे देवौ ! वां युवयोः महि महत् पूज्यं क्षत्रं बलं देवेषु प्रसिद्धं स्तुम इति शेषः ॥ ३ ॥

(ता) वह मित्रावरुण देवता (नः) हमें (पार्थिवस्य) भूलोकके (दिव्यस्य) द्युलोकके (महः रायः) बहुतसे धनके देनेको (शक्तम्) समर्थ हों । हे देवताओ ! (वाम्) तुम दोनोंके (देवेषु महि) देवताओंमें पूजनीय (क्षत्रम्) बलकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥

ऋ० मधुच्छन्दाः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ तृतीय-तृचे-प्रथमा । चित्रभानो ! हे विचित्र-दीप्ते ! इन्द्र ! अस्मिन् कर्मणि आयाहि आगच्छ । सुताः अभिषुताः इमे सोमाः त्वायवः त्वां कामयमाना वर्त्तन्ते अण्वीभिः अंगुलिनामैतत् (निघ० २, ५, २) ऋत्विजामंगु-

लिभिः सुता इत्यन्वयः। किञ्च ते सोमाः तना नित्यं पूतासः शुद्धाः ऊर्णा—पवित्रेण शोधितत्वात् ॥ १ ॥

(चित्रभानो इन्द्र) हे विचित्र प्रकाशवाले इंद्र ! (आ याहि) इस कर्ममें आइये (अण्वीभिः सुताः) ऋत्विजोंकी अंगुलियोंसे सिद्ध किये हुए (तना पूतासः) नित्य शुद्ध (इमे) यह सोम (त्वायवः) तुम्हारे हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
२ ३ १ २ ३ १ २
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्द्र ! त्वम् आयाहि अस्मिन् कर्मणि आगच्छ। किमर्थम्? वाघतः ऋत्विङ्नामैतत् (निघ० ३, १८ ३) ऋत्विजः ब्रह्माणि वेद—रूपाणि स्तोत्राणि उप एतुम्। कीदृशस्त्वम् ? धिया अस्मदीयया प्रज्ञया इषितः प्राप्तः अस्मद्भक्त्या प्रेरित इत्यर्थः। विप्रजूतः यथा यजमान-भक्त्या प्रेरितः तथान्यैरपि विप्रैः मेधाविभिः ऋत्विग्भिः प्रेरितः। कीदृशस्य ? वाघतः ? सुतावतः अभिषुतसोमयुक्तस्य ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र ! (धिया इषितः) हम यजमानोंकी भक्तिसे प्रेरणा किये हुए (विप्रजूतः) ऋत्विजों करके प्रेरणा किये हुए तुम (सुतावतः वाघतः) अभिषव किये सोमवाले ऋत्विजके (ब्रह्माणि) वेदरूप स्तोत्रोंको (उप) स्वीकार करनेके लिये (आयाहि) इस कर्ममें आओ

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।
३ १ २ ३ १ २
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हरि—शब्दः इंद्र—सम्बन्धिनोरश्वयोर्नामधेयम् हरी इंद्रस्य लोहितोऽग्नेः (नि० १, १५, १२)—इति तदीयाश्व—नामत्वेन पठितत्वात् हे हरिवः ! अश्वयुक्तेन्द्र ! त्वं ब्रह्माणि आनेतुम् आ याहि कीदृशस्त्वम् ? तूतुजानः त्वरमाणः आगत्य च अस्मिन् सुते सोमाभिषव-युक्ते कर्मणि नः अस्मदीयं चनः अन्ननामैतत् (निरु० नै ६, १६) हविर्लक्षणमन्नं दधिष्व धारय स्वीकुरुवन्नित्यर्थः ॥ ३ ॥

(हरिवः) हे इंद्र ! तुम (तूतुजानः) शीघ्रता करते हुए (ब्रह्माणि

उप) वेदरूप स्तोत्रोंके स्वीकार करनेको (आयाहि) इस कर्ममें आओ (सुते नः चनः दधिष्व) सोमके अभिषववाले इस कर्ममें हमारे हविरूप अन्नको धारण करो ॥ ३ ॥

१२ ३ २ ३२ ३ २३ १ २ ३१२
तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
३ २ ३१ २ ३१२
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १ ॥

ऋ०भरद्वाजः । छ०गायत्री । दे०इन्द्राग्नी । अथ चतुर्थे-तृचे-प्रथमा । हे स्तोतः ! तम् अग्निम् ईडिष्व स्तुहि यः अग्निः अर्चिषा ज्वालारूपेण तेजसा विश्वा सर्वाणि वना वनान्यरण्यानि परिष्वजत् परिष्वजति परितो वेष्टयति यश्च तानिवनानि जिह्वया ज्वालया दग्ध्वा कृष्णा कृष्णवर्णानि कृणोति तमीडिष्वेति सम्बन्धः ॥ १ ॥

(यः अर्चिषा विश्वा वना परिष्वजत्) जो अग्नि ज्वालारूप तेज से सकल वनोंको घेर लेता है । और (जिह्वया कृष्णा कृणोति) ज्वाला से जलाकर कृष्ण वर्णके करदेता है हे स्तोतः (तं ईडिष्व) उस अग्नि की स्तुति करो ॥ १ ॥

२ ३२ ३ १२ ३ १ २२ ३ १ २
य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
३ १२ ३१२ ३२
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः मर्त्यः मनुष्यः इद्धे दीप्ते अग्नौ सुम्नं सुखकरं हविः इंद्रस्य चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (२, ३, ६२) इंद्राय आविवासति परिचरति प्रयच्छति तस्य मर्त्यस्य द्युम्नाय द्योतमानायान्नाय तदर्थं सुतराः सुखेन तरणीयाः अपः उदकानि वृष्ट्यात्मकानि इंद्रः करोत्विति शेषः २

(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (इद्धे) प्रज्वलित अग्निमें (इंद्रस्य सुम्नं आविवासति) इंद्रके अर्थ सुखदायक हविको अर्पण करता है । उस मनुष्यके (द्युम्नाय सुतराः अपः) अन्नके लिये सुखसे पार पाने योग्य वर्षाके जलोंको इंद्र करे ॥ २ ॥

२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २ ३१२
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः ।
१ २३ २ ३ १२
एन्द्रमग्निं च वोढवे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्राग्नी।तातौयुवां वाजवतीः अन्नवतीः इषः इष्यमाणाः वृष्टीः यद्वा, वाजी वलं तद्वती इषः अन्नानि आशून् शीघ्रगान् अर्वतः अश्वांश्च नः अस्मभ्यं पिपृतम् पूरयतम् प्रयच्छतम् । किमर्थम्? इंद्रम् अग्निश्च आ वोढवे आ समन्तात् वोढुं, हविर्भिः प्रापयंतु ३

हे इन्द्र अग्नि देवताओं! (ता) वह तुम (इन्द्रं च अग्निं आ वोढवे) इन्द्र और अग्निको सब ओरसे हवि पहुंचानेके लिये (नः) हमें (वाजवतीः इषः) बलयुक्त अन्न (आशून् अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े (पिपृतम्) दो

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य तृतीय खण्डः समाप्तः ।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतथ्ँ सखा
२ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३
सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम् । मर्य्य इव युव-
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
तिभिः समर्षति सोम कलशे शतयामना पथा १

ऋ० सिकतानिवारी ऋषिगणः छ० जगती। दे० इन्द्रः। अथ चतुर्थ—खण्डे, प्रथम-तृचे—प्रथमा । इन्दुः सोमः इन्द्रस्य निष्कृतं संस्कृतं स्थानमुदरं प्रो अयासीत् प्रैव गच्छति, गत्वा च सखा सखिभूतः सख्युः इन्द्रस्य सङ्गिरं सम्यग् गिरणाधारभूतम् उदरं न प्रमिनाति हिनस्ति किञ्च मर्य्य इव युवतिभिः मर्त्तो यथा तरुणीभिः स्त्रीभिः सह सङ्गतो भवति तद्वद्यमपि सोमो युवतिभिर्मिश्रणशीलाभिर्वसतीवरीभिरद्भिः सह समर्षते सङ्गच्छते अभिषव-काल-पश्चात् सोमः शतयामना अनेकयामनसाधन-वित्तोपेतेन पथा मार्गेण दशापवित्रसंबन्धिना कलशे द्रोणकलशे गच्छतीति शेषः । यद्वैकमेव वाक्यम्-यथा मर्य्यो मर्त्यो युवतिभिः सह सगच्छते एव कलशे शतयामनापथा सङ्गच्छते॥ शतयामना-शतयाम्ना—इति पाठौ ॥ १ ॥

(इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य निष्कृतं प्रो अयासीत्) इन्द्रके उदररूप स्थानको प्राप्त होता है और प्राप्त होकर (सखा सख्युः न सङ्गिरं प्रमिनाति) मित्ररूप हुआ मित्र इन्द्रके उदरमें नहीं समाता है (मर्यः युवतिभिः इव) मनुष्य जैसे तरुणी स्त्रियोंके साथ मिलता है तैसे (सोमः समर्षति) सोम वसतीवरी जलोंके साथ मिलता है । अभि-

पव कालके पीछे सोम (शतयामना पथा कलशे) अनेकों साधन-सामग्रीवाले दशापवित्रके मार्गसे द्रोणकलशमें जाता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संव-
१ २ २ ३ १ २ ३क २र ३ २ ३ २
रणेष्वक्रमुः । हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि
३ २ ३ २ ३ १ २
धेनवः पयसे दसिश्रयुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोमाः ! वः युष्माकं धियः ध्यातारः मन्द्रयुवः मदकरं शब्दं कामयमानाः पनस्युवः स्तुतिं कामयमानाः विपन्यवः—स्तोतृ—नामैतत् स्तोतारः संवरेषु तृणकटा—वरणापेतेषु याग—ग्रहेषु प्राक्रमुः प्रक्रमन्ते । तदेवाह—स्तुभः, स्तोतारः हरिं हरितवर्णं क्रीडन्तं क्रीडनशीलं सोमम् अभ्यनूषत अभिष्टुवन्ति धेनवः अपि पयसा स्वीयेन क्षीरेणैव इत् इमं सोमम् अभिलक्ष्य अशिश्रयुः अधिकं श्रीणन्ति संवरणेषु—संवनेषु—इति पाठौ, हरिं क्रीडन्तं सोमम्मर्नाया—इति च पयसेदसिश्रयुः—पयसेमभिश्रयुः—इति च ॥ २ ॥

हे सोमो (वः धियः) तुम्हारा ध्यान धरनेवाले (मन्द्रयुवः, पनस्युवः विपन्यवः) मदकारी शब्दको चाहनेवाले और स्तुतिके अभिलाषी स्तोता (संवरणेषु प्राक्रमुः) यज्ञमण्डपोंमें कर्मानुष्ठानोंमें लगते हैं, (स्तुभः हरिं क्रीडन्तं अभ्यनूषत) स्तोता हरे वर्णके क्रीडनशील सोमकी स्तुति करते हैं (धेनवः पयसा इत अभिशिश्रयुः) गौएँ अपने दूधसे इस सोमकी ओरको लक्ष्य करके अधिक दुग्ध देती हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व
१ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
पवमान ऊर्मिणा । या नो दोहते त्रिरहन्नस-
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
श्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्य्यम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्दो ! दीप्त ! सोम ! पवमानः त्वं नः अस्माकं संयतं संगृहीतं पिप्युषीं प्रवृद्धम् इषम् अन्नम् ऊर्मिणा प्रवाह—रूपेण तदीयेन रसेन पवस्व प्रयच्छेत्यर्थः । या इट् नः अस्माकम् अहन् अहनि अह्नः त्रिः त्रिषु सवनेषु असश्चुषी अप्रतिबन्धी दोहते । किम् ? क्षुमत

शब्दोपेतं सर्वत्र श्रूयमाणं वाजवत् बलवत् मधुमत् माधुर्योपेतं सुवीर्य्यं शोभन—सामर्थ्यं पुत्रं दोहते । तमिषं पवस्वेति समन्वयः ॥ ऊर्मिणा- अध्रियम्—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(इन्दो सोम पवमान) हे दीप्त सोम ! पवित्र तू (नः संयतं पिप्युषीं इषम्) हमारे संग्रह करेहुए बहुतसे अन्नको (ऊर्मिणा पवस्व) प्रवाह-रूप अपने रससे पवित्र करो (या इट्) जो अन्न (नः अहन् त्रिः असश्चुषी) हमारे दिनमेंके तीन सवनोंमें निर्बाधरूपसे (क्षुमत् वाज-वत् मधुमत् सुवीर्यं दोहते) सर्वत्रप्रसिद्ध बलवान् मधुरताभरे सुन्दर शक्तिमान् पुत्रको देता है ॥ ३ ॥

२ २ १ २र ३ १ ३ १ २ ३ १ २
न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्त्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा १

ऋ० पुरुहन्मा । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ नकिरिति प्रगाथरूपे द्वितीयसूक्ते-प्रथमा । तं जनम् अन्यो मर्त्यो जनः कर्मणा हननादि व्यापारेण नकिः नशत् नैव व्याप्नोति, यः इंद्रं चकार इंद्रमेवानुकूलं यज्ञैः साधनैश्चकार । कीदृशमिन्द्रम् सदावृधं सर्वदा वर्द्धकं, विश्व-गूर्त्तं सर्वैःस्तुत्यम्, ऋभ्वसं महान्तम् ओजसा स्वीयेन बलेन अधृष्टशत्रु-भिरनभिभूतम् धृष्णुं शत्रूणामभिभवनशीलम् ॥ धृष्णुमोजसा धृष्णु-वोजसम्—इति पाठौ ॥ १ ॥

(यः) जो पुरुष (सदावृधं विश्वगूर्त्तं ऋभ्वसं ओजसा अधृष्टं इन्द्रम्) सदा वृद्धि देनेवाले सबके प्रशंसनीय महान् और अपने बलसे शत्रुओंका तिरस्कार न पानेवाले तथा शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले इन्द्रको (न) इस समय (यज्ञैः चकार) यज्ञोंके द्वारा अनुकूल कर लेता है (तम्) उस पुरुषको दूसरा डाह करनेवाला पुरुष (कर्मणा नकिः नशत्) हनन आदि व्यापारसे नहीं दबा सकता ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः

अथ द्वितीया । असाढम् असोढम् उग्रम् उद्गूर्णबलं पृतनासु शत्रु

सेनासु सासहिम् अभिभवितारमिन्द्रं स्तौमीत्यर्थः; यस्मिन् इन्द्रे जायमान महीः महिष्यः उरुज्रयः बहु वेगाः धेनवः हविरादिना प्रीणयित्र्यः अजा गाव एव वा समनोनवुः समस्तुवन्। न केवलं धेनव एव अपि तु द्यावः द्युलोकाः क्षामीः पृथिव्यश्च समनोनवुः, तत्रत्याः सर्व प्राणिनो नमन्त इत्यर्थः त्रिवृतो लोकाः—इति श्रुतः बहुवचनम्। क्षामी—क्षामः—इति पाठौ ॥ २ ॥

(आसाढं उग्रं पृतनासु सासहिं) असहनशील परमबली शत्रुसेनाओं में तिरस्कार करनेवाले इंद्रकी मैं स्तुति करता हूँ (यस्मिन् जायमान) जिस इंद्रके प्रकट होनेपर (महीः उरुज्रयः धेनवः) महिषियें और बड़े वेगवाली एवं हविसे तृप्त करनेवाली गौएँ और बकरियें (समनोनवुः) प्रणाम करती हैं (द्यावः क्षामीः समनोनवुः) द्युलोक और पृथिवी लोक के सकल प्राणी भी प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २र २ २ ३ १ २
सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत ।
२ ३ २ ३ १ २र ३ २
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥

ऋ० नारदः। छ० उष्णिक्। दे० सोमः। अथ पञ्चमखण्डे प्रथमतृचे-प्रथमा। हे सखायः! सखीभूताः स्तातार ऋत्विजः! आ निषीदत स्तोतुमुपविशत। अथ पुनानाय पूयमानाय सोमाय गायगत प्रकर्षेण गायत तमभिष्टुत। ततः अभिष्टुतं सोमं यज्ञैः यजनीयैः हविर्भिर्मिश्रणैश्च श्रिये शोभार्थं परि भूषत परितोऽलंकुरुत। तत्र दृष्टांतः—शिशुं न यथा शिशुं बालं पुत्रं पितर आभरणैरलंकुर्वन्ति तद्वत्॥ १ ॥

(सखायः) हे मित्र स्तोता और ऋत्विजो! (आ निषीदत) स्तुति करनेको बैठो (पुनानाय प्रगायत) सोमके अर्थ अधिकतर स्तुति गान करो फिर स्तुति कियेहुए सोमको (शिशुं न) जैसे बालक पुत्रको पिता आभूषणोंसे सुशोभित करते हैं। तैसे (यज्ञैः श्रिये परिभूषत) यजनके हवि आदि पदार्थोंसे शोभाके निमित्त भूषित करो॥ १ ॥

१ ३ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् ।
३ २ १ २ ३ १ २र
देवाव्या३ मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे ऋत्विजः! गयसाधनं गृहस्य साधनभूतम् ईम् एनं सोमं मातृभिः मातृभूताभिः वसतीवरीभिः संसृजत सम्मिश्रयत कथमिव? वत्सन्न यथा वत्सं मातृभिः गोभिः संयोजयंति तद्वत् कीदृशम्? देवाव्यं देवानां रक्षकं मदं मद—हेतुं द्विशवसं द्विगुणवेगम् अतिशयित-बलं वा यद्वा द्वयोर्लोकयोस्तत्र स्थिता देवमनुष्या इत्यर्थः, तेषां हविर्धन-प्रदानेन प्रवर्द्धयितारं तं सोमम् अभि सं सृजत

हे ऋत्विजो! (गयसाधनम् देवाव्यं मदं द्विशवसम् ईम्) घरके साधन देवताओंके रक्षक मदकारी द्युलोक और भूलोकके बलको बढ़ाने वाले इस सोमको (मातृभिः वत्सं न) जैसे माताके साथ बछड़े को युक्त करते हैं तैसे (अभिसं सृजत) वसतीवरी जलोंसे मिलाओ २

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। दक्षसाधनं बलस्य साधनं धनानां वृद्धेर्वा साधकं सोमं पुनाता पवित्रेण पुनीत (पूञ् पवने उ० क्रयादिः,,) तस्माल्लोटि तप्तनप्तनथनाश्च (७, १, ४३) इति तस्य तबादेशः पित्त्वाद्दीत्वाभावः शर्धाय वेगार्थं वीतये देवानां पानार्थं यथा भवति तथा मित्राय वरुणाय च शंतमम् अतिशयेन सुखं यथा भवति तथा पुनीतेत्यर्थः शंतमं शंतमः-इति पाठो ॥ ३ ॥

(शर्धाय) वेगके अर्थ (वीतये) देवताओंके पीनेके लिये (मित्राय वरुणाय) मित्र और वरुण देवताके अर्थ (यथा शंतमम्) जैसे सुख-दायक हो तैसे (दक्षसाधनं पुनाता) बलके साधन सोमको पवित्र करो

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

प्र वाज्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् १

ऋ० ऐश्वरयः अग्नयर्धिष्ण्यः। छ० द्विपदा। दे० सोमः अथ। प्रवाजीति तृचात्मकं द्वैपदं द्वितीयं सूक्तं—तत्र प्रथमा। वाजी बलवान् वेगवान वा सहस्रधारः बहुधारायुक्तः सोमः अव्यम् अभिभवं वारं वालं पवित्रं तिरः व्यवधायकं कुर्वन् प्राक्षाः विविधं प्रक्षरति क्षपतेर्लुङि रूपम् ॥ प्रवाजी—प्रसुवानः-इति पाठो ॥ १ ॥

(वाजी सहस्रधारः) बलवान् और अनेकों धाराओंवाला सोम

(अव्यं वारं तिरः प्रक्षाः) ऊनके पवित्रमेंको छन कर अनेकों धारोंसे बरसता है ॥ १ ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः ।
३ २
श्रीणानः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सः सोमः अक्षाः क्षरति । कीदृशः ? सहस्ररेतःबहुरेतस्कः बहूदकः अद्भिः वसतीवरीभिः मृजानः मृज्यमानः गोभिः गोविकारैः क्षीरादिभिः श्रीणानः श्रियमाणः ॥ २ ॥

(सहस्ररेताः) बहुतसे वीर्य वा अधिक जलवाला (अद्भिः मृजानः) वसतीवरी जलोंसे धोया जाता हुआ (गोभिः श्रीणानः सः) गोघृतादि से मिलाया जाता हुआ वह सोम (अक्षाः) बरसता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमाणो ।
२र ३ २
अद्रिभिः सुतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! नृभिः ऋत्विग्भिः येमानः नियम्यमानः अद्रिभिः ग्रावभिः सुतः अभिषुतः इंद्रस्य कुक्षा सुपाया डादेशः (३ ४, ३९) कुक्षौ उदरभूते कलशे वा प्रयाहि प्रकर्षेण गच्छ संहितायां येमान इत्यत्र णत्वम् ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम ! (नृभिः येमानः) ऋत्विजों करके नियम में किया हुआ (अद्रिभिः सुतः) पाषाणोंसे कूटा हुआ (इंद्रस्य कुक्षा) इंद्रके उदररूप कलशमें (प्रयाहि) पहुंच ॥ ३ ॥

२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
२ ३ १ २ ३ १ २
ये वादः शर्य्यणावति ॥ १ ॥

ऋ० वारुणिः भृगुः वा जमदग्निः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ ये सोमास इति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । एतदादिभ्यामृग्भ्यामिन्द्रार्थं सर्वत्र सोमाभिषवोऽस्तीत्याह—हे सोमासः परावति विप्रकृष्टेऽतिदूरे देशे ये वा अर्वावति अन्तिके देशे सुन्विरे अभिषूयंते

ये वा शर्य्यणावति कुरुक्षेत्रस्य जघनार्द्धे शर्यणावत्संज्ञकं मधुर-रस युक्तं सोमवत सरोऽस्ति । अदः अस्मिन् सरसि सुरसा ये सोमा इंद्रायाभिषूयते । ते अस्माकमभिमतफलं ददित्वति वक्ष्यमाणेन सम्बंधः ॥ १ ॥

(ये सोमासः परावति) जो सोम अतिदूर देशमें (ये अर्वावति सुन्विरे) और जो समीपस्थानमें शोधे जाते हैं (वा ये अदः शर्यणावति) और जो कुरुक्षेत्रके जघन रूप अधवरमें शर्यणावत् नामक मधु-रस युक्त सोम वाला सरोवर है इस सरोवरमें जो सोम इंद्रके निमित्त शुद्ध किये जाते हैं वह हमको इच्छित फल दें ॥ १ ॥

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २र३क २र

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।

२ ३ १२ ३१२

ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ये वा सोमाः आर्जीकेषु ऋजीकानामदूरभवाः आर्जीका देशास्तेषु तथा कृत्सु कृत्वान इति देशाभिधानम् तेषु कर्मवत्सु देशेषु च किञ्च पस्त्यानाम् सरस्वत्यादीनाम् नदीनां मध्ये ,समीपे च ये सोमा अभिषूयंते ऋषयो वै सरस्वत्याम् सत्रमासतेत्यादिषु नदीतीरे यज्ञकरणस्य श्रवणात् किञ्च जनेषु पञ्चसु निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनास्तेषु च ये वा सोमा अभिषुताः । ते सोमा अस्माकमभिमतफलं ददत्वित्युत्तरेण सम्बंधः ॥ २ ॥

(ये आर्जीकेषु) जो सोम दूरके ऋजीक देशोंमें (ये कृत्वसु) जो सोम कृत्वान नामक कर्मप्रधान देशोंमें जो सोम (पस्त्यानाम् मध्ये) सरस्वती आदि नदियोंके समीप (वा ये पञ्चसु जनेषु) और जो सोम जिनमें निषाद पांचवां है ऐसे चारों वर्णोंमें सुसिद्ध किये जाते हैं वह सोम हमें इच्छित फल दें ॥ २ ॥

१ २ ३ ३२उ ३ १२ ३२ ३१२

ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् ।

३ २ ३२ ३ १२

स्वाना देवास इन्दवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । स्वानाः सुवानाः तत्र चात्र अभिषूयमाणाः देवासः देवाः दीपनशीलाः स्तुत्या वा इन्दवः ग्रहेषु चमसेषु क्षरन्तः ते सोमा नः अस्माकं दिवस्परि परि-शब्दः पञ्चमी-द्योतकः अन्तरिक्षाददित्या-

द्वारा वृष्टिम् । अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिः (म० १ अ०)–इति वृष्टिकारणत्वात् किञ्च सुवीर्य्यम् शोभनवीर्य्योपेतम् पुत्रञ्च धनादिकं वा आ पवन्ताम् प्रापयन्तु । यजमान सोमेनाभिमतफलानि प्राप्नोति खलु ॥ स्वानाः–सुवानाः—इति पाठौ३

(स्वानाः देवासः) अभिषव किये जाते और दिपतेहुए (इन्दवः ते) पात्रोंमें वरसते हुए वह सोम (नः) हमारे अर्थ (दिवस्परि) लोकसे (वृष्टिं सुवीर्यम् आपवन्ताम्) वर्षाको और श्रेष्ठ वीरता युक्त पुत्रको दें ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २र ३१ २ ३१ २

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।

२ ३ १ २ ३ २

अग्ने त्वां कामये गिरा ॥ १ ॥

ऋ० वत्सः । छ०गायत्री । दे०अग्निः । अथ षष्ठे खण्डे आ ते वत्स-इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! वत्सः ऋषिः ते तव मनः परमाच्चित् उत्कृष्टादपि सधस्थात् द्युलोकात् आ यमत् आयमन्ति आगमयन्ति । केन साधनेन ? त्वां कामये कामया अभिलषन्त्या गिरा स्तुत्या कामये—इत्यत्रापि शे आदेशः पूर्ववत् । यद्वा त्वां कामये अभिलषामि कामये–कामया—इति पाठौ ॥ १ ॥

(अग्ने वत्सः)हे अग्ने ! वत्स ऋषि (त्वां कामये गिरा) तुझै चाहने वाली स्तुतिसे (ते मनः) तेरे मनको (परमाच्चित् सधस्थात्) परमोत्तम द्युलोकरूप स्थानसे (आयमत्) यहां बुला लेता है ॥ १ ॥

२ २उ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १२ ३२

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।

३ १ २

समत्सु त्वा हवामहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया : हे अग्ने ! पुरुत्रा हि बहुषु हि देशेषु त्वं सदृङ् असि समान–द्रष्टा भवसि अतएव विश्वाः सर्वा दिश अनु लक्ष्य प्रभुः ईश्वरो भवसि । ईदृशं त्वा त्वां समत्सु संग्रामेषु रक्षणार्थं हवामहे आह्वयामहे दिशः-विदिशः-इति पाठौ ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (पुरुत्रा हि सदृङ् असि) सकल देशोंमें तू समान दृष्टि रखनेवाला है । इसीकारण (विश्वाः दिशः, अनु, प्रभुः) सकल दिशाओं का ईश्वर है (त्वा समत्सु हवामहे) ऐसे तुम्हें संग्रामोंमें रक्षाके लिये पुकारते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २
समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु
३ १ २
चित्रराधसम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । समत्सु समदेषु संग्रामेषु वाजयन्तः बलमिच्छन्तो वयम् अवसे रक्षणार्थम् अग्निं हवामहे । कीदृशम् ? वाजेषु संग्रामेषु चित्रराधसम् याचनीयधनम् ॥ ३॥

(समत्सु वाजयन्तः) मद्युक्त संग्रामोंमें बल चाहने हम (अवसे) रक्षाके लिये (वाजेषु चित्रराधसम्) संग्रामोंमें याचना करने योग्य धन वाले (अग्निं हवामहे) अग्निकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णꣳ शतक्रतो विच-
२ ३ १ २ ३ १ २
र्षणे । आ वीरं पृतनासहम् ॥ १ ॥

ऋ० नृमेधः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । अथ द्वितीयतृचे-प्रथमा । हे शतक्रतो ! बहुकर्मन् ! विचर्षणे विद्रष्टः इंद्र ! त्वं नः अस्मभ्यम् ओजः बलं नृम्णं धनं च आ भर आहर । वीरं वीर्योपेतम् पृतनासहं सेनानामभिभवितारं त्वाम् आ याचामह इति शेषः ॥ आभर ओजः-आहृतामोजः—इति पाठौ ॥ १ ॥

(शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र) हे अनेकों कर्मवाले विशेष ज्ञाता इंद्र ! तुम (नः नृम्णं ओजः आभर) हमें अन्न और बल दो (पृतनासहं वीरं आ) सेनाओंका-तिरस्कार करने वाले वीर पुत्रको भी दो ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
त्वꣳ हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभू-
२ १ २ ३ १ २
विथ । अथा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे वसो ! वासयितः ! शतक्रतो ! बहुकर्मन्निन्द्र ! त्वं नः अस्माकं पिता पितृवत् पालको बभूविथ भव । त्वं माता मातृवद्धारकश्च बभूविथ । अथ च वयं ते तव स्वभूतं सुम्नं सुखम् ईमहे याचामहे ॥ २ ॥

(वसो शतक्रतो) हे व्यापक इन्द्र ! (त्वं नः पिता बभूविथ) तुम हमारे पिताकी समान पालन कर्त्ता होओ (त्वं माता) तुम माताकी समान धारणकर्त्ता होओ (अथ ते सुम्नं ईमहे) और हम तुमसे सुख की याचना करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३२ ३१२
त्वाँ शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
१ २ ३१ २
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सहसा बलेन स्तोतृभिर्युक्तः कृतः सहस्कृतः हे सहस्कृत ! इंद्र ! स्तुत्या हि देवताया बलं वर्द्धते तस्य सम्बोधनम्—शुष्मिन् अतएव बलवन् ! पुरुहूत ! पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैराहूतेन्द्र ! वाजयन्तं बलमिच्छयन्तं त्वाम् उपब्रुवे उपस्तौमि । सः त्वं नः अस्मभ्यं सुवीर्यं धनं रास्व देहि ॥ सहस्कृतः—शतक्रतो—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सहस्कृत शुष्मिन् पुरुहूत) स्तोताओं के द्वारा बलयुक्त किये हुए बलवान् और अनेकों यजमानोंके पुकारेहुए हे इंद्र (वाजयंतं त्वा उपब्रुवे) बल चाहते हुए तुम्हारी स्तुति करते हैं (सः नः सुवीर्यं रास्व) वह तुम हमें श्रेष्ठ धन दो ॥ ३ ॥

१ २ १ ३२उ ३ १ २
यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
२३ १ २ ३ १ २
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्या भर ॥ १ ॥

ऋ० भौमः अत्रिः । छ० अनुष्टुप् । दे० इंद्रः । अथ तृतीयतृचे—प्रथमा । हे अद्रिवः ! वज्रवन् ! चित्र चायनीयेन्द्र ! त्वादातं त्वया दातव्यं यद्धनं मे मम इह अस्मिल्लोके नास्ति, हे विदद्वसो ! लब्धधनेन्द्र ! नः अस्मभ्यम् उभया हस्ती उभाभ्यां हस्ताभ्यां तद् राधः आभर आहर म इह—मेहनाः—इति छन्दोगानां बह्वृचानां पाठौ ॥ १ ॥

(अद्रिवः चित्र इंद्र) हे वज्रधारी चित्ररूप इन्द्र ! (त्वादातं यत् मे इह नास्ति) तुम्हारे देनयोग्य जो धन है वह मेरे पास इस लोकमें नहीं हैं (विदद्वसो) प्राप्त है धन जिसको ऐसे हे इंद्र (तत् उभया हस्ती) वह दोनों हाथोंसे (नः आभर) हमें दो ॥ १ ॥

१ २र ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर । विद्याम
१ २ ३ १ २र ३ १ २
तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥ २ ॥

२ ३ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
कवीनाम् । तृतीयं धामः महिषः सिषासंत्सोमो
३ २ ३ १ २ ३ २
विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ २ ॥

अथाद्वितीया । ऋषिमनाः सर्वदर्शनशीलमनस्कः, अतएव ऋषिकृत् सर्वस्य दर्शनकर्ता प्रकाशनस्य कर्त्ता, स्वर्षाः सर्वस्य सूर्य्यस्य वा सम्भक्तः सहस्रनीथः नीथा स्तुतिः बहुविधस्तुतिकः कवीनां क्रान्तप्रज्ञानां मध्ये पदवीः स्खलितानां पदानां साधुत्वेन संयोजयिता यः सोमो विद्यते स महिषः महान् ।पूज्यो वा सोमः ।तृतीयं धाम द्युलोकं सिषासन् सम्भक्तुमिच्छन् स्तुप् स्तूयमानः सन् विराजं विशेषेण राजन्तं दीप्यमानमिन्द्रम् अनुराजति प्रकाशयति ॥ २ ॥

(ऋषिमनाः ऋषिकृत्) सबको देखनेके स्वभाववाला है मन जिसका, इसीकारण सबको देखनेवाला अर्थात् प्रकाशकर्त्ता (स्वर्षाः सहस्रनीथः) सबका वा सूर्यका सेवनकर्त्ता और बहुतसी स्तुतिवाला (कवीनां पदवीः)स्तोताओंके स्खलित पदोंका सम्यक् प्रकार संयोजन करने वाला (यः) जो सोम है वह (महिषः) महान् पूजनीय सोम (तृतीयं धाम सिषासन्) तीसरे धाम द्युलोकको सेवन करना चाहता हुआ (स्तुप् विराजं अनुराजति) स्तुति किया जाता हुआ विशेष दीप्यमान इन्द्रको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स
२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
आयुधानि बिभ्रत् । अपामूर्मिंथ्ँ सचमानः
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समुद्रं तुरीय धाम महिषो विवक्ति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । चमूषत् चमन्ति भक्षयन्त्यनेति चम्वश्चमसास्तेषु सीदन् यद्वा चम्वौ अधिषवणफलके तयोर्वर्त्तमानः श्येनः शंसनायः शकुनः शक्तेः सामर्थ्यकारी विभृत्वा हरतेरातोमनिन्नित्यादिना (३, २, ७४) क्वनिप् पात्रेषु विहरणशीलः गोविन्दुः यजमानानां गवां लम्भकः विन्दुरिच्छुरिति उ—प्रत्ययान्तत्वेन निपातितः द्रप्सः धारयन् अपाम् उदकानाम् ऊर्मिं प्रेरकं समुद्रम् अन्तरिक्षनामैतत् (निघ० १, ३) अन्तरिक्षं सचमानः सेवमानः महिषः महान् य एवंविधः सोमः

स तुरीयं चतुर्थं धाम चान्द्रमसं स्थानं विवक्ति सेवते सूर्य्यलोकस्योपरि चन्द्रमसो लोको वियत इति यमः पृथिव्या अधिपतिः समावत्वित्यादिभिः चन्द्रमा नक्षत्राणामधिपतिः समावत्वित्यमन्त्रैर्मन्त्रैर्ज्ञायते॥३॥

(चमूषत् श्येनः) चमसपात्रोंमें स्थित और प्रशंसनीय (शकुनः विभृत्वा) सामर्थ्य देनेवाला और पात्रोंमें विहार करनेवाला (गोविन्दुः द्रप्सः) यजमानोंको गौएँ प्राप्त करानेवाला और धारण करनेवाला(अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः) जलोंके प्रेरक अन्तरिक्षको सेवन करता हुआ (महिषः तुरीयं धाम विवक्ति) महान् सोम चौथे धाम चन्द्रलोकको सेवन करता है ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।

१ २ ३क २र

वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥

ऋ० असित-देवलौ । छ० गायत्री । दे० सोमः । एते सोमा इति नवर्चं द्वितीयं सूक्तं तत्र प्रथमा । एते अभि पुता इमे सोमाः अस्य इन्द्रस्य वीर्य्यं शक्तिं वर्द्धन्तः वर्द्धयंतः इंद्रस्य कामं काम्यं प्रियं प्रीतिकरं समभ्यक्षरन् अभ्यवर्षन् अभिपवन्ते ॥ १ ॥

(एते सोमाः) यह अभिपुत सोम (अस्य वीर्यं वर्धन्तः) इस इंद्र की शक्तिको बढ़ाते हुए (इंद्रस्य कामं प्रियं समभ्यक्षरन्) इंद्रकेइच्छित और प्रसन्नता देनेवाले रसको बरसाते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २

पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।

१ २ ३ १ २

ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोमाः! पुनानासः पुनाना अभिपूयमाणाः चमूषदः चमसेषु सीदन्तः गच्छन्तः वायुम् अश्विना अश्विनौ च गच्छन्तः प्राप्नुवंतः ते यूयं नः अस्मभ्यं सुवीर्यम् शोभन-वीर्य्यं धत्त प्रयच्छत धत्त—धान्तु-इति पाठौ ॥ २ ॥

(पुनानासः चमूषदः) अभिषव किये जाते हुए और पात्रोंमें स्थित हे सोमो ! तुम (वायुं अश्विना गच्छन्तः) वायु और अश्विनी कुमारों को प्राप्त होतेहुए (ते) तुम (नः सुवीर्य्यं धत्त) हमें श्रेष्ठ वीरता दो॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानां योनिमासदम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! पुनानः पूयमानस्त्वं राधसे इंद्रस्य इंद्रस्य संराधनाय हार्दि—इति हृदयसम्बंधि स्थानं चोदय प्रेरय । अहमपि देवानाम् इंद्रादीनां योनिं स्वर्गाख्यं स्थानम् आसदं प्राप्तवान् यद्वा देवानां यजनसाधनं यज्ञाख्यं स्थानं प्राप्तवानस्मि ॥ देवानाम्—ऋतस्य इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सोम पुनानः) हे सोम ! पूयमान तू (इंद्रस्य राधसे) इंद्रके आराधनके लिये (हार्दि चोदय) हृदयके स्थानको प्रेरणा कर (देवानां योनिं आसदम्) देवयजनके साधन यज्ञस्थानको मैं प्राप्त हुआ हूँ

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
२ ३ १ २
अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे सोम ! त्वा त्वां दश दशसंख्याकाः क्षिपः अंगुलिनामैतत् (२,५,३,) अङ्गुलयः मृजन्ति शोधयंति। ततः सप्त सप्तसंख्याकाः धीतयः होत्रकाश्च त्वां हिन्वंति स्वस्वव्यापारैः प्रीणयंति तथा विप्राः मेधाविनः स्तोतारश्च त्वाम् अनु अमादिषुः अनुमादयंति ॥ ४ ॥

हे सोम ! (त्वा दश क्षिपः मृजंति) तुझे दश अंगुलियें शुद्ध करती हैं (सप्त धीतयः हिन्वन्ति) सात होत्रक तुझे अपन अपने व्यापारोंसे तृप्त करते हैं (विप्रा नः अनु अमादिषुः) स्तोता फिर तुझे मदमें करते हैं

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३क २र
देवेभ्यस्त्वा मदाय कꣳ सृजानमति मेष्यः ।
१ २र
सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । हे सोम ! कं सुखभूतं त्वा त्वां देवेभ्यः देवानां मदाय मदार्थं गोभिः गोविंकारैः पयोभिः संवासयामः संस्थापयामः । कीदृशम्? मेष्यः अवेर्लोमानि दशापवित्ररूपेण अति सृजानम् अत्यंतं सृजंतं दशापवित्ररूपेषु अवेर्लोमसु वर्त्तमानमित्यर्थः ॥ ५ ॥

हे सोम ! (मेष्यः अतिसृजानम्) दशापवित्र स्वरूप ऊनके रामोंमें वर्त्तमान (कं त्वा) सुखरूप तुझे (देवेभ्यः मदाय) देवताओंके मदके लिये (गोभिः संवासयामः) गो घृतादि सहित स्थापित करते हैं।५।

३   २   ३ २ ३   १   २र   ३ १   २र

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।

२ ३   १   २

परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । पुनानः पूयमानः कलशेषु द्रोणकलशेषु आसिच्यमानः अरुषः आरोचमानः हरिः हरितवर्णः सोमः गव्यानि गो-सम्बन्धीनि पयः प्रभृतीनि वस्त्राणि वासांसि परि अव्यत पर्य्याच्छादयति ॥ ६ ॥

(पुनानः कलशेषु आ) पूयमान और कलशोंमें निचोड़ा जाता हुआ (अरुषः हरिः) दमकता हुआ हरे वर्णका सोम (गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत) गो दुग्धादिके वस्त्रोंको आच्छादित करता है ॥ ६ ॥

३ २ ३   १   २   ३ २र   ३   २ ३   १ २

मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।

२ ३   १ २ ३ १   २

इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । हे इन्दो सोम ! मघोनः धनवतः नः अस्मान् आ आभिमुख्येन पवस्व क्षर । विश्वा विश्वान् द्विषः द्वेष्टॄन् अप जहि मारय च सखायं मित्रभूतमिन्द्रम् आविश प्राप्न हि ॥ ७ ॥

(इन्दो मघोनः नः आ पवस्व) हे सोम ! हम धनवानोंके अभिमुख होकर बरस (विश्वा द्विषः अपजहि) सकल द्वेष करनेवालोंको नष्ट कर (सखायं आविश) हमारे मित्र इंद्रको प्राप्त हो ॥ ७ ॥

३ १ २   ३ १   २र   ३ १ २

नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतꣳ स्वर्विदम् ।

३   १ २ ३ १   २र

भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । हे सोम ! नृचक्षसं न्हणां द्रष्टारं स्वर्विदम् सर्वज्ञम् इंद्रपीतं त्वां सेवमाना वयं प्रजां पुत्रादिकम् इषम् अन्नञ्च भक्षीमहि भजेम।

हे सोम ! (नृचक्षसं स्वर्विदम् त्वाम्) मनुष्योंके द्रष्टा सर्वज्ञ और इंद्रके पिये हुए तुझे सेवन करते हुए (वयं प्रजां इषं भक्षीमहि) हम पुत्रादि सन्तान और अन्नको भोगें ॥ ८ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
१ २ ३ १ २
सहो न सोम पृत्सु धाः ॥ ६ ॥

अथ नवमी । हे सोम ! त्वम् दिवः द्युलोकाद् वृष्टिम् वर्ष परिस्रव परितो वर्ष, पृथिव्या अधि अधीति सप्तम्यर्थानुवादी द्युम्नम् अन्नञ्च उत्पादयेति शेषः । न अस्माकं सहः बलं पृत्सु संग्रामेषु धाः धेहि ॥९॥

(सोम) हे सोम तू (दिवः वृष्टिं परिस्रव) द्युलोकसे वर्षाको टपका (पृथिव्या अधिद्युम्नम्) पृथिवी पर अन्नको उत्पन्न कर (नः सहः पृत्सु धाः) हमारे बलको संग्रामोंमें स्थित कर ॥ ९ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य प्रथमः खण्ड समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २
सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः ।
३ १ २र ३ २
वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

ऋ० असित——देवलौ । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीये खण्डे—सोमः पुनान इति नवर्चम् सूक्तम्, तत्र प्रथमा । अयम् पुनानः पावकः सोमः अर्षति गच्छति । कीदृशोऽयम् ? सहस्रधारः अपरिमित-धारः अत्यविः अविशब्देन तल्लोमान्युच्यंते अवेर्लोमभिर्निष्पादितम् दशापवित्रमित्यर्थः, तदतिक्रम्य गच्छतीत्यत्यविः । किमर्थम् ? वायोः इंद्रस्य च पानायेति शेषः । किम्प्रति ? निष्कृतम् निरित्येषः समित्येत-स्मिन्नर्थे संस्कृतं पात्रं प्रति ॥ १ ॥

(सहस्रधारः अत्यविः) अनेकों धारों वाला और दशा पवित्रमें को छना हुआ (पुनानः सोमः) पवित्र करने वाला सोम (वायोः इंद्रस्य), वायु और इंद्रके पीनेके लिए (निष्कृतं अर्षति), संस्कार करेहुए पात्र में पहुँचता है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्रगायत ।
३ २ ३ १ २
सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अवस्यवः रक्षण—कामाः ! उद्गात्रादयो यूयम् पवमानं शोधकं विप्रम् विशेषेण देवानां प्रीणयितारं विप्रवद् बुद्धं वा

अथवा विप्र इति मेधाविनामसु (निघ० ३, १५, १) मेधाविनम् देववीतये देवपानाय सुष्वाणम् अभिषूयमाणं सोमम् अभि आभिमुख्येन प्रगायत प्रकर्षेण स्तुत ॥ २ ॥

(अवस्यवः) हे रक्षा चाहने वाले उद्गाता आदि ! तुम (पवमानविप्रम्) शुद्ध करने वाले और विशेष कर देवताओं को तृप्त करनेवाले (देववीतये सुष्वाणं अभि प्रगायत) देवताओंके पीनेके लिए सुसिद्ध किये हुए सोमके अभिमुख होकर वेदगान करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।

३ २ ३ १ २

गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । पवन्ते क्षरन्ति सोमाः किमर्थम् ? वाजसातये अन्नस्य लाभाय । कीदृशाः ? सहस्रपाजसः बहुबलाः न्दृणां बलप्रदा इत्यर्थः गृणानाः कर्मणि कर्तृप्रत्ययः (३, १, ८५) स्तूयमानाः । पुनः किमर्थम्? देववीतये देवानां वीतिः गतिः प्राप्तिलक्षणं यस्मिन् सदेववीति यज्ञः, तदर्थम् यज्ञसिद्धिः साक्षात् प्रयोजनम् तद्द्वारा वाज-लाभ इति ॥ ३ ॥

(वाजसातये देववीतये गृणानाः) अन्नकी प्राप्ति और देवयज्ञकी सिद्धिके लिये स्तुति किये जाते हुए (सहस्रपाजसः सोमाः) मनुष्यों को बहुतसा बल देनेवाले सोम (पवन्ते) बरसते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।

३ १ २ ३ १ २

द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे इन्दो ! द्युमत् दीप्तिमत् सुवीर्य्य शोभन-वीर्य्य सामर्थ्यञ्च पवस्व क्षर, शोभन—सामर्थ्योपेता धाराः पवस्वेत्यर्थः । उत अथवा नः अस्माकं वाजसातये संग्रामाय बृहतीः इषः द्युमत् सुवीर्य्यं सम्पादयितुं पवस्वेति योज्यम् ॥ ४ ॥

(इन्दो) हे सोम (द्युमत् सुवीर्यं पवस्व) दीप्तिमान् श्रेष्ठ सामर्थ्य को बरसाओ (उत नः वाजसातये बृहतीः इषः) और हमारे संग्रामके लिए बहुतसे अन्न बरसाओ ॥ ४ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।

२उ ३ १ २ ३ १ २

वि वारमव्यमाशवः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । वाजसातये संग्रामाय हियानाः प्रेर्य्यमाणाः आशवः शीघ्रम् धावन्ति तद्वत् हेतृभिः प्रेरकैः प्रेर्य्यमाणाः आशवः शीघ्रगामिनः सोमाः वाजाय अन्नलाभाय अव्यं वारं बालं दशापवित्रं व्यत्यसृग्रम् व्यतिसृजन्ते ॥ ५ ॥

(वाजसातये हियानाः) संग्रामके लिये प्रेरणा किये हुए सोम (आशवः न) शीघ्रगामियोंकी समान (हेतृभिः) ऋत्विजोंसे (अव्यं वारं व्यत्यसृग्रम्) ऊनके पवित्रेमेंको टपकाए जाते हैं॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

ते नः सहस्रिणꣳ रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २

स्वाना देवास इन्दवः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी।ते इन्दवः सोमाः नः अस्माकं सहस्रिणम् सहस्रसंख्यायुक्तं रयिं धनं सुवीर्यं च आपवन्ताम् । कीदृशास्ते ? स्वानाः सुवानाः स्तूयमानाः देवासः द्योतनादि-गुणकाः । स्वानाः-सुवानाः-इति पाठौ ॥ ६ ॥

(ते स्वानाः देवासः इन्दवः) वह स्तूयमान दिपते हुए सोम (नः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं आपवन्ताम्) हमें सहस्रों संख्याका धन और श्रेष्ठ वीरता दें ॥ ६ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः ।

३ १ २र

दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वाश्राः शब्दयन्तः इन्दवः सोमाः अभ्यर्षन्ति पात्रं प्रति । वाश्राः शब्दकारिण्यो मातरः मातृभूता गावः वत्सं न वत्सं यथा प्रत्यागच्छन्ति तद्वत् त एव गभस्त्योः बाह्वोः दधन्विरे ध्रियन्ते च ॥ मातरः-धेनवः-इति पाठौ ॥ ७ ॥

(वाश्राः इन्दवः) शब्दायमान सोम (मातरः वत्सं न) जैसे माता गौएँ बछड़ोंकी ओरको जाती हैं, तैसे (अभ्यर्षन्ति) पात्रमें को जाते हैं (गभस्त्यः दधन्विरे) बाहुओंमें धारण किये जाते हैं ॥ ७ ॥

२ ३ १ २ ३१ २र ३ १ २
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमानः कनिक्रदत् ।
२ ३ २ ३ १ २
विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । इन्द्राय जुष्टः पर्य्याप्तः सोमो भवतीति शेषः । मत्सरः सोमः मन्दतेः तृप्तिकर्मणः—इति निरुक्तम् पवमानः पूयमानः तादृशः सोमः कनिक्रदत् विश्वाः द्विषः सर्वानस्माकं द्वेष्टन् अप जहि ॥ पवमानः पवमानाः—इति पाठौ ॥ ८ ॥

सोम (इन्द्राय जुष्टः) इन्द्रके लिये पर्याप्त होता है (मत्सरः पवमानः) तृप्तिकारी सोम (कनिक्रदत् विश्वा द्विषः अपजहि) शब्द करता हुआ हमारे सकल द्वेषियों नष्ट करे ॥ ८ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
१ २ ३ १ २
योनावृतस्य सीदत ॥ ९ ॥

अथ नवमी । हे पवमानाः ! अराव्णः अदानान् यजमानान् अपघ्नन्तः हिंसन्तः स्वर्दृशः सर्वस्य द्रष्टारश्च यूयम् ऋतस्य योनौ यज्ञस्य स्थाने सीदत । अथ सोम—पानार्थमुक्तलक्षणा देवा ऋतस्य योनौ सीदतेति योज्यम् ॥ ९ ॥

(पवमानाः) हे सोमो ! (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवाले यजमानोंको नष्ट करते हुए (स्वर्दृशः) सबके द्रष्टा तुम (ऋतस्य योनौ सीदत) यज्ञके मण्डपमें विराजो ॥ ९ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २
सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
१ २ ३ १ २
इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥

ऋ० असित—देवलौ । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृतीयखण्डे सोमा असृग्रमिति नवर्चं विद्यमानमेकं सूक्तम्, तत्र प्रथमा ॥ ऋतस्य यज्ञार्थं सुताः अभिषुताः मधुमत्तमाः अतिशयेन माधुर्य्योपेताः इन्दवः

सोमा इन्द्राय इन्द्रार्थं धारया असृग्रम् सृज्यन्ते ॥ धारया—सादने— इति पाठौ ॥ १ ॥

(ऋतस्य सुताः) यज्ञके लिये सुसिद्ध किये हुए (मधुमत्तमःइंदवः) अतिमधुर रसवाले टपकते हुए (सोमाः इन्द्राय धारया असृग्रम्)सोम इन्द्रके अर्थ धारासे रचे जाते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २र ३ १ २
अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रꣳ सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। विप्राः मेधाविनः सोमस्य पीतये पानाय इन्द्रम् अभि अनूषत अभिष्टुवन्ति । तत्र दृष्टान्तः—धेनवः प्रीणयित्र्यो गावः वत्सं न वत्सं यथा पयः-पानाय अभिशब्दयन्ति तद्वत् ॥ धेनवः-मातरः- इति पाठौ ॥ २ ॥

(विप्राः) हे ऋत्विजों ! (सोमस्य पीतये) सोमको पीनेके लिये (इंद्रं अभ्यनूषत) इंद्रकी स्तुति करते हैं (धेनवः गावः वत्सं न)जैसे तृप्त करनेवाली गौएँ बछडेकी ओरको शब्द करती हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
मदच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
१ २ ३ १ २र ३ २
सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मदच्युत् मदकरस्य रसस्य च्यावयिता सोमः सदने यज्ञस्य--स्थाने क्षेति निवसति । एतदेव विवृणोति--सिंधोः नद्याः ऊर्मा ऊर्मौ तरंगे विपश्चित् विद्वान् सोमः गौरी अधि गौर्यामधि अधीति सप्तम्यर्थानुवादः, माध्यमिकायां वाचि गान्धर्वीति वाङ्नामैतत्(निघ० १, ११, ५६) श्रितः निवसति ॥ ३ ॥

(मदच्युतम् सोमः) मदकारी रसको बरसानेवाला सोम (सादने क्षेति) यज्ञशालामें निवास करता है (सिंधोः ऊर्मा विपश्चित) नदी की तरङ्गोंमें प्रवीण सोम (गौरी अधिश्रितः) माध्यमिक गांधर्वी वाणी में रहती है ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २
दिवो नाभा विचक्षणोऽव्यावारे महीयते ।

२ ३ २ ३१२ ३ २
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । यः सुक्रतुः सुप्रज्ञः कविः क्रान्तकर्मा विचक्षणः विद्रष्टा स सोमः दिवः अंतरिक्षस्य नाभा नाभौ नाभिभूते अव्या अवेः वारे वाले महीयते पूज्यते ॥ ४ ॥

(यः) जो (सुक्रतुः कविः विचक्षणः) श्रेष्ठ ज्ञानमय अनुभवी और विशेष द्रष्टा है, वह (सोमः) सोम (दिवः नाभा) अन्तरिक्ष के नाभिरूप (अव्याः वारे महीयते) ऊनके पवित्रमें सत्कार पाता है४

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः ।
२उ ३ १ २
तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । यः सोमः कलशेषु कुम्भेषु आस्ते यश्च पवित्रे पवित्रस्य अन्तः मध्ये आ हितः निहितः तं स्वामंशभूतं सोमम् इन्दुः तदभिमानी यो देवः परिपस्वजे प्रविशति ॥ ५ ॥

(यः सोमः कलशेषु आ) जो सोम कलशोंमें है (पवित्रं अन्तः आहितः) पवित्र के मध्यमें स्थापित किया गया है (तं इन्दुः परिपस्वजे) उस अंशभूत सोममें चन्द्रमाका अभिमानी देवता प्रवेश करता है ॥ ५ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
२ ३ १ २ ३ १ २
जिन्वन् कोशं मधुश्च्युतम् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । इन्दुः सोमः उन्दी क्लेदने (रु० प०)–इत्यस्य रूपम् क्लेदनवांस्त्वं मधुश्च्युतं मधुनश्च्यावकं द्रोणकलशं जिन्वन् प्रीणयन् पूरयन्नित्यर्थः । समुद्रस्यान्तरिक्षस्य अधिविष्टपि विष्टब्धे स्थाने वाचं प्रेष्यति प्रेरयति पवित्रे पयमानः शब्दं करोतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

(इन्दुः) सोम (मधुश्च्युतं कोशं जिन्वन्) मधु टपकानेवाले कलशको पूर्ण करता हुआ (समुद्रस्य अधिविष्टपि) अन्तरिक्ष के आधाररूप स्थान में (वाचं प्रेष्यति) शब्दको करता है ॥ ६ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुघाम् ।

३ १ २र ३ २
हिन्वानो मानुषा युजा ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । नित्यस्तोत्रः सन्ततस्तोत्रः वनस्पतिः वनानां स्वामी सोमः मानुषा मानुषाणि युजा युग्मानि अहीनैकाहात्मकानि हिन्वानः प्रीणयन् सर्वदुंधाम् अमृतसदृशातिप्रियवचनानि दोग्ध्रीम् अंतः स्तोतॄणाम् मध्ये स्थितां धेनां स्तुतिरूपां वाचं गृणातिवति शेषः । धेनामन्तः सवर्दुधाम्–श्रेनामन्तः सर्वदुघः इति पाठौ ॥ ७ ॥

(नित्यस्तोत्रः वनस्पतिः) नित्य प्रशंसा किया जाने वाला वनोंका स्वामी सोम (मानुषा युजा हिन्वानः) ऋत्विजोंको युग्म रूपसे प्रेरणा करता हुआ (सर्वदुधाम्) अमृतकी समान प्रिय वचनोंको प्रकाशित करने वाली (अन्तः) स्तोताओंके मध्यमें स्थित (धेनाम्) स्तुतिको स्वीकार करै ॥ ७ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २
आ पवमान धारय रयिꣳ सहस्रवर्चसम् ।
३ १ २ ३ १ २
अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । हे पवमान ! पूयमान ! पुनान ! वा इन्दो ! सोम ! त्वं सहस्रवर्चसं बहुदीप्तिम् स्वाभुवम् शोभन—भवनम् रयिम् धनम् अस्मे अस्मासु धारय प्रक्षिपेत्यर्थः ॥ ८ ॥

(पवमान इन्दो) हे संस्कार किये जाते हुए सोम ! (सहस्रवर्चसं स्वाभुवम्) अनेकों दीप्तिवाले सुन्दर भवनको (रयिं अस्मे धारय) और धनको हमारे विषैं स्थापन कर ॥ ८ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २
अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः ।
१ २ ३ १ २
सोमो हिन्वे परावति ॥ ९ ॥

अथ नवमी । कविः क्रान्तकर्मा, सुतः अभिषुतः, सोमः परावति विप्रकृष्टे देशे स्थितः सन विप्रः मेधावी स धारया स्वस्य धारया दिवः द्युलोकस्य प्रिया प्रियाणि स्थानानि अभि लक्ष्य हिन्वे प्रेरयति । दिवः कविः दिवस्पतिः–इति पाठौ,हिन्वे परावति हिन्वेपरानो अर्णति इति च सुतः कविः—इति च ॥ ९ ॥

(कविः सुतः) क्रान्तकर्मा अभिषव किया हुआ (परावति) श्रेष्ठ स्थानमें स्थित हुआ (विप्रः सः) विशेष तृप्त करने वाला वह सोम (धारया) अपनी धारासे (दिवः प्रिया अभि हिन्वे) द्युलोकके प्यारे स्थानोंकी ओरकी प्रेरणा करता है ॥ ९ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः ।
३ १ २ ३ २
वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

ऋ० उचथ्यः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ उत्तेशुष्मासइति चतुर्थे खण्डे—विद्यमानं पञ्चर्चं सूक्तं, तत्र प्रथमा । हे सोम ! ते तव शुष्मासः शुष्मा वेगाः उत् ईरयते उद्गच्छन्ति । तत्र दृष्टान्तः—सिन्धोः समुद्रस्य ऊर्मेरिव यथा तरङ्गात् स्वनः ध्वनिः उद्गच्छति तद्वत् । स त्वं वाणस्य विसृष्टस्य नालस्य शततन्त्रीकस्य वीणाविशेषस्य पविं शब्दनामैतत् (निघ० १, ११) शब्दम् चोदय प्रेरय, वेगेन स्यन्दमानस्त्वम् विसृष्ट-वाणशब्दसदृशं शब्दम् कुर्वित्यर्थः ॥ १ ॥

हे सोम ! (सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः इव) समुद्रकी तरङ्गसे उठे हुए शब्द की समान (ते शुष्मासः उत् ईरते) तेरे वेग उठते हैं वह तू (वाणस्य पविं चोदय) वाण नामक बाजेके शब्दको प्रेरणा कर ॥ १ ॥

३ २ ३ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः ।
२उ ३ २ ३ १ २
यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! ते तव प्रसवे सति मखस्युवः यज्ञमिच्छतो यजमानस्य तिस्रो वाचः ऋग्यजुः-सामात्मकानि त्रीणि वाक्यानि उदीरते उद्गच्छन्ति । कदेत्यत आह-यद् यदा सानवि उच्छ्रिते अव्ये अविमये पवित्रे पवित्रम् एषि गच्छसि ॥ २ ॥

(ते प्रसवे) तेरा प्रादुर्भाव होने पर (मखस्युवः तिस्रः वाचः उदीरते) यज्ञकी इच्छा वाले यजमानके ऋक्—यजु-सामरूप तीन वाक्य प्रकट होते हैं (यद् सानवि अव्ये एषि) जबाक तू श्रेष्ठ पवित्र में पहुँचता है ॥ २ ॥

२ ३ २३ १२ ३१ २र २ १ २
अव्या वारैः परि प्रियꣳ हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
१२ ३ १२
पवमानं मधुश्च्युतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । प्रियं देवानां प्रीतिकरं हरिं हरितवर्णं अद्रिभिः ग्रावभिः अभिषुतं मधुश्च्युतं मधुनो रसस्य च्यावयितारम् पवमानं सोमम् अव्याः अवेः वारैः बालैः परि हिन्वंति ऋत्विजः परिप्रेरयंति ॥ ३ ॥

(प्रियम् हरिम्) देवताओंके प्यारे और हरे वर्णके (अद्रिभिः) पाषाणों से कुचले हुए (मधुश्च्युतम् पवमानम्) मीठे रसके टपकाने वाले सोमको ऋत्विज (अव्याः वारैः परिहिंवंति) भेड़ोंकी ऊनके पवित्रे में को छोड़ते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३२३ १२
आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे ।
३२३ १ २३१२
अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे मदिन्तम ! मादयितृतम ! कवे ! क्रांतकर्मन् ! सोम ! अर्कस्य अर्चनीयस्य इंद्रस्य योनिम् उदरभूतं स्थानम् आसदम् प्राप्तुम् पवित्रम् अतीत्य धारया सम्पातेन आ पवस्व आभिमुख्येन क्षर ॥ ४ ॥

(मदिन्तम कवे) हे परमहर्षदायक सोम ! (अर्कस्य योनिं आसदम्) पूजनीय इंद्रके उदर रूप स्थानमें पहुंचने के लिए (पवित्रम् धारया आपवस्व) पवित्रमेंको छन कर धारसे अभिमुख होकर बरस ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः ।
१ २ ३ १२
एन्द्रस्य जठरं विश ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । हे मदिन्तम ! मादयितृतम ! सोम ! अक्तुभिः अञ्जनसाधन-भूतैः गोभिः गोर्विकारैः पयोभिः अञ्जानः अज्यमानः संस्तूयमानः स त्वं पवस्व क्षरतु । अनंतरम् इंद्रस्य जठरम् उदरम् आविश प्रविश ॥ एन्द्रस्य जठरं विश-इंद्र इंद्राय पीतये-इति पाठौ ॥ ५ ॥

(मदिन्तम) हे परमहर्षदायक सोम ! (अक्तुभिः गोभिः अञ्जानः) मिलानेके साधन गोदुग्धादिसे प्रशंसनीय होता हुआ (पवस्व) बरस

तदनंतर (इंद्रस्य जठरम् आविश) इंद्रके उदरमें प्रवेश कर ॥ ५ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

३ २ १ ३ २र ३ १ २ ३ २ ३ २
अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
३ १ २ ३ १ २र
अवाहन्नवतीर्नव ॥ १ ॥

ऋ० अमहीयुः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ पञ्चमे खण्डे-अया-वीतीति तृचात्मकम् प्रथमम् सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इन्दो ! सोम ! अया अनेन रसेन वीती वीत्यै इंद्रस्य भक्षणाय परिस्रव परिक्षर । कीदृशेन रसेनेत्यत आह-ते तव यः रसः मदेषु संग्रामेषु नवतीर्नव नवनवति-संख्याकाः शत्रुपुरीः अवाहन् जघान । इमं सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निन्द्र उक्तसंख्याकाः शत्रुपुरीः जघानेति कृत्वा रसो जघानेत्युपचारः ॥ १ ॥

(इन्दो अया वीती परिस्रव) हे सोम ! इस रसके द्वारा इंद्र के भक्षणके लिए चारों ओर बरस (ते यः मदेषु) तेरा जो रस संग्रामों में (नवनवतीः अवाहन्) निन्यानवे शत्रुपुरियोंको नष्ट करता हुआ१

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सद्यः एकस्मिन्नेवाहनि पुरः शत्रूणां पुराणि सोम-रसः अवाहन् । इत्था धिये सत्यकर्मणे दिवोदासाय राज्ञे शम्बरम् शत्रु-पुराणां स्वामिनम् अध अथ अनंतरम् त्यं तं तुर्वशं तुर्वशनामानं राजानं दिवोदासशत्रुम् यदुम् यदुनामकञ्च राजानमवाहन् । अत्रापि सोमरसं पीत्वा मत्तः सन्निन्द्रः सर्वमेतद्कार्षीदिति सोमरसे कर्तृत्वमुपचर्यते ॥

(सद्यः पुरः) शीघ्र ही शत्रुओंके नगरोंको इंद्रका पिया हुआ सोम रस नष्ट करता हुआ (इत्था धिये दिवोदासाय) सत्यकर्मा दिवोदास राजाके अर्थ (शम्बरम्) शत्रु नगरोंके स्वामीको (अध त्यं तुर्वशम्) फिर उस तुर्वस नामक दिवोदासके वैरीको (यदुम) यदु नामक राजा को (अवाहन्) सोमरस को पीकर इंद्र मारता हुआ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
परि नो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।

१ २ ३ २ ३ १ २
त्वरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! अश्ववित् अश्वस्य लम्भकः त्वं नः अस्माकम् अश्वं गोमत् गोयुक्त हिरण्यवत् हिरण्योपेतं पश्वादि—धनञ्च परि क्षर अपि च सहस्रिणीः बहूनि इषः अन्नानि क्षर॥ परिनः।परिणः—इति पाठौ॥ ३॥

(इन्दो) हे सोम ! (अश्ववित्) घोड़े प्राप्त करानेवाला तू (नः) हमैं (गोतम् हिरण्यवत अश्वम्) गौएं और सुवर्ण सहित अश्व (सहस्रिणीः इषः) बहुतसे अन्न (परिक्षर) दो॥ ३॥

३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अरावणः।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

ऋ० अमहीयुः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ तृचात्मके द्वितीय—सूक्ते—तत्र प्रथमा। सोमः मृधः हिंसकान् शत्रून अपघ्नन् मारयन् अरावणः शक्तौ सत्यां धनानामदातृंश्च अपघ्नन् इन्द्रस्य निष्कृतं स्थानं गच्छन् प्राप्नुवन् पवते धारया क्षरति॥ १॥

(सोमः) सोम (मृधः अपघ्नन्) हिंसक शत्रुओंको मारताहुआ (अरावणः अप) अदाताओंको नष्ट करता हुआ (इंद्रस्य निष्कृतम् गच्छन् पवते) इंद्रके स्थानको प्राप्त होता हुआ धारासे बरसता है॥१॥

३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १ २र
महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः।
१ २ ३ २ ३ १ २
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे पवमान! इन्दो! सोम नः अस्माकं महः महान्ति रायः धनानि आ भर आहर मृधः हिंसकान् शत्रूंश्च जहि मारय वीरवत् पुत्राद्युपेतं यशः कीर्त्तिञ्च रास्व अस्मभ्यं देहि॥ २॥

(पवमान इन्दो) हे पवमान सोम ! (नः महः रायः आभर) हमैं बहुतसे धन दो (मृधः जहि) शत्रुओंको मारो (वीरवत् यशः रास्व) पुत्रादि सहित कीर्त्ति दो॥ २॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
न त्वा शतं च न हुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्।

१ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्पुनानो मखस्यसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम ! राधः धनं दित्सन्तम् आदातुमिच्छन्तं त्वा त्वां शतश्चन बहवोऽपि हुतः हिंसका शत्रवः न आमिमन् न हिंसन्ति। कदा ? इत्यत्राह—यद् यदा पुनानः पूयमानः त्वं मखस्यसे धनं धातुमिच्छसि ॥ ३ ॥

हे सोम ! (यत् पुनानः मखस्यसे) जब पूयमान तू धन देना चाहता है। तब (राधः दित्सन्तं त्वा) धन देना चाहतेहुए तुझे (शतश्चन हुनः) बहुतसे भी हिंसक शत्रु (न आमिनन्) नहीं रोकसकते ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः।
३ १ २र ३ २
हिन्वानो मानुषीरपः ॥ १ ॥

ऋ० निध्रुविः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते-प्रथमा। हे सोम ! मानुषीः मनुष्याणां हितानि अपः उदकानि हिन्वानः प्रेरयन् त्वं यया धारया सूर्य्यम् अरोचयः प्रकाशयसि तया अया अनया धारया पवस्व क्षर ॥ १ ॥

हे सोम ! (मानुषीः अपः हिन्वानः) मनुष्योंके हितकारी जलोंको प्रेरणा करता हुआ (यया धारया सूर्यम् आरोचयः) जिस धारासे सूर्यको प्रकाशित करता है (अया पवस्व) तिस धारा से बरस ॥ १ ॥

१,२ ३ २३ १२३ १२ ३ १ २र
अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि।
३ १ २ ३ १ २
अन्तरिक्षेण यातवे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। पवमानः पूयमानः सोमः मनावधि मनुर्मनुष्यस्तस्मिन् मनुष्य इत्यर्थः। अन्तरिक्षेण यातवे गन्तुं सूरः प्रेरकस्यादित्यस्य एतशम् अश्वनामैतत् (निघ० १, १४, १०) अश्वं अयुक्त युङ्क्ते ॥ २ ॥

(पवमानः) सोम (मनावधि अन्तरिक्षेण यातवे) मनुष्यके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेको (सूरः एतशं अयुक्त) प्रेरक आदित्यके एतश नामक अश्वका जोड़ता है ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उत त्वा हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । उत अपि च इन्दुः सोमः इन्द्र इति ब्रुवन् त्वाः तान् हरितः हरितवर्णान् अश्वान् सूरः सूर्यस्य रथे यातवे गन्तुम् अयुक युनक्ति ॥ रथं दश —इति पाठौ ॥ ३ ॥

(उत इन्दुः) और सोम (इन्द्र इति ब्रुवन्) इंद्र ऐसा कहताहुआ (त्वाः हरितः) उन हरे वर्णके घोडों को (सूरः रथे) सूर्यके रथमें (यातवे अयुक्त) गमन करने को जोड़ता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे
२ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
कृणुध्वम् । यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा
३ १ २ ३ २
घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथ षष्ठे खंडे—अग्निं व इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे देवाः ! वः यूयं देवं द्योतमानम् अग्निम् अध्वरे कौटिल्यरहिते यज्ञे दूतं कृणुध्वं कुरुत । कीदृशम् ? अग्निभिः अन्यैः सजोषा सजोषसम् द्वितीयार्थे प्रथमा (३,१,८५) यजिष्ठं यष्टृतम यः अग्निः देवोऽपि सन् मर्त्येषु निध्रुविः नितरां ध्रुवस्तिष्ठति । कीदृशः ? ऋतावा यज्ञवान् सत्यवान् वा तपुर्मूर्द्धा तापकं तेजः घृतान्नः पावकः शोधकं तमग्निं दूतं कृणुध्वमिति योजना ॥

हे देवताओ ! (वः) तुम (अग्निभिः सजोषा) अन्य अग्नियों सहित (यजिष्ठम्) परमपूज्य (अग्निं देवम्) अग्निदेवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वम्) यज्ञमें दूत बनाओ (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो देवता होकर भी मनुष्योंमें अधिकतासे रहता है (ऋतावा तपुर्मूर्धा) यज्ञ का संबन्धी और तापप्रद तेजवाला है (घृतान्नः पावकः) घृतका भक्षण करनेवाला और सबका शोधक है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
व्यस्थात् । आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध
३ १ २ ३ १ २
स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यवसे घासे अविष्यन् भक्षयन् प्रोथत् शब्दं कुर्वन् सञ्चरन् वा अश्वो न अश्व इव महः महतः संवरणात् निरोधात् दावरूपोऽग्निः यद्रा व्यस्थात् संवृतेषु वृक्षेषु वितिष्ठते आत् तदा अस्य अग्नेः शोचिः अर्चिः अनु वातः वाति । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः—अध अथानन्तरं हे अग्ने ! ते तव व्रजनं वर्त्म कृष्णमस्ति । स्म—इति पूरणम् ॥ २ ॥

(यवसे अविष्यन्) घासमें चुगतेहुए (प्रोथत् अश्वः नः) हींसते हुए घोड़ेकी समान (महः संवरणात्) बड़े निरोधसे दावरूप अग्नि (यद्रा व्यस्थात्) जब फैलेहुए वृक्षोंमें स्थित होता है (आत् अस्य शोचिः अनुवातः वाति) तब इस अग्निकी लपट वायुके पीछे २ चलती है । (अध) अनन्तर । हे अग्ने ! (ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) तेरा मार्ग कृष्णवर्ण है ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा
३ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
इधानाः । अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
अग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! नवजातस्य नूतन-प्रादुर्भूतस्य वृष्णः वर्षितुः यस्य ते तव अजरा जरारहिता ज्वाला इधानाः इध्यमाना या उच्चरन्ति मद्गच्छन्ति । हे अग्ने ! अरुषः आरोचमानः धूमः धूमयुक्तः दूतः त्वं द्याणच्छ द्युलोकं प्रति समेषि सम्यग् गच्छसि पश्चात् तत्रत्यान् देवान् इंद्रादीन् ईयसे हि प्राप्नोषि खलु यद्वा हे अग्ने ! त्वदीयो यो धूमः द्युलोकं प्रति एषि गच्छति पुरुषव्यत्ययः त्वमपि देवान् प्राप्नोषि एषि—एति—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्ने (नवजातस्य वृष्णः) नवीन प्रकटहुए और वर्षा करनेवाले (यस्य ते) जिस तेरी (अजरा इधानाःउच्चरन्ति) जरा

रहित ज्वालाएं प्रज्वलित होती हुई निकलती हैं (अग्ने अरुषः धूमः दूतः) हे अग्निदेव! प्रकाश करता हुआ धूमयुक्त दूतरूप तू (द्यां अच्छ समेषि) द्युलोकमेंको जाता है। फिर तहां के (देवान् हि इयसे) इंद्रादिदेवताओंको अवश्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

१ २र ३२ ३२३१२
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
१ २र ३१२
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥

ऋ० सुकक्षः श्रुतकक्षो वा। छ० गायत्री। दे० इंद्रः। अथ तमिन्द्रमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम तत्र प्रथमा। यजमाना आहुः-तं पूर्वोक्तम् इंद्रं वाजयामसि वाजयामः सोमेन स्तुतिभिः वाजवंतं बलवंतं कुर्मः। किमर्थम्? महे महान्तं वृत्राय अपामावरकं वृत्रासुरं हन्तवे हन्तुं सोमपानेन मत्तः स्तुतिभिः वा स्तुतः सन् वृत्रहन्तवे वाजयामसि—वाजवन्तं करोतीत्यर्थे तत्करोतीति (३, १, २५ वा०) णिच् णाविष्ठवत् (३, १, २५ वा०)-इति णेरिष्ठवद्भावात् टेः (६, ४, १५५)-इति टि-लोपः विन्मतोर्लुक् (५, ३, ६५)-इति मतुपो लुक्। वृषा धनानां सेक्ता दाता सः इंद्रः वृषभः अस्माकं स्तोतृणां सोमस्य दातृणां धनादिसेचको दाता भुवत भवतु ॥ १ ॥

(महे वृत्राय हन्तवे) बड़े भारी वृत्रासुरको मारनेके लिये (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इंद्रको सोम और स्तुतियोंसे बलवान् करते हैं (वृषा सः वृषभः भुवत्) धनोंकी वर्षा करनेवाला वह इंद्र हम स्तोताओंको और सोम अर्पण करनेवालोंको धनका दाता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २र ३१ २र३ १ २र ३२
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः ।
३ २ ३२उ ३ २
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। सः इंद्रः दामने स्तोतृभ्यः धनादिदानायैव कृतः प्रजापतिना सृष्टः किञ्च ओजिष्ठः ओजस्वितमः सःएवेन्द्रः बले बलवति सोमे प्रजापतिना सृष्टिकाले निहितः सोम-पानार्थञ्च निहित इत्यर्थः द्युम्नो द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति (निरु० नै० ५, ५) यास्केनोक्तत्वात् यशस्वी अन्नवान् वा अतएव श्लोकी श्लोकः स्तुतिः तद्वान् सः इंद्रः सोम्यः सोमार्हो भवति। बले—मदे-इति पाठो ॥ २ ॥

(सः इंद्रः दामने कृतः) उस इंद्रको स्तुति करने वालों को धन देनेके लिये ही प्रजापतिने रचा है (ओजिष्ठः सः बले हि नः) प्रभावशाली वह इंद्र बलदायक सोमके पीनेको सृष्टिकालमें ब्रह्माने स्थापित किया है (द्युम्नः श्लोकी सः सोम्यः) अन्नवान् और प्रशंसा वाला वह इंद्र सोमके योग्य है ॥ २ ॥

३ २३ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
३ २ ३ १ २र
ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । गिरा स्तुतिलक्षणया वाचा स्तोतृभिः सम्भृतः उत्पादितः तीक्ष्णीकृतः । तत्र दृष्टान्तः—वज्रो न वज्रम् आयुधम् तत्कर्तृभिः शितधारो यथा भवति तीक्ष्णीक्रियते तद्वत् स्तोतृभिः स्तुत्या सम्भृतः अतएव सबलः बलसहितः तस्माद् अनपच्युतः परैरप्रच्युतः अनभिगत इत्यर्थः त.दृशः उग्रः महान् अस्तृतः युद्धे शत्रुभिरहिंसित इंद्रः ववक्षे स्तोतृभ्यो धनादिकं वोढुमिच्छति ॥ उग्रः ऋष्वः–इति पाठौ ॥ ३ ॥

(गिरा संभृतः) स्तुतिरूप :वाणीसे स्तोताओं करके तीक्ष्ण किया हुआ (वज्रो न) जैसे कि—बनानेवालोंसे वज्रनामक आयुध तीक्ष्ण कियाजाता है तैसे तीक्ष्ण किया हुआ, इसीकारण (सबलः अनपच्युतः) बलवान् और दूसरोंसे न दबने वाला (उग्रः अस्तृतः) महान् और किसी शत्रुसे चोट न खाने वाला इंद्र (ववक्षे) स्तुति करने वालोंको धन देना चाहता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २
अध्वर्य्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय ।
३ १ २ ३ १ २
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥

ऋ० उचथ्यः । छ० गायत्री । दे०सोमः । अथ सप्तमखण्डे-अध्वर्य्यो अद्रिभिरिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे अध्वर्य्यो ! अद्रिभिः ग्रावभिः सुतम् अभिषुतं सोमं, पवित्रे आनय प्रापय । एवमेव दर्शयति इंद्राय इंद्रस्य पातवे पानाय पुनाहि पुनीहि पावय ॥ आनय आसृज– इति पाठौ पुनाहि पुनीहि–इति च ॥ १ ॥

(अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमम्) हे अध्वर्यु पाषाणोंसे अभिषव

किये हुए सोमको (पवित्रे आनाय) दशा पवित्रमें पहुंचा (इंद्राय पातवे पुनाहि) इंद्रके पीनेके लिए पवित्र कर ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३२उ ३क २र
तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत ।
१ २ २ १ २
पवमानस्य मरुतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्दो ! सोम ! तव सम्बन्धिनं मधोः मदकरस्य पवमानस्य पूयमानम् अन्धसः अन्नं तत्र कर्मणि षष्ठी (३, १, २५) त्ये ते इमे देवाः इंद्रादयो मरुतश्च एवम्भूतमन्नं व्याशत व्याप्नुवंतीत्यर्थः ॥ व्याशत व्यश्नुत-इति पाठौ ॥ २ ॥

(त्ये देवाः मरुतः) वह इंद्रादि देवता और मरुत् देवता (इन्दो) हे सोम ! (तव मधोः पवमानस्य अंधसः) तेरे मदकारी पवित्र अन्न रूप रसको (व्याशत) भक्षण करते हैं ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २उ १ १ २ ३ १ २
दिवः पीयूषमुत्तमꣳ सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
३ २ ३ १ २
सुनोता मधुमत्तमम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अध्वर्य्यवः ! यूयं मधुमत्तमम् अतिशयेन माधुर्य्योपेतं दिवः द्युलोकस्य पीयूषम् अमृतभूतम् उत्तमं श्रेष्ठं सोमं वज्रिणे वज्रवते इंद्राय सुनोत अभिषुणुत ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजा ! (मधुमत्तमं दिवः पीयूषम्) परम मधुरतायुक्त और द्युलोकके अमृतरूप (उत्तमम् सोमम्) श्रेष्ठ सोमको (वज्रिणे इंद्राय सुनोत) वज्रधारी इंद्रके अर्थ अभिषुत करो ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनु-
२ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १ २र ३
माद्यो नृभिः । हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभि-
२ ३ १ २ ३ २
र्वृथा पाजाꣳसि कृणुषे नदीष्वा ॥ १ ॥

ऋ० कविः । छ० जगती । दे०सोमः । धर्त्ता दिव इति तृचात्मकम् द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । धर्त्ता सर्वस्य धारकः सोमः दिवः अन्त-

रिक्षात् अन्तरिक्षस्थितात् दशापवित्रात् पवते पूयते। कीदृशः सोमः? कृत्व्यः कर्त्तव्यः शोध्य इत्यर्थः। रसः रसात्मकः। देवानाम् दक्षः बल-प्रदः यद्वा, दक्षः प्रवर्द्धनीयो देवानामर्थाय। तथा नृभिः नेतृभिः ऋत्विग्भिः अनुमाद्यः अनुमादनीयः स्तुत्यो वा। शेषः प्रत्यक्षकृतः। हरिः हरितवर्णः। सत्वभिः प्राणिभिः अस्मदादिभिः सृजान सृज्यमानः अत्यो न अश्व इव स यथा शिक्षितोऽनायासेन गच्छति तद्वत् वृथा अप्रयत्नेन पाजांसि बलानि स्वीयानि कृणुते कुरुते नदीषु वसतीवरीषु ताभिरित्यर्थः॥ कृणुषे कृणुते—इति पाठौ॥ १॥

(कृत्व्यः रसः) शोधन करने योग्य और रसरूप (देवानां दक्षः) देवताओंको बलदायक (नृभिः अनुमाद्यः) ऋत्विजोंके स्तुति करने योग्य (धर्त्ता) सबका धारक सोम (दिवः पवते) अंतरिक्षमेंके दशापवित्रमेंको बरसता है (हरिः सत्वभिः सृजानः) हरे वर्णका सोम हम प्राणियोंसे रचा जाता हुआ (अत्यो न) जैसे शिक्षित घोड़ा अनायासमें ही चला जाता है तैसे (नदीषु वृथा पाजांसि कृणुषे) वसतीवरी जलोंमें अपने बलोंको करता है॥ १॥

२ ३ १ २ १ २ १ १ २ ३ २ १ २
शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वा३ः सिषा-
३ १ २र १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सन्नथिरो गविष्टिषु। इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्यु-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः॥ २॥

अथ द्वितीया। अयं सोमः गभस्त्योः हस्तयोः आयुधा आयुधानि शूरो न शूर इव धत्ते धारयति, स्वः स्वर्गं सुखसाधनं यज्ञं वा सिषासन् सम्भक्तुमिच्छन् रथिनः रथवान् रथादिन् प्रत्ययः गविष्टिषु यजमानस्य गवामन्वेषणेषु सत्सु यजमानो ह्यहं गोसम्भजनाय रथवानित्यर्थः इंद्रस्य शुष्मम् बलम् ईरयन प्रेरयन् इन्दुः सोमः देवः अपस्युभिः कर्मेच्छुभिः मनीषिभिः मेधाविभिः स्युभिः ऋत्विग्भिः हिन्वानः प्रेर्यमाणः अज्यते गोभिः॥ २॥

यह साम (शूरः न) शूरकी समान (गभस्त्योः आयुधा धत्ते) हाथोंमें आयुधोंको धारण करता है (स्वः सिषासन्) सुखके साधन वा यज्ञको सेवन करना चाहता हुआ (रथिनः गविष्टिषु) रथवान यजमानकी गौओंकी इच्छाओंमे (इंद्रस्य शुष्मम् ईरयन्) इंद्रके बल को प्रेरणा करता हुआ (इन्दुः) सोम देवता (अपस्युभिः मनीषिभिः

हिन्वानः सृज्यते) कर्मानुष्ठानके अभिलाषी ऋत्विजों करके प्रेरणा किया हुआ गोदुग्धादिसे मिलाया जाता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १२
इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो
३ २३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
जठरेष्वा विश । प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी
३ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
धिया नो वाजाꣳ उप माहि शश्वतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! पवमान ! पूयमान ! त्वं तविष्यमाणो वर्द्धिष्यमाणः सन् इंद्रस्य जठरेषु ऊर्मिणा प्रभूतया धारया आ विश जठरप्रदेशस्य बाहुल्यात् बहुवचनम् नः अस्मदर्थं विद्युत् अभ्रेव अभ्राणीव सा यथा अभ्राणि दोग्धि तद्वत् प्र पिन्व धुक्ष्व रोदसी द्यावापृथिव्यौ किञ्च धिया कर्मणा नः अस्मभ्यं शश्वतः बहुनामैतत् (निघ० ३, १, ५) बहून् वाजान् अन्नान् उप समीपे माहि निर्मोहि ॥ माहि—मास्वि इति इति पाठो नः—न—इति च ॥ ३ ॥

(सोम पवमान) हे सोम ! संस्कार किया जाता हुआ तू (तविष्यमाणः इंद्रस्य जठरेषु ऊर्मिणा आविश) बढ़ाया जाता हुआ इंद्रके उदरों में बड़ी धारासे प्रवेश कर (विद्युत् अभ्रेव) जैसे बिजली मेघों को दुहती है तैसे (नः रोदसी प्रपिन्व) हमारे लिए द्युलोक और भूलोक को दुह (धिया नः शश्वतः वाजान् उपमाहि) कर्म के द्वारा हमारे अर्थ बहुतसे अन्नोंको हमारे समीपमें रच ॥ ३ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २
यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

ऋ० देवातिथिः । छ० बृहती: । दे०इंद्रः । अथ प्रगाथरूपे तृतीयसूक्ते प्रथमा । हे इंद्र ! यद् यदि प्राक् प्राच्यां दिशि वर्त्तमानैः सप्तम्यां प्राक् शब्दात् विहितस्यास्तातेः अञ्चेर्लुगिति (५, ३, ३०) लुक् यदि वा अपाक् प्रतीच्यां दिशि वर्त्तमानैः यदि वा उदक् उदीच्यां दिशि वर्त्तमानैः यदि वा न्यक् नीच्यां दिशि अधस्तद्वर्त्तमानैः न्यधी च (६, २, ५३)—इति प्रकृतिस्वरत्वम् उदात्तस्वरितयोर्यणः (८, २, ४,)—इति परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम् एवम्भूतैः नृभिः स्तोतृभिः त्वं हूयसे

स्वस्वकार्य्याय आहूयसे सिम श्रेष्ठ इंद्र ! सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षते इति वाजसनेयकम् । यद्यप्येवं बहुभिराहूयसे तथापि अनवे अनुर्नाम राजा तस्य पुत्रे राजर्षौ पुरु बहुलं नृषूतः नृभिस्तदीयैः स्तोतृभिः प्रेरितः असि भवसि राज्ञो हितकरणे त्वां स्तोतारः प्रीणयन्तीत्यर्थः पुप्रेरणे अस्मात् कर्मणि निष्ठा तृतीया कर्मणि (६,२,४८)-इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् अपि च हे प्रशर्द्ध ! प्रकर्षेण शर्द्धयितरभिभवितरिन्द्र ! तुर्वशे—एतत्संज्ञके राजनि नृषूतोऽसि नृभिः प्रेरितोऽसि भवसि ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र (यत्) यद्यपि तुम (प्राक् अपाक् उदक् वा अन्यक् नृभिः हूयसे) पूर्व दिशामें पश्चिम दिशामें वर्तमान उत्तर दिशामें वर्तमान वा नीचेकी दशामें वर्तमान स्तोताओं करके तुम उनके अपने २ कार्यके समय पुकारे जाते हो तथापि (सिम) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! (अनवे) अनु राजाके राजर्षि पुत्रके विषयमें (पुरु नृषूतः असि) अधिकतर उनके मनुष्योंसे प्रेरणा किये जाते हो अर्थात् उस राजाके हितके लिये तुम्हें स्तोता प्रसन्न करलेते हैं (प्रशर्ध) हे अधिकतासे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले इंद्र ! (तुर्वशे) तुर्वश राजाके विषयमें भी उसके ऋत्विजोंसे प्रेरणा किये जाते हो ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
सचा । कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा
२र ३ १ २
यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। यद्वा यद्यपि रुमे रुमादिषु चतुर्षु राजसु हे इंद्र! त्वं सचा सह मादयसे माद्यसि तथापि ब्रह्मवाहसः ब्रह्मणां स्तोत्राणां वोढारः अथवा अन्नानां वोढारः कण्वासः कण्वगोत्रा ऋषयः स्तोमेभिः स्तोत्रैः स्तोत्रसमूहैः सह इन्द्र! त्वाम् आयच्छन्ति आयमयंति अतस्त्वम् आगहि शीघ्रमागच्छ गमेर्लोटि छान्दसः (२,४,७३) शपो लुक् स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहसः—ब्रह्मभिः स्तोमवाहसः—इति पाठौ ॥ २ ॥

(यद्वा इंद्र) यद्यपि हे इंद्र ! (रुमे रुशमे श्यावके कृपे) रुम रुश श्यावक और कृपके विषयमें (सचा मादयसे) एक साथ प्रसन्न किये जाते हो । तथापि (ब्रह्मवाहसः कण्वासः स्तोमेभिः) स्तुति पहुँचानेवाले कण्वगोत्री ऋषि बहुतसे स्तोत्रोंके साथ तुम्हें वशमें करलेते हैं (इंद्र आगहि) हे इन्द्र तुम हमारे कर्ममें आओ ॥ २ ॥

३ १ २   ३ १ २   ३ १ २   ३ २ ३ १   २र   ३ १ २
उभयꣳ शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः । सत्राच्या
३ २ ३   १ २   ३ १   २र ३   १   २
मघवांत्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

ऋ० भर्गः । छं० बृहती । दे० अग्निः । अथ प्रगाथे चतुर्थसूक्ते—प्रथमा । उभयं स्तोत्रात्मकं शस्त्रात्मकञ्चोभयविधम् इदम् अर्वाग् अस्मदभिमुखम् इन्द्रः शृणवत् शृणोतु त्वञ्च मघवान् धनवान् इन्द्रः सत्राच्या अस्माकं सह अञ्चत्या धिया युक्तः सन् शविष्ठः अतिशयेन सोमपीतये सोमस्य पानाय आगमत आगच्छतु ॥ १ ॥

(उभयं इदं वचः) स्तोत्ररूप और शास्त्ररूप दोनों प्रकारके इस वचनको (नः अर्वाक् इन्द्रः शृणवत्) हमारे अभिमुख होकर इन्द्र सुनै (मघवान्) धनवान् इन्द्र (सत्राच्या धिया) हमारे साथ प्रतिष्ठा पाने वाली बुद्धिसे युक्त है इसीसे (शविष्ठः) अति बलवान् हुआ (सोमपीतये आगमत्) सोमपान करनेको आवे ॥ ३ ॥

२उ   ३ १ २   ३ १   १र   ३ १ २   ३
तꣳहि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टत-
१ २   ३ २ ३ १ २   ३ १   २र ३   १ २
क्षतुः । उपोतमानां प्रथमो निषीदसि सोम-
२   २ ३ १ २
कामꣳ हि ते मनः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । तं हि तं खल्विन्द्रं स्वराजं स्वयमेव राजमानो धिषणे द्यावापृथिव्यौ वृषभं जगदुपकारकं वृष्टेर्वर्षकम् ओजसा बलेन निष्टक्षतुः संश्रतुः उत अपि च यस्मादेवं तस्मात् हे इन्द्र! उपमानभूतानामन्येषां देवानां मध्ये प्रथमः मुख्यः सन् निषीदसि वेद्यां सोमकामं हि खलु ते मनः ओजसा ओजसः—इति ॥ २ ॥

(धिषणे) द्युलोक और पृथिवीलोकके निवासी (स्वराजं वृषभं तं हि) स्वयं विराजमान जगत्का उपकार करनेवाले तिस इन्द्रको ही (ओजसा निष्टतक्षुः) अपने बलसे प्राप्त होते हैं (उत) और हे इन्द्र (उपमानां प्रथमः निषीदसि) उपमान भूत अन्य देवताओं में मुख्य होकर वेदीमें विराजमान होता है (हि ते मनः सोमकामम्) निश्चय तेरा मन सोमकी कामना वाला है ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्च्चिके नवमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

१२ ३१ २३१ २र ३१२
पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
३२ २र३ १२
वायुमा रोह धर्म्मणा ॥ १ ॥

ऋ० निध्रु विः । छ०गायत्री । दे० सोमः । अथाष्टमखण्डे–तृचात्मके प्रथमसूक्ते—प्रथमा । हे सोम ! देवः द्योतमानः त्वं पवस्व धारया क्षर । अपि च ते तव मदः मदकरो रसः आयुषक् तम् इंद्रं प्रति गच्छतु अपि च त्वं वायुं धर्मणा धारकेण रसेन आरोह प्राप्नुहि देवः देव इति पाठौ ॥ १ ॥

हे सोम (देवः पवस्व) दीपता हुआ तू धारासे बरस (ते मदः आयुषक् इन्द्रं गच्छतु) तेरा मदकारी रस उस इंद्रको पहुंचे (धर्मणा वायुं आरोह) धारण करने वाले रसके द्वारा वायुको प्राप्त हो ॥ १ ॥

१२ ३ १ २ १ २ ३१२
पवमान नि तोशसे रयिँ सोम श्रवाय्यम् ।
१२ ३१ २र
इन्दो समुद्रमा विश ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे पवमान इन्दो ! सोम त्वं श्रवाय्यं श्रवणीयं रयिं शत्रूणां धनं नि तोशसे अतितरां पीड़यसि स त्वं समुद्रं द्रोणकलशं आविश प्रविश इन्दो प्रियः इति पाठौ ॥ २ ॥

(पवमान इन्दो) हे पूयमान सोम ! तू (श्रवाय्यं रयिं नितोशसे) श्रवण करनेयोग्य शत्रुओं के धनको अत्यन्त पीड़ा देता है वह तू (समुद्रं आविश) द्रोणकलश में प्रवेश कर ॥ २ ॥

३ १२ ३ १२
अपघ्नन्पवसे मृधः० ॥ ३ ॥

अपघ्नन् पवसे मृध इति तृतीया । ऋचः प्रतीकमिदम् ॥ सा च छन्दस्याम्नाता (६, १, १, ६—प्रथमभागे) व्याख्याता च ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या प्रथम भाग ६ । १ । १ । ६ में होचुकी है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३१२
अभी नो वाजसातमम्० ॥ १ ॥

ऋ० अम्बरीषः ऋजिश्वो वा । छ० अनुष्टुप् । दे० सोमः अथ तृतीयसूक्ते तृचात्मके–अभीनोवाजसातममिति प्रतीकम्, सा चाम्नाता (६, २, १, ५—प्रथमभागे) व्याख्याता च ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या प्रथम भाग ६ । २ । १ । ५ में होचुकी ॥ १ ॥

३१ १ २ १ २र३ १२ ३ १२
वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः ।
१ २र ३१ २र ३ १ २
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ॥२॥

अथ द्वितीया । हे वसो वासयितः सोम ! अस्य एतादृशस्य ते तव राधसः धनस्य पुरुस्पृहः बहुभिः स्पृहणीयस्य वसोः वासकस्य त्वदीयदीयमानस्य वयं नितरां नेदिष्ठतमाः अत्यन्तमन्तिकतमाः स्याम भवेम ॥ २ ॥

(वसो) हे व्यापक सोम ! (पुरुस्पृहः वसोः) अनेकोंके चाहने योग्य और तेरे दिये हुए (अस्य ते राधसः) इस तेरे धनके नेदिष्ठतमाः स्याम) अत्यन्त समीप हों (अध्रिगो ते इषः सुम्ने) हे सोम ! तेरे दियेहुए अन्नके सुखमें समीप हों ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३२ ३ १२
परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
२ ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २र ३ २
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ३

अथ तृतीया । गव्ययुः गोकामः यद्वा क्षीरादिकामयमानः ऊर्ध्वः समुच्छ्रितः सर्वेषां मुख्यो यः सोमः भ्राजा न यथा भ्राजमानया दीप्त्या अन्तरिक्षे गच्छति तद्वत् दीप्त्या सह अध्वरे यज्ञे धारा ।स्वकीयया धारया याति गच्छति स्वानः सुवानः अभिषूयमाणः सः इन्दुः सोमः मदच्युतः मदार्थं वेदैः प्रेरितः सन् अव्ये अविमवे पवित्रे पर्य्यक्षरत् परितः क्षरति ॥ अक्षरत अक्षाः—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(गव्ययुः ऊर्ध्वः यः) गोदुग्धादिकी इच्छावाला सबोंमें मुख्य जो सोम (भ्राजा न) जैसे कि दीप्तिसे अन्तरिक्षमें जाता है तैसे (अध्वरे धारा याति) यज्ञमें अपनी धारासे जाता है (स्वानः स्यः इन्दुः) अभिषव किया जाता हुआ वह सोम (मदच्युतः अव्ये पर्यक्षरत्) मदके अर्थ वेदोंसे प्रेरणा किया हुआ ऊनके पवित्रोंमें को टपकता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः
३ २ ३२ ३ २ ३ १ २र
पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ १ ॥

ऋ० ऋणः त्रसदस्युः वा । छ० द्विपदा पंक्तिः । दे०पवमानसोमः । अथ तृतीयसूक्ते प्रथमा । हे सोम ! महान् देवेभ्यो दीप्यमानत्वेन महत्त्वयुक्तः समुद्रः समुन्दनः यस्मात् समुद्द्रवन्ति तादृशः पिता सर्वेषां पालयिता त्वं देवानां विश्वा विश्वानि सर्वाणि धाम धामानि शरीराणि अभि लक्ष्य पवस्व क्षर ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम ! (महान् समुद्रः) देवताओंको अर्पण किया जाता है इसकारण महत्त्वयुक्त और जिसमें से रस वहते हैं ऐसा (पिता) सबका पालन करनेवाला तू (देवानां विश्वा धाम अभि पवस्व) देवताओंके सकल शरीरोंकी ओरको लक्ष्य करके बरस ॥१॥

३ १ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च

३ १ २

प्रजाभ्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! शुक्रो दीप्तः त्वं देवेभ्यः देवार्थं पवस्व क्षर । किञ्च दिवे पृथिव्यै च द्यावापृथिवीभ्याञ्च ततः प्रजाभ्यः च शं सुखं कुरु ॥ प्रजाभ्यः प्रजायै-इति पाठौ ॥ २ ॥

(सोम शुक्रः) हे सोम ! दीप्तिमान् तू (देवेभ्यः पवस्व) देवताओंके अर्थ द्रोणकलशमें वरस (दिवे पृथिव्यै प्रजाभ्यः च शम्) द्युलोक पृथ्वीलोक और प्रजाओंको सुखरूप हो ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १

दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्वाजी

२

पवस्व ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! शुक्रः दीप्तः पीयूषः पातव्यः त्वं दिवः द्युलोकस्य धर्त्ता धारकः असि वाजी बलवान् स त्वं सत्ये सत्यभूते विधर्मन् विधर्मणि विविधानि कर्माणि ऋत्विजो कुर्वन्ति यस्मिन् यद्वा विविधं सोमादिहविषां धारकेऽस्मिन् यज्ञे पवस्व क्षर ॥ ३ ॥

हे सोम ! (शुक्रः पीयूषः दिवः धर्त्ता असि) दीप्त और पीने योग्य तथा द्युलोकका धारण कर्त्ता है (वाजी सत्ये विधर्मन् पवस्व) बलवान् तू सत्यस्वरूप यज्ञमें वरस ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य अष्टमः खण्डः समाप्तः

वाले (अगोह्य) किसीसे भी न दबनेवाले (इंद्र) हे इन्द्र ! (गिरिः न विश्वतः पृथुः) पर्वतकी समान सब ओरसे महान् (दिवः पतिः) स्वर्ग स्वामी तू (नः आगधि) हमारे समीप आओ ॥ १ ॥

३ १ २र ३२ ३२३ १ २
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
१ २र ३२ ३१ २र ३२
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सत्य ! सोमपाः सोमस्य पातः इन्द्र! यस्त्वम् उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभि बभूथ सामर्थ्येनाभि भवसि स त्वं सुन्वतः सोमाभिषवं कुर्वतः यजमानस्य वृधः वर्धकः असि । दिवः स्वर्गस्यापि पतिः ईश्वरोऽसि ॥ २ ॥

(सत्य सोमपाः इंद्र) सत्यस्वरूप सोमके पीनेवाले हे इन्द्र! जो तू (उभे रोदसी अभिबभूथ) दोनों लोक द्यावा पृथिवीको अपने प्रभाव से छा देता है । वह तू (सुन्वतः वृधः) सोमाभिषव करनेवाले यजमानकी वृद्धि करनेवाला (दिवः पतिः असि)स्वर्गलोकका स्वामी है

१ २र ३ १ २ ३२ ३१ २र
त्वँ हि शश्वतीनामिन्द्र धर्ता पुरामसि ।
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २
हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! त्वं शश्वतीनां बह्वीनां पुरां शत्रुनगरीणां धर्त्ता असि हि दारयिता भवसि खलु। किञ्च दस्यो वृथाकालस्योपक्षेपयितुरसुरस्य हन्ता असि घातको भवसि मनोः मनुष्यस्य यागादिकुर्वतो वृधः वर्द्धकश्चासि । दिवः स्वर्गस्यापि पतिः ईश्वरोऽसि ॥ ३ ॥

(इन्द्र त्वं हि) हे इन्द्र ! तू ही (शश्वतीनां पुरां धर्ता) बहुतसे शत्रुनगरोंको नष्ट करनेवाला (दस्योः हन्ता) वृथा समय खोनेवाले असुरका नाशक (मनोः वृधः) यज्ञकर्ता मनुष्यका वृद्धिकर्ता (दिवः पतिः असि) और स्वर्गका स्वामी है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ १ ॥

ऋ० जेताः । छ० उष्णिक् । दे० इन्द्रः । अथ तृचात्मके तृतीय-सूक्ते प्रथमा। अयम् इन्द्रः उच्यमानगुणयुक्तो अजायत सम्पन्नः। कीदृग्गुणकः इति चेदुच्यते-पुराम् असुरपुराणां भिन्दुः भेत्ता युवा कदाचिदपि वली पलितादिवार्द्धक्यरहितः कविः मेधावी अमितौजाः प्रभूतवलः विश्वस्य कर्मणः कृत्स्नस्य ज्योतिष्टोमादेः धर्त्ता पोषकः वज्री यजमानरक्षणार्थं सर्वदा वज्रयुक्तः पुरुष्टुतः बहुविधे तत्तत्कर्मणि स्तुतः ॥ भिंदुः-भिदिर् विदारणे (रु० प०) कुरित्यनुवृत्तौ पृथिदिव्यधिगृधिधृपिभ्यः (उ० १,२३)-इति कुप्रत्ययः तस्य छन्दस्युभयथा(३,४,११७)-इति सार्वधातुकसंज्ञायां रुधादिभ्यः श्नम् (३,१,३८)मित्वादन्त्यादचः परो भवति श्नसोरल्लोपः (६,४,१११) अनुस्वारपरसवर्णौ अचः परस्मिन् पूर्वविधौ (१,१,५७) इति प्राप्तस्य स्थानिवद्भावस्य न पदान्तेत्यादिना(१,१,५८) निषेधः। युवा यु मिश्रणामिश्रणयोः(अदा०प०)कनिन्युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः (उ०१,१५४)इति कनिन् नित्वादाद्युदात्तः(६,१,१९७) कविः कु शब्दे(अदा०प०)अच इरिति (उ०४,१३८) इः प्रत्ययस्वरः (३, १,३) । अमितः-अमितशब्दस्याव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, १,) बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेन तदेव शिष्यते । विश्वस्य अशूप्रुषीत्यादिना (उ० १, १४९) क्वन् नित्वादाद्युदात्तः (६,१,१९७) कर्मणा—अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते (३, २, ७५)—इति मनिन् नित्स्वरः (६,१,१९७) । धर्त्ता—तृच् कित्वादन्तोदात्तः (६, १, १६५) । वज्री मत्वर्थीय इनौ (५, २, १२२) प्रत्ययस्वरः । पुरुष्टुतः स्तुतस्तोमयोः छन्दसि (८, ३, १०५)—इति षत्वम् बहुषु प्रदेशेषु स्तुतः थाथघञ्क्तजवित्रकाणाम् (६,२,१४४) इत्यन्तोदात्तत्वम् तृतीयासमासे हि थाथादिस्वरापवादः तृतीया कर्मणि (६, २, ४८) इतिपूर्वपदप्रकृतिस्वरः स्यात् ॥ १ ॥

(पुरां भिन्दुः) असुरोंके नगरोंको तोड़नेवाला (युवा) सदा तरुण (कविः अमितौजाः) अनुभवी और अमितपराक्रमी (विश्वस्य कर्मणः धर्त्ता) सकल ज्योतिष्टोम आदि कर्मोंका पोषक (वज्री पुरुष्टुतः) यजमानोंकी रक्षा करनेको वज्रधारी और अनेकों कर्मोंमें स्तुति कियाहुआ (इन्द्रः अजायत) इन्द्र प्रकट हुआ ॥ १ ॥

२ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १२
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो विलम् ।
२ ३ १ २र ३ १ २
त्वां देवा अभिभ्युपस्तुज्यमानस आविषुः ॥२॥

अथ द्वितीया। वलनामकः कश्चिदसुरो देवसम्बन्धिनीर्गा,अपहृत्य कस्मिँश्चिद् गोपितंवान्तदानीमिन्द्रस्तद्विलम् समावृत्य तस्माद्विलाद्गा-निःसारयामास तदिदमुपाख्यानमिन्द्रो बलस्य वलमौर्णोदित्यादि ब्राह्मणेषु मन्त्रान्तरेषु च प्रसिद्धम् तदेतद् हृदि निधार्यायं मन्त्रः प्रवर्त्तते—हे अद्रिवः वज्रयुक्तेन्द्र! त्वं गोमतः बलस्य गोभियु क्तस्य बलनामकस्या-सुरस्य सम्बन्धि विलम् अपावः स्वसैन्यमुखेनापाहृतवानसि। तदानीं तुज्यमानासः बलेन हिंस्यमानाः देवाः अविभ्युषः त्वद्दयया रक्षया बला-दभीताः सन्तः त्वामाविषुः प्राप्तवन्तः।अपेत्यस्य निपातत्वादाद्युदात्तत्वम् (फि० ४, १२)। अवः—वृञ् वरणे (स्वा०ऊ०)लङ् सिप् इतश्च लोपः (३, ४, ९७) स्वादिभ्यः श्नुः (३, १,७३) तस्य बहुलञ्छन्दसि(२,४, ७६) इति लुक् गुणो रपरत्वम् हल्ङ्यादिलोपः विसर्जनीयः अडागमः। अद्रिवः अद्रिरस्यास्तीति मतुप् छन्दसीरः(८,२,१८)इति वत्वम् संबोधने उगिद्चामिति नुम्(७,१,७०)हलङ्याप् संयोगान्तलोपौ मतुवसो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि(८,३,१)इति रुत्वम्। विलं नव्विषयस्यानिसन्तस्येत्या द्युदात्तत्वम् (फि० २, ३) अविभ्युषः ञि भी भये (जुहो०प०) लिङ् द्विर्भावः अभ्यासस्य ह्रस्वजश्त्वे क्वसुश्च (३, २, १०७) इति लिटः क्वसुरादेशः क्र्यादिनियमात् प्राप्त इट् वस्वेकाजाद्घसाम्(७,२, ६७) इति नियमान्निवर्त्तते, जसि सर्वनामस्थानेऽपि व्यत्ययेन भत्वाद् वसोः संप्रसारणम् परपूर्वत्वम् शासिवसि- घसीनां च (८,३,६०)-इति षत्वम् अचि श्नुधातुरित्यादिना(६,४,७७)प्राप्तमियङादेशं बाधित्वा एरनेकाचः (६,४,८२)-इति यणादेशः नञ्समासः अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम्। तुज्यमानासः-तुजेर्हिंसार्थात्परस्य कर्मणि लटः स्थाने शानच् सार्वधातुके यक् (३, १, ६७) इति यक् तस्माददुपदेशादुत्तरस्य लसार्वधातुकस्यानु-दात्तत्वम् (३, १, १८६) यक एव प्रत्ययस्वरः शिष्यते। आविषुः—अव रक्षणादिषु अस्माद् गत्यर्थाल्लुङि झिस्तस्य सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च (३, ४,१०९)-इति जुस् सिच इडागमः आडजादीनाम् (६,४,७२)-इत्याडागम आदेशप्रत्यययोः (८, ३, ५९)—इति षत्वम्॥ २॥

(अद्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र! (त्वम्) तू जब (गोमतः) बलस्य विलम् अपावः) देवताओंकी गौएँ हरनेवाले बलदैत्यके गौएँ छिपानेके विलको खोलता हुआ तब(तुज्यमानासः देवाः अभिभ्युषः त्वां आविषुः) बलदैत्यके दवाये हुए देवता तुम्हारी रक्षाके कारण बलदैत्यसे भय न पाते हुए तुम्हें प्राप्त हुए॥ २॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत । सहस्रं यस्य
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । स्तोतारः ओजसा बलेन ईशानं जगतो नियामकम् इन्द्रं स्तोमैः त्रिवृदादिभिः अभ्यनूषत सर्वत्र स्तुवन्ति । यस्य इन्द्रस्य रातयः धनदानानि सहस्रं सहस्रसंख्योपेतानि सन्ति उत वा अथवा भूयसीः सहस्रसंख्याकाः अप्यधिकाः सन्ति । तमिन्द्रमिति पूर्वत्रान्वयः ॥ स्तोमैः स्तोमाः—इति पाठौ ॥ इंद्रम्—ऋज्रेन्द्रेत्यादिना रन् (उ० २, २८) नित्वादाद्युदात्तः (६, १, १९७) । ईशानम्—लटः शानचः (३, २, १२४) अदिप्रभृतिभ्यः शपः (२, ४, ७२)—इति धातोरनुदात्तत्वात् तस्यानुदात्तेदित्यादिना (६, १, १८६) शानचोऽनुदात्तत्वम् । ओजसा—नब्विषयत्वादाद्युदात्तः (फि० २, ३)। स्तोमैः—अर्त्तिस्तुस्वित्यादिना (उ० १, १३७)। मत्प्रत्ययः नित्वादाद्युदात्तः (६, १, १९७) अनूषत णु स्तुतौ णो नः (६, १, ६५) लङ् व्यत्ययेन झः तस्य अदादेशः च्लेः सिच् (३, १, ४४) अस्य धातोः कुटादित्वेन सिचो ङित्वाद् (१, २, १) गुणाभावः इडभावश्छान्दसः अडागमः । सहस्रं—कर्दमादीनाञ्च (फि० ३, ११)–इति द्वितीयाक्षरमुदात्तम् । रातयः—मन्त्रे वृषेत्यादिना (३, ३, ९६) क्तिन् उदात्तः उत—प्रातिपदकस्वरः (फि० १, १) । वा—चादिरनुदात्तः (फि० ४, १६) । सति—प्रत्ययाद्युदात्तत्वम् (३, १, ३) तिङ्ङतिङः (८, १, २८)--इति निघातो न भवति यद्वृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६) इति प्रतिषेधात् स हि व्यवहितेऽपि भवतीत्युक्तम् । भूयसीः—सहस्रादतिशयेन बह्वयः भूयस्य अत्र विभक्तस्य सहस्रस्य सन्निधिबलात् उपपदत्व-प्रतीतेर्द्विवचनं विभज्योपपदे तरबीयसुनाविति बहुशब्दादीयसुन् बहोर्लोपो भू च बहोः (६, ४, १५८)–इति इकारलोपः बहोर्भू इत्यादेशश्च ईयसुनो नित्वादाद्युदात्तश्च उगितश्च (४, १, ६)—इति ङीप् ॥३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

स्तोता (ओजसा ईशानम् इन्द्रम्) बलसे जगत्को वशमें रखने-वाले इंद्रको (स्तोमैः अभ्यनूषत) स्तोमोंसे स्तुति करते हैं (यस्य रातयः सहस्रम्) जिस इंद्रके धनके दान सहस्रों (उत वा) और (भूयसीः सन्ति) सहस्रोंसे भी अधिक हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके नवमाध्यायस्य नवमः खण्डः नवमाध्यायश्च समाप्तः

दशमोऽध्याय आरभ्यते

अस्मिन्नध्याये सोमः स्तूयते ।
यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ १० ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
अक्रांत्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन्प्रजा भुवनस्य
३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
गोपाः वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो
३ १ २र
वावृधे स्वानो अद्रिः ॥ १ ॥

ऋ० पराशरः छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । तत्र अक्रान्त्समुद्र इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । समुद्रः यस्मादापः सन्द्रवन्ति स समुद्रः अपां वर्षकः गोपाः स्वामित्वेन सर्वस्य रक्षकः सोमः प्रथमे विस्तृते भुवनस्य उदकस्य वि धर्मन् विधारकेऽन्तरिक्षे प्रजाः जनयन् उत्पादयन् अक्रान् सर्वमभिक्रामति क्रमेर्लुङि तिपीड्भावे वृद्धौ च कृतायां सिज्लोपे मकारस्य मो नो धातोः (८, २, ६४)-इति नकारे रूपम् वृषा कामानां वर्षिता स्वानः अभिषूयमाणः अद्रिः आदरणशीलः सः सोमः अधिकं सानौ समुच्छ्रिते अविभवे पवित्रे प्रभूतं वावृधे वर्द्धते गोपाः राजा-इति पाठौ अद्रिः-इन्दुः-बृहत् इति च ॥ १ ॥

(समुद्रः गोपाः) जलोंकी वर्षा करनेवाला और सबका रक्षक सोम (प्रथमे भुवनस्य विधर्मन्) विस्तारवाले जलके धारणकर्त्ता अन्त-रिक्षमें (प्रजाः जनयन् अक्रान्) प्रजाओंको उत्पन्न करता हुआ सब से बड़ा होता है (वृषा स्वानः) कामनाओंका पूरक और संस्कार कियाजाता हुआ (अद्रिः सः) आदर पानेवाला वह सोम (अधि-सानौ अव्ये पवित्रे) अधिक ऊँचे ऊनके पवित्रे में (बृहत् वावृधे) अधिक बढ़ता है ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा

१ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २र
पूयमानः । मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान्
३ १ २ ३ १ २
मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वं वायुं मत्सि मादय । किमर्थम् ? नः अस्माकम् इष्टये ईषणीयाय अन्नाय राधसे धनाय च । तथा पवित्रेण पूयमानस्त्वं मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च मत्सि तर्पयसि । किञ्च मारुतं मरुतां स्वभूतं शर्द्धो वलं च मत्सि । तथा देवान् इंद्रादीन् मत्सि हर्षय । हे देव ! स्तोतव्य ! हे सोम ! द्यावापृथिव्यौ च मत्सि मादय । एतान् हर्षयुक्तान् कृत्वा अस्मभ्यं धनं प्रयच्छेत्यर्थः ॥ राधसे न राधसे च-इति पाठौ ॥ २ ॥

(देव सोम) हे स्तुतियोग्य सोम ! (नः इष्टये राधसे) हमें अन्न और धन प्राप्त होनेके लिये (वायुं मत्सि) वायुको प्रसन्न करो (पूयमानः मित्रावरुणा मत्सि) संस्कार कियाजाता हुआ मित्रावरुण देवताओंको प्रसन्न कर (मारुतं शर्द्धः मत्सि) मरुत् देवताके वलको प्रसन्न कर (देवान् मत्सि) इन्द्रादि देवताओंको प्रसन्न कर (द्यावा-पृथिवी मत्सि) द्यावापृथिवीको प्रसन्न कर ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ ३ १ २र ३ २
महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये
२ ३ १ २
ज्योतिरिन्दुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । महिषः महान् पूज्यो वा सोमः महत् प्रभूतं तत् कर्म चकार अकरोत् । किन्तत् कर्म? अपां गर्भः उदकानां गर्भभूतः जन-यितृत्वज्जन्यत्वाच्च सः सोमः देवान् आवृणीत समभजत-इति यत् तत् कृतवानिति । किञ्च पवमानः पूयमानः सोमः ओजः तत्पानेन जन्यं वलम् इंद्रे अदधात् । तथा इन्दुः सूर्यं ज्योतिः तेजः अजनयत् ॥ ३ ॥

(महिषः सोमः महत् तत् चकार) पूजनीय सोमने वहुतसा कर्म किया (यत्) जो कि (अपां गर्भः देवान् आवृणीत) जलोंके गर्भरूप सोमने देवताओंका सेवन किया (पवमानः इंद्रे ओजः अदधात्) पूयमान सोमने इंद्रमें वल स्थापन किया (इंदुः सूर्ये ज्योतिः अज-नयत्) दीप्त सोमने सूर्यमें तेजको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २
एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते ।
३ १ २र ३ १ २
अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथैष देव इति दशर्च्चं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । देवः द्योतमानः अमर्त्त्यः मरणरहितः एषः सोमः द्रोणानि द्रोणकलशान् अभि लक्ष्य आसदम् आसत्तुम् आसदनार्थम् पर्णवीरिव यथा पक्षी तथा वेगेन दीयते गच्छति दीयते दीयति-इति पाठौ ॥ १ ॥

(देवः अमर्त्यः एषः) द्योतमान और मरणधर्मरहित यह सोम (द्रोणानि अभि आसदम्) द्रोणकलशोंकी ओर स्थित होनेको (पर्णवीरिव दीयते) पक्षीकी समान वेगसे जाता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते ।
२ ३ १ २ ३ १ २
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विप्रैः मेधाविभिः स्तोतृभिः अभिष्टुतः आभिमुख्येन स्तुतः देवः द्योतमानः एषः सोमः दाशुषे हविषां प्रदात्रे यजमानाय रमणीयानि धनानि दधत् धारयत् प्रयच्छन् । अपः वसतीवरीः रत्नानि वि गाहते प्रविशति ॥ २ ॥

(विप्रैः अभिष्टुतः देवः एषः) स्तोताओंसे प्रशंसा कियाहुआ द्योतमान यह सोम (दाशुषे रत्नानि दधत्) हवि देनेवाले यजमानको अनेकों प्रकारके धन देता हुआ (अपः विगाहते) वसतीवरी जलोंमें प्रवेश करता है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः ।
१ २
पवमानः सिषासति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । पवमानः पूयमानः शूरः वीरः एषः सोमः विश्वानि सर्वाणि वार्य्याणि वरणीयानि धनानि सत्वभिः बलैः यन्निव गच्छन्निव सिषासति अस्मदर्थं सम्भक्तुमिच्छति ॥ ३ ॥

(पवमानः शूरः एषः) पूयमान वीर यह सोम (विश्वानि वार्या सत्वभिः य.क्षेव) सकल वरणीय धनोंको बलोंसे वशमें करताहुआ (सिषासति) हमें देना चाहता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २
एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
३ १ २
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । पवमानः क्षरन्नव सोमो देवः रथर्यति अस्मदीयं यागं प्रत्यागमनाय रथं कामयते । दिशस्यति आगत्य चास्मभ्यमभिलषितं प्रयच्छति । वग्वनुं शब्दम् आविष्कृणोति अभिषूयमाणः प्रकटयति दिशस्यति-इषस्यति-इति पाठौ ॥ ४ ॥

(एषः देवः पवमानः) यह दिव्य सोम (रथर्यति) हमारे यज्ञमें आनेको रथ चाहता है (दिशस्यति) आकर हमें इच्छित पदार्थ देना चाहता है (वग्वनुम् आविष्कृणोति) शब्दको प्रकट करता है ॥ ४ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
२ ३ १ २
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । पवमानः क्षरन् एषः सोमः देवः विपन्युभिः स्तोतृभिः ऋतायुभिः यज्ञकामैः सत्यकामैर्वा हरिः अश्व इव वाजाय संग्रामार्थं मृज्यते स्तुतिभिरलङ्क्रियते ॥ ५ ॥

(एषः देवः पवमानः) यह दिव्य सोम (ऋतायुभिः विपन्युभिः) सत्यकाम स्तोताओं करकै (हरिः) अश्वकी समान (वाजाय मृज्यते) संग्रामके लिये स्तुतियोंसे सुशोभित कियाजाता है ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एष देवो विपा कृतोऽतिह्वराꣳसि धावति ।
१ २ ३ १ २
पवमानो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । विपा—अंगुलिनामैतत् (निघ० १, ५, ९,) अंगुल्या कृतः अभिषुतः एषः सोमः देवः पवमानः क्षरन् अदाभ्यः केनाप्यहिंसितश्च सन् ह्वरांसि शत्रून् अति धावति हन्तुमभिगच्छति ॥ ६ ॥

(विपा कृतः) अंगुलियोंसे अभिषुत (एषः देवः पवमानः) यह दिव्य सोम (अदाभ्यः ह्वरांसि अतिधावति) किसीसे हिंसित न होता हुआ शत्रुओंको मारने जाता है ॥ ६ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
एष दिवं वि धावति तिरो रजाꣳसि धारया ।
१ २ ३ १ २
पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । धारया पवमानः क्षरन् एषः सोमः, कनिक्रदत् अभिषूयमाणः शब्दम् कुर्वन्, रजांसि लोकान् तिरः तिरस्कुर्वन् यज्ञात् दिवम् स्वर्गम् प्रति वि धावति ॥ ७ ॥

(धारया पवमानः एषः) धारासे बरसता हुआ यह सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (रजांसि तिरः) लोकोंका तिरस्कार करता हुआ यज्ञस्थानसे (दिवः विधावति) स्वर्गलोकको जाता है॥७॥

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
एष दिवं व्यासरत्तिरो रजाꣳस्यस्तृतः ।
१ २ ३ २
पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥

अथाष्टमी । पवमानः क्षरन् एषः सोमः स्वध्वरः सुयज्ञः अस्तृतः केनाप्यहिंसितश्च सन् रजांसि लोकान् तिरः तिरस्कुर्वन् यज्ञात् दिवम् प्रति व्यासरत् विसरति गच्छति ॥ ८ ॥

(स्वध्वरः एषः पवमानः) श्रेष्ठ यज्ञवाला यह सोम (अस्तृतः) किसीसे हिंसित न होता हुआ (रजांसि तिरः) लोकोंका तिरस्कार करता हुआ, यज्ञसे (दिवं व्यासरत्) स्वर्गको जाता है॥ ८ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
१ २ ३ १ २
हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥

अथ नवमी । हरिः हरितवर्णः, देवः द्योतमानः एषः सोमः, प्रत्नेन पुराणेन जन्मना जननेन देवेभ्यः देवार्थं सुतः अभिषुतः सन् पवित्रे स्थातुम् अर्षति गच्छति ॥ ९ ॥

(हरिः देवः एषः)हरे वर्णका दीप्तिमान् यह सोम(प्रत्नेन जन्मना) पुरानी उत्पत्तिसे (देवेभ्यः सुतः) देवताओंके लिये सिद्ध किया हुआ (पवित्रे अर्षति) दशापवित्रमें जाता है ॥ ९ ॥

३ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २
एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः ।
१ २ ३ २
धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

अथ दशमी । एष उ स्यः एष च स सोमः पुरुव्रतः बहुकर्मा जज्ञानो जायमान एव इषःअन्नानि जनयन् उत्पादयन् सुतः अभिषुतः धारया पवते क्षरति ॥ १० ॥

(एषः उ स्यः) यह ही वह सोम (पुरुव्रतः जज्ञानः) बहुत कर्म वाला प्रकट होकर (इषः जनयन्) अन्नोंको उत्पन्न करता हुआ (सुतः धारया पवते) अभिषुत हुआ धारासे बरसता है ॥ १० ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः ।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

ऋ० असितदेवलौ । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ द्वितीयखण्डे एषधियेत्यष्टर्चं सूक्तम् तत्र प्रथमा । एषः सोमः शूरः विक्रान्तः अण्व्या अंगुल्या अभिषुतः धिया कर्मणा अतिगच्छति । कीदृशम् ? इति उच्यते इन्द्रस्य निष्कृतं स्थानं स्वर्गाख्यं प्रति आशुभिः शीघ्रगामिभिः रथेभिः रथैः गच्छन् इन्द्रेण रथेऽवस्थाप्य स्वस्थाननयनांगुल्या अभिषूयमाणः सन् होमद्वारा अग्निं गच्छतीत्यर्थः ॥ १ ॥

(शूरः) पराक्रमी (अण्व्या) अंगुलीसे निचोड़ा हुआ (एषः) यह सोम (इन्द्रस्य निष्कृतम्) इन्द्रके स्वर्ग नामक स्थानको (आशुभिः रथेभिः गच्छन्) शीघ्रगामी रथोंके साथ जाता हुआ (धिया याति) कर्म करके पहुँचता है ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एष पुरू धियायते बृहते देवतातये ।
२ ३ १ २ ३ १ २
यत्रामृतास आशत ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । एषः सोमः पुरु बहुलं,धियायते धियं कर्म इच्छति धीशब्दात् याकारोपजनः (७, १, ३९) । यद्वा द्वितीयार्थे तृतीया, (३, १, ८५) छान्दसश्चाङ्क । कस्मै ? बृहते महते देवतातये यज्ञाय

यत्र यस्मिन् यज्ञे अमृतासः अमृताः देवाः आशत व्याप्नुवन्ति तदर्थम् आशत आसत—इति पाठौ ॥ २॥

(एषः) यह सोम (बृहते देवतातये) महान् यज्ञके लिये (पुरुध्रियायति) बहुतसे कर्मकी इच्छा करता है (यत्र अमृतासः आशते) जिस यज्ञमें देवता व्याप्त होते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३२३ १ २ ३ १ २
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः ।
२ २ ३ १ २र
प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । आयवः मनुष्याः ऋत्विजः एतं सोमं मर्ज्यम् उप मृजंति निष्पीडयन्तीत्यर्थः । कुत्र ? द्रोणेषु द्रोणकलशेषु । कीदृशम् ? मही इषः महान्त्यन्नानि प्रचक्राणं कुर्वाणं प्रभूतरसस्राविणमित्यर्थः ॥ ३ ॥

(आयवः) ऋत्विज (महीः इषः प्रचक्राणम्) बहुतसे रसरूप अन्नों की वर्षा करनेवाले (एतं मर्ज्यम्) इस शोधन करने योग्य सोमको (द्रोणेषु उपमृजन्ति) द्रोणकलशोंमें शुद्धतापूर्वक निचोड़ते हैं ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
१ २ ३ २ ३ १ २
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। एषः सोमः हितः निहितः हविर्धाने वि नीयते तस्मात् स्थानात् आहवनीयं प्रति अन्तः तयोर्मध्यदेशे शुन्ध्यावता शुद्धिमता पथा मार्गेण यदि यदा तुञ्जन्ति प्रयच्छन्ति देवेभ्यः भूर्णयः भरणशीलाः अध्वर्य्यादयः तदा विनीयत इति समन्वयः ॥ शुन्ध्यावता शुभ्रावता— इति पाठौ ॥ ४ ॥

(एषः हितः) यह सोम हविर्धानमें स्थापित किया हुआ(विनीयते) तहाँसे आहवनीयके समीप लेजाया जाता है (अन्तः) हविर्धान और आहवनीयके मध्यदेशमें (शुन्ध्यावता पथा) शुद्धियुक्त मार्गसे (यदि भूर्णयः) जब अध्वर्यु आदि (तुञ्जन्ति) देवताओंको अर्पण करते हैं ।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २३ १ २
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । एषः सोमः रश्मिभिः अध्वर्य्वादिभिः सह ईयते गच्छति । कीदृश एषः ? वाजी वेगवान् शुभ्रेभिः दीप्तैः अंशुभिर्विशिष्टः अथवा रश्मिभिरित्येतदप्यंशुविशेषणम् सिन्धूनां स्यन्दमानानां रसानां पतिः भवन् नीयत इति ॥ ५ ॥

(वाजी) वेगवान् (शुभ्रेभिः अंशुभिः) श्वेत किरणोंसे युक्त(एषः) यह सोम (सिन्धूनां पतिः भवन्) बहते हुए रसोंका स्वामी होता हुआ (रश्मिभिः ईयते) अध्वर्यु आदिकोंके साथ जाता है॥ ५ ॥

२ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा ।

३ १ २र ३ १ २

नृम्णा दधान ओजसा ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । एषः सोमः शृङ्गाणि शृङ्गवदुन्नतानंशून् अभिषवकाले दोधुवत् धुनोति यूथ्यः यूथार्हो यूथपतिः वृषा वृषभः यथा शिशीते तीक्ष्णे शृङ्गे धुनोति तद्वत् । कीदृशः ? ओजसा बलेन नृम्णा नृम्णानि धनानि दधानः अस्मदर्थं धारयन् ॥ ६ ॥

(ओजसा नृम्णा दधानः) बलके द्वारा धनोंको हमारे अर्थ धारण करता हुआ (एषः) यह सोम (शृङ्गाणि दोधुवत्) सींगोंकी समान ऊँची किरणोंको अभिषवके समय कँपाता है (यूथ्यः वृषा शिशीते) जैसे यूथपति वृषभ अपने तीखे सींगोंको कँपाता है ॥ ६ ॥

१ १ २र ३ १ २र ३ ३ १ २र

एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति ।

२ ३ १ २

अव शादेषु गच्छति ॥ ७ ॥

अथ सप्तमी । वसूनि आच्छादकानि रक्षांसि पिब्दनः पीडयन् एषः सोमः परुषा पर्वणा अति अतिक्रम्य ययिवान् गच्छन् शादेषु शातनीयेषु रक्षःसु अव गच्छति ॥ पिब्दनः पिब्दना—इति पाठौ ॥ ७ ॥

(वसूनि पिब्दनः एषः) कर्मको रोकनेवाले राक्षसोंको पीड़ा देता हुआ यह सोम (परुषा अति ययिवान्) पर्व के द्वारा लांघ कर जाता हुआ (शादेषु अवगच्छति) मारने योग्य राक्षसोंमें पहुँचता है ॥ ७ ॥

३ २ ३ २उ ३ १ ३ १ २ ३ १ २

एतमु त्यं दश क्षिपो हरिँ हिन्वन्ति यातवे ।

३   २ ३१ २
स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥

अथाष्टमी। हरिं हरितवर्णं त्यं तम् एतम् एतमेव सोमम् दश क्षिपः दशसंख्याका अंगुलयः यातवे गमनाय हिन्वन्ति प्रेरयन्ति । कीदृशमेनम्? स्वायुधं शोभनायुधं मदिन्तमम् मादयितृतमम् रक्षोहननप्रदर्शनाय स्वायुधशब्दश्रवणम् ॥ हरिं हिन्वन्ति यातवे मृजन्ति सप्त धीतयः इति पाठौ ॥ ८ ॥

(स्वायुधं मदिन्तम्) श्रेष्ठ आयुधवाले परम हर्षदायक (हरिं त्यं एतम् उ) हरे वर्णके तिस इस ही सोमको (यातवे दश क्षिपः हिन्वन्ति) गमन करनेके लिये दश अंगुलियें प्रेरणा करती हैं ॥ ८ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ २उ   ३ २उ   ३ १ २
एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।
२ ३ १ २   ३ १ २
गच्छन्वाजꣳ सहस्रिणम् ॥ १ ॥

ऋ० रहुगणः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ तृतीयखण्डे—एष उ स्येति षडर्चं सूक्तम् तत्र प्रथमा। स्यः सः प्रसिद्धः एषः अभिषुतः सोमः वृषा वर्षिता रथः रंहणस्वभावः अव्या वारेभिः अवेर्वारैभिः अवेर्वालैः दशापवित्रेण अव्यत द्रोणकलशं प्रति गच्छति वाजम् अन्नम् सहस्रिणम् सहस्रसंख्याकं यजमानाय प्रदातुं गच्छन् द्रोणकलशं प्रविशन्नव्यतेत्यर्थः। अव्या वारेभिरव्यत अव्यो वारेभिरर्षति–इति पाठौ॥१॥

(वृषा) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला (रथः) वेगवान्(स्यः एषः) वह यह अभिषव किया हुआ सोम (सहस्रिणम् वाजम्) सहस्रोंका अन्न यजमानको देनेके लिये (गच्छन्) द्रोणकलशमें प्रवेश करना चाहता हुआ (अव्या वारेभिः अव्यत) ऊनके पवित्रेमेंको छन कर द्रोणकलशमें जाता है ॥ १ ॥

३२ ३२ ३ १२ ३ १२   ३ १२
एतं त्रितस्य योषणो हरिꣳ हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
२ ३ १ २   ३ १ २
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। एतम् इन्दुं क्रियमाणम् हरिं हरितवर्णं सोमम् त्रितस्य एतन्नामकस्य ऋषेः योषणः अंगुलयः अद्रिभिः अभिषवपाषाणैः हिन्वन्ति प्रेरयन्ति। किमर्थम्? इन्द्राय इन्द्रस्य पीतये पानाय ॥ २ ॥

(त्रितस्य योषणः) त्रितकी अंगुलियें (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पानेके लिये (एतं हरिं इन्दुम्) इस हरे वर्णके सोमको (अद्रिभिः हिन्वन्ति) अभिषवके पाषाणोंसे प्रेरणा करती हैं ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ ३ २उ ३ १ २

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।

१ २ ३ २उ ३ १ २

गच्छन् जारो न योषितम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । स्यः सः एषः सोमः मानुषीषु विक्षु प्रजासु श्येनो न श्येन इव शीघ्रमागम्य यजमानरूपासु अनुग्रहेण आ आगत्य सीदति पुनः क इव ? योषितम् गच्छन् अभिगच्छन् जारो न जार इव स यथा संकेतितः तस्याः कामपूरणाय गूढगतिः गच्छति तद्वदित्यर्थः॥ ३ ॥

(स्यः एषः) वह यह सोम (मानुषीषु विक्षु) यजमानरूप मनुष्य प्रजाओंमें । (श्येनः न) जैसे बाज पक्षी शीघ्र आता है तैसे (आ सीदति) अनुग्रहपूर्वक आकर स्थित होता है (योषितं गच्छन् जारः न) जैसे कि-व्यभिचारिणी स्त्रीके पास जानेवाला जार संकेतके अनुसार उसकी इच्छा पूरी करनेको गुप्तरूपसे जाता है ॥ ३ ॥

३ २उ ३ १ २र ३ १ २र

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।

२र ३ २ ३ १ २

य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । स्यः सः एषः मद्यः मदनिमित्तः रसः अवचष्टे सर्वमेव पश्यति दिवः शिशुः द्युलोकस्य पुत्रः तत्रोत्पन्नत्वात् पुत्रत्वमस्य यः इन्दुः दीप्तः सोमः वारं दशापवित्रम् आविशत् आविशति स एष इति ॥ ४ ॥

(दिवः शिशुः) द्युलोकमें उत्पन्न होनेके कारण उसके पुत्रकी समान (यः इन्दुः वारं आविशत्) जो सोम दशापवित्रमें प्रवेश करता है (स्यः एषः) वह सोम (मद्यः रसः अवचष्टे) मदकारी रसरूप है और सबको ही देखता है ॥ ४ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २

क्रन्दन्योनिमभि प्रियम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी एषः सः सोमः पीतये पानाय सुतः अभिषुतः हरिः हरितवर्णः धर्णसिः धारकः प्रियं स्वप्रियभूतं योनिं स्थानम् द्रोणकलशं क्रन्दन् शब्दयन् अभ्यर्षीति अभिगच्छति ॥ ५ ॥

(पीतये सुतः) देवताओंके पीनेके लिये अभिषव किया हुआ (हरिः धर्णसिः) हरे वर्णका और सबका धारक (स्यः एषः) वह यह सोम (प्रियम् योनिम्) अपने प्यारे द्रोणकलश रूप स्थानमें (क्रन्दन् अभ्यर्षति) शब्द करता हुआ जाता है ॥ ५ ॥

३ २उ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३१२
एतं त्यᳬं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
२ ३१२३ १२
याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । एतं त्यं तं सोमम् अध्वर्योः दश हरितः हरणस्वभावाः अंगुलयः अपस्युवः कर्मेच्छवः सत्यः मर्मृज्यन्ते शोधयन्ति । याभिः अंगुलिभिरिन्द्रस्य मदाय शुम्भते दीप्यते शोध्यत इत्यर्थः तमेतमिति सम्बन्धः ॥ ६ ॥

(त्यं एतत्)ऐसे इस सोमको (दश हरितः) अध्वर्युकी दश अंगुलियें (अपस्युवः मर्मृज्यन्ते) कर्मकी इच्छा करती हुई शोधती हैं (याभिः मदाय शुम्भते) जिन अंगुलियोंसे इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये शोधा जाता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य तृतीयःखण्डः समाप्तः

३ २ ३ २ ३१ २र ३ १ २र ३ १ २
एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।
२ ३ २ ३ १ २
अव्यं वारं वि धावति ॥ १ ॥

ऋ० प्रियमेधः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ चतुर्थखण्डे—एष वाजी इति षड्र्चं सूक्तम् तत्र प्रथमा । एषः सोमः वाजी वेजनशीलः हितः अध्वर्युणा पात्रे निहितः धृतः विश्ववित् सर्वज्ञः मनसः स्तोत्रस्य पतिः स्वामी अथवा सोमस्य मनोऽभिमानित्वात् मनसः स्वामित्वम् चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं वा विशन्—इति श्रुतेः तादृशोऽसौ अव्यम् वारं अविसंबन्धिनम् बालं दशापवित्रं विधावति विविधम् गच्छति ॥ अव्यम् अव्ये—इति पाठौ ॥ १ ॥

(वाजी नृभिः हितः) वेगवान् और अध्वर्यु करके पात्रमें स्थापन

किया हुआ (विश्ववित् मनसः पतिः) सर्वज्ञ और मनका स्वामी (एषः अव्यं वारं विधावति) यह सोम ऊनके दशापवित्रमेंको अनेकों धाराओंसे निकलता है ॥ १ ॥

३२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३२
एष पवित्रे अक्षरत्सोमो देवेभ्यः सुतः ।
२ ३ १ २ ३ २
विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। एषः सोमः देवेभ्यः देवार्थं सुतः अभिषुतः सन् पवित्रे अक्षरन् स्रवन् विश्वा सर्वाणि धामानि देवशरीराणि आ विशन् प्रविशन् प्रवेष्टुमित्यर्थः ॥ २ ॥

(एषः देवेभ्यः सुतः) यह सोम देवताओंके निमित्त अभिषव किया हुआ (पवित्रे अक्षरन्) पवित्रेमें छनकर (विश्वा धामानि आविशन्) सकल देवशरीरोंमें प्रवेश करता है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
३ १ २ ३ १ २
वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । एषः सोमः देवः शुभायते । कुत्र ? अधियोनौ स्वीये स्थाने । कीदृश एषः ? अमर्त्यः अमरणधर्मा वृत्रहा शत्रुहन्ता देववीतमः अतिशयेन देवानां कामयिता ॥ ३ ॥

(अमर्त्यः वृत्रहा) मरणधर्म रहित और शत्रुओंका नाशक (देववीतमः देवः) देवताओं की परम कामना करने वाला और दिव्य रूप (एषः अधियोनौ शुभायते) यह सोम अपने कलशरूप स्थानमें शोभा पाता है ॥ ३ ॥

३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः ।
३ १ २र
अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । वृषा कामानां वर्षिता एषः सोमः कनिक्रदत् शब्दम् कुर्वन् दशभिः जामिभिः अंगुलिभिः यतः धृतः द्रोणानि द्रुममयानि पात्राणि अभि धावति अभिगच्छति ॥ ४ ॥

(वृषा एषः) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला यह सोम (कनिक्रदत्

दशभिः जामिभिः यतः) शब्द करताहुआ और दश अंगलियोंसे धारण किया हुआ (द्रोणानि अभि धावति) द्रोण कलशोंमें को जाता है ४

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एष सूर्यमरोचयत्पवमानो अधि द्यवि ।
३ १ २ ३ १ २र
पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । पवमानः पूयमानः एषः सोमः अधि द्यवि द्युलोके स्थितं सूर्य्यं रोचयत् रोचयति । कीदृशः ? पवित्रे स्वयम् दशापवित्रे स्थितः मत्सरः मदहेतुम् प्राप्तः मदः हृष्टः ॥ अधिद्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः–विचर्षणि । विश्वा धामानि विश्ववित्–इति पाठौ ॥ ५ ॥

(पवित्रे) स्वयं दशा पवित्रमें स्थित (मत्सरः मदः) प्रसन्नता देनेवाला और प्रसन्न रूप (एषः पवमानः) यह संस्कार किया जाता हुआ सोम (अधिद्यवि सूर्यं अरोचयत्) द्युलोकमें स्थित सूर्य को दीप्त करता है ॥ ५ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
१ २ ३ १ २र
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । एषः सोमः संवसानः सर्वमप्याच्छादयन् विवस्वता दीप्तिमता सूर्य्येण हासते परित्यज्यते पवित्र इति शेषः । कीदृशः?वाचः स्तुतिलक्षणायाः पतिः पालकः स्वामी वा अदाभ्यः केनाप्यहिंस्यः ॥६॥

(वाचः पतिः) स्तुतिरूपा वाणीका स्वामी (अदाभ्यः एषः) किसी से भी हिंसित न होने वाला यह सोम (संवसानः) सबको आच्छादित करता हुआ (विवस्वता सूर्य्येण हासते) (दीप्तिमान् सूर्य करके दशा पवित्रमें छोड़ा जाता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

३२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
३ २ ३ १ २
पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥ १ ॥

ऋ० नृमेधः । छं० गायत्री । दे० सोमः । अथ पञ्चमखण्डे—एष कविरिति षडृचं सूक्तम्,–तत्र प्रथमा । एषः सोमः कविः मेधावी अभि-

ष्टुतः अभितः स्तुतः पवित्रे अधि दशा पवित्रमतीत्य तोशते यद्यपि तोशतिर्वधकर्मा तथापि हनने गतिसद्भावात् अत्र गतिमात्रे वर्त्तते गच्छतीत्यर्थः अथवा पवित्रे अधि कृष्णाजिने तोशते हन्यते पीड्यते किं कुर्वन् ? पुनानः पूयमानः द्विषः शत्रून् अपघ्नन् अपगमयन् द्विषः स्विधः—इति पाठौ ॥ १ ॥

(कविः अभिष्टुतः एषः) अनुभवी और स्तुति कियाहुआ यह सोम (पुनानः) पवित्र किया जाता हुआ (द्विषः अपघ्नन्) शत्रुओंको दूर करता हुआ (पवित्रे अधितोशते) कृष्ण मृगचर्म पर कूटा जाता है १

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि षिच्यते ।

३ १ २ ३ १ २

पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । एषः सोमः स्वर्जित् स्वर्गस्य सर्वस्य वा जेता इंद्राय वायवे च पवित्रे परिषिच्यते परिस्राव्यते । कीदृश एषः ? दक्षसाधनः बलकारी ॥ २ ॥

(दक्षसाधनः स्वर्जित् एषः) बलका साधन और सबको जीतने वाला यह सोम (इंद्राय वायवे) इंद्र और वायुके अर्थ (पवित्रे परिषिच्यते) दशा पवित्रमें टपकाया जाता है ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

एष नृभिर्विनीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।

२ ३ १ २ ३ २

सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । एषः सोमः नृभिः कर्मनेतृभिः ऋत्विग्भिः विनीयते विविधं नीयते । कीदृशः । ? दिवः द्युलोकस्य मूर्द्धा शिरोवत् प्रधान—भूतः वृषा अभिमतवर्षकः सुतः अभिषुतः कुत्र नीयते ? वनेषु वननीयेषु पात्रेषु वनसम्भूतद्रुमविकारेषु वा पात्रेषु विश्ववित् सर्वज्ञ एष इति समन्वयः ॥ ३ ॥

(दिवः मूर्धा) द्युलोकका शिरकी समान प्रधान (वृषा सुतः) कामनाओंकी वर्षा करने वाला और अभिषव किया हुआ (विश्ववित् एषः) सर्वज्ञ यह सोम (वनेषु नृभिः विनीयते) काठके पात्रों में ऋत्विजों करके अनेकों धाराओंसे पहुंचाया जाता है ॥ ३ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २
एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः
३ १ २र
सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । एषः सोमः पवमानः पूयमानः अचिक्रदत् शब्दम् करोति । कथम्भूतः सन् ? गव्युः अस्माकं गो इच्छन् हिरण्ययुः हिरण्यानीच्छन् इन्दुः दीप्तः सन् सत्राजित् महतः शत्रोरसुरादेर्जेता अस्तृतः स्वयमन्यैरहिंस्यश्च सन् ॥ ४ ॥

(गव्युः हिरण्ययुः) हमारे लिये गौएं और सुवर्ण चाहने वाला (इन्दुः सत्राजित्) दीप्त और बहुतसे शत्रुओं को एक साथ जीतने वाला (अस्तृतः एषः पवमानः) किसीसे हिंसित न होने वाला यह सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है ॥ ४ ॥

३ २उ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
एष शुष्म्यसिष्यदद्न्तरिक्षे वृषा हरिः ।
३ २उ ३ २ ३ १
पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । शुष्मी बलवान् सोमः अंतरिक्षे दशापवित्रे असिष्यदत् स्यन्दते । कीदृश एषः ? वृषा वर्षकः हरिः हरितवर्णः पुनानः पूयमानः इन्दुः दीप्तः स एव इंद्रम् इंद्रञ्चाभि गच्छतीति शेषः । आ इति चार्थे ॥ ५ ॥

(वृषा हरिः) मनोरथ पूरक और हरे वर्णका (पुनानः इन्दुः) पवित्र करने वाला दीप्तिमान् (शुष्मी एषः) बलवान् यह सोम (अंतरिक्षे असिष्यदत्) दशा पवित्रमें टपकता है (इंद्रं आ) इंद्रको भी आदरके साथ पहुँचता है ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
३ १ २ ३ २
देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । एषः सोमः शुष्मी बलवान् अदाभ्यः अदम्भनीयः अहिंसनीयः पुनानः पूयमानः अर्षति गच्छति देवावीः देवानामविता अघशंसहा अघान् शंसन्तीत्यघशंसाः तेषां वा हन्ता ॥ ६ ॥

(देवावीः अघशंसहा) देवताओंका रक्षक और पापकी सराहना करने वालोंका नाशक (अदाभ्यः पुनानः) अहिंसनीय और शोधन किया जाता हुआ (शुष्मी एषः अर्षति) बलवान् यह सोम द्रोणकलश में पहुंचता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य पञ्चमः खंडः समाप्तः

२ ३२ ३२३२३ १२ ३१२
स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।
३ १ २र ३२
निघ्नन्रक्षाँसि देवयुः ॥ १ ॥

ऋ० रहूगणः । छं० गायत्री । दे० सोमः । अथ षष्ठे खण्डे–ससुतः पीतय इति षड्चं सूक्तम् तत्र प्रथमा । सः सोमः पीतये इंद्रादिपानाय सुतः अभिषुतः वृषा वर्षणः सन् पवित्रे अर्षति गच्छति । किं कुर्वन् ? रक्षांसि निघ्नन् । देवयुः देवकामः । स इत्यन्वयः ॥ १ ॥

(देवयुः सः) देवताओंकी कामना वाला वह सोम (पीतये सुतः) इंद्रादिके पीनेके लिये अभिषव किया हुआ (वृषा) इच्छित पदार्थों की वर्षा करता हुआ (रक्षांसि निघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (पवित्रे अर्षति) दशपवित्रमें पहुंचता है ॥ १ ॥

२ ३१२ ३१ २र ३१
स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षसि धर्णसिः ।
३२३ ३ १ २
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सः सोमः विचक्षणः पश्यति कर्मैतत् (निघ० ३, ११, ३) सर्वस्य द्रष्टा हरिः हरितवर्णः सोमः धर्णसिः सर्वस्य धारकः पवित्रे अर्षति गच्छति पश्चात् कनिक्रदत् शब्दम् कुर्वन् योनिं स्थानम् द्रोणकलशम् अभि गच्छति ॥ २ ॥

(विचक्षणः हरिः) सबका द्रष्टा और पापहारी (धर्णसिः सः) सबका धारणकर्त्ता वह सोम (पवित्रे अर्षति) दशापवित्रमें जाता है फिर (कनिक्रदत् योनिं अभि) शब्द करता हुआ द्रोणकलशमें जाता है

२ ३ १ २३२ ३१ २र ३ १ २
स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति ।

३ १ २र ३ १२

रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। सः वाजी वेजनवान् अश्वस्थानीयः दिवः रोचनं रोचकः पवमानः पूयमानः विधावति। कीदृशः? रक्षोहा रक्षसां हन्ता अव्ययं वारं दशापवित्रम् अतीत्य विधावति विविधं गच्छति॥ रोचनं रोचना-इति पाठौ ॥ ३॥

(वाजी दिवः रोचनम्) वेगवान् और द्युलोकका दीपक (रक्षोहा पवमानः सः) राक्षसोंका नाशक शुद्ध किया जाता हुआ वह सोम (अव्ययं वारं विधावति) ऊनके पवित्रमें छनकर अनको धाराओंसे जाता है ॥ ३ ॥

२ ३ २र ३ १ २ ३ १ २

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्।

३ २ ३ १ २ ३ २

जामिभिः सूर्य्यं सह ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। सः सोमः त्रितस्य महर्षेः अधिसानवि समुच्छ्रिते यज्ञे अधीति सहम्यर्थानुवादी पवमानः पूयमानः जामिभिः प्रवृद्धे बंधु-भूतैर्वा सुतेजोभिः सह सहितः सन् सूर्य्यम् अरोचयत् प्रकाशितवान्४

(सः) वह सोम (त्रितस्य अधि सानवि) त्रितके बड़ेभारी यज्ञमें (पवमानः) संस्कार किया जाता हुआ (जामिभिः सह सूर्यं अरोचयत् बढ़ेहुए बन्धुरूप श्रेष्ठ तेजोंके साथ सूर्यको प्रकाशित करता हुआ ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः।

२ ३ १ २

सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। सः सोमः वृत्रहा शत्रूणां हन्ता वृषा वर्षकः सुतः अभिषुतः वरिवोवित् यष्टुर्धनस्य लम्भकः अदाभ्यः अन्यैरहिंसनीयः एवंगुणः सन् वाजमिव संग्रामाश्व इव असरद् गच्छति कलशम् ॥ ५ ॥

(वृत्रहा वृषा) शत्रुओं का नाशक और वर्षाकर्त्ता (सुतः वरिवो-वित्) अभिषव कियाहुआ और यजमानको धन देनेवाला (अदाभ्यः सः सोमः) औरोंसे हिंसित न होनेवाला वह सोम (वाजं इव असरत्) संग्रामके घोड़ोंकी समान वेगसे कलशमें जाता है॥ ५ ॥

३ ३२ ३१२३२ १ २र
स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।
२३१२ ३ ३२
इन्दुरिन्द्राय मँहयन् ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । सः सोमः देवः इन्दुः क्लिद्यमानः कविना आक्रान्तप्रज्ञेनाध्वर्युणा इषितः प्रेरितः सन् द्रोणानि द्रोणकलशान् अभि धावति अभिगच्छति । किंकुर्वन्? इन्द्राय इन्द्रं मंहयन् स्वकीयरसेन पूजयन् मंहयन् मंहना—इति पाठौ ॥ ६ ॥

(देवः इन्दुः सः) दिव्य और पतला किया हुआ वह सोम (कविना इषितः) अनुभवी अध्वर्यु से प्रेरणा किया हुआ (इन्द्राय मंहयन्) इन्द्र को अपने रससे पूजता हुआ (द्रोणानि अभिधावति) कलशोंकी ओर को जाता है ॥ ६ ॥

सामवेदे उत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः खण्डः समाप्तः ।

१ २३२३ १ २र ३ १२३ १२ २३
यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतँ रसम् । सर्वँ
२ ३१२ ३१ २३१२
स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ १ ॥

ऋ० पवित्रः छ० अनुष्टुप् । दे० पवमानी ऋचः । अथ सप्तमखण्डे- यः पावमानीरिति षडर्चं सूक्तम्' तत्र प्रथमा । यः जनः पावमानीः पवमानदेवताकाः सर्वा ऋचः तद्रूपं ऋषिभिः सूक्तद्रष्टृभिः मधुच्छन्दःप्रभृतिभिः सम्भृतं सम्पादितं रसं वेदसारभूतं पावमानं सूक्तसंघं यः अध्येति, स जनः सर्वं भोज्यजातं पूतं परिशुद्धमेव अश्नाति भक्षयति कथमस्य पूतत्वम्? तत्राह—स्वस्याशनात् प्रागेव मातरिश्वना मातरि अन्तरिक्षे श्वासतीति मातरिश्वा:वायुः, स च पवित्रमेव पवित्रेण वायुना स्वदितं स्वादूकृतं परिपूतमेवान्नं पश्चात् स नरोऽश्नाति१

(यः ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानी अध्येति) जो ऋषियोंके सम्पादन किये हुए वेदके साररूप पवमानदेवतावाले मंत्रोंको पढ़ता है (सः सर्वं मातरिश्वना स्वदितम्) वह पुरुष भोजनकी सामग्री मात्रको स्वयं पवित्र पवनने स्वाद लेकर (पूतं अश्नाति) पवित्रकी हुईको खाता है

३ २उ ३ १ २र ३ १२३ १२ २३
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतँ रसम् । तस्मै

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
सरस्वती दुहे क्षीरꣳ सर्पिर्मधूदकम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः ब्राह्मणः पावमानीः पवमानदेवताका ऋचः ऋषिभिः मधुच्छन्दःप्रभृतिभिर्मन्त्रद्रष्टृभिः सम्भृतं रसं वेदसारं सूक्तसंघम् अध्येति अधीते, तस्मै पवमानाध्ययनं कुर्वते जनाय सरस्वती सर्वत्र सरणवती वाग्देवता क्षीरं यज्ञसाधनं पयः, सर्पिः तादृशं घृतं मधु मदकरम् उदकं सोमं दुहे स्वयमेव दुग्धे यागादिपरवेदशास्त्रविदं करोतीत्यर्थः । दुह प्रपूरणे (अ० २ प०) कर्मकर्त्तरि न दुहस्नुनमाम् (३, १, ८९)—इत्यादिना यकः प्रतिषेधः, लोपस्त आत्मनेपदेषु (७, १, ४१)—इति तलोपः ॥ २ ॥

(यः ऋषिभिः संभृतं रसम्) जो पुरुष ऋषियोंकी सम्पादनकी हुई वेदकी साररूप (पावमानीः अध्येति) पवमान देवतावाली ऋचाओं को पढ़ता है (तस्मै सरस्वती) उसके लिये सरस्वती देवी (क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे) यज्ञका साधन वेदरूप दूध घी और मदकारी जल स्वयं दुह देती है अर्थात् उसको यज्ञादि विषयक वेदशास्त्रका ज्ञाता कर देती है ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितम् ३

अथ तृतीया । या पावमान्य ऋचः ताः स्वस्त्ययनीः क्षेमप्रापिकाः सुदुघाः सुष्ठु फलं दुहानाः घृतश्चुतः घृतं श्चोतन्ति क्षारयन्तीति घृतश्चुतः ईदृग्भूताः अस्माननुगृह्णन्त्विति शेषः । ऋषिभिः मन्त्रदर्शिभिर्मुनिभिः रसः फलसारः सम्भृतः अस्मासु सम्पादितः ब्राह्मणेषु ब्रह्माणो मन्त्राः तत्पाठकाः ब्राह्मणाः, तेषु अस्मासु अमृतम् अविनाशबलं हितं सम्पादितम् ॥ ३ ॥

(पावमानीः) पवमान देवतावालीं ऋचाएं (स्वस्त्ययनीः सुदुघाः) कल्याण प्राप्त करानेवालीं और श्रेष्ठ फल देनेवालीं (घृतश्चुतः)हमारे ऊपर अनुग्रहरूप घृतको टपकानेवाली हैं (हि ऋषिभिः रसः संभृतः) निःसंदेह मंत्रद्रष्टाओंने हमारे लिये फलोंका सार सम्पादन कर दिया है (ब्राह्मणेषु अमृतं हितम्) हम वेदपाठियोंमें अविनाशी बल स्थापन कर दिया है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३२ ३ १ २र ३ २
पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कामांत्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥४॥

अथ चतुर्थी । देवैः इन्द्रादिभिः समाहृताः सम्पादिता पावमानीः देवीः पवमानमन्त्राभिमानिनो देव्यः न अस्माकम् इमम् इदम्भूतं लोकं भूलोकम् अथो अपि च अमुं स्वर्गलोकं दधन्तु प्रयच्छन्तु । तत्रत्यान् कामान् च नः अस्मदर्थं समर्द्धयंतु समृद्धान् कुर्वन्तु ॥ ४ ॥

(देवैः समाहृताः पावमानीः देवीः) इन्द्रादि देवताओंकी संपादन की हुई पवमान मन्त्रोंकी अभिमानिनी देवियें (नः इमं अथो अमुं लोकं दधन्तु) हमैं यह लोक और स्वर्गलोक दें । और उन दोनों लोकोंके (नः कामान् समर्धयंतु) हमारे मनोरथोंको सफल करें ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ २
येन दवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा । तेन
३ १ २ ३ १ २
सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । देवाः इन्द्राद्याः येन पवित्रेण शुद्धिसाधनेन सदा आत्मानं स्वदेहं पुनते शोधयंति सहस्रधारेण सहस्रावान्तरभेदयुक्तेन तेन साधनेन पावमानीः पावमान्य ऋचः नः अस्मान् पुनन्तु ॥ ५ ॥

(देवाः येन पवित्रेण) इंद्रादि देवता जिस शुद्धिके साधनसे (सदा आत्मानं पुनते) सदा अपने शरीरको पवित्र रखते हैं (तेन सहस्रधारेण) उस सहस्रों भेदोंवाले साधनसे (पावमानीः नः पुनन्तु) पवमान देवतावाली ऋचाएं हमैं पवित्र करैं ॥ ५ ॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम् ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पुण्याँश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ६

अथ षष्ठी । पावमानीः पवमानः पावकः पूयमानो वा सोमः तत्सम्बन्धिन्यस्तद्देवताका ऋचः पावमान्यस्ताः स्वस्त्ययनीः स्वस्तीत्यविनाशनाम तथाविधफलस्य प्रापयित्र्यः ताभिः उक्तलक्षणाभिः पावमानीभिः तत्पाठेन स्तोता नान्दनं नन्दयति सुकृतिन इति नन्दनः स्वर्गः

स एव नान्दनः स्वार्थे तद्धितप्रत्ययः तम् गच्छति प्राप्नोति । किञ्चेह लोके पुण्यवान् सुकृतसम्पादितान् भक्षान् भक्षणीयान् भोगान् अन्नपानादिलक्षणान् च भक्षयति । किञ्च अमृतत्वं च गच्छति अमृतत्वं नाम सोमभावः तञ्च प्राप्नोति ॥ ६ ॥

(पावमानीः स्वस्त्ययनीः) अग्निदेवतावाली वा पूयमान सोमसंबंधी देवतावाली ऋचाएँ अविनाशी फल देनेवाली हैं (ताभिः नान्दनं गच्छति) उन ऋचाओंके पाठसे स्वर्गको प्राप्त होता है । इस लोकमें (पुण्यान् भक्षान् च भक्षयति) पुण्यप्राप्त खानपानके पदार्थोंको भोगता है (अमृतत्वं च गच्छति) और अमरभावको भी प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
स्वे दुरोणे । चित्रभानुँ रोदसी अन्तरुर्वी
२ ३ १ २ ३ १ २
स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

ऋ० वशिष्ठः । छ० त्रिष्टुप् । दे० इंद्रः । अथाष्टमे खण्डे-अगन्मेति तृचात्मकं प्रथमम् सूक्तम् तत्र प्रथमा । यः अग्निः स्वे दुरोणे आहवनीयाख्ये स्वे स्थाने समिद्धः काष्ठैः सम्यग्दीप्तः सन् दीदाय दीप्यते तमिमं यविष्ठम् युवतमम् ऊर्वी विस्तीर्णयोः रोदसी रोदस्योः द्यावापृथिव्योः अन्तः मध्ये अन्तरिक्षे चित्रभानुम् चित्रकालम् स्वाहुतम् सुष्ठु आहुतिभिर्हुतम् सन्तम् विश्वतः सर्वतः प्रत्यञ्चम् प्रतिगच्छन्तमग्निं महा महता नमसा नमस्कारेण अगन्म वयमुपगच्छामः ॥ १ ॥

(यः स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय) जो अग्नि अपने आहवनीय स्थानमें काष्ठोंसे भलेप्रकार दीप्त होता है । तिस (यविष्ठम) परम तरुण (ऊर्वी रोदसी अन्तः चित्रभानुम्) विस्तारवाले द्यावापृथिवीके मध्यमें विचित्रकान्तिवाले (स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम) श्रेष्ठ आहुतियोंसे होमे हुए और सर्वत्र गमन करनेवाले अग्निको (महा नमसा अगन्म) महान् प्रणाम करते हुए शरणमें प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निं ष्टवे दम

२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २
आ जातवेदाः । स नो रक्षिषद्दुरितादवद्या-
३ १ १ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः अग्निः मन्हा महत्वेन विश्वा विश्वानि दुरिता दुरितानि साह्वान् अभिभवन् जातवेदाः जातधनः जातप्रज्ञो वा दमे यज्ञगृहे स्तवे अस्माभिः स्तूयते सः अग्निः गृणतः स्तुवतः नः अस्मान् दुरितात् पापात् अवद्यात् निन्दिताच्च कर्मणः रक्षिषत् रक्षतु उत अपि च मघोनः हविष्मतः नः अस्मान् रक्षतु ॥ २ ॥

(मन्हा विश्वा दुरितानि साह्वान्) अपने प्रभावसे हमारे सकल पापोंका तिरस्कार करनेवाला (जातवेदाः सः अग्निः) धनका भण्डारी वह अग्निदेव (दमे आ स्तवे) यज्ञशालामें हमारे द्वारा स्तुति किया जाता है (सः गृणतः नः) वह अग्नि स्तुति करनेवाले हमारी (दुरितात् अवद्यात् रक्षिषत्) पापसे और निंदित कर्मसे रक्षा करै (उत मघोनः अस्मान्) और हवि वाले हमारी रक्षा करै ॥ २ ॥

१ २र ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मति-
३ १ २ १ २र ३ १ २ ३ १ २
भिर्वसिष्ठाः । त्वे वसु सुषणनानि संतु यूयं पात
३ २ ३ १ २
स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! त्वम् वरुणः असि पापानां निवारको भवसि उत अपि च मित्रः असि पुण्यप्रापणे सखा भवसि । वसिष्ठाः एतन्नामकाः ऋषयः हे अग्ने ! त्वां मतिभिः स्तुतिभिः वर्द्धन्ति वर्द्धयन्ति त्वे त्वयि विद्यमानानि वसु वसूनि सुषणनानि सुसम्भजनानि सन्तु । हे अग्ने ! यूयं त्वदाद्याः सर्वे देवाः स्वस्तिभिः क्षेमैः नः अस्मान् सदा सर्वदा पात रक्षत ॥ ३ ॥

(अग्ने त्वं वरुणः उत मित्रः) हे अग्ने ! तुम पापोंको दूर करने वाले वरुण और पुण्य प्राप्त करानेमें मित्र हो (वसिष्ठाः त्वां मतिभिः वर्धन्ति) जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ ऋषि तुझे स्तुतियोंसे बढ़ाते हैं (त्वे वसु सुषणनानि सन्तु) तेरे विषै विद्यमान धन हमारे सेवन योग्य हों (यूयम् स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम सब देवता स्वस्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

३ २३ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
महाँ इंद्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।
१ २ १ १ २
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

ऋ० वत्सः। छ० गायत्री। दे० इन्द्रः। अथ तृचात्मकम् द्वितीयसूक्तं तत्र प्रथमा। यः इन्द्रः ओजसा बलेन महान् सर्वेभ्योऽधिकः। क इव वृष्टिमानिव यथा वृष्ट्या युक्तः पर्जन्यः रसानां प्रार्जयिता देवः महान् स इंद्रः वत्सस्य पुत्रस्थानीयस्य स्तोतुः वत्स-नाम्न एव वा ऋषेः स्तोमैः स्तोत्रैः वावृधे प्रवर्द्धते ॥ १ ॥

(यः इन्द्रः) जो इन्द्र (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) बरसनेवाले मेघकी समान (तेजसा महान्) अपने तेज करके ही सबसे बड़ा है। वह इंद्र (वत्सस्य स्तोमैः वावृधे) पुत्ररूप स्तोता के स्तोत्रों से बढ़ता है॥१॥

२ ३ २ ३ १ २र १ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
३ १ २ ३ १ २
जामि ब्रुवत आयुधा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। कण्वाः स्तोतृ-नामैतत् (निघ० ३,१५,७) स्तोतारः कण्वगोत्रा वा इंद्रम् स्तोमैः स्तोत्रैः यज्ञस्य यागस्य साधनम् साधयितारं निष्पादकम् यद् यदा अक्रत अकृषत करोतेर्लुङि मन्त्रे घसेति (२, ४, ८०) च्लेर्लुक् तदानीं आयुधा शत्रूणां हिंसकानि बाणादीनि जामि अतिरेकनामैतत् अतिरिक्तम् अधिकम् प्रयोजनरहितं ब्रुवते कथयन्ति। आयुधा आयुधस्य सर्वस्य कार्य्यस्येन्द्रेण कृतत्वात् आयुधानि निः प्रयोजनानीत्यर्थः यद्वा आयुधा आयुधायोधनशीलमिन्द्रं जामि भ्रातरं ब्रुवते वदन्ति ॥ आयुधा—आयुधम्—इति पाठौ ॥ २ ॥

(यद्) जब(कण्वाः इन्द्रं स्तोमैः यज्ञस्य साधनम् अक्रत)स्तोताओं ने इन्द्रको स्तोत्रोंके द्वारा यज्ञका साधक किया। तब (आयुधा जामि ब्रुवत) शस्त्र निरर्थक कहलाते हैं॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः।
१ २ ३ २ ३ १ २
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। ऋतस्य यज्ञस्य सत्यस्य वा प्रजा प्रकर्षेण जातमिन्द्रं पिप्रतः नभसः प्रदेशान् पूरयन्तः वन्हयः वाहका अश्वा यद् यदा प्र भरन्त प्रकर्षेण भरन्ति वहन्ति तदा विप्राः मेधाविनः स्तोतारः ऋतस्य यज्ञस्य वाहसा प्रापकेण स्तोत्रेण तम् इंद्रं स्तुवन्तीति शेषः ॥ ३ ॥

(यद्) जब (पिप्रतः वह्नयः) आकाशके प्रदेशोंको पूर्ण करतेहुए अश्व (ऋतस्य प्रजाम्) यज्ञके निमित्त प्रकट हुए इंद्रको (प्र भरन्त) वेगके साथ लेजाते हैं। तब (विप्राः) ऋत्विज (ऋतस्य वाहसा) यज्ञको प्राप्त कराने वाले स्तोत्रसे तिस इंद्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्याष्टमः खण्डः समाप्तः

१ २   ३   १   २ ३   १ २ ३   १   २

पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।

३ १   २ ३ १ २

जीरा अजिरशोचिषः ॥ १ ॥

ऋ० वैखानसः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ नवमे खण्डे–पवमानस्येति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। जिघ्नतः पुनः पुनः तमांसि विनाशयतः हरेः हरितवर्णस्य अजिरशोचिषः सर्वत्र गमनशीलतेजसः पवमानस्य चन्द्राः चदि आह्लादे (भ्वा० प०) देवानामाह्लादयित्र्यः जीराः क्षिप्रं क्षरणशीलाः धाराः असृजन्ति पवित्राभिर्गच्छन्तीत्यर्थः। जिघ्नतः जंघतः—इति पाठौ ॥ १ ॥

(जिघ्नतः) वार२ अंधकारका विनाश करनेवाले (हरेः अजिरशोचिषः) हरे वर्णके और सर्वत्र जाने वाला है तेज जिसका ऐसे (पवमानस्य चन्द्राः जीरा असृक्षत) सोमकी देवताओंको आनन्द देनेवालीं धारें पवित्रेमेंको निकलती हैं ॥ १ ॥

१ २   ३ १ २   ३ १   २   ३ १ २

पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।

१ २   ३ १ २

हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। पवमानः देवः रथीतमः अतिशयेन रथवान् छन्दसीवनिपौ (८, २, १७ वा०)—इतीकारः। तथा शुभ्रेभिः शोभायुक्तेभ्यस्तेजोभ्योऽपि शुभ्रशस्तमः अत्यन्तं दीप्यमानश्च यद्वा निर्मलतमयशोयुक्तः हरिश्चन्द्रः ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे (६, १, १५१)—इति सांहितिकः

सुट् हरितवर्णदीप्तिः हरितधारायुक्तो वा मरुद्गणः मरुतो यस्य गणाः सहायभूताः स तथोक्तः तादृशः सोमः सर्वान् स्वरश्मिभिः व्याप्नोत्विन्युत्तरेण सम्बन्धः ॥ २ ॥

(रथीतमः) श्रेष्ठ रथवाला (शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः) दमकते हुए तेजोंसे भी अधिक दमकने वाला (हरिश्चन्द्रः) हरे वर्णकी धारों वाला (मरुद्गणः पवमानः) मरुत् हैं सहायक जिसके ऐसा सोम ! सबोंको अपनी किरणोंसे व्याप्त करे ॥ २ ॥

१ २ ३क २र ३ २ ३ ३ १ २
पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान ! सोम ! त्वं रश्मिभि स्वदीप्तिभिः व्यश्नुहि सर्वं जगद् व्याप्नुहि । कीदृशस्त्वम् ? वाजसातमः अतिशयेनान्नस्य दाता बलस्य सम्भक्ता वा तथा स्तोत्रे पवमानं स्तोत्रं कुर्वते जनाय सुवीर्य्य शोभनवीर्य्योपेतं पुत्रं धनं वा दधत् विदधत् प्रयच्छत् व्याप्नुहि ॥ पवमान व्यश्नुहि पवमानो व्यश्नवत्-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(पवमान) हे सोम ! (वाजसातमः) बहुतसे अन्न और बलका देनेवाला तू (स्तोत्रे सुवीर्यम् दधत्) स्तुति करनेवालेको सुन्दर वीर पुत्र वा धन देता हुआ (रश्मिभिः व्यश्नुहि) अपनी किरणोंसे सब जगत् को भरदे ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः ।
३ १ २र ३ २ २उ ३ २ ३ २
दधन्वाꣳ यो नर्यो अप्स्वा३ न्तरा सुषाव
३ १ २
सोममद्रिभिः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० सोमः । तृचात्मके द्वितीयसूक्ते-प्रथमा । हे ऋत्विजः ! सुतम् अभिषुतम् सोमम् इतः अस्मात् कर्मण ऊर्ध्वम् अथवा अस्मात् प्रदेशात् ऊर्ध्वं परिषिञ्चत वसतीवरीभिः इतोषिञ्चतेत्यत्र संहितायां छान्दसं रोरुत्वम् आदेशप्रत्यययोरिति षत्वम् यः सोमः देवानाम् उत्तमं प्रशंस्यं हविः भवति आ अपि च नर्य्यः मनुष्यहितः यश्च सोमः अप्सु वसतीवरीषु अन्तरिक्षे वा अन्तः

दधन्वान् गच्छन् भवन् भवति तं सोमम् अद्रिभिः ग्रावभिः अध्वर्युः सुषाव अभिषुतं चकार तं परिषिञ्चतेति समन्वयः ॥ १ ॥

(यः सोमः उत्तमं हविः) जो सोम देवताओंका श्रेष्ठ हवि है (आ यः नर्यः) और जो मनुष्योंका हितकारी सोम (अप्सु अन्तः दधन्वान्) वसतीवरी जलोंके भीतर जाता है और अध्वर्यु जिस (सोमं अद्रिभिः सुषाव) सोमको पाषाणोंसे अभिषुत करते हैं। उस (सुतं इतः परिषिञ्चत) सोमको इस स्थानसे ऊपर सींचो ॥ १ ॥

३१ २३ १ २ ३ १२ ३१२ ३१ २
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
३१ २३ १ २ ३ २ २ २ ३
सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो
२ ३१२
गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे सोम! अदब्धः कैश्चिदप्यहिंसितः सुरभिन्तरः अत्यन्तं सुगन्धि त्वं नूनम् इदानीं पुनानः पूयमानः अविभिः अविवाल कृतैःपवित्रैः परिस्रव परिक्षर सुते चित् अभिषुते सति अन्धसा भक्तलक्षणेनान्नेन गोभिः गोविकारैः क्षीरादिभिः श्रीणन्तः मिश्रयन्तः वयम् उत्तरम् उद्भूततरम् अप्सु वसतीवरीषु स्थितं त्वा त्वां मदामः मदामहे२

हे सोम! (अदब्धः) किसीसे भी हिंसा न किया हुआ (सुरभिन्तरः) अत्यन्त सुगन्धिवाला तू (नूनम्) इस समय (पुनानः) शोधाजाता हुआ (अविभिः पवित्रैः परिस्रव) ऊनके पवित्रमें को बरस (सुते चित्) अभिषुत होने पर (अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः) भातरूप अन्नसे और गोघृतादिसे मिलाते हुए हम (उत्तरं अप्सु त्वा मदामः) अत्यन्त प्रकट हुए वसतीवरी जलोंमें स्थित तुझको प्रसन्न करते हैं ॥ २ ॥

१२ ३ १ २२ ३१२३ २३१२ ३२
परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ३

अथ अध्यास्यरूपा तृतीया। स्वानः सुतः अभिषूयमाणः सोमः चक्षसे सर्वेषां दर्शनाय परि स्रवति। कीदृशः? देवमादनः देवानां तर्पयिता, क्रतुः कर्त्ता, इन्दुः पात्रेषु क्षरणशीलः दीप्तो वा, विचक्षणः सर्वस्य विद्रष्टा ॥ ३ ॥

(देवमादनः क्रतुः) देवताओंको तृप्त करनेवाला और यज्ञका साधक

(इंदुः विचक्षणः) दीप्त और सबका विशेषरूपसे द्रष्टा (स्वानः दक्षसे परि) अभिषव किया हुआ सोम सबके दर्शनके लिये द्रोणकलशमें बरसता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३२उ ३ २३ १ २ ३ २
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो
३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
अभि गा अचिक्रदत् । पुनानो वारमत्येष्यव्ययᳪं
३ १ २र ३ १ २ ३ २ २
श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत् ॥ १ ॥

ऋ० वसुः । छ० जगती । दे० सोमः । अथ तृचात्मके तृतीयसूक्ते—प्रथमा । सोमः असावि अभिषुतोऽभूत् । कीदृशः सोमः ? अरुषः आरोचमानः, वृषा वर्षकः, हरिः हरितवर्णः, स च राजेव दस्मः दर्शनीयः सन् गाः उदकानि अभि लक्ष्य अचिक्रदत् शब्दम् करोति स्वरसनिर्मोकसमये, पश्चात् पुनानः अव्ययम् अविमयं वारं वालं दशापवित्रम् अत्येषि हे सोम ! अतिक्रम्य गच्छसि । ततः श्येनो न श्येन इव योनिं स्वीयं स्थानं घृतवन्तम् उदकवन्तम् आसदत् प्रविशति ॥ अत्येषि पर्य्येति—इति पाठौ,आसदन् आसदम्—इति च ॥१॥

(अरुषः वृषा) प्रकाशवान् और वर्षा करने वाला (हरिः सोमः असावि) हरे वर्णका सोम सुसिद्ध हुआ। (राजेव दस्मः) राजाकी समान दर्शनीय होकर (गाः अभि अचिक्रदत्) जलोंकी ओरको शब्द करता है । फिर पवित्र होता हुआ (अव्यं वारं अत्येषि) ऊनके पवित्रेमें का छनता है (श्येनः न घृतवन्तं योनिं आसदन्) पक्षीकी समान वेगसे जलभरे अपने कलशरूप स्थानमें पहुँचता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या
३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २उ
गिरिषु क्षयं दधे । स्वसार आपो अभि गा
३ १ २ २ १ २र ३ १ २ ३ २
उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यस्य महिषस्य महतः पर्णिनः पर्णवतः पतनवतो

वा सोमस्य पर्जन्यः पिता जनकः सः सोमः पृथिव्याः नाभा नाभौ नाभिस्थानीये हविर्द्धाने गिरिषु गिरिसम्बन्धिषु ग्रावसु क्षयं निवासं दधे धारयति अभिषवसमये। तथा स्वसारः अंगुलयः आपः वसतीवर्यः गाः आशिरर्थाः स्तुतयो वा अभि आभिमुख्येन उद्गासरन् उद्गच्छन्ति गच्छन्तु, वसते, सम् गच्छते च, ग्रावभिः साकम्। कुत्र? वीते क्रांते अध्वरे यज्ञे ॥ उद्गासरन् उनासरन्–इति पाठौ, वीते वीथे–इति च३

(महिषः पर्णिनः पर्जन्यः पिता) महान् पत्तोंवाले सोमका उत्पादक पर्जन्यकी समान सोम (पृथिव्या नाभा गिरिषु क्षयं दधे) पृथिवीके नाभिस्थान पर्वतोंमें स्थानको करता है, (स्वसारः आपः गाः) अंगुलिये वसतीवरी जल और स्तुतियें (अभि उद्गासन्) अभिमुख प्राप्त हों (वीते अध्वरे ग्रावभिः सं वसते) श्रेष्ठ यज्ञमें पाषाणोंके साथ जाता है ॥ २ ॥

३ १२२१ २र३ १ २३२३ २ ३२ ३१
कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि
२र ३ १२ ३१ २
वाजमर्षसि। अपसेधं दुरिता सोम नो मृड
३१ २र३ १२ ३१२
घृतावसानः परि यासि निर्णिजम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! कविः क्रान्तदर्शी सन् वेधस्या यागविधानेच्छया माहिनम् महनीयं पवित्रं पर्य्येषि परिगच्छसि, पश्चात् मृष्टः प्रक्षालितः अत्यो न अश्व इव वाजम् संग्रामम् अभ्यर्षसि। सोम! दुरिता अस्मदीयानि दुरितानि अपसेधन् परिहरन् नः अस्मान् मृड सुखय घृतावसानः घृतानि उदकानि वसानः आच्छादयन् परि यासि अभिगच्छसि। किन्तत्? निर्णिजम् पवित्रम् ॥ सोम नो मृड घृता-सोम मृड घृतम्–इति पाठौ ॥ ३ ॥

(सोम) हे सोम! (कविः वेधस्या माहिनम् पर्येषि) अनुभवी तू यज्ञविधानकी इच्छासे पवित्रमें पहुँचता है। फिर (मृष्टः अत्यः न वाजं अभ्यर्षसि) धोये हुए घोड़ेकी समान वेगसे संग्रामको प्राप्त होता है। हे सोम! (दुरिता अपसेधन्) हमारे पापोंको दूर करता हुआ (नः मृड) हमें सुख दे (घृतावसानः निर्णिजम् परियासि) जलोंको आच्छादन करता हुआ पवित्रभावको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य नवमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २ ३ १ २र १ २
आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः १

ऋ० नृमेधः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ दशमे खण्डे—प्रगाथात्मके प्रथमसूक्ते प्रथमा । हे अस्मदीया जनाः ! आयन्त इव सूर्यम् यथा समाश्रिता रश्मयः सूर्यं भजन्ते तथा इन्द्रस्य विश्वेत् विश्वान्येव धनानि भक्षत भजत। जातः प्रादुर्भूतः इंद्रः यानि वसूनि धनानि ओजसा बलेन जनिमाजनिष्यमाणानि करोति अतो भागं न पित्रं भागमिव तानि धनानि प्रति दीधिमः प्रतिधारयेम॥जातो जनिमानि जाते जनिमानि-इति पाठौ

हे हमारे पुरुषो ! (आयन्तः सूर्यं इव) जैसे सूर्यका आश्रय करने वाली किरणें सूर्यका सेवन करती हैं तैसे (विश्वेत् इंद्रस्य भक्षत) सकल धन इन्द्रका सेवन करो (जातः वसूनि ओजसा जनिमा)प्रकट हुआ इन्द्र जिन धनोंको अपने बलसे उत्पन्न होनेवाला करता है अर्थात् जो धन इंद्रके प्रभावसे अवश्य ही प्रकट होते हैं और होंगे उनको हम(भागं न प्रतिदीधिमः) पितरोंके भागकी समान धारण करें ॥ १ ॥

१ २ ३ २र ३ १ २र ३ १ २
अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय
२ ३ २
चोदयन्॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे स्तोतः!अलर्षिरातिम् अपापकदानम् अपापिष्ठस्य दातारमित्यर्थः अलर्षिपदसमानार्थमनर्शपदम् यास्केन व्याख्यातं-अनर्शरातिमनश्लीलदानमश्लीलं पापकं इति (निरु०नै०६,२३) वसुदां धनस्य दातारमिन्द्रं उप स्तुहि यतः इंद्रस्य रातयः दानानि भद्रा कल्याणानि महदैश्वर्यकारीणीत्यर्थः। यः इंद्रः स्वकीयं मनः दानाय अभीष्टप्रदानाय चोदयन् प्रेरयन् विधतः परिचरतः अस्य स्तोतुः कामं इच्छां न [illegible] न हिनस्ति।तमिंद्रमुपस्तुहीति सम्बन्धः।अलर्षिरातिम् छन्दोगाः [illegible] अन्ति अनर्शरातिम्-इति बह्वृचाः यो अस्य सो अस्य-इति च ॥ २ ॥

हे स्तोता ! (अलर्षिरातिं वसुदां उपस्तुहि) निष्पाप पुरुषोंके लिये दाता और भक्तोंको धन देनेवाले इंद्रकी स्तुति करो । क्योंकि (इंद्रस्य रातयः भद्राः) इंद्रके दान कल्याणरूप हैं अर्थात् उससे बड़ा ऐश्वर्य बढ़ता है (यः मनः चोदयन्) जो इंद्र अपने मनको इच्छित दान देने के लिये प्रेरणा करता हुआ (विधतः अस्य कामं न रोषति) आराधना करनेवाले इस यजमानकी इच्छाको नष्ट नहीं करता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि । मघवं-

३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र

छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्वेषो वि मृधो जहि १

ऋ० भर्गः । छं० बृहती । दे० अग्निः । अथ प्रगाथात्मके द्वितीयसूक्ते प्रथमा । हे इंद्र ! यतः हिंसकान् भयामहे वयम् ततः नः अस्मभ्यम् कृधि कुरु । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! न अस्मानुद्दिश्य तत् तस्यै तव ऊतये त्वत्कर्तृकायै रक्षायै शग्धि शक्तो भव । किञ्च वि द्विषः अस्मद्द्वेष्टॄन् विजहि वि मृधः अस्मद्धिंसकान् विजहि॥ ऊतये-ऊतिभिः इति पाठौ १

(इंद्र यतः भयामहे) हे इंद्र ! जिन हिंसकोंसे हम भयभीत होते हैं (ततः नः अभयं कृधि) उनसे हमें निर्भय करो (मघवन् नः तत् तव ऊतये शग्धि) हे इंद्र ! हमें अपनी उस रक्षाके द्वारा रक्षित करनेको समर्थ हूजिये (द्विषः विजहि) हमारे द्वेषियोंको नष्ट करो (मृधः वि) हमारे हिंसकोंको नष्ट करो ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

त्वꣳ हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि ।

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १

विधर्त्ता । तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुता-

२

वन्तो हवामहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे राधसस्पते ! धनस्य स्वामिन् ! त्वं हि त्वं खलु महः महतः राधसः धनस्य क्षयस्य गृहस्य च विधर्त्ता असि हि अस्मभ्यं धातुं धारको भवसि खलु। हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय! मघवन् धनवन्निद्र सं तादृशं त्वा त्वां वयं सुतावंतः अभिषुतसोमाः हवामहे आह्वयामः ।

राधसस्पते-राधस्पते इति पाठौ विधर्त्ता विधर्त्ते इति च ॥ २ ॥

(राधसस्पते त्वं हि)हे धनके स्वामी इंद्र! तुम निसंदेह(महः राधसः क्षयस्य) बहुतसे धन और स्थानके (विधर्त्ता असि)हमें देनके लिये विशेषरूपसे धारण करनेवाले हो (गिर्वणः मघवन् इंद्र) हे मन्त्रों से प्रार्थना करने योग्य धनवान् इंद्र (त्वं त्वा वयं सुतावतः हवामहे) ऐसे तुमको हम सोमका अभिषव करके आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य दशमः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २

त्वꣳ सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे

१ २ ३ १ २

पवस्व मꣳहयद्रयिः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथैकादशखण्डे—त्वं सोमेति तृचात्मकं प्रथमम् सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे सोम ! अभिषूयमाण पवमान ! मन्द्रः मादयितृतमः ओजिष्ठः ओजस्वितमः त्वम् अध्वरे हिंसारहितेऽस्मदीये यज्ञे धारयुः अभिषवधाराकामः असि भवसि । ततः त्वं मंहयद्रयिः स्तोतृभ्यः प्रदीयमानधनः सन् पवस्व द्रोकणलशे ग्रहादिषु दशापवित्रेण पूतो भव यद्वा, धारयुः तद्वदर्थे भाष्यत इति मत्वर्थीया युस् । हे सोम ! त्वं धारावानसि ततः पवस्वेति संबंधः॥१॥

(सोम मन्द्रः ओजिष्ठः) हे सोम ! परम आनंद देनेवाला और बड़ा भारी ओजस्वी तू (अध्वरे धारयुः असि) हमारे हिंसारहित यज्ञमें अभिषवकी धाराओंको धन देने वाला हो (मंहयद्रयिः त्वं पवस्व) अपने उपासकोंको चाहनेवाला होकर द्रोणकलशमें पवित्र हो ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

त्वꣳसुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।

१ २ ३ १ २र

इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम! सुतः अभिषुतः त्वं मदिन्तमः अतिशयेन मदयुक्तोऽसि । कीदृशस्त्वं ? दधन्वान् यज्ञस्य धारकः, मदिंतमः अतिशयेन मदकारी, इंदुः दीप्तः, सत्राजित् बहूनां जेता, अस्तृतः केनाप्यहिंसितः । मदिंतमः नृमादनः—इति पाठौ, इंदुः सत्राजिदस्तृतः—इंद्राय सूरिरन्धसा—इति च ॥ २ ॥

हे सोम ! (त्वं मदिन्तमः दधन्वान्) तू अत्यन्त मदयुक्त यज्ञका धारक (मत्सरिन्तमः इंदुः) परम मदकारी और दीप्त (सत्राजित् अस्तृतः) अनेकोंको जीतनेवाला और किसीसे भी हिंसित न होनेवाला है॥

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ १ २
त्वँ सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।
३२ ३ २ ३ १ २
द्युमन्तँ शुष्ममा भर ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान ! सोम ! अद्रिभिः ग्रावभिः सुष्वाणः सुन्वानः अभिषूयमाणस्त्वं कनिक्रदत् भृशं शब्दं कुर्वन् अभ्यर्ष कलशं पात्राणि चाभिगच्छ । किञ्च द्युमन्तं दीप्तियुक्तं शुष्मं शत्रूणां शोषकं बलं वा आभर । आभर उत्तमम्—इति पाठौ ॥ ३ ॥

हे सोम (अद्रिभिः सुष्वाणः त्वं अचिक्रदत् अभ्यर्ष) पाषाणों से अभिषव किया जाता हुआ तू शब्द करता हुआ द्रोणकलशमें प्राप्त हो (द्युमन्तं शुष्मं आभर) दीप्तियुक्त शत्रुओंका शोषक बल हमें दे ॥३॥

१२ ३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २
पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।
२ ३ २ ३ १ २
आ कलशं मधुमांत्सोमं नः सदः ॥ १ ॥

ऋ० मनुः । छ० उष्णिक् । दे० सोमः । अथ तृचात्मके द्वितीय-सूक्ते—प्रथमा । हे इन्दो ! सोम ! देववीतये देवानां भक्षणाय ओजसा बलेन धाराभिः आत्मीयाभिः पवस्व क्षर । हे सोम ! मधुमान् मदकर-रसवान् त्वं नः अस्मदीयं कलशं द्रोणाभिधानं आसद आसीद सदे-र्लुङि रूपम् ॥ १ ॥

(इंदो देववीतये ओजसा धाराभिः पवस्व) हे सोम ! देवताओंके भक्षणके लिये बलसे धाराओं करके कलशमें बरस (सोम मधुमान् नः कलशं आसदः) हे सोम ! मदकारी रसवाला तू हमारे द्रोणकलश में स्थित हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। उद्प्रुतः वसतीवर्य्याख्यमुदकं प्रति गच्छन्तः यद्वा उदकस्य निर्गमयितारः तव स्वभूताः द्रप्साः द्रुतगामिनो रसाः मदाय मदार्थम् इंद्रम वावृधुः वर्द्धयन्ति। ततः देवासः देवा इन्द्रादयः कं सुखकरं त्वाम् अमृताय अमरणार्थं पपुः पिबन्ति ॥ २ ॥

(उद्प्रुतः तव द्रप्साः) वसतीवरी जलोंमेंको जानेवाले तेरे शीघ्रगामी रस (मदाय इंद्रं वावृधुः) मदके लिये इन्द्रको बढ़ाते हैं। तदनन्तर (देवासः कं त्वां अमृतायः पपुः) इंद्रादि देवता सुखदायक तुझको अमर होनेके लिये पीते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।
३ १ २ ३ १ २
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सुतासः अभिषूयमाणाः। हे इंदवः दीप्ताः पात्रेषु क्षरन्तो वा रीत्यापः यैः पृथिवीं प्रति स्रवणशीला आपः तादृशा हे सोमाः। पुनानाः पूयमानाः यूयं नः अस्मभ्यं रयिम् आ धावत आगमयत। कीदृशाः ? वृष्टिद्यावः वृष्टिमभि द्यौर्य्यैः क्रियते वृष्ट्यभिमुखद्युलोकवन्तः स्वर्विदः सर्वस्य लम्भकाः ॥ ३ ॥

(वृष्टिद्यावः स्वर्विदः) द्युलोकको वृष्टिके अभिमुख करनेवाले और यजमानोंको स्वर्गप्राप्ति करानेवाले (रीत्यापः सुतासः) जो जलोंको पृथिवी पर बरसनेवाला कर देते हैं और जो संस्कार कियेहुए हैं ऐसे (पुनानाः इंदवः) पवित्र होतेहुए हे सोम ! तुम (नः रयिं आधावत) हमें धन प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
परि त्यꣳ हर्य्यतꣳ हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।
२ ३ २उ ३ २उ २ १ २ ३ १ २र
यो देवान्विश्वाꣳ इत्परि मदेन सह गच्छति १

ऋ० अम्बरीषः ऋजिश्वो वा। छ० अनुष्टुप्। दे० सोमः। अथ तृचात्मके तृतीयसूक्ते—प्रथमा। हर्य्यतं सर्वैः स्पृहणीयं हरिं हरितवर्णं बभ्रुं बभ्रुवर्णं च त्यं तं सोमं वारेण वालेन पवित्रेण परि पुनन्ति परिशोधयंति यः सोमः विश्वान् सर्वानिन्द्रादीन् देवान् अनेन मदेन मादकेन रसेन सह परिगच्छति ॥ १ ॥

(हर्यतं हरिम्) सबके चाहने योग्य और पापोंको हरनेवाले (बभ्रुं, त्यम्) बभ्रुवर्ण तिस सोमको (वारेण परिपुनन्ति) दशापवित्रसे शोधन करते हैं (यः विश्वान् देवान्) जो सकल इंद्रादि देवताओंको (मदेन सह इत् परिगच्छति) मादक रसके साथ ही प्राप्त होता है ॥ १ ॥

२उ ३ १२३ १२३ १ २
द्विर्यं पञ्च स्वयशसँ सखायो अद्रिसंहतम् ।
३१ २र ३ १ २ ३१२ ३१२
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । द्विः पञ्च दशसंख्याकाः सखायः समानख्याना अंगुलयः स्वयशसं स्वभूतयशस्कम् अद्रिसंहतम् ग्रावभिरभिषुतम् इंद्रस्य प्रियं काम्यं सर्वैः काम्यमानम् ऊर्मयः द्वितीयैकवचने प्रथमबहुवचनम् । ऊर्मिम् प्रभूततरं यं सोमं प्रस्नापयन्ते वसतीवरीभिः प्रकर्षेण सेवयंति यद्वा, ऊर्मय इत्यङ्गुलिविशेषणं प्रभूता इति तं सोमं पुनन्तीति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ सखायः स्वसारः–इति पाठौ प्रस्नापयंत ऊर्मयः प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम्–इति च ॥ २ ॥

(द्विः पञ्च) द्विगुण पाँच अर्थात् दश (सखायः) समानभावसे कार्यमें लगनेवालीं अंगुलियें (स्वयशं अद्रिसंहितम्) अपना यश करने वाले और पाषाणोंसे कूटे हुए (इंद्रस्य प्रियं काम्यम्) इंद्रके प्रिय और सबके चाहे हुए (ऊर्मयः) तरङ्गोंवाले अर्थात् बहुतसे (य प्रस्नापयंते) जिस सोमको वसतीवरी जलोंसे सम्यक प्रकार धोती हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
१२ ३ १ २ ३१२ ३१२
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया हे सोम ! वृत्रघ्ने वृत्रस्य हंत्रे इंद्राय षष्ठ्यर्थे चतुर्थी इंद्रस्य पातवे पानार्थं परिषिच्यसे परितः पात्रेषु सिच्यसे वसतीवरीभिर्वा किञ्च दक्षिणावते ऋत्विग्भ्यो दक्षिणादानेन तद्वते, वीराय विक्रांतायेन्द्राय हवींषि दातुं सदनासदे यज्ञे यज्ञे सीदते, नरे मनुष्याय यजमानाय तस्मै फलप्रदानार्थं परिषिच्यसे । वीराय देवाय—इति पाठौ ३

(सोम) हे सोम (वृत्रघ्ने इंद्राय पातवे) वृत्रासुरके नाशक इंद्र के पीनेके लिये और (दक्षिणावते वीराय) जिसके निमित्त किये हुए

यज्ञमें ऋत्विजोंको दक्षिणा दीजाती है उस वीर इंद्र के लिये (च) और (सदनासदे नरे) बहुतसे यज्ञोंके अनुष्ठानमें वैठनेवाले यजमानके लिये (परिषिच्यसे) पात्रोंमें टपकाये जाते हो ॥ ३ ॥

१२ ३२उ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १

पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी

२र

धनाय ॥ १ ॥

ऋ० ऋणः त्रसदस्युः वा । छ० द्विपदा पंक्तिः । दे० सोमः । अथ तृचात्मके चतुर्थ-सूक्ते—प्रथमा । हे सोम ! अश्वो न अश्व इव निक्तः वसतीवरीभिरद्भिर्निर्णिक्तः, वाजी वेगवान् त्वं महे महते दक्षाय बलाय धनाय धनार्थं पवस्व क्षर । महे-कृत्वे-इति पाठौ ॥ १ ॥

(सोम अश्वो न) हे सोम ! अश्वकी समान (निक्तः) धोकर शुद्ध किया हुआ (वाजी) वेगवान् तू (महे दक्षाय धनाय पवस्व) बड़े भारी धन और बलके लिये पात्रमें बरस ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे

३ १ २

द्युम्नाय ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सोतारः अभिषोतारः ऋत्विजः हे सोम ! ते तव स्वभूतं रसं मदाय मदार्थं पुनन्ति । तदेवोच्यते-महे महते द्युम्नाय द्युम्नं द्योततेर्यशो वान्नं वेति (निरु० नै ५, ५) यास्कः अन्नाय यशसे वा पुनन्ति सोमं शोधयंति यद्वा, सोममभिषूयमाणं रसं पुनंतीति एक-वाक्यतया योजनीयम । प्रते-तन्वे-इति पाठौ ॥ २ ॥

हे सोम ! (सोतारः) ऋत्विज् (ते रसं मदाय पुनन्ति) तेरे रस को मदके लिये पवित्र करते हैं (महे द्युम्नाय सोमम्) बड़ेभारी अन्न और यशके लिये सोम रसको पवित्र करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ २र ३ २ ३ १ २

शिशुं जज्ञानꣳ हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं

३ २ ३ १ २

देवेभ्य इन्दुम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। शिशुम् एषां पुत्रभूतं जज्ञानं जायमानं हरिं हरितवर्णम् इंदुं सोमं दीप्तं देवेभ्यः पवित्रे मृजन्ति ऋत्विजा मार्जयन्ति॥३॥

ऋत्विज (देवेभ्यः) देवताओंके लिये (शिशुम् जज्ञानम्) देवताओंके पुत्र समान प्रेमपात्र और शुद्ध होतेहुए (हरिं इन्दुं सोमम्) हरे वर्ण के दीप्त सोमको (पवित्रे मजन्ति) पवित्रमें शोधन करते हैं ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २र

उपो षु जातमप्तुरम् गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।

१ २ ३ १ २

इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १ ॥

ऋ० अमहीयुः छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ तृचात्मके पञ्चमसूक्ते-प्रथमा। जातम् प्रादुर्भूतम् अप्तुरं वसतीवरीभिः प्रेरितम् भङ्गं शत्रूणां भञ्जकम् गोभिः गोर्विकारैः पयोभिः परिष्कृतम् अलंकृतम् इन्दुं सोमं देवाः इन्द्राद्यः उपायासिषुः उपगच्छन्ति ॥ १ ॥

(जातं अप्तुरम्) प्रकट हुए और वसतीवरी जलोंके प्रेरणाकियेहुए (भङ्गं गोभिः सुपरिष्कृतम्) शत्रुओंके नाशक और गोघृतादिसे सुसिद्ध किये हुए (इन्दुं देवाः उपायासिषुः) सोमको इन्द्रादि देवता प्राप्त होतेहैं

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सँ संशिश्वरीरिव।

१ २र ३ १ २

य इन्द्रस्य हृदँसनिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। यः सोमः इंद्रस्य हृद्सनिः हृदयस्य सम्भक्ता भवति तमित् तमेव सोमं नः अस्माकं गिरः स्तुतिरूपाः वाचः सम्वर्धन्तु सम्वर्द्धयंतु। तत्र दृष्टांतः—वत्सं बालं शिश्वरीरिव यथा शिश्वर्यो वृद्धपयस्का मातरो वत्सं सम्यक् वर्द्धयन्ति तद्वदित्यर्थः ॥ २ ॥

(यः इंद्रस्य हृद्सनिः) जो सोम इंद्रके हृदयका परमसेवक है (तमित् नः गिरः संवर्द्धन्तु) उस सोमको ही हमारी स्तुतिरूपा वाणियें बढावें (वत्सं शिश्वरीः इव) जैसे कि बालकको दूधवाली माताएँ बढाती हैं

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।

१ २ ३ १ २

वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! त्वं न अस्माकं गवे शं सुखम् अर्ष क्षर । अपि च पिप्युषीम् प्रवृद्धाम् इषम् अन्नं धुक्षस्व प्रपूरय। किञ्च। हे उक्थ्य उशस्य समुद्रं वर्द्ध वर्द्धय॥अर्षा नः अर्षाणः-इति पाठौ उक्थ्य उक्थ्यं इति च

(सोमः नः गवे शं अर्ष)हे सोम! हमारी गौओंके लिये सुख बरसा (पिप्युषीं इषं धुक्षस्व) बहुतसे अन्नको हमारे घरमें भरदे (उक्थ्य समुद्रं वर्द्ध) हे स्तुति योग्य ! द्रोणकलशके जलको बढ़ा॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य एकादशःखंडः समाप्तः

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

ऋ० त्रिशोकः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ द्वादश—खण्डे आ घा ये अग्निमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । ये ऋषयः आ घा आभिमुख्येन खलु अग्निं इन्धते दीपयन्ति येषाञ्च युवा नित्यतरुणः इन्द्रः सखा भवति ते आनुषक् आनुपूर्व्येण बर्हिः स्तृणंति ॥ १ ॥

(ये आ घा अग्निं इन्धते) जो ऋषि अभिमुख होकर अवश्य ही अग्निको प्रज्वलित करते हैं (येषां युवा इन्द्रः सखा)जिनका नित्य तरुण इन्द्र मित्र बना रहता है। वह (आनुषक् बर्हिः स्तृणंति) क्रमसे कुशायें बिछाते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ र

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । एषाम् ऋषीणाम् इध्मः बृहत् इत् महान् खलु भूरि बहु शस्त्रं स्तोत्रस्वरूपश्च पृथुः महान् । सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

(एषां इध्मः बृहत् इत्) इन ऋषियोंका समिधाओंका समूह बहुत ही बड़ा है(शस्त्रं भूरि) स्तोत्र बहुत है (स्वरुः पृथुः) शस्त्र बड़ा है (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका नित्यतरुण इन्द्र सखा है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अयुद्ध इद्युधा वृतꣳ शूर आजति सत्वभिः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। युवा इंद्रः येषां सखा तेष्वन्तर्भूतः कश्चित् अयुद्ध इत् प्रागयोद्धैव सन् युधावृतं योद्धृभिर्भटैरावृतं शत्रुम् सत्वभिः आत्मीयैर्बलैः शूरः सन् आजति नमयति ॥ ३ ॥

(येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका नित्यतरुण इन्द्र मित्र है, उनमें का कोई (अयुद्ध इत्) पहले योधा होता हुआ ही (युधावृतम्) योधाओंकी सेनासे घिरे हुए शत्रुका (सत्वभिः शूरः) अपने बलोंसे शूर होता हुआ (आजति) नमाता है ॥ ३ ॥

२३ २ २ ३१ २३ २ ३ १ २ ३ १ २
य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः। छ० उष्णिक् दे० इन्द्रः। अथ य एक इति तृचात्मकं द्वितीयम् सूक्तं तत्र प्रथमा। यः इन्द्रः एक इत् एक एव दाशुषे हविर्दत्तवते मर्त्ताय मनुष्याय यजमानाय वसु धनं विदयते विशेषेण ददाति अङ्ग—इति क्षिप्र-नाम (निरु० नै० ५,१७) अप्रतिष्कुतः परैरप्रतिशब्दितः प्रतिकूलशब्दरहित इत्यर्थः। एवम्भूतः स इन्द्रः क्षिप्रम् ईशानः सर्वस्य जगतः स्वामी भवति ॥ १ ॥

(यः एक इत्) जो इन्द्र एक ही (दाशुषे मर्त्ताय वसु विदयते) हवि देनेवाले यजमानको धन देता है (अप्रतिष्कुतः इंद्रः) जिससे कोई प्रतिकूलता नहीं करता ऐसा वह इन्द्र (अङ्ग ईशानः) शीघ्र ही सब जगत्का स्वामी होजाता है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। बहुभ्यः मनुष्येभ्यः सकाशात् यः चित् हि य एव खलु यजमानः सुतावान् अभिषुतसोमयुक्तः सन्। हे इन्द्र! त्वा त्वाम् आ विवासति परिचरति विवासतिः परिचरणकर्मा (निघ० ३, ५, १०) तत् तस्मै यजमानाय उग्रम् उद्गूर्णं शवः बलम् इन्द्रः अङ्ग क्षिप्रम् आ पत्यते आपतयति प्रापयति ॥ २ ॥

(बहुभ्यः यः चित् हि) बहुतसे मनुष्योंमेंसे जो यजमान अवश्य ही (सुतावान्) सोमका संस्कार करनेवाला होकर । हे इन्द्र ! (त्वा आविवासति) तुम्हारी आराधना करता है (तत) उसको (उग्रम्)तीव्र (शवः) बल (इंद्रः अङ्ग आपत्यते) इंद्र शीघ्र ही प्राप्त कराता है॥२॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

कदा मर्त्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अराधसं हविलक्षणेन राधसा धनेन-रहितमयष्टार मित्यर्थः।एवंविधं मर्त्तम् मनुष्यम् इन्द्रः पदा पादेन क्षुम्पमिव अहिच्छत्र-मिव कदा वा स्फुरत् स्फुरिष्यति वधिष्यति?यथा अहिच्छत्रम् मण्डला-कारेण शयानं कश्चिदनायासेन हन्ति एवमिन्द्रोऽपि कदास्मच्छत्रून् हनिष्यतीत्यर्थः । स्फुरतिस्फुलतीति वधकर्म्मसु (निघ० २, १९, १४, १६ पठितत्वात्) नः नस्माकं यस्तृणां गिरः स्तुतिलक्षणा वाचः इन्द्रः कदा कस्मिन् काले अङ्ग क्षिप्रं शुश्रावत् श्रोष्यतीति वितर्क्यते अत्र निरु-क्तम्-क्षुम्पमहिच्छत्रकम्भवति यत् क्षुभ्यते कदा मर्त्तमनाराधयन्तं पदेन क्षुम्पमिवावस्फुरिष्यति कदा नः श्रोष्यति गिर इन्द्रो अङ्ग (निरु० नै० ५, १७)—इति क्षिप्रनामैतत् इति ॥ ३ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (कदा) कब (अराधसं मर्त्तम्) देवताओंको हवि न देनेवाले मनुष्यको (पदा क्षुम्पमिव) जैसे चरणसे काठ लग कर उगे हुए छत्राकार फूलको कुचल देते हैं तैसे (स्फुरत्) नष्ट करेगा?(कदा) कब (अङ्ग) शीघ्र ही (नः गिरः शुश्र वत्)हमारी स्तुतियोंको सुनेगा

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ ३ २

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।

३ १ २ ३ २ ३ १ २

ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वँशमिव येमिरे ॥१॥

ऋ० मधुच्छन्दाः । छ० अनुष्टुप् । दे० इन्द्रः । अथ गायन्तीति—तृचात्मकम् सूक्तं तृतीयम्, तत्र प्रथमा । हे शतक्रतो बहुकर्मन् ! बहुयक्ष वा इन्द्र ! त्वा त्वाम् गायत्रिणः उद्गातारः गायन्ति स्तुवन्ति अर्किणः अर्च्चनहेतुमन्त्रयुक्ता होतारः अर्कम् अर्च्चनीयम् इंद्रम् अर्च्चंति स्तोत्र-शस्त्रगतैर्मन्त्रैः प्रशंसंति ब्रह्माणः ब्रह्मप्रभृत्यः इतरे ब्राह्मणा त्वाम् उद्येमिरे उन्नतिं प्रापयन्ति । तत्र दृष्टान्तः—वंशमिव यथा वंशाग्रे नृत्य-

न्तः शिल्पिनः प्रौढं वंशमुन्नतं कुर्वंति, यथा वा सन्मार्गवर्त्तिनः स्वकीयं कुलमुन्नतं कुर्वंति, तद्वत् । एतामृचं यास्क एवं व्याचष्टे—गायंति त्वा गायत्रिणः प्रार्चंति तेऽर्कमर्किणो ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्येमिरे वंशमिव वंशो वनशयो भवति वननाच्छ्रूयत इति वेति (निरु० नै० ५, ५) अर्कशब्दश्च बहुधा व्याचष्टे—अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्त्यर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्त्यर्कमन्नं भवत्यर्चति भूतान्यर्को वृक्षो भवति संवृत्तः कटुकिम्ना (निरु० नै० ५, ४)—इति ॥ १ ॥

(शतक्रतो) हे इन्द्र ! (गायत्रिणः त्वा गायंति) उद्गाता तेरी स्तुतियोंका गान करते हैं (अर्किणः अर्कं अर्चंति) अर्चनके मंत्रोंको पढ़ने वाले होता पूजनीय इंद्रकी मंत्रोच्चारणके साथ पूजा करते हैं (ब्रह्माणः त्वा उद्येमिरे) ब्रह्मा आदि अन्य ऋत्विज तुम्हें उन्नतिके पद पर पहुँचाते हैं (वंशं इव) जैसे कि—नट बाँसको ऊँचा करते हैं अथवा जैसे सन्मार्ग में चलनवाले पुरुष अपने कुलको ऊँचा करते हैं ॥ १ ॥

२उ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यद् यदा सानोः सानु यजमानः सानोः सानु, सोमवल्ली समिदाद्याहरणाय पर्वतप्रदेशम् आरुहः आरूढवान् । तथा भूरि कर्त्वम् बहुकर्म यागरूपम् अस्पष्ट स्पृष्टवान् उपक्रान्तवानित्यर्थः । तत् तदानीम् इंद्रः अर्थं यजमानस्य प्रयोजनं चेतति जानाति । ज्ञात्वा च वृष्णिः कामानां वर्षिता सन् यूथेन मरुद्गणेन सह एजति कम्पते, अस्य स्थानात् यज्ञभूमिमागंतुमित्यर्थः । सानोः सान्वारुहः सानोः सानुमारुहत्—इति पाठौ ॥ २ ॥

(यद्) जब (सानोः सानु आरुहः) यजमान सोमवल्ली समिधा आदि लानेको पर्वतके शिखरपर चढ़ता है (भूरि कर्त्वं अस्पष्ट) अनेकों कर्मवाले यज्ञको अनुष्ठान करता है (तद् इन्द्रः) उस समय इंद्र (अर्थं चेतति) यजमानके प्रयोजन को जानजाता है और जानकर (वृष्णिः यूथेन एजति) मनोरथोंकी वर्षा करनेवाला होकर देवगणोंके साथ यज्ञभूमि में आनेकी चेष्टा करता है ॥ २ ॥

३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

युंक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।

१ २ ३ १ २र

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोमपाः! सोमपानयुक्तेन्द्र! हरी त्वदीयावश्वौ युंक्ष्व हि सर्वथा संयोजय। अथ अनन्तरं नः अस्मदीयानां गिरां स्तुतीनाम् उपश्रुतिं समीपे श्रवणमुद्दिश्य चर तत्तद्देशे गच्छ। कीदृशौ हरी? केशिना स्कन्धप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्तौ, वृषणा सेचनसमर्थौ युवानौ कक्ष्यप्राः अश्वस्योदरबन्धनरज्जुः कक्ष्यः, तस्य पूरकौ पुष्टाङ्गावित्यर्थः॥ युंक्ष्वा—युक्ष्वा—इति पाठौ॥ युंक्ष्वा—सति शिष्टत्वेन प्रत्ययस्वरः (३, १, ३)—शिष्यते द्व्यचोऽस्तिङः (३, १, ३) इति संहितायां दीर्घत्वम्। केशिना-प्रशस्ताः केशाः अनयोः सन्तीति मत्वर्थीय इनिप्रत्ययः,सुपां सुलुगित्यादिना (७, १, ३९) द्विवचनस्याकारादेशः। वृषणा—वृषु मृषु सेचने (भ्वा० प०) कनिन्युवृषितक्षिराजिधन्विद्युप्रतिदिवः—इति कनिन् नित्यादिर्नित्यम् (६, १, १९७) इत्याद्युदात्तः, वा षपूर्वस्य निगमे (६, ४, ९)-इति उपधायाः पक्षे दीर्घाभावः पूर्ववदाकारः (७,१,३९)कक्ष्यप्राः-कक्ष्योर्भवं कक्ष्यं सूत्रं तत् प्रातः पूरयतः पुष्टत्वादिति कक्ष्यप्रौ, प्रा पूरणे (अदा०प०) आतोऽनुपसर्गे० (३, २,३)-कप्रत्ययः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेणान्तोदात्तत्वम् (६, २, १३९)-आकारः पूर्ववत् (७, १, ३९)। अथा—निपातस्य च (६, ३, १३६)—इति संहितायां दीर्घः। नः—अनुदात्तं सर्वमपादादौ (८, १, १८)-इत्यनुवृत्तौ बहुवचनस्य वस्नसौ (८, १, २१)-इति नसादेशोऽनुदात्तः। इन्द्र!—सोमपा!—इत्युभौ आमन्त्रितस्य च (८, १, १९) इति सर्वानुदात्तौ। गिरां-सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः (६, १, १६८)-इति विभक्तिरुदात्ता। उप-शब्दो निपातत्वादाद्युदात्तः (फि० ४, १२) श्रुतिशब्देन प्रादिसमासे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे प्राप्ते तादौ चनिति कृत्यचौ इति तु वर्जिततादिपरत्वात् गते प्रकृतिस्वरः परनिपातः

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः॥ १०॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे दशमोऽध्यायः॥-१०॥

(सोमपाः) हे सोमपान करनेवाले इन्द्र! (केशिना वृषणा) ग्रीवा पर केशोंवाले और तरुण (कक्ष्यप्राः हरी) पुष्ट अंगोंवाले अपने घोडोंको (युंक्ष्व हि) अवश्य ही रथमें जोड़ो (अथ) इसके अनन्तर (इन्द्र) हे इन्द्र! (नः गिरां उपश्रुतिं चर) हमारी स्तुतियें सुनने को समीपमें आइये॥ ३॥

सामवेदोत्तरार्चिके दशमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः दशमाध्यायश्च समाप्तः

❀ श्रीहरिः ❀

अथैकादश अध्याय आरभ्यते

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम्॥ ११॥

१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते।
१ २ ३ १ २
होतः पावक यक्षि च॥ १॥

ऋ० मधुच्छन्दाः। छ० गायत्री। दे० आप्री। तत्र प्रथम—खण्डे सुषमिद्ध इति चतुर्ऋचं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे अग्ने! सुसमिद्धः एतन्नामकस्त्वं नः अस्मदीयाय हविष्मते यजमानाय तदनुग्रहार्थं देवान् आवह। हे पावक शोधक! होतः! होमनिष्पादकाग्ने! यक्षि च यज च॥ सुसमिद्धः—समः क्रियाविशेषणत्वेन गतिसञ्ज्ञकत्वात् प्रादिसमासः शोभनवाचिनः सुशब्दस्य तु विशेषणं विशेष्येण बहुलम् (२, १, ५७)--इति समिद्धपदेन कर्मधारयः समासः सुशब्दः प्रातिपदिकस्वरेणान्तोदात्तः कर्मधारये निष्ठा (६, २, ४६)--इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं क्रियाविशेषणत्वे हि सुशब्दस्य गतित्वात् प्रादिसमासे गतिरनन्तरः (६, २, ४९)--इति समो यदुत्तरः इति समो यदुत्तरत्वं तदेव कृदुत्तरप्रकृतिस्वरत्वेन (६, २, १३९) स्थास्यतीति सुशब्दोऽनुदात्तः स्यात्। देवाँ अग्ने-दीर्घादटि समानपादे (८,३,९) इति नकारस्य रुत्वम् अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा (८, ३, २)—आतोऽटि नित्यम् (८, ३, ३)—इत्यनुनासिकः। हविष्मते—हविरस्यास्तीति मतुप् तसौ मत्वर्थे (१, ४, १९)—इति भत्वेन पदत्वबाधितत्वात् रुत्वम्। होतः—पावक-एतच्छब्दयोरामन्त्रितयोः पृथक् पृथगेव क्रियान्वये परस्परसामर्थ्यात् पराङ्गवद्भावाभावान्न तन्निबन्धनमैकस्वर्य्यम्। न च द्वितीयस्यामन्त्रितस्याष्टमिक—(८, १, १९)--निघातेनैकस्वर्य्यम्। आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवद् (८, १, ७२)-इति पूर्वस्याविद्यमानत्वेन पदात्परत्वात् पादादित्वाच्च परस्य सामानाधिकरण्येऽपि होतरित्यस्य विशेषणत्वे समानमेवाविद्यमानवत्त्वम् अतएवाविद्यमानवत्त्वात् सामर्थ्येऽपि न पराङ्गवद्भावः-इति नैकस्वर्य-

सिद्धिः अत्र होतरिति विशेष्यम् अतः पुनातीति पावकः इत्यवयवप्रसिद्धस्वीकारेण विशेषणत्वाद्धोतरिति विशेष्यम् तच्च सामान्यवचनम् इति नामन्त्रिते समानाधिकरणे (८,१,७३)-इत्यविद्यमानवत्त्वप्रतिषेधात् पदात्परत्वादपादादित्वाच्च द्वितीयामंत्रितस्याष्टमिकनिघातेन वा पराङ्गवद्भावे सति शेषनिघातेन वा सर्वानुदात्तत्वसिद्धिः यक्षि-यजेर्लेटि सिपि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७३)-इति शपो लुक् व्रश्चादिना (८, २। ३६) षत्वम् षढोः कस्सि (८, २, ४१) इति कत्वम् सेर्हिरादेशश्छान्दसत्वान्न भवति, सिपः पित्वेनानुदात्तत्वाद्धातुस्वरएव (६, १, १६२) शिष्यते, न च तिङ्ङतिङः (८,१,२८)-इति निघातपूर्वस्य पावकेत्यामंत्रितस्य विद्यमानवत्त्वेन पदादपरत्वात् अत एव तस्याव्यवधायकत्वे होतरित्यपेक्ष्य निघातः स्यादिति चेत् न—यक्षिपदापेक्षया होतरित्यस्यापि पूर्वत्वेनाविद्यमानत्वात् । ननु नामंत्रिते समानाधिकरणे (८, १, ७३)-इति तस्य नित्यमविद्यमानवत्त्वम् न च पावकपदस्याविद्यमानवत्त्वेन समानाधिकरणपरत्वाभावः यक्षिपदस्यैव हि कार्यं प्रति पावकपदं पूर्वत्वादविद्यमानवत् स्यात् होतः पदमविद्यमानवत्त्वप्रतिषेधं प्रति तु परत्वाद्विद्यमानवदेवेति भवत्येव होतरित्यस्याविद्यमानवत्वप्रतिषेधः अतस्तस्याविद्यमानवत्वात्तदपेक्षया यक्षीति निघातः प्राप्नोत्येव?सत्यम्-अत्र यक्षीत्यस्य च शब्दपरत्वात् चादिषु च (८,१,५८)-इति निघातप्रतिषेधो भविष्यतीत्यदोषः ॥ १ ॥

(अग्ने सुसमिद्धः) हे अग्ने ! सम्यक् प्रकार प्रज्वलित हुए तुम (नः हविष्मते देवान् आवह) हमारे यजमानके निमित्त देवताओं का आवाहन करो (होतः पावक) हे पवित्र करनेवाले और होमके सफलकर्त्ता अग्ने ! (यक्षि च) उन देवताओंका यजन भी करो ॥१॥

१ २ ३ २ ३ १ २

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।

३ १ २ ३ १ २

अद्या कृणु हूतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे कवे ! मेधाविन्नग्ने ! तनूनपात-एतन्नामकस्त्वम् अद्य अस्मिन् नः अस्मदीयं मधुमंतं रसवन्तं यज्ञं यजनीयं हविः देवेषु कृणुहि कुरु प्रापयेत्यर्थः । किमर्थम् ? ऊतये अस्मद्रक्षणाय ॥ ऊतये वीतये-इति पाठौ ॥ २ ॥

(कवे अग्ने) हे मेधावी अग्निदेव ! (तनूनपात्) तनूनपात नाम वाला तू (अद्य) आज (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (नः मधुमन्तम् यज्ञम् देवेषु कृणुहि) हमारे रसयुक्त यजनके योग्य हविको देवताओंमें पहुँचाओ ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २२

नरा शꣳसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।

२ ३ ३ १ २

मधुजिह्वꣳ हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इह देवयजनदेशे अस्मिन् वर्त्तमाने यज्ञे नराशंसम् एतन्नामकमग्निम् उपह्वये आह्वयामि । कीदृशम्? प्रियम् देवानाम् प्रीति-हेतुं मनुजिह्वं मधुरभाषिजिह्वोपेतं माधुर्यरसास्वादकजिह्वोपेतम् वा, हविष्कृतम् हविषां निष्पादकम् ॥ ३ ॥

(इह अस्मिन् यज्ञे) इस देवयजनस्थानमें इस वर्तमान यज्ञके विषें (प्रियं मधुजिह्वम्) देवताओंको प्रसन्न करनेवाले और मीठा बोलने वाली जिह्वावाले (हविष्कृतं नराशंसम् उपह्वये) हवियोंको देवताओं के समीप पहुचाकर सफल करनेवाले नराशंस नामक अग्निका मैं आवा-हन करता हूँ ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२

अग्ने सुखतमे रथे देवाꣳ ईडित आ वह ।

२ ३ २ ३ १ २

असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । इदम् शब्दाभिधेय हे अग्ने ! ईडितः अस्माभिः स्तुतः सन् सुखतमे अतिशयेन सुखहेतौ कस्मिंश्चित् रथे देवान् स्थापयित्वा कर्मभूमौ आ वह इट्शब्दाभिधेयत्वमत्र सूचयितुमीडित इति विशेषणं । मनुर्हितः मनुना मन्त्रेण मनुष्येण वा यजमानादिरूपेण हितः अत्र स्थापितः त्वं होता देवानामाह्वातासि ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (ईडितः) हमसे स्तुति किये हुए तुम (सुख-तमे रथे देवान् आवह) अत्यन्त सुखदायक किसी रथमें देवताओं को बैठा कर कर्मभूमिमें लाओ (मनुर्हितः होता असि) तुम मंत्ररूपसे वा मनुष्य यजमानादिरूपसे यहाँ स्थापित और देवताओंका आह्वान करने वाले हो ॥ ४ ॥

२ ३ २ ३ उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

यदद्य सूर उदिते अनागा मित्रो अर्यमा ।

३ १ २ ३ १ २र
सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० गायत्री । दे०. आदित्यः । यदद्येति तृचात्मकम् द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । यत् धनम् नः अस्माकम् अपेक्षितम् तत् अद्य अस्मिन् काले सूरे उदिते सति प्रातःसमये अनागाः पापहन्ता, मित्रः अर्य्यमा सविता, भगः च-एतत् प्रत्येकं सुवाति प्रेरयत् अथवा अनागा मित्रो अर्यमा भवतु, तदीप्सितं भगो भजनीयः सविता सुवाति प्रेरयतु१

(यत्) जो धन हमें अपेक्षित है उसको (अद्य सूरे उदिते) आज सूर्यका उदय होने पर प्रातःकालके समय (अनागाः) पापनाशक (मित्रः अर्यमा) मित्र और अर्यमा देवता तथा (भगः सविता सुवाति) सवनीय सविता देवता प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
२ ३ १ २ ३ १ ३
ये नो अꣳहोति पिप्रति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सक्षयः सनिवासः सुप्रावीरस्तु सुष्ठु प्रकर्षेण रक्षितास्तु प्रशब्द आदरार्थः । प्र प्रकर्षेण नु क्षिप्रं भवत्विति शेषः । कदा ? इत्युच्यते-हे सुदानवः ! सुदानाः ! युष्माकं यामन् यामनि गमन सति, कीदृशानां गमने ? ये यूयमागत्य नः अस्माकं अंहः पापम् अति पिप्रति अतिपारयथ, तेषां गमन इति॥ २ ॥

(सुदानवः) हे श्रेष्ठ दान करनेवाले मित्रादि देवताओं! (प्र नु यामन्) उत्तमताके साथ शीघ्र ही तुम्हारा आगमन होने पर (सक्षय) (सुप्रावीः अस्तु) अपने निवासस्थान यज्ञ सहित अग्नि देवता हमारा भले प्रकार अधिकतासे रक्षक हो (ये नः अंहः अतिपिप्रति) जो तुम मित्रादि देवता हमें पापसे पार करते हो ॥ २ ॥

३२ ३ २ ३ १ २ ३१२ ३ २ ३ २
उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये ।
३ १ २र
महो राजान ईशते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। उत अपि च ये मित्राद्यस्त्रयः स्वराजः सर्वस्य स्वामिनः अदितिः येषाञ्च माता, सन्ति ते अदब्धस्य अहिंसितस्य रक्षकस्य

महः महतः व्रतस्य अस्य कर्मणः राजानः स्वामिनः, ते ईशते समर्थाः भवन्ति अभिमतं दातुमिति शेषः । अथवैवं योज्यम् ये मित्रादयोऽदितिश्च अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः ईश्वरास्ते महः महत अस्मदभिमतधनस्य राजानः स्वामिनः सन्तः ईशते अस्मभ्यम् दातुम ॥ ३ ॥

(उतये) और जो मित्रादि देवता तथा (अदितिः) देवमाता (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) सुरक्षित हमारे कर्मके स्वामी हैं वह (महः राजानः) बहुतसे हमारे इच्छित धनके स्वामी होते हुए(ईशते) वह इच्छित पदार्थ हमें देनेकी शक्ति रखते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।

१ २ ३ १ २

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥

ऋ० प्रगाथः । छ० गायत्री । दे० सोमः । उ त्वेति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम तत्र प्रथमा । हे इन्द्र! त्वा त्वाम् सोमाः उत् उत्कृष्टम् मदन्तु मादयन्तु । हे अद्रिवः ! वज्रवन्निन्द्र ! त्वं राधः अन्नं कृणुष्व अस्मभ्यं कुरु किञ्च ब्रह्मद्विषः ब्राह्मणद्वेष्टॄन् अव जहि ॥ सोमाः सोमा—इति पाठौ ॥१॥

हे इंद्र (सोमाः त्वा उत् मदन्तु) सोम तुम्हें उत्तम आनन्द दें (अद्रिवः राधः कृणुष्व) हे वज्रधारी ! हमें अन्न दो(ब्रह्मद्विषः अव-जहि) ब्राह्मणोंके द्वेषियोंका नाश करो ॥ १ ॥

३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।

२उ ३ २ ३ १ २र

न हि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । पणीन् लुब्धान् अराधसः यष्टव्यधनरहितान् केवलधनान् पदा पदेनातिक्रम्य निबाधस्व तितरां बाधस्व । हे इन्द्र ! त्वम् महान् असि त्वा त्वया प्रति प्रतिनिधिसदृशः कश्चन कश्चिदपि देवोऽसुरो मनुष्यो वा न हि नास्ति खलु ॥ पणीनराधसः पणीरराधसः— इति पाठौ ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (महान् असि) तुम सबसे बड़े हो (त्वा प्रति कश्चन न हि) तुम्हारी समता करनेवाला कोई भी नहीं है (अराधसः पणीन् पदा निबाधस्व) यज्ञादिमें धनका दान न करनेवाले लोभियोंको चरण से दबाकर कष्ट दो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २९

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वम्र सुतानाम् ।

२उ ३ १ २

त्वथ्ठँ राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्र ! त्वं सुतानाम् अभिषुतानाम् सोमानां ईशिषे ईश्वरो भवसि, तथा त्वम् असुतानाम् वर्त्तमानानाञ्च ईशिषे । किञ्च त्वं सर्वेषां जनानां राजा भवसि ॥ ३ ॥

(इंद्र त्वं सुतानां त्वं असुतानां ईशिषे) हे इंद्र ! तुम संस्कार किये हुए सोमोंके और तुम संस्कार न किये हुए सोमोंके स्वामी हो (त्वं जनानां राजा) तुम सकल प्राणियोंके राजा हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकादशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १

आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनाथ्ठँ सोमः पुनानो

२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

असदच्चमूषु । सपन्ति यं मिथुनासो निकामा

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अध्वर्य्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ १ ॥

ऋ० पराशरः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अथ द्वितीयखण्डे-आजा गृविरिति तृचात्मकं प्रथमम्-सूक्तं तत्र प्रथमा । जागृविः जागरणशीलः ऋतं ऋतानां सत्यभूतानां मतीनां स्तुतीनां विप्रः ज्ञाता स सोमः पुनानः पूयमानः सन् चमूषु चमसेषु आसदत् आसीदति मिथुनासः परस्परम् सङ्गताः निकामाः नितरां कामयमानाः रथिरासः यज्ञनेतारः सुहस्ताः कल्याणपाणयः अध्वर्यवः पवित्रेण यं सोमम् सपंति स्पृशंति सप सम-वाये(भ्वा०प०)सपतिः स्पृशति-कर्म्मा-इति नैरुक्तः॥ऋतं-ऋता इति पाठौ

(जागृविः) जागरणशील (ऋतं मतीनां विप्रः) सत्यस्वरूप स्तुति-योंका ज्ञाता (सोमः पुनानः चमूषु आसदत्)सोम शोधाजाता हुआ पात्रोंमें स्थित होता है (मिथुनासः निकामाः) परस्पर इकट्ठे हुए अत्यन्त कामनावाले (रथिरासः सुहस्ताः)यज्ञोंके परिचालक कल्याण रूप हाथ वाले (अध्वर्यवः यं सपन्ति)अध्वर्यु जिसको स्पर्श करते हैं।

१ २३२३ ३ २३ १ २ ३ १ २र३ १ २ ३
स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वी ष आवः । प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती
३ १ २र ३ २ ३ १ २र
सतो धनं कारिणे न प्र यꣳसत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । पुनानः पूयमानः दधानः यज्ञादिकर्म–धारकः सः सोमः सूरे प्रेरके इन्द्रे उप गच्छति । किञ्च उभे रोदसी द्यावा–पृथिव्यौ आ अप्राः स्व—महिम्ना आ पूरयति । तथा सोमः आवः स्व—तेजसा मां विवृणोति पृणोतेः मन्त्रे घसेति (२, ४, ८१) च्लेर्लुक्, छन्दस्यपि दृश्यते (६, ४, ७३)—इत्यडागमः । पूर्वपदात् (८, ३, १०६)—इति स इत्यस्य सांहितिकम् षत्वम् । प्रिया षष्ठ्या आकारः (७,१,३९) प्रियस्य यस्य सतः विद्यमानस्य सोमस्य यद्वा, प्रिया प्रियाणि प्रयच्छन्तः सोमस्य प्रियसासः अत्यन्तं प्रियतमा धाराः ऊती ऊत्यै रक्षणाय भवन्ति सः सोमः नः अस्मभ्यम् धनं प्रयंसत् प्रयच्छतु यच्छतेर्लेटि सिप्यडागमः । तत्र दृष्टान्तः—कारिणे न यथा कारिणे भृतकाय भृतिं प्रयच्छति तद्वत् । दधान ओभे-दधानोभे-इति पाठौ सते धनं सतूधनम्—इति च ॥ २ ॥

(पुनानः दधानः सः) संस्कारयुक्त होता हुआ और यज्ञादि कर्मका साधक वह सोम (सूरे उपगच्छति) प्रेरक इंद्रके समीप पहुंचता है (उभे रोदसी) द्यावा पृथिवी दोनोंको (आ अप्राः) अपनी महिमा से पूर्ण करता है (सोमः आवः) सोम अपने तेजसे मुझे आच्छादित करता है (प्रियाः) प्रिय पदार्थ देनेवाले (यस्य सुतः) जिस विद्यमान सोमकी (प्रियसासः) अत्यन्त प्यारी धारे (ऊती) हमारी रक्षा करती हैं वह (कारिणे न धनं प्रयंसत्) भृत्यसमान मुझे धनदेयँ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाꣳ अभि
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
नो ज्योतिषावीत् । यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः
३ १ २ ३ १ २र ३ २
स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। वर्द्धिता देवानां स्व-कला प्रदानेन वर्द्धयिता वर्द्धनः स्वयं वर्द्धमानः पूयमानः पवित्रेण पूयमानः मीढ्वान् कामानां सेक्ता स सोमः न अस्मान् ज्योतिषा स्वतेजसा अभ्यार्वात् अभिरक्षतु यत्र यस्मिन् सोमे प्रसन्ने सति पदज्ञाः पणिभिरपहृतानां गवां पदानि जानंत स्वर्विदः सर्वज्ञाः सूर्यं जानन्तो वा नः अस्माकं पूर्वे चिरन्तनाः पितरः अङ्गिरसः गाः पशून् लब्धुम् अद्रिम् शिलोच्चयम् अभि लक्ष्य गंतुम् इष्णन् ऐच्छन्। यत्र नः येनानः-इति पाठो इष्णन् ष्णन् इति च॥ ३॥

(वर्द्धिता वर्द्धनः) देवताओंको अपनी कला देकर बढ़ानेवाला और स्वयं बढ़ता हुआ (पूयमानः मीढ्वान्) दशापवित्रके द्वारा शुद्ध होता हुआ और कामनाओं की वर्षा करने वाला (सः सोमः) वह सोम (नः ज्योतिषा अभ्यावीत्) हमें अपने तेजसे रक्षा करै (यत्र) जिस सोमके प्रसन्न होने पर (पदज्ञाः स्वर्विदः) पदोंके जाननेवाले और सर्वज्ञ (नः पूर्वे पितरः) हमारे पुरातन पितर (गाः) गौएं पानेको (अद्रिं अभि इष्णन्) पर्वतकी ओरको जाना चाहते हैं॥ ३॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
मा चिदन्यद्वि शꣳसत सखायो मा रिषण्यत ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इन्द्रमित्स्तोता वृषणꣳ सचा सुते मुहुरुक्था
२
च शꣳसत॥ १॥

ऋ० प्रगाथः। छ० बृहती। दे० इंद्रः। अथ माचिदन्यदिति प्रगाथात्मके द्वितीय सूक्ते—प्रथमा। हे सखायः! समानख्यानाः स्तोतारः! इन्द्रस्तोत्रात् अन्यत् स्तोत्रं मा चित् विशंसत मैवोच्चारयत, मा रिषण्यत मा हिंसिता भवत अन्यदीय-स्तोत्रोच्चारणेन वृथोपक्षीणा मा भवत, सुते अभिषुते, सोमे वृषणं कामानां वर्षितारम् इंद्रम् इत् इंद्रमेव हे प्रस्तोत्रादयः! सचा सह स्तोत स्तुत। हे प्रशास्त्रादयः! उक्था च उक्थानि शास्त्राणि च इन्द्रविषयाणि यूयं मुहुः पुनः पुनः शंसत॥ १॥

(सखायः) हे हितकारी स्तोताओं! (अन्यत् मा चित् विशंसत) इंद्रके स्तोत्रसे अन्य स्तोत्रको कभी भी उच्चारण मत करो (मा रिषण्यत) अन्य स्तोत्रके उच्चारणसे वृथा क्षीण मत होओ (सुते वृषणं इन्द्रम् इत्) सोमका संस्कार हाने पर मनोरथोंकी वर्षा करने

वाले इन्द्रकी ही (सचा स्तोत) इकट्ठे होकर स्तुति करो (उक्था च) मुहुः शंसत) इंद्रविषयक मंत्रोंको ही वार वार पढ़ो ॥ १ ॥

३ १२ ३१२३ २३१ २र ३१२
अवचक्रिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।
३१२ ३१२ ३१ २र ३
विद्वेषणꣳ संवननमुभयङ्करं मꣳहिष्ठमुभया-
१२
विनम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वृषभं यथा वृषभमिव अवचक्रिणम् अवचर्षणशीलं शत्रूणां हिंसितारं जुवं शीघ्रकारिणं गां न गामिव वृषभमिव चर्षणीसहम् मनुष्याणां शत्रुसुतानामभिभवितारं, विद्वेषणं विद्वेष्टारं शत्रूणां संवननं सम्यक् संभजनीयं स्तोतृभिः उभयङ्करं निग्रहानुग्रहयोरुभयोः कर्त्तारं मंहिष्ठं दातृतमम् उभयाविनं दिव्यपार्थिव-लक्षणेन उभय-विधानेनोपेतम् । यद्वा, स्थावर-जंगमरूपेण द्विप्रकारेण रक्षितव्येनोपेतम् । अथवा उभयविधैः स्तोतृभिर्द्वेष्टृभिश्चोपेतम्—एवंविधमिन्द्र-मित्स्तोत्रेणेति पूर्वेणान्वयः । जुवं—जुरं—इति पाठौ, संवननं—संवनना-इति च ॥ २ ॥

(वृषभं यथा अवचक्रिणम्) वृषभकी समान शत्रुओंको मारने वाले (गां न जुवम्) वृषकी समान शीघ्रता करने वाले (चर्षणीसहम्) शत्रुओंके पुत्रोंका तिरस्कार करने वाले (विद्वेषिणां संवननम्) शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले और उपासकोंके आराधना करने योग्य (उभयंकरं मंहिष्ठम्) निग्रह अनुग्रह दोनोंके कर्त्ता और परमदाता (उभयाविनम्) दिव्य पार्थिव दोनों प्रकारका ऐश्वर्य्यवाले इन्द्रकी ही स्तुति करो ॥ २ ॥

२३ १ २र ३ २३ १ २ ३
उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते । सत्रा-
१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
जितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१॥

ऋ० मेधातिथिः । छं० बृहती । दे० इंद्रः । अथ उदुत्य इति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । त्ये ते प्रसिद्धाः मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुराः गिरा स्तुतिरूपया वाचा स्तोमासः त्रिवृदादि—स्तोमाश्च उदीरते हे इंद्र ! त्वामुद्दिश्य उद्गच्छन्ति ऊर्ध्वं प्रसरन्ति (ईर गतौ

आदादिकः आ०)। तत्र दृष्टांतः—सत्राजितः सहैव शत्रून् जयन्तः धनसा धनानि सम्भजन्तः वन षण सम्भक्तौ (भ्वा० प०) जन-सन-खन-क्रम-गमो विट् (३, २, ६७) विड्वनोरनुनासिकस्यात् (६, ४, ४१)-इत्यात्वम्, अक्षितोतयः अक्षिताः क्षय-रहिताः ऊतयो रक्षा येषां ते तथोक्ताः क्षियो भावे निष्ठा, निष्ठायामण्यदर्थे (६,४,६०) ---इति पर्युदासाद्दीर्घाभावः अत एव क्षियो दीर्घात् (८, २, ४६)---इति निष्ठा-नत्वाभावश्च वाजयन्तः वाजमन्नमिच्छन्तः वाचि न छन्दस्य-पुत्रस्य (७,४,३५)-इतीत्वदीर्घयोः प्रतिषेधः, एवं गुणविशिष्टाः रथा इव ते यथा विविधमितस्ततः उत्तिष्ठन्ति तद्वदुदीरत इत्यर्थः ॥ १ ॥

((त्ये मधुमत्तमाः) वह अत्यन्त मधुर (गिरः स्तोमासः) वेद वाणीरूप स्तोत्र (उदीरते) उच्चारण किये जाते हैं अर्थात् तुम्हारे निमित्त उच्चारण किये हुए ऊपर फैलते हैं (सत्राजितः धनसा) साथ ही शत्रुओंको जीततेहुए और धनको पानेवाले (अक्षितोतयः) अटल रक्षावाले (वाजयन्तः रथा इव) अन्न चाहने वाले रथ जैसे अनेकों प्रकारसे भूतल पर प्रचलित होते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
२ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रꣳ स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। कण्वाः कण्वगोत्रोत्पन्नाः ऋषयः इव स्तुवन्तः भृगवः भृगुगोत्रोत्पन्ना ऋषयः धीनम् आध्यान्तम् विश्वमित् व्याप्तं तमेव इन्द्रम् आशत आनशिरे सूर्य्या इव यथा सूर्यरश्मयः सर्वं जगद् व्याप्नु-वन्ति तद्वत्। अपि च प्रियमेधासः प्रिययज्ञाः एतत्संज्ञका वा आयवः मनुष्या तमेवेन्द्रं महयन्तः पूजयन्तः स्तोमेभिः स्तोत्रैः अस्वरन् अस्तु-वन् (स्वृ शब्दोपतापयोः भौवादिकः प०)। आशत-आनशुः इति पाठौ२

(कण्वाः इव स्तुवन्तः) कण्वगोत्र वाले ऋषियोंकी समान स्तुति करते हुए (धीतं विश्वमित् इन्द्रं आशत) ध्यान करे हुए उस व्यापक इंद्रको ही व्याप्त करते हैं (सूर्या इव) जैसे कि-सूर्यकी किरणें सब जगत्को व्याप लेती हैं और (प्रियमेधासः आयवः) यज्ञसे प्रेम करने वाले ऋत्विज (महयन्तः) उस इन्द्रकी ही पूजा करते हुए (स्तोमेभिः अस्वरन्) स्तोत्रोंसे प्रशंसाका वर्णन करते हैं॥ २ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पर्य्यूषु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः
३ २ ३ १ २ ३ २ २
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥ १ ॥

ऋ० ऋणः त्रसद्दस्युः वा। छ० पिपीलिकमध्या त्रिपदा त्रिष्टुप्। दे० सोमः। अथ पर्यू ष्विति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम्--तत्र प्रथमा। हे सम ! सु सुष्ठु वाजसातये अस्मभ्यमन्नदानायैव परि प्रधन्व परितः प्रगच्छ यद्वा वाजसातये अन्नस्य लाभाय संग्रामं प्रगच्छ। किञ्च सक्षणिः सहनशीलस्त्वं वृत्राणि शत्रून् परिगच्छ। तदेवोच्यते-नः अस्माकम् ऋणया ऋणानां यापयिता विनाशयिता त्वं द्विषः शत्रून् तरध्यै तरीतुं हन्तुं ईरसे परिगच्छति। ईरसे-ईयसे-इति पाठौ ॥ १ ॥

(सु वाजसातये प्रधन्व) हे सोम ! भलेप्रकार हमें अन्न देनेके लिये सब ओरसे पहुँच (सक्षिणः वृत्राणि परि) सहनशील तुम शत्रुओं को प्रतिकूलरूपसे प्राप्त होओ (नः ऋणया) हमारे ऋणको दूर करनवाले तुम (द्विषः तरध्यै ईरसे) शत्रुओंको मारनके लिये पहुँचते हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना
१ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पयः। गोजीरया रꣳहमाणः पुरन्ध्या ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे पवमान ! सोम ! त्वं पयापयस उदकस्य विधारे विधारके अन्तरिक्षे शक्मना सामर्थ्येन बलेन सूर्यम् अजीजनः हि उत्पादितवान् भवसि खलु। कीदृशः ? गोजीरया स्तोतृभ्यो गवां प्रेरकेण स्तोतृणां प्रेरितपशुकेनत्यर्थः तादृशेन पुरन्ध्या बहुविधप्रज्ञानेन युक्तः रंहमाणः वेगं कुर्वाणस्त्वम् सूर्य्यमजीजनः ॥ २ ॥

(पवमान) हे सोम ! (पयः विधारे हि) जलको धारण करने वाले अन्तरिक्षमें ही (शक्मना सूर्यं अजीजनः) अपनी शक्तिसे सूर्य को निःसंदेह उत्पन्न किया है (गोजीरया) स्तोताओंको गौ आदि पशु देनेवाले (पुरन्ध्या) अनेकों प्रकारके ज्ञानसे युक्त (रंहमाणः) वेग करते हुए तूने सूर्यको उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अनु हि त्वा सुतꣳ सोम मदामसि० ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इति तृतीयाया ऋचः प्रतीकमिदम् । सा चान्यत्र (छ० आ० ५, १, ५, ६-१ व्याख्याता) ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या ५वें अध्यायके प्रथम खण्डमें होचुकी है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २

परि प्र धन्व० ॥ १ ॥

ऋ० ऋणः त्रसदस्यु वा । छ०द्विपदापंक्तिः । दे०सोमः । अथ परिप्रधन्वेति तृचात्मकं पञ्चमं सूक्तं-तत्र प्रथमा या ऋचः परिप्रधन्व इति प्रतीकमिदम् । सा चान्यत्र (छ०आ०५,१,५,१-१ व्याख्याता) ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या ५वें अध्यायके प्रथम खण्डमें होचुकी है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः

३ १ २

पीयूषः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! शुक्रः दीप्तः दिव्यः दिवि भवः पीयूषः देवैः पातव्यः सः त्वं अमृताय अमरणाय महे महते क्षयाय निवासाय च एवं अर्ष एवं पवस्व क्षर ॥ २ ॥

हे सोम (शुक्रः दिव्यः) दीप्त और द्युलाकमें उत्पन्न हुआ (पीयूषः सः) देवताओंके पीनेके योग्य तुम (अमृताय महे क्षयाय एव अर्ष) अमर होनेके लिये और बड़े स्थानके लिये ही वरसो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात्क्रत्वे दक्षाय विश्वे

३ २

च देवाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम! सुतस्य अभिषुतस्य ते तव स्वभूतं रसमिति शेषः इन्द्रः पेयात् पिबतु पिबतेराशीर्लिङ्‌ रूपम् । किमर्थम्? क्रत्वे क्रतवे प्रज्ञानाय दक्षाय बलाय च किञ्च अमी विश्वे सर्वे देवाः च त्वदीयं रसं पिबन्तु ॥ पेयात्—पेयाः-इति पाठौ ॥ ३ ॥

(क्रत्वे दक्षाय) श्रेष्ठ ज्ञान और बलकी प्राप्तिके लिये (सोम) हे सोम ! (सुतस्य ते) अभिषुत तेरे रसको (इन्द्रः पेयात्) इन्द्र पिये (विश्वे देवाः च) सकल देवता भी तेरे रसको पियें ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकादशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसूतः
३ १ २ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ २ ३
साकमीरिते । तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३२
नेन्द्राहृते पवते धाम किं चन ॥ १ ॥

ऋ० हिरण्यस्तूपः । छ०जगती । दे०सोमः । अथ तृतीयखण्डे-सूर्यस्येवेति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । सूर्यस्य सर्वस्य प्रेरकस्य सुवीर्य्यस्यादित्यस्य रश्मय इव सर्वतो व्यापकाः किरणा इव द्रावयित्नवः सर्वत्र द्रवणशीलाः मत्सरासः मदकराः प्रसूतः प्रकर्षेण सुताः अभिषुताः एकवचनं छान्दसं (३,१,८५)आशवः ग्रहेषु चमसेषु च व्याप्ताः सर्गासः सृज्यमानाः सोमाः ततं विस्तृतं तंतुं तंतुभिः कृतं वस्त्रम् दशापवित्रं साकं सह युगपत् परि ईरते परितो गच्छंति ते सोमाः इंद्रादृते इंद्रं वर्जयित्वा अन्यत् किञ्चन धाम देवशरीरं लक्षीकृत्य न पवते न गच्छन्ति ॥ इंद्रस्य धाम्नो यत्पृथ्यत्वञ्च अयाहीन्द्रस्य प्रिया धामानि-इति मंत्रवर्णादवगम्यते१

(सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी सर्वत्र व्यापक किरणोंकी समान (द्रावयित्नवः मत्सरासः) वहनेवाले और मदकारी (प्रसुतः आशवः स्वर्गासः) अधिकतर संस्कार किये हुए पात्रोंमें फैले हुए सुसिद्ध सोम (ततं तन्तुम् साकं परि ईरते) फैले हुए दशापवित्रमें एक साथ जाते हैं और वह सोम (इंद्रात् ऋते किञ्चन धाम न पवते) इन्द्रके विना किसी भी अन्य देवशरीरकी ओरको नहीं जाते हैं ॥१॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते
३ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अन्तरासनि । पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव
१ २ ३२उ ३ १ २
मधुमां द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अस्मिन् परिवादरूपे स्तोत्रे इन्द्रे मतिः स्तुतिरूपा पृच्यते स्तोतृभिः संयोज्यते पृची सम्पर्के (दि० आ०) । तथा मधु

मदकरः सोमः इन्द्रार्थं सिच्यते अद्भिर्वसतीवरीभिः सिक्तो भवति ततः मन्द्रजनी अजगतिक्षेपणयोः (अदा० आ०)-इत्यस्य ल्युटि ङीपि रूपम् मदकरस्य रसस्य प्रेरयित्री सोमधारा तस्येन्द्रस्य आसनि आस्ये अन्तर मध्ये चोदते प्रेर्यते आस्यशब्दस्य पद्दन्नोमासित्यादिना (६, १, ६३) आसन्नित्यादेशः। किञ्च सन्तनिः ग्रहादिषु सम्यक विस्तृतः सुन्वतां अभिषुतवतां यजमानानां सम्बन्धिनी पवमानः पूयमानः सोमः द्रप्सः द्रुतगमनशीलः वारं अविवालमयं पवित्रं परि परितः अर्षति गच्छति। इव-इति पादपूरणः॥ सुन्वतामिव-प्रघ्नतामिव इति पाठौ॥२॥

(मतिः पृच्यते) स्तुति इंद्रमें संयुक्त कीजाती है (मधु सिच्यते) मधुर रसवाला सोम इन्द्रके लिये वसतीवरी जलोंसे मिलाया जाता है (मन्द्रजनी आसनि अन्तः उपचोदते) मदकारी रसको बरसानेवाली सोमकी धारा इन्द्रके मुखके भीतर प्रेरणा कीजाती हैं (संतनिः सुन्वताम् पवमानः मधुमान् द्रप्सः वारम् परिअर्षति) पात्रोंमें फैला हुआ यजमानोंका पूयमान सोम शीघ्रताके साथ जाता हुआ ऊनके पवित्रेमें को छनकर निकलता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप
३ २ १,२ ३ १ २ ३ १ २ ३ ३ २ ३
यन्ति निष्कृतम् । अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं
२ ३ २र ३ १ २
न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। उक्षा रेतसः सेक्ता वृषभः पुरतो मिमेति शब्दायते माङ् मान शब्दे च (भ्वा० आ०) तं वृषभं धेनवः गावः प्रति यन्ति अनुगच्छन्ति। तथा देवस्य द्योतमानस्य सस्कृतम् स्थानम् देवी देव्यः स्तुतयः उपयन्ति उपगच्छन्ति अननार्दितसोमः स्तुतिभिरभिधीयते। सोमो हि द्रोणकलशाभिगमनकाले शब्दं करोति तमनु धेनवः प्रीणयित्र्यः स्तुतयः परियन्ति देवस्य स्थानं स्तुतयोऽभिगच्छन्ति । तथा सोऽयं सोमः अर्जुनम् श्वेतवर्णम् अव्ययम् अविमयम् अवेस्वभूतं वारं वालम् पवित्रम् अत्यक्रमीत् अतिक्रामति अतिक्रम्य पात्राणि गच्छती-

त्यर्थः। किञ्च सोमः अत्कं न आत्मीयकवचमिव निक्तम् उज्ज्वलं श्रवणद्रव्यम् परि अव्यत परितः संवृणोति । [मिमेति—मिमाति इति पाठौ

(उक्षा मिमेति) वृषभसमान सोम शब्द करता है (धेनवः प्रति यन्ति) गोरूप स्तुतियें उस वृषभरूप सोमका अनुगमन करती हैं (देवस्य निष्कृतिम्) दिपते हुए सोमके संस्कार कियेहुए स्थानको स्तुतियें प्राप्त होती हैं और वह सोम (अर्जुनं अव्ययं वारंअत्यक्रमीत्) श्वेत वर्णके ऊनी पवित्रमें को छनकर निकलता है और वह सोम (अत्कं न निक्तं परि अव्यत) अपने कवचकी समान मिलानेके उज्ज्वल पदार्थोंको आच्छादन करलेता है ॥ ३ ॥

३ २३ ३ १ २ ३ ३ १ २
अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥ १ ॥

ऋ० वशिष्ठः छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अग्निंनर इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे नरः ! नेतार ऋत्विजः ! यूयं प्रशस्तं प्रकर्षेण स्तुतं दूरेदृशं दूरे दृश्यमानं दूरे पश्यन्तं वा गृहपतिम् गृहाणां पालकम् अथव्युम् अगम्यम् अतनवन्तं वा अग्निम् अरण्योः सकाशात् हस्तच्युतं हस्तगतं दीधितिभिः अंगुलिभिः जनयन्त उत्पादयन्त हस्तच्युतञ्जनयन्त हस्तच्युतंजनयन्त-इति पाठौ अथव्युम् अथर्व्यम् इति च ॥ १ ॥

(नरः) हे ऋत्विजो ! तुम (प्रशस्तं दूरे दृशम्) अधिक स्तुति किये हुए और दूर दीखते हुए (गृहपतिं अथव्युम्) गृहोंके रक्षक और अगम्य (अग्निम्) अग्निको (अरण्योः हस्तच्युतम्) अरणियोंमें से अस्त होनेपर (दीधितिभिः जनयन्त) अंगुलियोंसे उत्पन्न करो ॥१॥

२ ३ २३ २ १ २ ३क २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुत-
३ २ ३ २३ ३ २ ३ १ २
श्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः अग्निः दमे गृहे गृहे दक्षाय्यः पूजनीयो हविर्भिः समर्द्धनीयो वा नित्यः असन्नः आस बभूव तं सुप्रतिचक्षं सुप्रतिदर्शनम् अग्निं कुतश्चित् सर्वस्मादपि भयहेतोः अवसे रक्षणाय वसवः वासकाः वसिष्ठाः स्तोतारः अस्ते गृहे न्यृण्वन् न्यदधुः ॥ २ ॥

(यः दमे दक्षाय्यः नित्यः आस) जो अग्नि घर घर पूजनीय वा हवियोंसे प्रज्वलित करने योग्य और नित्यहुआ (त सुप्रतिचक्षं अग्निम्) उस सुन्दर दर्शनीय अग्निको (कुतश्चित् अवसे) सब प्रकारके भय से रक्षा पानेके लिये (वसवः अस्ते न्यृण्वन्) स्तोताओंने अग्निशाला में स्थापन किया ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३क २र
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
१ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वाꣳ शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे यविष्ठ ! युवतमाग्ने ! प्रेद्धः प्रकर्षेण समिद्धः त्वम् अजस्रया असरणशीलया सूर्म्या ज्वालया नः अस्मदर्थे पुरः पुरस्तात् आहवनीयस्थाने दीदिहि दीप्यस्व । त्वां शश्वन्तः बहवः वाजाः अन्नानि हवींषि उपयन्ति उपगच्छन्ति ॥ ३ ॥

(यविष्ठ अग्ने) हे परमतरुण अग्निदेव ! (प्रेद्धः) पूर्णतया प्रज्वलित हुए तुम (अजस्रयाः सूर्म्या नः पुरः दीदिहि) निरन्तर ज्वालासे हमारे निमित्त इस आगेके आहवनीय स्थानमें दीप्त होओ ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
३ १ २ ३ २ २
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥

ऋ० सार्पराज्ञी । छ० गायत्री । दे० आत्मः । आयङ्गौरिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । गौः गमनशीलः पृश्निः प्राष्टवर्णः व्याप्ततेजाः अयं सूर्यः आक्रमीत् आक्रान्तवान् उदयाचलं प्राप्तवानित्यर्थः । आक्रम्य च पुरः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि मातरं सर्वस्य भूतजातस्य निर्मात्रीं भूमिम् असदन् आसीदति प्राप्नोति सदेश्छान्दसो लुङ् लृदित्वात् च्लेरङादेशः । ततः पितरं पालकं द्युलोकं च शब्दादन्तरिक्षञ्च प्रयन् प्रकर्षेण शीघ्रं गच्छन् स्वः सु-अरणः शोभनगमनो भवति यद्वा पितरं स्वः द्युलोकं प्रयन् वर्त्तते ॥ १ ॥

(गौः पृश्निः अयं आक्रमीत्) गमनशील और व्याप्त है तेज जिस का ऐसा यह सूर्य उदयाचल को प्राप्त हुआ फिर घूमकर (पुरः मातरं असदन्) पूर्वदिशामें सकल प्राणियोंकी माता समान भूमिको प्राप्त होता है (च पितरं स्वः प्रयन्) और फिर पालक द्युलोकको शीघ्र प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ १२ ३ २उ ३ १ २ ३ २
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
१ २र ३ १ २र
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। अस्य सूर्यस्य रोचना रोचमाना दीप्तिः अन्तःशरीरमध्ये मुख्यप्राणात्मना चरति वर्त्तते। किंकुर्वती? प्राणादपानती मुख्यप्राणस्य प्राणाद्या वृत्तयः तत्र प्राणनं नाडीभिरूर्ध्वं वायोर्निर्गमनम् तथाविधात् प्राणात् प्राणनात् अनन्तरम् अपानती अपानं तन्नाडीभिरवाङ्मुखं वायोर्नमनं तत् कुर्वती अपपूर्वादनितेः लटः शतृ अदादित्वाच्छपो लुक् उगितश्च (४, १, ६)—इति ङीप् शप्श्यनोर्नित्यम् (६, १, १७३)—इति नद्यनुदात्तत्वम्। यद्वा अन्तः द्यावापृथिव्योर्मध्ये अस्य सूर्यस्य रोचना रोचमाना दीप्तिः चरति गच्छति। रुच दीप्तौ (भ्वा० आ०) अनुदात्तेतश्च हलादेः (३, २, १४९)—इति युच्। किंकुर्वती? प्राणात् प्राणनात् उदयानन्तरम् अपानती सायं समये अस्तं गच्छतीति। ईदृश्या दीप्त्या युक्तः अतएव महिषः महान् सूर्यः दिवम् अन्तरिक्षम् उदयास्तमयोर्मध्ये व्यख्यन् विचष्टे प्रकाशयति॥ महिषः—महेः अविमह्योष्टिषच् (उ० १, ४५)—इति औणादिकः टिषच् प्रत्ययः। व्यख्यन्—चक्षिङः ख्याञ् (२, ४, ५४) छान्दसे लुङि अस्यतिवक्ति (३, १, ५२)—इत्यादिना च्लेरङादेशः॥ २॥

(अन्तः) द्यावापृथिवीके मध्यमें (अस्य रोचना) इस सूर्यकी दीप्ति (प्राणात् अपानती) उदयकालके अनन्तर अस्तको प्राप्त होती हुई (चरति) जाती है (महिषः दिवं व्यख्यन्) महान् सूर्य अन्तरिक्षको प्रकाशित करता है॥ २॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २३ १ २
त्रिꣳशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। त्रिंशत् धाम धामानि स्थानानि वचनव्यत्ययः (३, १, ८५) वस्तोः वासरस्याहोरात्रस्यावयवभूतानि अह शब्दोऽवधारणे द्युभिः सूर्यस्य दीप्तिभिरेव विराजति विशेषेण दीप्यन्ते। व्यत्ययेनैकवचनम् (३, १, ८५)। मुहूर्त्तान्यत्र धामान्युच्यन्ते, पञ्चदशरात्रेः, पञ्चदशाह्नः। पतङ्गाय पतन् गच्छतीति पतङ्गः सूर्यस्तस्मै सूर्याय, स्तुतिरूपा वाक् प्रति धीयते प्रतिमुखं धीयते प्रतिमुखं स्तो-

तृभिः विधीयते क्रियते यद्वा, वस्तोः अहनि त्रिंशद्धामानि घटिका-भिप्रायमेतत्, त्रिंशत् घटिकाः, अत्यन्त संयोगे द्वितीया (२, ३, ५)। एतावन्तं कालं द्युभिः दीप्तिभिः असौ सूर्य्यो वि राजति विशेषेण धीयते तस्मिंश्च समये वाक् त्रयी रूपा पतङ्गाय प्रति धीयते प्रतिमुखं धीयते तं सूर्यं सेवत इत्यर्थः श्रूयते हि—ऋग्भिः पूर्वाह्ने दिवि देव ईयते ईयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः-इत्यादि ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे एकादशोऽध्यायः॥ ११ ॥

(वस्तोः त्रिंशद्धाम) दिनकी तीसों घड़ी (द्युभिः विराजति) दीप्तियोंसे यह सूर्य विशेष शोभायमान होता है। उस समय (वाक् पतङ्गाय अह प्रतिधीयते) त्रयीरूपा वाणी सूर्यके निमित्त ही उच्चारण कीजाती है ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः
एकादशाध्यायश्च समाप्तः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय आरभ्यते

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ ११ ॥

३ १ २ ३१ २र ३ १ २
उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।
१ २ ३ १ २ ३ २
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः वसिष्ठो वा। तत्र प्रथमखण्डे उपप्रयन्त इति चतुर्ऋचं प्रथमं सूक्तम्—तत्र प्रथमा। अध्वरं हिंसाप्रत्यवायरहितम् अग्निष्टो-मादियज्ञम् उप प्रयन्तः उपेत्य प्रकर्षेण यन्तो गच्छन्तः प्राप्त्यविच्छेदेन सम्यगनुष्ठितवन्त इत्यर्थः। तादृशा वयम् अग्नये अङ्गनादिगुणयुक्ताय देवाय मंत्रं मननसाधनमेतत् सूक्तरूपं स्तोत्रं वोचेम वक्तारो भूयास्म इत्याशास्यते। कीदृशायाग्नये ? आरे अस्मे च शृण्वते च-शब्दो-ऽप्यर्थे आरेशब्दात् परो द्रष्टव्यः आरे च दूरेऽपि स्थितवास्माकं स्तुतीः

शृण्वते अस्मासु प्रीत्यतिशयेन सर्वत्र विद्यमानोऽग्निः अस्मदीयमेव स्तोत्रं शृणोतीति भावः। वोचेम—ब्रुवोवचिः (२, ४, ५३) लिङ्याशिष्यङ्, वचउम् (७, ४, २०)—इत्युमागमः। शृण्वते-शतुरनुमः (६, १, १७३)—इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ॥ १ ॥

(अध्वरं उपप्रयन्तः) हिंसारूप प्रत्यवाय रहित अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए हम (आरे च अस्मे शृण्वते) दूर होकर भी हमारी स्तुतिको सुननेवाले (अग्नये मन्त्रं वोचेम) अग्नि देवता के अर्थ इस सूक्तके मन्त्रोंका स्तोत्र पढ़नेवाले हों ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु ।

१ २ ३ २ ३ १ २

अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीया। पूर्व्यः चिरन्तनः यः अग्निः स्नीहितीषु वधकारिणीषु कृष्टिषु शत्रुरूपासु प्रजासु जग्मानासु सुसङ्गतासु सतीषु दाशुषे हवींषि दत्तवते यजमानाय गयम् धनम् अरक्षत् रक्षति। तस्मै मन्त्रम् वोचेमेति पूर्वेण सम्बन्धः। स्नीहितीषु ष्णि स्नहने चुरादिः, स्नेहयति-इति वधकर्मसु (निघ० २, १९, १३) पठितम्, स्निह्यन्ते प्रजा आभिरिति स्नीहितयः करणे तितुत्रेष्वग्रहादीनाम् (७, २, ९ वा)—इति वचनात् निगृहीतिर्निपतितिवद्दिडागमः व्यत्ययेनैकारस्य ईकारः, किनो दीर्घश्च, नित्वादाद्युदात्तत्वम्। सञ्जग्मानासु—समोगमि (१, ३, २९)—इत्यात्मनपदम्, लिटः कानच्, गमहनत्यादिनोपधालोपः। अरक्षत्—छन्दसि लङ्लुङ्लिटः (३, ४, ६)—वर्त्तमाने लङ् ॥ २ ॥

(पूर्व्यः यः) चिरकालीन जो अग्नि (स्नीहितीषु कृष्टिषु जग्मनासु) वध करनेवाली शत्रुरूप प्रजाओंके इकट्ठी होने पर (दाशुषे गयम् अरक्षत्) हवि देने वाले यजमानके निमित्त धनकी रक्षा करता है ॥ २॥

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः ।

३ २उ ३ १ २

उतास्मान्पात्वꣳहसः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। सः अग्निः न अस्माकं वेदः धनम् अमात्यम्। अंतिके भवं सहभूतं वा रक्षतु शत्रोः सकाशात् पालयतु। कीदृशः? शन्तमः सुखतमः उत अपि च अस्मान् वसिष्ठान् अंहसः पापात् पातु रक्षतु। शन्तमः—वभ्वतः—इति पाठौ ॥ ३ ॥

(शन्तमः सः अग्निः) परम कल्याणरूप वह अग्नि (न वेदः अमात्यं रक्षतु) हमारे धनकी शत्रुओंसे रक्षा करे (उत अस्मान् अंहसः प्रातु) और हमारी पापसे रक्षा करे ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २३ २३ १२३१ २
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
३ १ २र
धनञ्जयो रणे रणे ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । अग्निः उदजनि अरण्योः सकाशात् उत्पन्नः उत अनन्तरं जन्तवः जाताः सर्वे ऋत्विजः ब्रुवन्तु तमग्निं स्तुवन्तु । कीदृशोऽग्निः ? वृत्रहा वृत्राणामावरकाणां शत्रूणां हन्ता रणेरणे सर्वेषु संग्रामेषु धनञ्जयः शत्रुधनानां जेता संज्ञायां (३, २, ४६)–इति खच्, अरुर्द्विषदजन्तस्य (६, ३, ६७)–इति मुम्, चित्स्वरेणान्तोदात्तः । रणेरणे-रणन्ति दुन्दुभयोऽस्मिन्निति रणः संग्रामः वशिरण्योरुपसंख्यानम् (३, ३, ५९ वा०) इत्यप्, नित्यवीप्सयोः (८, १, ४)—इति द्विर्वचनम्, आम्रेडितानुदात्तत्वम् ॥ ४ ॥

(वृत्रहा) शत्रुनाशक (रणे रणे धनञ्जयः) प्रत्येक संग्राम में शत्रुओंके धनको जीतने वाला (अग्निः उदजनि) अग्नि अरणियोंमें से प्रकट हुआ (उत जन्तवः ब्रुवन्तु) तदनन्तर सकल ऋत्विज उस अग्निकी स्तुति करें ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्ने युंक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अरं वहन्त्याशवः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथाग्ने युङ्क्ष्वाहीति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे देव ! द्योतमानाग्ने ! तान् अश्वान् युङ्क्ष्व आत्मीये रथे योजय । ये तव त्वदीयाः साधवः साधकाः सुशीला वा अश्वासः अश्वाः आशवः शीघ्रगामिनः सन्तः अरम् अलम् पर्य्याप्तं त्वदीयम् रथम् वहन्ति हि खलु । तानश्वान् रथे युङ्क्ष्वेत्यर्थः । युंक्ष्व—युङ्क्ष्वा—इति पाठौ, आशवः मन्यवः—इति च ।

(अग्ने देव) हे अग्निदेव ! (ये तव साधवः अश्वासः) जो तुम्हारे सुशील घोड़े (आशवः अरं वहन्ति) शीघ्रगामी होकर पूर्ण रूप से तुम्हारे रथको पहुंचाते हैं (हि युंक्ष्व) उनको ही अपने रथ में जोड़ो ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयाꣳसि वीतये।
२ ३ १ २र
आ देवांत्सोमपीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने! नः अस्मान् अच्छ आभिमुख्येन याहि आगच्छ, तथा प्रयांसि हविर्लक्षणान्यन्नानि अभि लक्ष्य देवान् आवह किमर्थम्? वीतये तेषां हविर्भक्षणार्थं, तथा सोमपीतये सोमपानार्थञ्च।

हे अग्ने! (नः अच्छ याहि) हमारे अभिमुख आओ (वीतये सोम पीतये) हविभक्षण करने को और सोमपान करनेको (प्रयांसि अभि देवान् आवह) हविरूप अन्नोंकी ओरको देवताओंका आवाहन करो।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
२ ३ १ २
शोचा वि भाह्यजर ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे भारत! हविषां भर्त्तरग्ने! उत् शोच उद्गततरं दीप्यस्व। तदेव विवृणोति—हे अजर! जरारहिताग्ने! दविद्युतत् भृशं द्योतमानस्त्वं द्युमत् द्युमता दीप्तिमता सुपां सुलुगिति (७, १, ३९) तृतीयालुक् अजस्रेण अविच्छेदेन तेजसा वि भाहि विशेषेण प्रकाशयस्व यद्वा भातिरन्तर्णीतण्यर्थः। त्वं प्रथममुद्दीप्यस्व पश्चादात्मीयेन तेजसा सर्वं जगत् प्रकाशयेति योजनीयम ॥ ३ ॥

(भारत अग्ने उत् शोच) हे यजमानोंका भरण करने वाले अग्निदेव! ऊँचे होकर प्रज्वलित हूजिये (अजर दविद्युतत्) हे जरारहित अग्ने अत्यन्त द्योतमान तुम (द्युमत् अजस्रेण विभाहि) दीप्तिमान् अविच्छिन्न तेजसे विशेष रूपसे सकल जगत्को प्रकाशित करो ॥३॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अप श्वानमराधसꣳ हता मखं न भृगवः ॥१॥

ऋ० वाश्यप्रजापतिः। छ० अनुष्टुप्। दे० सोमः। अथ प्रसुन्वाना येति तृचात्मकम् तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। सुन्वानाय सुन्वानस्याभिषूयमानस्य अंधसः अदनीयस्य सोमस्य तत् प्रसिद्धं वचः वचनम् घोषं मर्त्तः मारकः कर्म्मविघ्नकारी श्वा न वष्ट वश कान्तौ (अदा०

प० इति धातुः न कामयतां न शृणोत्विति यावत्। यथा हे स्तोतार अराधसं साधकधर्म्मरहितं तं श्वानम् अपहत। तत्र दृष्टान्तः मखं न यथा पुरा अपराद्धं मखम् एतन्नामानं भृगवः अपहतवन्तः तथा अपहतेत्यर्थः। सुन्वानाय सुन्वानस्य-इति पाठौ वष्ट वृत इति च ॥ १ ॥

(सुन्वानाय अंधसः) अभिषव किये जाते हुए भोजन योग्य सोम के (तत् वचः मर्त्तः न वष्ट) उस प्रसिद्ध शब्द को कर्म में विघ्न करने वाला श्वान न सुनै। हे स्तोताओं ! (अराधसं श्वानं अपहत) साधकता रहित उस श्वानको मारो (भृगवः मखं न) जैसे भृगुओंने अपराधी मखको मारा था ॥ १ ॥

२ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र
आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २ २
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥२॥

अथ द्वितीया। जामिः बन्धुभूतो देवानां सोमः अत्के आच्छादके पवित्रे आ अव्यत आवृणोति सम्बद्धो भवति। तत्र दृष्टान्तः भुजे न यथा ओण्योः रक्षकयोः मातापित्रोः भुजे पुत्रः आवृणोति तद्वत ततः सोऽयं सोमो योनिं स्वस्थानभूतं कलशम् आसदम् आसत्तुं सरत् सरति। तत्र दृष्टान्तद्वयम् जारो न यथा जारो योषणाम् असतीं स्त्रियं प्राप्तं सरत् सरति यथा वा वरः कन्यां प्राप्तुम् गच्छति तद्वत् ॥ २ ॥

(जामिः अत्के आ अव्यत्) देवताओंका बंधुरूप सोम दशापवित्र में सम्बद्ध होता है (ओण्योः भुजे पुत्रः न) जैसे रक्षक माता पिता के भुजाओं में पुत्र आबद्ध होता है। तदनन्तर यह सोम (योनिं आसदम्) अपने स्थान कलश में प्राप्त होनेको (सरत्) जाता है (जारः योषणां न) जैसे जार पुरुष व्यभिचारिणी स्त्रीको पानेके लिये जाता है (वरः न) जैसे वर कन्याको प्राप्त करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥३॥

अथ तृतीया। दक्षसाधनः बलसाधनः सः सोमः वीरः समर्थो भवति यः सोमः रोदसी द्यावापृथिव्यौ वि तस्तम्भ स्वतेजसा व्यस्तम्नात् आच्छादयदित्यर्थः। किञ्च हरिः हरितवर्णः सोमः वेधा न यथा

विधाता यजमानः स्वगृहमासीदति तद्वत् योनिं स्वस्थानम् कलशम् आसदम् आसत्तुम् पवित्रे अव्यत आवृणोत् सम्बद्धो भवति ॥ ३ ॥

(दक्षसाधनः सः वीरः) बलका साधन वह सोम शक्तिमान् है (यः रोदसी वितस्तम्भ) जिस सोमने द्यावापृथिवीको अपने तेज से आच्छादित किया (वेधाः न) जैसे यजमान अपने घरको प्राप्त होता है तैसे ही (हरिः योनिं आसदम्) हरे वर्णका सोम अपने स्थान कलशमें प्राप्त होनेको (पवित्रे अव्यत) दशापवित्रमें संबद्ध होता है ३

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य प्रथमः खंडः समाप्तः

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि

३ १ २ ३ १ २

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

ऋ० सोभरिः । छ० ककुप् । दे० इन्द्रः । अथ द्वितीय खण्डे-अभ्रातृव्य इति प्रगाथात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे इन्द्र ! त्वं जनुषा जन्मनैव अभ्रातृव्यः व्यन् सपत्ने (४, १, १४५),—इति व्यन् प्रत्ययः सपत्नरहित इत्यर्थः अना अनेतृकः ऋतश्छन्दसि (५, ४, १५८)-इति कपः प्रतिषेधः अनियन्तृक इत्यर्थः, अनापिः बन्धुवर्जितश्च सनादसि चिरादेव भ्रातृव्यादिवर्जितोऽसि, यत्र त्वया आपित्वं बान्धवम् इच्छसे इच्छसि, तत्र युधेत् युद्धेनैव युद्धं कुर्वन्नेव स्तोतॄणां सखा भवसि ॥ १ ॥

(इंद्र त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः) हे इंद्र ! तू जन्मसे ही शत्रु रहित (सनात् अना अनापिः असि) सदाकालसे नियंता रहित और बंधुरहित है और जब तू (आपित्वं इच्छसे) बांधवको चाहता है तब (युधेत्) युद्ध करता हुआ ही स्तोताओंका सखा होता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र

न की रेवन्तᳪ सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः

२ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २

यदा कृणोषि नदनुᳪ समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥२॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! रेवतं केवलधनवन्तं यागादिरहितमयष्टारमाढ्यं मानवं सख्याय सखिभावाय न किः विन्दसे न लभसे नाश्रयसीत्यर्थः ! अयष्टारो जनाः किं संतीत्यत आह—सुराश्वः टु ओ श्वि गतिवृद्ध्योः सुरया वृद्धाः तद्वत् प्रमत्ताः नास्तिकाः । हे त्वां पीयन्ती

पीयतिर्हिंसाकर्मा हिंसन्ति तन्नाश्रयतीत्यर्थः। यदा त्वं नदनुं नद अव्यक्ते शब्दे (भ्वा० प०) यं स्तोतारं कृणोषि मदीयोऽयमिति यदा भावयसि तदानीं समूहसि संवहसि धनादिकं तस्मै ददासि। आदित् अनन्तरमेव तेन लब्धधनेन स्तोत्रा पिता इव पालयिता जनक इव हूयसे स्तुतिभिराहूयसे स्तूयस इत्यर्थः ॥ २ ॥

(रेवंतं सख्याय न किः विन्दसे) हे इंद्र! केवल धनवान् अर्थात् यज्ञादि न करनेवाले मनुष्यको तू सखाभावके लिये आश्रय नहीं करता है (सुराश्वः ते पीयन्ति) सुरा पीकर मतवाले हुए नास्तिकोंकी समान वह यज्ञादि न करनेवाले पुरुष तुम्हें अप्रसन्न करते हैं। इस कारण तुम उनका आश्रय नहीं करते हो (यदा नदनुं कृणोषि) जब तुम स्तुति करनेवालेको अपना कर लेते हो। तब (समूहसि) उसको धन आदि देते हो (आदित् पिताइव हूयसे) तदनंतर उस धन पानेवाले स्तोताके द्वारा पिताकी समान स्तुतियोंके द्वारा आह्वान किये जाते हो

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये १

ऋ०मेधातिथिः मेध्यातिथिः वा । आत्वासहस्रमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे इंद्र! त्वा त्वां सहस्रं सहस्रसंख्याकाः हरयः त्वदीया अश्वाः आ वहन्तु आनयन्त्वस्मद्यज्ञं तथा शतं शतसंख्याकाश्च भवदीयाश्वाः त्वामावहन्तु यद्यपि द्वावेवास्य हरी तथापि तद्विभूतयोऽन्येऽपि वहवोऽश्वाः सन्ति। ननु युगपदनेकैरश्वैः कथं वाहयितुं शक्यत इत्यत आह—युक्ता इति हिरण्यये स्वर्णविकारे हिरण्यशब्दाद् विकारार्थे विहितस्य मयटः ऋत्व्यवास्त्व्य (६, ४, १७५)-इत्यादौ मलोपो निपात्यते तादृशे रथे युक्ताः-सम्बद्धाः बहूनामश्वानां शीघ्रगमनाय रथे नियुक्तत्वाद् युगपदेव सर्वैरश्वैर्गन्तुं शक्यत इति भावः। कीदृशा हरयः ब्रह्मयुजः ब्रह्मणा परिवृढेन्द्रेन युक्ताःयद्वा ब्रह्मणास्मदीयेन स्तोत्रेण अस्माभिर्दत्तेन हविषा वा युक्ताः केशिनः केशाः सटाः तैर्युक्ताः। किमर्थम इंद्रस्य वहनम्? तत्राह—सोमपीतये—सोमस्य पानाय यथास्मदीयं सोमं पिबेत तथा वहन्त्वित्यर्थः १

(इंद्र) हे इंद्र (ब्रह्मयुजः केशिनः) हमारे दिये हुए हविसे युक्त और ग्रीवा पर केशोंवाले (हिरण्यये रथे युक्ताः) सुवर्णके रथमें जुड़े

हुए (सहस्रं शतं हरयः) सहस्रों और सैकड़ों विभूतियोंसे युक्त तुम्हारे अश्व (सोमपीतये त्वा वहन्तु) सोमको पीनेके लिये तुम्हें हमारे यज्ञमें लावें ॥ १ ॥

२ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विचक्षणस्य
३ १ २
पीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । पूर्वं हर्यो विभूतिरूपा अश्वाः इंद्रमावहन्त्विति प्रार्थितम् अधुना तावेवेन्द्रमावहतामिति प्रार्थ्यते–हिरण्मये रथे युक्तौ मयूरशेप्या मयूरवर्णः शेपो ययोस्तौ सुपां सुलुगिति (७, ३, ३९) विभक्तेर्डादेशः शितिपृष्ठा श्वेतपृष्ठौ एवम्भूतौ हरी अश्वौ हे इंद्र ! त्वा त्वाम् आ वहताम् । किमर्थम् ? मध्वः मधुररसस्य विचक्षणस्य वक्तुमिष्टस्य स्तुत्यस्य यद्वा वोढव्यस्य प्राप्तव्यस्य अन्धसः अन्नस्य सोमरूपस्य पीतये पानार्थम् ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (मध्वः विचक्षणस्य अन्धसः पीतये) मधुर रसवाले स्तुति योग्य सोमको पीनेके लिये (हिरण्यये रथे) सुवर्णके रथमें जुड़े हुए (मयूरशेप्या शितिपृष्ठा हरी) मोरकी समान चित्रवर्ण की पूँछ और श्वेत पीठवाले घोड़े (त्वा आवहताम्) तुम्हें यज्ञमें पहुँचावें

२ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इवः ।
१ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २उ ३ १ २
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ३

अथ तृतीया । हे गिर्वणः ! गीर्भिर्वननीय ! स्तुतिभिः सम्भजनीयेंद्र सुतस्य अभिषुतस्यास्य सोमस्य क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (२, ३, ६२) इममभिषुतं सोमं नु क्षिप्रं पिब । तत्र दृष्टांतः—पूर्वपा इव पूर्वः सर्वेभ्यो देवेभ्यः प्रथमभावी सन् पिबतीति पूर्वपा वायुः सह्यैन्द्रवायवे मुख्ये ग्रहे सर्वेभ्यो देवेभ्यः पूर्वं पिबति यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम्–इति निगमांतरम् तादृशः वायुरिव त्वमपि सर्वेभ्यः देवेभ्यः पूर्वं पिबेत्यर्थः । कीदृशस्य ? सोमस्य परिष्कृतस्य अभिषवादिभिः संस्कृतस्य सम्पर्युपेभ्यः (६, १, १३८)

इति करोतेर्भूषणे सुट् परिनिभ्यः (८, ३, ७०)—इति सुटः षत्वम् रसिनः रसवतः अपि च इयमासुतिः अयमासवो मदकरः चारुः शोभनः सोमरसः मदाय हर्षाय हर्षजननाय पत्यते समर्थते पत्लृ गतौ (भ्वा० प०) यद्वा पत्यतिरैश्वर्यकर्मा। मदाय-मदस्य पत्यते ईष्टे मदोत्पादने शक्त इत्यर्थः ॥ ३ ॥

(गिर्वणः) हे वेदमंत्रोंसे स्तुति करने योग्य इंद्र ! (परिष्कृतस्य रसिना सुतस्य अस्य नु पिब) अभिषवादि से संस्कार किये हुए रसयुक्त सिद्ध कियेहुए इस सोमको शीघ्र पियो (पूर्वपाः इव) जैसे कि-वायु सब देवताओंसे पहिले पीता है (चारुः इयमासुतिः) सुन्दर यह सोमरस (मदाय पत्यते) हर्ष उत्पन्न करनेको समर्थ है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरꣳ
३ १ २ ३ १ २
रजस्तुरम् । वनप्रक्षमुदप्रुतम् ॥ १ ॥

ऋ० ऋजिश्वा । छं० ककुप् प्रगाथः । दे० सोमः । अथ आसोतेति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे ऋत्विजः ! आसोत सोमम् अभिषुणुत षु अभिषवे (स्वा० उ०) लोटि छान्दसो (२, ४, ७२) विकरणस्य लुक्, तप्तनप्तनथनाश्च (७, १, ४५)-इति तस्य तबादेशः किञ्च, परिषिञ्चत परितस्तं वसतीवर्यादिभिः सिञ्चत । कीदृशम् ? अश्वं न अश्वमिव वेगिनं स्तोमं स्तोतव्यम्, अप्तुरम् अन्तरिक्षस्थितानामुदकानां प्रेरकम् रजस्तुरं तेजसां च प्रेरकम्, वनप्रक्षम् उदकवत् क्षरणशीलम्, उदप्रुतम् उदके गच्छन्तं प्लवमानं सोममभिषुणुत अभिषिञ्चत च । वनप्रक्षं-वनऋक्षम्—इति पाठौ ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो (अश्वं न) घोड़ेकी समान वेगवान् (स्तोमं अप्तुरम्) स्तुति योग्य और जलोंके प्रेरक (रजस्तुरं वनप्रक्षम्) तेजोंके प्रेरक और जलकी समान बहने वाले (उदप्रुतं आसोत) जलमें तैरते हुए सोमको शुद्ध करो (परिषिञ्चित) और चारों ओरसे वसतीवरी आदि के द्वारा सींचो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं

३ २
बृहत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सहस्रधारं बहुधारोपेतं, वृषभं कामानां वर्षकं, पयोदुहं क्षीरवत् सारभूतं रसं सिञ्चन्तं प्रियं प्रीणयितारं तं सोमं देवाय देवसम्बन्धिने जन्मने देवेभ्यस्तदर्थम् अभिषुणुत । ऋतजातः उदकाज्जातः यः राजा सोमः ऋतेन वसतीवर्याख्येनोदकेन वि वावृधे विशेषेण वर्द्धते । कीदृशः? देवः द्योतमानः स्तोतव्यो वा ऋतं सत्यभूतः बृहत् महान् । तमासुनुतेति पूर्वेण समन्वयः । पयोदुहम्–पयोवृधम्—इति पाठौ ॥ २ ॥

(सहस्रधारं वृषभम्) अनेकों धाराओं वाले और मनोरथोंके पूरक (पयोदुहं प्रियम्) दूधकी समान साररूप रसको सींचनेवाले और तृप्त करनेवाले सोमको (देवाय जन्मने) देव शरीरोंके अर्थ संस्कृत करो (देवः ऋतम्) दिव्य और सत्यस्वरूप (बृहत् ऋतजातः) महान् और जलसे उत्पन्न हुआ (यः राजा ऋतेन विवावृधे) जो सोम वसतीवरी नामक जलसे विशेष बढ़ता है ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
१ २ ३ १ २र
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ तृतीयखण्डे अग्निर्वृत्राणीति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । विपन्यया सुस्तूयमानः द्रविणस्युः द्रविणं धनं स्तोतृणामिच्छन् यद्वा, हविर्लक्षणं धनमात्मनः इच्छन् अग्निः वृत्राणि आवरकाणि रक्षः प्रभृतीनि तमांसि वा जंघनत् भृशं हन्तु । कीदृशोऽग्निः? समिद्धः सम्यक् दीप्तः अतएव शुक्रः शुक्रवर्णः आहुतः हविर्भिरभिहुतः ॥ १ ॥

(समिद्धः शुक्रः) सम्यक् प्रकार प्रज्वलित और श्वेतवर्णका (आहुतः विपन्यया) हवियोंसे होमा हुआ और स्तुति किया जाता हुआ (द्रविणस्युः अग्निः) स्तोताओंको धन देना चाहता हुआ अग्नि (वृत्राणि जंघनत्) राक्षसादि शत्रुओंका वा अन्धकार और अज्ञान कासम्यक् प्रकार नाश करै ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।

१२ ३२३ २ ३२
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अत्र मातृपितृशब्दाभ्यां भूद्यौश्चाभिधीयेते द्यौः पिता, पृथिवी माता इति श्रुतिः मातुः भूम्याः गर्भे गर्भस्थाने मध्ये अक्षरे क्षरणरहिते वेद्याख्ये स्थाने वि दिद्युतानः विशेषेण दीप्यमानः पितुः पिता द्युलोकस्य पालयिता हविषां प्रदानेन, एवम्भूतोऽग्निः ऋतस्य यज्ञस्य योनिम् उत्तरवेद्याख्यं धिष्ण्यं सप्तम्यर्थे द्वितीया (३, १, ८५) आसीदन् उत्तरवेद्यामुपविशन् अग्निर्वृत्राणि जंघनदित्यन्वयः ॥२॥

१२ ३२ ३१ २३ १२ ३ १२
ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
२ ३ २३ १२ ३२
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे जातवेदः जातानां वेदितः ! विचर्षणे विशेषेण द्रष्टः अग्ने ! प्रजावत् पुत्रपौत्रसहितं ब्रह्म अन्नम् आ भर आहर यद् ब्रह्म दिवि द्युलोके दीदयत् दीप्यते । देवेषु यत् प्रशस्तमन्नं राजते तदाहरेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(जातवेदः विचर्षणे अग्ने) हे प्राणिमात्रके ज्ञाता विशेष द्रष्टा अग्ने (प्रजावत् ब्रह्म आभर) पुत्र पौत्रादि सहित अन्न हमें दो (यत् दिवि दीदयत्) जो अन्न द्युलोकमें देवताओंके विषै शोभा पाता है ३

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः
१२ ३ १२ ३२ १ २३ १ २ ३
समपृक्त रसम् । सुतः पवित्रं पर्येति
१२ ३२३ १२ ३२ ३ १२
रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अस्य प्रेषेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । अस्य सोमस्य प्रेषा प्रेपतिर्गत्यर्थः क्विपि, रूपं, सावेकाच (६, १, १६८) इति विभक्तेरुदात्तत्वम्, प्रेरणेन, हेमना हिरण्येन पूयमानः हिरण्यपाणिरभिषुणोति इति हिरण्य-सम्बन्धः, तादृशः देवः दीप्यमानः सोमः रसम् आत्मीयं देवेभिः देवैः सह समपृक्त सम्पर्चयति संयोजयति पृची सम्पर्के (अ० आ०)

ततः सुतः अभिषुतः सोमः रेभन् शब्दायमानः सन् पवित्रम् ऊर्णास्तुकेन निर्मितं पर्य्येति परिगच्छति। कथमिव? होता देवानामाह्वाता ऋत्विक् मिता इव निर्मितान् पशुमन्ति बद्धपशून् सद्म सदनानि यज्ञगृहान् यथा पर्येति तद्वत् ॥ १ ॥

(अस्य प्रेषा हेमना) इस सोमके प्रेरक हिरण्य करके (पूयमानः देवः) पवित्र होता हुआ दीप्यमान सोम (रसं देवेभिः समपृक्त) अपने रसको देवताओंमें संयुक्त करता है। तदनन्तर (सुतः रेभन् पवित्रं पर्येति) अभिषुत सोम शब्द करता हुआ ऊनके पवित्रमेंका छन कर निकलता है (होता मिता पशुमन्ति सद्म इव) जैसे देवताओंका आह्वान करने वाला ऋत्विज, जिनमें गौ घोड़े बँधे हैं ऐसे यज्ञशालामें बनाये हुए घरोंमें जाता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ १ २ ३ २ ३ २ ३

भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान्कविर्नि-

१ २ ३ १ २ १ २ ३क २र

वचनानि शꣳसन् । आ वच्यस्व चम्वोः

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। भद्रा भद्राणि कल्याणानि समन्या समनमिति संग्रामनाम (२, १७, १६) तत्र साधुरिति यत् संग्रामयोग्यानि वस्त्रा वस्त्राणि आच्छादकानि तेजांसि वसानः आच्छादयन् महान् कविः क्रांतदर्शी अतएव निवचनानि नितरां वक्तव्यानि ऋत्विक्कृतानि स्तोत्राणि शंसन् विचक्षणः विशेषेण सर्वस्य द्रष्टा जागृविः जागरणशीलः। सोम! एवम्भूतस्त्वं देववीतौ देवानां वीतिर्भक्षणं यस्मिन् तद्देववीतिर्यज्ञः तस्मिन् चम्वोःअधिषवणफलकयोः आ वच्यस्व पात्राण्याविश वचिर्गत्यर्थः (भ्वा० प०) व्यत्ययेन श्यन् ॥ २ ॥

(भद्र समन्वा वस्त्रा वसानः) कल्याणरूप संग्रामके योग्य तेजोंको धारण कियेहुए (महान् कविः निवचनानि शंसन्) महान्, अनुभवी और ऋत्विजोंके स्तोत्रोंकी प्रशसा करता हुआ (विचक्षणः जागृविः) विशेष द्रष्टा और जागरणशील हे सोम! तू (पूयमानः) संस्कार किया जाता हुआ (देववीतौ चम्वोः आवच्यस्व) यज्ञमें पात्रोंमें प्रवेश कर ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

समु प्रियो मृज्यते सानौ अव्ये, यशस्तरो

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यशसां चैतो अस्मे। अभिस्वर धन्वा पूयमानो,

३ १ २ ३ २ ३ १ २

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। यशसां यशस्विनां मध्ये यशस्तरः अतिशयेन यशस्वी क्षैतः क्षितौ भवः प्रियः प्रीणयिता सोमः सानौ समुच्छ्रिते अव्ये अविभवे पवित्रे अस्मे अस्मदर्थं सम्मृज्यते ऋत्विग्भिः परिपूयते उ इत्यवधारणे पूयमानः त्वं धन्वा अन्तरिक्षे अभि स्वर अभितः शब्दय यूयम् पूजायां बहुवचनम् हे सोम! त्वं नः अस्मान् स्वस्तिभिः कल्याणतमैः पालनैः सदा सर्वदा पात रक्षत पालयतेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(यशसां यशस्तरः) यशवालोंमें परमयशस्वी (क्षैतः प्रियः) भूमिपर उत्पन्न हुआ और तृप्त करनेवाला सोम (सानौ अव्ये अस्मे संमृज्यते) ऊनके श्रेष्ठ पवित्रमें हमारे लिये ऋत्विजोंसे पवित्र किया जाया है (पूयमानः त्वं उ) पवित्र कियाजाताहुआ तू ही (धन्वा अभिस्वर) अन्तरिक्षमें चारों ओर शब्द कर (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) हे सोम! तू हमें कल्याणकारी रक्षाके साधनोंसे सदा रक्षा कर ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३ २ ३ १ २

एतो न्विन्द्रꣳ स्तवाम शुद्धꣳ शुद्धेन साम्ना।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाꣳसꣳ शुद्धैराशीर्वान्ममत्तु १

ऋ० तिरश्ची। छं० अनुष्टुप्। दे० इंद्रः। अथैतोन्विन्द्रमिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। अत्रेतिहासमाचक्षते-पुरा किलेन्द्रो वृत्रादिकान् असुरान् हत्वा ब्रह्महत्यादिदोषेणात्मानमपरिशुद्धमित्यमन्यत अथ तद्दोषपरिहारार्थं तदेन्द्र ऋषीनब्रवीत्-यूयमपूतं मां युष्मदीयेन साम्ना शुद्धं कुरुतेति। ततस्ते च शुद्ध्युत्पादकेन साम्ना शस्तैश्च परिशुद्धमकार्षुः। पश्चात् पूतायेन्द्राय यागादिकर्माणि सोमादीनि हवींषि च प्रादुरिति। एषोऽर्थः शाट्यायनकब्राह्मणे प्रतिपादितः इंद्रो वा असुरान् हत्वाऽपूत इवामेध्यो अमन्यत सोऽकामयत शुद्धमेव मा सन्तं शुद्धेन साम्ना स्तुयुरिति स ऋषीनब्रवीत् स्तुतमेति। तत एव ऋषयः सामापश्यन् तेनास्तुवन्नेतो न्विन्द्रमिति ततो वा इंद्रः पूतः शुद्धो मेध्योऽभवदिति। तथा च अस्या ऋचोऽयमर्थः-ऋषयः परस्परं ब्रुवन्ति—नु क्षिप्रम् एत उ आगच्छतैव। आगत्य च शुद्धेन शुद्ध्य-

त्पादकेन साम्ना तथा शुद्धैः शुद्धिहेतुभिः उक्थैः शस्त्रैश्च इंद्रम् शुद्धमपापिनं कृत्वा स्तवाम स्तुयाम । ततः साम्ना शस्त्रैश्च वावृध्वांसं पापराहित्येन वर्द्धमानं तमिममिन्द्रं शुद्धैः शुद्धयुत्पादकैर्गव्यादिभिः आशीर्वान् आश्रयणवान् छन्दसीरः (८-२, १५)-इति मतुपो वत्वम् तादृशः सोमः ममत्तु तमिंद्रं मादयतु माद्यतेश्छान्दसः (२, ४, ७६) श्लुः ॥ शुद्धैराशीर्वान् शुद्ध आशीर्वान्—इति पाठौ ॥ १ ॥

एक समय इंद्रने वृत्रादि असुरोंको मारकर अपनेको ब्रह्महत्याके दोषसे लिप्त समझा और उस समय इंद्रने उस दोषसे छूटनेके लिये ऋषियोंसे कहा, कि–तुम मुझे शुद्ध करो यही इस मंत्रमें कहा है कि (द्रु एत उ) तुम शीघ्र ही आओ और आकर (शुद्धेन साम्ना) शुद्धि उत्पन्न करनेवाले सामके द्वारा (शुद्धैः उक्थैः) शुद्ध मंत्रोंसे (शुद्धं इन्द्रं स्तवामः) शुद्ध हुए इंद्रकी स्तुति करते हैं (वावृध्वांसं) उन साम और शस्त्ररूप मंत्रोंसे पापरहित होनेके कारण बढ़े हुए इंद्रको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्धि करनेवाले गोघृतादिसे मिलाहुआ सोमका (ममत्तु) प्रसन्न करै ॥ १ ॥

१२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! शुद्धः अस्मदीयैः सामभिः शस्त्रैश्च परिशुद्धस्त्वं नः अस्मान् आ गहि आगच्छ शुद्धाभिः ऊतिभिः ऊतयो मरुतः अवन्ति सर्वत्र गच्छन्तीति वातेऽपि सामभिः शस्त्रैश्च परिपूताः तैः मरुद्भिः सह शुद्धः पापरहितः त्वम् आगहि । आगत्य च शुद्धः त्वं रयिं धनं अस्मासु निधारय नितरां स्थापय । किञ्च हे सोम्य ! सोमार्ह ! शुद्धः त्वं ममद्धि सोमेन माद्य मदी हर्षे (दि० प०) लोटि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७६)-इति शपः श्लुः ॥ ममद्धि सोम्य ममद्धि सोम्य—इति पाठौ ॥ २ ॥

(इन्द्र शुद्धः नः आगहि) हे इंद्र साम आदिसे शुद्ध हुआ तू हमारे कर्मानुष्ठानमें आ (शुद्धाभिः ऊतिभिः शुद्धः) शुद्ध मरुतोंके साथ पापरहित हुआ तू आ (शुद्धः रयिं निधारय) शुद्ध हुआ तू हमारे विषैं अधिकताकेसाथ धनको स्थापन कर (सोम्य शुद्धःममद्धि) हे सोमके योग्य इंद्र ! शुद्ध हुआ तू सोमसे हर्षको प्राप्त हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिँ शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजꣳ सिषाससि ३

अथ तृतीया । हे इंद्र ! शुद्धः हि-अवधारणे शुद्ध एव त्वं नः अस्मभ्यम् रयिं धनं प्रयच्छ । तथा शुद्धः त्वं दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय रत्नानि रमणीयानि कनकगवादीनि देहि । ततः शुद्धः पापरहितः त्वं वृत्राणि अपामावरकान् कर्मविघ्नकारिणः शत्रून् पापानि वा जिघ्नसे हंसि । ततः शुद्धः शत्रुहननदोषपरिहाराय अस्मदीयैः सामभिः शस्त्रैश्च परिशुद्धस्त्वं वाजमन्न ्मभ्यं सिषाससि प्रदातुमिच्छसि यदा यदा शत्रूनहं हन्यां तदा तदा शुद्ध्युत्पादकैः सामभिः शस्त्रैश्च यूयं मां परिशुद्धं कुरुतेत्येवमस्मभ्यं धनमन्नञ्च दातुमिच्छसीत्यर्थः ॥ ३ ॥

(इन्द्र शुद्धः हि नः रयिम) हे इंद्र ! शुद्ध हुआ तू हमें धन दे (शुद्धः दाशुष रत्नानि) शुद्ध हुआ तू हवि देनेवाले यजमानको बहुत से रत्न दे (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) पाप रहित तू कर्ममें विघ्न करने वाले शत्रुओंको नष्ट करता है (शुद्धः वाजं सिषाससि) शत्रुमारण के दोषका परिहार होनेके लिये हमारे मंत्रोंसे शुद्ध हुआ तू हमें अन्न देना चाहता है अर्थात जब २ मैं शत्रुओंको मारूँ तब २ तुम शुद्धि देने वाले मंत्रोंसे मुझे शुद्ध करो इस इच्छासे हमें धन और अन्न देना चाहता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः ।
३ १ २ ३ १ २
देवस्य द्रविणस्यवः ॥ १ ॥

ऋ० सुतम्भरः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ चतुर्थ खण्डे—अग्ने स्तोममिति तृचात्मकं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । द्रविणस्यवः द्रविणं धनमिच्छन्तो वयं दिविस्पृशः सूर्यरूपेण आकाशं व्याप्नुवतो देवस्य द्योतमानस्य अग्नेः सिद्धं पुरुषार्थानां साधकं स्तोमं स्तोत्रम् अद्य अस्मिन्नहनि मनावहे ब्रूमः ॥ १ ॥

(द्रविणस्यवः) धनकी इच्छावाले हम (दिविस्पृशः, देवस्य अग्नेः) सूर्यरूपसे आकाशमें व्यापने वाले प्रकाशवान् अग्निके (सिद्धं स्तोमम्) पुरुषार्थोंके साधक स्तोत्रको (अद्य मनामहे) आज उच्चारण करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र३ २
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा ।
१ २३२ ३ १ २
स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । होता देवानामाह्वाता होमनिष्पादको वा यः अग्निः मानुषेषु आ वसति । सः अग्निः नः अस्माकं गिरः स्तुतीः जुषत सेवताम् सः अग्निः दैव्यं जनं देवसम्बन्धिनं जनं यक्षत् यजतु ॥ २ ॥

(होता यः अग्निः मानुषेषु आ) होमको सिद्ध करनेवाला जो अग्नि मनुष्योंमें रहता है (सः नः गिरः जुषत) वह अग्नि हमारी स्तुतियों का सेवन करै (दैव्यं जनं यक्षत्) देवसंबन्धी जनका यजन करै २

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः ।
१ २ ३ १ २र
त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्न ! जुष्टः सर्वदा प्रीतः वरेण्यः सर्वैर्वरणीयः होता त्वं सप्रथाः असि सर्वतः पृथुर्भवसि तथा हि यास्कः—सप्रथाः सर्वतः पृथुः (निरु० नै० ६, ७)–इति । किञ्च सर्वे यजमानाः त्वया साधनेन यज्ञं वि तन्वते ॥ ३ ॥

(अग्ने जुष्टः वरेण्यः होता त्वम्) हे अग्ने ! सर्वदा प्रसन्न सबके वरण करनेयोग्य और होमके साधक तुम सबके बड़े हो । सब यजमान (त्वया यज्ञं वितन्वते) तुम्हारे द्वारा यज्ञानुष्ठान करते हैं ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १
वाणीः । वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि
२ ३ १ २ ३ १ २
रत्नधा दयते वार्याणि ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अभित्रिपृष्ठमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा त्रिपृष्ठं त्रीणि पृष्ठानि स्तोत्राणि सवनानि वा यस्य स तथोक्तस्तं वृषणं वर्षकं वयोधाम् अन्नस्य दातारम् अङ्गोषिणम् आघोषवन्तं सोममभिलक्ष्य वाणीः स्तोतॄणां

वाचः अभ्यवावशन्त शब्दयन्ते । वना धनानि उदकानि वसानः आच्छादयन् वरुणो न वरुणो यथा सिन्धूनाच्छादयति तद्वत् । सिन्धुः स्यन्दनशीलः रत्नधाः रत्नानां दाता सोमः वार्याणि धनानि दयते प्रयच्छति स्तोतृभ्यः । अङ्गोपिणम् अंगूषाणाम्-इति पाठौ, सिन्धुः—सिन्धून्—इति च ॥ १ ॥

(त्रिपृष्ठं वृषणम्) तीन स्तोत्रवाले और कामनाओंकी वर्षा करने वाले (वयोधां अङ्गोपिणम्) अन्नके दाता और शब्द करनेवाले सोम की ओरको (वाणीः अभ्यवाशन्त) स्तोताओंकी वाणियें शब्द करती हैं (वरुणः न) वरुणकी समान (वना वसानः) जलोंको आच्छादन करताहुआ (सिन्धुः रत्नधाः वहनेवाला और रत्नोंका दाता सोम (वार्याणि दयते) स्तोताओंको धन देता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनि-

३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १

ता धनानि । तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्

२र ३ १ २र ३ १ २

स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वं पवस्व । कीदृशस्त्वम् ? शूरग्रामः शूराणां ग्रामः संघो यस्य सः सर्ववीरः सर्वे वीराः यस्य स तथोक्तः सहावान् सहस्वान् जेता जयशीलः सनिता सम्भक्ता धनानि धनानां तिग्मायुधः तीक्ष्णप्रहरणसाधनः, क्षिप्रधन्वा क्षिप्रसहनशीलधन्वा, समत्सु संग्रामेषु अषाढः, असोढा, साह्वान् अभिभवन् । कुत्र ? पृतनासु शत्रुसेनासु । कान् ? शत्रून् ॥ २ ॥

(शूरग्रामः सर्ववीरः) शूरोंके समूह और अनेकों वीरोंवाला (सहावान् जेता) सहनशील और शत्रुओंको जीतनेवाला (धनानि सनिता) धनोंका देनेवाला (तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा) तीखे आयुध और शीघ्रता करनेवाले धनुषवाला (समत्सु अषाढः) संग्रामोंमें किसीसे सह्य न होनेवाला (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) सेनाओंमें शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला हे सोम तू (पवस्व) द्रोणकलशमें वरस ॥ २ ॥

३१ २ ३१२ ३ १ २ ३१

उरु गव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ-

२र ३ १२र ३ १ २र ३ २ ३ २

पवस्वा पुरन्धी । अपः सिषासन्नुषसः स्वा३-

१ २ ३२ ३ २ ३ १ २
३ गाः, संचिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥३॥

अथ तृतीया। हे सोम! उरुगव्यूतिः विस्तीर्णमार्गः त्वम् अभयानि स्तोतृभ्यः कृण्वन् कुर्वन्, पुरन्धी इमे द्यावापृथिव्यौ समीचीने सङ्गते कुर्वन्, आ पवस्व आक्षर अपः उषसः स्वः आदित्यं गाः रश्मींश्च सिषासन् पुष्ट्यर्थं सम्भक्तुमिच्छन् सञ्चिक्रदः संक्रन्दसे। महः महतः महान्ति वाजानि अन्नानि अस्मभ्यं दातुमिति शेषः॥ ३॥

हे सोम! (उरुगव्यूतिः) विस्तीर्ण मार्गवाला तू (अभयानि कृण्वन्) स्तुति करनेवालोंको अभय देताहुआ (पुरन्धी समीचीने कुर्वन् आपवस्व) इन द्यावापृथिवीको सङ्गत करताहुआ वरस (अपः उषसः स्वः गाः सिषासन्) जल उषा सूर्य और किरणोंको पुष्टिके लिये सेवन करना चाहता हुआ (संचक्रदः) शब्द कर (महः वाजान् अस्मभ्यम्) वहुतसे अन्न हमें दे॥ ३॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः। त्वं
३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वृत्राणि हꣳस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः १

ऋ० नृमेधः पुरुमेधो वा। छ० बृहती। दे० अश्विद्वयम्। अथ त्वमिन्द्रेति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे इन्द्र! त्वं शवसस्पतिः शवसोऽन्नस्य बलस्य वा पालयिता, ऋजीषी ऋजीषोऽभिषुतः सोमः तद्वान्, त्वं यशा असि यशस्वी भवसि। कथमस्य यशस्वित्वं? तदाह–अप्रतीनि बलिभिरपि अप्रतिगतानि वृत्राणि रक्षांसि अनुत्तः अन्यैर्नोदितुमशक्यः त्वम् एक इत् एकएव असहाय एव चर्षणीधृतिः रक्षितृत्वेन यजमानादिमनुष्याणां धारकः पुरु बहुलं यथा भवति तथा हंसि सम्प्रहरसि। अतएव अस्य यशस्वित्वम्। शवसस्पतिः—शवसस्पते—इति पाठौ, एक इत्पूर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः—एकइद्नुत्ताचर्षणीधृता—इति च॥ १॥

(इन्द्र त्वम्) हे इन्द्र तू (शवसस्पतिः ऋजीषी) अन्न और बल की रक्षा करनेवाला तथा संस्कार कियेहुए सोमका स्वामी (यशा असि) और यशस्वी है (अनुत्तः चर्षणीधृतिः त्वम्) किसीसे न दबने वाला और यजमानादिकी रक्षा करके धारण करनेवाला तू (एक इत्) किसी की सहायताके विना ही (अप्रतीनि वृत्राणि पुरु-हंसि) वड़ेर बलवान् भी असह्य शत्रुओंको अधिकताके साथ मारता है

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसꣳ राधो भागमिवेमहे ।
३ २ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नुवन् २

अथ द्वितीया । हे असुर ! बलवन् ! प्राणवन् ! वा हे इंद्र ! उक्तगुणोऽस्ति तं च प्रचेतसं प्रकृष्टज्ञानं त्वा उ इत्यवधारणे पितृवत् पोषकं त्वामेव राधः धर्म्मादिसाधनं धनं, नूनम् इदानीम् ईमहे याचामहे तत्र दृष्टांतः भागमिव यथा कश्चित् पितृतो भागभूतं धनं याचते, तद्वत् इन्द्रो यजमानेभ्यः स्तोतृभ्यश्च धनं प्रयच्छत्येव तस्मात् भागभूतं धनं यष्टारो वयं याचामहे । किञ्च हे इन्द्र महीव कृतिः कृत यशोऽन्नं वा कृती छेदने (रु०५०) करणे क्तिन् । कृन्तन्त्यनेनेति ईदृशी कृत्तिरिव ते तव शरणा शरणं गृहम् अन्तरिक्षं द्युलोके महद् वर्त्तते अत्र यास्कः कृतिः कृन्ततेर्यशो वान्नं वा । महीव कृतिः शरणा त इन्द्र सुमहत्त इंद्र शरणमन्तरिक्षे कृत्तिरिव (निरु० नै० ५, २२)इति । किञ्च ते तव स्वभूतानि सुम्ना सुम्नानि पुत्रादि विषयसुखानि च नः अस्मान् प्राश्नुवन् प्रकर्षेणाश्नुवतां व्याप्नुवन्तु अश्नोतेर्लेटयडागमः (३, ४, ९४) ॥ २ ॥

(असुर इन्द्र) हे बलवान् इन्द्र ! (तं प्रचेतसं त्वा उ) ऐसे गुणों वाले और श्रेष्ठ ज्ञानवाले तुमसे ही (भागं इव) जैसे कोई अपने पिता से अपने भागका धन मांगता है तैसे ही हम (राधः नूनम् ईमहे) धन इस समय मांगते हैं (कृत्तिः इव) यश वा अन्नकी समान (ते मही शरणा) तेरा महान् स्थान द्युलोकमें है (ते सुम्नानः प्राश्नुवन्) तुम्हारे पुत्रादि विषयके सुख हमें प्राप्त हों ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
१ २ ३ २ २ ३ १ २
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

ऋ० सोभरिः । छ० ककुप् । दे०अग्निः । यजिष्ठन्त्वेति प्रगाथात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे अग्ने! यजिष्ठं यष्टृतमं त्वा त्वां ववृमहे वृणीमहे सम्भजामहे । कीदृशं त्वाम् देवत्रा देवेषु मध्ये देवम् अतिशयेन दानादिगुणकम् होतारं देवानामाह्वातारम् अमर्त्यम् अविनाशनम् अस्य यज्ञस्य यागस्य सुक्रतुं सुष्ठु कर्त्तारम् ॥ १ ॥

हे अग्ने (देवेषु देवम्) देवताओंमें अधिकतर दानी (होतारं अम-

त्यम्) देवताओंका आह्वान करनेवाले और अविनाशी (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस यज्ञके श्रेष्ठ कर्ता (यजिष्ठं त्वा वच्महे) परम यष्टा तेरी हम भक्ति करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अपां नपातᳪं सुभगᳪं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठ-
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३२उ
शोचिषम् । स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा
३ १ २ ३ २
सुम्नं यक्षते दिवि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। ऊर्जः अन्नस्य नपातं न पातयितारं यद्वा नप्तारं चतुर्थं हविर्लक्षणेनान्नेन आपः जायंते अद्भ्यश्चौषधय औषधिभ्यो वनस्पतयस्तेभ्य एव जायत इति चतुर्थत्वम्। नभ्राण्नपात् (६, ३, ७५)— इति नञ् प्रकृतिभावः सुभगं शोभनधनं सुदीदितिं सुष्ठु दीदयन्तं श्रेष्ठशोचिषं प्रशस्यतमतेजस्कम् अग्निं स्तौमीति शेषः। स तादृशोऽग्निः नः अस्मदर्थम् दिवि द्योतमाने देवयजने द्युलोके वा मित्रस्य देवस्य वरुणस्य च सुम्नम् सुखम् आ अभिलक्ष्य यक्षते यजतु। तथा सोऽग्नि अपाम् अब्देवतानाञ्च सुम्नमभियजतु ॥ २ ॥

(अपां नपातम्) जलोंका पतन न करनेवाले अथवा हविसे जल, जलसे वनस्पति और वनस्पति से अग्नि होता है इस प्रकार जलों के पौत्र समान (सुभगं सुदीदितम्) श्रेष्ठ धन और सुन्दर दीप्ति वाले (श्रेष्ठशोचिषं अग्निं उ) श्रेष्ठ ज्वाला वाले अग्नि की हम प्रार्थना करते हैं (सः नः) वह अग्नि हमारे लिये (दिवि मित्रस्य वरुणस्य द्युम्नम् यक्षते) देवयजन भूमि में मित्र और वरुण देवता के सुख के लिये यजन करे (सः अपाम्) वह अग्नि जल देवताके सुख के लिये भी यजन करे ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः खंडः समाप्तः

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
२उ ३ १ २ ३ १ २
स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः। छ० गायत्री। दे० अग्निः। अथ पञ्चमखण्डे—यम-इति तृचात्मकम् प्रथमम् सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे अग्ने! पृत्सु संग्रा—

मेषु यं मर्त्य यजमानम् अवाः अवसि रक्षसि यं पुरुषं वाजेषु संग्रामेषु जुनाः प्रेरयसि सः नरः यजमानः शश्वतीरिषः नित्यान्यन्नानि यन्ता नियन्तुं समर्थो भवति पृत्सु—पद्दादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम् (६, १, ६३)—इति पृतनाशब्दस्य पृदादेशः सावेकाच (६, १, १६८) इति विभक्तेरुदात्तत्वम्। अवाः–आवः–अकाराकारयोर्विपर्ययः यद्वा लेट्य-डागमः इतश्च (३, ४, ९७)–इति सिप इकारलोपः। जुनाः––जु इति गत्यर्थः सौत्रो धातुः लङ् सिप्क्रयादिभ्यः श्नाः बहुलञ्छन्दस्यमाङ्—योगेऽपि (६, ४, ७५)–इत्यडागमाभाव यद्वृत्तयोगात् (८, १, ३०) अनिघातः यन्ता–तृन। निस्वादाद्युदात्तत्वम् (६, १, १९७)। शश्वतीः उगितश्च (४, १, ६)–इति ङीप् ॥ १ ॥

(अग्न पृत्सु यं मर्त्यं अवाः) हे अग्निदेव ! संग्रामोंमें जिस यजमान की तुम रक्षा करते हो (वाजेषु यं जुनाः) संग्रामोंमें जिस पुरुष को प्रेरणा करते हो (सः) वह यजमान (शश्वतीः इषः यन्ता) नित्य अन्नोंको वशमें कर सकता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र

न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्।

१ २ ३ १ २

वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे सहन्त्य ! शत्रूणामभिभवनशीलाग्ने ! अस्य त्वद्भक्तस्य यजमानस्य कयस्यचित कस्यापि पर्येता नकिः आक्रमिता नास्ति। किञ्चास्य यजमानस्य श्रवाय्यः श्रवणीयः वाजः अस्ति बल-विशेषोऽस्ति कयस्य—यकारोपजनश्छन्दसः। श्रवाय्यः श्रुदक्षिस्पृहि-गृहिभ्य आय्यः—इत्याय्यप्रत्ययः ॥ २ ॥

(सहन्त्य) हे शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले अग्ने ! कस्य कयस्यचित् पर्येता नकिः) ऐसे किसी भी यजमान पर आक्रमण करने वाला कोई नहीं है और इस यजमानका (श्रवाय्यः वाजः अस्ति) श्रवण करने योग्य सुन्दर बल है ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३१ २ ३ १ २

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता।

१ २ ३ १ २

विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। विश्वचर्षणिः सर्वैर्मनुष्यैरुपितः सः अग्नि अर्वद्भिः अश्वै वाज संग्रामं तरुता तारयिता अस्तु विप्रेभिः मेधाविभिः ऋत्वि

ग्भिः सहितः तुष्टोऽग्निः सनिता फलस्य दाता अस्तु विश्वचर्षणिः विश्वे चर्षणयः अस्य बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६, २, १०६) इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् । अर्वद्भिः—ऋ गतौ (भ्वा० प०) अन्येभ्योऽपि दृश्यते (३, २, ७५—इति वनिप् भिसि अर्वणस्त्रसावनञः (६, ४, १२७)-इति नकारस्य तृ इत्ययमादेशः तरुतातृ प्लवनतरणयोः (भ्वा० प०) अस्मात् ग्रसितस्कभित (७, २, ३४)-इत्यादौ तृन्नन्तो निपातनादेवेकारस्योत्त्वम् ॥ ३ ॥

(विश्वचर्षणिः सः) सकल मनुष्योंसे युक्त वह अग्नि (अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु) अश्वोंके द्वारा संग्रामको तरने वाला हो (विप्रेभिः सनिता अस्तु) ऋत्विजोंके सहित प्रसन्न हुआ अग्नि हमें इच्छित फल देने वाला हो ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो
१ २ २ ३ १ २ २ १ २र ३ १ २
धनुत्रीः । हरिः पर्य्यद्रवज्जाः सूर्य्यस्य द्रोणं
३ १ ३ २ ३ २
ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

ऋ० नोधाः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अथ साकमुक्ष इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । साकमुक्षः सह युगपत् सिञ्चन्त्यः उक्ष सेचने (भ्वा० प०) क्विपि रूपम् तादृश्यः स्वसारः कर्मकरणार्थम् इतस्ततः सुष्ठु गच्छन्त्यः अंगुलयः मर्जयन्त सोमं शोधयन्ति मृजू शौचालङ्करणयोः (अ॰ा० प०) । तथा दश दशसंख्याकाः धीतयः अंगुलिनामैतत् अंगुलयः (निघ० २, ५, ७) धीरस्य समर्थस्य प्राज्ञस्य वा देवैर्ध्यातव्यस्य काम्यमानस्य वा सोमस्य धनुत्रीः प्रेरयित्र्यो भवन्ति । ततः हरिः हरितवर्णः सोमः सूर्य्यस्य जाः प्रादुर्भूता जाया दिशः ताः पर्य्यद्रवत् परितो गच्छति सूर्य्यस्य तेजसा हि आविर्भवन्तीति दिशां तस्य जायात्वम् अत्यः अतनशीलः वाजी न अश्व इव स्थितः सोमः द्रोणं द्रोणकलशं ननक्षे व्याप्नोति नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा (निघ २, १८, २)॥

(साकमुक्षः स्वसारः मर्जयन्त) एक साथ सींचने वाली कर्म में इधर उधर को जाती हुई अंगुलिएँ सोम को शुद्ध करती हैं (दश धीतयः धीरस्य धनुत्रीः) दश अंगुलियें देवताओंके ध्यान करने योग्य वा चाहे हुए सोमकी प्रेरक होती हैं । तदनन्तर (हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत्) हरे वर्णका सोम सूर्यकीजाया रूप दिशाओंमें को जाता है

(वाजी न अत्यः) घोड़ेकी समान गति वाला सोम (द्रोणम् ननक्षे) द्रोणकलशमें व्यापता है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३१ २र ३ १ २र
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे
३१२ ३ २ २ ३ १ २र३ १ २ ३ १
पुरुवारो अद्भिः । मर्यो न योषामभि निष्कृतं
२र ३१२ ३ १ १
यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वावशानः देवान् कामयमानः वृषा कामानां वर्षकः अतएव पुरुवारः बहुभिर्वरणीयः सोमः अद्भिः मातृभूताभिः वसतीवरीभिः सं दधन्वे सन्धार्य्यते । तत्र दृष्टान्तः—मातृभिर्न शिशुः कामयमानः पुत्रो यथा मातृभिः पयःप्रदानेन सन्धार्य्यते धवि गत्यर्थः (भ्वा० प०) कर्म्मणि लिटि रूपम् मर्यो न मनुष्यो यथा योषां युवतिम् अभिगच्छति तद्वत् निष्कृतं संस्कृतं स्वस्थानम् अभियन् अभिगच्छन् कलशे द्रोणाभिधाने उस्रियाभिः अद्भिः गोर्विकारैः क्षीरादिभिर्वा सङ्गच्छते गमेरकर्म्मकात् समोगम्यृच्छिभ्याम् (१, ३, २९)-इत्यात्मनेपदम् ॥२॥

(वावशानः वृषा) देवताओं का चाहता हुआ और कामनाओंकी वर्षा करने वाला (पुरुवारः) अनकोंके वरण करने योग्य सोम (अद्भिः संदधन्वे) वसतीवरी जलों करके धारण किया जाता है (मातृभिः शिशुः न) जैसे कि—माता पिताकी चाहनावाले बालकको माता पिता दूध देकर धारण करते हैं । (मर्यः योषां न) जैसे मनुष्य तरुणी स्त्री को प्राप्त होता है तैसे ही (निष्कृतं अभियन्) अपने संस्कार युक्त स्थान को जाता हुआ सोम (कलशे उस्रियाभिः सङ्गच्छते) द्रोण कलशमें गो घृतादिसे मिलता है ॥ २ ॥

३१ २र३ २३१ २ ३ २ ३ १ २
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते
३ २ ३२३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
सुमेधाः । मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्री-
३ १२३२ ३ २
णन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । उत अपि च अघ्न्यायाः अघ्न्या—इति गोनाम

(निघ० २, ११, १) अघ्न्यायाः गोः ऊधः पयः स्थानम् सोमः प्रपित्वे ओषध्यादिषु सोमः प्रविश्य प्रकर्षेण आप्याययति प्यायतेर्लिङ्‌भि लिङ्यङ्लोश्च (६, १, २९)-इति पीभावः सुमेधाः शोभनप्रज्ञः सोऽयम् इन्दुः सोमः धाराभिः सचते समवैति सङ्गच्छते । ततो गावः चमूषु चमन्ति भक्षयन्त्यत्र सोममिति चम्वो ग्रहादयः तेषु स्थितम् मूर्द्धानम् समुच्छ्रितमिमम् सोमम् पयसा उदकेन अभि श्रीणन्ति अभित आच्छादयन्ति । तत्र दृष्टान्तः-निक्तैः प्रक्षालितैः वसुभिः न वस्त्रैः यथा आच्छादयन्ति तद्वत् ॥ ३ ॥

(उत अघ्न्यायाः ऊधः प्रपित्वे) और न मारने योग्य गौके दुग्ध-स्थान अयन को सोम भक्षणके तृणादि में प्रवेश करके अधिक पूर्ण करता है (सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते) श्रेष्ठ बुद्धिवाला वह सोम धाराओं करके मिलता है (गावः चमूषु मूर्धानं पयसा अभिश्रीणन्ति) गौएँ पात्रोंमें स्थित उत्तम सोमको अपने दूधसे आच्छादित करती हैं (निक्तैः वसुभिः नः) जैसे कि-धुले हुए वस्त्रोंसे आच्छादन करते हैं

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ३ अवन्तु

१ १ २

ते धियः ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ पिबासुतस्येति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्,—तत्र प्रथमा । हे इंद्र ! रसिनः रसवतः गोमतः गोर्विकारैः पयःप्रभृतिभिः श्रपणद्रव्यैर्युक्तस्य नः अस्मदीयस्य सुतस्य अभिषुतस्य क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्—इति कर्मणः सम्प्रदान—त्वाच्चतुर्थ्यर्थे (२, ३, ६२) । षष्ठी ईदृशं सोमं पिब, पीत्वा च मत्स्व तृप्तो भव । अपि च त्वं सधमाद्ये सह मादयितव्ये सहितैरस्माभिस्तर्पयितव्ये सोमे आपिः आपयिता बन्धुः सन् नः अस्माकं वृधे वर्द्धमानाय बोधि बुध्यस्व ते त्वदीया धियः बुद्धयः अनुग्रहात्मिकाः अस्मान् स्तोतॄन् अवन्तु रक्षन्तु । सधमाद्ये सधमाद्यः-इति पाठौ ॥ १ ॥

(इन्द्र रसिनः गोमतः नः सुतस्य पिब मत्स्व) हे इंद्र ! रसयुक्त गोघृतादिसे मिले हुए हमारे संस्कार किये सोम को पियो और तृप्त होओ (सधमाद्ये आपिः नः वृधे बोधि) साथ पिये जाने वाले सोमके

विषयमें बंधु की समान हमारी वृद्धि करनेके लिये सावधान हो (ते धियः अस्मान् अवन्तु) तेरी अनुग्रहरूपा वुद्धियें हमारी रक्षक हों ॥१॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अस्मां चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय

अथ द्वितीया। हे इंद्र ! ते तव सुमतौ शोभनायां वुद्धौ अनुग्रहबुद्धौ वाजिनः हविष्मन्तो वयं भूयाम वर्त्तमाना भवाम अभिमातये अभि— मन्यत इत्यभिमातिः शत्रुः तस्मै तदर्थं नः अस्मान् मा स्तः माहिंसीः स्तृङ् हिंसायाम् (क्र्या० प०) माङि लुङि छान्दसश्च्लेर्लुक्। अपि तु अभिष्टिभिः अन्वेषणीयाभिः प्रार्थनीयाभिः चित्राभिः चायनीयाभिः वहुविधाभिर्वा त्वदीयाभिः ऊतिभिः अस्मात् अवतात् अवरक्षणे (भ्वा० प०)। तथा नः अस्मान् सुम्नेषु सुखेषु आयामय आयतान् कुरु सर्वदा सुखिन एव कुरु ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (वय ते सुमतौ वाजिनः भूयाम) तुम्हारी अनुग्रहवुद्धि होने पर हम अन्नवान् हों (अभिमातये नः, मा स्तः) शत्रुके लिये हमैं नष्ट न होन दो। किन्तु (अभिष्टिभिः चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अवतात्) प्रार्थना करन योग्य विचित्र प्रकारकी रक्षाओंके द्वारा हमारी रखवाली करो (सुम्नेषु नः आयामय) सुखोंके विषयमें हमैं बड़ा करो अर्थात् हमैं सदा सुखी रक्खो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे
२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३
व्योमनि । चत्वार्य्यन्या भुवनानि निर्णिजे
१ २ ३ २ ३ १ २र
चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

ऋ०रेणुः। छ०जगती। दे० सोमः। अथ त्रिरस्मै सप्तेति तृचात्मकं चतुर्थ सूक्तम्, तत्र प्रथमा। परमे व्योमनि विविधव्योममयनं गमनम् देवानामत्रेति व्योम यज्ञः, तस्मिन् स्थिताय यद्वा परमे व्योमनि अन्त- रिक्षे वर्त्तमानाय त्रिः सप्त एकविंशतिसंख्याकाः धेनवः प्रीणयित्र्यः गावः सत्यां यथार्थभूतम् आशिरम् आश्रयमाणम् दुदुह्रिरे दुहन्ति।

यद्वा, त्रिः सप्त द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश इति, एतैः सर्वैः सह गोषु उत्पद्यने तद्भावो दुहन्तीति। किञ्चायं सामः अन्या अन्यानि चत्वारि भुवनानि उदकानि वसतीवरीस्तिस्रश्चैकधना इति, तानि चतुःसंख्याकानि चारूणि कल्याणिनि उदकानि निर्णिजे निर्णेजनाय परिशोधनाय वा चक्रे करोति। यद् यदा अयम् ऋतैः यज्ञैरेव व.र्द्धतः वर्द्धितवान् तदा करोति। दुदुहिरे, दुदुहे, इति परमे व्योमनि पूर्वे व्योमनि इति च पाठौ॥ १॥

(परमे व्योमनि अस्मै) अंतरिक्षमें वर्त्तमान इस सोमके अर्थ (त्रिः सप्त) इक्कीस (धेनवः) तृप्त करन वाली गौएं (सत्यां आशिरं (दुदुहिरे) यथार्थ दुग्धादिको देती हैं। और यह सोम (यत्) जब (ऋतैः अवर्द्धत) यज्ञोंसे बढ़ता है। तब (अन्यानि चत्वारि भुवनानि) वसतीवरी आदि अन्य चार जलोंको (निर्णिजे चारूणि चक्रे) शोधन के लिये कल्याणरूप करता है॥ १॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३
स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा
१ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ ३
काव्येना वि शश्रथे। तेजिष्ठा अपो मँहना
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः॥ २॥

अथ द्वितीया। सः भक्ष्यमाणः चारुणः कल्याणस्य अमृतस्य उदकस्य क्रियाग्रहणमिति कर्म्मणः सम्प्रदानसंज्ञा, चतुर्थ्यर्थे बहुलम् (२, ३, ६२) —इति षष्ठी चारूदकं भक्ष्यमाणः इकारलोपश्छान्दसः (३, ४, ९७) भिक्ष्यमाणः यष्टृभिः याच्यमानः सन् उभे द्यावा द्यावादेशस्य द्वन्द्वे विहितत्वात् उत्तरपदाभावेऽपि द्वन्द्वः प्रतीयते उभे द्यावापृथिव्यौ काव्येन कविकर्म्मणा विश्रशथे विवृते करोति यज्ञनिमित्तेन प्रत्तेनोदकेन सम्पूरयतीत्यर्थः। किञ्च तेजिष्ठाः अतिशयेन दीप्तानि अपः उदकानि मंहना महत्वेन परिव्यत वरणार्थं परित आच्छादयति। यदि यदा ऋत्विजः देवस्य द्योतमानस्य सोमस्य सदः स्थानं श्रवसा हविषा युक्ताः सन्तः विदुः यागार्थं जानन्ति लभन्ते तदा परित आवृणोतीति। विद् ज्ञान (अदा० प०) सिजभ्यस्त (३, ४, १०९)—इति झेर्जुसादेशः। भक्ष्यमाणः—भिक्ष्यमाणः—इति पाठौ।

(चारुणः अमृतस्य भक्ष्यमाणः सः) कल्याणकारी जलके लिये याचना किया हुआ वह (उभे द्यावा) दोनों पृथिवी और द्युलोकको।

(काव्येन विशश्रथे) स्तुति के द्वारा खुले हुए करदेता है अर्थात् जलसे पूर्ण कर देता है। (तेजिष्ठाः अपः मंहना परिव्यत) अत्यत दीप्त जलों को महत्त्वके साथ आच्छादन करता है (यदि) जब कि ऋत्विज (देवस्य सदः श्रवसा विदुः) द्योतमान सोमके स्थानको हविसे युक्त होकर यज्ञके लिये ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी
३ १ २र १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १
उभे अनु । येभिर्नृम्णा च देव्या पुनत आ-
२र ३ १ २
दिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अस्य एतादृशस्य सोमस्य केतवः प्रज्ञापकाः सर्वैश्चायनीया रश्मयः । कीदृशाः ? अमृत्यवः मरणधर्मरहिताः अत एव अदाभ्यासः दभेश्चेति वक्तव्यम् (७, ३, ६९ वा० इति ण्यत् परैर्हिंस्यास्ते तादृशा अस्य रश्मयः उभे जनुषी जन्मना स्थावरजंगमात्मके द्वे अनु लक्षीकृत्य सन्तु रक्षन्तु । ओषधीनामयं सोमो रेतो निषिञ्चति यज्ञे मनुष्याणाञ्च धाराः स्रवन्ति खलु । सोऽय येभिः यैः केतुभिः नृम्णा नृम्णानि बलानि देव्या देवार्हाणि चान्नानि पुनते प्रेरयति । आदित् अभिषवानन्तरमेव राजानं सोमं मनना मननीयाः स्तुतयः अगृभ्णत परिगृह्णन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः हृग्रहोः-इति छान्दसो भकारः ॥ ३ ॥

(अमृत्यवः अदाभ्यासः) मरणधर्म रहित और दूसरोंसे हिंसित होनेके अयोग्य (अस्य ते केतवः) इस सोमकी वह प्रसिद्ध किरणें (उभे जनुषी अनु सन्तु) स्थावर जंगमरूप दोनों प्राणियों की रक्षा करें (येभिः नृम्णा च देव्या च पुनते) जिन किरणों से सोम बलोंको और देवताओंके योग्य अन्नोंको भी प्रेरणा करता है (आदित् राजानम् मननाः अगृभ्णत) अभिषवके अनन्तर ही सोमको स्तुतियें प्राप्त होती हैं

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ २ ३क २र ३ २ २ ३ १ २र
अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा
३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
पूयमानः । अभी नरं धीजवनथं रथेष्ठामभीन्द्रं

१ २ ३ १ २
वृषणं वज्रबाहुम् ॥ १ ॥

ऋ० कुत्सः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सोमः । अथ षष्ठे खण्डे—अभि-वायुमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सोम ! गृणानः स्तूयमानस्त्वं वीति । सुपाम् सुलुक्—इति चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः । वीत्यै पानाय । वायुम् अभ्यर्ष अभिगच्छ । तथा पवित्रेण पूयमानः त्वं मित्रावरुणा मित्रावरुणौ च पानाय अभि गच्छ । किञ्च नरं सर्वस्य नेतारं, धीजवनं बुद्धया समम् वेगं कुर्वाणं, रथेष्ठां रथे तिष्ठन्तम् अनेनाश्विनावभिधीयेते,एकवचनन्तु प्रत्येकविवक्षया समुदायविवक्षया वा, एतादृशावश्विनौ चाभिगच्छ । तथा वृषणं कामानाम् वर्षकम् वज्रबाहुं वज्रयुक्तहस्तम् इंद्रं च त्वं पानाय अभि गच्छ ॥ १ ॥

हे सोम ! (गृणानः वीति वायु अभि अर्ष) स्तुति किया जाता हुआ तू पानके लिये वायुको प्राप्त हो (पूयमानः मित्रावरुणा अभि) पवित्र से शुद्ध होता हुआ मित्रावरुण देवताको प्राप्त हो (नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि) सबके नेता बुद्धि की समान वेगवाले रथमें स्थित अश्विनी-कुमारों को प्राप्त हो (वृषणं वज्रबाहुं इंद्रं अभि) मनोरथोंकी वर्षा करने वाले हाथमें वज्रधारी इंद्रको प्राप्त हो ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः
३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३
पूयमानः । अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्या-
१ २ ३ १ २
भ्यश्वान्रथिनो देव सोम ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम! त्वम् अस्माकं सुवसनानि सुपरिधानानि अभ्यर्ष अभिगमय यद्वा सुवनानि शोभनवस्त्रसहितानि वस्त्रा वस्त्राण्या-च्छादकानि धनानि अभिगमय । किञ्च पूयमानः पवित्रेण त्वम् सुदुघाः सुष्ठु पयसो दोग्ध्रीः धेनूः नवप्रसूतिका गाः अभि प्रापय । अपि च चन्द्रा चन्द्राणि आह्लादकानि हिरण्यानि भर्तवे भरणाय नः अस्मा-कम् अभि गमय । तथा हे देव ! स्तोतव्य हे सोम रथिनः रथवत अश्वान् अस्माकम् अभि प्रापय ॥ २ ॥

(देव सोम) हे स्तुतिके योग्य सोम ! तू हमें (सुवसनानि वस्त्रा अभ्यर्ष) श्रेष्ठ वस्त्रोंयुक्त रक्षा करने वाले धनदे (पूयमानः सुदुघाः धेनूः

अभि) पवित्रसे शोधित तू श्रेष्ठ दूधवाली नवीन विवाहिता गौएं दे (भर्तवे नः चन्द्रा हिरण्यानि अभि) भरणके लिये हमें आनन्ददायक सवर्ण दे (रथिनः अश्वान् अभि) रथयुक्त घोड़े दे ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १
पूयमानः । अभि यन द्रविणमश्नुवामाभ्यार्षेयं
२ ३ १ २
जमदग्निवन्नः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! पवित्रेण पूयमानः त्वं दिव्यह दिव्यानि दिवि भवानि वसूनि धनानि नः अस्माकम् अभ्यर्ष अभिगमय । तथा पार्थिवा पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि धनान्यभिगमय । तथा येन त्वदीयेन सामर्थ्येन द्रविणं धनं वयम् अश्नुवाम् अभिव्याप्नुयाम तत् सामर्थ्यम् अभि गमय । किञ्च आर्षेयम् ऋषीणामृषिपुत्राणाम् योग्यं धनं जमदग्निवत् जमदग्नेर्यथा त्वं प्रापय एवं नः अस्माकमपि अभ्यर्ष यद्वा, आर्षेयम्; ऋषीणाम् योग्यम् मन्त्रम् जमदग्नेः स्वभूतं मन्त्रं यथा स्वादुतमम्, अकार्षीः एवमस्माकं तादृशं मन्त्रं स्वादुतमम् कुर्विति मन्त्रद्रष्टा स्तोता कुत्सो नाम ऋषिः प्रार्थयते ॥

हे सोम ! (पूयमानः) संस्कार किया जाता हुआ तू (नः दिव्या वसूनि अभ्यर्ष) हमें द्युलोकके धन दे (पार्थिवा विश्वा अभि) भूलोक के सकल ऐश्वर्य दे (येन वयं द्रविणं अश्नुवाम अभि) जिस तेरी सामर्थ्य से हम धनोंका भोगें वह सामर्थ्य भी हमें दे (जमदग्निवत् आर्षेयं नः) जैसे तूने जमदग्निको दिया था तैसे ऋषिकुमारोंके योग्य धन हमें भी दे ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २
यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना उभो दिवम् ॥ १ ॥

ऋ० प्रियमेधः । छ० अनुष्टुप् तथा बृहती छन्दसो । दे० अश्विद्वयम् । अथ यज्जायथा इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अपूर्व्य ! त्वत्तो व्यतिरिक्तेन पूर्वेण वर्जित ! हे मघवन् ! मंहनीयधन-

वन्! इंद्र! वृत्रहत्याय वृत्रहननाय यद् यदा त्वम् जायथाः उत्पन्नः प्रादुर्भूतोऽसि तत् तदानीमेव पृथिवीं प्रथमानां भूमिम् अप्रथयः प्रथितां दृढामकरोः। उत अपि च तत् तदानीमेव दिवम् द्युलोकम् अंतरिक्षेण अस्तभ्नाः निरुद्धामकार्षीः एतादृशं वीर्य्यं त्वदन्यस्य न सम्भवतीत्यर्थं द्योतयितुमपूर्व्येति पदम् ॥ उतो दिवम् उतद्याम्—इति पाठौ ॥ १ ॥

(अपूर्व्य मघवन्) हे सबसे आदि पुरुष धनवान इंद्र! (वृत्रहत्याय यत् त्वं जायथाः) शत्रुओंका नाश करने को जब तुम प्रकट हुए (तत् पृथिवीं अप्रथयः) तब तुमने पृथिवीको दृढ़ किया (उतो तत् दिवं अस्तभ्नाः) और तब ही तुमने द्युलोकको ऊँचा धाम बनाया १

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २

तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥२॥

अथ द्वितीया। हे इंद्र! यद् यदा त्वम् अजायथाः तदानीं ते त्वदर्थं यज्ञः अग्निष्टोमादिः अजायत सोमपानार्थमभूत। उत अपि च तद् तदानीम् हस्कृतिः हस हसने (भ्वा० प०) हासकारी प्रीत्यर्थं क्रियमाणः हर्षसूचको द्वितीयमन्त्रोऽपि अजायत। किञ्च तदा यद् जातम् भूतजातं यच्च जन्त्वम् कृत्यार्थे त्वप्रत्ययः जनितव्यं विश्वमस्ति तत् विश्वं अभिभूः असि स्वमहिम्ना अभिभूतवानसि ॥ २ ॥

हे इंद्र! तू जब प्रकट हुआ था (तत् ते यज्ञः अजायत) उस समय ही तेरे लिए अग्निष्टोम आदि यज्ञ प्रकट हुए थे (उत तत् हस्कृतिः अर्कः) और उससमय ही दिनकी व्यवस्था करनेवाला सूर्य प्रकट हुआ (यत् जातं यत् जन्त्वम्) जो उत्पन्न हुआ और जो कुछ उत्पन्न होगा (तत् विश्वं अभिभूः असि) उस सबका तूने तिरस्कार किया है

३ १ २ २ १ २र३ १ २र ३ २

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यꣳ रोहयो दिवि।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २

घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥

अथ तृतीया। हे इंद्र! आमासु अपक्वासु गोषु पक्वं पयः ऐरयः प्रेरय तथा च मन्त्रः—आमासुचिद्दधिषे पक्वमन्तः इति। किञ्च दिवि द्युलोके सूर्य्यम् आरोहयश्च पूर्वं पणयो नामासुरा अङ्गिरसां गा अप-

इत्य अन्धकारावृते कस्मिंश्चित् पर्वते स्थापितवन्तः ततोऽङ्गिरसः इंद्रं स्तुत्वा गाः पुनरस्मभ्यमाहरेति तैरुक्तम् इंद्रो गवाम् स्थानं तमसावृतं दृष्ट्वा तत्र गोप्रदर्शनाय द्युलोके सर्वप्रकाशकंसूर्य्यमारोहितवान् स्थापितवानसि चादिलोपे विभाषा (८, १, ६२)-इति पूर्वस्य ऐरय इत्यस्य न निघातः। अथ परोक्षकृतोऽर्द्धर्चः—हे स्तोतारः! सुवृक्तिभिः शोभनाभिः स्तुतिभिः तपत इंद्रं तीक्ष्णीकुरुत इंद्रं स्तुतिभिः प्रवर्द्धय—तेत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः—घर्मं न यथा घर्मं दीपनशीलं प्रवर्गं सामम्। सुपां सुलुक्-इति तृतीयाया लुक्। सामभिः यथा तपन्ति तद्वत्। ततः गिर्वणसे गीर्भिर्वननीयायेन्द्राय-जुष्टं प्रीतिकरं पर्य्याप्तं वा बृहत् महत बृहदाख्यं वा साम गायत ॥ ३ ॥

हे इंद्र! (आमासु पक्वं ऐरयः) अपक्व गौओंमें परिपक्व दूधको तूने प्रेरणा किया (दिवि सूर्यं आरोहयः) अन्तरिक्षमें सूर्य को स्थापित किया (घर्मं सामम् न) जैसे प्रवर्गको सामों से तपाते हैं तैसे हे स्तोताओ (सुवृक्तिभिः तपना) श्रेष्ठ स्तुतियोंसे इंद्रको तपाओ (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) वेदमन्त्रोंसे प्रार्थना करने योग्य इंद्र के अर्थ प्रसन्नता देने वाले बृहत् सामको गाओ ॥ ३ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
मत्स्यपाहि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः॥ १॥

ऋ० अगस्त्यः। छ० अनुष्टुप् दे० इंद्रः। अथ मत्स्यपायीति तृचात्मकं तृतीयम् सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे हरिवः! हरिभ्याम् तद्वन्निन्द्र! महः महान् पूज्योऽयं सोमः पात्रस्येव पात्रेणैव सोमपात्रेण यथा धार्य्यते सोमः तत्सदृशेन त्वया ते तृतीयार्थे (३, १, ८५) षष्ठी। यद्वा पात्रस्य इव ते तव स्वभूतः महः महान् सोमः इति वा योजना अपायि पीयते आशंसायां विवक्षितार्थत्वात् भूतेऽर्थे प्रयोगः यतः पिबसि अतो मत्सि माद्यसि माद्यस्व वा। पात्रे सोमः यथा पूर्य्यते तथात्यधिकं पिब पीत्वा च माद्यस्वेत्यर्थः। किञ्च वृष्णे ते अभिमतवर्षित्रे तुभ्यम्। चतुर्थ्यर्थे षष्ठी। मत्सरः मदसाधनः मदः तर्पयिता वृषा वर्षिता इन्दुः क्लेदयिता आह्लादकारीत्यर्थः वाजी अन्नवान् अन्नकार्य्यतृप्तिसद्भावात् अन्नवानित्युच्यते सहस्रसातमः अपरिमितदातृतमः सहस्र- पुरुष—सम्भजन—पर्याप्त-शक्त्यतिशया वा एवं महानुभावः सोमः सम्पादितः तं पिबेत्यर्थः

(हरिवः) हे पापहारिणी शक्ति वाले इंद्र ! (महः पात्रस्य इव ते) यह महान् सोम जैसे धारणकर्ता पात्र का होता है तैसे ही तेरा है (वृष्णो ते) अभीष्टफल देने वाले तेरे लिए (मत्सरः मदः) मदकारी और तृप्तिदाता (वृषा इन्दुः) वर्षा करनवाला और बहनेवाला (वाजी सहस्रसातमः) अन्नवान् और सहस्रोंको दान देनेवाला सोम सम्पादन किया है (अपायि मत्सि) इसको पियो और प्रसन्न होओ ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १२
आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
सहावाꣳ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! ते त्वां नः अस्मदीयः मत्सरः मर्षणसाधनः सोमः आगन्तु आगच्छतु । कीदृशोऽयम् ? वृषा वर्षकः मदः तर्पयिता वरेण्यः वरणीयः, सहावान् अस्मद्दत्तेन सोमेन सहायवान् सन् । सहसा बलेन तद्वान् वा । सानसिः अस्माभिः सम्भजनीयः, पृतनाषाट् शत्रुसेनाया अभिभविता अमर्त्यः अविनाशी च भवति ॥ २ ॥

(इंद्र ते) हे इंद्र तुझको (नः) हमारा (वृषा मदः) अभीष्टदाता और मदकारी (वरेण्यः सहावान्) वरणीय और हमारे उच्चारण किये मन्त्रोंकी सहायतावाला (सानसिः पृतनाषाट्) हमारे सेवन करन योग्य और शत्रुसेनाओं का तिरस्कार करने वाला (अमर्त्यः मत्सरः गन्तु) अविनाशी सोम प्राप्त हो ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वꣳ हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
३ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! त्वं हि खलु शूरः शौर्य्योपेतः सनिता दातासि । अतः मनुषः मनुष्यस्य मे रथं रंहणं स्यन्दनं मनोरथं वा स्वर्गगमनसाधनं यज्ञार्थं रथं वा चोदय प्रेरय । किञ्च त्वं सहावान् भूत्वा दस्युम् उपक्षयितारम् अव्रतम् अकर्माणम् अननुष्ठायिनम ओषः दह । किमिव ? शोचिषा दीप्त्या ज्वलया अग्निः पात्रन्न स्वाधारं पात्रविशेषमिव यागाधिकारी सन् यो न यजते, तं दहेत्यर्थः ॥ ३ ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः ॥ १२ ॥
इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-
भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते
माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रन्थे
द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

हे इन्द्र! (त्वं हि शूरः सनिता) तू ही निश्चय शूर है और दान देनेवाला है, इसकारण (मनुषः रथं चोदयः) मुझ मनुष्यके मनोरथ को वा स्वर्गगमनके साधनको प्रेरणा कर और (सहावान्) सहायता युक्त होकर (अग्निः शोचिषा पात्रं न) जैसे अग्नि अपनी ज्वालासे अपने आधारभूत पात्रको जला देता है तैसे (दस्युं अव्रतं ओषः) धोखा देने वाले अर्थात् यज्ञके अधिकारी होकर भी यज्ञ न करने वालेको भस्म कर ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य षष्ठः खण्डः द्वादशाध्यायश्च समाप्तः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्याय आरभ्यते।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थ-महेश्वरम् ॥ १३ ॥

१२ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २र
पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
३ १ २ ३ १ २र
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥

ऋ० कविः। छ० गायत्री। दे० सोमः। तत्र, प्रथमे खण्डे-पवस्व वृष्टिमिति पञ्चर्चं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे सोम! त्वं दिवः द्युलोकात् वृष्टिं वर्षम् नः अस्माकं सु सुष्ठु आ पवस्व समन्तात् क्षर। एतदेव दर्शयति अपाम् उदकानाम् ऊर्मिं तरङ्गं दिवः परि आपवस्व। अपि च अयक्ष्माः यक्ष्मरहितानि अनामयानि बृहतीः महान्ति इषः अन्नानि आपवस्व ॥ १ ॥

हे सोम! तू (दिवः वृष्टिं नः सु आ पवस्व) अन्तरिक्षसे वर्षाको हमारे लिये सुन्दरताके साथ बरसा (अपां ऊर्मिम् परि) जलोंकी तरङ्गों को बरसा (अयक्ष्माः बृहतीः इषः) रोगरहित बहुतसे अन्नोंको बरसा ॥ १

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् ।

१ २ ३ १ २ ३ २

जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वं तया तादृश्या धारया पवस्व क्षर । कीदृश्येत्यत्राह—यया यादृश्या त्वदीयया धारया जन्यासः जन्याः शत्रुजनपदभवाः गावः इह अस्मिल्लोके नः अस्माकम् सम्बंधि गृहम् उप आ गमन् उपागच्छन्ति ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (तया धारया पवस्व) उस धारासे यहां वरस (यया जन्यासः गावः। इह नः गृहं उप आगमन्) जिस धारासे शत्रु के देश की गौएं इस देशमें हमारे घर आजायँ ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।

३ १ २ ३ १ २र

अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम यज्ञेषु देववीतमः अतिशयेन देवकामः त्वम् अस्मभ्यं स्तोतृभ्यः घृतम् उदकम् धारया सम्पातेन पवस्व क्षर, वृष्टिं वर्षञ्च आ पवस्व ॥ ३ ॥

हे सोम ! (यज्ञेषु देववीतमः) यज्ञोंमें अधिकतर देवताओंका चाहा हुआ तू (अस्मभ्यं घृतं धारया पवस्व) हमारे निमित्त साररूप जल को धारोंसे वरसा (वृष्टिं आपव) वर्षाको गिरा ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ १२ ३ १ २ ३ १ २

स न ऊर्जे व्या३ऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।

३ १ २ ३ २ ३ २

देवासः शृणवन्हि कम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे सोम ! सुतः अभिषुतस्त्वम् नः अस्माकम् ऊर्जे अन्नाय अव्ययम् अविमयं पवित्रम् धारया सम्पातेन विधाव प्राप्नुहि देवासः देवा अपि हि कं शृणवन् गमनवेलायामुत्पन्नम् त्वदीयं शब्दम् शृण्वन्तु ॥ ४ ॥

हे सोम ! (सः) वह अभिषव किया हुआ तू (नः ऊर्जे) हमारे अन्नके लिये (अव्ययं पवित्रं धारया विधाव) ऊनके पवित्रमें धारसे

पहुँच (देवासः हि कम् शृणवन्) देवता अवश्य गमन समय के तेरे शब्दको सुनैं ॥ ४ ॥

१२ ३१२ ३१२
पवमानो असिष्यदद्रक्षाᳬंस्यपजंघनत् ।
३ २३२३ २
प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । रक्षांसि राक्षसाः अपजंघनत् रुचः आत्मीया दीप्तीः प्रत्नवत् पुराणवत् रोचयन् दीपयन् पवमानः सोमः असिष्यदत् स्यन्दते (रक्षांसि अपजङ्घनत्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (रुचः प्रत्नवत् रोचयन्) अपनी दीप्तियोंको अति पुरातनसी प्रकाशित करता हुआ (पवमानः असिष्यदत्) सोम टपकता है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१२
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
३ २३ २ ३१ २ ३ १२
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छं० अनुष्टुप् । दे० इंद्रः । अथ प्रत्यस्मा इति चतुऋचं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे अध्वर्य्यो ! नरः नेता यज्ञानाम् त्वम् अस्मै इंद्राय प्रति भर अभिहर सोमम् प्रयच्छेत्यर्थः । कीदृशायेन्द्राय ? पिपीषते पातुमिच्छते विश्वानि सर्वाणि वेद्यानि विदुषे जानते अरङ्गमाय पर्य्याप्तगमनाय जग्मये यज्ञेषु गमनशीलाय अपश्चादध्वने दधिगतिकर्मा (निघ० २, १४, ६२) अपसादुगमनाय सर्वेषामग्रगामिने ॥ नरः नरे-इति पाठौ ॥ १ ॥

हे अध्वर्यु ! (नरः) यज्ञोंका परिचालक तू (विश्वानि विदुषे) सकल जानने योग्य बातोंको जाननेवाले (अरङ्गमाय जग्मये) पर्याप्त गति और यज्ञोंमें जानेके स्वभाववाले (अपश्चादध्वने) सबके अग्रगामी (पिपीषते अस्मै प्रतिभर) पीनेकी इच्छा वाले इस इंद्रको सोम दे १

१२ ३ १२३ १२ ३१२ १२
एमेनं प्रत्येतनं सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रे-
३ २३ १ २ ३२ ३१२
भिर्ऋजीषिणमिन्द्रᳬं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अध्वर्य्यवः ! सोमेभिः सोमैः करणभूतैः सोमभृतैः

सोमपातमं अतिशयेन सोमस्य पातारम् एनम् इंद्रम् आ अभिमुखम प्रत्येतन प्रतिगच्छथ इमम्—इति । निपातोऽनर्थकः कीदृशमिन्द्रम् ? अमत्रेभिः अमत्रैः सोमपात्रैः ग्रहचमसादिभिः ऋजीषिणम् ऋजीषम् शत्रूणामुपार्जकम् बलं तद्वन्तं यद्वा ऋजीषिणमित्युत्तरत्र सम्बन्धनीयम् सुतेभिः अभिषुतैः इन्दुभि सोमैः ऋजीषिणं गतसारः सोमः ऋजीषः तद्वन्तम् अथवा अमत्रैः अपरिमितैरभिषुतैः सोमैः ऋजीषिणम् । ऋजे गत्यर्थाद्भावसाधन ऋजीषशब्दः ततो मत्वर्थीय इनिः सङ्गतमित्यर्थः । एवंविधमिन्द्रं प्रति गच्छतेत्यन्वयः अन्य आह—अमत्रेभिः ग्रहचमसादिगतैः सोमैः ऋजीषिणं बलवन्तमिन्द्रं प्रतिगच्छतेति ॥ २ ॥

हे अध्वर्यु ओं ! (अमत्रेभिः ऋजीषिणम्) ग्रहचमसादि पात्रोंसे शत्रुओं के बलको ग्रहण करने वाले (सुतेभिः इन्दुभिः) अभिषव किये हुए सोमोंसे युक्त (सोमेभिः सोमपातमम्) अत्यन्त सोमपान करनेवाले (एनं इंद्रम् आ प्रत्येतन) इस इन्द्र के अभिमुख जाकर प्रार्थना करो

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र

वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अध्वर्य्यवः ! सुतेभिः अभिषुतैः इन्दुभिः उन्दनशीलैः दीप्तैर्वा सोमेभिः सोमैः यदि प्रतिभूषथ इंद्रं प्रति यूयं प्रतिगच्छथ भू प्राप्तौ (भ्वा० उ०)—इत्यस्यैतद्रूपं तदानीं मेधिरः मेधावी मेधो यज्ञः (निघ० ३, १७, ४) तद्वान् वा स इंद्रः विश्वस्य विश्वं सर्वं भवदीयं कामं वेद वेत्ति जानाति ज्ञात्वा च धृषत् शत्रूणां धर्षकः सन् तमित् तं तं काममेव एषते प्रापयति ॥ ३ ॥

हे अध्वयु ओं ! (सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः) अभिषुत दिपते हुए सोमों करके (यदि प्रतिभूषथ) यदि इंद्रकी शरण जाओगे तो (मेधिरः विश्वस्य वेद) यज्ञवाला इंद्र तुम्हारे सकल मनोरथोंको ध्यानमें रक्खैगा और ध्यानमें रख कर (धृषत्) शत्रुओं को भयदायक होता हुआ (तमित् एषते) तुम्हारी सकल कामनाओंको सफल करैगा ।

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्य्यो प्र भरा सुतम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत् ॥

अथ चतुर्थी । अस्मा अस्मा इत् अस्मा।एवेन्द्राय नान्यस्मै,हे अध्वर्यो त्वम् अंधसः सोमलक्षणस्यान्नस्य सुतम् अभिषुतं रसं प्रभर प्रहर प्रयच्छेति यावत् । स इन्द्रः समस्य सर्वस्य जेन्यस्य शर्द्धतः उत्सहमानस्य शत्रोः अभिशस्तेः अभिशंसनात् तत्कृतात् हिंसनात् कुवित् बहुशः अवस्वरत् अस्मान पालयत्वित्यर्थः ॥ अवस्वरत् अवस्परद्— इति पाठौ ॥ ४ ॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु ! (अस्मा अस्मा इत्) इस इन्द्रके अर्थ ही तुम (अन्धसः सुतं प्रभर) अन्नरूप सोमके रसको अर्पण करो । वह इंद्र (समस्य जेन्यस्य शर्द्धतः) समस्त जीतने योग्य उत्साही शत्रु के (अभिशस्तेः) हिंसनसे (कुवित् अवस्वरत्) अधिकतर हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।

१ २ ३ १ २

सोमाय गाथमर्चत ॥ १ ॥

ऋ० असितः देवलो वा । छ० गायत्री । दे० सोमः अथ द्वितीयखण्डे—बभ्रवेन्विति षडृचं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे स्तोतारः ! बभ्रवे बभ्रुवर्णाय स्व स्तवसे स्वबलाय अरुणाय कदाचिदरुणवर्णाय दिविस्पृशे दिवं स्पृशते सोमाय गाथं स्तुतिरूपां वाचम् अर्चत उच्चारयतेत्यर्थः ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! (बभ्रवे स्वतवसे) बभ्रुवर्ण और अपने बलवाले (अरुणाय दिविस्पृशे) कभी अरुण वर्णवाले और द्युलोकका स्पर्श करनेवाले (सोमाय गाथं अन्वर्चत) सोमके अर्थ स्तुतिरूपा वाणीका उच्चारण करो ॥ १ ॥

१ २ ३१ २ ३ १ २र

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतꣳ सोमं पुनीतन ।

२ ३ १ २ ३ १ २

मधावा धावता मधु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे ऋत्विजः ! हस्तच्युतेभिः हस्तप्रच्युतैः अद्रिभिः अभिषवग्रावभिः सुतम् अभिषुतं सोमं पुनीतन पवित्रे पावयत। अपि च मधौ मदकरे सोमे मधु गव्यं पयः आधावत प्रक्षिपत॥ २ ॥

हे ऋत्विजों ! (हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः) हाथमेंसे छूटेहुए पाषाणों से (सुतं सोमं पुनीतन) अभिषव किये हुए सोमको पवित्रमें शुद्ध करो और (मधौ मधु आधावत) मदकारी सोममें गौके दूधको डालो

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन ।
२ ३ १ २
इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे ऋत्विजः ! नमसेत् नमस्कारेणैव उपसीदत सोममुपगच्छत दध्नेत् दध्नैव अभिश्रीणीतन सोममभिश्रीणीत च । इन्द्रे इन्दुं सोमं दधातन धत्त च ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजों ! (नमसेत् उपसीदत) नमस्कारसे ही सोमको प्राप्त होओ (दध्नेत् अभिश्रीणीतन) दधिसे भी सोमको मिलाओ (इन्द्रे इन्दुं दधातन) इन्द्रके विषे सोमको स्थापन करो ॥ ३ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे ।
३ १ २ ३ २
देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे सोम ! अमित्रहा अमित्राणां हन्ता विचर्षणिः विद्रष्टा देवेभ्यः अनुकामकृत् अभीष्टस्य कर्त्ता त्वं गवे अस्माकं पशवे शं सुखं पवस्व क्षर ॥ ४ ॥

(सोम) हे सोम (अमित्रहा विचर्षणिः) शत्रुओंका नाशक और विशेष द्रष्टा (देवेभ्यः अनुकामकृत्) देवताओंके अर्थ अभीष्ट काम करने वाला तू (गवे शं पवस्व) हमारी गौओंको सुख दे ॥ ४ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।
३ १ २र ३ १
मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । हे सोम मनश्चित् मनसो ज्ञाता मनस्पतिरीश्वरः

त्वं इन्द्राय इन्द्रस्य पातवे पानार्थं मदाय च परिषिच्यसे परितः पात्रेषु सिच्यसे ॥ ५ ॥

(सोम मनश्चित् मनसः पतिः) हे सोम ! मनका ज्ञाता और मनका ईश्वर तू (इंद्राय पातवे मदाय परिषिच्यसे) इन्द्रके पीनके लिये और हर्ष प्राप्त होनेके लिये पात्रोंमें सींचाजाता है ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
पवमान सुवीर्यँ रयिँ सोम रीरिहि णः ।
२ ३ १ २ ३ २
इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । हे इन्दो ! क्लिद्यमान पवमान सोम त्वं सुवीर्यं शोभन-वीर्योपेतं रयिं धनं नः अस्माकं सम्बन्धिना इन्द्रेण युजा सहायेन नः अस्मभ्यं रीरिहि देहि ॥ ६ ॥

(इन्दो पवमान) हे दीप्त सोम ! तू (सुवीर्यं रयिम्) सुन्दर वीरता युक्त धन (नः युजा इन्द्रेण) हमारे सहायक इंद्रके द्वारा (नः रीरिहि) हमें दे ॥ ६ ॥

२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।
१ २
अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥

ऋ० सुकक्षः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । अथोद्धेदभीति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सूर्य । द्वादशसु भानुषु इन्द्रोऽपि सूर्यात्मना पठितः । तस्मात् सूर्यात्मक सुवीर्य हे इंद्र ! श्रुतामघं सर्वदा देयत्वेन विख्यातधनम्, अतएव वृषभं याचमानानां धनस्य वर्षितारं नर्यापसं नरहितं नर्यं नरहितकर्माणम् अस्तारम् दानशौण्डम् औदार्य-वन्तम् एतादृशं स्तोतारम् अभि लक्ष्य उदेषि इदवधारणे त्वमेव तस्य यज्ञे सूर्यात्मना उद्गाताऽसि घ इति प्रसिद्धौ ॥ १ ॥

(सूर्य) हे सूर्यस्वरूप इंद्र ! (श्रुतामघम्) प्रसिद्ध धनवाले (वृषभं नर्यापसम्) याचकोंके लिये धनकी वर्षा करनेवाले और मनुष्योंके हितकारी कर्मवाले (अस्तारं अभि उदेषि) स्तोताकी ओरको लक्ष्य करके उदित होते हो ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।

१ २ ३ १ २
अहिं च वृत्रहाऽवधीत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः इन्द्रः नववतिं नवतिसंख्याकाः ततः नवसंख्याकाः एकोनशतसंख्याकाः शम्बरस्य पुरः पुरीः बाहोजसा बाहुबलेनैव बिभेद दिवोदासाय भिनत्ति स्म तथा च मंत्रान्तरे-दिवोदासाय नवतिश्च नवेन्द्रः पुरोवैरच्छम्बरस्य-इति । (ऋ० स० २३, १९, ६) स च वृत्रहा वृत्रासुरस्य हंता। स इंद्रः अहिम् च केनाप्यहंतव्यं मेघमपामावरकं वा वृत्रासुरं वा अवधीत् । स इंद्रोऽस्माकं धनं ददात्वित्युत्तरेण संबंधः

(यः नवनवतिम्) जो इंद्र निन्यानवे (पुरः) शम्बरासुरके पुरों को (बाहोजसा बिभेद) भुजाओंके बलसे विदीर्ण करता हुआ (च वृत्रहा अहिं अवधीत्) और जो वृत्रासुरका नाशक इन्द्र किसीसे भी न मरनेवाले वृत्रासुरको मारता हुआ वह हमें धन देय ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
स न इन्द्रः शिवः सखाश्ववद्गोमद्यवमत् ।
३ १ २
उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सः पूर्वोक्तगुणविशिष्टः शिवः कल्याणतमः सखा यष्टृयष्टव्य-स्तोतृस्तोतव्य—लक्षणेन सम्बन्धेन नः अस्माकं मित्रभूतः एतादृशः अश्ववत् अश्वयुक्तं गोमत् पश्वादिसहितं यवमत् अयवादिभ्यः—इति प्रतिषेधात् मतुपो वत्वाभावः । यव इति धान्यविशेषः धान्ययुक्तं धनं नः अस्मभ्यं दोहते दोग्धुं ददातु । तत्र दृष्टान्तः उरुधारेव दोहनकाले प्रभूतपयोधारा यद्वा बहूनां पोषयित्री गोः यथा वत्सस्य पयो दोग्धि तथा प्रभूतधनम् अस्माकं दोग्धुं ददातु दुहेर्लेटयडागमः (३, ४, ९४) ॥ ३ ॥

(सः शिवः नः सखा इंद्रः) वह कल्याणरूप हमारा मित्ररूप इंद्र हमें (अश्ववत् गोमत् यवमत् दोहते) अश्वों सहित गौओं सहित और अन्न सहित धनको देय (गो धारा इव) जैसे दुहनके समय गौ बहुतसी दूधकी धारें देती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
विभ्राड्बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपताव-

२　　　　१ २ ३ ३　१　 २ ३ १ २ ३　 १ २
विह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना
३ १　 २　　　३ १　　२र
प्रजाः पिपर्ति बहुधा।वि राजति ॥ १ ॥

ऋ० विभ्राट् सौर्य्यः । छ० जगती । दे० सूर्य्यः । अथ तृतीयखण्डे विभ्राडिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । विभ्राट् विभ्राजमानः विशेषेण दीप्यमानः सूर्य्यः बृहत् परिवृढं सोम्यं सोममयं मधु पिबतु किं कुर्वन् ? यज्ञपतौ यजमाने अविह्रुतम् अकुटिलम् आयुः दधत् कुर्वन् यः सूर्य्यः वातजूतः वातेन महावायुना प्रेर्य्यमाणः सन् त्मना आत्मना स्वयमेव अभि रक्षति सर्वं जगदभिपश्यन् पालयति राशि-चक्रस्य वायुप्रेर्य्यत्वात् सूर्य्यस्यापि तत् प्रेर्य्यत्वम् । स सूर्य्यः प्रजाः पिपर्त्ति वृष्ट्यादिप्रदानेन पालयति बहुधा विराजति विशेषेण दीप्यते च । पिपर्त्ति बहुधा-पुपोष पुरुधा-इति पाठौ ॥ १ ॥

(विभ्राट्) विशेष दीप्यमान सूर्य (यज्ञपतौ अविह्रुतं आयुः दधत्) यज्ञ करनेवाले यजमानकी अकुटिल आयु करता हुआ (बृहत् सोम्यं मधु पिबतु) बहुतसे सोमरूप मधुको पिये (यः वातजूतः) जो सूर्य महावायु करके प्रेरणा किया हुआ (त्मनः अभिरक्षति) स्वयं ही सब जगत्को देखता हुआ पालन करता है (प्रजाः पिपर्त्ति) वर्षा करके प्रजाओंका पालन करता है (बहुधा विराजति) विशेषरूपसे विराज-मान होता है ॥ १ ॥

३ २　 ३ १　२र　　 ३ १ २ ३ १ २　 ३ २　३ १ २
विभ्राड्बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे
३ १　 २र　३　　 १　२ ३ १　२ ३ १ २ ३　 २
सत्यमर्पि । अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्यो-
　२　 ३　१　२　३ २
तिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । विभ्राट् विभ्राजमानं बृहत् प्रौढं सुभृतं सुपुष्टं वाज-सातमं वाजस्यान्नस्य बलस्य वा दातृतमं धर्म्मन् धर्म्मणि वायुना धारयितव्ये दिवः द्युलोकस्य धरुणे धारके सूर्य्यमण्डले अर्पितं निक्षिप्तं सत्यम् अनश्वरम् अमित्रहा अमित्राणामप्रियाणां हन्तृ वृत्रहा आवृ-ण्वतां हन्तृ दस्यूनामुपक्षपयितॄणां हन्तृतमम असुरहा असुराणां क्षेप्तॄणां

घातकं सपत्नहा सपत्नानां शत्रूणामपि घातकम् ईदृग्भूतं ज्योतिः सौरं तेजः जज्ञे प्रादुर्भवति ॥ २ ॥

(विभ्राट् बृहत्) विशेष विराजमान और प्रौढ़ (सुभृतं वाजसातमम्) पूर्ण पुष्ट और बल तथा अन्नका परम दाता (धर्मन् दिवः धरुणे अर्पितम्) वायुके धारण करने योग्य द्युलोकके धारणकर्त्ता सूर्यमण्डल में स्थापित (सत्यं अमित्रहा) अविनाशी और आवरण करने वालों का नाशक (दस्युहन्तमं असुरहा) वृथा समय खानेवालों और असुरों का नाशक (सपत्नहा ज्योतिः जज्ञे)तथा शत्रुओंका नाशक सूर्यसंबंधी तेज प्रकट हुआ ॥ २ ॥

३२उ ३ १ २३ १ २ १ ३ २ ३ १ २
इदꣳ श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्ध-
१ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
नजिदुच्यते बृहत् । विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इदं सौरं तेजः श्रेष्ठं प्रशस्यतमं ज्योतिषाम् अन्येषां ग्रहनक्षत्रादीनामपि ज्योतिः प्रकाशकम् अतएव उत्तमम् उत्कृष्टं विश्वजित् विश्वस्य सर्वस्य जेतृ धनजित् धनस्य जेतृ बृहत् प्रभूतमुच्यते एवंगुणविशिष्टमिति सर्वैरभिधीयते अपि च विश्वभ्राट् विश्वस्य प्रकाशयिता भ्राजः भ्राजमानः महि महान् सूर्यः दृशे दर्शनाय उरु विस्तीर्णं सह तमसोऽभिभवितृ अच्युतं च्युतिरहितम् अविनाशम् ओजः तेजोरूपं बलं पप्रथे विस्तारयति ॥ ३ ॥

(इदम्) यह सौर तेज (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (ज्योतिषां ज्योतिः) ग्रह नक्षत्र आदि अन्य ज्योतियोंका भी प्रकाशक (उत्तमं विश्वजित्) उत्तम और विश्वको जीतने वाला (धनजित् बृहत् उच्यते) धनको जीतने वाला और ऐसे अनेकों गुणोंसे युक्त कहाता है (विश्वभ्राट् भ्राजः) विश्वभरको प्रकाशित करने वाला और स्वयंप्रकाशमय (महि सूर्यः) महान् सूर्य (दृशे) दीखनेका कारण (उरुसहः) बहुत विस्तारवाला और अन्धकारका नाशक है (अच्युतम् ओजः पप्रथे) अविनाशी तेजोरूप बलको फैलाता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्यो-
२र
तिरशीमहि ॥ १ ॥

ऋ० शक्तिः । छ० बृहती । दे० इन्द्रः । अथ इन्द्र क्रतुमिति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम, तत्र प्रथमा । हे इन्द्र ! न अस्मभ्यं क्रतुं कर्म प्रज्ञानं वा आभर आहर । अपि च यथा पिता पुत्रेभ्यः प्रयच्छति तथा नः अस्मभ्यं शिक्ष धनं देहि । हे पुरुहूत बहुभिराहूत ! यामनि यज्ञे जीवाः वयं ज्योतिः सूर्यम् अशीमहि प्रतिदिनं प्राप्नुयामः ॥ १ ॥

(इंद्र नः क्रतुं आभर हे इंद्र ! हमैं कर्मका फल वा ज्ञानदो (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसे पिता पुत्रोंको धन देता तैसे (नः शिक्ष) हमैं धन दो (पुरुहूत यामनि जीवाः) अनेकोंके पुकारे हुए इन्द्र ! यज्ञमें हम (ज्योतिः अशीमहि) सूर्यको प्रतिदिन पायें ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २ ३
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवा-
१ २ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३२
सोऽव क्रमुः । त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो
२
अति शूर तरामसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! अज्ञाताः अज्ञातगमनाः वृजनाः हिंसकाः दुराध्यः दुष्टाभिसन्धयः नः अस्मान् मा अवक्रमुः मावचक्रमुः । हे शूर ! त्वया वयं स्तोतारः प्रवतः प्रवणकाः सन्तः शश्वतीः बह्वीः अपः अतितरामसि अतितरामः ॥ २ ॥

हे इन्द्र (अज्ञाताः वृजनाः दुराध्यः अशिवासः नः मा अवक्रमुः) जिनका गमन न मालूम हो ऐसे पापाचरणी दुष्टबुद्धि अमङ्गल पुरुष हमारा तिरस्कार न करसकें (शूर त्वया वयं प्रवतः,) हे शूर ! तेरे द्वारा हम स्तोता रक्षित होते हुए (बह्वीः अपः अतितरामसि) बहुत से जलोंके पार हों ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २३ ? २
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
१ २ ३१ २ ३ २ ३ २ ३
विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा

१ २
नक्तं च रक्षिषः ॥ १ ॥

ऋ० भर्गः । छ० ककुप्प्रगाथः । दे० अग्निः । अद्याद्येति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । अद्याद्य यदद्यशब्दवाच्यमहरस्ति, तत्र सर्वत्र, हे इन्द्र ! श्वःश्वः श्वशब्दवाच्यं च यत्, तत्र सर्वत्र, त्वं त्रास्व अस्मान् रक्ष । तथा परे च परस्मिन् तृतीयेऽहनि च त्रास्व । हे सत्पते ! सतां पालकेन्द्र ! विश्वा च सर्वाण्यपि अहा अहानि सर्वेष्वप्यहःसु नः अस्मान् जरितॄन् स्तोतॄन् रक्षिषः रक्षसि । तथा दिवा नक्तं च रक्षिषः रक्षसि रक्ष वा ॥ १ ॥

(इन्द्र) हे इन्द्र (अद्याद्य) जिस २ समयको आज इस शब्दसे कहाजाता है (श्वःश्वः) जिसको कल्ल शब्दसे कहाजाता है (परे च) और जो परसोंके शब्दसे कहाजाता है उस समयमें हमारी रक्षा करो (सत्पते) हे सज्जनोंके पालक इन्द्र (विश्वा च अहा) सब ही दिनोंमें (नः जरितॄन् दिवा नक्तं च रक्षिषः) हम स्तोताओं की रात दिन रक्षा करो ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
कम् । उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या
२र ३ १ २
वज्रं मिमिक्षतुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयं मघवा धनवान् इन्द्रः प्रभङ्गी प्रभञ्जनशीलः, शूरः विक्रान्तः तुवीमघः प्रभूतधनः सम्मिश्लः सम्यङ्मिश्रयिता । किमर्थम् ? वीर्याय वीर्यकरणाय । कमिति पादपूरणः । एवं महानुभावो भवति । अथ प्रत्यक्षवादः । हे इन्द्र ! ते उभा उभौ अपि बाहू वृषणा कामानां वर्षकौ हे शतक्रतो ! बहुप्रज्ञ ! या यौ बाहू वज्रम् आयुधं निमिमिक्षतुः परिगृह्णीतः ॥ २ ॥

(अयं मघवा वीर्याय कम्) यह धनवान् इन्द्र वीर्य करनेके लिये (प्रभङ्गी शूरः) शत्रुओंको तोडने वाला और पराक्रमी (तुवीमघः संमिश्लः) बहुतसे धनवाला और भले प्रकार मिलानेवाला है (इंद्र ते उभा बाहू वृषणा) हे इन्द्र ! तेरे दोनों भुजा अभीष्टफलोंकी वर्षा करनेवाले

हैं (शतक्रतो वा वज्रं निमिमिक्षतुः) हे इन्द्र ! जो तुम्हारे भुजदण्ड वज्ररूपी आयुधको धारण करते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ १२ ३१२ ३१२

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।

१२

सरस्वन्तꣳ हवामहे ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० गायत्री । दे० सरस्वान् । अथ चतुर्थखण्डे— जनीयन्त इत्येकर्चं प्रथमं सूक्तम् सैषोच्यते । जनीयन्तः जायन्ते आस्वपत्यानीति जनयः जायाः ता इच्छन्तः, पुत्रीयन्तः पुत्रान् कामयमानाः, सुदानवः शोभनदानाः, अग्रवः उपगन्तारो वयं नु अद्य सरस्वन्तं तं देवं मध्यमस्थानं हवामहे आह्वयामहे ॥ १ ॥

(जनीयन्तः पुत्रीयन्तः) पत्नीको चाहते हुए और पुत्रोंकी इच्छा करते हुए (सुदानवः अग्रवः) श्रेष्ठ दान करनेवाले शरणमें आये हुए हम (नु सरस्वन्तं हवामहे) आज सरस्वती देवताका आवाहन करते हैं

३१ २ ३२ ३१२ ३१२३ १२

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।

१२ ३ १ २

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० सरस्वती । उत न इत्येकर्च द्वितीयं सूक्तम् सैषोच्यते । उत अपि च नः अस्माकं प्रियासु प्रियाणां मध्ये प्रिया प्रियतमा सप्तस्वसा गायत्र्यादीनि सप्त छन्दांसि स्वसारो यस्यास्तादृशी नदीरूपया स्तुत्या गङ्गाद्याः सप्त नद्यः स्वसारः सुजुष्टा सुष्ठु पुरातनैश्च ऋषिभिः सेविता, एवम्भूता सरस्वती देवी स्तोम्या स्तोतव्या भूत् भवतु ॥ १ ॥

(उत नः प्रियासु प्रिया) और हमारे प्रिय पदार्थोंमें भी परमप्रिय (सप्तस्वसा) गायत्री आदि सात छन्द जिसकी बहिन हैं और नदीरूपमें गङ्गा आदि सात नदियें जिसकी बहिन हैं ऐसी (सुजुष्टा सरस्वती)पुरातन ऋषियोंकी सेवन कीहुई सरस्वती देवी(स्तोम्या भूत्) स्तुति करने योग्य है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

२ ३ १ २ ३ १ २
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छ० गायत्री । दे० सविता । अथ तत्सवितुर्वरेण्यमिति तृतीयसूक्तरूपा सैषा । यः सविता देवः नः अस्माकं धियः कर्माणि धर्मादिविषया वा बुद्धीः प्रचोदयात् प्रेरयेत् तत् तस्य देवस्य द्योतमानस्य सवितुः सर्वान्तर्य्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्य वरेण्यं सत्स्वरूपतया ज्ञेयतया च भजनीयं भर्गः अविद्यातत्कार्य्ययोर्भर्जनात् भर्गः स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः धीमहि वयं ध्यायामः यद् भर्गो धियः प्रचोदयति तद् ध्यायाम इति समन्वयः। यद्वा यः सविता सूर्य्यः धियः कर्माणि प्रचोदयात् प्रेरयति तस्य सवितुः सर्वस्य प्रसवितुः देवस्य द्योतमानस्य सूर्य्यस्य तत् सर्वैर्दर्शनीयतया प्रसिद्धं वरेण्यं सर्वैः सम्भजनीयं भर्गः पापानां तापकं तेजोमण्डलं धीमहि ध्येयतया मनसा धारयेम । यद्वा भर्गशब्देनान्नमभिधीयते, यः सविता देवः धियः प्रचोदयति तस्य देवस्य प्रसादात् तद् भर्गः अन्नादिलक्षणं फलं धीमहि धारयामः तस्याधारभूता भवेमेत्यर्थः । भर्गशब्दस्यान्नपरत्वे धीशब्दस्य कर्मपरत्वे चाथर्वणम्—वेदाश्छन्दांसि—सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः कर्माणि धियस्तदु ते प्रब्रवीमीति प्रचोदयात् सविता याभिरेनीति। (गो० ब्रा० १, ३२) भर्गः—भ्रस्ज पाके (तु० उ०) असुन् भ्रस्जोरोपधयोरमन्यतरस्याम् (६, ४, ४७)—इति रोपधयोर्लोपे रमागमश्च न्यङ्क्वादिपाठात् कुत्वम् (७, ३, ५२)। धीमहि—ध्यायतेर्लिङि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७६)—इति सम्प्रसारणम व्यत्ययेनात्मनेपदम् यद्वा धीङ् आधारे (दि० आ०) लिङि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७३)—इति विकरणस्य लुक्। प्रचोदयात्—चोदयतेर्लेटि आडागमः, यद्वृत्तयागादनिघातः आगमस्यानुदात्तत्वे णित्स्वरः ॥ १ ॥

(यः सविता देवः) जो सविता देवता (नः धियः प्रचोदयात्) हमारे कर्मोंको वा धर्मादिविषयक बुद्धियोंको प्रेरणा करता है (तत देवस्य सवितुः) तिस द्योतमान और सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रेरक जगत्स्रष्टा परमेश्वरके (वरेण्यं भर्गः) सत्स्वरूप होनेके कारण वा जानने योग्य होनेके कारण भजनीय और अविद्या एवं उसके कार्योंको भस्म करने वाले स्वयंज्योति परब्रह्मस्वरूप तेजका (धीमहि) हम ध्यान करते हैं । अथवा (यः नः धियः प्रचोदयात्) जो सूर्य हमारे कर्मोंको प्रेरणा करता है (सवितुः देवस्य) उस सबके उत्पादक

द्योतमान सूर्य के (तत् वरेण्यं भर्गः) उस सबके देखनेयोग्य होने से प्रसिद्ध सबके भजनयोग्य और पापोंको ताप देने वाले तेजोमण्डलको (धीमहि) हम ध्यान करने योग्य मान कर मनमें धारण करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २
सोमानाᳬ स्वरणं० ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या पीछे ऐन्द्रपर्वके द्वितीय अध्यायमें होचुकी है ॥२॥

२ ३ १ २
अग्न आयूᳬषि पवसे ॥ ३ ॥

ऋ० मेधातिथिः वैखानसः वा । छ० गायत्री । दे० ब्रह्मणस्पतिः अग्निः वा । अथ सोमानाम स्वरणम्—इति अग्न आयूंषि पवसे इति चतुर्थ—पञ्चमसूक्तात्मकयोर्द्वयोर्ऋचोः प्रतीके ते चान्यत्रम्नाते (छ० आ०-२, १, ५, ५, १ भा०) (उ० आ० ७, १, १२, १) ॥ २ ॥

(अग्न आयूंषि पवसे) हे अग्ने ! तू हमारी आयुओंको पवित्र करता है (नः ऊर्जं इषं च आसुव) हमारे लिये बल और अन्न पहुंचा (दुच्छुनां आरे बाधस्व) कुत्तोंकी समान दुष्ट राक्षसोंको हम से दूर कर और पीडित कर ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य० ॥ १ ॥

ऋ० यजतः छ० गायत्री । दे० मित्रावरुणौ । अथ ता नः शक्तमिति तृचात्मकम् षष्ठम् सूक्तम् तत्र तान्—इति प्रथमाया ऋचः प्रतीकमिदम् सा चान्यत्र (उ० ४, २, ४, ३) आम्नाता ॥ १ ॥

(ता) वह मित्रावरुण देवता (नः) हमें (पार्थिवस्य दिव्यस्य) पृथिवीके और द्युलोकके (महः रायः शक्तम्) बहुतसा धन देनेको समर्थ हों (वाम् महि क्षत्रम्) तुम्हारा पूजनीय बल (देवेषु) देवताओं में प्रसिद्ध है, उसकी हम स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा
३ १ २
देवौ वर्द्धते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ऋतेन उदकेन निमित्तभूतेन ऋतं यज्ञं सपन्ता स्पृशन्तौ इषिरम् एषणवन्तं दक्षं प्रवृद्धयजमानं हविर्वा आशाते व्याप्नुतः

अद्रुहा अद्रोग्धारौ देवौ द्योतमानौ मित्रावरुणौ वर्द्धेते प्रवृद्धौ भवतः २

(ऋतेन ऋतं सपन्ता) ऋतसे यज्ञको स्पर्श करतेहुए (इषिरं दक्षं आशाते) इच्छा करनेवालेवृद्धिको प्राप्त हुए यजमानको रक्षा करते हुए (अद्रुहा देवौ वर्द्धेते) द्रोह न करनेवाले मित्रावरुण देवता वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३क२र ३ २उ ३ १ २

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।

३ २ ३ १ २

बृहन्तं गर्त्तमाशाते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वृष्टिद्यावा वृष्ट्यर्थो द्यौः स्तुतिर्ययोस्तौ वृष्टिद्यावा अथवा वृष्टिर्वर्षिका द्यौरन्तरिक्षं याभ्यां तौ तादृशौ रीत्यापा री गतिरे- षणयोः(क्र्या० प०)रीतिःप्राप्तिः सैव आप्तिरभिमतप्राप्तिर्ययोस्तौ तादृशौ इषः अन्नस्य पती स्वामिनौ वृष्टिप्रदत्वात् स्वामित्वम् दानुमत्याः दान- वत्याः दानुमुर्चिताया इत्यर्थः । एतद्दिड्विशेषणम् एवमहानुभावौ मित्रा वरुणौ बृहन्तं महान्तम् गर्तं रथम् आशाते व्याप्नुतः अधितिष्ठतो यागार्थम् ॥ ३ ॥

(वृष्टिद्यावा) वृष्टिके निमित्त है स्तुति जिनकी (रीत्यापा) जिन का इच्छित वस्तुकी प्राप्ति होती है ऐसे (दानुमत्याः इषः पती) देने याग्य अन्नके स्वामी मित्रावरुण देवता (बृहन्तं गर्त्तम् आशाते) बड़े भारी रथ पर सवार होते हैं ॥ ३ ॥

३ १ २ ३१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।

१ २ ३ २ ३ २

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

ऋ० मधुच्छन्दः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ युञ्जन्तीति तृचा- त्मकं सप्तमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । इन्द्रो हि परमैश्वर्य्ययुक्तः परमै— श्वर्यं चाग्निवाय्वादित्यनक्षत्ररूपेणावस्थानात् उपपद्यते ब्रध्नम् आदि- त्यरूपेणावस्थितम्, अरुषम् हिंसारहिताग्निरूपेणावस्थितं, चरन्तम् वायुरूपेण सर्वतः प्रसरन्तमिन्द्रं परि तस्थुषः परितोऽवस्थिता लोकत्र- यवर्तिनः प्राणिनो युञ्जन्ति स्वकीये कर्मणि देवतात्वेन सम्बधं कुर्व- न्ति । तस्यैवेन्द्रस्य मूर्त्तिविशेषाणि रोचना नक्षत्राणि दिवि द्युलोके रोचन्ते प्रकाशंते अस्य मन्त्रस्यैकार्थपरत्वं ब्राह्मणान्तरे व्याख्यातम्—

युञ्जन्ति ब्रध्नमित्याह—असौ वा आदित्यो ब्रध्नः आदित्यमेवास्मै युनक्ति । अरुषमित्याह—अग्निर्वा अरुषः अग्निमेवास्मै युनक्ति । चरन्तमित्याह—वायुर्वै चरन् वायुमेवास्मै युनक्ति । परितस्थुष इत्याह—इमे वै लोकाः परितस्थुषः इमानेव अस्मै लोकान् युनक्ति । रोचन्ते रोचना दिवीत्याह—नक्षत्राणि वै रोचना दिवि, नक्षत्राण्येवास्मै रोचयन्तीति ॥ १ ॥

परम ऐश्वर्यवान् होनेसे ही इंद्रका इंद्रपन है, उस परम ऐश्वर्य को इंद्र अग्नि वायु आदित्य और नक्षत्ररूपसे स्थित होकर पाता है, सो ही दिखाते हैं–(ब्रध्नम्) आदित्यरूपसे स्थित (अरुषम्) हिंसा रहित अग्निरूपसे स्थित (चरन्तम्) वायु रूपसे सर्वत्र विचरने वाले इंद्रको (परितस्थुषः) त्रिलोकीमें वर्त्तमान प्राणी (युञ्जन्ति) देवता मान कर अपने कर्ममें संयुक्त करते हैं (रोचना दिवि रोचन्ते) उस इंद्रके ही मूर्तिविशेष नक्षत्र द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ १२
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
१ २ ३ २ ३ १ २
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अस्य ब्रध्नादिशब्दप्रतिपाद्यस्यादित्यादि—मूर्त्तिभिस्तत्र तत्रावस्थितस्येन्द्रस्य रथे हरी एतन्नामानौ द्वावश्वौ सारथया युञ्जन्ति इंद्रसम्बन्धिनोरश्वयोर्हरिनामत्वं हरी इंद्रस्य रोहितोऽग्नेः (निघ० १, १५, १—२)—इति पठितत्वात् । कीदृशौ हरी ? काम्या कामयितव्यौ विपक्षसा विविधे पक्षसी रथस्य पार्श्वौ ययोस्तौ विपक्षसौ रथस्य द्वयोः पार्श्वयोर्योजितावित्यर्थः, शोणा रक्तवर्णौ, धृष्णू प्रगल्भौ, नृवाहसा नृणाम् पुरुषाणामिन्द्रतत्सारथिप्रमुखाणाम् वाढारौ ॥ २ ॥

(अस्य रथे) आदित्यादि मूर्त्तियोंमें स्थित इंद्रके रथमें (काम्या विपक्षसा) चाहने योग्य और रथके दोनों ओर जुड़ेहुए (शोणा धृष्णू) लालवर्णके और प्रगल्भ (नृवाहसा हरी युञ्जन्ति) इंद्र और उसके सारथि आदिको लेजाने वाले हरिनामक दो घोड़ोंको सारथि रथमें जोड़ते हैं ॥ २ ॥

३२ ३ १ २३२३ १ २ ३ १ २३ १ २
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे ।
२ ३ १ २
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे मर्याः! मनुष्याः! इदमाश्चर्यं पश्यतेत्यध्याहारः। किमाश्चर्यम्? इति तत्रोच्यते-आदित्यरूपोऽयमिन्द्रः उषद्भिः दाहकैः रश्मिभिः प्रतिदिनमुषःकालैर्वा सम्भूय अजायथाः उदपद्यत। अथवा सूर्यस्यैवास्तमये मरणमुपचर्य व्यत्ययेन बहुवचनं कृत्वा सम्बोधनं क्रियते—हे मर्य! प्रतिदिनम् त्वमजायथा इति वाज्यम्। किङ्कुर्वन्? अकेतवे रात्रौ निद्राभिभूतत्वेन प्रज्ञानरहिताय प्राणिने केतुम् कृण्वन् प्रातः प्रज्ञानं कुर्वन् अपेशसे रात्रावन्धकारावृतत्वेनाभिव्यक्तत्वात् रूपरहिताय पदार्थाय प्रातरन्धकारनिवारणेन पेशः रूपनामैतत (निघ० ३, ७, १०) रूपमभिव्यज्यमानं कुर्वन् अकेतवे, अपेशसे—इति चतुर्थ्यौ षष्ठ्यर्थे द्रष्टव्यौ॥ ३॥

(मर्याः) हे मनुष्यो! इस आश्चर्यको देखो कि-यह आदित्यरूप इंद्र (अकेतवे केतुम् कृण्वन्) रात्रिमें निद्राके वशमें होनके कारण ज्ञानरहित प्राणीको प्रातः कालके समय ज्ञान देता हुआ (अपेशसे पेशः) रात्रिमें अंधकारसे ढके होनेके कारण मानो रूप रहित हुए को रूप देता हुआ अर्थात् प्रकाशित करताहुआ (उषद्भिः समजायथाः) प्रति दिन उषः कालोंके द्वारा उदित होता है॥ ३॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
अयꣳ सोम इन्द्र तुभ्यꣳ सुन्वे तुभ्यं पवते
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २र३२उ ३
त्वमस्य पाहि। त्वꣳ ह यं चकृष त्वं ववृष इन्दुं
१ २ ३ १ २ ३ १ २
मदाय युज्याय सोमम्॥ १॥

ऋ० उशना। छ० त्रिष्टुप्। दे० सोमः। अथ पञ्चमे खण्डे-अयम् सोम इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे इंद्र! अयम् सोमः इंद्राय तुभ्यम् सुन्वे सूयते सुनोतेः कर्मणि लटि लोपस्त आत्मनेपदेषु (७, १, ४१)—इति त—लोपः तुभ्यम् त्वदर्थमेव पवते पूयते। त्वञ्च अस्य अमुम् पाहि पिव त्वं ह यम् इन्दुं सोमं चकृषे करोषि त्वं यं च ववृषे वृतवानसि। किमर्थम्? मदाय मदार्थं युज्याय सहायाय, सोम इंद्राय बलकरत्वात् सहाय इति प्रसिद्धम्। यमेवम् करोषि त्वम् तम् पाहीति समन्वयः॥ १॥

(इंद्र अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे) हे इंद्र! यह सोम तुम्हारे लिये संस्कारयुक्त किया है (तुभ्यं पवते) यह तुम्हारे लिये पवित्र होता

है (त्वं अस्य पाहि) तुम इसको पियो (त्वं ह यं चकृषे) तुमने ही जिस सोमको किया है (इन्दुं सोमं मदाय युज्याय त्वं ववृषे) जिस दीप्त सोमको मदके लिये और सहायताके लिये तुमने वरण किया है ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २
स ईँ रथो न भूरिषाडयोजि महः पुरूणि
३ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३क २र
सातये वसूनि । आदीं विश्वा नहुष्याणि
३ १ २ ३ १२ ३ १ २
जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्तु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । स ईम् सोऽयं भूरिषाट् भूरिभारस्य वोढा रथो न रथ इव अयोजि युज्यते, कीदृशः सः ? महः महान् ! किमर्थमयोजि ? पुरूणि बहूनि वसूनि धनानि सातये अस्मभ्यं दातुम् आदीं योगानन्तरम् विश्वा विश्वानि कर्माणि नहुष्याणि नहुषा मनुष्याः तेषाम् सम्बंधीनि जाता जातानि अस्मद्विरोधीनि ऊर्ध्वा उन्मुखानि वने वननीये स्वर्षाता स्वर्षाता—संग्रामनामैतत् स्वर्गलाभयुक्ते संग्रामे नवन्तु गच्छन्तु नवतिर्गतिकर्मा (२, १४, २९) । यद्वा, सोमं संग्रामे युद्धार्थिनः सङ्गच्छन्ति ॥ २ ॥

(स ई महः) वह यह महान् इंद्र (भूरिषाड् रथः इव) अधिक बोझ सहनेवाले रथकी समान (पुरूणि वसूनि सातये) हमें बहुतसे धन प्राप्त होनेके लिये (अयोजि) यज्ञमें संयुक्त किया जाता है (आदीम्) युक्त होनेके अनन्तर (विश्वा नहुष्याणि जाता) सकल मनुष्योंके हमारे विरोधी पुरुष (ऊर्ध्वा) ऊपर को मुख करके (वने स्वर्षाता नवन्तु) प्रार्थनीय स्वर्गलाभ करानेवाले संग्राममें जायँ ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २र ३ १ २
शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वाऽनभिशस्ता
३ २उ ३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दिव्या यथा विट् । आपो न मक्षु सुमतिर्भवा
३ १ २ ३ २उ ३ २
नः, सहस्राप्सा पृतनाषाड् न यज्ञः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम ! शुष्मी बलवांस्त्वं शर्द्धो न मारुतं मरुतां बलमिव पवस्व । तत्र दृष्टांतमेव स्पष्टयति-यथा दिव्याः विट् प्रजा अनभिशस्ताः अभिशस्ता निन्दिताः अनिन्दिताः पवन्ते मरुतो वै देवानां

विशः-इति हि ब्राह्मणम् । किञ्च आपा न उदकानीव मक्षु क्षिप्रं पवमानस्त्वं सुमतिः भव नः अस्माकम् । किञ्च, सहस्राप्साः अप्सइति रूपनाम (निघ० ३, ७, ६) बहुरूपस्त्वं पृतनाषाट् न पृतनानामभिभवितेन्द्र इव यज्ञः यष्टव्यो भवसीति ॥ ३ ॥

हे सोम ! (शुष्मी मारुतं शर्द्धः न पवस्व) बलवान् तू मरुत् देवताओंके बलकी समान पवित्र हो (यथा दिव्याः विट् अनभिशस्ताः) जैसे दिव्य प्रजायें अनिन्दितरूपसे पवित्र होती हैं (आपः न मक्षु नः सुमतिः भव) जलोंकी समान शीघ्र पवित्र हुआ तू हमारे लिये सुमति हो (सहस्राप्साः पृतनाषाट् न यज्ञः) अनेकों रूपवाला तू सेनाओंका तिरस्कार करनेवाले इंद्रकी समान पूजनीय है ॥ ३ ॥

१२ ३२३ २ ३ १ २ ३२
त्वमग्ने यज्ञानाᳬ होता विश्वेषाᳬ हितः ।
३२ ३ १ २३ १२
देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ त्वमग्नइति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! त्वं विश्वेषां सर्वेषां सप्तसंस्थारूपेण भिन्नानाम् यज्ञानाम् होता होमनिष्पादकोऽसि । यद्वा, यज्ञानां सम्बन्धी देवानामाह्वाता भवसि । कुतः ? इत्यत आह-यस्मात् त्वं मानुषे मनोः सम्बन्धिनि मनुष्ये जने यजमाने देवेभिः देवैः हितः होतृत्वेन निहितोऽसि तस्मादित्यर्थः ॥ १ ॥

(अग्ने त्वं विश्वेषां यज्ञानां होता) हे अग्निदेव ! तुम सकल यज्ञोंमें होमको सिद्ध करनेवाले हो, क्योंकि (देवेभिः मानुषे जने हितः) देवताओंने तुमको मनुष्य यजमानोंमें होतारूपसे स्थापन करा है ॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
२ ३ २ २ ३ १ २
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! स त्वं नः अस्माकं अध्वरे यज्ञे मन्द्राभिः मदकरीभिः स्तुत्याभिर्वा जिह्वाभिः ज्वालाभिः महः महतः देवान् यज हविर्भिस्तर्पय च । कथम् तत् ? इति चेत्, उच्यते—देवान् यष्टव्यानिन्द्रादीन् आ वक्षि आवह ततो यक्षि च यज च हवींषि तेभ्यो देहीत्यर्थः ॥ २ ॥

हे अग्ने !(सः नः अध्वरे)वह तुम हमारे यज्ञमें (मन्द्राभिः जिह्वाभिः) स्तुति योग्य ज्वालाओंसे (महः यज्ञ) देवताओं का यजन करो (देवान् आवक्षि) इंद्रादि देवताओंका आवाहन करो (यक्षि च) और उनको हवि देकर तृप्त भी करो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा ।

१ २ ३ १ २

अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ २ ॥

अथ तृतीया । हे वेधः विधातः ! सुक्रतो शोभनकर्मन् ! देव दानादिगुणयुक्त अग्ने ! त्वं यज्ञेषु दर्शपौर्णमासादियागेषु अध्वनः महामार्गान् पथश्च क्षुद्रमार्गांश्च अञ्जसा जवेन वेत्थ जानासि हि यस्मादेवं तस्मात् यज्ञमार्गात् भ्रष्टम् यजमानं पुनस्तं मार्गं प्रापयेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(वेधः सुक्रतो देव अग्ने) हे विधातः ! कर्म को श्रेष्ठ करनेवाले दानादिगुण युक्त अग्ने ! तुम (यज्ञेषु अध्वनः पथः च वेत्थ) यज्ञोंमें बड़े मार्ग और छोटे मार्गोंको भी जानते हो इसकारण यज्ञमार्गसे चूके हुए यजमामको ठीक मार्ग बताओ ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ २ १ २

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।

३ १ २ ३ १ २

विदथानि प्रचोदयन् ॥ १ ॥

ऋ० देवश्रवाः देववातो वा । छ० गायत्री ! दे० अग्निः । अथ होता देव इति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । होता होमनिष्पादकः अमर्त्यः मरणरहितः देवः द्योतमानः विदथानि वेदितव्यानि कर्माणि प्रचोदयन् प्रकर्षेण प्रेरयन् सोऽग्निः मायया कर्मविषयाभिज्ञानेन युक्तः सन् पुरस्तात् कर्म्मप्रारम्भकाले एव एति अस्मानागच्छति

(होता अमर्त्यः) होमको सिद्ध करने वाला और अमर (देवः विदथानि प्रचोदयन्) प्रकाशवान् और जानने योग्य कर्मोंको प्रेरणा करता हुआ अग्नि (मायया) कर्मविषयक ज्ञानके साथ (पुरस्तात् एति) कर्म आरम्भ होनेके प्रथमकालमें ही हमारे समीप आता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते

१ २ ३ २ ३ १ १
विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वाजी बलवान् अग्निः वाजेषु युद्धेषु धीयते देवैः शत्रुहननार्थं निधीयते। किञ्च अध्वरेषु अग्निहोत्रादिषु प्रणीयते अध्वर्य्वादिभिः प्रकर्षेणाहवनीयादिस्थानेषु प्रक्षिप्यते अतएव विप्रः मेधावी सन्नग्निः यज्ञस्य अग्निहोत्रादेः साधनः साधको भवति ॥ २ ॥

(वाजी वाजेषु धीयते) बलवान् अग्नि संग्रामोंमें देवताओं करके शत्रुओंके नाशके लिये स्थापन कियाजाता है (अध्वरेषु प्रणीयते) अग्निहोत्रादिके विषैं अध्वर्यु आदिकों करकै आहवनीय आदि स्थानों में स्थापित कियाजाता है, इसीकारण (विप्रः यज्ञस्य साधनः) मेधायुक्त अग्नि यज्ञादिका साधक होता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।
१ २ ३ २ ३ १ २
दक्षस्य पितरं तना ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। योऽग्निः धिया आधानपवमानेष्टिरूपेण कर्मणा चक्रे आहवनीयरूपतया कृतोऽभूत् अतएव वरेण्यः सर्वैर्यजमानैः कर्माङ्गत्वेन वरणीयः यश्चाग्निः भूतानां स्थावरजङ्गमात्मकानां भूतजातानामन्तः गर्भं स्वात्मानमेव गर्भरूपतया आदधे सर्वत्र दधार पितरं सर्वस्य जगतः पालकं तमिममग्निं दक्षस्य दक्षप्रजापतेः तना तनया वेदिरूपा भूमिर्दर्शपौर्णमासाग्निहोत्रादिकर्मसिध्यर्थं धारयति । भूमेर्दक्षदुहितृत्वे मन्त्रवर्णः-अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्षस्य दुहिता तव इति ॥ ३ ॥

जो अग्नि (धिया चक्रे) आधाना पवमानेष्टिरूप कर्मके द्वारा आहवनीय रूपसे कियागया, इसीकारण (वरेण्यः) सकल यजमानोंके कर्मका अङ्गरूप होनेसे जो अग्नि (भूतानां गर्भं आदधे) स्थावर जङ्गमरूप सकल प्राणियोंके भीतर अपनेको ही गर्भरूपसे सर्वत्रस्थापन करता हुआ (पितरं दक्षस्य तना) सकल जगत्के पालक उस अग्निको दक्ष प्रजापतिकी पुत्री वेदीरूपा भूमि दर्श पौर्णमास अग्निहोत्र आदि कर्मकी सिद्धिके लिये धारण करती है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

२ ३ १ २ ३ ३ ३ १ २ ३ १ २
आ सुते सिञ्चत श्रियꣳ रोदस्योरभिश्रियम् ।

३ १ २ ३ २
रसा दधीत वृषभम् ॥ १ ॥

ऋ० प्रगाथो हर्यतः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ षष्ठे खण्डे आसुते सिञ्चत इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। सुते दुग्धे गो-पयसि श्रियं श्रयणमाजं पयः आसिञ्चत । हे अध्वर्यवः! आसिञ्चत कीदृ-शमाजम् ? रोदस्योः कर्मणि षष्ठी द्यावापृथिव्यौ अभिश्रियम् अभिश्र-यन्तम् अग्निसंयोगात् तावत् पर्यन्तं प्रवृद्धमित्यर्थः अथवा तत्काव-श्विनौ द्यावापृथिव्याविवि येके (निरु० नै ६, १) इति यास्केनोक्तत्वात् अश्विनोरभिश्रियमित्यर्थः । सेचनान्तरं रसा रसे आजे पयसि वृषभं वर्षकमग्निं दधीत धारयेत् अजाया आग्नेयीत्वात् क्षीरस्याप्यग्निसंयो-जनमुचितम् वा आग्नेयी एषा यदजा—इति हि ब्राह्मणम् ॥ १ ॥

हे अध्वर्युओं ! (सुते) गोदुग्धमें (रोदस्योः अभिश्रियम्) द्यावा पृथिवीका आश्रय करनेवाले अर्थात् अग्निदेवताका संयोग होनेसे द्यावा पृथिवीमें बढ़ेहुए (श्रियं आसिञ्चत) बकरीके दूधको सींचो सेचनके अनन्तर (रसा वृषभं दधीत) बकरीके दूधमें अभीष्टदाता अग्निका स्थापन करो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
ते जानत स्वमोक्या३ꣳ सं वत्सासो न मातृभिः
३ १ २ ३ १ २
मिथो न सन्त जामिभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ते ता गावः जानत ज्ञातवत्यः अथवा सामान्या-कारेण ते इति पुन्निर्देशः । किम् ? स्वम् स्वकीयम् ओक्यम् निवासं महावीरं तत्र दोग्धुमगमन्नित्यर्थः तदेवाह—वत्सासो न यथा वत्साः मातृभिः जननीभिः सह सङ्गच्छन्ते जामिभिर्बन्धुभिः सहिता गावः मिथः प्रत्येकं नसन्त सङ्गच्छन्ते महावीरम् ॥ २ ॥

(ते स्वं ओक्यासं जानत) वह गौएँ अपने निवास महावीरको जाने अर्थात् वहां दुहानेको आवैं (वत्सासः मातृभिः न) जैसे बछड़े माताओंके पास जाकर मिलजाते हैं । तैसे (जामिभिः मिथः नसन्त) अपने बंधुओं सहित हरएक महावीरको आकर मिले ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।

१ २ ३ २उ ३क २र

इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । महावीरस्य स्रक्वेषु वप्सतः ज्वालया भक्षयतोऽग्नेः नमः अन्नं धरुणम् इंद्रे अग्ना—इति वक्ष्यमाणत्वात् इंद्राग्न्योर्धारकमाजं दिवि अन्तरिक्षे उप कृण्वते उपकुर्वते ऋत्विजः यदाग्निर्महावीरं दहति तदा तस्योपर्युभयविधं क्षीरम् आसेचयन्तीत्यर्थः । एवं महावीरे आसिच्य इंद्रे अग्ना अग्नौ च स्वः सर्वं गव्यमाजञ्च नमः अन्नम् । अथवा स्वः अन्तरिक्षे योजयन्तीति शेषः ॥ ३ ॥

(स्रक्वेषु वप्सतः) ज्वालाओंसे भक्षण करनेवाले अग्निके (नमः) अन्नरूप गो दुग्ध को (धरुणम्) इंद्र अग्निके धारक अजादुग्धको (दिवि उपकृण्वते) अन्तरिक्षमें अर्पण करते हैं अर्थात जब अग्नि महावीरस्थान को जलाता है तब उसके ऊपर दोनों प्रकारके दूधको सींचते हैं तदनन्तर (इंद्रे अग्ना स्वः नमः) इंद्र और अग्निके विषयमें सम्पूर्ण गोदुग्ध और अजादुग्धरूप अन्नको अर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृ-

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २उ

म्णः । सद्यो जज्ञानो निरिणाति शत्रूननु यं

३ २३ १ २

विश्वे मदन्त्यूमाः ॥ १ ॥

ऋ० बृहद्दिवः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथ तदिदास इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । तत् जगत्कारणत्वेन सर्ववेदान्तप्रसिद्धत्त् इत् शब्दोऽवधारणे भुवनेषु भू सत्तायां (भ्वा० प०) सत्सु पृथिव्यादिषु लोकेषु मध्ये तत् जगत्कारणं ब्रह्मैव ज्येष्ठं प्रशस्ततमम् आस बभूव, तस्य परमार्थत्वात् तद्व्यतिरिक्तानां व्यावहारिकत्वाच्च यद्वा, ज्येष्ठं वृद्धतमं जगत्कारणत्वेन सर्वेषामादिभूतं बभूव । असतेर्लिटि छन्दस्युभयथा (३, ४, ११७)—इति सार्वधातुकत्वाद् अस्तेर्भूः (२, ४, ५२)—इति भूभावाभावः । यद्वा वृद्धं तदेव ब्रह्म स्वप्रकाशतया आस दिदीपे । अस गतिदीप्त्यादानेषु (भ्वा० उ०), अस्माल्लिटि रूपम् यतः उपादानभूतात् यस्माद् ब्रह्मणः उग्रः उद्गूर्णः त्वेषनृम्णः प्रदीप्तबलः सूर्यात्मक इन्द्रः जज्ञे जातो बभूव सूर्यं न हि-चक्षोः सूर्यो अजायत—इति, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्—

इति च । जनिकर्त्तुः प्रकृतिः (१, ४, ३०-इति प्रकृतेरपादानसंज्ञायां यत इति पञ्चमी जज्ञे इति गमहनजनेत्यादिनोपधालोपः (६, ४, ९८), द्विर्वचनेऽचि (१, १, ५९)—इति तस्य स्थानिवद्भावात् द्विर्वचनादि, यद्वृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६)—इति निघातप्रतिषेधः । स च जज्ञानः जायमानः एव सद्यः शीघ्रं शत्रून् शातयितॄन् मन्देहादीन् राक्षसान् निरिणाति निहन्ति यद्वा, उपासकरूपानां पापरूपान् शत्रून्निहन्ति। तथा च ब्राह्मणम्-सद्यो ह्येष जातः पाप्मानमपहन्-इति । जज्ञान इति जनेर्लिटः कानचि रूपमेतत् । रिणाति रीगतिरेषणयोः (प० क्र्यादिकः) प्वादीनां ह्रस्वः (७, ३, ८)—इति ह्रस्वत्वम् विश्वे सर्वे जनाः अवन्ति रक्षन्तीति ऊमाः प्राणिनः अवतेरौणादिको मन् प्रत्ययः ज्वरत्वरेदिना (६, ४, २०) वकारोपधयोः स्थाने ऊठ् सर्वे प्राणिनः यं सूर्यात्मकमुद्यन्तमिन्द्रम् अनुलक्ष्यमदर्थमुदगात् मदर्थमुदगात्-इति मदन्ति हृष्यंति मदी हर्षे (दि० प०) व्यत्ययेन शप् (३, १, ८५) तथा च ब्राह्मणम्-भूतानि वै विश्व ऊमास्त एनमनुमदन्ति उदगादुदगादिति इति । तैत्तिरीयकञ्च-तस्मात्सर्व एव मन्यते मां प्रत्युदगादिति-इति । यद्वा, यं मनुष्यादिभिर्मार्यन्तमनु पश्चात् सर्व प्राणिनः अभीष्टप्राप्त्या हृष्यंति अनुर्लक्षणे (१, ४, ८५)-इति अनोः कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया (२, ३, ८) स इंद्रो जज्ञे इत्यन्वयः ॥ १ ॥

(ज्येष्ठं तदित्) जगत्का कारण और सबका आदिपुरुष होनेके कारण सबका बड़ा वह ब्रह्म ही (भुवनेषु आस) पृथिवी आदि सकल लोकोंमें स्वप्रकाशरूपसे दीप्त हुआ (यतः उग्रः त्वेषनृम्णः जज्ञे) जिस उपादानरूप ब्रह्मसे उग्र और प्रदीप्त बलवाला सूर्यरूप इंद्र प्रकट हुआ और वह (जज्ञानः सद्यः शत्रून निरिणाति) उदय होताहुआ शीघ्र ही उपासकोंके पापरूप शत्रुओंका नष्ट करता है (य अनु विश्वे ऊमाः मदन्ति) जिस सूर्यरूपसे उदय होतेहुए इंद्रकी ओरको देखकर सकल प्राणी यह मुझे ही अभीष्ट फल देनेको उदित हुआ है ऐसा जानकर प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

दधाति । अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते न-

३ १ २ ३ १ २

वन्त प्रभृता मदेषु ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। शवसा बलेन वावृधानः वर्द्धमानः, अतएव भूर्योजाः बहुबलः शत्रुः शातयिता इंद्रः दासाय उपक्षयकारिणे शत्रवे भियसं भीतिं दधाति निदधाति करोति। अव्यनत् च व्यनत् च विविधमनिति श्वसिमीति व्यनत, सप्राणकं जङ्गमं, तद्विलक्षणमव्यनत् स्थावरम्। तदुभयमपि सस्नि संस्नातम् इंद्रेण सम्यक् शोधितं भवति। स्नातेः आदृगमहनः (३, २, १७१)—इति व्यत्ययेन कर्मणि किनप्रत्ययः। यद्वा, अन्तर्णीत—ण्यर्थात कर्त्तर्येव किन। वृष्ट्यादिना सम्यक्स्नापयिता शोधिता भवति न लोकाव्यय (२, ३, ६९)—इति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः। शिष्टः पादः प्रत्यक्षकृतः—हे इंद्र! ते तव मदेषु हर्षेषु हविषा स्तुत्या च जातेषु सत्सु प्रभृता प्रभृतानि प्रकर्षेण धृतानि पोषितानि या सर्वाणि भूतजातानि सम्नवन्तः सङ्गच्छन्ते स्तोतुं हवींषि च दातुं समर्हीभवन्तीत्यर्थः। नवतिर्गतिकर्मा निघ० (२, १४, २९)। प्रभृता—प्र पूर्वात् विभर्तेः कर्मणि निष्ठा शेश्छन्दसि बहुलम् (६, १, ७०)—इति शे—लोपः गतिरनन्तरः (६, २, ४९) इति गतेः प्रकृतिस्वरत्वम्॥ २॥

(शवसा वावृधानः) बलसे बढ़ाहुआ इसी कारण (भूर्योजाः शत्रुः) बडा बलवान् और वैरियोंको काटनेवाला इंद्र (दासाय भियसं दधाति) समग्रको नष्ट करनेवाले शत्रुके लिये भय करता है (अव्यनत् च व्यनत च सस्नि) श्वास लेनेवाले जंगम और श्वास न लेनेवाले स्थावर प्राणियोंको भी वर्षा आदिसे सम्यक् प्रकार शुद्ध करता है। हे इंद्र! (ते मदेषु) तुम्हें हवि और स्तुतियोंसे हर्ष प्राप्त होनेपर (प्रभृता सं नवन्ते) तुम्हारे विशेषरूपसे पोषण कियेहुए सकल प्राणी स्तुति करनेको और हवि अर्पण करनेको इकट्ठे होते हैं॥ २॥

२उ ३ २ १ ३ २ ३ २उ ३ २उ
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भव
१ २ ३ १ २र ३ १ २ २
न्त्यूमाः। स्वादोः स्वदीयः स्वादुना सृजा
२ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
समदः सुमधुः मधुनाभियोधीः॥ ३॥

अथ तृतीया। हे इंद्र! त्वे त्वयि सुपां सुलुक् (७, १, ३९)—इति सप्तम्येकवचनस्य शे आदेशः। विश्वे सर्वे यजमानाः क्रतुम् अनुष्ठेयं कर्म वृञ्जन्ति समापयन्ति। अपि-शब्दो ब्राह्मणोक्तः सर्वभूतानां सवमनसां

समुच्चयार्थः । सर्वाणि पृथिव्यादीनि भूतानि सर्वेषां प्राणिनां मनांसि सर्वे यज्ञक्रतवश्च व्याप्ते त्वय्येव यजमानैः परिसमाप्यन्त इत्यर्थः । तथा च ब्राह्मणम्—त्वयीमानि सर्वाणि भूतानि मनांसि सर्व क्रतवोऽपि वृञ्जन्तीत्येतदाह—इति यद् यस्मात् एते ऊमाः तर्पकाः अवतेस्तर्पणार्थादौणादिको मन्प्रत्ययः, ज्वरत्वरेत्यादिना (६, ४, २०) वकारोपधयोरूठ् । ईदृशा यजमानाः पूर्वमेकाकिनः सन्तः पश्चात् द्विः द्विवारस्त्रीरूपेण पुंरूपेण च जाताः सन्तः पुनरपत्येन सार्द्धं त्रिः त्रिवारं जन्मभाजो भवन्ति । एक एवात्मा स्त्रीपुंरूपेण जायते अर्द्धो वा एष यत् पत्नीति श्रुतेः । पुत्रोऽप्यात्मैव—आत्मा वै पुत्रनामासि—इति (श० ब्रा० १४, ९, ४, २६) श्रुतेः । यत एवमेतेऽभिवृद्धा भवन्ति, ततो वा गम्यते त्वय्येवानुष्ठितं सर्वं कर्म परिसमापयन्तीति तथा च ब्राह्मणम्—द्वौ द्वौ सन्तो मिथुनौ प्रजायेते प्रजापत्या—इति हे इंद्र ! त्वञ्च स्वादो गृहधनादेरपि स्वादीयः स्वादुतरं प्रियतरमपत्यं स्वादुना स्वादुभूतेन मिथुनेन मातापित्रात्मकेन संसृज संयोजय । यद्वा, स्वादुना मिथुनभावेनोत्पन्नं तदपत्यमपि संयोजय । एतदेवाह—अदः तत् अपत्यं मधु मधुरं मधुना मदहेतुना मिथुनांतरेण पौत्रेण वा सु सुष्ठु अभि योधीः अभितः क्रीडय । धातूनामनेकार्थत्वात् युद्धयतिरत्र क्रीडार्थो वर्त्तते । मिथुनं वै स्वादु प्रजा स्वादु इत्यादि ब्राह्मणमत्रानुसन्धेयम् ॥३॥

हे इंद्र ! (त्वे विश्वे क्रतुं वृञ्जन्ति) तुम्हारे विषैं सकल यजमान अनुष्ठानयोग्य कर्मको समाप्त करते हैं (अपि) पृथिवी आदि सकल भूत सकल प्राणियोंके मन और सकल यज्ञ तुम्हारे विषैं ही समाप्त कियेजाते हैं (यत् एते ऊमाः) क्योंकि-यह तुम्हें तृप्त करनवाले यजमान (द्विः त्रिः भवंति) पहिले एकाकी होतेहुए फिर स्त्री और पुरुषरूप से उत्पन्न होकर दो वार और तदनंतर संतान सहित तीनवार जन्म धारण करनेवाले होते हैं । हे इंद्र तुम (स्वादोः स्वादीयः) प्यारे घर धन आदिकी अपेक्षा भी परम प्रिय संतानको (स्वादुना संसृज) प्रियरूप माता पिताके मिथुनसे संयुक्त करो (अदः मधु) इस प्रिय सन्तानको (मधुना सु अभियोधीः) हर्षके हेतु अन्य पौत्ररूप संतान से भलेप्रकार क्रीड़ा कराओ ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्प-

२र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ १ २

त्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् । स इं

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
ममाद महि कर्म कर्त्तवे महामुरुथ्ँसैनथ्ँसश्च
३२ ३२ ३ १ २र ३ १ २र
द्देवो देवथ्ँ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥ १ ॥

ऋ०गृत्समदः। छ०अष्टिः। दे०इंद्रः। अथ त्रिकद्रुकेष्विति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। महिषः महान् पूज्यः तुविशुष्मः बहुबलः तृम्पत् तृप प्रीणने (तुदादिः प०) तृप्यन् इंद्रः त्रिकद्रुकेषु ज्योतिर्गौरायुरित्येतन्नामकेषु आभिप्लविकेष्वहः सु सुतम् अभिषुतं यवाशिरं यवमयसक्तुभिर्मिश्रितम् । आङ्पूर्वस्य श्रीणातेः क्विपि अपस्पृधेयाम (६, १, ३६) इत्यादिना शिर इत्यादेशः। तं सोमं विष्णुना सह अपिवत् यथावशम् पूर्वं यथा तं सोमं अकामयत तथा अपिवत् वश कांतौ (अदा० प०) बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७३)—इति शपो लुगभावः। पीतः सः सोमः महां महांतम् उरुं तेजसा विस्तीर्णम् ईम् एनम् इंद्रं ममाद अमादयत्। किमर्थम्? महि महत् वृत्रहननादिलक्षणं कर्म कर्त्तवे कर्त्तुं सत्यः इंदुः स्रवन् देवः द्योतमानः सः सोमः सत्यं यथार्थभूतं देवं सोमं कामयमानम् एनम् इंद्रम् सश्चत् सश्चतिर्व्याप्तिकर्मा व्याप्नोतु॥ तृम्पत् तृपत्—इति पाठौ सत्य इंदुस्सत्यमिंद्रम् सत्यमिंद्रं सत्य इंदुः—इति अस्मिन् तृचे प्रत्येकमृगवसाने व्यत्ययेन पाठौ॥ १॥

(महिषः तुविशुष्मः) पूजनीय और अधिक बलवाला (तृम्पत्) तृप्त होता हुआ इंद्र (त्रिकद्रुकेषु सुतम्) ज्योति गौ और आयु नामक अभिप्लवके दिनोंमें अभिषुत (यवाशिरं सोमम्) यवके सत्तुओंसे मिलेहुए सोमको (विष्णुना) विष्णु देवताके साथ (यथावशं अपिवत्) यथेच्छ पीता है (सः) वह सोम (महाम् उरुम्) महान् और विस्तीर्ण तेजवाले (ईम्) इस इंद्रको (महि कर्म कर्त्तवे) वृत्रवध आदि महान् कर्म करनेके लिये (ममाद) हर्षयुक्त करता हुआ (सत्यः इंदुः) सत्यरूप और टपकता हुआ (देवः सः) द्योतमान वह सोम (सत्यं देवम्) सत्यस्वरूप और सोमकी कामना करनेवाले (एनं इंद्रं सश्चत्) इस इंद्रको व्यापै॥ १॥

२ ३ ३ १ २र ३ १ २र
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
३ २ ३ २ ३क २र ३ २उ ३ १ २
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः।

१ ३ १२ ३२उ ३ २ ३ १२ ३ १२
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनथ्ँ
३२ ३२ ३१ २र ३ १२र
सश्चद्देवो देवथ्ँ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्द्र ! त्वं क्रतुना कर्मणा प्रज्ञया वा साकं सह जातः साकम् आजसा बलेन ववक्षिथ विश्वं वोढुमिच्छसि। वहेः संश्नन्तस्य लिटि मंत्रत्वाद्रूपम् न भवति। किञ्च हे प्रचेतन प्रकृष्टप्रज्ञानेन्द्र ! त्वं वीर्यैः शत्रुहननादिलक्षणैः पराक्रमैः साकं सह वृद्धः प्रवृद्धः मृधः हिंसकान् संग्रामान् वा सासहिः। न लोकाव्ययेति (२, ३, ६९) षष्ठीप्रतिषेधः तेषामभिभविता विचर्षणिः पुण्यकृतो पुण्यकृतश्च विशेषेण द्रष्टा स्तुवते स्तोत्रं कुर्वाणाय यजमानाय राधः साधकं काम्यं प्रार्थनीयं वसु धनं दाता सन् ववक्षिथेति समन्वयः। सैनमिति पराक्षनिर्देशः सिद्धार्थश्च प्रचेतन—इति छन्दोगानां विशेषपाठः ॥२॥

हे इंद्र ! तू (क्रतुना साकं जातः) कर्म वा प्रज्ञाके साथ प्रकट हुआ था (ओजसा साकं ववक्षिथ) बलके साथ विश्वके भारको उठाना चाहता है (प्रचेतन) हे श्रेष्ठ ज्ञानवाले इंद्र ! (वीर्यैः साकं वृद्धः) शत्रुवध आदि पराक्रमोंके साथ वृद्धिको प्राप्तहुआ तू (मृधः सासहिः) संग्रामोंका तिरस्कार करता है (विचर्षणिः स्तुवते) पुण्य करनेवाले और पाप करनेवालोंको विशेषरूपसे देखनेवाला तू स्तुति करनेवाले यजमानके अर्थ (राधः काम्यं वसु दाता) इष्टसाधक प्रार्थनायोग्य धन देता है (सत्यः इंदुः) सत्यस्वरूप और टपकता हुआ (देवः सः) द्योतमान वह सोम (सत्यं देवम्) सत्यस्वरूप और स मकी कामना करनेवाले (एनं इन्द्रम् सश्चत्) इस इंद्रको व्यापे ॥ २ ॥

२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अधः त्विषीमाथ्ँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा
२र ३ २ ३ १ २ १ २
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अध-
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनथ्ँ सश्च-
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २र
द्देवो देवथ्ँ सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥ ३ ॥

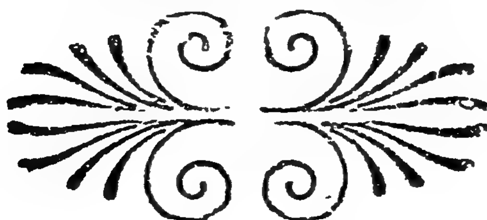
अथ तृतीया। अध अथ सोमपानानन्तरं त्विषीमान् इंद्रः दीप्तिमान् ओजसा बलेन कृविं कृविनामासुरं युधा युद्धेन अभ्यभवत् अभिभूतवान्। किञ्च स इंद्रः रोदसी द्यावापृथिव्यौ आ अपृणत् स्वतेजसा समन्तात् पूरयामास तथा अस्य पीतस्य सोमस्य मज्मना बलेन प्रवावृधे प्रकर्षेण वर्द्धते यद्वा अस्य कृवेः असुरस्य मज्मना सारेण रोदसी अपूरयत्। स इंद्रः सोमं द्विधा विभज्य अन्यं भागं स्वकीये जठरे अधत्त। ईम् एनम् अपरं भागं देवेभ्यः प्रारिच्यत प्रारेचयत् एतेनार्द्धमिन्द्राय अर्द्धमन्येभ्योऽपि देवेभ्य इत्युक्तं भवति। तथा च तैत्तिरीयकम्——यत सर्वेषामर्द्धमिन्द्रः प्रति तस्मादिन्द्रो देवतानां भूयिष्ठभाक्तमः-इति।हे इंद्र! त्वं प्रचेतय एवम्भूतं सोमं देवांश्च सम्यक् ज्ञापय प्रापयेत्यर्थः अन्यत् पूर्ववत्। प्रचेतय——इति विशेष-पाठः॥१३॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थ-महेश्वरः॥ १३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज परमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रन्थे त्रयादशोऽध्यायः॥१३॥

(अथ त्विषीमान्) सोमपान करनेके अनन्तर दीप्तिमान् इंद्र (ओजसा कृविं युधा अभ्यभवत्) बल करके कृविनामक असुरको युद्धमें जीतता हुआ (रोदसी आपृणत्) द्यावा पृथिवीको अपने तेज से पूर्ण करता हुआ (अस्य मज्मना प्रवावृधे) इस पिये हुये सोमके बलसे अधिक वृद्धिको प्राप्त हुआ। वह इंद्र सोमके दो भाग करके (अन्यं जठरे अधत्त) एक भागको अपने पेटमें धरता हुआ (ईं प्रारिच्यत) दूसरे भागको देवताओंके लिये बचाता हुआ। हे इंद्र! तू (प्रचेतय) उस सोमको पीनेके लिये देवताओंको चेतन कर। (सत्यः इंद्रः) सत्यस्वरूप और टपकता हुआ (देवः सः) द्योतमान वह सोम (सत्यं देवम्) सत्यस्वरूप और सोमकी कामना करने वाले (एनं इंद्रं सश्चत्) इस इंद्रको व्यापै॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके त्रयोदशाऽध्यायस्य षष्ठः खण्डः
त्रयोदशाध्यायश्च समाप्तः



❀ श्रीहरिः ❀

अथ चतुर्दशोऽध्याय आरभ्यते।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
३ २ ३ २ ३ १ २
सूनुꣳ सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥

ऋ० प्रियमेधः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । तत्र प्रथमे खण्डे अभिप्रगोपतिमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे स्तोतः ! गोपतिं गवां स्वामिनम् इंद्रम् अभि प्र अर्च प्रकर्षेण पूजय गिरा स्तुत्या यथाविदे स यथा स्वात्मानं स्तुतप्रकारं जानाति यथा वा यागं प्रति गंतव्यमिति जानाति तथार्चेति । कीदृशमिन्द्रम्? सत्यस्य यज्ञस्य वा सूनुं पुत्रं तत्रानुरक्तत्वात् सूनुरित्युपचर्य्यते सत्पतिं सतां पालकम् ॥१॥

हे स्तोता ! (सत्यस्य सूनुम्) यज्ञके पुत्रसमान (सत्पति गोपतिं) इंद्रं अभि प्र अर्च) सत्पुरुषोंके रक्षक गौओंके वा वेदमंत्रोंके स्वामी इंद्रको अधिकतासे पूजो (गिरा यथा विदे) स्तुतिसे जिस प्रकार वह जाने कि—मुझे यज्ञमें जाना चाहिये ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ हरयः ससृजिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
२ ३ २ ३ १ २
यत्राभि सन्नवामहे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हरयः हरितवर्णाः अश्वाः अरुषीः आरोचमानाः अधिबर्हिषि अधीति सप्तम्यर्थानुवादी बर्हिष्यास्तृते आ ससृजिरे आसृजन्तु यत्र यस्मिन् बर्हिषि स्थितमिन्द्रम् अभिसन्नवामहे अभिसंस्तुमः

(हरयः) पापहारी इंद्रके अश्व (अरुषी) दमकते हुए (अधिबर्हिषि) बिछी हुई कुशाओं पर (आससृजिरे) स्थित हों (यत्र अभि सन्नवामहे) जिन कुशाओं पर स्थित इंद्रकी हम स्तुति करते हैं ॥२॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
१ २ ३ २ ३ २
यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। इंद्राय गावः आशिरम् आश्रयणसाधनं पय आदि-कम् मधु मदकरं दुदुहे दुहते। कीदृशाय? वज्रिणे वज्रयुक्तायेन्द्राय यद् यदा उपह्वरे समीपे वर्त्तमानं मधु सोमरसं सीम् सर्वतः विदत् लभते तदा॥ ३॥

(गावः वज्रिणे इंद्राय मधु आशिरं दुदुहे) गौएं वज्रधारी इंद्रके लिये मधुर दुग्धादिको देती हैं (यत्) जब (उपह्वरे मधुसीम् विदत) समीपमें वर्त्तमान सोमरसको सब ओरसे पीता है॥ ३॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रꣳ समत्सु भूषत।

२ ३ १ १ ३ १ २ ३ १ २

उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम १

ऋ० नृमेधः पुरुमेधः वा। छ० बृहती। दे० अश्विद्वयम्। अथ आनो विश्वास्विति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे ऋत्विजः! विश्वासु सर्वासु समत्सु असुरयुद्धेषु हव्यं सर्वैर्देवैरात्मरक्षार्थमाह्वातव्यमिंद्रमुद्दिश्य नः अस्माकं यज्ञे ब्रह्माणि स्तोत्राणिहवींरूपाण्यन्नानि वा तथा सवनानि प्रातःसवनादीनि त्रीणि सवनानि च उप आ भूषत उपसमीपे सम्यगलङ्कुरुत। हे वृत्रहन्! वृत्रस्यासुरस्य पापस्य वा हन्तः! परमज्याः युद्धे शत्रुहननार्थं परमा अविनश्वरी ज्या मौर्वी यस्य स तथोक्तः। यद्वा, परमान् बलेन प्रकृष्टान् शत्रून् जिनाति हिनस्तीति परमज्याः हे ऋचीषम! स्तुतिभिरभिमुखीकरणीय! एवम्भूतेन्द्र! त्वम् अस्मदभिलषितानि प्रयच्छेति शेषः। हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु इति पाठौ, वृत्रहन्परमज्याऋचीषम वृत्रहापरमज्या ऋचीषमः इति च पाठौ॥ १॥

हे ऋत्विजो! (विश्वासु समत्सु) सकल असुर युद्धोंमें (हव्यम) सकल देवताओं करके अपनी रक्षाके लिये पुकारने योग्य इन्द्रको लक्ष्य करके (नः ब्रह्माणि सवनानि उप आभूषत) हमारे यज्ञमें स्तोत्रोंको वा हविरूप अन्नोंको तथा प्रातःसवन आदिको समीपमें सुशोभित करो (वृत्रहन् परमज्याः ऋचीषम) पापके नाशक और युद्धोंमें शत्रुओंके नाशके लिये अविनाशी प्रत्यञ्चा वाले वा बल करके श्रेष्ठ शत्रुओंको मारने वाले तथा स्तुतियोंके द्वारा अभिमुख करनेके योग्य हे इन्द्र! तुम हमें इच्छित पदार्थ दो॥ १॥

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २

तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः २

अथ द्वितीया। हे इन्द्र! प्रथमः सर्वेषां मुख्यस्त्वं राधसां धनानां दाता असि यद्वा धनदातॄणां मध्ये त्वं प्रथम आदिमो भवसि। तथा ईशानकृत् तव स्तोतॄन् ईशानान् ऐश्वर्ययुक्तान् कुर्वन् त्वं सत्यः सत्यकर्मासि यथार्थकर्ता भवसीत्यर्थः। यस्मादेवं तस्मात् वयं तुविद्युम्नस्य बहुधनवतो बह्वन्नस्य वा शवसः बलस्य पुत्रस्य शत्रुवधार्थं बलकरत्वेनोत्पन्नत्वात् बलपुत्रस्य अत एव महः महतः तव युज्या योग्यानि धनानि आ वृणीमहे सम्भजामहे॥ २॥

हे इन्द्र! (प्रथमः त्वं राधसां दाता असि) सबोंमें मुख्य तुम धनोंके दाता हो (ईशानकृत् सत्यः असि) अपने उपासकोंको ऐश्वर्ययुक्त करने वाले तुम सत्यकर्मा हो। इसीसे हम (तुविद्युम्नस्य) बहुतसे धन और अन्न वाले (शवसः पुत्रस्य महः) बलके पुत्र समान तुम महात्मासे (युज्या वृणीमहे) धनोंकी प्रार्थना करते हैं॥ २॥

३ २ ३ १ २ ३ २र ३क २र ३ २ ३ २ ३ १

प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ

२र १ २ ३ १ २र ३ १ २

निरधुक्षत। इन्द्रमभि जायमानꣳ समस्वरन्॥ १॥

ऋ० त्रसदस्युः छ० ऊर्ध्वबृहती। दे० सोमः। अथ प्रत्नम्पीयूषमिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तं—तत्र प्रथमा दिवि द्युलोकात् तत्र स्थितैर्देवैः पीयूषं पातव्यं प्रत्नं पुराणं यत् सोमरूपमन्नम् उक्थ्यम् प्रशस्यमस्ति पूर्व्यं पुरातनं तत् सोमरूपमन्नं महः महतः गाहात् गाहनात् दिवः द्युलोकात् निरधुक्षत आभिमुख्येन निर्दुहन्ति। ततः दुग्धं मित्रम् इन्द्रम् अभि लक्ष्य जायमानं तं सोमं समस्वरन् स्तोतारः संस्तुवन्ति। प्रत्नं दिवः इति च पाठः॥ १॥

(दिवः पीयूषम्) स्वर्गवासी देवताओंके पीने योग्य (पुराणं यत्) पुरातन सोमरूप अन्न (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय है (पूर्व्यम्) उस पुरातन सोमरूप अन्नको (महः गाहात् दिवः आ निरधुक्षत) महान् अवगाहन द्युलोकसे अभिमुख होकर दुहते हैं तदनन्तर (इन्द्रं अभि जायमानं समस्वरन्) इन्द्रके निमित्त उत्पन्न हुए सोमकी स्तुति करते हैं॥ १॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

आदीं के चित्पश्यमानास आप्यं वसुरुचो

३ २ ३क २र   ३ १   २र   ३ १
दिव्या अभ्यनूषत । दिवो न वारछँ सविता
२
व्यूर्णुते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । आत् अनन्तरं पश्यमानासः एनं पश्यंतः दिव्याः दिवि भवाः वसुरुचः नाम केचित् आप्य बन्धुपु साधुम् ईम् एनं सोमम् अभ्यनूषत अभ्यस्तुवन् । कस्मादनन्तरम ? उच्यते दिवः देवः द्योतमानः सविता सर्वस्य प्रेरकः सूर्य्यः वारम आवरकम् अन्धकारं न व्यूर्णुते नापगमयति । तदा एनमस्तुवन् सूर्योदयात् प्रागेव हि सोमं स्तुवंति खलु दिवो न वारं वारन्न देवः इति पाठौ ॥ २ ॥

(आत् पश्यमानासः दिव्यः वसुरुचः) तदनन्तर इसको देखते हुए द्युलोकवासी वसुरुच (आप्यं ईं अभ्यनूषत) बान्धवोंके योग्य इस सोमकी स्तुति करतेहुए । किसके अनन्तर उन्होंने स्तुति की सो कहते हैं, कि—जबतक (दिवः सविता) द्योतमान सबका प्रेरक सूर्य अंधकार नहीं दूर करता है अर्थात् सूर्योदयसे पहिले ही सोम की स्तुति की ॥ २ ॥

२ ३ २ १   २   ३ १ २   ३ २ ३ २ ३
अध यदि मे पवमान रोदसी इमा च विश्वा
१ २ ३ २ ३ १ २   ३२उ   ३ १ ३ १ २
भुवनाभि मज्मना । यूथे न निष्ठा वृषभो
२र
वि राजसि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे पवमान ! सोम ! अध अनन्तरं यद् यदा इमे रोदसी द्यावापृथव्यौ इमा इमानि विश्वा विश्वानि भुवना भूतजातानि च मज्मना बलेन यूथेन निष्ठा वृषभः यथा कश्चित् वृषभः गवां यूथे वृन्दे निष्ठाः निष्ठितो वर्त्तते । तद्वत् यूथस्थानीयेषु भूतजातेषु निष्ठितो भवसि । स त्वं तथा कुर्वन् वि राजसे विशेषेण राजसि । भुवनाभिजन्मना भुवनेषु वितिष्टसे इति पाठौ ॥ ३ ॥

(पवमान अध) हे सोम ! इसके अनन्तर (यत् इमे रोदसी)जब इन धावापृथिवीके विषैं (इमा विश्वा भुवना च) इन सकल प्राणियों में भी (मज्मना) बल करकै (यूथे निष्ठा वृषभः न) गौओंके समूह

में विराजमान वृषभकी समान (विराजसि) विराजमान होते हैं ॥३॥

३ २ ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इममू षु त्वमस्माकँ सनिं गायत्रं नव्याँसम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छं० गायत्री । दे० अग्निः । इममूष्विति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् । तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! त्वम् अस्माकम् अस्मत्सम्बन्धिनम् इमम् ऊ सु पुरोदेशेऽनुष्ठीयमानमपि सनिं हविर्दानं नव्यासं नवतरं गायत्रं स्तुतिरूपं वचोऽपि देवेषु देवानामग्रे प्रवोचः प्रकर्षेण ब्रूहि ॥ १ ॥

(अग्ने) हे अग्ने ! (त्वं अस्माकम्) तुम हमारे (इमं ऊ सु) इस सामने होतेहुए भी (सनिम्) हविके दानको (नव्यांसं गायत्रं देवेषु प्रवोचः) नवीन स्तुतिरूप वचनको भी देवताओंके आगे विशेष रूप से कहो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
३ २ ३ १ २
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे चित्रभानो ! विचित्ररश्मियुक्ताग्ने ! विभक्ता विशिष्टस्य धनस्य प्रापयिता असि भवसि । तत्र दृष्टांतः उच्यते, आकार उपमार्थीयः । यथा सिंधोः नद्याः उपाके समीपे ऊर्मा ऊर्मितरङ्गोपलक्षितं कुल्यादिरूपं प्रवाहं विभजन्ति तद्वत् दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय सद्यः तदानीमेव क्षरसि कर्मफलभूतां वृष्टिं करोषि २

(चित्रभानो विभक्ता असि) हे विचित्र किरणोंवाले अग्ने ! तुम विशिष्ट धनके देनेवाले हो (सिंधोः उपाके ऊर्मा आ) जैसे नदीके समीपमें तरङ्गरूपा छोटी २ गूलोंका विभाग करते हैं तैसे (दाशुषे सद्यः क्षरसि) हवि देनेवाले यजमानको तत्काल कर्मफलों की वर्षा करके देते हो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
२ ३ २ ३ १ २
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! परमेषु उत्कृष्टेषु द्युलोकवर्त्तिषु वाजेषु अन्नेषु नः अस्मान् आ भज सर्वतः प्रापय । मध्यमेषु अन्तरिक्षलोकवर्त्तिषु वाजेषु आभज । अन्तमस्य अन्तिकतमस्य भूलोकस्य सम्बंधीनि वस्वः वसूनि शिक्ष देहि ॥ ३ ॥

हे अग्न (नः परमेषु वाजेषु आभज) हमें उत्तम द्युलोकके भोगों में पहुँचाओ (मध्यमेषु आ) अन्तरिक्ष लोकके भोगोंमें पहुंचाओ (अंतमस्य वस्वः शिक्ष) भूलोकके धन दो ॥ ३ ॥

३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
३ १ २र
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥

ऋ० वत्सः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अहमद्धीति तृचात्मकं पञ्चमं सूक्तम् । तत्र प्रथमा । पितुः पालकस्य ऋतस्य सत्यस्य अवितथस्य इंद्रस्य मेधाम् अनुग्रहात्मिकां बुद्धिम् अहमित अहमेव परि जग्रह परिगृहीतवानस्मि नान्ये । हि यस्मादेवं तस्मात् अहं सूर्य्य इवाजनि सूर्यो यथा प्रकाशमानः सन् प्रादुर्भवति तथा अजनिषम् प्रादुरभुवम् । जग्रह जग्रोह इति पाठौ ॥ १ ॥

(पितुः सत्यस्य मेधाम्) पालन करनेवाले इंद्रकी अनुग्रहारूपा बुद्धिको (अहमित् परि जग्रह) मैंने ही पाया है, इसीकारण (अहं सूर्यः इव अजनि) मैं सूर्य्यकी समान प्रकाशमय प्रकट हुआ हूँ ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
२उ ३ २ ३ २ ३ २
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । कण्ववत् कण्व इव अहमपि प्रत्नेन चिरन्तनेन जन्मना गिरः इंद्रविषयाणि स्तोत्राणि शुम्भामि अलंकरोमि । येन स्तोत्रसमूहेन इन्द्रः शुष्मं शत्रूणां शोषकम् दधे इत् धत्त एव धारयत्येव यत् स्तोत्रमिंद्रे ईदृशं बलम् अवश्यं जनयति तत् स्तोत्रमलंकरोमीत्यर्थः । जन्मना मन्मना इति पाठौ ॥ २ ॥

(कण्व इव अहम्) कण्वकी समान मैं भी (प्रत्नेन जन्मना) पुरातन जन्म करके इंद्रके विषयके स्तोत्रोंको शोभायमान करता हूँ (येन

इंद्रः शुष्मं दधे इत्) जिस स्तोत्रसमूहके द्वारा इंद्र शत्रुओंके नाशक बलको अवश्य ही धारण करता है ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३१ २र ३ १ २ ३ २
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
१ २र ३ १ २
ममेद्वर्द्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! ये जनाः त्वां न तुष्टुवुः न स्तुवंति ये च ऋषयः मंत्राणां द्रष्टारः जनाः तुष्टुवुः त्वां स्तुवंति उभयेषां मध्ये ममेत् ममैव स्तोत्रेण सुष्टुतः शोभनं स्तुतः सन् वर्द्धस्व वृद्धो भव ॥ ३ ॥

(इन्द्र ये त्वां न तुष्टुवुः) हे इंद्र ! जिन्होंने तेरी स्तुति नहीं की (च ये ऋषयः तुष्टुवुः) और जिन ऋषियोंने तेरी स्तुति की उनमें (ममेत्, सुष्टुतः वर्द्धस्व) मेरे ही स्तोत्रसे उत्तमताके साथ स्तुति कियाहुआ वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः ।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।
१ २३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः ॥१॥

ऋ० अग्निः । छ० अनुष्टुप् । दे० विश्वे देवाः । अथ द्वितीयखण्डे-अग्नेविश्वेभिरिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् । तत्र प्रथमा । हे सहस्कृत ! सहसा बलेन कृत ! उत्पादित ! हे अग्ने ! विश्वेभिः विश्वैः सर्वैर्यष्टव्यतया स्थितैरग्निभिः सह ब्रह्म अस्माभिः क्रियमाणं स्तोत्रं हवीरूपमन्नं वा जोषि जुषस्व किञ्च ये अग्नयः देवेषु वर्त्तन्ते देवमनुष्येति (५, ४, ५६) सप्तम्यर्थे त्र प्रत्ययः य आयुषु ये चाग्नयो मनुष्येषु वर्त्तन्ते तेभिः तैः सर्वैः अग्निभिः सह न अस्माकं गिरः स्तुतिलक्षणा वाचः महय पूजय ॥ १ ॥

(सहस्कृत अग्ने) हे बलसे उत्पन्न कियेहुए अग्निदेव ! (विश्वेभिः अग्निभिः ब्रह्म जुषस्व) सकल पूजनीय अग्नियों सहित हमारे दिये हुए हविका सेवन करो (ये देवत्रा) जो अग्नि देवताओं में हैं (ये आयुषु) जो अग्नि मनुष्योंमें हैं (तेभिः नः गिराः महय) उन अग्नियों के सहित हमारी स्तुतिरूपा वाणियोंको पूजो ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २३ १ २र ३ १ २
प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः
१ २ ३ २ ३ २उ ३ २उ ३ १ २
तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः ॥२॥

अथ द्वितीया। यस्य वाजिनः यस्याग्नेर्वाजिनः हविर्लक्षणान्नवन्तः अनेके यष्टारः सन्ति सः अग्निः विश्वेभिः विश्वैः सर्वैर्यष्टव्यतया स्थितैरग्निभिः सः एकस्तच्छब्दोऽनुवादः। अस्मत् इति अस्मासु सुपां सुलुक् (६, १, ३९) इति सप्तम्या लुक्, आङोरुपसर्गयोः श्रवणादुचितक्रियाध्याहारः आ गच्छतु। सम्यङ् यथावत्कालातिक्रमेणेत्यर्थः। कथम्भूतः? वाजैः परिवृतः वाजैरस्मभ्यं दातव्यैरन्नैः परिवृतः परिवेष्टितः सहित इत्यर्थः। न केवलमस्मास्वेव यज्ञादिसिद्ध्यर्थमन्नैः परिवृतोऽग्निराच्छतु किं तर्हि? तनये अस्मत्पुत्रे आगच्छतु न केवलं पुत्रे तोके पुत्रपुत्रे दातव्यैर्वाजैः परिवृतोऽग्निरागच्छतु। इति परोक्षवृत्त्या अग्निः स्तूयते अस्मद्वंशे चाग्निसाध्यक्रियानुपरमः प्रार्थ्यते ।२।

(यस्य वाजिनः) जिस अग्निके हविसे यजन करनेवाले बहुत हैं (सः अग्निः) वह अग्नि (विश्वेभिः अग्निभिः) सकल पूजनीय अग्नियों सहित (वाजैः परीवृतः) हमें देनेयोग्य अन्नों सहित (सम्यक्) ठीक समय पर (अस्म प्र आ) हमारे यहां अधिकतासे आवै (सः तनये तोके) वह अग्नि हमारे पुत्र और पौत्रोंके यहाँ भी आवे ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३१२ ३१ २
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्द्धय।
१ २ ३१२ ३१ २र
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अग्ने! त्वम् अग्निभिः त्वद्विभूतिभूतैरन्यैरग्निभिः सार्द्धं नः अस्माकं ब्रह्म स्तोत्रं यज्ञं च वर्द्धय। तथा त्वं नः अस्माकं देवतातये यज्ञनामैतत् (निघ० ३, १७, १०) यागार्थं रायः धनस्य दानाय प्रदानाय चोदय दातॄन् प्रेरय ॥ ३ ॥

(अग्ने त्वं अग्निभिः) हे अग्ने! तू अपनी विभूतिरूप अग्नियों सहित (नः ब्रह्म यज्ञं च वर्द्धय) हमारे स्तोत्र और यज्ञको बढ़ा (त्वम् नः देवतातये रायः दानाय चोदय) तू हमारे यज्ञके निमित्त धनका दान करनेको देवताओंको प्रेरणा कर ॥ ३ ॥

१ २ ३२ ३१२ ३१ २र३ १२३
त्वं सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे

१ २ १ २र ३क२र
धियं दधुः । स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१॥

ऋ० असद्दस्युः । छ० ऊर्ध्वबृहती । दे० सोमः । अथ त्वे सोमेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सोम ! प्रथमाः पुरातनः यद्वा, यष्ट्व्यत्वेन सर्वेषां जनानां मुख्याः वृक्तबर्हिषः वृक्तं छिन्नं बर्हिर्यैर्यज्ञार्थमिति वृक्तबर्हिषः यजमानाः महे महते वाजाय बलाय श्रवसे अन्नाय च धियं बुद्धिं त्वे त्वयि दधुः निहितवन्तः, तस्मात् हे वीर ! समर्थ ! सोम ! तादृशः त्वं नः अस्मानपि संग्रामे वीर्याय सामर्थ्याय चोदय प्रेरय यद्वा, वीर्य्याय वीरे पुत्रे भवाय सुखाय नः अस्मान् प्रेरय ॥१॥

(प्रथमा वृक्तबर्हिषः) सबोंमें मुख्य और यज्ञके लिये कुशाछेदन करनेवाले (महे वाजाय श्रवसे) बहुतसे बल और अन्नके लिये (त्वे धियं दधुः) तुम्हारे विषैं बुद्धिको स्थापन करतेहुए तिसकारण वीर (सः त्वम्) हे वीर सोम ! वह तू (न वीर्याय चोदयः) हमैं सामर्थ के लिये प्रेरणा करो अथवा पुत्रविषयकसुखके लिये हमैं प्रेरणा करो१

३क २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र ३
अभ्यर्षि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जन-
२ ३ १ २ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पानमक्षितम् । शर्य्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः २

अथ द्वितीया । हे सोम ! त्वं श्रवसा अन्नेन हेतुना अभ्यर्षि ततर्दिथ हि पवित्रमभितृणवानसि । तत्र दृष्टान्तद्वयम् उत्सं न यथाकश्चित् जनपानम्, अस्मिन् जना उदकं पिबन्ति, तम् अक्षितम् अक्षीणं कश्चित् कञ्चन उत्सम् उत्सरणशीलं वाप्यादिकमभितृणत्ति यथा वा कश्चित् गभस्त्योः बाह्वोः शर्याभिः अङ्गुलीभिः भरमाणः उदकंसम्भरन् कश्चिदभितृणत्ति तद्वत् ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (श्रवसा अभ्यर्षिततर्दिथ) अन्नके कारण पवित्रको भेदन करता हुआ (न कञ्चित् जनपानं अक्षितं उत्सम्) जैसे मनुष्यों के पीने योग्य कुण्डको पूर्ण रखनेके लिये किसी बावड़ी आदिको तोड़ कर जल निकालते हैं (गभस्त्योः शर्याभिः भरमाणः न) जैसे जल भरनेवाला भुजाओंकी अंगुलियोंसे किसी जलाशयको तोडता है ॥२॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य

१ २   १ २   ३ २ ३ २   ३   १ २
चारुणः । सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अमृत ! मरणधर्मरहित ! सोम ! त्वम् ऋतस्य सत्यभूतस्य चारुणः कल्याणस्य अमृतस्य उदकस्य धर्म्मन् धारकेऽन्तरिक्षे कं सूर्य्यं मर्त्याय मनुष्यार्थम् अजीजनः किञ्च सनिष्यदत् सम्भजन् देवान् । स त्वम् वाजम् अच्छ संग्रामम् अभिलक्ष्य सदा असरः सरसि गच्छसि । मर्त्यायकं मर्त्येषु इति पाठौ ॥ ३ ॥

(अमृत) हे मरणधर्मरहित सोम (ऋतस्य चारुणः अमृतस्य धर्मन्) सत्य और कल्याणरूप जलको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (कं मर्त्याय अजीजनः) सूर्यको मनुष्योंके लिये उत्पन्न करता हुआ और (सनिष्यदत्) देवताओंका सेवन करताहुआ तू (वाजं अच्छ) संग्रामकी ओरको (सदा असरः) सदा जाता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २   ३ १ २   ३   १   २र
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
१   २र   २ ३
प्र राधाꣳसि चोदयते महित्वना ॥ १ ॥

ऋ० विश्वमनाः । छ० उष्णिक् । दे० इंद्रः । अथ इन्दुमिन्द्रायेति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे ऋत्विजः ! इन्दुं स्यन्दनशीलं सोमम् इन्द्राय इन्द्रार्थम् आ सिञ्चत आश्रयणद्रव्येणासेचनं कुरुत अभिषुणुतेत्यर्थः । ततः सोम्यं सोममयं मधु मदकरं सारसं पिबाति पिबतु । पीत्वा च स इंद्रः महित्वना स्वमहत्त्वेनैव राधांसि धनानि स्तोतृभ्यः प्रचोदयते प्रकर्षेण चोदयते प्रेरयति । प्रराधांसि प्रराधसा इति पाठौ, चोदयाते चोदयाते इति च ॥ १ ॥

(इन्दुं इंद्राय आसिञ्चत) सोमरसको इंद्रके लिये सींचो (सोम्यं मधु पिबाति) सोमके मधुररसको इन्द्र पिये और पीकर (महित्वना राधांसि प्रचोदयते) अपनी महिमासे स्तोताओंको धन देय ॥ १ ॥

२ ३   १२ ३   २ ३   १ २   ३ १ २
उपो हरीणां पतिꣳ राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।
३ १   २   ३ २   ३   १   २
नूनꣳ श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हरीणां हरितवर्णानाम् अश्वानां पतिं पालयितारं राधः धनं पृञ्चन्तं पृची सम्पर्के (अ० रु० आ०) स्तोतृषु संयोजयन्तं

ददतमित्यर्थः। एतादृशमिन्द्रम् उपो अब्रवम् अतिशयेनाहं स्तोत्रं करवाणि अश्वस्य अश्वा नामर्षिरश्वशब्देनोच्यते तस्य पुत्रस्य स्तुवतः स्तोत्रं कुर्वतः मम सम्बन्धिनीं हे इंद्र! त्वद्विषयां स्तुतिं नूनं सम्प्रति श्रुधि शृणु। राधः दक्षम् इति पाठौ॥ २॥

(हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तम्) पापहारी अश्वोंके स्वामी और स्तोताओंका धनयुक्त करनेवाले इंद्रकी (उपा अब्रवम्) विशेषरूपसे मैं स्तुति करता हूँ (अश्वस्य स्तुवतः नूनं श्रुधि) अश्व ऋषिके पुत्र की अनुष्ठानकी हुई मेरी स्तुतिको हे इंद्र! तुम इस समय सुनो॥ २॥

१ २ ३ ३२ ३ २ ३२ ३१२३ २
न ह्या३ङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत्।
१ २ ३२३ ३ २ ३१२
न की राया नैवथा न भन्दना॥ ३॥

अथ तृतीया। हे इंद्र! त्वत् त्वत्तः पुरा पूर्वं वीरतरः सामर्थ्यवान् कश्चित् न हि जज्ञे न जातः खलु। अङ्ग प्रसिद्धौ त्वमेव सामर्थ्यवान् जात इत्यर्थः। किञ्च त्वत्तोऽपि राया धनेन समर्थः न किः न कश्चिदस्ति। तथा एवथा शत्रुपुराणि संग्रामं वा प्रति गमनेन त्वत्तोऽधिको न जातः। यद्वा, एवथा अव रक्षणादिषु (भ्वा० प०) अकारस्यैकारश्छान्दसः, औणादिकस्थाप्रत्ययः, शरणागतानां स्तोतॄणां वा अवने त्वत्तोऽधिको नास्ति। किञ्च भन्दना भन्दतिः स्तुतिकर्मा (निघ० ३, १४, १९) स्तुत्यश्च त्वदधिको न जातः धनवान् रक्षकः स्तुत्यश्च त्वत्तोऽन्यो न जज्ञ इति॥ ३॥

हे इंद्र! (त्वत् पुरा न जज्ञे) तुमसे पहिले कोई उत्पन्न नहीं हुआ (अङ्ग वीरतरः नहि) हे समर्थ इंद्र! तुमसे अधिक वीर भी कोई नहीं हुआ (रायः नकिः) धनमें भी तुमसे अधिक कोई नहीं है (एवथा नः) संग्रामोंमें चढ़ाई करनेवाला भी तुमसे अधिक कोई नहीं है (भन्दना न) स्तुतियोग्य भी तुमसे अधिक कोई नहीं है॥ ३॥

३ २ ३ १ २ ३ १ २र
नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि॥ १॥

ऋ० प्रियमेधः। छ० अनुष्टुप्। दे० इंद्रः। अथ नदं व इति चतुर्थसूक्तात्मिकैषा। ओदतीनाम् ओदत्यः उषसः ओदती भास्वती इति तन्नामसु पाठात् (निघ० १, ८, ३-४) तासां नदम् उत्पादकमित्यर्थः

इंद्रेण हि उषस उत्पद्यन्ते इन्द्रस्यैव सूर्य्यत्वात्, द्वादशादित्यमध्ये इंद्रः पठितः। तादृशमिन्द्रं हे यजमानाः! वः युष्मदर्थम् आह्वयामि अघ्न्यानाम् अहन्तव्यानां गवां पतिम् आह्वये। अथप्रत्यक्ष कृतः हे यजमानाः वः त्वं धेनूनां क्षीरादिना प्रीणयित्रीण गवाम् इषुध्यसि अन्नमिच्छसि।

हे यजमानो (अद्रुतीनां नदं वः) आदित्यरूपसे उषाओंके उत्पादक इंद्रको तुम्हारे लिये आह्वान करता हूँ (योयुतीनां नदम्) चन्द्रकिरणोंके उत्पादकको तुम्हारे लिये आह्वान करता हूँ (अघ्न्यानां पतिं वः) गौओंके स्वामीका तुम्हारे लिए आह्वान करता हूँ (धेनूनां इषुध्यसि) हे यजमान! तू गौओंके दूधरूप अन्नको चाहता है॥ १॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्। उद्वा

३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते १

ऋ० वसिष्ठः। छ० बृहती। दे० अग्निः। अथ तृतीयखण्डे—देवो वो द्रविणोदा इति प्रगाथात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। द्रविणोदाः धनानां दाता देवः अग्निः वः युष्मदीयां पूर्णां हविषा आसिचम् आसिक्तं स्रुचं विवष्टु कामयताम्। अतः उत्सिञ्चध्वम् वा सोमेन पात्रम् उप पृणध्वम् वा सोमम् वा शब्दौ समुच्चयार्थौ ध्रुवग्रहेण होतृचमसम् पूरयत च अग्नये सोमं यच्छत चेत्यर्थः। आदित् अनन्तरमेव देवः अग्निः वः युष्मान् ओहते वहति। विवष्टु विवष्टि इति पाठौ॥ १॥

(द्रविणोदाः देवः) धनोंका दाता अग्नि देवता (वः पूर्णां आसिचं विवष्टु) तुम्हारी हविसे पूर्ण स्रुचको कामना करै (उत्सिञ्चध्वं वा) और सोमसे सींचो (पृणध्वम् वा) और पात्रको हविसे पूर्ण करो (आदित् देवः वः ओहते) तदनन्तर ही अग्निदेव तुम्हारा भरण करता है॥ १॥

१ २र ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तꣳ होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृ-

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

ण्वत। दधाति रत्नं विधते सुवीर्य्यमग्निर्जनाय

३ १ २

दाशुषे॥ २॥

अथ द्वितीया। देवाः प्रचेतसं प्रकृष्टमतिं तम् अग्निम् अध्वरस्य यज्ञस्य वन्हिं वोढारं होतारं च अकृण्वन अकृण्वन्। किमर्थमित्यत्राह स च अग्निः विदते परिचरते दाशुषे हविषां प्रदात्रे जनाय सुवीर्य्यं शोभनवीर्योपेतं रत्नं रमणीयं धनं दधाति दधातु इत्यर्थः ॥ २ ॥

(देवाः) देवता (प्रचेतसं तम्) श्रेष्ठ बुद्धिवाले उस अग्निको (अध्वरस्य वन्हिं होतारं अकृण्वन्) यज्ञका वाहक और होता बनाते हुए (अग्निः) वह अग्नि (विदधते दाशुषे जनाय) उपासना करने वाले और हवि देनेवाले यजमानके अर्थ (सुवीर्यं रत्नं दधाति) सुन्दर वीरतायुक्त रमणीय धन देता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २
अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।
२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
उपो षु जातमार्य्यस्य वर्द्धनमग्निं नक्षन्तु
३ १ २
नो गिरः ॥ १ ॥

ऋ० सौभरिः। छ० वृहती। दे० अग्निः। अथ अदर्शीति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। यस्मिन् अग्नौ व्रतानि कर्माणि आ दधुः यजमानाः आहितवन्तः गातुवित्तमः अतिशयेन मार्गाणाम् ज्ञाता सोऽग्निः अदर्शि प्रादुरभूत्। किञ्च सुजातं सम्यक् प्रादुर्भूतम् अस्य आर्य्यस्य उत्तमवर्णस्य वर्द्धनं वर्द्धयितारम् अग्नि नः अस्माकम् गिरः स्तुतिरूपा वाचः उपो नक्षन्तु उपगच्छन्तु नक्ष गतौ इति (भ्वा० प०) धातुः। नक्षन्तु नक्षन्त इति पाठौ ॥ १ ॥

(यस्मिन् व्रतानि आदधुः) जिस अग्निमें यजमानोंने कर्म समर्पण किये (गातुवित्तमः अदर्शि) विशेष मार्गोंका ज्ञाता वह अग्नि प्रकट हुआ (सुजातं आर्यस्य वर्द्धनम्) सम्यक् प्रकार प्रकट हुए और श्रेष्ठ वर्णके वृद्धिकर्त्ता (अग्निं नः गिरः उपोनक्षन्तु) अग्नि देवताको हमारी स्तुतिरूप वाणियें प्राप्त हों ॥ १ ॥

२ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत २

अथ द्वितीया। यस्मात् कारणात् चर्कृत्यानि कर्त्तव्यानि कर्माणि कृण्वतः कुर्वाणान् मनुष्यान् कृष्टयः इतरे मनुष्याः रेजन्त कम्पन्ते तस्मादिग्नीं हे मदीया जनाः! यूयं सहस्रां गवां धनानां च सहस्रस्य दातारमग्निं मेधसातौ यज्ञे धीभिः कर्त्तव्यैः कर्मभिः त्मना आत्मनैव नमस्यत परिचरत। नमस्यत सपर्य्यत इति पाठौ ॥ २ ॥

(यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः) जिस कारण कि—कर्त्तव्य कर्म करनेवाले मनुष्योंको ('कृष्टयः रेजन्ते) अन्य मनुष्य कम्पायमान करते हैं, तिस कारण इस समय हे मेरे मनुष्यो! (सहस्रसाम्) सहस्रों गौएं और धन देनेवाले अग्निको (मेधसातौ धीभिः त्मना नमस्यत) यज्ञमें कर्त्तव्य कर्मोंसे स्वयं प्रणाम करो ॥ २ ॥

१ २र ३ २
प्र दैवोदासो अग्निः००० ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। दैवोदासः दिवोदासेनाहूयमानोऽग्निः मातरं सर्वस्य लोकस्य धारणवत्त्वात् पृथिवी माता, तां पृथिवीं अनु प्रति न प्र विवावृते देवान् प्रति हविर्वोढुं विशेषेण न प्रवर्त्तयति, यस्मादेनमग्निं दिवोदासो राज्ञा बलेन आजुहाव। तस्मादयमग्निः नाकस्य स्वर्गस्य देवः द्योतमानः इंद्रः परमैश्वर्य्ययुक्तः शर्मणि गृहे स्वायत्तने एव तस्थौ अतिष्ठत्। प्रथमभागे इयं ऋक् द्रष्टव्या ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या आग्नेय पर्व अध्याय १ खण्ड ५ में होचुकी ॥ ३ ॥

३ १ २
अग्न आयूँषि पवसे ॥ १ ॥

ऋ० वैखानसः। छ० गायत्री। दे० अग्निः। अथ अग्न आयूंषि तृचात्मकम् तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। सा चान्यत्राम्नाता (उ० आ० ६, ३, १०, ३) ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या १३ वें अध्याय ४ खण्डमें होचुकी ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।

१ २ ३ २
तमीमहे महागयम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। पाञ्चजन्यः निषादपञ्चमाश्च त्वारो वर्णाः पञ्चजनाः यद्वा, गन्धर्वाः पितरो देवाः असुराः रक्षांसीत्येतत् पञ्चजनाः, अथवा देवाः मनुष्याः गन्धर्वाप्सरसः सर्पाः पितर इति ब्राह्मणाभिहिताः पञ्च-

जनाः । गम्भीराञ्ज्यः (४, ३, ५८) इत्यत्र बर्हिर्देवः पञ्चजनेभ्यः इति वक्तव्यम् इति वचनात् भावार्थो ञ्यप्रत्ययः । तेषां तत्तदभीष्टप्रदानेन स्वभूतः ऋषिः सर्वस्य द्रष्टा पवमानः पवमानरूपः अग्निः पुरोहितः कर्मार्थमृत्विग्भिः पुरतो निहितः, तम् पूर्वोक्तलक्षणम् महागयम् महद्भिरपि देवादिभिर्गातव्यं महन्ति प्रभूतानि यज्ञगृहाणि यस्य वा स तथोक्तः, तम् ईमहे याचामहे ॥ २ ॥

(पांचजन्यः ऋषिः) देव मनुष्य आदि पांच प्रकारके प्राणियोंको अभीष्ट फल देनेवाला और सबका द्रष्टा (पवमानः अग्निः) पवमान रूप अग्नि (पुरोहितः) कर्मके लिये ऋत्विजों करके आगे स्थापन किया गया है (तं महागयम् ईमहे) उस अनकों यज्ञशालाओं वाले अग्निकी हम याचना करते हैं ॥ २ ॥

२ ३१२३ १२ ३१ २र ३१२
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
१२३ २उ ३१२
दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! स्वपाः सोर्मनसी (६, २, ११७) इति उत्तरपदाद्युदात्तत्वम् शोभनकर्मा त्वम् अस्मे अस्मासु सुवीर्यं शोभनवीर्योपेतं वर्च्च वर्च्च दीप्तौ (भ्वा० आ०) तेजः पवस्व आगमय । तथा भवान् रयिं धनम् पुत्रम् वा पोषम् भावे कर्मणि वा घञ् गवां पुष्टिं यद्वा गवादिकं मयि भवाम् दधत् दधातु करोत्वित्यर्थः दधातेर्लेटि अडागमे घोर्लोपो लेटि वा (७, ३, ७०) इत्याकारलोपः ॥ ३ ॥

(अग्ने स्वपाः) हे अग्ने श्रेष्ठ कर्म वाले तुम (अस्मे) हमें (वर्चः पवस्व) तेज दो (मयि रयिं पोषम् दधत्) मेरे विषैं धन और पुष्ट गौ आदि को स्थापन करो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १२ ३१२ ३१२
अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
२ ३१ २ ३ १ २
आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

ऋ० वसूयवः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ अग्ने पावकेति तृचात्मकं चतुर्थम् सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे पावक ! शोधक ! रोचिषा स्वदीप्त्या मन्द्रया देवानां मादयित्र्या जिह्वया च, हे देव ! द्योतमानाग्ने देवान् आ वक्षि आवह, यज्ञार्थम् यक्षि च तान् यज ॥ १ ॥

(पावक) हे पवित्र करनेवाले (अग्ने देव) अग्निदेव (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया) अपनी दीप्ति से और देवताओंको हर्ष देने वाली जिह्वा से (देवान् आवक्षि यक्षि च) देवताओंका आवाहन करो और यजन भी करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
३ २उ ३ १ २
देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे घृतस्नो ! घृतस्य प्रेरक ! यद्वा, घृतेन जनित ! हे चित्रभानो ! चित्रा नानाविधो भानवो दीप्तयो रश्मयो यस्यासौ चित्रभानुस्तस्य सम्बोधनम् स्वर्दृशं सर्वस्य द्रष्टारं तं त्वा त्वाम् ईमहे याचामहे, अतो वीतये हविषां भक्षणाय देवान् आ वह ॥ २ ॥

(घृतस्नो चित्रभानो) हे घृतसे उत्पन्न हुए और नाना प्रकारकी दीप्तिवाले अग्निदेव ! (स्वर्दृशं तं त्वा ईमहे) सबके द्रष्टा तिस तुझ से हम याचना करते हैं, कि—(वीतये देवान् आवह) हविर्भक्षण करनेके लिये देवताओंका आवाहन कर ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तँ समिधीमहि ।
१ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे कवे ! क्रान्तदर्शिन् ! अग्ने वीतिहोत्रं क्रान्तयज्ञं यद्वा प्रिययज्ञं द्युमन्तं दीप्तिमन्तं बृहन्तं महान्तं, त्वा त्वाम् अध्वरे यज्ञे समिधीमहि समिद्भिः सन्दीपयामः ॥ ३ ॥

(कवे अग्ने) हे अनुभवी अग्निदेव ! (वीतिहोत्रं द्युमन्तम्) यज्ञ के प्रेमी और दीप्तिमान् (बृहन्तं त्वा अध्वरे समिधीमहि) महान् तुझको यज्ञमें प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।
१ २ ३ १ २
विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ चतुर्थे खण्डे—अवा नो अग्न इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । विश्वासु धीषु सर्वेषु कर्मसु वन्द्यः स्तुत्यः हे अग्ने गायत्रस्य गायत्रसाम्नः गायत्रीच्छन्दस्कस्य वा सूक्तस्य प्रभर्मणि प्रभरणे सम्पादने निमित्तभूते सति नः अस्मान् ऊतिभिः त्वदीयैः पालनैः अव रक्ष द्व्यचोऽस्तिङः (६, ३, १३५) इति संहितायां दीर्घत्वम् ॥ १ ॥

(विश्वासु धीषु वन्द्यः अग्ने) सकल कर्मोंमें वन्दनीय हे अग्ने ! (गायत्रस्य प्रभर्मणि) गायत्री छन्दवाले सूक्तके निमित्त होने पर (नः ऊतिभिः अव) हमको अपने रक्षाके साधनोंसे रक्षा करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! रयिं धनं नः अस्मभ्यम् आ भर प्रयच्छ । कीदृशम् ? सत्रासाहं सत्रा सह युगपदेव दारिद्र्यस्य नाशः वरेण्यं सर्वैर्वरणीयं विश्वासु पृत्सु सर्वेषु संग्रामेषु दुष्टरम् शत्रुभिस्तरीतुमशक्यम् ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (सत्रासाहं वरेण्यम्) एक साथ दारिद्र्यके नाशक और वरणीय (विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्) सकल संग्रामोंमें शत्रुओंको दुस्तर (रयिं नः आभर) धन हमें दे ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ १
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।
२ १ २ ३ १ २
मार्डीकं धेहि जीवसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! नः अस्माकं जीवसे जीवनाय सुचेतुना शोभनेन ज्ञानेन युक्तं रयिं धनम् आ धेहि आस्थापय । कीदृशम् ? मार्डीकं मृडीकं सुखं तद्धेतुभूतं विश्वायुपोषसं सर्वस्मिन्नायुषि देहादेः पोषकं यावज्जीवमस्मदुपभोगपर्याप्तमित्यर्थः ॥ ३ ॥

(अग्ने नः जीवसे) हे अग्निदेव ! हमारे जीवनके लिये (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञानसे युक्त (विश्वायुपोषकं मार्डीकम्) जीवन भर शरीर आदिके पोषक और सकल सुखदायक (रयिं नः धेहि) धन हमें दे ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्निᳪं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवा-

१ २ १ २ ३ १ २

जिषु । तेन जेष्म धनं धनम् ॥ १ ॥

ऋ० केतुः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अग्निं हिन्वन्त्विति पञ्चर्चं द्वितीयं सूक्तम् । तत्र प्रथमा । नः अस्माकं धियः कर्माणि स्तुतयो वा अग्निं हिन्वन्तु प्रेरयन्तु यागार्थमुद्योजयन्तु वर्द्धयन्तु वा हि गतौ वृद्धौ च । तत्र दृष्टान्तः आजिषु संग्रामेषु आशुं शीघ्रगामिनं सप्तिम् इव सर्पणशीलमश्वं यथा योद्धारः प्रेरयन्ति तद्वत् तेन अग्निना धनं धनं सर्वं धनं जेष्म वयं जयेम ॥ १ ॥

(नः धियः) हमारे कर्म वा स्तुतियें (अग्निं हिन्वन्तु) अग्निको हमारे यज्ञके लिये उद्यत करें (आजिषु आशुं सप्तिं इव) जैसे कि—योद्धा संग्रामोंमें शीघ्रगामी घोड़ेको उद्यत करते हैं (तेन धनं धनं जेष्म) उस अग्निके द्वारा हम सकल धनोंको जीतें ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३

यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या ।

१ २ ३ १ २

तां नो हिन्व मघत्तये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! सेनया इनेन सह वर्त्तमानया सेनारूपया वा यया तव ऊत्या रक्षया गाः आ करामहै आभिमुख्येन करवामहै लभामहे इत्यर्थः । ताम् ऊतिं नः अस्मान् हिन्व गमय । किमर्थम् ? मघत्तये धनस्य दानार्थम् अस्माकं धनलाभायेत्यर्थः । करामहै करामहे इति पाठौ ॥ २ ॥

(सेनया यया तव ऊत्या) सेनारूप वा धनसहित जिस तुम्हारी रक्षासे (अग्ने) हे अग्निदेव ! (गाः आकरामहै) गौओंको पावें (तां नः मघत्तये हिन्व) उस रक्षाको हमें धन प्राप्त होनेके लिये प्रेरणा करो ॥ २ ॥

१ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

आग्ने स्थूरꣳ रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।

३ २ ३ ३ १ २ ३ २

अङ्धि खं वर्त्तया पविम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! स्थूरं स्थूलं वृद्धं पृथुं विस्तीर्णं गोमन्तं गोभिर्युक्तम् अश्विनम् अश्वोपेतम् आ भर अस्मभ्यमाहर प्रयच्छ । किञ्च खम् अन्तरिक्षम् अङ्ग्धि वृष्ट्युदकैः सिञ्च यद्वा आत्मीयैस्ते-

जोभिः व्यञ्जय प्रकाशय। पविम् आयुधं वर्त्तय अस्मद्विरोधिषु प्रवर्त्तय। पविम् पणिम् इति पाठौ ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (स्थूरं पृथु गोमन्तं अश्विनं रयिं आभर) बहुतसे विस्तार वाले गौओं और घोडोंसे युक्त धन हमें दो (खं अङ्ग्धि) आकाशको अपने तेजोंसे प्रकाशित करो (पविं वर्त्तय) आयुध को हमारे शत्रुओंमें घुमाओ ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यॅं रोहयो दिवि ।
२ ३ २ ३ १ २
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। हे अग्ने ! नक्षत्रं नक्षति समन्तात् गच्छतीति नक्षत्रः नक्षि गतौ (भ्वा० प०) अभिनक्षि (उ० ३, १०५) इत्यादिना अत्रन् प्रत्ययः। सततं गन्तारम् अजरम् जरारहितम् सूर्य्यं सर्वस्य प्रेरकमादित्यं दिवि अन्तरिक्षम् आ रोहयः उपर्यवस्थापितवानसि यद्वा नक्षत्रं कृत्तिकादिकं सूर्यञ्च दिव्यारोहयः। किं कुर्वन् ? जनेभ्यः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः व्यवहारार्थं ज्योतिः प्रकाशकं दधत् विदधत् कुर्वन् यथा सर्वेषां प्रकाशो भवति तथा उन्नते देशे सूर्यमगमय इत्यर्थः ॥ ४ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (जनेभ्यः ज्योतिः दधत्) सकल प्राणियों के लिये प्रकाश करतेहुए तुमने (नक्षत्रं अजरम्) निरन्तर गमन करनेवाले और जरारहित (सूर्यं दिवि आरोहयत्) सूर्यको द्युलोक में स्थापन किया है ॥ ४ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
१ २ ३ २उ ३ १ २
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी। हे अग्ने ! विशां प्रजानां यजमानानां केतुः केतयिता ज्ञापयिता असि भवसि। अतएव प्रेष्ठः प्रियतमः श्रेष्ठः प्रशस्यतमश्च भवसि। स त्वम् उपस्थसत् उपस्थाने यज्ञगृहे निषीदन् बोध अस्मदीयं स्तोत्रमवगच्छ। किंकुर्वन् ? स्तोत्रे स्तुवते जनाय वयः अन्नं दधत् विदधत् कुर्वन् प्रयच्छन् वा ॥ ५ ॥

(अग्ने विशां केतुः प्रेष्ठः श्रेष्ठः असि) हे अग्निदेव ! तुम यजमानों के ज्ञानदाता अतएव परम प्यारे और सबसे श्रेष्ठ हो (उपस्थसत्)

यज्ञशाला में स्थित हुए तुम (स्तोत्रे वयः दधत् बोध) स्तोताको अन्न देतेहुए हमारे स्तोत्रको स्वीकार करो ॥ ५ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
३ १ २र
अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ १ ॥

ऋ० विरूपः । छ० गायत्री दे० अग्निः । अथ अग्निमूर्द्धेति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । मूर्द्धा देवानां श्रेष्ठः दिवः द्युलोकस्य ककुत् उच्छ्रितः पृथिव्याः च पति अयम् अग्निः अपां रेतांसि स्थावरजङ्गमात्मकानि भूतानि जिन्वति प्रीणयति ॥ १ ॥

(मूर्धा) देवताओंमें श्रेष्ठ (दिवः ककुत्) द्युलोकसे भी ऊँचा (पृथिव्याः पतिः अयम् अग्निः) पृथिवीका स्वामी यह अग्नि (अपाम् रेतांसि जिन्वति) जलके बीजरूप सकल स्थावर जङ्गम प्राणियोंको प्रेरणा करता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ ३ २ १ २ ३क २र
इशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः ।
३ २ ३ २ ३ १ २
स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! स्वः पतिः स्वर्गस्य स्वामी त्वं वार्य्यस्य वरणीयस्य दात्रस्य दातव्यस्य धनस्य ईशिषे ईश्वरोऽसि शर्मणि सुखे निमित्ते तव स्तोता स्यां भवेयम् ॥ २ ॥

(अग्ने स्वः पतिः)हे अग्ने ! स्वर्गका स्वामी तू (वार्यस्य दात्रस्य हि ईशिषे) वरणीय और देने योग्य धनके स्वामी हो (शर्मणि तव स्तोता स्याम) सुख पानके लिये मैं तुम्हारा स्तोता होऊँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
२ ३ १ २ ३ १ २
तव ज्योतीꣳष्यर्चयः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! ते तव शुचयः निर्मलाः शुक्राः शुक्लवर्णाः भ्राजन्तः दीप्यमानाः अर्चयः प्रभाः तव ज्योतींषि तेजांसि उदीरते प्रेरयन्ति ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराज-परमेश्वर-वैदिकमार्ग-प्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्क भूपाल-साम्राज्य धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

(अग्न) हे अग्निदेव ! (शुचयः शुक्लाः) निर्मल और स्वेतवर्ण (भ्राजन्तः अर्चयः) दीप्यमान अर्चियें (नव ज्योतींषि उदीरते) तुम्हारे तेजों को प्ररणा करती हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके चतुर्दशाध्यायस्य चतुर्थः खंडः
चतुर्दशाध्यायश्च समाप्तः

अथ पञ्चदशोऽध्याय आरभ्यते

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३क २र
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
२ ३ १ २ ३ २
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । तत्र, प्रथमे खण्डे—कस्ते जामिर्जनानामिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा ! हे अग्ने जनानां मनुष्याणां मध्ये ते तव कः जामिः को बन्धुः ? त्वं सर्वैर्गुणैरधिकोऽसि त्वत्स्वरूपो बन्धुर्नास्तीति भावः । कः दाश्वध्वरः दाशुर्दत्त अध्वरो यज्ञो येन स तथोक्तः त्वां यष्टुमतिसमर्थः कोऽपि नास्तीत्यर्थः । को ह त्वं कथम्भूतः ? त्वमीदृग्रूप इति सवर्न ज्ञायस इत्यर्थः । कस्मिन् स्थाने श्रितः आश्रितः असि भवसि वर्त्तसे ? तत्स्थानमपि न केन विज्ञायते अतस्त्वस्माभिः मांसदृष्टिभिः कथमुपलब्धव्यः ? इत्यग्निः प्रशस्यते ॥ १ ॥

(अग्ने जनानां ते कः जामिः) हे अग्निदेव ! मनुष्योंमें तुम्हारा वन्धु कौन है ? अर्थात् तुम सकल गुणोंमें अधिक हो इस कारण तुम सा तुम्हारा वन्धु कोई नहीं है (दाश्वध्वरः कः) सच्चे दानसे तुम्हारा यजन करनेवाला कौन है ? (को ह) तू कैसे स्वरूप वाला है इस वातको कौन जानता है ? (कस्मिन् श्रितः असि) तू किस स्थानका आश्रय करके रहता है ? उस स्थानको भी कोई जानता तो फिर हमैं तुम्हारा दर्शन कैसे होसक्ता है ? ॥ १ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
२ ३ १ २ ३ २
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! त्वम् उक्तप्रकारेण अचिन्त्यरूपोऽपि अनुग्रहीतृतया सर्वेषां जनानां जामिः बन्धुः असि । तथा प्रियः प्रीणयिता त्वम् यजमानानां मित्रः त्रायकः असि । ईड्यः स्तुतिभिः स्तुत्यः त्वम् सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः ऋत्विग्भ्यः सखा सखिवदत्यन्तप्रियोऽसि।

(अग्ने त्वं जनानां जामिः मित्रः प्रियः असि) हे अग्निदेव ! ऐसे अचिन्त्य प्रभाववाले भी तुम अनुग्रह करनेके कारण सब पुरुषोंके बन्धु और तृप्त करनेवाले तथा यजमानोंके रक्षक हो (ईड्यः सखिभ्यः सखा) स्तुतियोग्य तुम ऋत्विजोंके सखासमान अत्यंत प्रिय हो ॥१॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३२
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
२ ३ २ ३ १ २र
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ २ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! नः अस्मदर्थं मित्रावरुणा एतत्संज्ञौ देवौ यज हविषा पूजय । तथा देवान् इंद्रादीन् यज पूजय । ऋतम् सत्यम् यथार्थफलं यज्ञञ्च यज इत्येतदर्थं बृहत् प्रौढं स्वम् स्वकीयं दमं यज्ञगृहं यक्षि यज सङ्गच्छस्व । त्वयि अन्तर्वेद्यमाने सति हि यज्ञगृहं पूज्यते ।

(अग्ने नः) हे अग्निदेव ! हमारे लिये (मित्रावरुणा यज) मित्रावरुण देवताओंको हविसे पूजो (देवान् यज) देवताओंको पूजो (ऋतम्) अमोघ फलदाता यज्ञको पूजो और इसके लिये (बृहत् स्वं दमं यक्षि) बड़ी भारी अपनी यज्ञशालाको प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ २
ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमाँसि दर्शतः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

ऋ० देवश्रवा देववातः । छ० गायत्री । दे० अग्निः अथ द्वितीयतृचे प्रथमा । ईडेन्यः स्तोतृभिरीड्यः अतएव नमस्यः सर्वैर्नमस्कार्यः तमांसि तिरः ध्वान्तानि स्वाभाभिस्तिरस्कुर्वन् दर्शतः कमनीयतया सर्वदर्शनीयः, तादृशः अग्निः वृषा यजमानस्य कामानां वर्षिता समि-

ध्यते आहुतिप्रक्षेपेण 'प्रज्वाल्यते । उक्तार्थे वाजसनेयकम् ईडेऽन्यो ह्येष नमस्यो ह्येष तिरस्तमांसि दद्दशे समिद्धः इति ॥ १ ॥

(ईडेन्यः नमस्यः) स्तुतियोंसे पूजनीय और सबके नमस्कार करने योग्य (तमांसि तिरः) अन्धकारोंका तिरस्कार करने वाला (दर्शतः वृषा अग्निः) दर्शनीय और अभीष्टफलदाता अग्नि (इध्यते) आहुतियों के द्वारा प्रज्वलित किया जाता है ॥ १ ॥

१२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।

१ ३ १ २

तꣳहविष्मन्त ईडते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वृषा उ वृषणेव कामानां वर्षिता देववाहनः देवान् हवींषि वाहयति प्रापयतीति देववाहनः तत्र दृष्टान्तः अश्वो न यथाऽश्वो राजान वाहयति स्वपुरं प्रापयतीति वाहनभूतो यः अग्निः समिध्यते आहुतिप्रदानेन सम्यग् दीप्यते तं तादृशमग्निं हविष्मन्तः सम्भृतहविष्का यजमानाः ईडते कर्मसिद्ध्यर्थं स्तुवन्ति ॥ २ ॥

(वृषा उ) अवश्य ही इच्छित फलोंकी वर्षा करनेवाला (अश्वः न देववाहनः) जैसे घोड़ा राजाको अपने नगरमें पहुंचाता है तैसे ही देवताओंको हविके समीप पहुंचानेवाला (अग्निः समिध्यते) अग्नि आहुतियोंसे भलेप्रकार प्रदीप्त किया जाता है (तं हविष्मन्तः ईडते) ऐसे अग्निकी हम यजमान हवि लिये हुए स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि ।

२ ३ १ २ ३२

अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वृषन् कामानां वर्षितः । हे अग्ने ! वृषणः वृषणा घृताद्याहुतीनां सेक्तारो वयं वृषणम् आहुतिद्वारा उदकस्य सेक्तारम् तथा च स्मृतिः अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा इति मनुः ३ । ७६ दीप्यन्तं दीप्यमानम् बृहत् अतएव महान्तं तमिममग्निं समिधीमहि सम्यग् दीपयामः ॥३॥

(वृषन् अग्ने) हे अभीष्ट फलोंकी वर्षा करनेवाले अग्निदेव (वृषणः वयम्) घृत आदिकी आहुति देनेवाले हम (वृषणम्) आहुतियोंके द्वारा जलकी वर्षा करने वाले (दीद्यन्तं बृहत् समिधीमहि) दिपते हुए महान् अग्निको प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः।
१ २ ३ १ २
अग्ने शुक्रास ईरते ॥ १ ॥

ऋ० विरूपः। छ० गायत्री। दे० अग्निः। तृतीयतृचे प्रथमा। हे दीदिवः! दीप्ताग्ने! समिधानस्य समिध्यमानस्य ते तव बृहन्तः महान्तः शुक्रासः उज्वलन्तः अर्च्चयः दीप्तयः उदीरते उद्गच्छन्ति॥ १॥

(दीदिवः) हे दीप्त अग्ने! (समिधानस्य ते) भलेप्रकार प्रज्वलित कियेजाते हुए तेरी (बृहन्तः शुक्रासः) बडी और जाज्वल्यमान (अर्चयः उदीरते) लपटें निकलती हैं॥ १॥

१२ ३ २ १२ १ २ २
उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्य्यत।
१ २ ३ १ २
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे हर्य्यत! कामयमानाग्ने! मम मदीया घृताचीः घृतमञ्चन्त्यः जुह्वः स्रुचः त्वा त्वाम् उप यन्तु। नः अस्माकं हव्या हव्यानि जुषस्व सेवस्व च॥ २॥

(हर्यत अग्ने) हे कामना कियेहुए अग्निदेव! (मम घृताचीः जुह्वः त्वा उपयन्तु) मेरी घी बरसानेवाली स्रुचे तुम्हें प्राप्त हों (नः हव्याः जुषस्व) हमारे हवियोंको सेवन करो॥ २॥

३ १ २र३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
मन्द्रꣳहोतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
३ १२३ १ २
अग्निमीडे स उ श्रवत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। मन्द्रं मादनं होतारं देवानामाह्वातारम् ऋत्विजम् ऋतौ यष्टव्यं चित्रभानुं विविधदीप्तिं विभावसुं दीप्तिधनम् अग्निम् ईडे स्तौमि। सः अग्निः श्रवत् उ अस्मदीयां स्तुतिं शृणोत्येव॥ ३॥

(मन्द्रं होतारम्) हर्ष देनेवाले और देवताओंके आह्वानकर्त्ता (ऋत्विजं चित्रभानुम्) प्रत्येक ऋतुमें यजन करनेयोग्य और नानाप्रकार की किरणोंवाले (विभावसुं अग्निं ईडे) दीप्तिरूप धनवाले अग्निकी

स्तुति करता हूँ (सः श्रवत् उ) वह अग्नि हमारी स्तुतिको अवश्य ही सुनता है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १२ ३ २ २ ३ १ २
पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि
२ ३ १ २
चतसृभिर्वसो ॥ १ ॥

ऋ० भर्गः । छ० बृहती । दे० अग्निः । अथ प्रगाथात्मके चतुर्थसूक्ते प्रथमा । हे अग्ने ! नः अस्मान् एकया ऋचा गिरा पाहि रक्ष । उत अपिच द्वितीयया ऋचा पाहि पालय । पाहि तिसृभिः गीर्भिः ऊर्जाम् अन्नानां बलानां वा पते ! स्वामिन् ! तथा पाहि चतसृभिः गीर्भिः हे वसो ! वासकाग्ने ! ॥ १ ॥

(अग्ने नः एकया पाहि) हे अग्ने ! हमें एक ऋचासे रक्षा करो (उत द्वितीयया पाहि) और दूसरी ऋचासे रक्षा करो (ऊर्जां पते तिसृभिः गीर्भिः पाहि) हे बलोंके स्वामी ! तीन वाणियोंसे रक्षा करो (वसो चतसृभिः पाहि) हे व्यापक चार वाणियोंसे रक्षा करो ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु
१ २र ३ १ २ ३ १
नोऽव । त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं
२र ३ २
नक्षामहे वृधे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! विश्वस्मात् सर्वस्मात् रक्षसः अराव्णः अदातुः सकाशात् पाहि रक्ष । नोऽस्मान् वाजेषु संग्रामेषु प्राव प्रकर्षेण रक्ष । स्म इति पूरणः । हि यस्मात् नेदिष्ठम् अन्तिकतमम् आपि बन्धुभूतं त्वाम् इत् त्वामेव देवतातये यज्ञाय यज्ञसिद्ध्यर्थं वृधे वर्द्धनाय नक्षामहे व्याप्नुम नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा (निघ० २, १८, २) ॥ २ ॥

हे अग्ने ! (विश्वस्मात् रक्षसः अराव्णः नः पाहि) सकल राक्षसों से और अदातासे हमारी रक्षा कर (स्म वाजेषु प्राव) हमें संग्रामोंमें

रक्षित कर (हि) क्योंकि (नेदिष्ठं आपिं त्वामिद्धि) अत्यन्त समीपस्थ बन्धुरूप तुमको ही (देवतातये वृधे नक्षामहे), यज्ञसिद्धिके लिये और वृद्धिके लिये शरण जाते हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके द्वादशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ १ २र २ २ ३ १ २ ३ १

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमा

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

अदर्शि । चिकिद्विभाति भासा बृहतासि-

३ १ २ ३ १ २

क्नीमेति रुशतमपाजन् ॥ १ ॥

ऋ० आप्त्यत्रितः । छ० त्रिष्टुप् । दे अग्निः । अथ द्वितीयखण्डे इनो राजन्निति तृचात्मके प्रथमसूक्ते, प्रथमा । हे राजन् ! दीप्यमानाग्ने ! त्वम् इनः ईश्वरः सर्वस्य भवसि । अथ परोक्षः अरतिः हविरादाय देवान् प्रति गन्ता समिद्धः सन्दीप्तः रौद्रः शत्रूणां भयंकरः सुषुमान् ओषध्यात्मना स्थितोऽशुः सुष्ठु सूयत इति सुसोमः, तेन तद्वान् शोभनप्रसवो वा सोऽग्निः दक्षाय यजमानानां धनादिवृद्ध्यर्थं कर्मवृद्ध्यर्थं वा अदर्शि सर्वैर्दृश्यते । किञ्च चिकित् सर्वं जानानोऽग्निः विभाति विशेषेण दीप्यते तथा बृहता महता भासा तेजसा ज्वालालक्षणेन असिक्नीं रात्रिम् एति सायं होमसिद्ध्यर्थं गच्छति । किं कुर्वन् ? रुशतीं श्वेतवर्णां दीप्तिम् अपाजन् अपगमयन् सर्वतो विकिरन् यद्वा रुशतीं दीप्तामुषसमागच्छन् अपक्षिपन् परित्यजन् रात्रिं गच्छति । सामर्थ्यात् रात्रिं परित्यजन्नुषसं प्रातर्होमसिद्ध्यर्थं गच्छतीत्यर्थो लभ्यते ॥ १ ॥

हे अग्ने (इनः) तू सबका ईश्वर है (अरतिः समिद्धः) हवि लेकर देवताओंको प्राप्त होनेवाला और सम्यक् प्रकार दीप्त (रौद्रः सुषुमान्) शत्रुओंको भयदायक और उपासकोंके लिये श्रेष्ठ पदार्थ उत्पन्न करनेवाला (दक्षाय अदर्शि) यजमानोंकी धनादि वृद्धि वा कर्मवृद्धिके लिये सबों करके देखाजाता है (चिकित् विभाति) सब को जाननेवाला विशेषरूपसे दीप्त होता है (रुशतीं अपाजन्) श्वेत दीप्ति को सब ओर फैलाता हुआ (बृहता भासा), बड़ीभारी ज्वालाओं के तेजसहित (असिक्नीं एति) सायंकालकी होमकी सिद्धिके लिये रात्रिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः
३ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
पितुर्जाम् । ऊर्ध्वं भानुꣳ सूर्य्यस्य स्तभायन्
३ १ २र ३ १ २र
दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सोऽग्निः यद् यदा कृष्णां कृष्णवर्णाम् एनीं गच्छंतीं रात्रिं वर्पसा आत्मीयेन ज्वालालक्षणेन रूपेण अभिभूत अभिभवति । किंकुर्वन् ? बृहतः महतः पितुः सर्वस्य जगतः पालयितुः पितृभूताद्वा आदित्यात् जां जायमानां योषाम उषसं जनयन् अभिव्यञ्जयन् । तदानीम् अरतिः गमनशीलोऽग्निः दिवः द्युलोकस्य वसुभिः वासयितृभिः आच्छादकैः सन्धुक्षणसमर्थैः आत्मीयैस्तेजोभिः सूर्य्यस्य भानुं दीप्तिम् ऊर्ध्वम् उपरिष्टात् स्तभायं स्तम्भेयम् वि भाति विशेषेण दीप्यते ॥ २ ॥

वह अग्नि (यत्) जब (बृहतः पितुः जां योषां जनयन्) महान् और सब जगत्का पालन करनेवाले पितासमान आदित्यसे उत्पन्न हुई उषाको प्रकाशित करताहुआ (कृष्णां एनीं) कृष्ण वर्णकी बीतती हुई रात्रिको (वर्पसा अभिभूत) अपने ज्वालारूपसे दबाता है, उस समय (अरतिः) गमनस्वभाव अग्नि (दिवः वसुभिः) द्युलोकको छा देनेवाले अपने तेजोंसे (सूर्य्यस्य भानुम्) सूर्यकी दीप्तिको (ऊर्ध्वं स्तभायन्) ऊपर ही रोकताहुआ (विभाति) विशेषरूपसे दिपता है २

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो
३क२र ३ २ २ १ २र३ २ ३ २ ३ १
अभ्येति पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नु-
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । भद्रः भजनीयः कल्याणः भद्रया भजनीयया दीप्त्या-षसा वा सचमानः सेव्यमानः सङ्गच्छमानो वा अग्निः आगात् आजगाम, गार्हपत्यादाहवनीयम आगच्छति । ततः पश्चात् जारः जरयिता शत्रूणां सः अग्निः स्वसारं स्वयं सारिणीं भगिनीं वा आगतामुषसम् अभ्येति अभिगच्छति । तथा सुप्रकेतैः सुप्रज्ञानैः द्युभिर्दीप्तिभिस्तेजोभिः

सह वितिष्ठन् सर्वतो वर्त्तमानः सोऽग्निः उशद्भिः श्वेतैः वर्णः वारकैरा रमीयैः तेजोभिः रामं कृष्णं शार्वरं तमः अभ्यस्थात् सायं होमकाले अभिभूय तिष्ठति ॥ ३ ॥

(भद्रः भद्रया सचमानः आगात्) कल्याणरूप और सेवनीय उषा से सेवन कियाहुआ अग्नि गार्हपत्यसे आहवनीयको प्राप्त होता है, (पश्चात् जारः स्वसारं अभ्येति) तदनन्तर शत्रुओंका नाशक वह स्वयं आई हुई उषाको प्राप्त होता है (सुप्रकेतैः द्युभिः वितिष्ठन् अग्निः) परमचेतन तेजोंके साथ सवत्र वर्त्तमान वह अग्नि (उशद्भिः वर्णैः रामं अभ्यस्थात्) श्वेतवर्णके फैले हुए अपने तेजोंसे रात्रिके अन्धकार को सायं होमके समय हटाकर स्थित होता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
१ २ ३ १ २
वराय देव मन्यवे ॥ १ ॥

ऋ० उशनाः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ द्वितीयसूक्ते, प्रथमा हे अङ्गिरः ! अङ्गिरसां वरिष्ठ ! यद्वा, अङ्गति सर्वत्र गच्छतीति अङ्गिराः तादृश ! हे ऊर्जोनपात् नपात इत्यपत्यनाम (निघ० २, २, १३) अन्नस्य पुत्र ! हविर्भिर्वर्द्धमानत्वात । यद्वा नपादिति नप्ता, हविर्लक्षणस्यान्नस्य नप्तः ! अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्य गादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः (मनुः ३, ७६) इति वृष्टेरोषधय ओषधिभ्योऽग्निरिति अन्नस्य नप्ता हे देव ! द्योतमान अग्ने वराय सर्वैर्वरणीयाय मन्यवे शत्रूनभिमन्यमानाय ते तुभ्यं कया कीदृश्या वाचा उपस्तुतिं स्तोत्रम् अहं भरेयम् । त्वं महान् खलु अहमल्पः तदर्थं कथं स्तुतिं कुर्य्यामिति ऋषिरग्निं प्रति वदति ॥ १ ॥

(अङ्गिरः ऊर्जः नपात् देव अग्ने) हे सर्वत्रगामी हविरूप अन्नके प्रपौत्र द्योतमान अग्ने ! (वराय मन्यवे ते) सबके वरणीय और शत्रुओंके ऊपर क्रोध करनेवाले तेरे अर्थ (कया उपस्तुतिम्) किस वाणी से स्तोत्र अर्पण करूं ? ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
१ २ ३१ २र
कदु वोच इदं नमः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। ऋषिरग्निं प्रति ब्रूते, हे सहसो यहो! यहुः इत्यपत्यनाम (निघ० २, २, ११) बलेन निष्पाद्यमानत्वात् बलस्य पुत्र ! हे अग्ने ! कस्य कीदृशस्य यज्ञस्य यज्ञवतो यजनीयदेववतो वा यजमानस्य मनसा युक्ताः सन्तो हवींषि तुभ्यं वयं दाशेम प्रयच्छेम पूजायां बहुवचनम् किञ्च, तुभ्यं इदं नमः हविर्नमस्कारं वा कत् कदा वोचे अहं वदामि? उ इति प्रश्ने। ऋषिः, कदा दास्यामि? कदा स्तोष्यामि? इत्यग्निं पृच्छति। वोचे वच्यादेशस्य लुङ्यात्मनेपदे उत्तमैकवचन रूपम् ॥२॥

(सहसः यहः) हे बलसे उत्पन्नहुए अग्निदेव ! (कस्य यज्ञस्य मनसा दाशेम) कौनसे देवयजन करनवाले यजमानके मनसे युक्तहुए हम तुम्हें हवि अर्पण करें ? (इदं नमः कत् वोचे उ) यह हवि वा नमस्कार कब उच्चारण करूं ॥ २ ॥

१ ३ २३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अधा त्वꣳहि नस्करो विश्वा अस्मभ्यꣳ
३ २ १ २ ३ १ २
सुक्षितीः। वाजद्रविणसो गिरः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अग्ने ! अध अथान्तरं त्वं हि हिरवधारणे त्वमेव अस्मभ्यम् करः कुरु देहीत्यर्थः। करोतेर्लेट्यडागमः। किमित्यपेक्षायामाह नः अस्मदीयाः गिरः त्वद्विषयाः विश्वाः सर्वाः स्तुतीः एवं कुरु यथा सुक्षितीः क्षियन्ति निवसन्त्यत्रेति, क्षितयो गृहाः शोभननिवासाः यद्वा क्षितयो मनुष्याः कल्याणपुत्रपौत्रयुक्ताः, तथा वाजद्रविणसः अन्नयुक्ता धनवतीः अथवा वाजो दीप्तिः सर्वतो दीप्तधनाश्च कुरु। त्वमस्माभिः स्तुतः सन् गृहपुत्रान्नधनादीनि देहीत्यर्थः३

हे अग्ने ! (अध) इसके अनन्तर (त्वं हि) तुम ही (अस्मभ्यं कुरु) हमारे लिये ऐसा करो कि—(नः विश्वाः गिरः) हमारी सकल स्तुतिरूप वाणियें (सुक्षिताः वाजद्रविणसः) हमें श्रेष्ठ पुत्रपौत्रादियुक्त वा श्रेष्ठस्थानोंके स्वामी और अन्न तथा धनयुक्त करें ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
१ २र ३ १ २ ३१ २ ३ १ २
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं
३ २ ३ १ २
बर्हिरासदे ॥ १ ॥

ऋ० भर्गः। छ० बृहती। दे० अग्निः अग्न आयाहीति प्रगाथरूपे तृतीयसूक्ते, प्रथमा। हे अग्ने! अग्निभिः यष्टव्यैः सह आ याहि आगच्छ तदर्थं होतारं देवानामाह्वातारं त्वा त्वां वृणीमहे त्वामागतं प्रयता अध्वर्य्यु हस्ताभ्यां नियता हविष्मती घृतवती यजिष्ठं त्वां बर्हिः बर्हिषि आसदे। आसाद्य च अनक्तु सिञ्चतु ॥ १ ॥

(अग्ने होतारं त्वा वृणीमहे) हे अग्निदेव! देवताओंका आह्वान करनेवाले तुम्हारी हम प्रार्थना करते हैं (अग्निभिः आयाहि) अपनी विभूतिरूप अग्नियों सहित आओ (यजिष्ठं त्वाम्) पूजनीय तुमको (प्रयता हविष्मती) अध्वर्युओंके हाथकी नियत कीहुई घृतमयी हवि (बर्हिः आसदे) कुशाओं पर प्राप्त हो (अनक्तु) वह प्राप्त होकर तुम्हें सींचै ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्च-

२ ३२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २

रन्त्यध्वरे। ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं

३ १ २ ३ २

यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे सहसः सूनो बलस्य पुत्र! बलेन मथ्यमानत्वात् हे अङ्गिरः! अङ्गिरसां मध्ये मुख्य अथवा अङ्गतिर्गतिकर्मा सर्वत्र गंतः त्वा त्वाम् अध्वरे यागे अच्छ अभिप्राप्तुं स्रुचः चरन्ति गच्छन्ति! अतः ऊर्जः अन्नस्य नपातं न पातयितारं रक्षकं बलस्य वा नप्तारं घृतकेशं प्रदीप्तकेशं पूर्व्यं पुरातनं पूरकं वा अग्निं यज्ञेषु असमदीयेषु ईमहे स्तौमि ॥ २ ॥

(सहसः सूनो अङ्गिरः) हे बलके पुत्र सर्वत्रगामी (त्वा अध्वरे अच्छ) तुम्हें यज्ञमें प्राप्त होनेको (स्रुचः चरन्ति) स्रुच जाती हैं (ऊर्जः नपातं घृतकेशम्) अन्न वा बलके रक्षक और प्रदीप्त ज्वाला वाले (पूर्व्यम् अग्निम्) मनोरथ पूर्ण करनेवाले वा पुरातन अग्निकी (यज्ञेषु ईमहे) यज्ञोंमें स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

१ २ ३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्।

१ २ ३२ ३ १२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये।

ऋ० पुरुमीढः । छ० प्रगाथः । दे० अग्निः । अच्छान इति प्रगाथात्मके चतुर्थसूक्ते तत्र प्रथमा । अच्छ अभिमुखं यन्तु गच्छन्तु नः अस्माकं गिरः स्तुतयः । कम् ? शीरशोचिषम् अज्ञानशीलज्वालं दर्शतम सर्वैर्दर्शनीयम् अग्निम् । तथा यज्ञासः यज्ञाश्च अस्मदीयाः नमसा हविषा आज्यादिलक्षणेन अच्छ अभिमुखं यन्तु गच्छन्तु । कीदृशम ? पुरुवसुं प्रभूतधनं पुरुप्रशस्तं बहुभिः सम्यक् स्तुतम् । किमर्थम् ? ऊतये अस्माकं रक्षणाय ॥ १ ॥

(नः गिरः) हमारी स्तुतियें (शीरशोचिषं दर्शतं अच्छ यन्तु) मनस्तरंगिल ज्वालाओंवाले दर्शनीय अग्निके अभिमुख जायँ (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (नमसा यज्ञासः) घृतादिरूप हविसे युक्त हमारे यज्ञ (पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं अच्छ) अधिक धनी परमप्रशंसनीय अग्नि के अभिमुख प्राप्त हों ॥ १ ॥

अग्निꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं दानाय वार्य्याणाम् । द्विता योऽभूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः अग्निः अमृतः अमरणधर्मा देवेषु भवति, सः मर्त्येषु आ आकारश्चार्थे मर्त्येषु मनुष्येषु च अभूत् अभवत् इत्येवं द्विता द्वैधं भवति । देवेषु अप्यमृतत्वमस्य प्रसिद्धम् । मनुष्येषु कीदृशोऽभूत् ? उच्यते विशि विक्षु यजमानरूपासु प्रजासु होता होमनिष्पादकः मन्द्रतमः मादयितृतमश्च भवति । तमच्छ यन्त्विति समन्वयः । अथवा यः अमृतः द्विता द्वित्वं द्वैधं द्विः प्रकारोऽभूत । कथं मर्त्येषु सामान्येन दाहपाकादिसाधनोऽभवदित्येतत् प्रसिद्धम् । विशि यजमानरूपायां तु होता मन्द्रतमश्च अभवदित्येवं द्वित्वम् ॥ २ ॥

(यः अमृतः) जो अग्नि देवताओंमें अमरणधर्मा है वह (मर्त्येषु च अभूत) मनुष्योंमें भी है (द्विता) इस रीतिसे दो प्रकारका है । देवताओंमें अग्नि का अमर होना प्रसिद्ध ही है, अब मनुष्योंमें कैसा है सो कहते हैं (विशि होता मन्द्रतमः) मनुष्य यजमानरूपा प्रजाओंमें होमको सुसिद्ध करनेवाला और परम आनन्द देनेवाला होता है । (सहसः सूनुं जातवेदसं अग्निम्) बलके पुत्रसमान प्राणिमात्रके

ज्ञाता अग्निको (वार्याणां दातिय आ) अन्न धनादिके दानके लिये आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चदशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अदाभ्यः पुर एता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।
२ ३ २३ २ ३ १ २
तूर्णी रथः सदा नवः ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ तृतीयखण्डे अदाभ्य इति तृचात्मके प्रथमे सूक्ते प्रथमा । मानुषीणां मनोर्जातानां विशां प्रजानां पुर एता सन्मार्गप्रदर्शनेनाग्रतो गन्ता अतएव तूर्णीः पूर्णिताः प्रजाः वैदिककर्मप्रवर्त्तनेनानुग्रहीतुं त्वरायुक्ताः आलस्यरहिताः रथः हविषां वहनाद्रथसदृशः सदा सर्वदा तत्कर्मणि नवः नूतनः पुनर्मन्थनादभिनवः एवंविधोऽग्निःअदाभ्यः अहिंस्यः न केनापि तिरस्कार्य इत्यर्थः ॥ १ ॥

(मानुषीणां विशां पुरः एता) मनुष्य प्रजाओंका सन्मार्गदर्शक होनेसे अग्रगन्ता, अतएव (तूर्णीः) वैदिक कर्मका अनुष्ठान करनेमें आलस्य रहित हुई उन प्रजाओंका (रथः) हवि पहुँचानेके कारण रथकी समान (सदा नवः अग्निः) प्रत्येक कर्ममें तत्काल मन्थनसे उत्पन्न किया जानेके कारण सदा नवीन अग्नि (अदाभ्यः) किसी के तिरस्कारके योग्य नहीं है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि प्रयाँसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।
१ २ ३ १ २
क्षयं पावक शोचिषः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । दाश्वान् हविषां दाता मर्त्यः मनुष्यः यजमानः वाहसा हविषां वाहकेनाग्निना प्रयांसि अन्नानि अभि अश्नोति अभितः सर्वतः प्राप्नोति । किञ्च पावकशोचिषः शोधकदीप्तेः अग्नेः सकाशात् क्षयं गृहं चाश्नोति ॥ २ ॥

(दाश्वान् मर्त्यः) हवियोंको अर्पण करनेवाला यजमान (वाहसा) हवि पहुँचानेवाले अग्निके द्वारा (प्रियांसि अभि अश्नोति) प्रिय अन्नोंको सब ओरसे पाता है (पावकशोचिषः क्षयम्) और पवित्र प्रकाशवाले अग्निसे स्थानको पाता है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।
३ २ ३ १ २
अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अभियुजः अभियोक्त्रीः विश्वाः सेनाः साह्वान् सहमानः स्वबलेन तिरस्कुर्वाणः अतएव अमृक्तः शत्रुभिर्हिंसितः देवानां क्रतुः कर्त्ता हविः—प्रदानेन पोषकः । एवम्भूतः अग्निः तुविश्रवस्तमः तुविशब्दो बहुवाची (निघ० २, १, २,) श्रवः शब्दोऽन्नवाची (निघ० २, ७, ९) अतिशयेन बहुविधान्नोपेतो वर्त्तते यस्मादेवं तस्मादस्मानपि बहुविधान्नोपेतान् करोत्विति भावः ॥ ३ ॥

(अभियुजः विश्वाः साह्वान्) चढ़ाई करनेवाली सकल सेनाओंका अपने बलसे तिरस्कार करनवाला (अमृक्तः देवानां क्रतुः अग्निः) शत्रुओंसे न दबनेवाला देवताओंका पोषक अग्नि (तुविश्रवस्तमः) अधिकतासे अनकों प्रकारके अन्नों वाला है, इसकारण हमें भी बहुत अन्न देय ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो
२ ३ २ ३ २ ३ १ २र
अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १ ॥

ऋ० सौभरिः प्रयोगः वा । छ० ककुप् । दे० अग्निः । अथ भद्रो नो अग्निराहुत इति प्रगाथात्मके द्वितीयसूक्ते सैषा प्रथमा । आहुतः हविर्भिस्तर्पितः अग्निः नः अस्माकम् भद्रः कल्याणः भवतु । हे सुभग ! शोभनधनाग्ने ! भद्रा कल्याणी रातिः दानः चास्माकम् भवतु । भद्रः कल्याणः अध्वरः यागश्च भवतु । उत अपि च भद्राः कल्याणाः प्रशस्तयः प्रशंसा स्तुतयश्च भवन्तु ॥ १ ॥

(आहुतः अग्निः नः भद्रः) आहुतियोंसे तृप्त किया हुआ अग्नि हमारे लिये कल्याणरूप हो (सुभग भद्रा रातिः) हे श्रेष्ठ धनवाले अग्निदेव कल्याणरूप तुम्हारा दान हमें प्राप्त हो (अध्वरः भद्रः) हमारा यज्ञ कल्याणरूप हो (उत प्रशस्तयः भद्राः) और स्तुतियें भी कल्याणरूप हों

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये येना समत्सु सासहिः ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्द्धतां वनेमा ते
३ १ २
अभिष्टये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने! वृत्रतूर्य्ये संग्रामे भद्रं शोभनं मनः कृणुष्व अस्माकं कुरु। येन मनसा त्वं समत्सु संग्रामेषु सासहिः भृशं शत्रूनभिभवसि। अपि च शर्द्धताम् अभिभवतां शत्रूणाम् भूरि भूरीणि बहूनि स्थिरा स्थिराणि दृढान्यपि बलानि अव तनुहि अवाञ्चि कुरु पराजितानि कुर्वित्यर्थः। वयञ्च अभिष्टिभिः अन्वेषणसाधनैः हविर्भिः स्तोत्रैश्च ते त्वां वनेम सम्भजेमहि यद्वा ते तव प्रसादात् अभिष्टिभिः अभीष्टैः फलैः वनेम सङ्गच्छेमहि ॥ २ ॥

हे अग्ने (वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व) संग्राममें हमारे मनको कल्याणदाता करो (येन समत्सु सासहिः) जिस मनसे तुम संग्रामोंमें शत्रुओंका तिरस्कार करते हो (शर्धतां भूरि स्थिरा अवतनुहि) तिरस्कार करने में समर्थ शत्रुओंकी दृढ़ सेनाओंको भी पराजित करो (अभिष्टये ते वनेम) हम अभीष्ट फल पानेके लिये हवि और स्तोत्रोंसे तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसा यहो।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः। छ० उष्णिक्। दे० अग्निः। अथ अग्ने वाजस्येति तृतीयतृचे, प्रथमा हे सहसः यहो बलस्य पुत्र! अग्ने! गोमतः बहुभिर्गोभिर्युक्तस्य वाजस्य अन्नस्य ईशानः ईश्वरस्त्वमसि। अतः अस्मे अस्मासु हे जातवेदः! जातधन! जातानां वेदिता वाग्ने! महि प्रभूतं श्रवः अन्नं देहि प्रयच्छ। सहसोयहो पराङ्गवद्भाव त् आमन्त्रितस्य च(८, १, १९) इति षष्ठ्यामन्त्रितसमुदायो निहन्यते। अस्मे सुपाम सुलुक् (७, १, ३९) इति सप्तम्याः शे आदेशः ॥ १ ॥

(सहसः यहः अग्नेः) हे बलके पुत्र अग्ने (गोमतः वाजस्य ईशानः) तुम बहुतसी गौओंसहित अन्नके स्वामी हो (जातवेदः अस्मे महि श्रवः देहि) हे जातवेदः! हमें बहुतसा अन्न दो ॥ १ ॥

१ २३१ २र ३२३२ ३१ २
स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।
३२३१२
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सः अग्निः इधानः दीपनशीलः वसुः निवासयिता सर्वेषां कविः क्रान्तदर्शनः मेधावी वा गिरा स्तोत्ररूपया वाचा ईडेन्यः स्तोतव्यो भवति हे पुर्वणीक अनीकं मुखं पुरुभि बह्वीभिः अनीकस्थानीयाभिः ज्वालाभिः युक्ताग्ने ! अस्मभ्यं रेवत् धनयुक्तमन्नं यथा भवति तथा दीदिहि दीप्यस्व इंधीति छान्दसो दीप्तिकर्मा ॥ २ ॥

(सः अग्निः) वह अग्नि (इधानः वसुः) दीप्त और सबको निवास देनेवाला (कविः गिरा ईडेन्यः) अनुभवी और वेदमन्त्रोंसे स्तुति करने योग्य है (पुर्वणीक अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि) हे अनेकों सुखरूप ज्वालाओंसे युक्त अग्ने ! हमारे लिये धनहित प्रज्वलित हूजिये ॥ २ ॥

३१ २ ३२उ ३ १२३१ २र
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
१ २ ३१२ ३१२
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे राजन् ! राजमान ! अग्ने ! क्षपः क्षपय राक्षसादीन स्वकीयैः पुरुषैर्बाधस्व । उत अपि च त्मना न केवलमन्यैरेव आत्मना च तान् बाधस्व । कदा ? इति चेत, उच्यते वस्तोः सर्वाण्यहानि उत अपि च उषसः उषः कालोपलक्षिता रात्रीश्च । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया (२, ३, ४) । सर्वेष्वहःसु सर्वासु रात्रिषु चेत्यर्थः हे तिग्मजम्भ ! तीक्ष्णमुखाग्ने ! रक्षसः राक्षसान् उक्तप्रकारेण क्षपयित्वा स एव त्वं प्रतिदह प्रत्येकं दह इह न किञ्चिद्दग्धव्यमित्युदास्वेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(राजन् अग्ने) हे विराजमान अग्निदेव ! (वस्तोः उत उषसः) सकल दिनोंमें और रात्रियोंमें (क्षप) राक्षसादिकोंको अपने पुरुषों के द्वारा पीड़ित करो (उत त्मना) और स्वयं भी उनको पीड़ा दो (तिग्मजम्भसः रक्षसः प्रतिदह) हे तीक्ष्णमुख ऐसे ! तुम उन राक्षसों को एक एक करके भस्म करदो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चदशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

३१ २ ३ १२ ३१२ २
विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१॥

ऋ० गोपवनः वा सप्तवध्रिः । छ० अनुष्टुप् । दे० अग्निः । अथ चतुर्थं खण्ड—विशोविशो वो अतिथिमिति तृच, तस्मिन् प्रथमे सूक्ते, प्रथमा । हे ऋत्विजो ! यजमानाश्च वः यूयं वाजयन्तः अन्नमिच्छन्तः विशः विशः सर्वस्याः प्रजायाः अतिथिं पूज्यं पुरुप्रियं बहुप्रियम् अग्निं स्तुत्या परिचरतेति शेषः । अहञ्च वः युष्मदर्थं दुर्यं गुहाहितम् अग्निं वचः अनु स्तुषे स्तौमि शूषस्य बलस्य लाभार्थकैः साधनैः मन्मभिः मननीयैः स्तोत्रैः ॥ १ ॥

हे ऋत्विजो और यजमानो ! (वः) तुम (विशः विशः अतिथिम्) सकल प्रजाके पूजनीय (पुरुप्रियं अग्निम) बहुतोंके प्यारे अग्निकी स्तुतिसे उपासना करो (वः शूषस्य मन्मभिः) तुम्हारे लिये बलप्राप्त करानेवाले साधनोंसे और स्तोत्रोंसे (दुर्यं वचः स्तुषे) गुहामें स्थित अग्निकी वाणीसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

१ २र ३ १ २ ३२उ ३ १ २

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।

३ १ २ ३ १ २

प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यम् अग्निं जनासः जनाः यजमानाः हविष्मन्तः सन्तः मित्रं न मित्रमिव आदित्यमिव सखायमिव वा सर्पिरासुतिं सर्पिरासूयते हूयते यस्मिन् तादृशं प्रशंसन्ति स्तुवन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

(यम्) जिसको (जनासः हविष्मन्तः) यजमान हवि धारण किये हुए (मित्रं न) आदित्यकी वा मित्रकी समान (सर्पिरासुतिम्) घृत के हवनके साथ (प्रशस्तिभिः प्रशंसन्ति) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।

३ १ २र ३ २

हव्यान्यैरयद्दिवि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । पन्यांसम् अतिशयेन स्तोतारं साधु कृतमिति यजमानं स्तुवन्तं जातवेदसं जातधनं श्रौतविद्यं वा स्तुम इति वाक्यशेषः

यः अग्निः देवताति देवतातौ यज्ञे उद्यता उद्यतानि हव्यानि हवींषि दिवि ऐरयत् प्रेरयति दिवि देवेभ्यः ॥ ३ ॥

(पन्यांसं जातवेदसम्) तुमने अच्छा किया इसप्रकार यजमानकी प्रशंसा करतेहुए अग्निकी स्तुति करते हैं (यः देवताति उद्यता हव्यानि) जो देवयज्ञमें उद्यत हवियोंको (दिवि ऐरयत्) द्युलोकमें प्रेरणा करता है अर्थात् देवताओंके पास पहुंचाता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
समिद्धमग्निꣳ समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं
३ १ २ ३ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पुरो अध्वरे ध्रुवम् । विप्रꣳ होतारं पुरुवारमद्रुहं
३ २ ३ १ २ ३ १ २
कविꣳ सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः वीतहव्यः वा । छ० जगती । दे० वैश्वानरः । अथ द्वितीयतृचे, प्रथमा । समिद्धं सम्यग्दीप्तम् अग्निं समिधा समिन्धनहेतुभूतया गिरा स्तुत्या गृणे अहं स्तौमि यद्वा, समिधा समिद्भिर्दारुभिः समिद्धं सम्यक् दीप्तम् । अपि च शुचिं स्वयं शुद्धं पावकं सर्वेषां शोधकं ध्रुवं निश्चलं तमग्निम् अध्वरे यज्ञे पुरः करोमीति शेषः । तथा विप्रं मेधाविनं होतारं देवानाम् आह्वातारं पुरुवारं बहुभिर्वरणीयम् अद्रुहम् अद्रोग्धारं सर्वेषामनुकूलं कविं क्रान्तदर्शनं जातवेदसं जातानां वेदितारमग्निं सुम्नैः सुखकरैः स्तोत्रैः ईमहे सम्भजामहे यद्वा, द्वितीयार्थे तृतीया (३, १, ८५) सुम्नानि धनानि, ईमहे याचामहे इति ॥ १ ॥

(समिधा समिद्धं अग्निं गिरा गृणे) समिधाओंसे दीप्त हुए अग्निकी वेदमन्त्रोंसे स्तुति करता हूँ (शुचिम् ध्रुवम् पावकं अध्वरे पुरः) स्वयं शुद्ध निश्चल और दूसरोंको पवित्र करने वाले पावकको मैं यज्ञमें आगे स्थापन करता हूँ (विप्रम् होतारम्) मेधावी और देवताओंका आह्वान करनेवाले (पुरुवारं अद्रुहम्) अनेकोंसे वरणीय और सबके अनुकूल (कविं जातवेदसम्) अनुभवी अग्निको (सुम्नैः ईमहे) धन की याचना करते हैं ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
पायुमीड्यम् । देवासश्च मर्त्तासश्च जागृविं

३२ ३ २ ३ १२३ १ २
विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने! त्वां देवासः देवाश्च मर्त्यासः मनुष्याश्च दूतं दधिरे विदधिरे कृतवन्तः। कीदृशं त्वाम्? अमृतम् अमरणम्, युगे युगे काले काले तत्तद्यागानुष्ठानसमये हव्यवाहं हविषां हव्यानां पायुम् पालयितारम् ईड्यं स्तुत्यम्। अपि च ते उभयविधाः जागृविं जागरणशीलं विभुं व्याप्तं विश्पतिं विशां प्रजानां पालयितारम् अग्निं नमसा हविर्लक्षणेनान्नेन नमस्कारेण वा निषेदिरे उपसेदिरे ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (देवासः च मर्त्तासः च) देवता और मनुष्य भी (अमृतं युगे युगे हव्यवाहम्) अमर और प्रत्येक यज्ञानुष्ठानके समयमें देवताओंके पास हवि पहुंचानेवाले (पायुं ईड्यं त्वाम्) पालनकर्त्ता और स्तुतिके योग्य तुमको (दूतं दधिरे) दूत बनाते हुए और वह दोनों देवता और मनुष्य (जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे) जागरणस्वभाव व्याप्त और प्रजारक्षक अग्निकी नमस्कार वा हविसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानाँ
१२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
रजसी समीयसे। यत्ते धीतिँ सुमतिमावृणी
१ २र ३ १ २ ३ १ २
महेऽधस्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अग्ने! उभयान् उभयविधान् देवान् मनुष्यांश्च विभूषन् अलंकुर्वन् त्वम् अनुव्रता व्रतान्यनुव्रतेषु कर्मसु यागेषु देवानां दूतः सन् रजसी द्यावापृथिव्यौ समीयसे सञ्चरसि देवानानेतुं द्युलोकम् गच्छसि हवींषि च नेतुमिमं लोकम्। किञ्च यत् यस्मात् ते तुभ्यम् त्वदर्थं धीतिं कर्म, सुमतिं शोभनां स्तुतिं च आवृणीमहे वयं सम्भजामहे। अध अतः कारणात् त्रिवरूथः त्रिस्थानस्त्वं नः अस्माकं शिवः सुखकरः भव स्म इति पादपूरणम् ॥ ३ ॥

(अग्ने उभयान् विभूषन्) हे अग्ने! देवता और मनुष्य दोनोंको सुशोभित करते हुए तुम (अनुव्रता देवानां दूतः) कर्मोंमें देवताओंके दूत होते हुए (रजसी समीयसे) द्युलोकमें हवि पहुंचानेको और इस

लोकमें हवि लेजानेको विचरते हो (यत ते) क्योंकि तुम्हारे लिये (धीतिं सुमतिं आवृणीमहे) कर्म और श्रेष्ठ स्तुतिको भजते हैं (अध त्रिवरूथः अस्मान् शिवः भव) इसके अनन्तर तीनों स्थानोंमें स्थित तू हमको सुखकारी हो ॥ ३ ॥

१.२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
३ १ २र
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १ ॥

ऋ० प्रयोगः, अग्निः, यविष्ठः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ तृतीयसूक्ते, प्रथमा । हे अग्न ! हविष्कृतः यजमानार्थं गिरः स्तुतयः जामयः स्वसार इव देदिशतीः तव गुणान् दिशन्त्यः त्वा त्वाम् उप अस्थिरन् उपतिष्ठन्ते वायोरनीके समीपे त्वां समेधयन्त्यः अस्थिरंश्च ।

हे अग्ने ! (हविष्कृतः) यजमानके लिये (गिरः जामयः देदिशतीः) स्तुतियें बहिनोंकी समान तुम्हारे गुणोंको गातीहुई (वायोः अनीके त्वां उप।।स्थिरन्) वायुके समीप तुम्हें प्रदीप्त करती हुई स्थापित करती हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् ।
१ २ ३ १ २ ३१
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यस्य अग्नेः त्रिधातु त्रिपर्व अवृतम् अनावृतम् च असन्दिनम् । अबद्धश्च स्तरणकाले बर्हिरबद्धं भवति बर्हिः तस्थौ आसदनार्थं तिष्ठति । तस्मिन् अग्नौ आपः चित् आपोऽपि पदं निदधे निदधति । आन्तरिक्ष्या माध्यमिके पदं निदधतीत्यर्थः ॥ २ ॥

(यस्य) जिन अग्निका (त्रिधातुः अवृतम) तीन पर्वोंवाला और आवरण रहित (अवसन्दिनं बर्हिः तस्थौ) विना बँधा हुआ कुशसमूह स्थित है तिस अग्निमें (आपः चित् परम् निदधाति) जल भी पद स्थापन करता है ॥ २ ॥

३२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
३ १ २र ३ २
भद्रा सूर्य्य इवोपदृक् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मीढुषः कामानां सेक्तुः देवस्य द्योतमानस्याग्नेः पदं स्थानं अनाधृष्टाभिः अबाधिताभिः ऊतिभिः रक्षाभिः भजनीयं भजतीत्यर्थः । तथैवास्य उप दृक् उपदृष्टिरपि सूर्य इव यथा सूर्यः तद्वत् भद्रा मनुष्यैर्भजनीया भवति ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वर-वैदिकमार्गप्रवर्त्तक श्रीवीर-बुक्क-भूपाल साम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रन्थे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

(मीढुषः देवस्य पदम्) अभीष्टफल देनवाला द्योतमान अग्निका स्थान (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) अबाधित रक्षाओंसे सेवनीय होता है तथा इसकी (उपदृक्) उपदृष्टि भी (सूर्य इव भद्रा) सूर्यकी समान भजनीय है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके पञ्चदशाऽध्यायस्य चतुर्थः खण्डः
पञ्चदशाध्यायश्च समाप्तः

अथ षोडशोऽध्याय आरभ्यते

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
३ १ २ ३ २ ३ ४ २ ३ १ २ ३ २
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्

ऋ० मेधातिथिः । छ० बृहती । दे० इन्द्रः । तत्र प्रथमे खण्ड—अभि त्वा पूर्वपीतय इति प्रगाथात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इन्द्र ! आयवः मनुष्याः स्तोतारः स्तोमेभिः स्तोत्रैः त्वा त्वाम् अभिष्टुवन्ति । किमर्थम् पूर्वपीतये सर्वभ्यो देवेभ्यः पूर्वं प्रथमत एव सोमस्य पीतये पानाय सवनमुखे हि चमसगणैः इन्द्रस्यैव सोमो हूयते तथा समीचीनासः सङ्गताः ऋभवः प्रथमवाचकेन शब्देन त्रयोऽप्युपलक्ष्यन्ते ऋभुर्विभ्वावाज इत्येते समस्वरन् त्वामेव सम्यगस्तुवन् स्वरशब्दोपतापयाः (भ्वा० प०) रुद्राः रुद्रपुत्राः महतश्च पूर्व्यम् पुरातनं वृद्धं त्वा त्वामेव गृणन्त अभ्यस्तुवन् वृत्रवधसमये प्रहर भगवो जहि वीरयस्व इत्येवं रूपया वाचा त्वां स्तुतवन्त इत्यर्थः ॥ १ ॥

(इन्द्र आयवः) हे इंद्र ! मनुष्य स्तोता (पूर्वपीतये) सबसे पहिले सोम पीनेके लिये (स्तोमेभिः त्वा अभि) स्तोत्रोंसे तुम्हारी

स्तुति करते हैं (समीचीनासः ऋभवः समस्वरन्) इकट्ठे हुए ऋभु आदि स्तोता तुम्हारी ही स्तुति करते हुए (रुद्राः पूर्व्यं गृणन्त) रुद्र पुत्रोंने पुरातन वृद्ध तुम्हारी स्तुति की ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यँ शवो मदे सुतस्य
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
विष्णवि । अद्या तमस्य महिमानमा यवोऽनु
३ १ २
ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया।अस्येत् अस्यैव यजमानस्य वृष्ण्यं वृषत्वं वीर्य्य शवः बलं च इंद्रः वावृधे वर्द्धयति।सुतस्य अभिपुतस्य सोमस्य पानेन विष्णवि कृत्स्नदेहस्य व्यापके मदे हर्षे सति तस्यैव यजमानस्य बलं वर्द्धयतीत्यर्थः अद्य अस्मिन् काले अस्य इन्द्रस्य तम् उक्तगुणं महिमानं महत्वं आयवः मनुष्याः अनुष्टुवन्ति आनुपूर्व्येण स्तुवन्ति पूर्वथा पूर्वशब्दादिवार्थे प्रत्नपूर्व (४, ३, १७१) इत्यादिना थाल्प्रत्ययः यथा पूर्वस्मिन् काले अस्तुवन् एवमिदानीमपि तेनैव क्रमेण स्तुवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

(इन्द्रः सुतस्य विष्णवि मदे) इन्द्र देवता अभिपुत सोमका सर्व शरीरव्यापी हर्ष प्राप्त होने पर (अस्येत् वृष्ण्यंशवः वावृधे) इस यजमानके ही वीर्य और बलको बढ़ाता है (आयवः अद्य) मनुष्य स्तोता इस समय (पूर्वथा) पूर्वकालकी समान (अस्य तं महिमानं अनुष्टुवन्ति) इस इंद्रकी पूर्वोक्त महिमाका गान करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
१ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । प्र वामर्चन्त्युक्थिन इति चतुरृचं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इन्द्राग्नी उक्थिनः उक्थं शस्त्रं तद्वन्तः शस्त्रिणः होत्रादयः वां युवां प्रार्चन्ति—इह कर्मणि स्तुतिरूपाभिर्वाग्भिः पूजयन्ति तथा नीथाविदः स्तोत्राभिज्ञाः सामगानकुशलाः जरितारः स्तोतारः उद्गात्रादयः अभिलषितफलावाप्तये युवामर्चन्ति । अहमपि इषः अन्नस्य लाभार्थम् इंद्राग्नी युवाम् आ वृणे सर्वतः सम्भजे पूजयामीत्यर्थः ॥ १ ॥

(इन्द्राग्ना) हे इंद्र अग्निदेवताओ (उक्थिनः) वेदपाठी (त्वां प्रार्चन्ति) तुम्हारी स्तुतियोंसे पूजा करते हैं (नीथाविदः जरितारः) सामगानमें प्रवीण उद्गाता आदि इच्छित फल पानके लिये तुम्हारी पूजा करते हैं (इषः आवृणे) मैं भी अन्न पानेके लिये तुमसे प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
३ १ २र ३ १ २
साकमेकेन कर्मणा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इन्द्राग्नी ! दाशपत्नीः दासयन्ति उपक्षयन्तीति दासाः उपक्षयितारः शत्रवः ते पतयः पालकाः यासां ता दासपत्नीः नवतिं नवतिसंख्याकाः पुरः एवंविधाः शत्रुपुरी एकेन कर्मणा एकेनैवोद्योगेन युवां साकं सह युगपत् अधूनुतम् अकम्पयतं ताविन्द्राग्नी आह्वयामीति शेषः ॥ २ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि देवताओ ! (दासपत्नीः) शत्रुओं की पालन की हुई (नवतिं पुरः) नब्बै पुरियोंको (एकेन कर्मणा) एक ही उद्योगसे (साकम्) एकसाथ (अधूनुतम) कम्पायमान करतेहुए ऐसे तुम्हें मैं आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।
३ १ २ ३ २ १ २
ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इन्द्राग्नी ! धीतयः सोमस्य धातारः पातारो होत्रादयः ऋतस्य कर्मफलस्य पथ्याः पथः मार्गान् अनु लक्षीकृत्य अपसः अस्माभिः क्रियमाणस्य कर्मणः परि सर्वतः उप प्रयन्ति समीपे प्रकर्षेण वर्त्तन्ते । अतः सोमपानार्थं युवामागच्छतमिति भावः यद्वा, धीतयः स्तुतयः ऋतस्य यज्ञस्य पथः मार्गान् अनु लक्षीकृत्य अपसः कर्मणः परि परितः उप प्रयन्ति प्रवर्त्तन्ते, अतः स्तोतव्यतया युवामागच्छतमिति ॥

(इंद्राग्नी) हे इंद्र और अग्नि देवताओ ! (धीतयः) होता आदि (ऋतस्य पथ्याः अनु) कर्मफलके मार्गोंकी ओरको ध्यान देकर (अपसः परि उपप्रयन्ति) हमारे कर्मानुष्ठानके सब ओर अधिकतासे वर्त्तमान हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वाꣳ सधस्थानि प्रयाꣳसि
३ २ ३ १ २ ३ २
च । युवोरप्तूर्यꣳ हितम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे इन्द्राग्नी ! वां युवयोः तविषाणि बलानि प्रयांसि अन्नानि च सधस्थानि सहस्थितानि परस्परमवियुज्य वर्त्तन्ते । तथा अप्तूर्य्य वृष्टिधारायाः प्रेरकत्वं युवोः युवयोरेव हितं निहितं वर्त्तन्ते तस्मात् सोमपानप्रभृतिषु सर्व-कर्मसु इन्द्राग्न्योः सहैव वर्त्तनमिति भावः सधस्थानि—ष्ठा गति-निवृत्तौ च (भ्वा० प०) आतोऽनुपसर्गे कः (३, २, ३) सधमास्थयोश्छन्दसि (६, ३, ९६)—इति सहस्य सधादेशः ॥ ४ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इंद्र और अग्नि देवताओं ! (वां तविषाणि प्रयांसि सधस्थानि) तुम्हारे बल और अन्न परस्पर मिलेहुए रहते हैं (अप्तूर्यं युवोः हितम्) वर्णकी धाराओंका प्रेरकपन तुम्हारे विषै स्थित है ४

३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥

ऋ० भर्गः । छ० बृहती । दे०इंद्रः । अथ शग्ध्यूष्विति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे शचीपते ! इंद्र ! शग्धि विश्वाभिः सर्वाभि ऊतिभिः मरुद्भिः सह । हे शूर ! हे वीर ! भगं न भाग्यमिव यशसं यशस्विनं वसुविदं धनस्य लम्भकं त्वा त्वाम् अनुचरामसि अनुचरामः परिचराम इत्यर्थः ॥ १ ॥

(इंद्र शग्धि) हे इंद्रदेव ! अभीष्टफल दो (विश्वाभिः ऊतिभिः शचीपते शूर) सकल रक्षाओं सहित हे शचीपति शूर इंद्र ! (भगं न यशसम्) भाग्यकी समान तेजस्वी (वसुविदं त्वां अनुचरामसि धन प्राप्त करानेवाले आपकी हम उपासना करते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ उ ३ २ ३ १ २र
न किर्हि दानं परि मर्धिषत्वे यद्यद्यामि तदाभर ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! त्वम् अश्वस्य पौरः पुरयिता असि भवसि

तथा गवां पुरुकृत् बहुकर्त्तासि। हे देव ! हिरण्ययः हिरण्मयशरीरस्त्वम् उत्स उत्सदृशोऽसि। हे इंद्र ! त्वे त्वयि वर्त्तमानं दानम् अस्मद्विषयम्, देयं धनं वा न किः हि परि मर्द्धिषत् न कश्चित् हिनस्ति। अतो यद् यद् यामि याचे, तत्तत् आभर आहर मह्यम् ॥ २ ॥

हे इंद्र ! तुम (अश्वस्य पौरः) अश्वोंकी पूर्त्ति करनेवाले (गवां पुरुकृत् असि) गौओंकी अधिकता करनेवाले हो (देव हिरण्ययः उत्सः) हे देव ! सुवर्णमय और प्रवाहकी समान तृप्त करनेवाले हो (हे इंद्र ! त्वे दानम्) तुम्हारे विषैं वर्त्तमान हमारे देनेयोग्य धनको (न किः हि परिमर्धिषत्) कोई भी नष्ट नहीं करसकता है। इसकारण (यत् यत् यामि) जो मैं याचना करता हूं (तत्आभर) वह दो ॥

२३ ३ १ २ ३उ ३ १ २

त्वᳪं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥१॥

ऋ० भर्गः। छ० बृहती। दे० अग्निः। अथ त्वं ह्येहि चेरव इति प्रगाथात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे इन्द्र ! त्वं हि त्वं खलु सामार्थ्याद्दातेति गम्यते। अतः एहि आगच्छ। आगत्य च अस्मभ्यं भगं भजनीयं धनं विदा लभस्व दत्स्व। किमर्थम् ? वसुत्तये अस्माकं वसुदानाय। हे मघवन् धनवन् ! गविष्टये गा इच्छते मह्यं उद्वावृषस्व उत्सिञ्चस्व गा इति शेषः। तथा हे इंद्रः ! अश्वमिष्टये अश्वेषणवते मह्यम अश्वान् उद्वावृषस्व उत्सिञ्चस्व देहि ॥ १ ॥

(त्वं वसुत्तये हि एहि) हे इंद्र ! तुम मुझे धन देनेको अवश्य ही आओ (चेरवे भगं विदाः) और आकर सदाचरणसे रहनेवाले मुझे ऐश्वर्य दो (मघवन् गविष्टये उद्वावृषस्व) हे धनाधीश ! गौएं चाहनेवाले, मुझे गौएं दो (इंद्र अश्वमिष्टये उत्) हे इंद्र अश्वोंकी चाहना वाले मुझे अश्व दो ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३

मᳪंहसे । आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं

२ ३ १ २

गायन्तोऽवसे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इंद्र! त्वं पुरु पुरूणि बहूनि सहस्राणि शतानि च यूथा गवादियूथानि दानाय यजमानविषयाय मंहसे अनुमन्यसे यद्वा, दानाय दात्रे यजमानाय मंहसे प्रयच्छसि। मंहतिर्दानकर्मा (नि० ३, २०, १०) अथ परोक्षेण ब्रवीति—पुरन्दरं शत्रुपुराणां दारयितारम् इंद्रम् अवसे रक्षणाय तर्पणाय वा गायन्तः स्तुवन्तः विप्रवचसः विविधप्रकृष्टवचना वयम् आ आगन्तारम् अभिमुखम् वा चकृम कुर्मः॥ २॥

हे इंद्र! (त्वम्) तुम (पुरूणि सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे) बहुतसे सहस्रों और सैंकड़ों गौओं आदिके यूथ हवि देने वाले यजमानको देते हो (पुरन्दरं इंद्रम) शत्रुओंके नगर नष्ट करने वाले इंद्रको (अवसे) रक्षाके लिये (गायन्तः) स्तुति करतेहुए (विप्रवचसः आ चकृम) अनकों प्रकारके श्रेष्ठ वचन वाले हम अभिमुख करते हैं२

२उ ३र १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ ३
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
मधोर्न पात्रा प्रथमान् यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये

ऋ० सौभरिः। छ० बृहती। दे० अग्निः! अथ यो विश्वेति प्रगाथात्मकं पञ्चमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। होता देवानामाह्वाता मन्द्रः मोदयिता यः अग्निः विश्वा सर्वाणि वसु वसूनि धनानि जनानां जनेभ्यः दयते प्रयच्छति, तस्मै अग्नये मधोः मदकरस्य सोमस्येव प्रथमानि मुख्यानि पात्रा पात्राणि स्तोमाः प्रयन्तु प्रगच्छन्तु॥ १॥

(होता मन्द्रः यः) देवताओंका आह्वान करनेवाला और आनन्द देनेवाला जो अग्नि (विश्वा वसु जनानां दयते) सकल प्रकारके धन अपने सेवकोंको देता है (अस्मै अग्नये) इस अग्निके अर्थ (मधो नः प्रथमानि) मदकारी सोमकी समान मुख्य (पात्रा स्तोमा प्रयन्तु) पात्र और स्तोत्र प्राप्त हों॥ १॥

२ ३ २ ३ २ ३क२र ३ १ २ ३ १ २
अश्वं न गीर्भि रथ्यꣳसुदानवो मर्मृज्यन्ते
३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३
देवयवः। उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि
१ २ ३ १ २
राधो मघोनाम्॥ २॥

अथ द्वितीया। हे दस्म ! दर्शनीय ! विश्पते ! विशांपते ! अग्ने ! यं त्वां सुदानवः शोभनदानाः देवयवः देवानात्मन इच्छन्तो यजमानाः रथ्यं रथस्य वोढारम् अश्वम् नः अश्वमिव गीर्भिः स्तुतिभिः मर्मृज्यन्ते परिचरन्ति स त्वम् अस्माकं यजमानानां तोके पुत्रे तनये पौत्रे च उभे उभयस्मिन् मघोनां धनवतां राधः धनं पर्षि प्रयच्छ॥ २ ॥

(दस्म विश्पते) हे दर्शनीय प्रजाओंके स्वामी अग्निदेव ! जिस तुमको (सुदानवः देवयवः) श्रेष्ठ दानवाले और देवताओं को अपना बनानेवाले यजमान (रथ्यं अश्वं न गीर्भिः मर्मृज्यन्ते) रथमें जुतनेवाले घोड़ेकी समान स्तुतियोंसे सेवा करते हैं। वह तू हमारे यजमानोंके (तनये तोके उभे) पुत्र पौत्र दोनोंमें (मघोनां राधः पर्षि) धनवानोंका धन दो ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
१ २ ३ १ ३२
त्वामवस्युरा चके ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० वरुणः । अथ द्वितीयखण्डे-इममे वरुणेत्येकर्च्चं प्रथमं सूक्तम्, सा ऋगेषा । हे वरुण ! मे मदीयम् इमं हवम् आह्वानं श्रुधि शृणु श्रु श्रवणे (भ्वा० प०) लोटो हिः, श्रु-शृ-णु-पृ-कृ—वृभ्यश्छन्दसि (६, ४, १०२)—इति हेर्द्धिर् देशः, बहुलम् छन्दसि (२, ४, ७३)—इति विकरणस्य लुक् अन्येषामपि दृश्यते (६, ३, १३६ वा०)—इति संहितायाम् दीर्घः । किञ्च अद्य अस्मिन् दिने मृडय अस्मान् सुखय अवस्युः रक्षणेच्छुः अवस्-इच्छाल् सुप आत्मनः क्यच् (३, १, ८) क्याच्छन्दसि (३, २, १७०)—इति उ—प्रत्ययः एवंविधोऽहं त्वां वरुणम् आ अभिमुख्येन चके शब्दयामि कै, गै शब्दे (भ्वा० प०) अस्माल्लिटि आदेच (६, ४, ४५)-इत्वात्वं, द्विर्भाव-चर्त्वे, आतो लोप इटि च (६,४, ६४)-इत्याकार लोपः, तिङ्ङतिङः (८, १, २८)—इति निघातः, स्तौमीत्यर्थः ॥ १ ॥

(वरुण मे इमं हवं श्रुधि) हे वरुणदेव ! मेरे इस आह्वानको सुनो (अद्य मडय च) और आज मुझे सुख भी दो (अवस्युः त्वां आचके) रक्षा चाहता हुआ मैं तुम्हारे अभिमुख होकर स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २२
कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।

१२ ३ २३ १ २
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

ऋ० सुकक्षः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । कया त्वन्न ऊत्याभिरित्येकर्चं द्वितीयं सूक्तम्, सा ऋगेषा । हे वृषन् ! कामानां वर्षित इंद्र ! कया केन ऊत्या अव रक्षणादिषु (भ्वा० प०) गत्यर्थः ऊति—यूति (३, ३, ९७)—इत्यादिना निपातितः । केनाभिगमनेन नः अस्मान् अभि अभितः प्र मन्दसे प्रकर्षेण मादयसि अस्मदीयं यज्ञं प्रति सोमपानार्थमागमनेन वा त्वदीयस्तुतिश्रवणार्थमागमनेन वा कदा अस्मान् प्रमादयसीति । किञ्च कया केन अभिगमनेन स्तोतृभ्यः अस्मभ्यम् धनम् आ भर बिभर्षि ?—इतीन्द्रं स्तोता पृच्छति ॥ १ ॥

(वृषन्) हे इच्छित फल बरसानवाले इंद्र ! (कया ऊत्या) किस रक्षाके द्वारा (त्वं नः अभिप्रमन्दसे) तुम हमको अधिक आनन्द देते हो (कया स्तोतृभ्यः आभर) और किस रक्षक आगमनसे हम स्तोताओंका भरण करते हो ॥ १ ॥

२ ३२३१२ ३ १२ ३क२र३२ १२
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रᳬं
३ २ ३१ २ ३ २ ३ १ २ ३ ३ १ २
समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥३॥

ऋ० मेधातिथिः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथेन्द्रमिद्देवतातय इति प्रगाथरूपं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । देवतातये देवैः स्तोतृभिस्तायते विस्तार्यते इति देवतातिर्यज्ञस्तदर्थम् इंद्रम इत् देवेषु मध्ये इंद्रमेव हवामहे आह्वयामहे । अध्वरे यज्ञे प्रयति प्रगच्छति उपक्रान्ते सति इन्द्रं हवामहे । तथा समीके सम्यग्जाते सम्पूर्णे च यागे वनिनः सम्भजमानाः वयम् इन्द्रम् इन्द्रमेवाह्वयामहे यद्वा, समीकमिति संग्राम-नाम (निघ० २, १७, ११) समीके संग्रामे इंद्रमाह्वयामहे धनस्य सातये लाभाय इंद्रम् इंद्रमेव आह्वयामहे । अतः शीघ्रमिन्द्र आगच्छत्वित्यर्थः ॥ १ ॥

(देवतातये इंद्रमित् हवामहे) यज्ञके लिये सब देवताओंमें इंद्रका ही आह्वान करते हैं (अध्वरे प्रयते इंद्रम) यज्ञका फैलाव होन पर इंद्रका आह्वान करते हैं (समीके वनिनः इन्द्रम) यज्ञ समाप्ति होने पर सेवा करन वाले हम इंद्रका ही आह्वान करते हैं (धनस्य सातये इन्द्रम्) धनके लाभके लिये इन्द्रको आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्य्यमरो-
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
चयत् । इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे
३ २ ३ १ १
स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयम् इंद्रः शवः शवसः आत्मीयस्य बलस्य मह्ना महिम्ना महत्त्वेन रोदसी द्यावापृथिव्यौ पप्रथत् अप्रथयत् विस्तारितवान् । तथा स्वर्भानुनावृतं सूर्य्यम् अयमेव इंद्रः अरोचयत् अदीपयत् तस्यासुरस्य वधेन प्रकाशितवान् । अपि च इंद्रे ह अस्मिन्नवेन्द्रे विश्वा विश्वानि व्याप्तानि भुवनानि भूतजातानि येमिरे उपरमन्ते इन्द्रेण नियम्यन्त इत्यर्थः । तथा स्वानासः स्वानाः अभिषूयमाणाःइंदवः सोमाश्च अस्मिन्नेवेन्द्रे नियम्यन्ते परमात्मन्यन्तर्भवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

(इन्द्रः शवः मह्ना रोदसी पप्रथत्) यह इन्द्र अपने बलकी महिमा से द्युलोक और पृथ्वी लोकको पूर्ण करता हुआ (इन्द्रः सूर्यम् अरोचयत्) इन्द्रने राहुके ढकेहुए सूर्यको प्रकाशित किया (इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे) इस इंद्रमें ही सकल भुवन ठहरे हुए हैं (स्वानासः इन्दवः इंद्रे) अभिषूयमाण सोम इन्द्रमें ही नियमित होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व
३ २ १ २र १ २ ३ २ ३ २ ३
तन्वा३ꣳ स्वा हि ते । मुह्यन्त्वन्ये अभितो
१ २ २ २ २र ३ १ २ ३ १ २
जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ १ ॥

ऋ० विश्वकर्मा । छ० त्रिष्टुप् । दे० विश्वकर्मा । अथ विश्वकर्मन्नित्येकर्च्चं चतुर्थं सूक्तम् सा ऋगेषा । हे विश्वकर्मन् ! विश्वविषयकर्मवन् ! एतन्नामक ! परमेश्वर ! हविषा हविर्भिः तेन विश्वकर्मणा मया दत्तेन हविषा वावृधानः वर्धमानः विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेध सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार—इत्यादि निरुक्तम् (दै० ४, २६) पूर्वमुदाहृतं स्वयं स्वयमेव तन्वां शरीरेण स्व हिते अग्नौ दत्तो हविः यजस्व पूजय । अ ये मर्त्याः जनासः जनाः

अयष्टारोऽस्मद्याग-विरोधिनो वा मुह्यन्तु मुग्धा भवंतु अभितःसर्वतः। अथ परोक्षकृतः—इह अस्मिन् यागे अस्माकं मघवा अस्मद्दत्तन हविर्लक्षणेन धनेन धनवान् सः सूरिः स्वर्गादिफलस्य प्रेरकः अस्तु भवतु। अत्र विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धमानः (दै० ४, २७)—इत्यादि निरुक्तं द्रष्टव्यम। तन्वांस्वाहिते-पृथिवीमुतद्याम् इति पाठौ ॥ १॥

(विश्वकर्मन्) हे विश्वभरके कर्मोंका साधन करनेवाले विश्वकर्मा नामक ईश्वर! (हविषा वावृधानः) हविरूप विश्वके कर्मसे वा मेरे दिये हुए हविसे वृद्धिको प्राप्त होते हुए (स्वयं) स्वयं ही (तन्वां स्वाहिते यजस्व) अपने शरीरकी आहुति दिये हुए अग्निमें हविको अर्पण करो (अन्ये जनासः) यज्ञ न करनेवाले अन्य मनुष्य (अभितः मुह्यन्तु) चारों ओर मोहको प्राप्त हों (इह) इस यज्ञमें (अस्माकं मघवा) हमारे दिये हुए हविरूप धनसे धनवाला वह (सूरिः अस्तु) स्वर्गका दाता हो ॥ १॥

३ २ ३ १ २र ३ २उ ३ १ २
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषाꣳसि
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ १ २
तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः । धारा
३ २ ३ १ २ ३ १ २र २ ३
पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः । विश्वा
२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिरृक्वभिः ॥१॥

ऋ० अनानतः। छ० अत्यष्टिः। दे० सोमः। अयारुचेति तृचात्मकं पञ्चमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। पुनानः पूयमानः सोमः हरिण्या हरितवर्णया अया अनया रुचा रोचमानया धारया विश्वाः सर्वाणि द्वेषांसि द्वेष्टृणि रक्षांसि तरति विनाशयति। तत्र दृष्टांतः—सूरो न यथा सूर्यः सयुग्वभिः स्वयं युक्तैः रश्मिभिः तमांसि हिनस्ति तद्वत्। सयुग्वभिरिति द्विरुक्तिरादरार्था। यद्वा धारया युक्तः सोमः स्वायः युक्तैस्तेजोभिः सह रक्षांसि तरति। तस्य पृष्ठस्य दशापवित्रस्योपरि सक्तस्य धारा रोचते दीप्यते पुनानः पूयमानः हरिः हरितवर्णः सोमः अरुषः आरोचमानो भवति। यद् यः सोमः सप्तास्येभिः रसहरणशीलैःआस्यैः ऋक्वभिः स्तुतिमद्भिः ऋक्वभिः तेजोभिः विश्वा विश्वानि व्याप्तानि

रूपा रूपाणि नक्षत्राणि परि याति गच्छति व्याप्नोति। पृष्ठस्य–सुतस्य–इति पाठौ ॥ १ ॥

(पुनानः) पूयमान सोम (हरिण्या अया रुचा) हरे वर्णकी इस दीप्यमान धारासे (विश्वा द्वेषांसि तरति) सकल द्वेषियोंका नाश करता है (सूरः सयुग्वभिः न) जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अंधकार का नाश करता है (पृष्ठस्य धारा रोचते) दशापवित्र पर सींचे हुए उस सोमकी धारा दिपती हैं (पुनानः हरिः अरुषः) स्वच्छ किया हुआ हरे वर्णका सोम देदीप्यमान होता है (यः सप्तास्येभिः ऋक्वभिः ऋक्वभिः विश्वा रूपा परि याति) जो, सोम रसको ग्रहण करनेवाले हैं मुख जिनके ऐसे स्तुत्य तेजोंसे सकल नक्षत्रोंमें व्याप्त होता है ॥१॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सꣳ रश्मिभि-
३ २उ ३ १ २ ३ १ २र १ २
र्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः । अग्म-
३ २ ३ २उ ३ १ २ १ २ ३
न्नुक्थानि पौꣳस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् । वज्रश्च
१ २र ३ १ २ ३ १ २र
यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। चेकितत् जानानः सोमः प्राचीं पूर्वां प्रदिशं प्रकृष्टां दिशम् अनु याति अनुगच्छति । किञ्च दर्शतः सर्वैर्दर्शनीयः दैव्यः देवेषु भवः तव रथः सूर्य्यस्य रश्मिभिः सं यतते सङ्गच्छते । पुनःदर्शतः रथः—इत्यादरार्थम् । ततः पौंस्या पुंस्त्वावगमानि उक्थानि स्तोत्राणि अग्मन् इंद्रं गच्छंति । तथा जैत्राय जयार्थं तानि स्तोत्राणि इंद्रं हर्षयन् हर्षयंति । तथा तस्य वज्रश्च तमिन्द्रं गच्छति । यद् यदा समत्सु संग्रामेषु अनपच्युता अनपच्युतौ शत्रुभिरपराजितौ सोम ! त्वञ्च इंद्रश्च युवां सह भवथः तदा स्तोत्रागमनादीनि भवंति पुनः अनपच्युता–इत्यादरार्थम्

(चेकितत् प्राचीं प्रदिशंअनुयाति) जाननेवाला सोम पूर्वा नामक श्रेष्ठ दिशाको जाता है (दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः संयतते) दिव्य और दर्शनीय तुम्हारा रथ सूर्यकी किरणोंसे मिलता है (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुषके सूचक स्तोत्र इंद्रको प्राप्त होते हैं (जैत्राय इंद्रं हर्षयन्) जयप्राप्तिके कारणभूत वह स्तोत्र इंद्रको प्रसन्न करते हैं

(वज्रः च) वज्र भी इंद्रको प्राप्त होता है (यत् समत्सु अनपच्युता भवथः) जब संग्रामोंमें हे सोम और इन्द्र! तुम दोनों शत्रुओंसे पराजय नहीं पाते हो तब स्तोत्र और आगमन आदि होते हैं ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
त्वँ ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जे-
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २
यसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे । परा-
२ ३ २उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः त्रिधातु-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे सोम त्वं त्यत् त्यानि वसु गवादीनि धनानि पणीभिः अपहृतं तत् गवात्मकं धनं विदः अविदः अलभथाः आ अपि च ऋतस्य यज्ञस्य धीतिभिः धात्रीभिः मातृभिः वसतीवरीभिः स्वे आत्मीये दमे यज्ञे समर्जयसि सम्यक् शुद्धो भवसि । परावतो न दूरस्थाद्देशात् यथा साम-सामध्वनिः श्रूयते तथा तत्र तत् सामध्वनिः सर्वैः श्रूयते असौ सोमाभिषवाभिप्रायेणोक्तः।यत्र यस्मिन् शब्दे धीतयः कर्मणो धर्त्तारो यजमानाः रणन्ति रमन्ते रोचमानः सोऽयं सोमः त्रिधातुभिः त्रयाणां लोकानां धारयित्रीभिः अरुषीभिः आरोचमानाभिः दीप्तिभिः वयः अन्नं दधे स्तोतृभ्यः प्रयच्छति । पुनः वयो दधे—इत्यादरार्थः ।३।

हे सोम तू ! (पणीनां त्यत् वसु) पणियोंके हरे हुए उस गौ आदि धनको (विदः) प्राप्त हुआ (आ ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः स्वे दमे सम्मर्जयसि) और यज्ञको धारण करनेवाला वसतीवरी नामक जलों करके अपने यज्ञमें भलेप्रकार शुद्ध होता है (परावतः न साम तत्) दूर देशसे जैसे सामकी ध्वनि सुनीजाती है तैसे तुम्हारी सामध्वनि सबों करके सुनीजाती है (यत्र धीतयः रणन्ति) जिस ध्वनिके होने पर यज्ञके कर्त्ता यजमान आनन्दमें मग्न होते हैं (रोचमानः त्रिधातुभिः अरुषीभिः) वह दिपताहुआ सोम तीनों लोकोंको धारण करने वालीं दीप्तियोंसे (वयः दधे वयः दधे) स्तोताओंको अन्न देता है यजमानोंको अन्न देता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

३ १ २ ३ २ ३ १ २ १ ३ ३ २ ३ २
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
३ १ २ ३ १ २
नृवत्कृणु ह्यूतये ॥ १ ॥

ऋ०भरद्वाजः छ०गायत्री दे०पूषा। अथ तृतीयखण्डे-उत-नो गोषणिमित्येकर्च्चं प्रथमं सूक्तम् सा ऋगेषा। उत अपि च हे पूषन्! गोषणिं गवां सनित्रीं दात्रीं अश्वसां अश्वानां सनित्रीं वाजसां वाजानामन्नानां सनित्रीम उत अपि च नृवत नृवतीं नृणां वनित्रीम एवम्भूतां धियंबुद्धिं कर्म च नः अस्माकम् ऊतये तृप्त्यै उपभोगार्थं कृणुहि कुरु ऊतये-र्वातये-इति पाठो ॥ १ ॥

(उत) और हे पूषा देवता! (गोषणिं अश्वसाम्) गौएँ देने वाली और घोड़े देनेवाली (वाजसां उत नृवत्) अन्नोंकी देन वाली और पुत्र सेवकादि पुरुषोंकी देनेवाली (धियम्) बुद्धिको अथवा कर्म को (नः ऊतये कृणुहि) हमारी रक्षाके लिये करो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।
३ १ २र ३ १ २
विदा कामस्य वेनतः ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः। छ० गायत्री। दे० मरुद्गणः। अथ शशमानस्येत्येकर्च्चं द्वितीयं सूक्तम, सैषा ऋक्। हे सत्यशवसः! अवितथबलाः नरः नेतारः मरुतः! शशमानस्य युष्मान् स्तुतिभिः सम्भजमानस्येत्यर्थः, स्वेदस्य स्तावकमन्त्रोच्चारणजनितेन श्रमेण स्विद्यमानगात्रस्य वेनतः वेनतिः कान्तिकर्मा (निघ० २, ६, ४) कामयमानस्य वा शब्दः समुच्चये, एवम्भूतस्य स्तोतुश्च कामस्य काममभिलाषं विद लम्भयत प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ १ ॥

(सत्यशवसः नरः) हे अमोघ बलवाले मरुतो! (शशमानस्य स्वेदस्य) स्तुतियोंसे तुम्हारी सेवा करनेवाले और स्तुतिके मंत्रोंको उच्चारण करनेमें हुए परिश्रमके कारण स्वेदयुक्त हुए (वा वेनतः) और चाहनावाले स्तोताके (कामस्य विद) इच्छित फलको दो ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
३ १ २
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ १ ॥

ऋ० ऋजिश्वा । छ० गायत्री । दे० विश्वेदेवाः । उप नः सूनव इत्येकर्चत्र तृतीयं सूक्तम् । सैषा ऋक् । अमृतस्य मरणरहितस्य प्रजापतेः ये सूनवः पुत्राः ते देवाः नः अस्माकं गिरः स्तुतीः उप शृण्वन्तु नः अस्माकं सुमृडीकाः सुष्ठु मडयितारः सुखयितारश्च भवन्तु सन्तु १

(ये अमृतस्यः सूनवः) जो अमर प्रजापतिके पुत्र हैं वह देवता (नः गिरः उपशृण्वन्तु) हमारी स्तुतियोंको सुनें (नः सुमृडीकाः भवन्तु) हमारे लिये श्रेष्ठ सुख देनेवाले हों ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।

२ ३ २ ३ १ २

शुची उप प्रशस्तये ॥ १ ॥

ऋ० पुरुमीढः अजमीढः वा । छ० गायत्री । दे० द्यावा पृथिव्यौ । प्र वाम्महीति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे द्यावापृथिव्यौ ! द्यवी द्योतमाने वां युवाभ्याम् उपस्तुतिं स्तोत्रं महि महत् प्रभूतम् अभि प्र भरामहे प्रकर्षेण सम्पादयामः ॥ १ ॥

(शुची) हे पवित्र द्यावापृथिवी ! (प्रशस्तये उप) प्रशंसा करनेके लिये तुम्हारे समीपमें (द्यवी वाम्) द्योतमान तुम दोनोंके अर्थ (उपस्तुति महि अभिभरामहे) स्तोत्रको अधिकताके साथ सम्पादन करते हैं

३ २ ३क २र ३ २ ३ १ २

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।

३ १ २ ३ २ ३ २

ऊह्याथे सनादृतम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे देव्यौ ! तन्वा स्वीयया मूर्त्या दक्षेण बलेन च मिथः प्रत्येकं पुनाने शोधयन्त्यौ यज्ञं यजमानम् वा पुनः राजथः । ईश्वर्यौ भवथः । यद्वा, तन्वा स्वशरीरैकदेशेन मिथः परस्परं पुनाने शोधयन्त्यौ द्यौः स्वीयेन रसेन भुवम् सा च स्वकीयेन कार्श्येन चन्द्रमसि स्थितेन दिवमिति विवेकः । सनात् सदाकालम् ऋतम् यज्ञम् ऊह्याथे वहथः ॥ २ ॥

हे देवियों ! (तन्वा दक्षेण) अपनी मूर्ति करके और बल करके भी (मिथः पुनाने) यज्ञ और यजमान प्रत्येकको शुद्ध करती हुई तुम (राजथः) ईश्वरी होती हो (सनात ऋतं ऊह्याथे) सदा यज्ञका निर्वाह करती हो ॥ २ ॥

३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
महीं मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
१ २ ३ १ २र
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । मही महत्यौ द्यावापृथिव्यौ मित्रस्य मित्रभूतस्य स्तोतुरभिमत साधथः साधयथः । ऋतम् अन्नं तरन्ती तारयन्त्यौ पिप्रती पूरयन्त्यौ यज्ञं परि परितः निषेदथुः आश्रयथः ॥ ३ ॥

(महीं) महती द्यावा पृथिवी देवियें ! तुम (मित्रस्य साधथः) मित्रभूत स्तोताके अभीष्टको सिद्ध करती हो (ऋतं तरन्ती यज्ञं परि निषेदथुः) अन्नको तारती और पूर्ण करती हुई सब ओरसे यज्ञका आश्रय करती हो ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
२ ३ १ २
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अयमु ते समतसीति तृचात्मकम् पञ्चमम् सूक्तम् । तत्र प्रथमा । हे इंद्र ! अयमु अयमपि दृश्यमानः सोमः ते त्वदर्थं सम्पादितः । यं सोमम् संमतसि सम्यक् सातत्येन प्राप्नोषि । तत्र दृष्टान्तः, कपोत इव यथा कपोताख्यः पक्षी गर्भधिं गर्भधारिणीं कपोतीं प्राप्नोति तद्वत । तच्चित् तस्मादेव कारणात् नः अस्मदीयं वचः ओहसे प्राप्नोषि । गर्भधिं, गर्भाऽस्यां धीयत इति गर्भधिः कर्मण्यधिकरणे च (३, ३, ९३) इति किप्रत्ययः, कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १३९) ओहसे तुहिर उहिर दुहिर दर्शने (भ्वा० प०) व्यत्ययेनात्मनेपदम् ॥ १ ॥

हे इंद्र ! (अयमु ते) यह सोम तेरे निमित्त सम्पादन किया है (समतसि) जिस सोमको तुम भले प्रकार निरन्तर प्राप्त होते हो (कपोतः गर्भधिं इव) जैसे कि–कपोत पक्षी गर्भधारिणी कपोतीको प्राप्त होता ह (तच्चित्) तिस कारणसे ही (नः वचः ओहसे) हमारी स्तुतिको प्राप्त होते हो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तोत्रꣳ राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
१ २ ३ १ २
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! राधानां धनानां पते पालक ! गिर्वाहः गीर्भिरुह्यमान ! वीर ! शौर्य्योपेत ! यस्य ते तव स्तोत्रम् ईदृशं भवति तस्य तव विभूतिः लक्ष्मीः सूनृता प्रियसत्यरूपा अस्तु ॥ २ ॥

(राधानां पते गिर्वाहः) धनोंके स्वामी और स्तुतियोंके उठायेहुए (वीर) हे शूर इंद्र ! (यस्य ते स्तोत्रम्) जिन तुम्हारा स्तोत्र ऐसा है तिन तुम्हारी (विभूतिः सूनृता अस्तु) लक्ष्मी प्रिय सत्यरूपा वाणी हो२

३१ २ ३२३ १ २र
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
२३ १२
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे शतक्रतो ! शतसंख्याककर्मोपेत ! अस्मिन् प्रसक्ते वाजे संग्रामे नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय ऊति-यूति (३, ३, ९७)- इत्यादिना क्तिन् उदात्तत्वम् ऊर्ध्वः उन्नतः उत्सुकः तिष्ठ भव । त्वञ्चाहञ्च मिलित्वा अन्येषु कार्य्यान्तरेषु सं ब्रवावहै सम्यग् विचारयावः । तिष्ठाद्यचोऽतस्तिङः (६,३, १३५)—इति संहितायां दीर्घः ॥ ३ ॥

(शतक्रतो अस्मिन वाजे) हे इंद्र ! इस संग्राममें (नः ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठ) उत्सुक रहो । हम तुम मिल कर (अन्येषु) और कार्योंमें (संब्रवावहै) विचार करें ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
३ १ २र ३ १ २
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १ ॥

ऋ० हर्य्यतः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । गाव उप वदावट इति तृचात्मकं षष्ठं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे गावः ! धर्मदुघा यूयम् अवटे महावीरे महावीरम् उप वद उपावत वर्ण-व्यत्ययः उपागच्छत यस्मात् यज्ञस्य धर्मयागस्य साधनभूते रप्सुदा रप्सुदे आरिप्सोः फलप्रदे लिप्सोरश्विनोर्दातव्ये वा यद्वा, रपणं शब्दनं रप् मन्त्रः तेन सुष्ठु दातव्ये । अथवा प्सुर् क्षरणे (भ्वा० आ०) रपा मन्त्रेण क्षारणीयेदोहनीये ईदृशे गवाजयोः पयसी मही महती बहुले अपेक्षिते उपावत । गोशब्दोऽजाया अप्युपलक्षकः अजापयसोऽपि महावीरे सेचनीयत्वात् । अपि चास्य महावीरस्य उभा उभौ कर्णा कर्णस्थानीयौ द्वौ रुक्मौ हिरण्यया हिरण्यमयौ सुवर्णरजतमय वित्यर्थः । अवटे-अवतम्-इति पाठौ ॥ १ ॥

(गावः) हे गौओं ! तुम (अवटे उपवद) महावीरको प्राप्त होओ क्योंकि (यज्ञस्य रप्सुदा) यज्ञके साधन मंत्रसे दुहने योग्य गौ और अजाके दूध बहुत अपेक्षित हैं (उभा कर्णा हिरण्यया) इस महावीरके दोनों कर्णरूप रुक्म सुवर्ण–रजतमय हैं ॥ १ ॥

३ २३१ २र३ १२३ १२-३ १२
अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
३ १२ ३१२
अवटस्य विसर्जने ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अद्रयः आद्रियमाणाः अध्वर्य्यादयः अभ्यारमित् अभिगम्यैव निषिक्तम् अतिरिक्तम् मधु पुष्करे प्रवृद्धे उपयमनीयपात्रे सिञ्चति अग्निहोत्रार्थम् अवटस्य महावीरस्य विसर्जने विसर्जनसमये होमानन्तरं महावीरमासन्धामासादय । अवटस्य–अवतस्य–इति पाठौ॥

(अद्रयः) आदर कियेजाते हुए अध्वर्यु आदि (अभ्यारमित्) समीप पहुंच कर ही (निषिक्तं मधु) शेष रहे मधुको (पुष्करे) बहुत बड़े उपयमनीय पात्रमें डालते हैं (अवटस्य विसर्जने) महावीरके विसर्जनके समय होमनके अनंतर महावीरको आसन्दीमें स्थापन करो ॥ २ ॥

३ २ ३ १२ ३२३, १२३ १२
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
३१ २ ३१ २
नीचीनवारमक्षितम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । नमसा नमनेन अवटं महावीरम् उच्चाचक्रम् उपरिस्थितचक्रम् परिज्मानं परिणत्य गतम्, नीचीनवारं नीचीनद्वारम् अक्षितम् अक्षीणम् ईदृशं क्षीराद्यवशेषमुक्तम् आहवनीयस्योपरि नमसा नमनेन सिञ्चन्ति जुह्वन्ति महावीरेण हि आहवनीये हूयते । अवटम्–अवतम् इति पाठौ ॥ ३ ॥

(उच्चाचक्रम्) जिसकेऊपरके भागमें चक्र बनाहुआ है (परिज्मानम्) नीचे होकर गए हुए (नीचीनवारम्) नीचे द्वारवाले (अक्षितम) क्षीणतारहित (अवट नमसा सिञ्चन्ति) महावीरको नमस्कार के साथ होमते हैं ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य तृतीयः खंडः समाप्तः

१ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्

ऋ० देवातिथिः। छ० प्रगाथः । दे० इन्द्रः । अथ चतुर्थखण्डे-माभेमेति प्रगाथात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे इन्द्र ! उग्रस्य उद्गूर्णबलस्य तव सख्ये सखित्वे सति वयं मा भेम मा भैष्म कुतश्चिदपि शत्रोर्भीता माभूम । मा श्रमिष्म श्रान्ताः पीडिताश्च मा भूम। वृष्णः कामानां वर्षितुः ते तव सम्बन्धि महत् प्रभूतं, कृतं वृत्रवधादिलक्षणं कर्म अभिचक्ष्यम् अभितः ख्यापनीयं स्तोतव्यम् अतः महानुभावस्य तव सख्यं प्राप्तानां भीतिश्रमौ न जायेते इत्यर्थः । तत् कथमवगम्यते ? इति चेत् उच्यते—तुर्वशम्, एतत्संज्ञं राजर्षिं यदुम् एतत्संज्ञञ्च त्वत्प्रसादात् सुखेन जीवन्तौ पश्येम दृष्टवन्तः खलु वयम् । अतः कारणात् त्वत्सख्यं प्राप्तस्य भयादिकं न जायत इत्येतदुपन्नमित्यर्थः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (उग्रस्य तव सख्ये मा भेम) तीक्ष्णस्वभाववाले तुम्हारी मित्रता प्राप्त होनेपर हम किसी भी शत्रुओंसे भयभीत न हों (माश्रमिस्म) किसीसे भी पीड़ित न हों (वृष्णः ते महत् कृतं अभिचक्ष्यम्) उपासकोंके मनोरथ पूरे करनेवाले तेरा बड़ाभारी वृत्रवधादि चरित्र स्तुतिके योग्य है, क्योंकि-(तुर्वशं यदुं पश्येम) हम तुर्वश और यदु को आपके अनुग्रहसे आनन्दके साथ जीवित देखते हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३क २र ३ २३ २ ३ १ २
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य-
२ ३ १ २ ३ ३ १ २ ३ २३ २ ३
रोषति । मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूय-
२ ३ २३ १ २
मेहि द्रवा पिब ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वृषा कामानां वर्षिता इन्द्रः सव्यां दक्षिणेतरां स्फिग्यं कटिप्रदेशम् अनु तृतीयार्थे अनोः कर्मप्रवचनीयत्वम् (१, ४, ८५) सव्यया स्फिग्या शरीरैकदेशेनैव वावसे वस्ते, सर्वं भूतजातमाच्छादयति । स्वयं कृत्स्नं जगद्व्याप्य वर्त्तत इत्यर्थः । निगमान्तरञ्च भवति, यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः, इति (ऋ० सं० ३, ३२, ११) ।अविचलानः अवखण्डयिता दान अवखण्डने (भ्वा० प०) पचाद्यच् । (३,

१, १२४) स च अस्य इममिन्द्रं न रापति न हिनस्ति रूष हिंसायाम् (भ्वा० प०) इन्द्रं हिंसितुं कश्चिदपि शक्तो नास्तीत्यर्थः । यद्वा, हे यजमान ! दानः हविषां दाता त्वम् अस्य इन्द्रस्य न रोपति रोषं न न जनयतीत्यर्थः । उत्तरार्द्धऋच्चः प्रत्यक्षकृतः सारघेण सरघा मधुमक्षिका तत्सम्बन्धिना मध्वा मधुना लुप्तोपमानमेतत् मधुनेव रसवता क्षीरादिना श्रपणद्रव्येण सम्पृक्ताः संसृष्टाः संस्कृताः धेनवः धेनुवत्प्रीतिजनकाः अस्मदीयाः सोमाः यद्वा, धिविः प्रीणनार्थो (भ्वा० प०) धेनवः प्रीणयितार इत्यर्थः । अथवा धेट् पाने (भ्वा० प०) धेट् इच्च (उ० ३, ११) इत्यौणादिकः नप्रत्ययः इसन्नियोग उकारान्तादेशश्च । पातव्याः सोमा इत्यर्थः यत एवमतः कारणात् हे इंद्र ! तूयम् क्षिप्रम् एहि अस्मत्समीपमागच्छ, आगत्य च सोमा यस्मिन्नुत्तरवेदिलक्षणे स्थान हूयन्ते तं देशं द्रव शीघ्रं गच्छ द्रुगतौ (भ्वा० प०) इति धातुः द्व्यचोऽतस्तिङः (६, ३, १३५), इति सांहितिको दीर्घः । तदनन्तरम् अध्वर्यु णा दत्तं सोमं पिब तेन सोमेन सम्यक् स्वोदरं पूरयेत्यर्थः ।२।

(वृषा) अभीष्टफलदाता इन्द्र (सव्यां स्फिग्यं अनु) बाईं ओरके कमरके भागसे (वायसे) सकल प्राणियोंको आच्छादित करता है (दानः अस्य न रोपति) काटनेवाला शत्रु इस इंद्रको कष्ट नहीं दे सकता है अथवा हे यजमान हवियोंका अर्पण करनेवाला तू इस इंद्र के क्रोधको नहीं उत्पन्न होने देता है (सारघेण सम्पृक्ताः धेनवः) मधुमक्षिकाके मधुकी समान रसवाले दुग्धादिसे युक्त हुए धेनुकी समान आनन्ददायक हे हमारे सोम ! (तूय एहि) शीघ्र ही हमारे समीप आओ और आकर (द्रव) जिस उत्तरवेदीमें सोम होमे जाते हैं उसमें शीघ्र पहुँचो और फिर(पिब)अध्वर्यु के दिये हुए सोमकोपियो

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम ।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत १

ऋ० मेधातिथिः । छं० बृहती। दे० इन्द्रः । इमा उत्वेति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम्—तत्र प्रथमा। हे पुरुवसो! बहुधनेन्द्र ! मम मदीयाः इमाः गिरः शस्त्ररूपा वाचः त्वा त्वां वर्द्धन्तु । वर्धयन्तु तथा पावकवर्णाः अग्निसमानतेजस्काः अत एव शुचयः शुद्धाः विपश्चितः विद्वांसः उद्गातारश्च स्तोमैः स्तोत्रैः बहिष्पवमानादिभिः अभ्यनूषत त्वामभिष्टुवन्ति नु स्तुतौ कुटादिः (प०) ॥ १ ॥

(पुरुवसो) हे बहुत धनवाले इन्द्र (मम याः इमाः गिरः) मेरी जो यह स्तुतियें हैं (त्वा वर्द्धन्तु) तुम्हें वृद्धियुक्त करें (पावकवर्णाः) शुचयः विपश्चितः) अग्नि समान तेजवाले वह शुद्ध स्तोता (स्तोमैः अभ्यनूषत) स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सत्यःसो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये २

अथ द्वितीया॥ अयम् इंद्रः सहस्रं सहस्रसंख्याकैः ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः स्तोतृभिः सहस्कृतः सहसाबलेन युक्तः कृतः स्तुत्या हि देवताया बलं वर्द्धते स च एवम्भूतः सन् समुद्र इव उदधिरिव पप्रथे प्रथितो विस्तीर्णो बभूव ।अस्य चेन्द्रस्य सत्यः अवितथः सः प्रसिद्धः महिमा महत्त्वं शवः बलं यज्ञेषु यागेषु विप्रराज्ये राज्ञः कर्म राज्यम् विप्राणां स्तोतॄणां राज्ये स्तुतशस्त्रसंख्ये गृणे स्तूयते ॥ २ ॥

(अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः) यह इंद्र सहस्रों ऋषियों करके बलवान् कियाहुआ (समुद्र इव पप्रथे) समुद्रकी समान विस्तारको प्राप्त हुआ (अस्य सत्यः सः महिमा शवः) इस इंद्रकी सत्य वह महिमा और बल (यज्ञेषु विप्रराज्ये गृणे) यज्ञोंमें ब्राह्मणोंके स्तुति रूप शस्त्रोंके युद्धमें स्तुति कीजाती है ॥ २ ॥

२ ३ २३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २

तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः॥

ऋ० उरुक्षिगुः । छ० प्रगाथः । दे० सोमः । अथ यस्यायमिति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम तत्र प्रथमा । यस्य यज्ञस्य अयं विश्वः सर्वो लोकः आर्य्यः प्रभुरपि शेवधिपाः निधिपालकः विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय माशेवधिष्टेऽहमस्मि इति (ऋ०त्रे०९,२,२२,४) मंत्रान्तरे पठितत्वात् । दासः भृत्य इव अरिः भवति स यज्ञः । अर्य्ये स्वामिनि रुशमे नियंतरि पविरवि सरस्वत्या पितरि पवीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती इत्युक्तम् (नि०) तिरश्चित् तिरोभूतोऽपि तुभ्येत् हे इंद्र ? तुभ्यमेव रयिं हविर्लक्षणं धनमुद्दिश्य अज्यते प्राप्तो भवति अयमभिप्रायः विप्रक्षत्रादिकः सर्वो लोकः बृहस्पतिः स च राजसूयादिरूपस्य यज्ञस्य भृत्या

वर्द्धते स तादृशो यज्ञो मन्त्ररूपायाः सरस्वत्याः पितृस्थानीये परमेश्वर-स्वरूपे गूढोऽपि सन् हे इंद्र ! त्वदर्थमेवं हविर्दातुं प्रकटो भवति तथा-विधस्तव महिमेति ॥ १ ॥

(अस्य अयं विश्वः आर्यः शेवधिपा अरिः) जिस यज्ञका यह सब लोक प्रभु भी भृत्यकी समान निधिका रक्षक है (अयं रुशमे) स्वामी और नियता (पर्वीरयि) सरस्वतीके पिता (तिरश्चित् तुभ्येत्) तिरो-भूत भी हे इंद्र तेरे अर्थ ही (सः रयिः अज्यते) वह हविरूप धन प्राप्त होता है अभिप्राय यह है, कि—ब्राह्मण क्षत्रियादि सब लोक बृहस्पति है वह राजसूय आदि यज्ञोंकी सिवकाईसे बढ़ता है ऐसा यज्ञ मंत्ररूपा सरस्वतीके पितास्थानीय परमेश्वरमें गूढ़ होकर भी हे इंद्र ! तेरे अर्थ हवि देनको प्रकट होता है, ऐसी तेरी महिमा है १

३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तुरण्यवो मधुमंतं घृतश्च्युतं विप्रासो अर्कमा-
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २
नृचुः । अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यꣳ शवोस्मे
३ २ ३ १ २
स्वानास इन्दवः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । तुरण्यवः यागादिकर्मसु त्वरणशीलाः विप्रासः मेधाविन ऋत्विजः मधुमंतं मधुक्षीराद्याहुतियुक्तं घृतश्च्युतम् घृत-माज्यं श्च्योतते क्षरति यस्मिन्नाहुतिद्वारेणेति अर्कम अर्च्चनीयमिंद्रम् आनृचुः पूजयंति । किमर्थम ? इत्युच्यते अस्मे अस्मभ्यम् रयिः हवि-र्लक्षणं धनं पप्रथे प्रख्यातं भवतु । तथा वृष्ण्यं वर्षणशीलम् सोमनि-बंधनं शवः बलमपि प्रथताम् । तथा अस्मे अस्मासु स्वानासः सुवानाः अभिषुताः इन्दवः सोमाः प्रख्याता भवंतु । एवम् फलं कामयमानाः ऋत्विजः इंद्रं पूजयंतीत्यर्थः ॥ २ ॥

(तुरण्यवः विप्रासः) यागादि कर्ममें त्वरा करने वाले प्रवीण ऋत्विज (मधुमन्तं घृतश्च्युतम) मधु क्षीर आदिकी आहुतियों से युक्त और घृत जिसपर टपक रहा है ऐसे (अर्कं आनृचुः) पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं । इस लिये कि—(अस्मे रयिः पप्रथे) हमारा हविरूप धन प्रसिद्ध हो (वृष्ण्यंशवः) सोमकी वर्षा करने वाला बल भी प्रसिद्ध हो (अस्मे स्वानासः इन्दवः) हमारे यहांके संस्कार कियेहुए सोम प्रसिद्ध हों ॥ २ ॥

१२ ३ १ २ ३१ २
गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धनिव ।
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥ १ ॥

ऋ० आप्स्यहितः । छ० उष्णिक् । दे० सोमः । अथ गोमन्न इन्दो इति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे सुदक्ष ! हे सुबल ! हे इन्दो ! सोम ! सुतः अभिषुतस्त्वं नः अस्माकं गोमत् यज्ञसाधनगोयुक्तम् अश्ववत् अश्वयुक्तं धनम् धनिव धन्व वर्णविकारोऽत्र गमय धविगेत्यर्थः (प०) भूत्रादिः ततोऽहं शुचिं पूतं दीप्यमानंवर्णं रसं च गोषु गव्येषु क्षीरादिषु अधि धारय अधिधारयामि मिश्रयामीत्यर्थः

(सुदक्ष इन्दो) हे श्रेष्ठ बल वाले सोम (सुतः नः) अभिषव किया हुआ तू हमें (गोमत् अश्ववत् धनिव) यज्ञकी साधन गौओंसे युक्त और घोड़ोंसे युक्त धन दे । तदनन्तर (शुचिं वर्णं चं गोषु अधिधारय) पवित्र दीप्यमान वर्ण और रसका मैं गौके दुग्धादिमें मिलाऊ

१ २ ३ १ २ ३१ २
स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
१२३ २ ३ १२ ३१ २
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे हरीणाम्पते ! नः अस्मदीयानां हरितवर्णानां पशूनां स्वामिन् ! हे इन्दो ! सोम ! देव ! प्सरस्तमः अतिशयेन दीप्तरूपोपेतः नर्य्यः कर्मनेतृभ्य ऋत्विग्भ्यः हितः सः त्वं नः अस्माकं रुचे भव दीप्तिकरो भव । क इव ? सखेव यथा सखा सख्ये मित्राय दीप्तिं करोति तद्वत् ॥ २ ॥

(हरीणां पते देव इन्दो) हमारे हरे वर्णके पशुओंके स्वामी हे हे दिव्य सोम ! (प्सरस्तमः नर्यः) अत्यन्त दीप्त रूपयुक्त और ऋत्विजोंका हितकारी (सः नः रुचे भव) वह तू हमारी दीप्तिका करनेवाला हो (सखा सख्ये इव) जैसे कि–मित्र अपने मित्रके लिये दीप्त करता है ॥ २ ॥

१२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १२ ३ २
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! त्वं सनेमि पुराणं सख्यम् अस्मद् अस्मासु आ कुरु। अपि च अदेवम् अदेवनशीलम् कञ्चिदु अपि अत्रिणम् अदनशीलं राक्षसम् अस्मत्तः अप गमय। किञ्च हे इन्दो! सोम! साह्वान् शत्रून् अभिभवन् बाधः बाधमानान् परि जहि। तं द्वयुं द्वयवन्तं सत्यानृतयुक्तं बाह्याभ्यन्तरमायाद्वययोगितं वा राक्षसमस्मत्तोऽपगमय ॥ ३ ॥

हे सोम! (त्वं सनेमि अस्मत् आ) तुम पुरानी मित्रता हमारे विषैं प्रकट करो (अदेवं कञ्चित् अत्रिणं अप) हमारी दीप्तिको रोकनेवाले प्रत्येक राक्षसको हमसे दूर करो (इन्दो साह्वान्) हे सोम! शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले तुम (बाधः परि) बाधा देनेवालोंको नष्ट करो (द्वयुम्) झूठ सत्य दोनोंसे युक्त अथवा भीतर बाहर दो प्रकारकी माया वाले राक्षसको हमसे दूर करो ॥ ३ ॥

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुꣳ रिहन्ति
२ ३क २र १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
मध्वाऽभ्यञ्जते सिंधोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्ष-
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
णꣳ हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते ॥ १ ॥

ऋ० अत्रिः। छ० जगती। दे० सोमः। अथाञ्जत इति पञ्चमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। सोऽयमृत्विजः अञ्जते गोभिः, तथा व्यञ्जते विविधमञ्जन्ति, समञ्जते सम्यगञ्जन्ति. स्तुत्यर्थत्वादपुनरुक्तिः तथा क्रतुम् बलकर्त्तारं रिहन्ति लिहन्ति आस्वादयन्ति देवाः। तथा पुनः मध्वा मधुना गव्येन अभ्यञ्जते तमेव सोमं सिन्धोः उदकस्य रसस्याधारभूते उच्छ्वासे उच्छ्रिते देशे पतयन्तम् गच्छन्तम् पत्लृगतौ (भ्वा० प०) इत्यस्मात् स्वार्थिके णिचि वृद्ध्यभावश्छान्दसः उक्षणम् सेक्तारम् हिरण्यपावाः हिरण्येन पुनन्तः पशुद्रष्टारं पशुः पश्यतेः, इति (निरु० नै० ३, १६,) यास्केनोक्तत्वात् अप्सु वसतीवरीषु गृभ्णते गृह्णन्ति ॥ १ ॥

उस सोमको ऋत्विज (अञ्जते) गोदुग्धादिसे मिलाते हैं (व्यञ्जते) अनेकों प्रकारसे मिलाते हैं (समंजते) भले प्रकार मिलाते हैं देवता (क्रतुं रिहन्ति) उस बलकर्त्ता सोमका स्वाद लेते हैं (मध्वा अभ्यञ्जते) फिर उस ही सोमको मधुर गोरससे मिलाते हैं। उस ही सोमको (सिंधोः उच्छ्वासे) रसके आधारभूत ऊँचे स्थानमें (पतयन्तं उक्षणम्) जातेहुए सेचन करनेवाले (पशुम्) द्रष्टा सोमको (हिरण्य-

पावाः अप्सु गृभ्णते) सुवर्णसे पवित्र करतेहुए वसतीवरी जलोंमें ग्रहण करते हैं ॥ १ ॥

३ २३ १२ ३१
विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्य-
२र २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३
न्धो अर्षति । अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वच-
२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
मत्यो न क्रीड़न्नसरद्वृषा हरिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे ऋत्विजः ! विपश्चिते मेधाविने पवमानाय पूयमानाय गायत स्तुतिं कुरुत । स च विपश्चित् सोमः मही न धारा महती वर्षधारेव अन्धः अन्नं रसात्मकम् अभ्यर्षति अहिर्न अहिरिव जूर्णां जीर्णां त्वचम् अतिसर्पति अति मुञ्चति अभिषवादिकर्मणा त्वचं विमुञ्चतीत्यर्थः । अत्यः नः अश्व इव क्रीड़न् क्रीड़मानः असरत् सरति द्रोणकलशं गच्छति । वृषा वर्षकः कामानां हरिः हरितवर्णो रसः ॥२॥

हे ऋत्विजो !(विपश्चिते पवमानाय गायत) मेधावी पूयमान सोम की स्तुति गाओ (महि धारा न अन्धः अत्यर्षति) वह सोम बड़ी भारी वर्षाकी धाराकी समान रस रूप अन्नको देता है (अहिः न जीर्णां त्वचं अतिसर्पति) सर्पकी समान पुरानी त्वचाको अभिषव आदिकर्मसे त्यागता है (वृषा हरिः) अभीष्टफलदाता हरे वर्णका सोमरस (अत्यः न क्रीडन् असरत्) अश्वकी समान क्रीड़ा करता हुआ द्रोणकलशमें जाता है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुव-
३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
नेष्वर्पितः । हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो
३ १ २ ३ २ ३क २र
ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अग्रेगः अग्रे गन्ता राजा राजमानः आप्यः अप्सु संस्कृतः सोमः स्तविष्यते स्तूयते यः अह्नां दिनानां विमानः निर्माता चन्द्रकलाह्रासवृद्ध्यधीनत्वादहर्व्यवहारस्य निर्माता भुवनेषु उदकेषु वसतीवरीसम्बन्धिषु अर्पितः स्थापितः सः राजा स्तविष्यते । किञ्च

हरिः हरितवर्णः घृतस्नुः प्रसृतोदकः सुदृशीकः शोभनदर्शनः अर्णवः उदकवान् अर्ण इत्युदक नाम (निघ० १, १२, १) ज्योतीरथः ज्योतिर्मयरथः रायः धनस्य प्रापयिता ओक्यः ओक इति निवासनाम (निरु० नै० ३, ३) तस्य हितः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्कभूपाल-साम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थ-प्रकाशे उत्तराग्रन्थे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

(अग्रेगः राजा) अग्रगामी और विराजमान (आप्यः स्तविष्यते) जलोंमें संस्कार किया जाता हुआ सोम स्तुति किया जाता है जो सोम (अह्नां विमानः भुवनेषु अर्पितः) चन्द्रकलाकी न्यूनाधिकताके वशीभूत होनेसे दिनोंकी रचना करनेवाला और वसतीवरी जलोंमें स्थापित है वह सोम स्तुति कियाजाता है और (हरिः घृतस्नुः) हरे वर्णका तथा जलोंमें फैलाहुआ (सुदृशीकः अर्णवः) सुन्दर दर्शनीय और जलवान् (ज्योतीरथः). ज्योतिर्मय रथवाला (रायः ओक्यः) धन प्राप्त करानेवाला और स्थान प्राप्त करानेवाला है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके षोडशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः षोडशाध्यायश्च समाप्तः ।

अथ सप्तदशोऽध्याय आरभ्यते

१ २ ३ १ २ ३२ ३ २ ३ १ २र

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।

१ २

चनो धा सहसो यहो ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । तत्र प्रथमे खण्डे-विश्वेभिरग्न इत्येतत् तृचं प्रथमं सूक्तं, तत्र प्रथमा । हे सहसो यहो ! बलस्य पुत्र ! देवतारूप अग्ने ! विश्वेभिः अग्निभिः सर्वैराहवनीयादिभिर्युक्तः त्वम् इमम् अस्मदीयं यज्ञम् इदम् अस्मदीयं वचः स्तोमञ्च सेवमानः चनः अन्नं धाः अस्मभ्यं धेहि ॥ १ ॥

(सहसः यहः अग्ने) हे बलके पुत्र अग्निदेव (विश्वेभिः अग्निभिः) सकल आहवनीय अग्नियोंसे युक्त तुम (इमं यज्ञम्) इस हमारे यज्ञ

को (इदं वचः) और इस हमारी स्तुतिको सेवन करते हुए (चनःधाः) हमें अन्न दो ॥ १ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २ ३१२३ १२
यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
१ २र ३ २
त्वे इद्धूयते हविः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने यत् चित् हि यद्यपि शश्वता शाश्वतेन नित्येन तना विस्तृतेन हविषा देवं देवम् अन्यमन्यं वरुणेन्द्रादिरूपं नानाविधं देवताविशेषं यजामहे तथापि तत् हविः सर्वं त्वे इत् त्वय्येव हूयते अन्यदेवतान्तरविषयेऽ यागोऽपि त्वदीयैव सेवेत्यर्थः तना तनु विस्तारे (तना० प०) क्विप् च (३, २, ७६) इति क्विप्, यद्वा पचाद्यच् सुपां सुलुगिति (७, १, ३९) तृतीयाया आकारः। देवंदेवं नित्यवीप्सयाः (८, १, ४) इति द्विर्भावः तस्य परमाम्रेडितम् (८, १, २) इति उत्तरस्याम्रेडितसंज्ञायाम् अनुदात्तञ्च (८, २, ३) इति सर्वानुदात्तत्वम्। यजामहे निपातैर्यद्यदिहन्त(८, १, ३०) इति निघातप्रतिषेधः। त्वे युष्मच्छब्दात्सप्तम्येकवचनस्य सुपां सुलुगिति (७, १, ३९) शे आदेशः त्वमावेकवचने (७, २, ९७) इति मपर्यन्तस्य त्वादेशः, शेषलोपे अतो गुणे (६, १,९७) इति पररूपत्वम् शे (१.१,१३) इति प्रगृह्य संज्ञायां प्लुतप्रगृह्या अचि० (६, १, १२५) इति प्रकृतिभावः हूयते अकृत्सार्वधातुकयोः (७, ४, २५) इति दीर्घः ॥ २ ॥

(यच्चिद्धि) यद्यपि (शश्वता तना) नित्य और विस्तारवाले हवि से (देवं देवं यजामहे) इंद्र वरुण आदि अन्य देवताओंका यजन करते हैं तथापि (हविः) वह सब हवि (त्वयि एव हूयते) तुम्हारे विषे ही होमा जाता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
३ २ ३ १ २ ३ २
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। विश्पतिः विशां प्रजानां पालकः पत्यावैश्वर्ये (६, २, १८) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरे प्राप्ते परादिश्छन्दसि बहुलम् (६,२,१९९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् होता होमनिष्पादकः मन्द्रः हृष्टः वरेण्यः वर-

णीयः वृञ् एण्यः (उ० ३, ९८) वृपादित्वादाद्युदात्तत्वम् एवं विशि-ष्टोऽग्निः नः अस्माकं प्रियः अस्तु भवतु । वयम् अपि स्वग्नयः शोभनाग्नियुक्ताः बहुव्रीहौ नञ् सुभ्याम् (६, २, १७२) इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् एवम्भूताः अतस्तव प्रिया भूया स्मः इति शेषः॥ ३ ॥

(विश्पतिः होता) प्रजाओंका पालक और होमका साधक (मन्द्रः वरेण्यः) प्रसन्नरूप और वरणीय अग्नि (नः प्रियः अस्तु) हमारा प्यारा हो (स्वग्नयः वयं प्रियाः) श्रेष्ठ अग्निवाले हम भी तुम्हारे प्रिय हों।

१ २ ३ २३ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
३ १ २ ३ १ २
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥

ऋ० मधुच्छन्दः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथेन्द्रं व इति तृचं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे ऋत्विग्यजमानाः ! विश्वतः सर्वेभ्यः जनेभ्यः परि उपरि अवस्थितम् इंद्रं वः युष्मदर्थं हवामहे आह्वयामः । अतः स इंद्रः अस्माकं केवलः असाधारणः अस्तु इतरेभ्योऽप्यधिकमनुग्रहमस्मासु करोत्वित्यर्थः इंद्रं रन्प्रत्ययांतः (उ० २, २८), निरवाद्याद्युदात्तः (६, १, १९७) ॥ १ ॥

हे ऋत्विज यजमानो ! (विश्वतः जनेभ्यः परि) सकल लोकोंसे ऊपरस्थित (इंद्रं वः हवामहे) इन्द्रका तुम्हारे लिये आह्वान करते हैं । इसकारण वह इन्द्र (अस्माकं केवलः अस्तु) हमारा असाधारण हो अर्थात् हमारे ऊपर औरोंसे अधिक अनुग्रह करे ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
स नो वृषन्नमुं चरुꣳ सत्रादावन्नपा वृधि ।
३ २ ३ १ २
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सत्रादावन् ! अस्मदभीष्टफलानां सर्वेषां सह प्रदातः ! आतो मनिन् क्वनिब्वनिपश्च (३, २, ७४) इति वनिप् । आमन्त्रितस्य च (६, १, १९८) इत्याद्युदात्तत्वम्, पादादित्वान्न निघातः (८, १, १९) अतः कारणात् व्रीह्यादिरिलिप्सत्यर्थं हे वृषन् ! वृष्टिप्रदेन्द्र ! आमंत्रितनिघातः (८, १, १९) नः अस्मदर्थम् अमुं दृश्यमानं चरुं मेघं चरतीति चरुः भृमृशीत्यादिना (उ० १, ७) उप्रत्ययः, प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः अपावृधि उद्घाटय वृञ् वरणे (स्वा० उ०) लोटः

सिप्, तस्य सेर्ह्यपिच्च (३, ४, ८७) इति हि, स्वादिभ्यः श्नुः (३, १, ७३) तस्य बहुलं छन्दसि (३,४, ७३) इति लुक्, श्रुशृणुपॄकृवृभ्यश्छन्दसि (६, ४, १०२) इति हेर्धिरादेशः तस्य ङित्वात् पूर्वस्य गुणाभावः निघातश्च, उद्घाटयेत्यर्थः तथैव अस्मभ्यम अस्मच्छब्दात् भ्यसोऽभ्यम् (७, १, ३०) इति भ्यमादेशः, शेषे (७, २, ९०) इति दकारलोपः बहुवचने झल्येत् (७, ३, १०३) इत्येत्वं न भवति अङ्गवृत्तेः पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्य इत्युक्तम् । प्रातिपदिकस्वरेण स्मेत्यकार उदात्तः । भ्यसोऽभ्यम् (७, १, ३०) इत्यभ्यमादेशपक्षे शेषे लोपः (७, २, ९०) इति मपर्यन्तशेषस्यास्मच्छब्दस्य लोपः, तदा उदात्तनिवृत्तिस्वरेण अभ्यमादेरकारस्य उदात्तत्वम् अस्मदर्थम् अप्रतिष्कुतः प्रतिशब्दरहितः केनचिदप्रतिशब्दितः, कुङ् शब्दे (भ्वा० आ०) निष्ठा (३, २ १०२) इति कर्मणि क्तप्रत्ययः प्रतेः प्राक् प्रयोगः, पारस्करादेराकृतिगणत्वात् (६, १, १५७) सुडागमः । सुषामादेराकृतिगणत्वात् (८, ३, ९८) षत्वम् । अत्र समासे अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम (८,२ ७२) यद्यदस्माभिर्याच्यते तत्र सर्वत्र नेति प्रतिशब्दं नोच्चारयति अतोऽस्मद्विषये कदाचिदप्यप्रतिस्खलितः । एतदेवाभिप्रेत्य यास्कआह अप्रतिष्कुतो अप्रतिष्कुतोऽप्रतिस्खलितो वा (निरु० (नै० ६, १६) इति ॥ २ ॥

(सत्रादावन्) हे हमारे सकल अभीष्टफलोंको एकसाथ देनेवाले (वृषन्) हे वृष्टि करनेवाले इंद्र (सः) वह प्रसिद्ध तू (नः अमुं चरुं अपावृधि) हमारे इस मेघको उद्घाटित करो (अस्मभ्यं अप्रतिष्कुतः) हमारे लिये निषेधका शब्द उच्चारण करनेवाले नहीं होओ ॥ २ ॥

१२ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वृषा यूथेव वꣳसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
१ २ ३ १ २
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । वृषा कामानां वर्षिता इंद्रः ओजसा स्वकीयेन बलेनानुग्रहीतुं कृष्टीः मनुष्यान् इयर्त्ति प्राप्नोति । कीदृश इंद्रः ईशानः समर्थः अप्रतिष्कुतः प्रतिशब्दरहितः याच्यमानं न परिहरतीत्यर्थः । इंद्रस्य दृष्टांतः वंसगः वननीयगतिर्वृषभः यूथेव गोयूथानि यथा प्राप्नोति तद्वत् यूथा इव युवंति मिश्रीभवन्तीति यूथानि यु मिश्रणामिश्रणयोः (अ० द्वा० प०) तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः (उ० २, १२) इति थप्रत्ययांतो निपातितः

निपातनाद्दीर्घत्वम् प्रत्ययस्वरेण अकार उदात्तः (३, १, ३) शेश्छन्दसि बहुलम् (६, १; ७०) इति शेर्लुक्। इवेन विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम् (२,४,७१वा०) इति समासेऽपि स एव स्वरः३

(ईशानः अप्रतिष्कुतः) समर्थ और याचना किये हुए पदार्थका कभी निषेध न करनवाला (वृषा) मनोरथोंकी वर्षा करनवाला इंद्र (ओजसा कृष्टीः इयर्त्ति) अपन बलसे अनुग्रह करनको मनुष्योंके पास पहुंचता है (वंसगः यूथेव) जैसे सुन्दर गतिवाला वृषभ गौओंके यूथ में पहुंचता है ॥ ३॥

१ २ ३ २ ३ २ऊ ३ १ २
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधाꣳसि चोदय ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३-२ ३ २
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं
३ १ २र
तुचे तु नः ॥ १ ॥

ऋ० तृणपाणिः शंयुः । छ० बृहती । दे० अग्निः । त्वन्नश्चित्र इति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे वसो वासकाग्ने चित्रः दर्शनीयस्त्वम् ऊत्या रक्षया सह राधांसि धनानि नः अस्मभ्यं चोदय प्रेरय अस्य लोके परिदृश्यमानस्य रायः धनस्य त्वं रथीः असि,रथिता नेता भवसि अतः कारणात् अस्मभ्यं धनानि प्रेरयेत्यर्थः । अपि च नः अस्माकं तुचे अपत्यनामैतत् (निघ० २, २, १) अपत्याय अपतनहेतुभूताय पुत्रादये गाधं प्रतिष्ठां नु क्षिप्रं विदः लम्भय॥ १ ॥

(वसो चित्रः त्वम्) हे व्यापक अग्न ! दर्शनीय तू (ऊत्या राधांसि नः चोदय) रक्षा सहित अन्न हमै दो (अग्न त्वं अस्य रायः रथी असि) हे अग्ने ! तुम इस धनके पहुँचानवाले हो (नः तुचे गाधं नु विदा) हमारे पुत्रादिको प्रतिष्ठा शीघ्र दो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
अग्ने हेडाꣳसि दैव्या युयोधि नाऽदेवानि
१ २
ह्वराꣳसि च ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने! त्वं अदब्धैः केनाप्यहिंसितैः अप्रयुत्वभिः अपृथग्भूतैः यौतिरत्र पृथग्भावार्थः सहितैः पर्तृभिः पालनसाधनैः तोकं पुत्रं तनयं पौत्रं च पर्षि पालय दैव्या देवसम्बन्धीनि च हेडांसि क्रोधान् नः अस्मत्तः युयोधि पृथक् कुरु। अदेवानि मनुष्यसम्बन्धीनि च ह्वरांसि हिंसनानि च अस्मत्तः पृथक् कुरु॥ २॥

(अग्ने) हे अग्निदेव! (त्वम्) तू (अदब्धः अप्रयुत्वभिः) किसी से भी हिंसित न होनेवाले और इकट्ठे हुए (पतृभिः) रक्षाके साधनों से (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र और पौत्रका पालन कर (दैव्या हेडांसि नः युयोधि) देवसम्बन्धी क्रोध को हमसे दूर कर (अदेवानि ह्वरांसि च) मनुष्योंकी हिंसाओंको भी हमसे दूर कर॥ २॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ १ २र३ १ २
किमित्ते विष्णो परिचाक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपि-
३ १ २ १ २र ३ १ २र ३२उ
विष्टो अस्मि। मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्
३ १ २ ३ २ ३ १ २
यदन्यरूपः समिथे बभूथ॥ १॥

ऋ० वसिष्ठः। छ० त्रिष्टुप्। दे० विष्णुः। अथ किमित्त इति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। पुरा खलु विष्णुः स्वं रूपं परित्यज्य कृत्रिमं रूपान्तरं धारयन् संग्रामे वसिष्ठस्य साहाय्यं चकार। तं जानन् ऋषिः अनया प्रत्याचष्टे। अत्र निरुक्तम् शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णोर्द्वे नामनी भवतः। कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः। किन्ते विष्णो-ऽप्रख्यानमेतद् भवत्यप्रख्यापनीयं यन्नः प्रब्रूषे शेप इव निर्वेष्टितोऽस्मीत्यप्रतिपन्नरश्मिरपि वा प्रशंसानामैवाभिप्रेतं स्यात्। किन्ते विष्णोः प्रख्यानमेतद् भवति प्रख्यापनीयं यदुत प्रब्रूते शिपिविष्टोऽस्मीति प्रतिपन्नरश्मिः शिपयोऽत्र रश्मय उच्यन्ते तैराविष्टो भवति। मावर्पो अस्मदपगूह एतत्। वर्प इति रूपनाम वृणोतीति सतः। यदन्यरूपः समिथे संग्रामे भवसि संयतरश्मिः (निरु नै० ५, ८) इति तत्र कुत्सितार्थपक्षे योजना हे विष्णो! ते तव तत् नाम किं परि चक्षि प्रख्याप्यं भवतीति शेषः। किं शब्दः क्षेपे। अप्रख्याप्यमेव तद्भवति यत् नामास्य प्र ववक्षे प्रब्रूषे शिपिविष्टो अस्मि इति अन्तर्णीतोपमानमेतत्। शेप इव निर्वेष्टितः तेजसा अनाच्छादितो भवामीति तदश्लीलार्थत्वादिदं नाम न प्रशस्तमित्यर्थः। यद्वा, परिपूर्वो चक्षिर्वर्जनार्थः तन्नाम किं परिचक्षि परिचक्ष्यं परिवर्जनीयं परित्याज्यं विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वात्

स्वत एव परित्यक्तं हि तत्। शिष्टं समानं पूर्वेण। अन्यम् उक्तरूप-विलक्षणं यद् वैष्णवं रूपमस्ति एतद् वर्पः रूपम् अस्मत् अस्माकं मा अपगूह अपगूढं संवृतं मा कुरु गूह संवरणे (भ्वा० उ०) अपितु तदेव रूपं प्रकटय। वैष्णवस्य गूहने का प्रशक्तिरिति चेत् यद् यस्मात् त्वम् अन्यरूप इत् रूप.न्तरमेव धारयन् समिथे संग्रामे बभूथा अस्माकं सह यो भवसि तस्मात् त्वयेदं गूहनं न कार्य्यमिति। प्रशंसापक्षे तु हे विष्णो! ते तव नाम किं परिचक्षि प्रख्यापनीयं भवति? न प्रख्यापनीयं स्वत एव प्रख्यातम्, अप्रख्यातम् प्रख्यापनीयम्। किं तन्नाम? शिपिविष्टो रश्मिभिः अविष्टोऽस्मीति यन्नाम प्रब्रूषे। यत एवं प्रख्यातरूपस्त्वम-तोऽस्माकमेमत् वैष्णवं रूपं संवृतं मा कार्षीः। इदानीं गूढरूपोऽपि यद् यस्मात् त्वं समिथे संग्रामे अन्यरूपः कृत्रिमरूपाद् यदन्यद् वैष्णवं रूपं शौर्य्यादिलक्षणं तादृग्रूप एव बभूथ भवसि। तस्मात् त्वं गूढोऽपि ज्ञायस एवेति व्यर्थमेव तस्य रूपस्य गूहनम्। अतो बहुतेजस्कं यद्वैष्णवं रूपं तदेवास्माकं प्रदर्शयेति तात्पर्य्यार्थः॥ १॥

(विष्णो) हे विष्णो! (ते तत् नाम) तुम्हारा वह नाम (किं परिचक्षि) क्या प्रसिद्ध करनेयोग्य है? किन्तु स्वयं प्रसिद्ध है (यत् नाम) जिस नामको (शिपिविष्टः अस्मि इति प्रवक्षे) मैं शिपिविष्ट अर्थात् किरणों करके युक्त हूँ, ऐसा कहते हो। ऐसे प्रसिद्धरूपवाले हो इसकारण (एतद् वर्पः अस्मत् मा अपगूह) इसरूप को हमसे छिपाहुआ मत रक्खो (यत्) जोकि (समिथे) संग्राममें।(अन्यरूपः) इत्) अन्यरूपको धारण करके ही (बभूव) हमारे सहायक होते हो इसकारण परमतेजस्वी विष्णुरूपका हमें दर्शन दो॥ १॥

१ २र ३ १ ३ ३ १२ १ २
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शꣳसामि
३ १ २ ३ २ १ २ ३ २ ३ १ ३
वयुनानि विद्वान्। तं त्वा गृणामि तवसमत-
३ १ २ ३ १ २र ३ २
व्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥ २॥

अथ द्वितीया। हे शिपिविष्ट! रश्मिभिराविष्ट! विष्णो! ते तव तत् प्रसिद्धं विष्णुरिति प्रख्यातं नाम अर्यः स्वामी स्तुतीनां हविषां वा तथा वयुनानि ज्ञातव्यान्यर्थजातानि विद्वान् जानन् यच्च हव्यम् आह्वानयोग्यं नाम अहम् अद्य इदानीं प्रशंसामि प्रकर्षेण स्तौमि। तवसं प्रवृद्धं तं

त्वा त्वां विष्णुम् अतव्यान् अतवीयान् अवृद्धतरोऽहं गृणामि स्तौमि । कीदृशम् ? अस्य रजसः लोकस्य पराके दूरदेशे क्षयन्तं निवसन्तम् ॥

(शिपिविष्ट) हे किरणोंसे युक्त विष्णुभगवन् ! (ते तव) तुम्हारे उस प्रसिद्ध विष्णुनामको (अर्यः) स्तुतियों वा हवियोंका स्वामी (वयुनानि विद्वान्) जाननेयोग्य पदार्थोंको जानताहुआ (हव्यम्) आह्वानयोग्य नामको मैं (अद्य प्रशंसामि) आज प्रशंसा करता हूँ (तम्) तिस (तवसम्) परमवृद्ध (अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) इस लोकके दूरदेशमें निवास करनेवाले (त्वा अतव्यान् गृणामि) तुम विष्णुको तुम्हारा छोटा मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
वषट् ते विष्णवास आकृणोमि तन्मे जुषस्व
३ २ १ २ ३ २ ३ १
शिपिविष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गि-
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे विष्णो! ते तुभ्यं आसः आस्यात् आ अभिमुखं वषट् कृणोमि वषट्कारेण हविर्होमयामि । हे शिपिविष्ट! शिपयो रश्मयस्तैराविष्ट विष्णो ! तत् वषट्कृतं मे मदीयं हव्यं हविः जुषस्व सेवस्व । सुष्टुतयः शोभनस्तुत्यात्मिकाः गिरः वाचश्च त्वा त्वां वर्द्धन्तु वर्द्धयन्तु । हे विष्णो ! यूयं बहुवचनं पूजार्थम् । यद्वा, भवदादयो देवाः सर्वैः स्वस्तिभिः अविनाशिभिः नः अस्मान् सदा सर्वदा पात रक्षत ॥ ३ ॥

(विष्णो ते आसः आ वषट् कृणोमि) हे विष्णुदेव ! तुम्हारे निमित्त सुखसे अभिमुख वषट्कारके द्वारा हविका होम करता हूँ (शिपिविष्ट) हे किरणोंसे युक्त विष्णो ! (तत् मे हव्यं जुषस्व) उस वषट्कार युक्त मेरे हविका सेवन करो (सुष्टुतयः मे गिरः त्वा वर्द्धन्तु श्रेष्ठ स्तुतिरूपा मेरी वाणियें तुम्हे बढ़ावें (यूयम्) हे विष्णो ! तुमको आदि लेकर सब देवता (स्वस्तिभिः नः सदा पात) कल्याणरूपा शक्तियोंसे हमारी सदा रक्षा करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य प्रथमः खंडः समाप्तः

१ २ ३ १ १ ३ २ ३ २ ३ १ २
वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आयाहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१॥

ऋ० वामदेवः छ० अनुष्टुप्। दे० इंद्रः, वायुः वा अथ द्वितीयखण्डे—वायो शुक्रो अयामीति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे वायो! ते तुभ्यं शुक्रः व्रतचर्यादिना दीप्तोऽहं मधुरं सोमरसं कर्मणि षष्ठी (२, ३, ६५)। अग्रम् इतरेभ्यः पूर्वम् अयामि प्रापयामि अयतिरन्तर्भावितण्यर्थः। किमर्थम्? दिविष्टिषु देवो द्युलोकस्यैषणेषु सत्सु हे देव! वायो! स्पार्हः स्पृहणीयस्त्वं नियुत्वता नियुद् वायोः प्रतिनियतोऽश्वः, तेन साधनेन आयाहि सोमपीतये सोमपानाय १

(वायो शुक्रः) हे वायुदेव! व्रत करने आदिसे दीप्त हुआ मैं (दिविष्टिषु) द्युलोकके सुखोंकी इच्छायें होनेपर (ते मध्वः) तुम्हारे निमित्त मधुर सोमरस (पूर्वं अयामि) औरोंसे पहिले अर्पण करता हूँ (देव स्पार्हः) हे वायुदेव! चाहने योग्य तुम (नियुत्वता) नियुत नामक अपने अश्वके द्वारा (सोमपीतये आयाहि) सोमपान करनेको आइये १

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्च वायवेषाᳪँ सोमानां पीतिमर्हथः।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क२र
युवाᳪँ हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् २

अथ द्वितीया। हे वायो त्वम् इंद्रश्च एषां गृहीतानां सोमानां पीतिं पानम् अर्हथः। युवां हि खलु इन्दवः वाप्युदकाः सोमाः यंति प्राप्नुवन्ति निम्नखातप्रदेशम् आपः न सध्र्यक् उदकानि यथा सहैव गच्छन्ति तद्वत् सर्वे सोमा युवां यंति हि ॥ २ ॥

(वायो) हे वायु! तुम (इंद्रः च) और इंद्र भी (एषां सोमानां पीतिं अर्हथः) इन ग्रहण करे हुए सोमोंका पान करनेके योग्य हो (हि युवां इन्दवः यंति) निश्चय तुमको सोम प्राप्त होते हैं (निम्नं आपः न सध्र्यक) जैसे नि-खादेहुए नीचे स्थानमेंका जल एकसाथ ही पहुँचते हैं ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथᳪँ शवसस्पतिः।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
नियुत्वता न ऊतय आ यातᳪँ सोमपीतये ॥३॥

अथ तृतीया। हे वायो! त्वम् इन्द्रश्च शवसः बलस्य पती पालयितारौ अतएव शुष्मिणा बलवन्तौ नियुत्वता नियुत्संज्ञाश्ववन्तौ युवां सरथं समानमेव रथमारूढौ इति शेषः। नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय सोमपीतये सोमपानाय च, आयातम् आगच्छतम्। यद्वा सरथमधितिष्ठन्तमारुह्य चायातमिति वाक्यद्वयम् ॥ ३ ॥

(वायो इंद्रः च) हे वायुदेव! तुम और इंद्र (शवसः पती) बल के रक्षक (शुष्मिणा) बलवान् (नियुत्वता) नियुत् नामक घोड़ों वाले तुम दोनों (नः ऊतये) हमारी रक्षा करनेके लिये (सोमपीतये) सोमपान करनेको (सरथं आयातम्) एकसे रथमें बैठकर आओ ॥३॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ ३ २ ३ २ ३ १ २
यदी विवस्वतो धियो हरिँ हिन्वन्ति यातवे १

ऋ० सूनुः रेभः वा। छ० अनुष्टुप्। दे० सोमः। अधक्षपेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। क्षपा सुपां सुलुगिति (७, १, ३९) पञ्चम्या आकारः क्षपायाः रात्रेः अध अनंतरं प्रातः काले परिष्कृतः भूषणार्थे सम्पर्युपेभ्यः (६, १, १३७) इति करोतेः सुडागमः। अद्भिरलंकृतः यद्वा क्षपयित्र्यां सेनायामलंकृतः हे सोम! त्वं वाजान् अन्नानि बलानि वा अभि लक्ष्य प्र गाहसे प्रगच्छसि। विवस्वतः परिचरणवतः यजमानस्य धियः कर्मसाधनभूता अंगुलयः हरिम् हरितवर्णं त्वामंशु पातवे पात्राण्यभिगमनाय यदि हिन्वन्ति प्रेरयन्ति तर्हि सवनानि गच्छसीति ॥ १ ॥

(क्षपा अध) रात्रिके अनन्तर प्रातःकालके समय (परिष्कृतः) जलोंसे शोभायमान हे सोम! तू (वाजान् अभि प्रगाहसे) बल वा अन्नोंकी ओरको जाता है (विवस्वतः धियः) उपासना करने वाले यजमानकी कर्मकी साधन अंगुलियें (हरिं यातवे यदि हिन्वन्ति) हरे वर्णके तुझ सोमको पात्रोंमें जानेके लिये यदि प्रेरणा करती हैं तब तुम सवनोंको प्राप्त होते हो ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः।
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥२॥

अथ द्वितीया । अस्य सोमस्य तं रसं मर्जयामसि मर्जयामः शोधयामः अलंकुर्मो वा यः मदः मदकरः रसः इन्द्रपातमः इन्द्रेणात्यन्तं पातव्यो भवति । किञ्च गावः गन्तारः सूरयः स्तोतारः पुरा च नूनम् इदानीं च यं सोमरसम् आसभिः आस्यैः दधुः धारयन्ति पिबन्तीति यावत् । यद्वा गावः धेनवः यं सोमम् तृणादिष्ववस्थितम् आसभिः आस्यैः दधुः धारयन्ति तृणरूपेण भक्षयन्ति ॥ २ ॥

(अस्य तं मर्जयामसि) इस सोमके उस रसको शोधते हैं (यः मदः इंद्रपातमः) जो मदकारी रसरूप और इंद्रके अत्यन्त पीने योग्य है (यं सूरयः पुरा च नूनं) जिस सोमरसको स्तोताओंने पहिले धारण किया और अब भी धारण करते हैं (गावः आसभिः दधुः) तृणादिमें स्थित जिस सोमको गौएं मुखों से तृणादिरूप कर के भक्षण करती हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३क२र

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।

३ १ २ ३ १ २ २ ३ २ ३ १ २

उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥

अथ तृतीया । पुनानं पूयमानं सोमं पुराण्या पुराकृतया गाथया स्तुत्या अभि अनूषत स्तोतारोऽभिष्टुवन्ति नु स्तवने (अदा० प०) लुङि रूपम् । उतो अपिच नाम कर्मार्थं नमनम् बिभ्रतीः बिभ्राणाः धीतय अंगुलयः देवानाम् सोमरूपहविःप्रदानाय कृपन्त कल्पयन्ति समर्था भवन्ति ॥ ३ ॥

(पुनानं पुराण्या गाथया अभ्यनूषत) पूयमान सोमकी पुरातन स्तुतिसे स्तोता प्रशंसा करते हैं (उतो) और (नाम बिभ्रतीः) कर्मके लिये नम्रताको धारण करतीहुई (धीतयो देवानां कृपन्त) अंगुलियें देवताओंको सोमरूप हवि देनकेलिये समर्थ होती हैं ॥ ३ ॥

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमो-

३ १ २ ३ १ २

भिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अश्वन्नत्वेति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । अध्वराणां यज्ञानां सम्राजन्तं सम्राट्स्वरूपं स्वामिनम् अग्निं नमोभिः स्तुतिभिर्हविर्भिर्वा वन्दध्यै वन्दितुं

प्रवृत्ता इति शेषः । अग्नेर्दृष्टान्तः वारवन्तं बालयुक्तम् अश्वं न अश्वमिव अश्वो यथा वालेन बाधकान् मशकमक्षिकादीन् परिहरति, तथा त्वमपि ज्वालाभिरस्मद्विरोधिनः परिहरसीत्यर्थः । वारवन्तम् मतुपः पित्वादनुदात्तत्वम्, वृञो णित्वादाद्युदात्तत्वं वारशब्दः, कर्षात्वतः (६, १, १५९) इति अन्तोदात्तत्वं व्यत्ययेन प्रवर्त्तते ॥ १ ॥

(अध्वराणां सम्राजं त्वा अग्निं नमोभिः वन्दध्यै) यज्ञोंके राजा तुझ अग्निको स्तुतियों करके और हवियों करके हम वन्दना करते हैं (वारवन्तं अश्वं न) जैसे घोड़ा अपने बाधक मच्छर आदिको बालोंसे दूर कर देता है तैसे तुम भी अपनी ज्वालाओंसे हमारे विरोधियोंको हटाओ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
३ २ ३ १ २
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । स घ स एवाग्निः नः अस्माकं सुशेवः सुमुखो भवत्विति शेषः । कीदृशः ? शवसा शवसः बलस्य विभक्तिव्यत्ययः सूनुः पुत्रः पृथुप्रगामा पृथुप्रगमनः प्रकर्षेण गमनं प्रगामः हलश्च (३, ३, १२१) इति घञ् । पृथु प्रगामो यस्यासौ पृथुप्रगामः, सुपां सुलुक् (७, १, ३९) इति पूर्वसवर्ण आकारः, बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, १) किञ्च अस्माकं मीढ्वान् मिह सेचने (भ्वा० प०) इत्यस्मात् कसुप्रत्ययान्तो दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च (६, १, १२) इति निपातितः कामानां वर्षिता बभूयात् भवतेश्छान्दसस्य लिटः तिङां तिङो भवन्तीति तिङादेशः, यासुट्, स्थानिवद्भावात् आर्द्धधातुकत्वात् शबभावः द्विवचनं भवते रः (७,४, ७३) इत्यत्वं तिङः (८, १, २७) इति निघातः भवत्वित्यर्थः ॥ २ ॥

(स घ नः सुशेवः) वही अग्नि हमारे लिये मांगलिक सुखवाला हो (शवसा सूनुः पृथुप्रगामा) बलका पुत्र-और बड़े गमनवाला यह अग्नि (अस्माकं मीढ्वान् बभूयात्) हमारे मनोरथोंको पूर्ण करने वाला हो ॥ २ ॥

१ २ ३२ ३ २ ३ १ २र ३ २
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
३ २उ ३ २ ३ १ २
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! विश्वायुः इणगतावित्यस्माद् भावे एते र्णिच्च इति उसिः, विश्वमयनं गमनं यस्येति बहुव्रीहिः,बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६, २, १०६) इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वं व्याप्तगमन इत्यर्थः स त्वं दूराच्च दूरेऽपि आराच्च आसन्नदेशेऽपि । अघायोः अघं पापमनिष्टं कर्त्तुमिच्छतः मर्त्यात् मनुष्याद् वैरिणः नः अस्मान् सदमित् सर्वदैव नि पाहि नितरां पालय ॥ ३ ॥

हे अग्ने (विश्वायुः) विश्वव्यापी तू (दूरात् च आरात् च) दूरसे और समीपसे भी (अघायोः मर्त्यात) हमारा अनिष्ट करना चाहते हुए मनुष्यसे (नः सदमित् निपाहि) हमारी सदा रक्षा करो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

३ १ २ ३ १ २३१२३ १ २ ३ २

अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः

ऋ० नृमेधाः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्विति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे इंद्र ! त्वं प्रतूर्त्तिषु संग्रामेषु विश्वाः सर्वाः स्पृधः युद्धकारिणीः शत्रुसेनाः अभि असि अभिभवसि किञ्च, हे तूर्य शत्रूणां बाधकेन्द्र ! त्वम् अशस्तिहा देवानामशस्तीनां हन्तासि । जनिता असुरेभ्यः अशस्तीनां जनयिता चासि । अतएव विश्वतूः सर्वस्य शत्रुवर्गस्य सर्वप्रकारेण हिंसिता असि तरुष्यतः बाधकांश्च बाधमानोऽसि ॥ १ ॥

(इंद्र त्वम्) हे इंद्र ! तुम (प्रतूर्त्तिषु विश्वाः स्पृधः अभि असि) संग्रामोंमें सकल शत्रुसेनाओंका तिरस्कार करते हो (तूर्य त्वम्) हे शत्रुओंके बाधक इंद्र ! तू (अशस्तिहा) देवताओंकी विपत्तियोंका नाशक है (जनिता) असुरोंकी विपत्तियोंका उत्पादक है (वृत्रतूः) सकल शत्रुओंका सबप्रकारसे बाधक है (तरुष्यतः असि) बाधा देनेवालोंको सब प्रकारसे कष्टदाता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३१२ ३ २उ ३ २

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न

३ १ २ १ २ ३ १२ ३ १ २

मातरा । विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे

३१ २र ३ १ २

वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इन्द्र! ते तव शुष्मं बलं तुरयन्तं शत्रुं हिंसन्तं क्षोणी द्यावापृथिव्यौ मातरा मातरौ शिशुं न शिशुमिव अनु ईयतुः अनुगच्छतः, गमनमात्रे दृष्टान्तः। किञ्च, हे इन्द्र! त्वं यद् यस्मात् वृत्रं वृत्रनामानं शत्रुं तूर्वसि हंसि। अतः ते तव मन्यवे क्रोधाय विश्वाः सर्वाः स्पृधः संग्रामकारिण्यः सेनाः श्नथयन्त श्नथिता खिन्ना भवन्ति।

हे इंद्र! (तुरयन्तं ते शुष्मम्) शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरे बल को (क्षोणी मातरा शिशुं न अनुईयतुः) द्यावापृथिवी, जैसे माता पिता बालकके पीछे २ जाते हैं तैसे अनुगामी होते हैं (इंद्र) हे इंद्र (यत् वृत्रं तूर्वसि) क्योंकि तू वृत्र नामक शत्रुको नष्ट करता है इसकारण (ते मन्यवे) तेरे क्रोधके निमित्त (विश्वा स्पृधः) सकल संग्राम करने वाली सेनाएँ (श्नथयन्त) खिन्न होती हैं ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य द्वितीयः खंडः समाप्तः

३ १ २र ३ २उ ३ १ २
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्त्तयत्।
३ १ २ ३ २ २ र
चक्राण ओपशं दिवि ॥ १ ॥

ऋ० गोषूक्तिः वा अश्वसूक्तिः। छं० गायत्री। दे० इन्द्रः। अथ तृतीयखण्डे—यज्ञ इंद्रमिति तृचं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। यज्ञः यजमानैरनुष्ठीयमानो यागः इन्द्रं देवम् अवर्द्धयत्। श्रूयते हि, इन्द्र इदं हविरजुषतावीवृधतमहो ज्यायोऽकृत इति। स इंद्रः यद् यस्मात् भूमिं पृथिवीं व्यवर्त्तयत् वृष्ट्यादिप्रदानेन विशेषेण वर्त्तमानमकरोत्। किं कुर्वन्? दिवि अन्तरिक्षे मेघम् ओपषम् उपेत्य शयानं चक्राणः कुर्वन् यद्वा, आत्मनि समवेतो वीर्यविशेषः ओपशः तमन्तरिक्षे कुर्वन् ॥ १ ॥

(यज्ञः इंद्रं अवर्द्धयत्) यजमानोंका कियाहुआ यज्ञ इन्द्रको बढ़ाता है, (यत) क्योंकि वह इन्द्र (दिवि ओपशं चक्राणः) अन्तरिक्षमें मेघ को छायाहुआ वा अपनमें स्थित वीर्यको अन्तरिक्षमें करताहुआ (भूमिं व्यवर्त्तयत्) वर्षा आदि देकर भूमिको विशेष पुष्ट करता है ॥ १ ॥

२ १२ ३ २ ३ १ २ ३ २
व्या३न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना।
२ ३ १ २र ३ २
इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। सोमस्य पानेन मदे हर्षे सति रोचना रोचमानम्

अन्तरिक्षम् अयम् इंद्रः वि अतिरत् व्यवर्द्धयत् यद् यस्मात् कारणात् वलम् आवृत्य स्थितमसुरं मेघं वा अभिनत् व्यदारयत् ॥ २ ॥

(सोमस्य मदे) सोमको पीनसे हर्ष होनेपर (इंद्रः) इंद्र (रोचना अन्तरिक्षम्) दीप्यमान अन्तरिक्षको (वि अतिरत्) विशेषरूपसे सम्पन्न करता है (यत्) क्योंकि (वलम् अभिनत्) मेघको विदीर्ण करता है ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
३ १ २ ३ २
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अङ्गिरोभ्यः ऋषिभ्यः बलानुचरैः पणिभिरपहृता गाः उदाजत् उदगमयत् । किं कुर्वन् ? गुहा गुहायां बिले सतीः विद्यमानाः यथा न दृश्यन्ते तथा पणिभिर्निगूढास्ता गाः आविष्कृण्वन् प्रकाशयन्। अपि च पणीनामधिपतिं बलम् असुरमपि अर्वाञ्चम् अधोमुखं नुनुदे प्रेरितवान् ॥ ३॥

(गुहासतीः गाः आविष्कृण्वन् अङ्गिरोभ्यः उदाजत्) गुहामें स्थित होकर भी न दीखती हुई अपहारकोंकी छिपाई हुइ गौओंको प्रकाशित करता हुआ ऋषियोंका लाकर देता है (वलं अर्वाञ्चम् नुनुदे) उन हरण करने वालोंके अधिपति वल नामक असुरको नीचा मुख करके भगा देता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
१ २ ३ १ २
आ च्यावयस्यूतये ॥ १ ॥

ऋ० श्रुतकक्षः वा सुकक्षः । छं०गायत्री । दे० इन्द्रः । अथ तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । यजमानः स्तोतारं सम्बोध्याह हे स्तोतः ! सत्रासाहं सत्राशब्दो बहुवाची बहूनाभिभवितारं यद्वा, शत्रून् स्वबलेन सङ्गत्य जेतारं वः युष्मदीयासु विश्वासु गीर्षु सर्वेषु स्तोत्रेषु आयतम् विस्तृतं सर्वत्रेन्द्र एव स्तूयते, तस्मात् तेषु वितम्, त्यं तम् उ, इत्यवधारणे तमेवेन्द्रम् ऊतये अस्मद्रक्षणाय आ च्यावयसि च्युङ प्रुङ गतौ (भ्वा० आ०) त्वदीयैः स्तोत्रैर्यज्ञम् प्रत्याभिमुख्ये नागमय ॥ १ ॥

यजमान कहता है कि-हे स्तोतः (सत्रासाहम) अनेकोंका तिर-

स्कार करनेवाले (वः विश्वासु गीर्षु आयतम्) तुम्हारे सकल स्तोत्रों में फैलेहुए (त्यमु) उस इन्द्रको ही (ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (आच्यावयसि) अपने स्तोत्रोंसे यज्ञमें हमारे अभिमुख भेजो ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र
युध्मꣳ सन्तमनर्वाणꣳ सोमपामनपच्युतम् ।
१ २ ३ १ २
नरमवार्य्यक्रतुम् ॥ २ ॥

अथ, द्वितीया । एवं गुणोपेतमिन्द्रमागमयेत्याह, युध्मं शत्रूणां सम्प्रहारकं सन्तम् अतएव अनर्वाणम् अन्यैरधृतगमनं, तस्मात् अनपच्युतं संग्रामेषु शत्रुभिरहिंसितं, सोमपां सोमस्य पातारं अस्य सोमस्य मदे सति अवार्यक्रतुं भटैरनिवारणीयकर्माणं, नरं सर्वस्य नेतारम् । एतादृग्गुणोपेतं तमिन्द्रमागमयेति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ २ ॥

(युध्मं संतं अनर्वाणम्) शत्रुओंके ऊपर प्रहार करते हुए विद्यमान तथा दूसरोंसे जिनकी गति नहीं रोकी जाती ऐसे(अनपच्युतं सोमपाम) संग्रामोंमें शत्रुओंसे न दबनेवाले और सोम पीनेवाले तथा उस सोम का मद होने पर (अवार्यक्रतुं नरम्) जिनके पराक्रम को योधा नहीं निवारण करसकते ऐसे सबके नेता इंद्रका हमारे यज्ञमें आवाहन करो

१ २ १ २र ३ २ ३ १ २
शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाꣳ ऋचीषम ।
१ २ ३ २ ३ १ २
अवा नः पार्य्ये धने ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे ऋचीषम ! स्तुत्यासम यद्वा ईष गतिहिंसादानेषु (भ्वा० प०) अस्मादमः प्रत्ययः सर्वैर्गन्तव्यदर्शनीय वा उक्तगुणोपेत हे इंद्र ! विद्वान् सर्वविषयज्ञानवान् त्वम् शत्रुभ्यः आ आहृत्य रायः धनानि नः अस्मभ्यं पुरु बहुवारं शिक्ष प्रयच्छ यद्वा पुरु इति रायो विशेषणम् बहूनि धनानि प्रयच्छ । किञ्च पार्य्यो पाराः शत्रवः तत्र भवे धने आजिहीर्षिते शत्रुधने नः अस्मान् अव रक्ष शत्रून् हत्वा तद्धनेनास्मान् पालयेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(ऋचीषम इन्द्र) हे दर्शनीय इंद्र (विद्वान्) सब विषयोंके जानने वाले तुम (रायः आ) बहुतसे धन शत्रुओंसे लेकर (नः पुरु शिक्ष हमें अनेकों वार दो (पार्ये धने नः अव) शत्रुओंके हरण किये हुए धन से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
१ २ ३ २ ३ १ २
वज्रꣳ शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

ऋ० गोषूक्तिः । अश्वसूक्तिः वा । छं० उष्णिक् । दे० इंद्रः । तवत्य-दिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इंद्र त्यत् प्रसिद्धम् इन्द्रि-यम् इन्द्रस्य लिङ्गं बृहत् प्रभूतं वीर्य्यं धिषणा स्तुतिः शिशाति शिश्यति तीक्ष्णीकरोति । तथा तवत्वदीयं दक्षं शोषकं बलम् उत अपि च क्रतुं प्रज्ञानं बलं कर्म वा वरेण्यं वरणीयं वज्रम् आयुधञ्च शिशाति तीक्ष्णी-करोति ॥ १ ॥

हे इंद्र (धिषणा) स्तुति (त्यत इंद्रियं बृहत्) उस तुम्हारे बड़े-भारी बलको (तव दक्षम्) तुम्हारे शत्रुओंको सुखानेवाले बलको (उत क्रतुम्) और पराक्रम रूप कर्मको (वरेण्यं वज्रम्) वरणीय वज्रको (शिशाति) तीक्ष्ण करती है ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
तव द्यौरिन्द्र पौꣳस्यं पृथिवी वर्द्धति श्रवः ।
२उ ३ १ २
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इद्र ? द्युलोकः तव पौंस्यं बलं वर्द्धति वर्द्धयति श्रवः त्वदीयं यशः पृथिवी वर्द्धयति वृधेर्ण्यन्ताल्लटि शपि छन्दस्यु-भयथा (३, ४, ११७) इति आर्द्धधातुकत्वात् णेरनिटि (६, ४, ५१) इति णिलोपः । तं त्वाम् आपः उदकान्यान्तरिक्षाणि पर्वतासः च पर्ववन्तो मेघाश्च गिरयश्च वा हिन्विरे प्रीणयंति स्वामित्वेन प्राप्नुवन्तीति वा २

(इंद्र द्यौः तव पौंस्यं पृथिवी श्रवः वर्द्धति) हे इंद्र ! द्युलोक तेरे बलको और पृथिवी तेरे यशको बढ़ाती है (त्वाम्) ऐसे तुमको (आपः पर्वतासः च हिन्विरे) जल और मेघ अपना स्वामी समझकर प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
त्वां विष्णुर्बृहत् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
१ २र ३ २ ३ १ २
त्वाꣳ शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीय । हे इन्द्र! बृहत् महान् क्षयः निवासहेतुः विष्णुः मित्रः

वरुणः च त्वां गृणाति स्तौति । तथा मारुतं मरुत्सम्बन्धि शर्द्धः बलं त्वाम् अनु मदति तव मदमनुलक्ष्य पश्चात् माद्यति त्वामनुमादयति वा३

हे इन्द्र ! (बृहत् क्षयः) महान पहुँचनेयोग्य स्थानरूप वा परम धामका देनेवाला (विष्णु मित्रः वरुणः च गृणाति) विष्णु मित्र और वरुण तुम्हारी स्तुति करता है (मारुतं शर्द्धः त्वां अनुमदति) मरुत देवताका बल तुम्हें हर्ष देता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।

१ २ ३ १ २

अमैरमित्रमर्दय ॥ १ ॥

ऋ० विरूपः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ चतुर्थे खण्डे नमस्ते अग्न इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । देव ! द्योतमान ! हे अग्ने देव ! ते तुभ्यं नमः गृणन्ति नमस्कारशब्दमुच्चारयन्ति । किमर्थम् ओजसे बलाय कृष्टयः मनुष्याः यजमानाः अतोऽहमपि गृणामीत्यर्थः । त्वञ्चः अमैः बलैः अमित्रं शत्रुम् अर्दय नाशय ॥ १ ॥

(अग्ने देव) हे अग्निदेव (कृष्टयः) यजमान (ओजसे) बल पाने के लिये (ते) तुम्हारे अर्थ (नमः गृणन्ति) नमस्कारका उच्चारण करते हैं इसीकारण मैं भी तुम्हें प्रणाम करता हूँ (अमैः अमित्र अर्दय) तुम अपने बलोंसे शत्रुओंका नाश करो ॥ १ ॥

३ २उ ३ १ २ ३१ २ ३ १ २ ३ २

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् ।

१२ ३ १ २

उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! त्वं नः अस्माकं गविष्टये गवामेषणाय कुवित्सु बहु रयिं धनं संवेषिषः सम्प्रापय उरुकृत् त्वं नः अस्मान् उरु कृधि कुरु ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्ने तुम (नः गविष्टये) हमारी गौओंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये (कुवित्सु रयिं संवेषिषः) बहुतसा धन दो (उरुकृत् नः उरु कृधि) बड़ा करनेवाले तुम मुझे बड़ा करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २

मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा ।

३ २ ३ २ ३ १ २
संवर्गꣳ सꣳ रयिं जय ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! नः अस्मान् अस्मिन् महाधने संग्रामे मा परावर्क् मा परित्याक्षीः भारभृद् यथा भारवाही रथो भारमन्ते परित्यजति तद्वत संवर्गं शत्रुभ्यः सहाच्छिद्यमानम् रयिम् धनम् जय अस्मदर्थम् ॥ ३ ॥

(अग्न नः महाधने) हे अग्ने ! हमें इस संग्राममें (मा परावर्क्) मत त्यागो (यथा भारभृत) जैसे भारवाही अन्तमें ही भारको त्यागता है मध्यमें नहीं (संवर्गं रयिं सञ्जय) शत्रुओंसे इकट्ठे किये हुए धन को हमारे निमित्त जीतो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
३ १ २ ३ १ २
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥

ऋ० वत्सः । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अथ समस्यमन्यव इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । विशः विशन्त्यः विश्वाः सर्वाः कृष्टयः प्रजा अस्य इंद्रस्य मन्यवे क्रोधाय यद्वा मन्युर्मननसाधनम् स्तोत्रं तदर्थं सं नमन्त सम्यक् स्वत एव प्रह्वीभवन्ति उच्चारयन्ति वा । तत्र दृष्टान्तः समुद्राय इव यथा समुद्रमुदधिं प्रति सिंधवः स्यन्दनशीला नद्यः स्वयमेव नमन्ते तद्वत ॥ १ ॥

(विश्वाः विशः) सकल प्रजाएं (अस्य मन्यवे सं नमन्त) इस इंद्रके क्रोधके अर्थ वा मननके साधन स्तोत्रके अर्थ भलेप्रकार नम्र होती हैं (समुद्राय सिन्धवः इव) जैसे समुद्रकी ओरको नदियें स्वयं ही नमती चली जाती हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
१ २ ३ १ २
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे चित् शब्दोऽप्यर्थः स च भिन्नक्रमः वृत्रस्य चित् आवरकस्यापि दोधतः अत्यर्थं भृशं वा जगत् कम्पयतः असुरस्य शिरः मूर्द्धानं शतपर्वणा शतसंख्यापर्वाणि धारा यस्य तादृशेन वृष्णिना सेचनसमर्थेन वीर्य्यवता वज्रेण इंद्रः बिभेद विचिच्छेद ॥ २ ॥

(दोधतः वृत्रस्य चित् शिरः) और जगत्को अत्यन्त कम्पायमान करनेवाले वृत्रासुरके शिरको (वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण विबिभेद) वीरता भरे सैंकड़ों धारवाले वज्रसे-काटताहुआ ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ ३ १ २
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्त्तयत् ।
२ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अस्य इंद्रस्य तत् ओजः वलं तित्विषे दिदीपे त्विष दीप्तौ (भ्वा० उ०) यत् येन ओजसा अयम् इंद्रः उभे रोदसी द्यावा-पृथिव्यौ चर्म इव समवर्त्तयत् सम्यग् वर्त्तयति यथा कश्चित् किञ्चित् चर्म कदाचिद् विस्तारयति कदाचित् सङ्कोचयति एवं तदधीने अभू-तामित्यर्थः ॥ ३ ॥

(अस्य तत् ओजः तित्विषे) इस इंद्रका वह बल प्रदीप्त हुआ (यत् इंद्रः) जिस बलसे यह इंद्र (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और भूलो-कको (चर्म इव समवर्त्तयत्) चर्मकी समान भले प्रकार अपने अधीन रखता है अर्थात् जैसे कोई किसी चमड़ेको कभी चौड़ा कर देता है और कभी तै करके संकुचित करलेता है तैसे ही यह दोनों लोक इंद्र के वशमें हैं ॥ ३ ॥

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ सुमन्मावस्वीति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इंद्र ! तव अश्वौ सुमन्मा शोभनज्ञानौ वस्वी धनवन्तौ रन्ती रमणीयौ सूनरी सुष्ठु नेत्री यद्वा सुमन्मा शोभनमननीया मम स्तुतिः प्रशृणोति शेपः । अन्यत् समानम् १

हे इंद्र ! तुम्हारे घोड़े (सुमन्मा वस्वी) श्रेष्ठ ज्ञानवाले और धन-वान् (रन्ती सूनरी) रमणीय और सुन्दर नेत्रोंवाले हैं ॥ १ ॥

१ २ ४ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १
सरूप वृषन्नागहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
२ ३ १ २र
ताविमा उप सर्पतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सरूप ! हे वृषन् ! कामानां वर्षकेन्द्र ! भद्रौ

कल्याणौ इमौ रथे युज्यमानौ धुर्यौ वहनयोग्यावश्वौ अभि आ गहि आगच्छ अस्मद् यज्ञं प्रति शीघ्रं गच्छ तौ इमौ अश्वौ उप सर्पतः त्वां सम्यक् सेवेते ॥ २ ॥

(सरूप वृषन्) हे नित्य एक समानरूपवाले अभीष्टफलदाता इंद्र ! (भद्रौ इमौ धुर्यौ अभि आगहि) कल्याणरूप इन रथमें जोड़े हुए सवारीके योग्य घोड़ोंके द्वारा हमारे यज्ञमें शीघ्र आइये (तौ इमौ उप सर्पतः) ऐसे यह घोड़े आपकी भलेप्रकार सेवा करते हैं ॥ २ ॥

२र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
१ २ ३ १ २ ३ २
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे ऋत्विग्जनाः ! मध्ये आपस्य रसस्य इंद्रः तिष्ठति किं कुर्वन् ? दशभिः दशसंख्याकैः शृङ्गेभिः अगुलिभिः हस्ताग्रैः उभाभ्यां दिशन् अस्मदभीष्टमर्थं प्रयच्छन् यज्ञे तिष्ठति । हे ऋत्विग्यजमानाः ! तं पश्यत शीर्षाणि नि मृढ्वं यूयमिन्द्रगमनविषयश्रेयांसि शिरसा धारयध्वमित्यर्थः ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तक—श्रीवीरबुक्क
भूपालसाम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये
सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे सप्तदशोऽध्यायः ।

हे ऋत्विज यजमानो ! (दशभिः शृङ्गेभिः इव दिशन्) दोनों हाथोंकी दश अगुलियोंसे हमारे इच्छित पदार्थ देते हुए इंद्र देवता (आपस्य मध्ये तिष्ठति) यज्ञमें सोमरसके मध्यमें स्थित हैं उनको देखो और (शीर्षाणि निमृढ्वम्) तुम इंद्रके आगमनसे होने वाले कल्याणोंको शिरसे धारण करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके सप्तदशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः

सप्तदशाध्यायश्च समाप्तः



❀ श्रीहरिः ❀

अथाष्टादशोऽध्याय आरभ्यते

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय ।

१ २ ३ २ ३ १ १

सोमं वीराय शूराय ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः प्रियमेधः वा । छ० गायत्री । दे० सोमः । तत्र, प्रथमे खण्डे पन्यम्पन्यमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सोतारः ! अभिषोतारोऽध्वर्य्यवः ! मद्याय माद्यितव्याय वीराय विक्रान्ताय शूराय शौर्य्यवते इंद्राय पन्यं पन्यम् इत् सर्वत्र स्तुत्यमेव सोमम् आ धावत अभिगमयत प्रयच्छतेत्यर्थः ॥ १ ॥

(सोतारः) हे अभिषव करनेवाले अध्वर्युओं ! (मद्याय वीराय) प्रसन्न करनेयोग्य और पराक्रमी (शूराय) शूर इन्द्रके अर्थ (पन्यम् पन्यं इत्) सर्वत्र ही प्रशंसाके योग्य (सोमं आ धावत) सोमको सन्मुख जाकर अर्पण करो ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ ३ १ २ ३ १ २

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।

१ २ ३ १ २र

इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्रेण हविषा वा युज्यमानौ शग्मा शग्मौ सुखकरौ शक्तौ वा हरी अश्वौ इह अस्मिन् यज्ञे सखायं समानख्यानं मित्रभूतम इंद्रम् आ वक्षत आवहताम । कीदृशमिन्द्रम ? गीर्भिः स्तुतिभिः प्रख्यापितमाहात्म्यं गिर्वणसं गिरा सम्भक्तारं स्तुतिभिः सम्भजनीयं वा ॥ २ ॥

(ब्रह्मयुजा शग्मा) स्तोत और हविके द्वारा रथमें जोड़े जाते हुए सुखदायक वा समर्थ (हरी) पापनाशक इंद्रके घोड़े (इह) इस यज्ञमें (सखायं गिर्वणसं इंद्रम आवक्षत) मित्ररूप और वेदमन्त्रोंसे स्तुति करनेयोग्य इंद्रको लावें ॥ २ ॥

१ २ ३ १ ३ १ २र ३ २उ ३ २

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।

१ २ ३ १ २
नि यमते शतमूतिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। सुतम् अभिषुतं पाता पानशीलः ताच्छीलिकस्तृन् (३, २, १३५), न लोकाव्यय (२, ३, ६९), इति कर्मणि षष्ठ्याः प्रतिषेधः वृत्रहा वृत्रस्यासुरस्य हन्ता इन्द्रः आगमत् घ, इत्यवधारणे आगच्छतैव, अस्मत अस्मत्तः आरे दूरदेशे मा भवतु। आगत्य च शतमूतिः बहुविधरक्षणः इंद्रः नि यमते अस्मदीयान् शत्रून् नियच्छतु तिरस्करोतु यद्वा, धनान्यस्मभ्यं नियच्छतु ददातु ॥ ३ ॥

(सुतं पाता वृत्रहा) अभिषुत सोमको पीनेके स्वभाववाला वृत्रासुरका नाशक इंद्र (घ आ गमत्) अवश्य ही आवे (अस्मत् आरे) हमसे दूर न रहै और आकर (शतमूतिः) अनेकों प्रकारसे रक्षा करनेवाला इंद्र (नियमते) हमारे शत्रुओंका तिरस्कार करै अथवा हमैं धन देय ॥ ३ ॥

२ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
२उ ३ १ २
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १ ॥

ऋ० श्रुतकक्षः सुकक्षः वा। छ० गायत्री दे० सोमः। अथ आ त्वा विशन्त्विति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे इन्द्र ! इंद्वः स्रवन्तः सोमाः त्वा त्वाम् आ विशन्तु सर्वतः प्रविशन्तु। तत्र दृष्टान्तः समुद्रमिव सिन्धवः स्यन्दनशीला नद्यः यथा समुद्रम् जलाशयं सर्वतः प्रविशन्ति तद्वत। यत एवं तस्मात हे इंद्र ! त्वां कश्चिदपि देवो बलेन धनेन वा नातिरिच्यते नातिरिक्तो भवति सामर्थ्यवान् त्वत्तोऽधिको नास्तीत्यर्थः ॥ १ ॥

(इन्द्र इन्दवः त्वा आविशन्तु) हे इंद्र ! यह रहते हुए सोमरस तुमको प्राप्त हों (सिन्धवः समुद्रं इव) जैसे कि वहती हुई नदियें जा कर समुद्रमें पहुंच जाती हैं इसकारण हे इंद्र ! (त्वा न अतिरिच्यते) कोई भी देवता धनमें वा बलमें तुमसे अधिक नहीं है ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षꣳ सोमस्य जागृवे
१ २ ३ १ २
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वृषन् ! कामानां वर्षितः हे जागृवे जागरणशील इंद्र त्वम् तस्य सोमस्य भक्षम् पानं प्रति महिना महिम्ना विव्यक्थ सर्वतो व्याप्तवानसि व्यचतेर्लिटि थलि लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् (६, १, २७) इति सम्प्रसारणम् । हे इन्द्र यः सोमः ते तव जठरेषु उदरेषु प्रविशति तस्य पानं व्याप्तवानसीति शेषः ॥ २ ॥

(वृषन् जागृवे) हे अभीष्ट पदार्थोंकी वर्षा करनेवाले सदा सावधान इन्द्र ! तुम (सोमस्य भक्षं महिना विव्यक्थ) सोमका पान करने के लिये अपनी महिमासे सर्वत्र व्याप्त रहते हो (इंद्र) हे इंद्र ! (यः ते जठरेषु) जो सोम तुम्हारे उदरोंमें प्रवेश करता है ॥ २ ॥

१२ ३ २३ १ २
अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
२३ १ २ १ २
अरं धामभ्य इन्दवः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे वृत्रहन् वृत्रस्यापामावरकस्यासुरस्य मेघस्य पापस्य वा हन्तः इंद्र सोऽस्माभिर्दीयमानः ते तव कुक्षये अरम् अलम् पर्य्याप्तो भवतु । किञ्च इन्दवः सर्वतः क्षरणशीलाः सोमाः तव धामभ्यः नानाविधेभ्यः शरीरेभ्यः तव तेजोभ्यो वा अरमलं पर्याप्ता भवन्तु, अनेनन तेजसा हविर्भोक्तृत्वमस्तीति सूचितम् ! अस्मदीयाः सोमा एव तव कुक्षये देवेभ्योऽपि पर्याप्ता भवन्तु नान्यदीया इति भावः ॥३॥

(वृत्रहन् इन्द्रं) हे पापनाशक इंद्र (सोमः ते कुक्षये अरं भवतु) हमारा दिया हुआ सोम तेरी कोखके लिये पर्य्याप्त हो (इन्दवः धामभ्यः अरम्) हमारे सोम तुम्हारे तेजोंके प्रभावसे सब देवताओंके निमित्त पर्याप्त हों ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
१ २ ३ १ २ ३ २
स्तोमꣳ रुद्राय दृशीकम् ॥ १ ॥

ऋ० शुनःशेपः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ जराबोधेति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे जराबोध जरया स्तुत्या बोध्यमान हे अग्ने ! विशे विशे तत्तद्यजमानरूपप्रजानुग्रहार्थं यज्ञियाय यज्ञसम्बन्ध्यनुष्ठानसिध्यर्थं तद् देवयजनं विविड्ढि प्रविश यजमानोऽपि रुद्राय क्रूरायाग्ने तुभ्यम् कीदृशम् दृशीकम् दर्शनीयं समीचीनं स्तोत्रं करो-

तीति शेषः। अत्र यास्क एवं व्याख्यातवान् जरा स्तुतिः जरतेः स्तुतिकर्मणस्तां बोधतया बोधयितरिति वा तद्विविड्ढि तत् कुरु मनुष्यस्य यजनाय। स्तोमम रुद्राय दर्शनीयम् (निरु० दै० अ० १०) इति॥ १॥

(जराबोध) हे स्तुतिसे प्रज्वलित किये हुए अग्ने (विशे विशे यज्ञियाय तद् विविड्ढि) प्रत्येक यजमानरूप प्रजाके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये यज्ञसंबंधी अनुष्ठानके सिद्ध करनेको यज्ञशालामें प्रवेश कर, यजमान भी (रुद्राय) तुझ रुद्रस्वभाव अग्निके अर्थ (दृशीकम्) दर्शनीय श्रेष्ठ स्तुतिको करता है॥ १॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ १ ३ २
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
३ १ २र
धिये वाजाय हिन्वतु॥ २॥

अथ द्वितीया। सः अग्निः नः अस्मान् धिये कर्मणे वाजाय अन्नाय च हिन्वतु प्रीणयतु कीदृशः महान् संहितायां नकारस्य रुत्वानुनासिकावुक्तौ गुणाधिकः अनिमानः न विद्यते निमानोऽस्येति बहुव्रीहौ नञ्सुभ्याम (६, २, १७२) इत्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् निमानवर्जितः अपरिच्छिन्न इत्यर्थः धूमकेतुः बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, १) धूमेन ज्ञाप्यमानः पुरुश्चन्द्रः चदि आह्लादने दीप्तौ च (भ्वा० प०) अस्मात् स्फायितञ्चि (उ० २, १३,) इत्यादिना कर्त्तरि रक् पुरुश्चासौ चन्द्रश्च समासान्तोदात्तत्वम् ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे (६, १, १५१), इति सुट्, तस्य श्चुत्वेन शकारः बहुदीप्तिरित्यर्थः धिये, सावेकाचः (६, १, १६८), इति चतुर्थ्या उदात्तत्वम्। हिन्वतु, हिवि: प्रीणनार्थः इदितो नुम् धातोः (७, १, ५८), इति नुम्॥ २॥

(महान् अनिमानः) सबसे बड़ा और अपरिच्छिन्न (धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः सः) धूमसे विदित होनेवाला और बहुत आनन्द देने वाला अग्नि (नः धिये वाजाय हिन्वतु) हमें ज्ञानके लिये और अन्नके लिये प्रेरणा करे॥ २॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः।
३ २ ३ २ ३ १ २
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः॥ ३॥

अथ तृतीया । सः अग्निः उक्थेभिः स्तोत्रैयुक्तान् नः अस्मदीयान् शृणोतु । तत्र दृष्टान्तः, रेवान् इव यथा धनवान् राजा बन्दिनां स्तोत्रं शृणोति, तद्वत् एतत्तदोः (६, १, १३२), इति सोर्लोपः रयेर्मतौ बहुलम् (६, १, ३४ वा०), इति सम्प्रसारणं परपूर्वत्वम्, आद्गुणः (६, १, ८७), छन्दसीरः (८, २ १५), इति मतुपो वत्वम् रैशब्दाच्च मतुप उदात्तत्वम् वक्तव्यम् (६, १, १७६ वा०), इति मतुप उदात्तत्वम् । कीदृशः ? विश्पतिः परादिश्छन्दसि बहुलम् (६, २, १९९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् प्रजापालकः दैव्यः देवानां सम्बन्धी अग्निर्वै देवानां होता, इति श्रुत्यन्तरात् केतुः दूतवत् ज्ञापकः ॥अग्निर्वै देवानां दूत आसीत्, इति श्रुतेः । बृहद्भानुः बहुव्रीहौ प्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, १) प्रौढरश्मिः ॥ ३ ॥

(विश्पतिः दैव्यः) प्रजाओंका रक्षक और देवताओंका सम्बन्धी (केतुः बृहद्भानुः सः) दूत और अनेकों किरणोंवाला वह अग्नि (रेवान् इव) जैसे धनवान् राजा बन्दिओंके स्तोत्रको सुनता है तैसे (नः उक्थेभिः शृणोतु) हमारी स्तोत्रमयी वाणियोंको सुनै ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
२उ ३ २ ३ १ २
शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥

ऋ०शंयुः । छ० गायत्री । दे० इन्द्रः । अथ तद्वो गायेति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे स्तोतारः ! वः यूयं सुते अभिषुते सोमे सति पुरुहूताय बहुभिर्यजमानैराहूताय सत्वने शत्रूणां सादयित्रे यद्वा, धनानां सवित्रे दात्रे इन्द्राय तत् स्तोत्रम् सचा सह संहता भूत्वा गाय गायत यत् स्तोत्रं शाकिने शक्तिमते इन्द्राय शं सुखकरं भवति । गवे न यथा गवे यवसं सुखकरं तद्वदित्यर्थः ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! (सुते) सोमका अभिषव होनेपर (वः) तुम (पुरुहूताय सत्वने) अनेकों यजमानों करकै आह्वान किये हुए शत्रुओंको छांटनेवाले वा धनोंका दान करनेवाले इन्द्रके अर्थ (तत् सचा गाय) उस स्तोत्रको इकट्ठे होकर गाओ (यत् गवे न) जो स्तोत्र जैसे गौको घुस सुखकारी होता है तैसे (शाकिने शम्) शक्तिमान् इन्द्रको सुखकारी होता है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १२
यत्सीमुपश्रवद्गिरः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वसुः वासयिता स इन्द्रः गोमतः बहुभिर्गोभिर्युक्तस्य वाजस्य अन्नस्य बलस्य वा दानं प्रदानं घ न खलु नियमते नियच्छति उपरतं करोति यद् यदि सीं अयम् गिरः अस्मदीया स्तुतीः उपश्रवद् उपशृणुयात् स्तोत्रश्रवणे सति सर्वदा ददातीत्यर्थः ॥ २ ॥

(वसुः) वह सर्वव्यापक इन्द्र (गोमतः वाजस्य दानम्) बहुतसी गौओंसे युक्त अन्नके दानको (न घ नियमते) किसीप्रकार भी नहीं रोकता है (यत् सीम्) यदि वह इन्द्र (गिरः उपश्रवम्) हमारी स्तुतियोंको सुन लेय ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २र ३ १ १३ ३ १ २र
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहागमत् ।
१ २ ३ १ २
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। कुवित्सस्य कुवित् बहुशः स्यति हिनस्तीति कुवित्सो नाम कश्चित् तस्य स्वभूतं गोमंतं बहुभिर्गोभिर्युक्तं व्रजं गोष्ठं दस्युहा दस्यूनामुपक्षयपितॄणां हंता इंद्रः प्रागमत् प्रकर्षेण गच्छति। हि यस्मात् शचीभिः आत्मीयैः कर्मभिः प्रजाभिर्वा नः अस्माकं ता गाः अप वरत् निगूढस्ता अपावृणोत् ॥ ३ ॥

(दस्युहा) भक्तोंको कष्ट देनेवाले दानवोंका नाशक (इंद्र कुवित्सस्य गोमंतं व्रजं प्रागमत्) बडी हिंसा करनेवाले दैत्यके गौओंसे भरे, गोठको बहुधा अपने वशमें करलेता है (हि) क्योंकि वह दैत्य (शचीभिः) नः गाः अपवरत्) अपने कर्म वा प्रजाओंके द्वारा हमारी गौओंको हरण करताहुआ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टादशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ ३ १ ३ ३ १ २र ३ २
इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
१ २ ३ २
समूढमस्य पाꣳसुले ॥ १ ॥

अथ द्वितीयखण्डे—अथेदं विष्णुरिति षडृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। विष्णुः त्रिविक्रमावतारधारी इदं प्रतीयमानं सर्वं जगदु-द्दिश्य विचक्रमे विशेषेण क्रमणं कृतवान् तदा त्रेधा त्रिभिः प्रकारैः

पदं नि दधे स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान्। अस्य विष्णोः पांसुले धूलियुक्ते पादस्थाने समूढम् इदं सर्वं जगत् सम्यगन्तर्भूतम् सेयमृग् यास्केनैवं व्याख्याता, विष्णुः विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा। यदिदं किञ्च तद् विक्रमते विष्णुस्त्रेधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः। समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभः। समूढमस्य पांसुलेऽप्यानेऽन्तरिक्षे इव पदं न दृश्यते इति।अपिवोपमार्थे स्यात् समूढस्य पांसुल इव पदं न दृश्यत पांसवः पादैः सूयन्त इति वा पन्नाः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति वा (नि० दै० ६, १९) इति

(विष्णुः) वामन अवतार धारण करनेवाले विष्णुने (इदम्) इस दीखतेहुए सब जगत्के उद्देश्यसे (विचक्रमे) विशेषरूपसे आक्रमण किया उस समय (त्रेधा) तीन प्रकारसे (पदम्) अपने चरणको (निदधे) स्थापन किया (अस्य) इस विष्णुके (पांसुले) धूलियुक्त चरणस्थानमें (समूढम्) यह सब जगत् भलेप्रकार अन्तर्गत होगया॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।

२ ३ १ २ ३ १ २

अतो धर्माणि धारयन् ॥ २ ॥

अथ तृतीया। अदाभ्यः केनापि हिंसितुमशक्यः दभेः ऋहलोर्ण्यत् (३, १, १२४), इति ण्यत, नञ् समासः अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, २) केनापि हिंसितुमशक्यः गोपाः सर्वस्य जगतः रक्षकः विष्णुः पृथिव्यादिस्थानेषु अत एतेषु त्रीणि पदा पदानि वि चक्रमे। किंकुर्वन्? धर्माणि अग्निहोत्रादीनि धारयन् शपः पित्वादनुदात्तत्वम् (३, १, ४) शतुश्च लसार्वधातुकस्वरेण (६, १, १६८) णिच एव स्वरः शिष्यते पोषयन्॥ २॥

(अदाभ्यः) कोई भी जिसकी हिंसा न कर सके ऐसे(गोपाः) सकल जगत्के रक्षक (विष्णुः) विष्णुभगवान्ने (अतः) पृथिवी आदि इन तीनों लोकोंमें (धर्माणि) अग्निहोत्र आदिको (धारयन्) पोषण करतेहुए (त्रीणि पदा) तीन चरणोंसे (विचक्रमे) आक्रमण किया॥ २॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

१ २ ३ २ ३ १ २

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे ऋत्विगादयः ! विष्णोः कर्माणि पालनादीनि पश्यत यतः यैः कर्मभिः व्रतानि अग्निहोत्रादीनि पस्पशे सर्वो यजमानः स्पृष्टवान् स्पश बाधनस्पर्शनयोः (भ्वा० उ०) लिटि द्विर्भावे, शर्पूर्वाः खयः (७, ३, ६१), इति पकारः शिष्यते सकारो लुप्यते, श्वर्नुत्सयो-माद्भिघातः (८, १, ६६) विष्णोरनुग्रहादनुतिष्ठतीत्यर्थः । तादृशः विष्णुः इन्द्रस्य युज्यः योग्यः युजिर्बाहुलकात् क्यप् (१, १, १२१) कित्वाद् गुणाभावः (१, १, ५), क्यपः पित्वात् अनुदात्तत्वम् (३,१,४ धातुस्वरः (६, १, १६२) अनुकूलः सखा भवति विष्णोरिन्द्रानुकूल्यं च त्वष्टा हतपुत्रः इत्यनुवाके अथवैतर्हि विष्णुरित्यादि बहुना प्रपञ्चेन तैत्तिरीया आमनन्ति ॥ ३ ॥

हे ऋत्विक् आदि पुरुषों ! (विष्णोः) विष्णुके (कर्माणि) पालन आदि कर्मोंको (पश्यत) देखो (यतः) जिन विष्णुके कर्मोंसे (व्रतानि) अग्नि होत्रादि कर्मोंको (पस्पशे) सकल यजमान करते हैं वह विष्णु भगवान् (इन्द्रस्य) इन्द्रके (युज्यः सखा) अनुकूल सखा हैं ॥ ३ ॥

१ २र ३ २ ३ १ २र ३ १ २

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः ।

३ २ ३ ३ १ १ २

दिवीव चक्षुराततम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । सूरयः विद्वांस ऋत्विगादयः विष्णोः सम्बन्धि परमम् उत्कृष्टं तच्छास्त्रप्रसिद्धं पदं स्थानं शास्त्रदृष्ट्या सदा सर्वैकान्य (५, ६, १५), इति दाप्रत्ययः, सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि (५, ३, ६), इति सर्वशब्दस्य सभावः व्यत्ययेनाद्युदात्तत्वम् सर्वदेत्यर्थः पश्यन्ति । तत्र दृष्टान्तः, दिवि इव ऊडिदम् (६, १, १७१) इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम्, इत्यनेन विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च (२, ४, ७१ वा०), इति, तत्रैव शिष्यते आकाशे यथा आततम् तनोतेः कर्मणि क्तः यस्य विभाषा (७, २, १५), इति इट्प्रतिषेधःअनुदात्तोपदेश (६,४, ३७), इत्यादिना नलोपः, कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वे (६, २, १३९) प्राप्ते गतिरनन्तरः (६, २, ४९), इति गतेरुदात्तत्वम् सर्वतःप्रसृतं चक्षुर्विरोधाभावेन विशदं पश्यति तद्वत् ॥ ४ ॥

(सूरयः) विद्वान् (विष्णोः) विष्णुके (परमम) श्रेष्ठ (तत्) उस शास्त्रोंमें प्रसिद्ध (पदम्) स्थानोंको शास्त्रदृष्टिसे (सदा पश्यन्ति) सर्वदा देखते हैं (दिवि इव) जैसे आकाशमें (आततम) सब ओर को फैला हुआ (चक्षुः) नेत्र (पश्यंति) विशदरूपसे देखता है ॥४॥

१ २र ३ १ २ ३ २ २ १ २
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाꣳसः समिन्धते ।
२ ३ १ २३२ ३२
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ५ ॥

अथ पञ्चमी । पूर्वोक्तं विष्णोः यत् परमं पदम् अस्ति तत् पदम् विप्रासः आज्जसेरसुक् (७, १, ५०) मेधाविनः समिन्धते सम्यग् दीपयन्ति । कीदृशाः विपन्यवः स्तुत्यर्थस्य पनेर्बाहुलक औणादिको युप्रत्ययः तत्र प्रत्ययस्वरः (३, १, ३) विशेषेण स्तोतारः जागृवांसः जागृ निद्राक्षये (अदा० प०) लिटः क्वसुः क्र्यादिनियमात् प्राप्तस्येटो वस्वेकाजाद्घसाम् (७, २, ६७) इति नियमान्निवृत्तिः शब्दार्थयोः प्रमादराहित्येन जागरूका इत्यर्थः ॥ ५ ॥

(विष्णोः) विष्णुका (यत्) जो (परमं पदम्) परम पद है (तत्) उस पदको (विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः समिन्धते) विशेषरूपसे स्तुति करनेवाले प्रमादरहित विद्वान् ऋत्विज भलेप्रकार दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ १ ३ २
अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥ ६ ॥

अथ षष्ठी । विष्णुः परमेश्वरः पृथिव्याः अस्मात् भूप्रदेशात् अधि सानवि समुच्छ्रिते अधिके देशे स्वर्गादिलोके विचक्रमे विविधं पादक्रमणं कृतवान् विशेषेण वर्त्तते अतः अस्मात् पृथिवीदेशात् नः अस्मान् देवाः विष्णुमुखाः अवन्तु पापाच्छत्रोर्वा रक्षन्तु इत्यर्थः ॥ ६ ॥

(विष्णुः) परमेश्वर (पृथिव्याः) इस भूतलसे (अधिसानवि) ऊँचे (यतः) स्वर्गादि लोकमें (विचक्रमे) नानाप्रकारसे चरणको रखता हुआ (अतः) इस भूतलप्रदेशमें (नः) हमें (देवाः) विष्णु आदि देवता (अवन्तु) पापोंसे वा शत्रुसे रक्षा करें ॥ ६ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २उ ३ १ २र
मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
३ १ २ ३ १ २ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २र
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः। छं० बृहती। दे० इंद्रः। अथ मोषु त्वेति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे इंद्र त्वा त्वाम् वाघतश्च न ऋत्विजोऽप्येते अस्मद् अस्मत्तः आरे दूरे मानिरीरमन् न नितराम् रमयन्तु। अतस्त्वम् आरात्ताद्वा दूरेऽपि वर्त्तमानः अस्मदीयं सधमादं यज्ञम् आ गहि आगच्छ इह वा अत्रापि वा सन् विद्यमानः उप श्रुधि अस्मदीयं स्तोत्रम् उपश्रृणु ॥ १ ॥

हे इंद्र (त्वा) तुम्हें (वाघतश्च न) यह ऋत्विज भी (अस्मान् आरे) हमसे दूर (मा नि रीरमन्) अत्यन्त रमण न करावैं इस कारण तुम (आरात्ताद्वा) दूर वर्त्तमान होकर भी (नः सधमादं आ गहि) हमारे यज्ञमें आइये (इह वा सन्) और यहां विद्यमान होकर भी (उपश्रुधि) हमारे स्तोत्रको सुनो ॥ १ ॥

३१ २र ३ २ २ ३२उ ३ २ ३ २उ ३
इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष
१ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
आसते। इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे
२ध २ १ २
न पादमा दधुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे इंद्र ते त्वदर्थं सुते अभिषुते सोमे ब्रह्मकृतः स्तोत्रकृतः ऋत्विजः मधौ न मधुनीव मक्षः मक्षिकः सचा सह आसते उपविशन्ति। अथ परोक्षस्तुतिः वसूयवः धनकामाः जरितारः स्तोतारः कामम् इष्टम् इन्द्रे रथे पादमिव आ दधुः समर्पयन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

हे इन्द्र (ते सुते) तुम्हारे लिये सोमका संस्कार होने पर (ब्रह्मकृतः) स्तोत्र पढनेवाले ऋत्विज (मधौ मक्षः न) मधुमें मक्षिकाओं की समान (सचा आसते) साथ बैठते हैं (वसूयवः जरितारः) धन चाहने वाले स्तुति कर्त्ता (इष्टम्) अपनी अभिलाषाको (रथे पादं न) रथमें चरणकी समान (आदधुः) समर्पण करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पूर्वीऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत॥१॥

ऋ० आयुः। छं० प्रगाथः। दे० सोमः। अथास्तावीति प्रगाथात्मकं

तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । स इन्द्रः अस्तावि अस्मदीयैः स्तोत्रैः ऋत्विग्भिर्वा स्तूयते इन्द्राय पूर्व्यम् अनादित्वात् पूर्वस्मिन् भवं मन्म मननीयम् ब्रह्म स्तोत्रं वेदं वा वोचत । हे ऋत्विजः ! यूयं पठत किञ्च पूर्वीः पूर्वकालीनाः ऋतस्य यज्ञस्य सम्बन्धिन्यः बृहतीः बृहतीच्छन्दस्काः बृहत्सामानि वा अनूषत स्तुवत पठतेत्यर्थः । स्तोतुः मम मेधाः एवंविधाः प्रज्ञाविशेषाः असृक्षत ऋत्विग्भिः विसृज्यताम् यद्वा ईश्वरेण ॥ १ ॥

(अस्तावि) वह इन्द्र हमारे स्तोत्रोंसे स्तुति किया जाता है, हे ऋत्विजो ! (इन्द्राय) इन्द्रके अर्थ (पूर्व्यं मन्म ब्रह्म वोचत) पुरातन और मनन करने योग्य स्तोत्रको पढ़ो (पूर्वी ऋतस्य बृहतीः अनूषत) पूर्वकालके यज्ञ सम्बंधी बृहती छन्द वाले बृहत्सामोंको पढ़ो (स्तोतुः मेधाः असृक्षत) मुझ स्तोताकी ऐसी ही बुद्धियोंको ईश्वर देय ॥ १ ॥

२३ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २३ ३
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु
१ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
सूर्यम् । सᳬँ शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः
२ ३ १ २
सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया ! स इंद्रः बृहतीः महान्ति रायः धनानि अन्नानि वा समधूनुत मां प्रापयत्वित्यर्थः धूञ् कम्पने (क्र्या० उ०) धातूनामनेकार्थत्वात् । किञ्च क्षोणीः भूमीः सम् अधूनुत मां सम्यक् प्रापयन्तु अपि च सूर्य्यम् सूर्य्यसदृशी दीप्तिं सम् अधूनुत । शुचयः निर्मलाः शुक्रासः शुक्रमहाः इन्द्रं सन् अमन्दिषुः हर्षयन्ति । किञ्च गवाशिरः गोश्रयणाः सहिताः इंद्रं सममन्दिषुः हृष्टवंत इत्यर्थः ॥ २ ॥

(इंद्रः) इंद्र (बृहतीः रायः) बहुतसे धन (समधूनुतं) मुझे देय (क्षोणीः सम्) भूमिष मुझे भले प्रकार देवें (सूर्यं सम्) सूर्य केसी दीप्ति मुझे देय (शुचयः शुक्रासः इंद्रम् सम्) निर्मल सोम इन्द्रको प्राप्त होते हैं (गवाशिरः सोमाः अमन्दिषुः) गोदुग्ध सहित सोमरस इंद्रको प्रसन्न करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ २र
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥ १ ॥

ऋ०अम्बरीषः ऋजिश्वाः वा। छ०अनुष्टुप्। दे०सोमः। अथेन्द्राय सोमपातवे इति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे सोम! वृत्रघ्ने वृत्रस्य हन्त्रे इंद्राय षष्ठ्यर्थे चतुर्थी (२, ३, ६२ वा०) इंद्रस्य पातवे पानार्थं परि षिच्यसे परितः पात्रेषु सिच्यसे वसतीवरीभिर्वा किञ्च दक्षिणावते ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा दानेन तद्वते वीराय वीर्य्ययुक्तायेन्द्रार्थं हवींषि दातुं सद्मासदे यज्ञगृहे सीदते नरे मनुष्याय यजमानाय तस्मै फलप्रदानार्थं परिषिच्यसे ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम (वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे) वृत्रासुरके नाशक इंद्र के पीनेके लिये (परिषिच्यसे) तू पात्रोंमें भराजाता है (दक्षिणावते) ऋत्विजोंको देनेकी दक्षिणावाले (वीराय) वीर इंद्रके अर्थ हवि देने का (सद्मासदे) यज्ञशालामें स्थित (नरे) यजमानको फल देनेके लिये सींचाजाता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तँ सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः।
३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अश्याम वाजगन्ध्यँ सनेम वाजपस्त्यम् ॥२॥

अथ द्वितीया। हे सखायः! स्तोतारः! सूरयः प्रज्ञावन्तः यूयं वयञ्च यजमानाः पुरूरुचं बहुदीप्तिं वाजगन्ध्यं बलकरसाधुगन्धोपेतं तत्र भवं सोमम् अश्याम अश्नवाम पिबेम। किञ्च वाजपस्त्यम् अन्नयुक्तगृह-सहितम् यद्वा, बलकरं सोमं सनेम सम्भजेमहि सोमेन बलान्नगृहा-दीनि भवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

(सखायः) हे स्तोताओ ! (सूरयः यूयम्) बुद्धिमान् तुम (वयं च) और हम यजमान भी (तं पुरूरुचं वाजगन्ध्यं अश्याम) उस बड़ी दीप्तिवाले और बलकारी श्रेष्ठ सुगन्धिमय वस्तुओंसे प्रस्तुत हुए सोमरसको पियें (वाजपस्त्यं सनेम) बलकारी सोमको पियें ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २र
परि त्यँ हर्यतँ हरिं० ॥ ३ ॥

अथ तृतीया।–इतीयमृक् पूर्वमेव (छ० आ० ६, २, १,८)=उ०आ० ५, २, १८, १, व्याख्याता ॥ ३ ॥

इसकी व्याख्या पवमानपर्वके ५ वें अध्यायके८वें खण्डमें होचुकी३

१ २र ३ १ २र
कस्तमिन्द्र त्वा वसो मर्त्यो० ॥ १ ॥

ऋ० वसिष्ठः । छ० बृहती । दे० इन्द्रः । अथ कस्तमिन्द्रेति प्रगाथात्मकं पञ्चचम सूक्तम्, तत्र प्रथमा । कस्तम् इत्यृचः प्रतीकम् तस्यादितो व्याख्यानमत्रत्र द्रष्टव्यं ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या ऐन्द्रपर्वके ३ अध्यायके ५ वें खण्डमें हो चुकी । १

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददाति प्रिया
२र २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
वसु । तव प्रणीती हर्यश्च सूरिभिर्विश्वा तरेम
३ २
दुरिता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हेइन्द्र ! मघोनः धनवतः तव त्वदर्थं प्रिया प्रियाणि वसु वसूनि हविर्लक्षणानि धनानि ये जनाः ददति प्रयच्छन्ति तान् जनान् वृत्रहत्येषु यज्ञेषु संग्रामेषु वा चोदय प्रेरय । हे हर्य्यश्व ! हरिनामकाश्ववन्निन्द्र ! तव प्रणीती प्रणीत्या प्रणयनेन सूरिभिः स्तोतृभिः पुत्रादिभिः सार्द्धम् विश्वानि दुरिता दुरितानि तरेम तीर्णा भवेम ॥२॥

हे इन्द्र (मघोनः तव प्रिया वसु) धन वाले तुम्हारेअर्थ हवि रूप प्रिय धनोंको (ये ददति) जो पुरुष अर्पण करते हैं उनको (वृत्रहत्येषु चोदय) यज्ञ और संग्रामोंमें प्रेरणा करो (हर्यश्व) हे पापहारी अश्ववाले इन्द्र ! (तव प्रणीती) तुम्हारी प्रेरणासे (सूरिभिः) स्तोता और पुत्रादिकों सहित (विश्वा दुरिता तरेम) सकल दुःखोंके पारहोजायँ २

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टदशाध्यायस्य द्वितीय खण्डः समाप्तः

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
एदु मधोर्मदिन्तरꣳ सिञ्चाध्वर्य्यो अन्धसः ।
३ २ ३ १ २र ३ १ २
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामनाः । छ० उष्णिक् । दे० सोमः । अथ तृतीयखण्डे एदु मधोरिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अध्वर्यो ! अध्वरस्य नेतः ! ऋत्विक् ! मधोः मदकरस्य अन्धसः सोमलक्षणस्यान्नस्य मादयितृतम सोमरसमेव आ सिञ्च इन्द्रार्थमाभिमुख्येन क्षर । इत् उ इत्यवधारणे । वीरः समर्थः सदावृधः सर्वदा हविर्भिर्वर्द्धनीयः यद्वा, सर्वदा स्वबलस्य वर्द्धकः अयम् एव इंद्रः स्तवते हि स्तोत्रशस्त्रादिभिः

स्तूयते खलु। अतः कारणात् स्तुतायेन्द्राय सोमो दातव्य इति शेषः। तस्मादासिञ्चेति पूर्वेण सम्बन्धः॥ १॥

(अध्वर्यो) हे अध्वर्यु (मद्यो अन्धसः) मदकारी सोमरूप अन्नके (मादेन्तरं इत् आसिञ्च) अत्यन्त आनन्ददायक सोमरसको अवश्य ही इन्द्रके सन्मुख वरसाओ (वीरः सदावृधः एव हि स्तवते) समर्थ और सदा बलका बढ़ानेवाला यह इंद्र ही स्तुति किया जाता है॥ १॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उदानंश शवसा न भन्दना॥ २॥

अथ द्वितीया। हे हरीणां स्थातः। हरिनामकाश्वानामधिष्ठातः यद्वा हरिनामकैरश्वैः प्रापयितः! इन्द्र! ते त्वदीयां पूर्व्यस्तुतिं पूर्वैश्चिरन्तनैर्ऋषिभिः कृतां स्तुतिम् उपलक्षणम् इदानीन्तनैः क्रियमाणामपि स्तुतिं न किः न कश्चित् शवसा बलेन उदानंश सम्यग् व्याप्नोति अशू व्याप्तौ (स्वा० आ०) अस्माल्लिटि अश्नोतेश्च (७, ४, ७२) इति नुट् छान्दसो द्वितीयो नुडागमः कश्चिन्नातिक्रामतीत्यर्थः। किञ्च भन्दना सर्वैः प्रार्थनीयत्वात् पूजनीयेन धनेन स्तुत्या वा त्वदीयां स्तुतिं न कश्चिदतिक्रामति त्वत्तो बलवान् धनी स्तुत्यो वा अन्यो नास्तीत्यर्थः

(हरीणां स्थातः इंद्र) हे पापहारी अश्वोंके स्वामी इंद्र (ते पूर्व्यस्तुतिम्) तुम्हारी पुरातन ऋषियोंकी कीहुई और इस समय भी कीजाती हुई स्तुति (शवसा न किः उदानंश) कोई भी अपने बलसे नहीं पा सकता (भन्दना न) सबके पूजनीय तुम्हारे तेज वा धनको भी कोई नहीं पासकता अर्थात् तुम्हारी समान बलवान् तेजस्वी वा धनी कोई नहीं है॥ २॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ १ २
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
१ २ ३ १ २ ३ १ २
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्॥ ३॥

अथ तृतीया। अप्रायुभिः कर्मसु अप्रमाद्यन्मनुष्ययुक्तैः अथवा अप्रमत्ता एकत्रैस्थित्वैव कर्म कुर्वन्ति कर्म प्रारभ्य नान्यं देशं गच्छन्तीत्यर्थः एवंविधमनुष्ययुक्तैः यज्ञेभिः यज्ञैः एतादृशमनुष्यैर्यज्ञैश्च वावृधेन्यं

वर्द्धनीयं वाजानाम् अन्नानां पतिं स्वामिनं वः यष्टृयष्टव्यसम्बन्धेन युष्मदीयं तं तादृशम् इन्द्रम् श्रवस्यवः वयमन्नकामाः संतः अहूमहि आह्वयामः ह्वयतेर्लुङि बहुलञ्छन्दसि (६, १, ३४) इति सम्प्रसारणम ३

(श्रवस्यवः) अपने लिये अन्न चाहनेवाले हम (वाजानां पतिम्) बलोंके वा अन्नोंके स्वामी (अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यम्) कर्ममें प्रमादरहित वा कर्म करते समय मध्यमें उठकर कहीं न जानेवाले मनुष्योंसे युक्त यज्ञों करके बढ़ाने याग्य (वः तम्) तुम्हारे उस इन्द्र को (अहूमहि) आवाहन करते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।

३ १ ३ १ २

देवत्रा हव्यमूहिषे ॥ १ ॥

ऋ० सौभरिः छं० ककुप् दे० अग्निः । अथ तं गूर्द्धयेति प्रगाथात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे स्तोतः ! तं प्रसिद्धमग्निं गूर्द्धय स्तुहि गूर्द्धयतिः स्तुतिकर्मा (निघ० ३, १४, ५) कीदृशम् स्वर्णरं सर्वस्य नेतारं सर्वैर्यजमानैः नेतव्यं वा अथवा स्वर्गं प्रति हविषां नेतारं देवासः दीव्यंति स्तुवन्तीति देवा ऋत्विजः देवं दानादिगुणयुक्तम् अरतिम् अर्यं स्वामिनं यद्वा अभिप्राप्तव्यं द्रव्यं दधन्विरे धन्वन्ति गच्छंति स्तुत्यादिभिः प्राप्नुवंति धविर्गत्यर्थः (भ्वा० प०) अथ प्रत्यक्षस्तुतिः देवत्रा देवेषु मध्ये यद्वा देवमनुष्य (५, ३, १० वा०) इत्यादिना द्वितीयार्थे त्राप्रत्ययः देवानित्यर्थः हव्यं पुरोडाशादिलक्षणं हविः आ आभिमुख्ये न ऊहिषे हे अग्ने ! अभितः प्रापयसि वहेर्लिटि यजादित्वात् सम्प्रसारणम् । ऊहिषे ऊहिरे इति पाठौ ॥ १ ॥

हे स्तोतः (स्वर्णरं तं गूर्धय) स्वर्गमें देवताओंको हवि पहुँचाने वाले, उस प्रसिद्धअग्निकी स्तुति करो (देवासः देवं अरतिं दधन्विरे) स्तुति करनेवाले ऋत्विज दानादि गुणयुक्त और प्राप्त होनेयोग्य धन को पाते हैं । अग्ने तुम (हव्यं देवत्रा ऊहिषे) पुरोडाश आदि हविको देवताओंमें सब ओरसे पहुँचाते हो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यंतु-

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

रम् । अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय

३ २
पूर्व्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। ऋषिरात्मानं सम्बोध्य स्तुतौ प्रेरयति हे विप्र मेधाविन् सोभरे एतत्सत्रशक ऋते अध्वराय यागार्थम् ईम् अग्निं प्रेडिष्व प्रकर्षेण स्तुहि। कीदृशम् विभृतराति व्याप्तधनं प्रभृतदानं वा चित्रशोचिषं चायनीयतेजस्कं विविधदीप्तिकं वा सोमस्य सोमसाध्यस्य अस्य मेध्यस्य यंतुरं नियन्तारं पूर्व्यं चिरन्तनमिति ॥ २ ॥

(सोभरे विप्र) हे हवि देकर देवताओंको तृप्त करनेवाले ऋषे (विभृत राति चित्रशोचिषम्) बहुतसा दान देनेवाले और विचित्र किरणों वाले (सोमस्य अस्य यंतुरम्) सोम है साधन जिसका ऐसे इस यज्ञके पूर्णकर्त्ता (पूर्व्यं अग्निं अध्वराय ई ईडिष्व) पुरातन अग्निकी यज्ञके निमित्त अवश्य ही स्तुति करो ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।
२ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २ ३ २ ३ १ २
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे

ऋ० भौम अत्रिः। छ० बृहती। दे० इन्द्रः। अथा सोम स्वान इति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे सोम! अद्रिभिः ग्रावभिः स्वानः अभिषूयमाणः त्वम् अव्यया अविमयानि वाराणि बालानि दशापवित्राणि तिरः कुर्वन् व्यवधायकानि कुर्वाणः सन् आ पवस्व इति शेषः। हरिः हरितवर्णः स सोमः चम्वोः अधिषवणफलकयोः उपरि स्थिते कलशे विशत् प्रविशति। तत्र दृष्टांतः, जनो न यथा जनः पुरि पुरे प्रविशति स त्वं वनेषु काष्ठनिर्मितेषु पात्रेषु वसतीवरीषु वा सदः स्थानं दध्रिषे दध्रिषः; इति पाठौ ॥ १ ॥

(सोम) हे सोम! (अद्रिभिः स्वानः) पाषाणोंसे अभिषव किया जाता हुआ तू (अव्यया वाराणि तिरः आ) भेड़की ऊनके दशापवित्र में को छनता हुआ बरस (हरिः चम्वोः विशत्) हरे वर्णको सोम अधिषवणके फलकोंके ऊपर कलशमें प्रवेश करता है (पुरि जनः न) जैसे कि-नगरमें कोई पुरुष प्रवेश करता है ऐसा तू (वनेषु सदः दध्रिषे) काठके वसतीवरी पात्रोंमें स्थानको करता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३क २र ३ २उ ३ १
स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वांत्सप्तिर्न-

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
वाजयुः । अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो
१ २ ३ १ २
विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। वाजयुः अन्नकामः अण्वानि अणूनि सूक्ष्माणि मेष्णः मेष्या अवेः रोमाणि चित्राणि तिरः कुर्वन् सः सोमः मामृजे परिशोध्यते अलंक्रियते वा। तत्र दृष्टान्तः, मीढ्वान् सेचनसमर्थः सप्तिः न अश्व इव अश्वेन यथा संग्रामोऽलंक्रियति तद्वत्। कीदृशः? अनुमाद्यः अनुमोदनीयः सर्वैः पवमानः मनीषिभिर्ऋत्विग्भिः पूयमानः तथा ऋक्वभिः छन्दसि वनिपौ (५, २, १२२ वा०), इति वनिप्। स्तुतिमद्भिर्विप्रैर्मेधाविभिः अभिष्टुतः मृज्यते ॥ २ ॥

(वाजयुः) बल वा अन्न चाहनेवाला (मीढ्वान् सप्तिः न अनुमाद्यः) वीर्य सींचनेवाले घोड़ेकी समान हर्षदायक (सः पवमानः सोमः) वह शोधन कियाजाता हुआ सोम (मेष्या अण्वानि तिरः) भेड़की ऊनके पवित्रमेंको छनता हुआ (ऋक्वभिः विप्रेभिः मामृजे) स्तुति करनेवाले ऋत्विजों करके स्तुति किया जाताहुआ शुद्ध होता है

३ १ १ ३ १ २र ३ २ ३ १ ३
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
१ २ ३ २ २र ३ २ ३ १ ३ १ ३ ३ २
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥

ऋ० कलिः छ।० बृहती। दे० इंद्रः। अथ वयमेनमिदाह्य इति प्रगाथात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। वयं यजमानाः एनं इन्द्रम् वज्रिणं इदा इदानीं ह्यः अतीतेऽह्नि इह अत्र अहर्गणे अपीपेम अप्याययाम सोमेन तस्मा उ तस्मै एव अद्य अत्र सवने संग्रामार्थं सुपाम् सुलुगित्यादिना शे आदेशः सुतम् अभिषुतं सोमं भर आहर नूनम् इदानीं श्रुते स्तोत्रे श्रुते सति आ भूषत आभवतु अध्वर्य्वादीनागच्छतु।

(वयं एनं वज्रिणम्) हम इस वज्रधारी इंद्रको (इदा ह्यः इह) इस समयके और वीते हुए इन दिनोंमें (अपीपेम) सोमसे तृप्त करते है (तस्मा उ) उस इंद्रके अर्थ ही (इदा) इस यज्ञमें (सुतं भर) अभिषव करतेहुए सोमको अर्पण करो (नूनं श्रुते आभूषत) इससमय स्तोत्रका श्रवण होने पर अध्वर्यु आदिके समीप आवें ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

२उ २ १ २ ३ २उ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ २
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया।

अथ द्वितीया । वृकश्चित् स्तेनोऽपि वारणः वारयिता सर्वस्य सन्नपि उरामथिः शत्रूणां मार्गे गच्छतां मथिता सन्नपि अस्य इन्द्रस्य वयुनेषु मार्गेषु प्रज्ञानेषु आ भूषति आनुकूल्यमेव भजते अतीवहिंस्रोऽपि इन्द्रस्यानुकूलो भवतीत्यर्थः । यद्वा,अस्येति कर्मणि षष्ठी(३,१,८५) असुमिन्द्रम् उक्तरूपः वृकोऽपि वयुनेषु स्तोत्रेष्वाभूषति हे इन्द्र ! स त्वमिवं नः अस्मदीयं सोमं स्तोत्रं च जुजुषाणः सेवमानः सन् चित्रया चायनीयया नानाविधफलरूपया धिया युक्तः सन् प्रागहि आगच्छ २

(अस्य वयुनेषु) इस इंद्रके मार्गोंमें वा प्रज्ञानोंमें (उरामथिः वारणः वृकश्चित्) मार्ग में जानेवालोंको कष्ट देनेवाला और सबको रोकनेवाला लुटेरा भी (आभूषति) अनुकूल होजाता है (स इन्द्रः) ऐसे शक्तिमान् हे इन्द्र ! (नः इमं स्तोमं जुजुषाणः) हमारे इस स्तोत्र का सेवन करते हुए (चित्रया धिया प्रागहि) नानाप्रकारके फलरूप बुद्धिसे युक्त होकर आइये ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३२उ ३ १ २
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परिवाजेषु भूषथः ।
१ २ ३ २ ३क२र
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छः गायत्री । दे० इन्द्राग्नी । अथेन्द्राग्नी रोचनेति तृचात्मकं पञ्चमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इंद्राग्नी ! दिवः रोचना स्वर्गस्य रोचकौ प्रकाशकौ युवां वाजेषु संग्रामेषु परि भूषथः परितः सर्वतः अलंकृतौ भवथः । शत्रून् पराजित्य सर्वतो विजयमानौ वर्त्तेथे वां युवयोः वीर्य्यं सामर्थ्यमेव तत् तादृशं संग्रामविजयं प्रचेति प्रकर्षेण ज्ञापयति यद्वा युवां वाजेषु संग्रामेषु परिभूषथः शत्रून् परिभवथः शेषं पूर्ववत् ॥ १ ॥

(इन्द्राग्नी) हे इंद्र अग्नि देवताओ ! (दिवः रोचना) स्वर्गके प्रकाशक तुम (वाजेषु परिभूषथः) संग्रामोंमें सबका तिरस्कार करते हो (वां वीर्यं तत् प्रचेति) तुम्हारी सामर्थ्य ही उन संग्रामोंमें विजय को ज्ञापित करती है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी अपसस्परि० ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २
इन्द्राग्नी तविषाणि वां० ॥ ३ ॥

अथेति द्वितीया, अथेति तृतीया । तयोर्ऋचोः प्रतीकोतयोर्व्याख्यानमन्यत्र द्रष्टव्यम् ॥ २-३ ॥

इसकी व्याख्या उत्तरार्चिक अध्याय १६ खण्ड १ में होचुकी ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या उत्त० अध्याय १६ खण्ड १ में होचुकी ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २र
क ईं वेद सुते सचा० ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः मेध्यातिथिः वा । छ०बृहती। दे०इंद्रः । अथ क ईं वेदेति तृचात्मकं षष्ठं सूक्तम् तत्र प्रथमायाः इति ऋचः प्रतीकम् । तस्याद्वितो व्याख्यानमन्यत्र द्रष्टव्यम् ॥ १ ॥

इसकी व्याख्या ऐन्द्रपर्व अध्याय ३ खण्ड ७ में होचुकी ॥ १ ॥

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्-
२ ३ १ २
श्चरस्योजसा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । मृगः शत्रूणामन्वेषकः वारणः गजः दाना मदजलानीव पुरुत्रा बहुषु यज्ञेषु च रथं चरणशीलं मदं दधे इन्द्रो धारयति । अथ प्रत्यक्षस्तुतिः हे इन्द्र ! त्वा त्वां न किः नियमत् न कश्चिन्नियच्छति सुते अभिषुते सोमे आ गमः आगच्छ । महान् पूज्यः नः त्वम् ओजसा बलेन सर्वतः चरसि गच्छसि ॥ २ ॥

(मृगः) शत्रओंको खोजनेवाला (वारणः दानः न) जैसे हाथी मदके जलोंको धारण करता है तैसे (पुरुत्रा च रथं दधे) अनेकों यज्ञोंमें विचरणशील मदको धारण करता है (त्वा नकिः नियमत्) तुम्हें कोई भी अपने वशमें नहीं करसकता (सुते आगमः) हे इन्द्र ! सोमके अभिषुत होने पर आइये (नः महान्) हमारे पूजनीय तुम (ओजसा चरसि) अपने बलसे सर्वत्र विचरते हो ॥ २ ॥

२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय सꣳस्कृतः ।

१ २ ३ २३ १ २ ३ २३ २३ १ २ ३ १ २
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ३

अथ तृतीया। यः उग्रः उद्गीर्णबलः ओजस्वी वा सन् भवन् अनिष्टृतः शत्रुभिरविस्तीर्णः स्थिरः अचलः रणाय युद्धाय संस्कृतः शस्त्रैरलंकृतः सोमैर्वा संस्कृतः स इंद्रः मघवा धनवान् यदि स्तोतुः हवम् आह्वानं शृण्वन् शृणोति तर्ह्यन्यत्र न योषति न गच्छति किंतु आ गमत् तत्रैवागच्छति ॥ ३ ॥

(यः उग्रः सन) जो उद्गीर्ण बलवाला होकर (अनिष्टृतः) शत्रुओं से पार न पाया हुआ (स्थिरः) अचल (रणाय संस्कृतः) युद्धके लिये शस्त्रोंसे भूषित हुआ (मघवा इंद्रः) धनवान् इन्द्र (यदि स्तोतुः हवं शृण्वत्) यदि स्तोताके आह्वानको सुनलेता है तो (न योषति) अन्यत्र नहीं जाता है (आगमत्) तहाँ ही आता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिकेऽष्टादशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
३ १ २र ३ १ २
अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥

ऋ० निध्रुविः। छ० गायत्री। दे० सोमः। अथ चतुर्थखण्डे, पवमाना असृक्षतेति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा॥शुक्रासः उज्ज्वलाः इन्दवः दीप्ताः पवमानाः पूयमानाः सोमा विश्वा विश्वानि काव्या काव्यानि स्तोत्राणि अभि असृक्षत ऋत्विग्भिरभितः सृज्यन्ते ॥ १ ॥

(शुक्रासः इन्दवः)उज्ज्वल और दिपते हुए (पवमानाः सोमाः) पूयमान सोम (विश्वानि काव्या अभि असृक्षत) सकल वैदिक स्तोत्रोंके साथ सुसिद्ध कियेजाते हैं ॥ १ ॥

१ २ ३२उ २ १ २
पवमाना दिवस्पर्य्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
३ २उ ३ १ २
पृथिव्या अधि सानवि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। पवमानाः पूयमानाः सोमाः दिवः द्युलोकादन्तरिक्षाच्च पृथिव्याः भूम्याः अधि सानवि समुच्छ्रिते देशे देवयजने पर्य्यसृक्षत सृज्यन्ते ॥ २ ॥

(पवमानः) सोम(दिवः)अन्तरिक्षसे (पृथिव्याः अधिसानवि) भूमिके ऊँचे स्थान यज्ञवेदीमें (पर्यसृक्षत) सुसिद्ध होते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २

घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । आशवः शीघ्राः शुभ्राः शोभनाः पवमानासः पवमानाः इन्दवः दीप्ताः सोमाः विश्वाः सर्वान् द्विषः द्वेष्टॄन् शत्रून् अप घ्नन्तः मारयन्तः असृग्रम् सृज्यन्ते ॥ ३ ॥

(आशवः शुभ्राः) वेगवान् और स्वेतवर्णके (पवमानासः इंदवः) पूयमान सोम (विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः असृग्रम्) सकल द्वेषियोंका नाश करते हुए सुसिद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

३ १ २२ १ २ ३ २ ३ २ २

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता ।

३ १ २ ३ १ २

इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः । छ० गायत्री । दे०इंद्राग्नी । अथ तोशावृत्रहणेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । तोशा शत्रूणां बाधकौ वृत्रहणा वृत्रस्य पापस्य हन्तारौ सजित्वाना समानजेतारौ परस्परापेक्षया जयशीलौ अपराजिता केनाप्यतिरस्कृतौ वाजसातमा अन्नस्य अतिशयेन दातारौ इंद्राग्नी युवां हुवे इह कर्मणि सोमपानार्थमहमाह्वयामि ॥ १ ॥

(तोषा वृत्रहणा)शत्रुओंको बाधा देनेवाले और पापके नाशकर्त्ता (सजित्वाना अपराजिता) समान विजय पानेवाले और किसीसे तिरस्कृत न होनेवाले (वाजसातमा इंद्राग्नी हुवे) अन्नके परमदाता इंद्र और अग्नि देवताको इस कर्ममेंसोमपानके लिये आह्वान करता हूं१

१ २ ३ १ २

प्र वामर्चन्त्युक्थिनः० ॥ २ ॥

इसकी व्याख्या उत्तरार्चिक अध्याय १६ खंड १ में होचुकी ॥२॥

१ २ ३ १ २र

इन्द्राग्नी नवतिं पुरः ॥ ३ ॥

अथ प्रवामर्चन्तु, इति द्वितीया । अथ इंद्राग्नी नवतिम्पुरा इति

तृतीया॥इत्येतावृचोः प्रतीके तयोरादितो व्याख्यानमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् ३

इसकी व्याख्या उत्त० अ० १६ खंड १ में होचुकी ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
उप त्वा रणवसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
१ २ २ २ ३ १ २
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः । छ० गायत्री । दे० वैश्वानरः । अथोपत्वा रणवसन्दृशमिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्,तत्र प्रथमा । हे सहस्कृत ! सहसा बलेनोत्पन्न ! प्रयस्वन्तः हविर्लक्षणान्नवन्तो वयं रणवसन्दृशं रमणीयं संदर्शनम् स्तोतव्यं संदर्शनं वा त्वा त्वाम् उप प्रति गिरः स्तुतीः संसृज्महे विसृजाम उच्चारयाम इत्यर्थः ॥ १ ॥

(सहस्कृत अग्ने) हे बलसे उत्पन्न हुए अग्निदेव ! (प्रयस्वन्तः) हविरूप अन्नको लिये हुए हम (रणवसंदृशं त्वा उप) रमणीय और दर्शनीय आपके समीप(गिरः ससृज्महे) स्तुतियोंका उच्चारण करते हैं

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
२ ३ १ २
अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अग्ने ! हिरण्यसंदृशः हिरण्यवद्रमणीयतेजसः हिरण्यवद्रोचमानतेजसो वा घृणेः दीप्तस्य ते तव शर्म शरणम् आश्रयणं सुखं वा उप अगन्म उपगच्छामः । तत्र दृष्टांतः, छायामिव यथा घर्मार्त्ताः सुसंतप्ताश्छायामुपगच्छन्ति तद्वत् ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव!(हिरण्यसंदृशः घृणेः ते) सुवर्णकी समान तेजवाले और दिपते हुए तुम्हारे (शर्म वयं उप अगन्म) शरण आश्रय वा सुखको हम प्राप्त होते हैं (छायां इव) जैसे धूपसे अत्यन्त तपे हुए पुरुष छायाकी शरणमें जाते हैं ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
य उग्र इव शर्य्यहा तिग्मशृङ्गो न वꣳसगः ।
२ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । यः अग्निः उग्र इव उद्गूर्णबलः धन्वीव शर्य्यहा शर्य्यैर्बाणैः शत्रूणां हन्ता तिग्मशृङ्गो न वंसगः तीक्ष्णशृङ्गो वननीयगतिर्वृषभ इव हे अग्ने ! स त्वं पुरः आसुरीस्तिस्रः पुरीः रुरोजिथ भग्नवानसि । रुद्रो वा एषः यदग्निः इति श्रुतेः।रुद्रकृतिमपि त्रिपुरदहनमग्निकृतमेवेत्यग्निः स्तूयते । यद्वा त्रिपुरदहनसाधनभूते वाणे अग्नेरनीकत्वेनावस्थानादग्निः पुराणि भग्नवानित्युच्यते । देवासुरा वा एषु लोकेषु समयतत इत्यादिकं ब्राह्मणमत्रानुसन्धेयम् ॥ ३ ॥

(यः) जो अग्निः (उग्रः धन्वी इव) परमबली धनुषधारीकी समान (शर्यहा) बलका नाशक है (वंसगः नः तिग्मशृगः) श्रेष्ठ गमनवाले वृषभकी समान तीखे शृङ्गोंवाला है (अग्ने) ऐसे हे अग्निदेव ! तुमने (पुरः रुरोजिथ) असुरोंकी तीन पुरियोंको नष्ट किया है ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
१ २ ३ १ २
अजस्रं घर्ममीमहे ॥ १ ॥

ऋ० भरद्वाजः॥ छ० गायत्री । दे० वैश्वानरः । अथ ऋतावानं वैश्वानरमिति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! ऋतावानं यज्ञवन्तं सत्यवन्तम् ऋतस्य यज्ञस्य वा सम्बंधिनं वैश्वानरं विश्वेषाम् नराणां हितकारिणं ज्योतिषस्पतिं ज्योतिषः तेजसः पतिं पालकम् अजस्रम् अनादित्वादविच्छिन्नं घर्मं दीप्तम् वैश्वानराख्यम् त्वाम् ईमहे अभीष्टम् याचामहे ॥ १ ॥

हे अग्ने (ऋतावानं वैश्वानरम्) यज्ञके संबंधी सकल मनुष्योंके हितकारी (ज्योतिषस्पतिं अजस्रम्) तेजके पालक और अविच्छिन्न (घर्मं ईमहे) दिपते हुए तुमसे हम अभीष्ट पदार्थकी याचना करते हैं

२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३ २
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन् ।
३ १ २र ३ २
ऋतूनुत्सृजते वशी ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । यः अग्निः इदं जगत् यज्ञस्य अनुष्ठीयमानस्य यागस्य स्वः सर्वं विघ्नम् उत्तिरन् उत्तारयन् यद्वा स्वर्गफलसम्बन्धि महाफलम् उत्तिरन् प्रयच्छन् प्रति पप्रथे सर्वतः प्रख्यातो भवति । वशी पर

मात्मतया जगद्वशीकर्त्ता सोऽग्निः ऋतून् वसन्तादीन् उत्सृजते अनुष्ठानार्थं सम्यक् सृजति तेषु स्वयमाश्रीयमानः सन् तदङ्गतया वसन्तात् उत्तमान् कुरुत इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

(यः) जो अग्नि (इदम्) इस जगत्को (यज्ञस्यः स्वः उत्तिरन्) अनुष्ठीयमान यज्ञके सकल विघ्नोंके पार उतारता हुआ अथवा स्वर्गके महाफलको देता हुआ (प्रति पप्रथे) सर्वत्र प्रसिद्ध होता है (वशी) जगत्को वशमें करनेवाला यह अग्नि (ऋतून् उत्सृजते) वसन्त आदि ऋतुओंको उत्तम करता है ॥ २ ॥

३ २ ३२३ १२३ १ २ ३२३ १२

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।

३२र ३ १ २

सम्राडेको वि राजति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। भूतस्य अतीतकालीनस्य भूतजातस्य भव्यस्य आगामिनः भविष्यत्कालीनस्य जगतः कामः काम्यमानस्तत् तैः पुरुषैः सम्राट् एकः अद्वितीयत्वेन प्रियेषु आहवनीयादिषु धामसु स्थानेषु यद्वा त्रिषु पृथिव्यादिलोकेषु विराजति विशेषेण दीप्यते ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्कभूपाल-साम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

(भूतस्य भवस्य कामः) पूर्वकाल में उत्पन्न हुए और आगेको होनेवाले सकल प्राणियोंका चाहा हुआ (सम्राट् एकः अग्निः) भले प्रकार विराजमान अद्वितीय अग्निदेव (प्रियेषु धामसु विराजति) अपने प्रिय पृथिवी आदि लोकोंमें विराजता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके अष्टादशाध्यायस्य चतुर्थः खंडोऽष्टादशाध्यायश्च समाप्तः



❀ श्रीहरिः ❀

अथैकोनविंशोऽध्याय आरभ्यते

३ २ ३२३ १ २ ३ १ ३ २ २
अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वा३ꣳ स्वाम्
३ १ २र
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १ ॥

ऋ० विरूपः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । तत्र प्रथमे खण्डे अग्निः प्रत्नेति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम् तत्र प्रथमा । कविः क्रान्तकर्मा अग्निः प्रत्नेन पुराणेन जन्मना जननीयेन स्तोत्रेण स्वां स्वकीयां तन्वं तनुमङ्गं शुम्भानः शुम्भयन् विप्रेण मेधाविना स्तोत्रा वावृधे प्रवृद्धो भवति ॥१॥

(कविः अग्निः) अनुभव वाला अग्निदेवता (प्रत्नेन जन्मना) सनातन स्तोत्रसे (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपने तेजःस्वरूपको शोभायमान करता हुआ (विप्रेण वावृधे) ऋत्विजों करके बढ़ायाजाता है ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
३ २ ३ १ २ ३ २
अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । ऊर्जः अन्नस्य नपातं पुत्रं पावकशोचिषः शोधकदीप्तिमति स्वध्वरे असुरैरत्यन्तमहिंस्येऽस्मिन् यज्ञे आ हुवे आह्वयामि

(ऊर्जः नपातम्) अन्नके पुत्र (पावकशोचिषम्) पवित्र करनेवाली दीप्तिवाले (अग्निम्) अग्निको (स्वध्वरे अस्मिन् यज्ञे) असुरोंसे अत्यंत अहिंसित इस यज्ञमें (आहुवे) आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
३ १ २र ३ १ २
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे मित्रमहः मित्राणां पूजनीयाग्ने ! स त्वं शुक्रेण ज्वालायता शोचिषा तेजसा देवैः सह बर्हिषि यज्ञे आसत्सि आसीद ३

(मित्रमहः अग्ने) हे मित्रोंके पूजनीय अग्निदेव ! (सः) ऐसा तू (शुक्रेण शोचिषा) ज्वालाओंवाले तेज करके (देवैः बर्हिषि आसत्सि) देवताओं सहित यज्ञमें विराजो ॥ ३ ॥

३ १ १ २ ३ १-२ ३ १ २
उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथोत्ते शुष्मास इति चतुर्ऋचं द्वितीयं सूक्तम तत्र प्रथमा । हे अद्रिवः आवचन् सोम ते तव शुष्मासः शुष्मा वेगाः रक्षः राक्षसान् भिन्दन्तः विदारयन्तः उदस्थुः उत्तिष्ठन्ति । या याः स्पृधः स्पर्धमानाः शत्रुसेना अस्मान् प्रतिबाधन्ते तास्त्वं नुदस्व प्रेरय बाधस्वेत्यर्थः ॥ १ ॥

(अद्रिवः सोम) हे पाषाणोंसे सुसिद्ध हुए सोम ! (ते शुष्मासः) तेरे वेग (रक्षः भिन्दन्तः उदस्थुः) राक्षसोंको विदीर्ण करतेहुए उठते हैं ।(याः स्पृधः नुदस्व) जो हमें बाधा देनेवाली शत्रुओंकी सेना हैं उनको तुम पीड़ा दो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते ।
२ ३ १ २ ३ २
स्तवा अविभ्युषा हृदा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सोम त्वम् अया अनेन कृतेन ओजसा बलेन निजघ्निः शत्रून् हन्तुं शीलवान् तं त्वाम् अबिभ्युषा अभीतेन हृदा मनसा युक्तोऽहं रथसङ्गे अस्माकं रथानां सङ्गे हिते शत्रुषु निहिते धने च निमित्ते स्तवै स्तौमि ॥ २ ॥

हे सोम ! तू (अया ओजसा निजघ्निः) इस किये हुए बलसे शत्रुओं को नष्ट करनेवाला है । ऐसे तुझको (अविभ्युषा हृदा) निर्भय मनसे युक्त मैं (रथसङ्गे हिते) हमारे रथोंके सङ्गसे शत्रुओंके नष्ट होने पर (धने स्तवै) धनके निमित्त मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३क २र
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
३ १ २र ३ १ २
रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम ! पवमानस्य क्षरतः यस्य अस्य तव व्रतानि कर्माणि दूढ्या दुर्बुद्धिना राक्षसेन नाधृषे आधर्षयितुमशक्यानि स त्वा त्वां यः दुर्बुद्धिः शत्रुः पृतन्यति योद्धुमिच्छति तं रुज बाधस्व३

(पवमानस्य अस्य व्रतानि) पूयमान इस सोमके (दूढ्या नाधृषे) दुष्ट राक्षसोंसे तिरस्कार नहीं होसकते (यः त्वा पृतन्यति) हे सोम जो शत्रु तुझसे युद्ध करना चाहता है (रुज) उसको पीड़ा दे ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २

तꣳ हिन्वन्ति मदच्युतꣳ हरिं नदीषु वाजिनम् ।

२ ३ १ २ ३ २

इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी। मदच्युतं मदस्य च्यावयितारं हरिं हरितवर्णं वाजिनं बलिनं मत्सरं मदकरं तम् इन्दुं सोमं नदीषु वसतीवरीषु इंद्राय इंद्रार्थं हिन्वन्ति ऋत्विजः प्रेरयन्ति ॥ ४ ॥

(मदच्युतं हरिम्) आनन्दकी वर्षा करनेवाले और पापहारी (वाजिनं मत्सरम्) बलयुक्त और मदकारी (तं इन्दुम) उस सोमको (नदीषु इंद्राय हिन्वन्ति) वसतीवरी जलोंमें इंद्र के अर्थ प्रेरणा करते हैं ॥ ४ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।

२ २र २ ३ १ २ ३ २उ ३ २उ ३

मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति

१ २ ३ १ २

धन्वेव ताꣳ इहि ॥ १ ॥

ऋ० विश्वामित्रः। छ० बृहती। दे० इन्द्रः। अथामन्द्रैरिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। विश्वामित्रो यज्ञार्थमिन्द्रमाह्वयति हे इंद्र ! मन्द्रैः मादयितृभिः। मयूररोमसदृशरोमयुक्तैः हरिभिः एतत्संज्ञकैरश्वैरुपेतस्त्वम् आ याहि यज्ञं प्रत्यागच्छ। केचित् अपि जनाः त्वा त्वां मा नियेमुः नियच्छन्तु गमनप्रतिबन्धं मा कुर्वन्त्वित्यभिप्रायःप्रतिबन्धे दृष्टान्तः पाशिनो न पाशहस्ता व्याधा यथा पक्षिणं नियच्छन्ति तद्वत् त्वां मा नियच्छन्त्वेव। किञ्च धन्वेव यथा पान्थाः धन्वं मरुदेशं शीघ्रमतिगच्छन्ति तद्वद्गागमनप्रतिकारिणः तान् अतीत्य शीघ्रमागच्छ १

(इंद्र) हे इंद्र ! (मन्द्रैः मयूररोमभिः) आनन्ददेनेवाले और मोर के रोमकी समान रोमवाले (हरिभिः) पापहारी अश्वोंवाले तुम (आयाहि) यज्ञमें आइये (केचित्) कोई भी (त्वा मा नियेमुः) तुम्हें न रोकें (पाशिनः न) जैसे कि पाशधारी व्याध पक्षियोंको रोका करते हैं (धन्वेव तान् अति इहि) मरुदेशकी समान उन विघ्नकारियोंको लांघकर शीघ्र आओ ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
वृत्रखादो वलꣳरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा
२ ३ २
चिदारुजः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सोऽयमिन्द्रः वृत्रखादः खाद भक्षणे (भ्वा० प०) इत्यस्मात् कर्मण्यण् (३, २, १), कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः (३, २, १३९), वृत्रं खादति हिनस्तीति वृत्रखादः वलं रुजः रुजो भङ्गे (तु० प०), कर्मण्युपपदे मूलविभुजादित्वात् कप्रत्ययः । तत्पुरुषे कृति बहुलम् (६, ३, १४) इति द्वितीयाया अलुक् थाथादिस्वरः (६, २, १४४) आवृणोत्याकाशमिति वला मेघः तस्य भञ्जकः ततः अपामजः अज गतिक्षेपणयोः (भ्वा० प०) इत्यस्मात् पचाद्यच् (३, १, १३४) चित्स्वरः (६, १,१ ६३) मेघभेदनद्वारा अगां प्रेरकः पुरां शत्रुसम्बन्धिनां दर्भः दारकः तथा विष्णुः त्रिविक्रमावतारधारी इदं प्रतीयमानं सव जगत् क्रान्त्वा तिष्ठतीति मन्त्रवर्णः तथा हर्योः अश्वयोः अभिस्वरे अस्मदाभिमुख्येन प्रेरणे निमित्तभूते सति रथस्य स्थाता रथमधिष्ठाता तथा दृढाचित् दृढानामतिबलवतां शत्रूणामपि आ रुजः रुजो भङ्गे (तु० प०) इत्यस्मादिगुपधलक्षणः कः (३, १, १३५) आ समन्तात् भञ्जको भवति ॥ २ ॥

(इंद्रः) वह इंद्र (वृत्रखादः) वृत्रासुरका नाशक (वलं रुजः) मेघका भेदक (पुरां दर्भः) शत्रुओंके नगरोंको तोड़नेवाला (अपामजः) जलोंका प्रेरक (हर्योः अभिस्वरे रथस्य स्थाता) अश्वोंका हमारी ओर को प्रेरणा करने पर रथ पर स्थित होनेवाला (दृढाचित् आरुजः) अति बलवान् भी शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
गम्भीराꣳ उदधीꣳरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

१ २३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या
२
इवाशत ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! त्वं गम्भीरान् महावकाशान् उदधीन् समुद्रान् उदकैः यथा पोषयसि तद्वत् क्रतुं यज्ञस्य कर्त्तारम् अमुं यजमानमभिमतफलप्रदानेन पुष्यसि पोषयसि । तत्र दृष्टान्तः यथा सुगोपाः समीचीनो गोपालः यवसेन गाः पोषयति तद्वत यथा धेनवः यवसं तृणादिकम् प्राप्नुवंति तद्वत् सोमान् प्राप्नोति ते च सोमाः कुल्याः कृत्रिमसरितः ह्रदं महाजलाशयं तथा प्राप्नुवंति तद्वत् आशत व्याप्नुवंति

हे इंद्र ! तू (गम्भीरान् उदधीन् इव) जैसे गंभीर समुद्रोंको जल से पुष्ट करता है (क्रतुं पुष्यसि) तैसे ही इस यज्ञ करनेवाले यजमान को इच्छित फल देकर पुष्ट करता है (सुगोपः गाः इव) जैसे श्रेष्ठ गोपाल तृणादिके द्वारा गौओंको पुष्ट करता है (यथा धेनवः यवसं प्र) जैसे गौएँ तृणादिको पाती हैं तैसे तुम सोमको पीते हो (कुल्याः ह्रदं इव आशते) वह सोम जैसे कृत्रिम नदियें जलाशयको प्राप्त होती हैं तैसे तुम्हें प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमागहि कण्वेषु सु सचा
१ २
पिब ॥ १ ॥

ऋ० देवातिथिः । छ० बृहती । दे० इंद्रः ।अथ यथा गौरो अपा कृतमिति प्रगाथात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । गौरः गौरमृगः तृष्यन् पिपासन् अपा अद्भिरुदकैः व्यत्ययेनैकवचनम् (३, १, ८५) उडिदम् (६, १, १७१), इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वं कृतम् इरिणं निस्तृणं तटाकदेशं यथा येन प्रकारेण अवैति अवगच्छति अवशब्दोऽभिशब्दस्यार्थे अभिमुखः सन् शीघ्रं गच्छति । तथा आपित्वे बन्धुत्वे प्रपित्वे प्राप्ते सति हे इंद्र ! त्वं नः अस्मान् तूयं क्षिप्रनामैतत् (निघ० २, १५,

११) शीघ्रम् आ गहि आगच्छ। आगत्य च कण्वेषु कण्वपुत्रेषु अस्मासु सचा सह एकयत्नेनैव विद्यमानं सर्वं सोमं सुष्ठु पिब ॥१॥

(गौरः तृष्यन्) गौर मृग पिलासा होकर (यथा) जैसे (अपाकृतम्) जलभरे (इरिणं अवैति) सरोवरको जानकर उधरको जाता है तैसे (अ पित्वे प्रपित्वे) सखाभावको प्राप्त होनेपर हे इंद्र ! तुम (नः तूयं आगहि) हमारे समीप शीघ्र ही आओ और आकर (कण्वेषु) सचा सुपिब) हम कण्वोंके विषैं एक ही यत्नसे विद्यमान सोमको श्रेष्ठतासे पियो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधो देयाय
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३
सुन्वते । आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं
१ २ ३ १ २
तद्दधिषे सहः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे मघवन् ! धनवन्निन्द्र ! इंदवः क्लेदनाः सोमाः त्वां मन्दन्तु हर्षयंतु मन्देर्व्यत्ययेन परस्मैपदम् (३ १, ८५) किमर्थम् ? सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय राधः देयाय राधसः धनस्य दानार्थं ददातेः अचो यत् (३, १, ९७), इति भावे यत्, ईद्यति (६, ४, ६५), इतीकारः यतोऽनावः (६, १, २१३), इत्या दात्तत्वे कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २ १३९) । शतरनुमः (६, १, १७३), इति सुन्वच्छन्दात् परा विभक्तिरुदात्ता । अपि च त्वं सोमम् आमुष्य आमोषणं कृत्वा अदत्तमपि बलादाहृत्य अपिबः पीतवानसि स यज्ञवेशसं कृत्वा प्रासहा सोममपिबत्, इति श्रुतेः। कीदृशं सोमं ? चमू चम्वोरधिषवणफलकयोः सुतम् अभिषुतम् यद्वा, चमूभ्यां चमसाभ्यां होतुर्मैत्रावरुणस्य च सम्बन्धिभ्यां संस्कृताभिर्वसतीवरीभिः सुतमभिषुतम् यस्मादेवं तस्मात् कारणात् ज्येष्ठं प्रशस्यतमं वृद्धतमं वा सहः बलं दधिषे हे इंद्र त्वं धारयसि अतो मदीया अपि सोमास्त्वां मादयन्त्विति प्रार्थ्यते ॥ २ ॥

(मघवन् इंद्र) हे धनवान् इंद्र ! (सुन्वते राधः देयाय) अभिषव करनेवालेके अर्थ धन देनेको (इंदवः त्वा मन्दतु) सोम तुम्हें प्रसन्न करैं । तुम (चमूसुतम्) मित्रावरुणके जलोंसे संस्कार कियेहुए (सोमं आमुष्य अपिबः) सोमको बलात्कारसे ग्रहण करके पीते हो

अथ द्वितीया। अश्वेव चित्रा चायनीया अरुषी आरोचमाना गवां रश्मीनां माता निर्मात्री ऋतावरी यज्ञवती उषाः अश्विनोः सखा समाख्याना सह स्तूयमाना अभूत भवति अश्विनोरुषसा सह स्तूयमानत्वात् सखित्वं परस्परम् ॥ २ ॥

(अश्वेव चित्रा) अश्वकी समान विचित्रवर्ण की (अरुषी गवां माता) दीप्यमान और किरणोंकी रचना करनेवाली (ऋतावरी उषाः) यज्ञवाली उषा (अश्विनोः सखा) अश्विनी कुमारोंके साथ स्तुति वाली (अभूत्) होती है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
उत सखाऽस्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
३ २ ३ १ २
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। उत अपि च अश्विनो सखाः असि,उप अपिच गवां रश्मीनां माता निर्माता असि, उत अपिच हे उषः ! वस्वः धनस्य ईशिषे ईश्वरी भवसि॥ ३ ॥

(उत अश्विनोः सखा असि) और अश्विनी कुमारोंकी सहचारिणी है (उत गवां माता असि) और किरणोंका निर्माण करनेवाली है (उत उषः वस्वः ईशिषे) और हे उषा ! तू धनकी स्वामिनी है ॥

३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २ ३ २
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
३ १ २ ३ २
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

ऋ० प्रस्कण्वः। छ० गायत्री। दे० उषाः। अथैषो उषेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। एषः एषा अस्माभिः परिदृश्यमाना प्रिया सर्वेषां प्रीतेर्हेतुः अपूर्व्या पूर्वेषु मध्यरात्रिकालेषु विद्यमाना न भवति किन्त्विदानीन्तनी उषाः उषोदेवता दिवः द्युलोकस्य सकाशादागत्य व्युच्छति तमो वर्जयति। हे अश्विना अश्विनौ ! वां युवां बृहत् महत् प्रभूतं यथा भवति तथा स्तुषे स्तौमि ॥ १ ॥

(एषः प्रिया) यह दृश्यमान और सबकी प्यारी (अपूर्व्या उषा) पहिले मध्य रात्रिक समय विद्यमान न रहनेवाली उषादेवता (दिवः व्युच्छति) द्युलोकसे आकर अन्धकारको नष्ट करती है (अश्विनौ वां बृहत् स्तुषे) हे अश्विनी कुमारो!तुम्हारी बहुतसी स्तुति करता हूँ १

२ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
३ २ ३ १ २ ३ १ २
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। या देवा यावुभावश्विनौ वक्ष्यमाणगुणयुक्तौ तौ स्तुषे इति पूर्वत्रान्वयः । कीदृशौ दस्रा दर्शनीयौ सिन्धुमातरा समुद्रमातृकौ यद्यपि सूर्य्याचन्द्रमसावेव समुद्रजौ तथाप्यश्विनोः केषाञ्चिन्मते तद्रूपत्वात् तथात्वम् । रयीणां धनानां मनोतरा मनसा तारयितारौ धिया कर्मणा वसुविदा निवासस्थानस्य लम्भयितारौ मनोतरा मनसः तरत इति मनोतरौ तरतेरन्तर्भावितण्यर्थात् ॠदोरप् (३,३,५७) इत्यप् पूर्वपदान्तस्य रुत्वे सति छान्दसमुत्वम्। रयीणां नामन्यतरस्याम्(६,१,१७७) इति नाम उदात्तत्वम् । धिया सावेकाच (६,१, १६८) इति विभक्तेरुदात्तत्वम् वसुविदा वसूनि निवासस्थानानि विन्देते इति वसुविदौ क्विप् च (३, २, ७६) इति क्विप् च सकारस्य ॥ २ ॥

(या देवा) जो अश्विनीकुमार देवता (दस्रा सिंधुमातरा) दर्शनीय और समुद्रसे उत्पन्न हुए हैं (रयीणां मनोतरा) धनोंके मनसे देनेवाले (धिया वसुविदा) कर्म करके धनके देनेवाले हैं ॥ २ ॥

३ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वाꣳ रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अश्विनौ ! वां युवयोः सम्बन्धि रथः जूर्णायां नानाशास्त्रैः स्तुतायाम अधिविष्टपि स्वर्गलोके यद् यदा · विभिः अश्वैः पतात् पतति गच्छति तदानी वां युवयोः ककुहासः स्तुतयः वच्यन्ते अस्माभिरुच्यन्ते ब्रवीतेर्यकि ब्रुवो वचिः (२,४, ५३) इति वच्यादेशः वचिस्वपि (६, १, १५) इत्यादिना सम्प्रसारणम् सम्प्रसारणाच्च (६, १, १०८) इत्यत्र छन्दसीत्यदनुवृत्तेः परपूर्वत्वस्य पाक्षिकत्वात् यणादेशः प्रत्ययस्वरः । ककुहासः ककुभं शृङ्गे विदुः प्रधाने च इत्यभिधानात् प्राधान्याभिधायिना ककुपशब्देन तत्प्रतिपादका स्तुतयो लक्ष्यन्ते हत्वं छान्दसम् आज्जसेरसुक् (७, १, ५,) इत्यसुक् जुर्णायां जुष् वयोहानौ (दि० प०) अत्र स्तुत्यर्थः धातूनामनेकार्थत्वात

निष्ठायां श्रयुकः किति, (६, २, ११) इति इट्प्रतिषेधः बहुलञ्छन्दसि (७, १, १०३) इति उत्वम् रदाभ्यामिति (८, २, ४२,) निष्ठानत्वम् प्रत्ययस्वरः (३, १, ३) विभिः वी गत्यादौ (अदा० प०) वियन्ति गच्छन्ति वयः अश्वाः औणादिको ङिप्रत्ययः । पतात् पत्लृ गतौ (भ्वा० प०) लेट्यडागमः इतश्च लोपः (३, ४, ७,) इतीकारलोपः ॥

हे अश्विनीकुमारो (वां रथः) तुम्हारा रथ (जूर्णायां अधिविष्टपि) नाना शास्त्रोंमें प्रशंसनीय स्वर्गलोकमें (यद् विभिः पतात्) जब अश्वोंके द्वारा जाता है उस समय (वां ककुहासः वच्यन्ते) तुम्हारी स्तुतियें बोली जाती हैं ॥

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

ऋ० गातमः । छ० उष्णिक् दे० उषाः । अथ उषस्तच्चित्रमिति तृचं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे वाजिनीवति वाजो हविर्लक्षणमन्नं तद्युक्ता वजिनी तया क्रियया युक्ते उषः उषोदेवते अस्मभ्यं चित्रं चायनीयं तत् धनम् आ भर आहर प्रयच्छ । येन धनेन तोकं पुत्रं तनयं तत्पुत्रं च धामहे दधमहे धारयामः । अत्र निरुक्तम् उषस्तच्चित्रं चायनीयं मंहनीयं धनमाहरास्मभ्यमन्नवती येन पुत्रांश्च पौत्रांश्च दधीमहि (निरु० दै० ६,६) इति । धामहे दधातेर्लटि बहुलञ्छन्दसि (२,४,७३ इति शपो लुक् व्यत्ययेनाद्युदात्तत्वम् यद्वा लोटि आडुत्तमस्य पिच्च (३, ४, ९२) इत्याडागमः प्रत्ययस्य पिद्वद्भावश्च अतः प्रत्ययस्य पित्वाद् दनुदात्तत्वे धातुस्वरः शिष्यते अस्मिन् पक्षे एत ऐ (३, ४ ९३) इत्यैत्वभावो व्यत्ययेन द्रष्टव्यः यद्वृत्तान्नित्यम् (८, १, ६६) इति निघातप्रतिषेधः ॥ १ ॥

(वाजिनीवति उषः) हे हविरूप अन्नयुक्त उषादेवि ! (अस्मभ्यं तत् चित्रं आभर) हमें वह विचित्र धन दो (येन तोकं च तनयं च धामहे) जिस धनसे पुत्रोंका और पौत्रोंका भी भरण पोषण करें ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि
३ २ ३ १ २
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे गोमति! अस्मभ्यं दातव्यैः गोभिर्युक्ते! तथा अश्वावति अश्वैर्युक्ते! विभावरि विशिष्टप्रकाशोपेते! सूनृतावति प्रियसत्यात्मिका वाक् सूनृता, तादृश्या वाचा युक्ते! एवम्भूते हे उषः! उषोदेवते! अद्य इदानीं प्रभातसमये इह अस्मिन् देशे अस्मे अस्माकं रेवत् रयेर्मतौ बहुलम् (६, १, ३४, वा०), इति सम्प्रसारणम् छन्दसीरः (८, २, १५) इति मतुपो वत्वम्, रेशब्दाच्च मतुप उदात्तत्वं वक्तव्यम् (६, १, १७६ वा०), इति मतुप उदात्तत्वम् धनयुक्तं कर्म यथा भवति तथा व्युच्छ नैशं तमो निवारय उच्छी विवासे(भ्वा०प०) विवासो वर्जनम् ॥ २ ॥

(गोमति अश्वावति) हमारे देनेयोग्य गौओंसे और अश्वोंसे युक्त (सूनृतावति विभावरि उषः) प्यारी और सत्यवाणीवाली हे प्रकाश युक्त उषादेवि! (अद्य इह) इस प्रभातकालमें यहाँ (अस्मे रेवत्) जिस प्रकार हमें धन प्राप्त होनेके कर्मके उपयोगी हो तैसे (व्युच्छ) रात्रिके अन्धकारको दूर कर ॥ २ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २

युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

अथा नो विश्वा सौभागान्या वह ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे वाजिनीवति! हविर्लक्षणान्नवति! उषः उषोदेवते अरुणान् अरुणवर्णान् अश्वान् अश्वस्थानीयान् गोविशेषान् दीर्घादटि समानपदे (८, ३, ९)इति संहितायां नकारस्य रुत्वम्,आतोऽटि नित्यम् (८, ३, ३,) इति सानुनासिक आकारः एवम्भूतान् अद्य अस्मिन् काले युङ्क्ष्वा हि योजयैव हिरवधारणे अथ अनंतरं रथमारुह्य विश्वा सर्वाणि सौभाग्यानि सुभगाम्यानि सुभगान्मन्त्रे(५,१,१२९वा०) इत्युद्गात्रादिषु पाठात् भावकर्मणोरर्थयोः प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ् (५, १, १२९), इत्यञ् प्रत्ययः, । हृद्भग सिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च, इत्युभयपदवृद्धौ प्राप्तायां सर्वविधीनां छन्दसि वैकल्पिकत्वात् अत्रोत्तरपदस्य वृद्धिर्न भवतीत्युक्तम्, सौभगानि सर्वाणि सौभाग्यानि नः अस्मभ्यम् आ वह आनय ॥ ३ ॥

(वाजिनीवति उषः) हे हविरूप अन्नवाली उषादेवी! (अरुणान् अश्वान्) लाल वर्णके अश्वस्थानीय एक प्रकारके वृषभोंको (अद्य युङ्क्ष्व हि) इस समय रथमें जोडो(अथ विश्वा सौभगानि नः आवह) फिर सकल सौभाग्य हमें दो ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १२
अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमदस्रा हिरण्यवत् ।
३ २र ३ १२ ३ १ २
अर्वाग्रथꣳ समनसा नि यच्छतम् ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० उष्णिक् । दे०उषः । अथाश्विनावर्त्तिरिति तृचं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । उषसा साहचर्य्याद् बुद्धिस्थावश्विनाविदमादिकेन तृचेन स्तूयेते हे अश्विना ! अश्ववन्तौ व्यापनशीलौ वा देवौ ! दस्रा शत्रूणामुपक्षपयितारौ अस्मत् अस्माकं वर्त्ति वर्त्तनहेतुभूतं गृहम् आ समन्तात् गोमत् बहुभिर्गोभिर्युक्तं हिरण्यवत् हितरमणीयधनयुक्तं च यथा भवति तथा समनसा समानमनस्कौ सन्तौ युवां युष्मदीयं रथम् अर्वाक् अर्वाचीनम् अस्मदभिमुखं नियच्छतम् आवर्त्तयतम् अस्मत्, सुपां सुलुक् (७, १, ३९), इति षष्ठ्या लुक् ॥ १ ॥

(अश्विना) हे व्यापक देवताओं ! (दस्रा) शत्रुओंका नाश करने वाले तुम (अस्मत् वर्त्तिः आ) हमारे घरकी ओरको (गोमत् हिरण्यवत् रथम) बहुतसी गौएँ और सुवर्णसे युक्त रथको (समनसा) समानचित्त होतेहुए (अर्वाक् नियच्छतम) हमारे सन्मुख लाकर खड़ा करो ॥ १ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एह देवा मयोभुव दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।
३ १ २ ३ १ २
उषर्बुधो वहन्तु सोम पीतये ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । उषर्बुधः उषसि प्रबुद्धा अश्वाः इह अस्मिन् यागे सोमपीतये सोमपानाय दस्रा शत्रूणामुपक्षपयितारौ अश्विनौ आ वहंतु आनयन्तु । कीदृशौ ? देवा देवनशीलौ दानादिगुणयुक्तौ वा मयोभुवा मयसः आरोग्यप्रदस्य सुखस्य भावयितारौ अश्विनौ वै देवानां भिषजौ इति श्रुतेः । हिरण्यवर्त्तनी वर्त्ततेऽनेनेति व्युत्पत्या वर्त्तनिशब्देन रथ उच्यते सुवर्णमयो वर्त्तनिर्ययोस्तौ देवा, इत्यादिषु त्रिषु सुपां सुलुक् (७, १, ३९), इत्याकारः ॥ २ ॥

(उषर्बुधः इह सोमपीतये) उषःकालमें जगनेवाले घोड़े इस यज्ञ में सोम पानके लिये (दस्रा मयोभुवा) शत्रुओंका नाश करने वाले और भक्तोंको आरोग्य सुख देनेवाले (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्णका है रथ जिनका ऐसे (देवा) अश्विनीकुमार देवताओंको (आवहन्तु) लावें २

२ ३ २उ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथु ।
२ ३ १ २ ३ २
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अश्विनौ! यौ युवां दिवः लोकात् श्लोकम् उपश्लोकनीयं प्रशंसनीयं ज्योतिः तेजः इत्था इत्थमस्माभिरनुभूयमानेन प्रकारेण चक्रथुः कृतवन्तौ केषाञ्चिन्मतेन सूर्याचंद्रमसावश्विनावित्युच्येते। तदुक्तं यास्केन, तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येकेऽहोरात्रावित्येके सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके (निरु० दै० ६, १), इति। तथाच प्रकाशकत्वं तयारुपपन्नं तौ युवां नः अस्मभ्यम् ऊर्जं बलप्रदमन्नम् आ वहतम् आनयतं प्रयच्छतम्। श्लोकं श्लोक संघाते (भ्वा० आ०), अयं स्तुत्यर्थोऽपि, कर्मणि घञ्, ञित्यादिर्नित्यमिति आद्युदात्तत्वम् (६, १, १९७) ॥ ३ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो! (यौ) जो तुम (दिवः) द्युलोक से (उपश्लोकनीयं ज्योतिः) प्रशंसनीय तेजका (इत्था जनाय चक्रथुः) इस हमारे अनुभवमें आनेवाले प्रकारसे करते हुए (युवम्) वह तुम (नः ऊर्जं आवहतम्) हमें बलदायक अन्न दो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिक एकोनविंशाध्यायस्य द्वितीयः खंडः समाप्तः

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
२ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषꣳ
३ २ ३ १ २
स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

ऋ० वसुश्रुतः। छ० पंक्तिः। दे० अग्निः। अथ तृतीये खण्डे अग्निं तम्मन्य इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। तम् अग्निं मन्ये स्तौमि यः अग्निः वसु वासकः यम् अस्तं सर्वेषां गृहवदाश्रयभूतम् धेनवः गावः यन्ति गच्छन्ति प्रीणयितुम् अस्तम् उक्तलक्षणम् अर्वंतः अरणवन्तः अश्वाः आशवः शीघ्रगामिनः यन्ति तथा नित्यासः नित्यप्रवृत्तयो वाजिनः हविर्लक्षणान्नवन्तो यजमानाः यम् अस्तं यन्ति तम् मन्ये, इषम्, अन्नं स्तोतृभ्यः अस्मभ्यम् आभर हे अग्ने! आहर ॥ १ ॥

(तं अग्निं मन्ये) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ (यः वसुः) जो सर्वत्र व्यापक है (अस्तं यं धेनवः यंति) आश्रयभूत जिस अग्नि

को गौएँ तृप्त करनेको प्राप्त होती हैं (अस्तं आशवः अर्वतः) आश्रय भूत जिस अग्निको शीघ्रगामी घोड़े प्राप्त होते हैं (अस्तं नित्यासः वाजिनः) आश्रयभूत जिस अग्निको नित्यकर्ममें लगे रहनेवाले हवि को धारण करे हुए यजमान प्राप्त होते हैं (स्तोतृभ्यः इषं आभर) हम स्तुति करनेवालोंको हे अग्ने ! अन्न दो ॥ १ ॥

३ २३ ३ १२ ३१ २र ३ १२
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
३ २ ३२ ३ २३ २ ३१ २ ३ २ ३
अग्नी राये स्वाभुवꣳ स प्रीतो याति वार्य्य
१२ ३ २ ३ १ २
मिषꣳ स्तोतृभ्य आ भर ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अग्निः हि अयमग्निः खलु विशे यजमानाय वाजिनम् अन्नवन्तं पुत्रम अश्वम् अन्नं वा ददाति प्रयच्छति विश्वचर्षणिः विश्वे चर्षणयो मनुष्यरक्षणीया अर्चका वा यस्य स तथोक्तः।यद्वा पश्यतिकर्मैतत् सर्वस्य द्रष्टा अग्निः राये धनार्थिने अथवा द्वितीयार्थे चतुर्थी (३, १, ८५,) धनम् स्वाभुवं सुष्ठु सर्वत्र व्याप्तम् वार्य्यं सर्वैर्वरणीयं प्रीतः सन् याति यमयति दातुं वा गच्छति । इषमित्यादि पूर्ववत् ॥२॥

(अग्निः हि) अग्नि देवता अवश्य ही (विशे वाजिनं ददाति) यजमानके अर्थ अन्नवान् पुत्रको वा अश्वको अथवा अन्नको देता है (विश्वचर्षणिः) सकल मनुष्य जिसके रक्षा करने योग्य हैं वा सकल मनुष्य जिसका पूजन करते हैं अथवा जो विश्वभरका द्रष्टा है (सः अग्निः) वह अग्नि देवता (प्रीतः) प्रसन्न हुआ (स्वाभुवम्) भले प्रकार सर्वत्र व्याप्त (वार्यं राये) सबके प्रार्थनीय धनके देनेको (याति) पहुँचता है (स्तोतृभ्यः इषं आभर) ऐसे अग्निदेव ! तुम स्तुति करने वालोंको अन्न दो ॥ २ ॥

२ ३१ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳ
३ २ ३ १ २
स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सः अग्निः स खल्वग्निः यः वसुः वासकः गृणे स्तू-

यतें यं धेनवः समायंति होमार्थं प्र.पयंति अर्वतः अश्वाः रघुद्रुवः लघुगमनाः सम् आयंति सुजातासः शोभनप्रादुर्भूताः सूरयः मेधाविनः सम् आयंति । स खल्वग्निरिति शेषः पूर्ववत् ॥ ३ ॥

(सः अग्निः) वह अग्नि है कि (यः वसुः) जो व्यापक अग्नि (गृणे) स्तुति कियाजाता है (यं धेनवः समायन्ति) जिसको गौ यज्ञके निमित्त पहुचाती है (अर्वन्तः रघुद्रुवः सम्) घोड़े धीरे २ की चालसे पहुँचाते हैं (सुजातासः सूरयः सम्) सुन्दरता पूर्वक प्रकट हुए विद्वान् पहुँचाते हैं (स्तोतृभ्य अन्नं आभर)हम स्तोताओंको अन्न दो३

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये

२र ३ १ २

सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥

ऋ० सत्यश्रवाः वस्सः वा । छं० पंक्तिः दे० उषाः । अथ महे नो अद्येति तृचं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । अद्य अस्मिन् यागदिने हे उषः ! उषोदेवि ! दिवित्मती त्वं नः अस्मान् महे महते राये धनप्राप्तये बोधये प्रज्ञापय प्रकाशयेत्यर्थः सति हि प्रकाशे क्रतुद्वारा द्रव्यस्यार्जयितुं शक्यत्वात् । यथा चित् यथेव पूर्वं नः अस्मान् अबोधयः अतीतेषु दिनेषु यथा बोधितवती तद्वदद्यापीत्यर्थः । हे सुजाते ! शोभनप्रादुर्भूते अश्वसूनृते अश्वार्था प्रियसत्यात्मिका स्तुतिर्वाग् यस्याः सा हे तादृशि देवि ! वाय्ये वय्यपुत्रे सत्यश्रवसि मय्यनुगृहाणेत्यर्थः ।

(अद्य) आज यज्ञके दिन (उषः) हे उषादेवी ! (दिवित्मती) दीप्तिवाली तू (नः महे राये) हमें बहुतसे धनकी प्राप्ति होनेके लिये (बोधय) प्रकाशित करो (यथाचित् न अबोधयः) जैसा कि पहिले हमें प्रकाशित किया था (सुजाते अश्वसूनृते) हे सुन्दर प्रादुर्भाववाली ! हे सत्य प्रिय वाणीवाली देवि ! (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्यके पुत्र मुझ सत्यश्रवासे ऊपर अनुग्रह करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३१ २र

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
१ २
अश्वसूनृते ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे दिवः दुहितः सूर्य्यस्य पुत्रि उषः! या त्वं सुनीथे एतन्नामके शौचद्रथे शुचद्रथस्यापत्ये पूर्वं व्यौच्छः व्यवसायः तमांसि सा त्वम् सहीयसि अतिशयेन बलवति वाय्ये वय्यपुत्रे सत्यश्रवसि मयि व्युच्छ तमो विवासय उच्छी विवासे (भ्वा० प०) विवासो वर्जनम्। शिष्टं समानम्॥ २॥

(दिवः दुहितः) हे सूर्यकी पुत्री! (या) जिस तूने (सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छः) सुनीथ नामा शुचद्रथके पुत्रके विषयके अन्धकारों का पहिले दूर करा (सुजाते सत्यसूनृते) सुन्दर रीतिसे उत्पन्न और सत्य प्रिय वाणीवाली (सा) वह तू (सहीयसि वाय्ये सत्यश्रवसि) अत्यंत बलवान् वय्यके पुत्र मुझ सत्यश्रवाके ऊपर अनुग्रह करो॥ २॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र २र
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः। यो
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३
व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
१ २
अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे दुहितः! दिवः उषः! आभरद्वसु आहृतधना सा प्रसिद्धा त्वं नः अस्माकम् अद्य अस्मिन् दिने व्युच्छ तमो विवासय हे सहीयसि! या उ उकारोऽनर्थकः या त्वं पूर्वं व्यौच्छः सा अद्यापीति। शिष्टम् समानम्॥ ३॥

(दिवः दुहितः) हे द्युलोककी पुत्री उषादेवि! (आभरद्वसु सा) धन लाकर देनेवाली तू (नः अद्य व्युच्छ) हमारे आजके दिनके अंधकारको दूर करो (सहीयसि) हे अत्यन्त बलवाली! (या व्यौच्छः) जो तू पहिले अंधकारको दूर करती हुई (सुजाते अश्वसूनृते) हे सुन्दर प्रादुर्भाववाली और हे सत्य प्रियवाणी वाली! (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्यके पुत्र मुझ सत्यश्रवाके ऊपर अनुग्रह करो॥ ३॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रति प्रियतमꣳ रथं वृषणं वसुवाहनम्।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति
२ ३ १ २ ३ १ २
माध्वी मम श्रुतꣳ हवम् ॥ १ ॥

ऋ० अवस्युः । छ० पंक्तिः । दे० अश्विदेवद्वयः । अथ प्रति प्रियमिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अश्विनौ ! एकः प्रतिशब्दोऽनुवादः वां युवयोः प्रियतमं रथं स्तोता ऋषिः स्तोमेभिः स्तोमैः प्रति भूषति अलङ्करोति । कीदृशं रथं ? वृषणं वर्षितारं फलानां, वसुवाहनं धनानां वाहकम् ईदृशं रथमागमनाय स्तौतीत्यर्थः । तस्मात् हे माध्वी मधुविद्यावेदितारौ मम हवम् आह्वानं श्रुतं शृणुतम् ॥ १ ॥

(अश्विनौ) हे अश्विनीकुमारों ! (स्तोता ऋषिः) स्तुति करने वाला मंत्रद्रष्टा (वाम्) तुम्हारे (वृषणः वसुवाहनम्) फलोंकी वर्षा करनेवाले और धन पहुंचाने वाले (प्रति प्रियतमं रथम्) परमप्रिय रथको (स्तोमेभिः प्रतिभूषति) स्तोत्रोंसे सुशोभित करता है, इस कारण (माध्वी) हे मधुविद्या के जाननेवालों (मम हवं श्रुतम्) मेरे आह्वानको सुनो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ र ३ १ २ र
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहꣳ सना ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी
१ २ ३ १ २
मम श्रुतꣳ हवम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अश्विना ! अश्विनौ ! अत्यायातं सर्वान् यजमानानतिक्रम्य आगच्छतम् अहम ऋषिस्तथा विश्वाः सर्वा अस्मद्विरोधिप्रजाः सना सदा तिरः करोमि अथवा, अहम तिरः सना, इति सम्बंधः । प्राप्ताः विश्वाः सर्वा क्रियाः युष्मदीयाः अनुष्ठेया इत्यर्थः सना सनातनौ दस्रा शत्रूणामुपक्षपयितारौ हिरण्यवर्त्तनी हिरण्यरथौ सुषुमणा सुधनौ सिन्धुवाहसा नदीनां प्रवाहयितारौ वृष्टिप्रेरणेन तादृशौ युवामत्यायातम् ॥ २ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारों ! (अत्यातम्) यजमानोंको अतिक्रमण करके आओ (अहं विश्वाः सना तिरः) मैं अपने सकल विरोधियोंका सदा तिरस्कार करूँ (दस्रा हिरण्यवर्त्तनी) शत्रुओंके

नाशक और सुवर्णमय रथ वाले (सुषुम्णा-सिन्धुवाहसा) श्रेष्ठ धन वाले और नदियोंको बहाने वाले (माध्वी) मधुविद्याके जानने वाले तुम (मम हवं श्रुतम्)मेरे आह्वानको सुनो ॥ २ ॥

२ ३ १२ ३ १२ ३१ २ ३ १ २ ३२
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
२ ३ १२ ३ २ २ ३
रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनी वसू
२ ३ १२ ३ १२
माध्वी मम श्रुतᳫं हवम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अश्विना ! अश्विनौ ! युवं युवां नः अस्मभ्यं रत्नानि रमणीयानि बिभ्रता बिभ्रतौ धारयन्तौ संतौ अस्मान् आगच्छतम् । हे रुद्रा!रुद्रपुत्रौ!स्तुत्यौ वा वाजिनीवसू वाजिनधनौ युवां हिरण्यवर्त्तनी हिरण्यरथौ जुषाणा यज्ञम् सेवमानौ संतौ आगच्छतमिति । माध्वीत्यादि गतम् ॥ ३ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारों (रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी) रुद्रपुत्र और हिरण्यमय रथ वाले (वाजिनीवसू जुषाणा) अन्नयुक्त धनवाले और यज्ञका सेवन करते हुए (युवं आगच्छतम) तुम आओ(माध्वीहवं श्रुतम्) हे मधुविद्याके जाननेवालों मेरे आह्वानको सुनो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिक एकोनविंशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमि-
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ २ २ ३ १ २ ३
वायतीमुषासम् । यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥

ऋ० बुधः गविष्ठिरः वा । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथ चतुर्थे खण्डे अबोध्यग्निः समिधा जनानामिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। अयम् अग्निः जनानाम् अध्वर्य्वादीनां समिधा समिद्भिः अबोधि प्रबुद्धोऽभूत् । धेनुम् इव अग्निहोत्रार्थं धेनुं प्रति यथाप्रातर्बुध्यते तद्वत् आयतीम् आगच्छतीम् उषसं प्रति उषःकाल इत्यर्थः । अथ प्रबुद्धस्याग्नेः भानवः रश्मयः ज्वालाः यह्वः महान्तः वयां शाखां प्रोज्जि-

हानाः प्रोद्गमयन्तो वृक्षा इव यद्वा महान्तः प्रोज्जिहानाः स्वाधिष्ठानं त्यजन्तः भानवः नाकम् अंतरिक्षम् अच्छ आभिमुख्येन प्र सस्रते प्रसरन्ति । सस्रते सिस्रते इति पाठौ ॥ १ ॥

(अग्निः जनानां समिधा अबोधि) अग्नि अध्वर्यु आदिकोंकी समिधाओंसे चेतन हुआ (धेनुं इव) जैसे अग्निहोत्रके निमित्त धेनुके प्रतिः प्रातःकाल चेतन हुआ करता है (आयतीं उषासं प्रति) आतेहुए उषःकालमें (भानवः) उस प्रज्वलित हुए अग्निकी किरणें (वयाम् प्रोज्जिहानाः यह्वाः इव) अपनी शाखाओंको फैलाने वाले बड़े भारी वृक्षोंकी समान (नाकम अच्छ प्रसस्रते) अन्तरिक्षकी ओरको फैलती हैं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ २

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः

३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३

सुमनाः प्रातरस्थात् । समिद्धस्य रुशददर्शि

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ १ २

पाजो महां देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयं होता होमनिष्पादकः अग्निः देवान्यष्टव्यान्यजथाय यष्टुं अबोधि बुध्यते सोऽग्निः प्रातःकाले सुमनाः शोभनमनस्कः यजमानानुग्रहबुद्धिःसन् ऊर्ध्वः अस्थात् उत्तिष्ठति । समिद्धस्य अस्य रुशत् रोचमानं पाजः बलं ज्वालालक्षणम् अदर्शि दृश्यते । अथ तथाभूतः महान् देवः तमसः अन्धकारात् निरमोचि सर्वं जगत् निरमोचयत् ॥ २ ॥

(होता अग्निः देवान् यजथाय अबोधि) यह होमका साधक अग्नि देवताओंके यजनके लिये प्रज्वलित होता है । वह अग्नि (प्रातःसुमनाः) प्रातःकालके समय यजमानोंके ऊपर अनुग्रहबुद्धि रूप सुन्दर मन वाला होकर (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊपरको उठता है (समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि) प्रज्वलित हुए इस अग्निका प्रकाशवान् ज्वालारूप बल दीखता है । तदनन्तर (महान् देवः तमसः निरमोचि) यह महान् देवता सब जगत् को अन्धकारसे मुक्त करता है ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचि-

३ १ २ ३ २ १ २र ३ १ २
भिर्गोभिरग्निः । आदक्षिणा युज्यते वाजयन्त्यु-
३ २ ३ १ २ ३ १ २
त्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । यद् यदा इम् अयमग्निः गणस्य संघातात्मकस्य जगतः रशनाम् रज्जुमिव व्यापारप्रतिबन्धकम् तमः अजीगः गिरति गृह्णाति वा समिद्धो भवतीत्यर्थः । तदा शुचिः दीप्तः अग्निः शुचिभिः गोभिः व्यापारप्रतिबन्धकैर्दीप्तैः रश्मिभिः अङ्क्ते व्यनक्ति विश्वं जगत् आत् अनन्तरमेव दक्षिणा प्रवृद्धा वाजयन्ती हविर्लक्षणमन्नम् प्रदातुमिच्छन्ती जुहूभिः युज्यते युक्ता भवति अथवा, दक्षिणा प्रवृद्धाज्यधारा युज्यते तां धाराम् उत्तानाम् ऊर्ध्वस्थितामुपरि विस्तृताम् ऊर्ध्वः उन्नतः सन् जुहूभिः अधयत् पिबति ॥ ३ ॥

(यद् ईम्) जब यह अग्नि (गणस्य रशनां अजीगः) समूहरूप जगत्की रज्जुकी समान चेष्टाको रोकने वाले अन्धकारको निगलजाता है अर्थात् प्रज्वलित होता है उस समय (शुचिः अग्निः) दीप्त हुआ अग्नि (शुचिभिः गोभिः) दीप्त किरणोंसे (अङ्क्ते) सकल जगतको प्रकट करता है (आत्) तदनन्तर ही (दक्षिणा) बड़ीभारी घृतकी धारा (वाजयन्ती जुहूभिः युज्यते) हविरूप अन्न देना चाहती हुई जुहू नामक यज्ञपात्रोंसे युक्त होती है (उत्तानां ऊर्ध्वः अधयत्) उस ऊपर फैलीहुई घृतकी धाराको ऊँचा होकर पीता है ॥ ३ ॥

३ २उ ३ १ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
इदथ्ँ श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो
२ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अजनिष्ट विभ्वा । यथा प्रसूता सवितुः सवा-
३ २उ ३ २ ३ १ २
यैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

ऋ० कुत्सः । छं० त्रिष्टुप् । दे० उषाः । अथेदं श्रेष्ठमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां द्योतमानानां मध्ये इदम् उषआख्यं ज्योतिः श्रेष्ठं प्रशस्यतमम् अस्य कोऽतिशयः ? इति चेत्, उच्यते, नक्षत्रादिकं ज्योतिस्त्वात्मानमेव प्रकाशयति नान्यत् चन्द्रस्तु यद्यप्यन्यं प्रकाशयति तथापि न विस्पष्टप्रकाशः, औषसन्तु ज्योतिर्युगपदेव सर्वस्य जगतोऽन्धकारनिराकरणेन विशेषेण प्रकाश-

कम् अतः प्रशस्यतममित्यर्थः । तादृशम् ज्योतिः आ अगात् पूर्वस्याम् दिश्यागमत् । आगते चैतस्मिन् चित्रः चायनीयः, प्रकेतः अन्धकारावृतस्य सर्वस्य पदार्थस्य प्रज्ञापकः, तथा विभ्वा विभुर्व्याप्तः सन् अजनिष्ट प्रादुरभूत् । किञ्च, यथा रात्री रात्रिः स्वयम् सवितुः सूर्यसकाशात् प्रसूता उत्पन्ना सूर्य्यो ह्यस्तम् गच्छन् रात्रिं जनयति तस्मिन्ननस्तमिते रात्रेरुत्पत्त्यभावात् एवमेव रात्रिरपि उषसे सवाय उषस उत्पत्तये तदीयां योनिं स्थानं स्वकीयापरभागलक्षणम् आरैक् आरेचितवती कल्पितवतीत्यर्थः यद्वा, प्रसूता रात्रिसकाशादुत्पन्ना उषाः सवितुः सूर्य्यस्य सवाय प्रसवाय जन्मने यथा भवति एवं रात्रिः अपि उषसे उषसो यज्जन्म तदर्थं योनिं स्वापरभागलक्षणं स्थानं कृतवती । अत्र निरुक्तम्, इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागमच्चित्रं प्रकेतनं प्रज्ञाततममजनिष्ट विभूततमं यथा प्रसूता सवितुः प्रसवाय रात्रिरादित्यस्यैवं राड्युषसे योनिमरिचत् स्थानम् (निरु० नै०२, १९), इति श्रेष्ठं प्रशस्यशब्दादातिशायनिक इष्ठन् (५, ३, ५५), प्रशस्यस्य श्रः (५, ३, ६०), इति श्रादेशः । प्रकृत्यैकाच् (६,४,६२) इति प्रकृतिभावाट्टिलोपाभावः। आगात् एते र्लुङि इणो गा लुङि (२,४,४५) इति गादेशः, गातिस्था (२, ४, ७७) इति सिचो लुक् । प्रकेतः, कित ज्ञाने (भ्वा०,प०) अन्तर्भावितण्यर्थात् कर्मणि घञ्, थाथादिना (६, २, १४४) उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । अजनिष्ट. जनीप्रादुर्भावे (दि० आ०) लुङि सिच इडागमः । विभ्वा विप्रसम्भ्यो ड्वसञ्ज्ञायाम् (३, २, १८०), इति डुप्रत्ययः । सुपां सुलुक् (७, १, ३९), इत्यादिना सोराकारादेशः,ओः सुपि(६, ४, ८३),इति यणादेशस्य न भूसुधियोः (६, ४, ८५),इति निषेधे प्राप्ते छन्दस्युभयथा (६, ४, ८६), इति यणादेशः । व्यत्येनाद्युदात्तत्वम्, यद्वा, विपूर्वात् भवतेरौणादिकाडडुन्प्रत्ययः । नित्त्वादाद्युत्तत्वम् (६, १, १९७), प्रसूता, सुनोतेः कर्मणि निष्ठा, गतिरनन्तरः (६, २,४९), इतिः गतेः प्रकृतिस्वरत्वम् । सवाय छन्दसि जवसवौ वक्तव्यौ (३, ३, ५७ वा०) इति निपातनात् अच् चित्स्वरः (६, ४, १६६) । रात्री, रात्रेश्चाजसौ (४, १, ३१), इति ङीप्, यस्येति च (६, १, १४८), इतीकारलोपः । आरैक् रिचिरं विरेचने (रु० उ०), लङि बहुलञ्छन्दसि (२, ४, ७३), इति विकरणस्य लुक् लघूपधगुणे (७, ३, ८६), हल्ड्याभ्यः (६, १, ६९), इति तिलोपः, वर्णव्यापत्त्या व्यत्ययेन पकारस्यैकारः (३, १, ८५)

(ज्यातिषां इदम् ज्योतिः श्रेष्ठम) ग्रह नक्षत्र आदि सकल ज्योतियोंमें यह उषा नामक ज्योति सबसे बढ़कर है अर्थात् ग्रह नक्षत्र आदि केवल अपनेको ही प्रकाशित करते है दूसरेको प्रकाशित नहीं

करते, चन्द्रमा यद्यपि दूसरोंको प्रकाशित करता है परन्तु उसका प्रकाश उतना स्पष्ट नहीं है और उषाका प्रकाश तो एक साथ सब जगत्का अंधकार दूर करके विशेष प्रकाश फैला देता है (आ अगात्) ऐसा प्रकाश पूर्वदिशामें आया, और आने पर (चित्रः प्रकेतः) विचित्र प्रकारका और सकल पदार्थोंका ज्ञापक (विभ्वा अजनिष्ट) व्याप्त होकर प्रकट हुआ (यथा सवितुः प्रसूता रात्री) जैसे सूर्यसे उत्पन्न हुई रात्रि (उषसे सवाय) उषाकी उत्पत्तिके लिये (योनिं आरैक्) अपने अन्तिमभागरूप स्थानको कल्पना करती है ॥ १ ॥

१२ ३ १२ ३ २ ३ १२ ३ १ २र

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्

३ १२ ३ १२ ३ २उ ३ १२

यस्याः । समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं

३ २

आमिमाने ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । श्वेत्या इति उषसो नामधेयम् (निघ० १, ८, १२) रुशती दीप्ताश्च श्वेत्या श्वेतवर्णोषाः रुशद्वत्सा रुशन् दीप्तः सूर्यो वत्सो यस्याः सा तथोक्ता यथा मातुः समीपे वत्सः सञ्चरति एवमुषसः समीपे सूर्यस्य नित्यमवस्थानात् तद्वत्सत्वम् अथवा यथा वत्सो मातुः स्तन्यं रसं पिबन् चरति एवमुषसोऽवश्यायाख्यं रसम् पिबन् वत्स इत्युच्यते तादृशी सती आगात् आगतवती । आगतायाः उषसः कृष्णा कृष्णवर्णा रात्रिः सदनानि स्थानानि स्वकीयानि अन्त्यर्द्धयामलक्षणानि आरैक् आरेचितवती कल्पितवतीत्यर्थः उ इत्येतत् पूरणः अपि-चैते रात्र्युषसौ समानबन्धू समानेन एकेन सूर्याख्येन बन्धुना सख्या युक्ते यद्वा, सूर्येण सह सम्बद्धे, यथा उषा उदेष्यता सूर्येण सम्बद्धा एवं रात्रिरपि अस्तं गच्छता सूर्येण सम्बद्धा, अमृते मरणरहिते कालात्मकतया नित्यत्वात्, अनूची अनूच्यौ प्रथमं रात्रिः पश्चात् उषा इत्यनेनं क्रमेण गच्छन्त्यौ यद्वा, सूर्यगत्यनुसारेण गच्छन्त्यौ एवम्भूते वर्णं सर्वेषाम् प्राणिनाम् रूपम् आमिनाने - जनयन्त्यौ यद्वा, स्वकीयम् रूपम् हिंसन्त्यौ, उषसा नैशं तमो निवर्त्यते, प्रकाशात्मकमुषसो रूपं रात्र्या एवंविधे सत्यौ द्यावा द्योतमाने चरतः प्रतिदिवममावर्त्तेते यद्वा, द्यावा नभसोऽन्तरिक्षमार्गेण चरतः प्रतिदिवसं गच्छतः । अत्र निरुक्तम्, रुशद्वत्सा सूर्यवत्सा । रुशदिति वर्णनाम, रोचतेर्ज्वलतिकर्मणः

सूर्यमस्या वत्समाह, साहचर्याद्रसहरणाद्वा । रुशती श्वेत्यागात् । श्वेत्या श्वेततेररिचत् कृष्णा सदनान्यस्याः कृष्णावर्णा रात्रिः कृष्णम् कृष्यतेर्निकृष्टो वर्णः । अथैने संस्तौति समानबन्धू- समानबन्धने अमृते अमरणधर्माणावनूची अनूच्याविवितरेतरमभिप्रेत्य द्यावावर्णम् चरतस्ते एव द्यावौ द्योतनादपि वा द्यावा चरतस्तया सह इति स्यादामिमाने आमिन्वाने अन्योऽन्यस्याध्यात्मम् कुर्वाणे (निरु० नै० २, २०) इति । श्वेत्या, श्विता वर्णे (भ्वा० आ०), अस्माण्ण्यन्तात् अचो यत् (३, १, ९७), इति भावे यत्, णिलोपः अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् (५, २, १२७) अमृते अमृतं मरणमनयार्नास्तीति बहुव्रीहौ नञो जरमरमित्रमृता (६, २, ११६), इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । अनूची; अनुपर्वादञ्चतेः ऋत्विगित्यादिना क्विन् (३, २ ५९), अनिदिताम् (६, ४, २४), इति नलोपः, अञ्चतेश्चोपसंख्यानम् (४, १, ६ वा०), इति ङीप् अचः (६, ४, १३९) इत्यकारलोपे, चौ (६, ३, १३९), इति दीर्घः, अनुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः (६, १, १६१), इति ङीप उदात्तत्वम्, सुपां सुलुक् (७, १, ३९), इति विभक्तेर्लुक् । आमिमनि, मीनातेः क्रैयादिकस्य शानचि मीनातेर्निगमे (७, ३, ८१) इति ह्रस्वत्वम् ॥ २ ॥

(रुशती श्वेत्या) दीप्त श्वेतवर्णकी उषा (रुशद्वत्सा आगात्) प्रकाशमय है सूर्यरूप वत्स जिसका ऐसी आई (यस्याः कृष्णा सदनान् आरैक्) आई हुई उषाके लिये रात्रिने अपने पिछले पहररूप स्थानोंकी कल्पना करी, यह रात्रि और उषा दोनों (समानबन्धू) सूर्यनामकएकही है बांधव जिनका ऐसी अर्थात् उषाका उदयहोते हुए सूर्यसे संबंध होता है और रात्रिका भी अस्त होते हुए सूर्यसे सम्बन्ध होता है इसकारण सूर्यरूप बंधुवाली (अमृते) कालरूप नित्य होनेसे जिनका कभी मरण ही नहीं होता ऐसी (अनूची) पहिले रात्रि फिर उषा इस प्रकार क्रम से आने जाने वाली अथवा सूर्यकी गतिके अनुसार चलनेवाली (वर्ण आमिमाने) सकल प्राणियोंके रूपको उत्पन्न करती हुई अथवा अपने रूपको नष्ट करती हुई, उषासे रात्रिका अन्धकार दूर होता है और रात्रिसे उषाका प्रकाशस्वरूप दूर होता है ऐसी वह दोनों (द्यावा चरतः) अन्तरिक्ष मार्गसे प्रतिदिन विचरती हैं ॥ २ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो

३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
देवशिष्टे । न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तो-
२ ३ १ २ ३ १ २
षा सा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। स्वस्रोः भगिन्योः रात्र्युषसोः अध्वा सञ्चरणसाधनभूतो मार्गः समानः एक एव, येन आकाशमार्गेण उषा निर्गच्छति तेनैव रात्रिरपि, स च मार्गः अनन्तः अवसानरहितः तं मार्गं देवशिष्टे देवेन द्योतमानेन सूर्य्येणानुशिष्टे शिक्षिते सत्यौ अन्यान्या एकैका चरतः क्रमेण गच्छतः । अपिच सुमेके शोभनमेहने सर्वेषामुत्पादकत्वाच्छोभनप्रजनने नक्तोषासा रात्रिरुषाश्च विरूपे तमःप्रकाशलक्षणाभ्यां विरुद्धरूपाभ्यां युक्ते अपि समनसा समानमनस्के ऐकमत्यं प्राप्ते सत्यौ न मेथेते परस्परं न हिंस्तः तथा न तस्थतुः क्वचिदपि न तिष्ठतः सर्वदा लोकानुग्रहार्थं गच्छत इत्यर्थः । अन्यान्य। कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यं समासवच्च बहुलम् (८, १, १२ वा०) इत्यन्यशब्दस्य द्विर्भावः, तस्य परमाम्रेडितम् (८, १, १,) इत्याम्रेडितसञ्ज्ञायाम् अनुदात्तञ्च (८, १, ३) इत्याम्रेडितानुदात्तत्वम् । देवशिष्टे शासु अनुशिष्टौ (अदा० प०) शास्तेःकर्मणि निष्ठा यस्य विभाषा (७, २, १५) इतीट्प्रतिषेधः शास इदङ्हलोः (६, ४, ३४) इति उपधाया इत्वम् शासिवसिघसीनाञ्च (८, ३, ६०) इति षत्वम् तृतीया कर्मणि (६, २, ४८) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । मेथते मेथतिर्हि सार्थो भौवादिकोऽनुदात्तेत् । सुमेके मिह सेचने (भ्वा० प०) भावे घञ्, शोभनो मेहो ययोस्ते व्यत्ययेन ककारः (३ १ ८५) उत्तरपदस्य ञित् स्वरेणाद्युदात्तत्वम् द्व्यच्छन्दसि (६ २ ११९) इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम् । नक्तोषासा सुपां सुलुगिति (७ १ ३९) विभक्तेराकारः ॥ ३ ॥

(स्वस्रोः अध्वा समानः) उषा और रात्रिरूपा दोनों बहिनोंका आकाशरूप मार्ग एक ही है (अनन्तः) उनका वह मार्ग अविनाशी है (तं देवशिष्टे अन्यान्या चरितः) उस मार्गमें प्रकाशितमय सूर्यसे शिक्षा पाई हुई एक एक क्रमसे विचरती है (सुमेके नक्तोषासा) सकल प्राणियोंकी श्रेष्ठ उत्पत्ति करनेवाली रात्रि और उषा (विरूपे समनसा) अन्धकार और प्रकाशस्वरूप विरुद्ध रूपोंवाली और एक समान मति वाली हैं इस कारण (न मेथेते न तस्थतुः)न परस्पर स्पर्धा करता हैं न कहीं स्थिन रहती हैं. किंतु सदा लोकोंके ऊपर अनुग्रह करनेको आती जाती हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ २ ३२३ १ २ ३ १ २र ३ १
आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया
२र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वाचो अस्थुः । अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं
३ १ २ ३ १ २र
पीपिवाꣳसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥

ऋ० अत्रिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अश्विद्वयः । अथाभात्यग्निरिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । उषसाम् अनीकम् अनीकभूतम् अनीकं मुखम् उषसि प्रबुद्ध्यमान इत्यर्थः तादृशः अग्निः आ भाति दीप्यते अथवा उषसां मुखमाभाति दीपयति । उषः काले ह्यग्नयः प्रतिबुध्यन्ते किञ्च विप्राणां मेध विनां स्तोतॄणां देवयाः देवकामाः वाचाः स्तोत्राणि उदस्थुः उत्तिष्ठन्ति । यस्मादेवं तस्मात् हे रथ्या ! रथस्वामिनावश्विनौ ! अर्वाञ्चा अस्मदभिमुखावश्विनौ नूनम् अद्य अस्मिन् यागदिने इह यागे यातम् आयातम् । कं प्रति? पीपिवांसं स्वाङ्गैः परिवृद्धं घर्मं प्रदीप्तं यज्ञं यद्वा पिपीवांसम् आप्यायितं घर्मक्षरणरूपं सोमरसम्, अथवा घृतादिना पिपीवांसं घर्मं प्रवर्ग्यम् अच्छ अभि लक्ष्य आयातम् प्रवर्ग्यस्य सूक्तस्य विनियोगो बह्वृचानाम् ॥ १ ॥

(उषसां अनीकं अग्निः आभाति) उषःकालोंका मुखरूप अग्नि दीप्त होता है (विप्राणां देवयाः वाचः उदस्थुः) विद्वान् स्तोताओंकी देवताओंको चाहनेवाली स्तुतियें उठती हैं इसकारण (रथ्या अश्विना) हे रथके अभिमानी अश्विनीकुमारो ! (अर्वाञ्चा) हमारे अभिमुख होतेहुए (नूनं इह) आज यज्ञके दिन इस यज्ञमें (पीपिवांसं घर्मं अच्छ आयातम्) अपने अङ्गोंसे पुष्ट दीप्त यज्ञके प्रति अथवा गोघृतादिसे पुष्ट प्रवर्ग्यके प्रति आओ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
न सꣳस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्वि-
२र ३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
नोपस्तुतेह । दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्त्तिं
३ २ ३ १ २
दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे अश्विनौ ! संस्कृतं धर्मं न प्रमिमीतः न हिंस्तां

किन्तु अन्ति अन्तिके घर्मसमीपे नूनम् इदानीम् इह यज्ञे गमिष्ठा गन्तृतमौ युवाम् अश्विना अश्विनौ उपस्तुता उपस्तुतौ भवतः दिवाभिपित्वे दिवसस्याभिपतने प्रातःकाले अवसा रक्षणनिमित्तेनान्नेन सह अवर्त्ति वर्त्तिर्जीवनं तदभावो अवर्त्तिस्तद्रहितं यथान्नम् आगमिष्ठा आगन्तृतमौ । आगत्य च दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय शम्भविष्ठा सुखस्य भावयितारौ भवतः ॥ २॥

हे अश्विनीकुमारो ! (संस्कृतं न प्रमिमीतः) संस्कार किये हुए घर्मको नष्ट न करो, किन्तु (अन्ति नूनं इह गमिष्ठा अश्विना उपस्तुता घर्मके समीप इस समय इस यज्ञमें अवश्य पहुँचनेवाले तुम अश्विनीकुमार स्तुति किये जाते हो (दिवाभिपित्वे अवसा अवर्त्तिं प्रत्यागमिष्ठा) दिनका प्रारम्भकाल प्रातःकाल होनेपर रक्षाकरनेवाले अन्नसहित, जैसे प्राग जाते हुए को अन्न प्राप्त होता है तैसे प्राप्त होते हो और आकर (दाशुषे शम्भविष्ठा) हवि देनेवाले यजमानको सुख देते हो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
उता यातꣳ सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता
१ २ २ ३ १ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
सूर्यस्य । विदा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं
३ २ ३ २ २र
पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । अह्नो द्वेधा, त्रेधा- पञ्चधा, पञ्चदशधा, इति नानाविधा भागाः सन्ति, इह पञ्चधा विभागा अ.स्ताः, उत अपिच आयातम् आगच्छतम् । कदा ? सङ्गवे सङ्गवकाले संगच्छन्ते गावो दोहभूमिं यस्मिन् काले स सङ्गवः । रात्र्यपरभागकाले हि गावो वने हिमतृणानि भक्षयन्ति, भक्षयित्वा पुनर्दोहाय सङ्गवे प्रतिनिवर्त्तन्ते, तथा प्रातः कालेऽपि तथा मध्यन्दिने अह्नो मध्यकाले, सूर्यस्य उदिता उदितौ अभ्युदये अत्यन्तप्रवृद्धसमये अपराह्णे इत्यर्थः एतत्सायाह्नस्याप्युलक्षणम् । न केवलमुक्तेष्वेव कालेषु, किन्तर्हि ? दिवा नक्तं सर्वदा शन्तमेन सुखतमेन अवसा रक्षणेन हविषा वा निमित्तेन आयातम् । किमर्थमागम्यते ? पूर्वमेवान्यैर्देवैः स्वीकृतत्वात् ? नेत्याह, इदानीमपि पीतिः इतरदेवानां पानं न आ ततान तनोति । अश्विना अश्विना इह आयातमिति शेषः ॥ ३ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो ! (अन्हः)दिनके (सङ्गवे) सङ्गव कालमें, पिछलीरातमें गौएँ ठण्डी घास खाकर दुहनेके स्थान पर आती हैं उसको सङ्गवकाल कहते हैं उस समय (प्रातः) प्रातःकाल में (मध्यन्दिने) मध्याह्नमें (सूर्यस्य उदिता) सूर्यकी प्रचण्डताके समय अपराह्न कालमें (दिवा) दिनमें (नक्तम्) रातमें अर्थात् हरसमय (शन्तमेन अवसा) परमसुखदायक रक्षा सहित (आयातम्) आओ (उत) और (इदानीं पीतिः न) इस समय अन्य देवताओंके पानकी समान (तवान) सोमपान करो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकोनविंशाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः समाप्तः

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्द्धे रजसो
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३
भानुमञ्जते । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः
२ ३ १ २र ३ १ २
प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

ऋ० गोतमः । छ० जगती । दे० उषाः । अथ पञ्चमे खण्डे—एता उ त्या इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । उ, इत्येतत् पादपूरणम् ।त्याः ता एताः उषसः प्रभातकालाभिमानिन्यो देवताः केतुम् अन्धकारावृतस्य सर्वस्य जगतः प्रज्ञापकं प्रकाशं अक्रत अकृपत कृतवत्यः यस्मादेवं तस्मात् उषसः रजसः अन्तरिक्षलोकस्य पूर्वे अर्द्धे प्राचीने दिग्भागे भानुं प्रकाशम् अञ्जते व्यक्तीकुर्वन्ति । धृष्णवः धर्षणशीलाः योद्धारः आयुधानीव यथासिप्रभृतीन्यायुधानि संस्कुर्वन्ति, एवं निष्कुर्वाणाः स्वभासा जगत् संस्कुर्वाणाः गावः गमनस्वभावाः अरुषीः आरोचमानाः मातरः सूर्यप्रकाशस्य निर्मात्र्यः जगज्जनन्यो वा उषसः प्रति यंति प्रतिदिवसं गच्छन्ति । एवंविधा उषसः अस्मान् रक्षन्त्वित्यर्थः अत्र निरुक्तम्, एतास्ता उषसः केतुमकृषत प्रज्ञानमेकस्या एव पूजनार्थे बहुवचनं स्यात् । पूर्वे अर्द्धेऽन्तरिक्षलोकस्य समञ्जते भानुना । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः निरित्येष समित्येतस्य स्थाने । समीदेषां निष्कृतं जारिणीवेत्यपि निगमो भवति प्रतियंति गावो गमनादरुषीरारोचनान्मातरो भासो निर्मात्र्यः(ई० ६, ७) इति करोतेर्लुङि मंत्रे घस (२, ४,८०) इति च्लेर्लुक् । निष्कृण्वानाः, कृवि हिंसाकरणयोश्च (भ्वा० प०), अस्मात्ताच्छीलिकश्चानश् (३, २, १२९) धिन्विकृण्व्योर च (३, १, ८०) इति उप्रत्ययः।

इदुपधस्य चाप्रत्ययस्य (८, ३ ४१)—इति विसर्जनीयस्य षत्वम् कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम (६, २, १३९) ॥ १ ॥

(त्याः एताः उषसः) वह यह प्रभातकालके अभिमानी देवता (केतुं अकृत) अन्धकारसे ढकेहुए सकल जगत्के ज्ञापक प्रकाशको करते हुए इसकारण (रजसः पूर्वे अर्द्धे) अन्तरिक्षके पूर्वकी ओरके अर्धभागमें (भानुं अञ्जते) प्रकाशको प्रकट करते हैं (धृष्णवः आयुधानि इव) जैसे योधा शस्त्रोंका संस्कार करतेहैं तैसे (निष्कृण्वानाः) अपने प्रकाशसे जगत्का संस्कार करते हुए (गावः अरुषीः) गमनका है स्वभाव जिनका ऐसे और दिपनेवाले (मातरः उषसः) सूर्यके प्रकाश को रचनेवाले वा जगत्की जननीकी समान प्रभातकालके अभिमानी देवता (प्रतियंति) प्रतिदिन आते हैं वह देवता हमारी रक्षा करें ॥१॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

अयुक्षत । अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं

३ १ २र

भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया ।अरुणा आरोचमानाः भानवः औषस्यो दीप्तयः वृथा अनायासेन स्वयमेव उदपप्तन् उद्गमन् । तदनन्तरम् उषसश्च स्वायुजः सुखेन रथे आयाक्तुं शक्याः अरुषीः शुभ्रवर्णाः गाः पूर्वमुत्थितान् रश्मीन् ईदृशीः स्ववाहनभूताश्चतुष्पदी गा एव अयुक्षत स्वरथे अयोजयन् । उक्तञ्च, अरुण्या गाव उषसाम (निघ० १; १५, ७) इति। एवं गाभिर्युक्तं रथमारुह्य उषसः पूर्वथा पूर्वेष्वतीतेष्वहःसु वयुनानि सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानानि अक्रन् अकार्षुः उषःकाले जाते हि सर्वे प्राणिनो ज्ञानयुक्ता भवंति तदनन्तरम् अरुषीः आरोचमानास्ता उषसः रुशन्तं रुषदिति वर्णनाम; रोचतेर्ज्वलितिकर्मणः (निरु० नै ५, १३) इति यास्कः शुक्लवर्णं भानुं सूर्यम् अशिश्रयुः असेवन्त तेन सहैकीभवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

(अरुणाः भानवः) अरुण वर्णके उषःकालके प्रकाश (वृथा उदपप्तन्) अनायास ही उदय होते हैं तदनन्तर उषःकालके देवता (स्वायुजः) सुखपूर्वक रथमें जोड़नेके योग्य (अरुषीः गाः अयुक्षत) स्वेतवर्णकी पहिले उठीहुई किरणोंको अपने वाहनभूत चौपाये वृषभों की समान अपने रथमें जोड़ते हुए इसप्रकारके रथपर चढ़कर(उषासः)

प्रभातकालके अभिमानी देवता (पूर्वथा वयुनानि अक्रत) पहिले दिनोंमें सकल प्राणियोंके ज्ञानोंको करते हुए, उषःकाल होने पर ही सकल प्राणी ज्ञानयुक्त होते हैं, तदनन्तर (अरुषीः) विराजमान यह प्रभातकालके देवता (रुशन्तं भानुं अशिश्रयुः) शुक्लवर्ण सूर्यकी सेवा करते हैं अर्थात् सूर्यके साथ एकाकार होजाते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २३२३ २ ३ १ ३ २ ३ १

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन यो-

२ ३ १ २३१२ २३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३

जनेना परावतः । इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे

२उ २ १ २ ३ २

विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । नारीः नेत्र्यः उषसः विष्टिभिः निवेशकैः स्वकीयैस्तेजोभिः समानेन योजनेन एकेनैवोद्योगेन आ परावतः आ दूरदेशात् आ पश्चिमदिग्विभागात् अर्चन्ति नभःप्रदेशं पूजयन्ति कृत्स्नं जगत् युगपदेव व्याप्नुवन्तीत्यर्थः तत्र दृष्टान्तः, अपसो न शुभ्रकर्मणोपेताः पुरुषा यथा स्वकीयैरायुधैर्धाटीमुखेन सर्वं देशं व्याप्नुवन्ति तद्वत् । किं कुर्वते ? सुकृते शोभनस्य कर्मणः कर्त्रे, सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते सुदानवे कल्याणीर्दक्षिणा ऋत्विग्भ्यो ददते, यजमानाय विश्वे दह सर्वमेवेषमन्नं वहन्तीरावहन्त्यः प्रयच्छन्त्य इत्यर्थः नारीः—नृ नये (८, ३, १०) ऋदोरप् (३, ४, ५७) नृनरयोर्वृद्धिश्च (४,१,७३ग०)- इति शार्ङ्गरवादिषु पाठाङ्ङीन् जसि वाच्छन्दसि (६, १, १०६) इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् । अपसः—अपःशब्दात् अर्श आदिभ्योऽच् (५, २, १२७)—इत्यच् सुपां सुलुक् (७, १, ३९) इति जसः सुः, व्यत्ययेन प्रत्ययात् पूर्वस्योदात्तत्वम् । विष्टिभिः—विश प्रवेशने (तु० प०) विशन्ति प्रविशन्तीति विष्टयः किरणा क्तिच्क्तौ च संज्ञायाम् (३, ३, १७४)—इति क्तिच् । विश्वा—सुपां सुलुक् (७, १ ३९)- इत्यमा डादेशः ॥ ३ ॥

(सुकृते सुदानवे) सुकर्म करनेवाले और श्रेष्ठदान देनेवाले (सुन्वते यजमानाय) अभिषव करनेवाले यजमानके अर्थ (विश्वेदह इषं वहन्तीः) बहुतसा अन्न देते हुए (नारीः) जगत्को प्रेरणा करने वाले उषःकालके देवता (विष्टिभिः) अपने तेजोंसे (समानेन योजनेन आ परावतः अर्चन्ति) एक ही उद्योगसे दूर देश। पश्चिमदिशा

पर्यंत आकाशको पूजते हैं अर्थात् एकसाथ व्याप्त होजाते हैं (अपसः न) जैसे कि-युद्ध करनेमें लगे हुए पुरुष अपने आयुधों से सब देशों में फैल पड़ते हैं ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २३ ३ २ ३ २ २ ३ २
अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यू३षाश्चन्द्रा
३क २र ३ १ २ १ २ ३ २ ३ १ २
मह्यावो अर्चिषा । आयुक्षातमश्विना यात
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २
रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

ऋ० दीर्घतमाः जगती । दे० अश्विदेवद्वयः । अथ अबोध्यग्निर्ज्म इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । अयम् अग्निः निहितः सन् ज्मः ज्मायाः पृथिव्याः वेदिलक्षणाया सम्बन्धी सन् अबोधि प्रबोधितः । किञ्च सूर्यः उदेति । ततो मही महती उषाः अर्चिषा प्रकृष्टेन तेजसा चन्द्रा प्राणिनामाह्लादनी सती वि आवः व्यवृणोत् तमांसि निवारयति वृणोतेर्लुङि मन्त्रे घस (२ ४, ८०)—इति च्लेर्लुक् छन्दस्यपि दृश्यते (६, ४, ७३)—इत्याडागमः यत इयमुषा उदेति यतश्चायमग्निः प्रबुद्धो भवति अतः कारणात् हे अश्विनौ ! युष्मत्सम्बन्धिनं रथं यातवे देवयजनगमनाय रासभाभ्याम् आयुक्षताम् युञ्जाथाम् । तथा सविता सर्वकर्मणोऽनुज्ञाता देवः जगत् जङ्गमं प्राणिजातं पृथक् स्वस्वकर्मानुरोधेन प्रासावीत् प्रसुवतु अनुजानातु ॥ १ ॥

(अग्निः ज्मः अबोधि) यह अग्नि स्थापित होनेपरवेदीसे प्रज्वलित हुआ (सूर्यः उदेति) सूर्य उदय होता है (मही उषा अर्चिषा चन्द्रा वि आवः) बडीभारी उषा बडेभारी तेजसे प्राणियोंको आनन्द देती हुई अन्धकारोंको दूर करती है (अश्विना) इसकारण हे अश्विनीकुमारो ! (रथं यातवे आयुक्षाताम्) रथको यज्ञशालामें जानेके लिये जोडो (सविता देवः जगत पृथक् प्रासावीत्) सकल कर्मोंकी आज्ञा देनेवाला देवता सकल प्राणियोंको अपने २ कर्ममें लगावै ॥१॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन मधुना
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
क्षत्रमुक्षतम् । अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं
३ २उ ३ १ २
वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे. अश्विना! यद् यदा वृषणं वृष्ट्यादिवर्षकं रथं युञ्जाथे योजयथः तदा नः क्षत्रम् अस्मदीयं बलं क्षत्रियजातिर्वा घृतेन उदकेन मधुना मधुरेण उक्षतं सेचयतं प्रवर्द्धयतमित्यर्थः यद्वा घृतेन क्षरणरूपेण मधुना मधुरेण अमृतेन उक्षतम् युष्मद्रथस्थेनामृतेनास्मदीयं बलं प्रवर्द्धयतमित्यर्थः। अश्विनोः रथस्य मधुपूर्णत्वम् मधुवाहनो रथ-इत्यादिषु प्रसिद्धम्। किञ्च, अस्माकं पृतनासु अस्मदीयासु पुत्रभृत्यादि-मनुष्यरूपासु प्रजासु ब्रह्म ब्राह्मं तेजः जिन्वतम् यद्वा, पृतनासु परकीयासु ब्रह्म परिवृढमन्नमस्माकं जिन्वतं प्रीणयतम्। वयञ्च शूरसातौ शूराणां प्रहारादिना युक्ते संग्रामे धना तदीयानि धनानि बहुविधानि भजेमहि लभेमहि ॥ २ ॥

(अश्विना) हे अश्विनीकुमारो! (यद् वृषणं रथं युञ्जाते) जब अभीष्ट फल देनेवाले रथको जोडते हो तब (नः क्षत्रं घृतेन मधुरेण उक्षतम्) हमारे बलको वा हमारी क्षत्रिय जातिको घृतकी समान पोषक अमृतसे सींचते हो और (अस्माकं पृतनासु ब्रह्म जिन्वतम्) हमारी पुत्र सेवकादि प्रजाओं में ब्रह्मतेज वा अन्नको दो और (वयं शूरसातौ धना भजमहि) हम शूरोंके संग्राममें उनके धनको पावें २

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अर्वाङ्त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
अश्विनोर्यातु सुष्टुतः। त्रिबन्धुरो मघवा विश्व-
२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
सौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

अथ तृतीया। अर्वाङ् अस्मदभिमुखः अश्विनोः रथः यातु गच्छतु कीदृशः? त्रिचक्रः चक्रत्रययुक्तः, मधुवाहनः मधुवोढा, जीराश्वः शीघ्रगाम्यश्वोपेतः, सुष्टुतः अतएवास्माभिः स्तूयमानः, त्रिबन्धुरः निम्नोन्नतकाष्ठत्रयोपेतः सारथ्याश्रयस्थानं बन्धुरं मघवा धनवान्, विश्वसौभगः सर्वसौभाग्योपेतः। ईदृशोऽश्विनोः रथः नः अस्माकं द्विपदे पुत्रादिप्रजायै चतुष्पदे पशवे च शं सुखम् आ वक्षत् आवहतु वहेर्लेटि अडागमः ॥ ३ ॥

(अश्विनोः रथः अर्वाक् यातु) अश्विनीकुमारोंका रथ हमारे सन्मुख आवै (त्रिचक्रः मधुवाहनः) तीन पहियोंवाला और अमृतका धारण करनेवाला (जीराश्वः, सुष्टुतः) शीघ्रगामी घोडोंसे युक्त और हमारा स्तुति किया हुआ (त्रिबन्धुरः मघवा विश्वसौभगः) नीचे ऊँचे तीन

काठोंवाला धनभरा और सकल सौभाग्ययुक्त वह रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत) हमारे दो पाये पुत्रादि और चौपाये गौ घोड़े आदिको सुख देय ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।

२ ३ १ २ १ २

अच्छा वाजꣳ सहस्रिणम् ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ प्र ते धारा असश्चत इति चतुर्ऋचं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सोम ! ते तव असश्चतः सङ्गरहिताः धाराः सहस्रिणम् अपरिमितसंख्याकं वाजम् अन्नं अच्छ अस्मदर्थं प्र यन्ति प्रगच्छन्ति । तत्र दृष्टान्तः, दिवो न वृष्टयः यथा द्युलोकाद् वर्षधारा निःसङ्गा प्रजानामपरिमितमन्नं प्रयच्छन्ति तद्वदित्यर्थः ॥ १ ॥

हे सोम ! (ते असश्चतः धाराः) तेरी सङ्गरहित धारें (सहस्रिणं वाजं अच्छ प्रयन्ति) अपरिमित अन्न हमें देती हैं (दिवः वृष्टयः न) जैसे द्युलोककी वर्षाकी धारें प्रजाओंको बहुतसा अन्न देती हैं ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।

१ २ ३ १ २र

हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हरिः हरितवर्णः सोमः विश्वा विश्वानि प्रियाणि देवानां प्रीतिकराणि काव्या काव्यानि कर्माणि चक्षाणः पश्यन् आयुधा स्वकीयान्यायुधानि तुञ्जानः राक्षसान् प्रति प्रेरयन् अभ्यर्षति यागं प्रति गच्छति ॥ २ ॥

(हरिः) पापहारी वा हरेवर्णका सोम (विश्वा प्रियाणि काव्या चक्षाणः) सकल देवताओंके प्रिय कर्मोंको देखता हुआ (आयुधा तुञ्जानः) अपने शस्त्रोंको राक्षसोंके ऊपर प्रेरणा करता हुआ (अभ्यर्षति)यज्ञमें आता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः ।

३ २ २र

श्येनो न वꣳसु षीदति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। सुव्रतः सुकर्मा सः सोमः आयुभिः मनुष्यैर्ऋत्विग्भिः मर्मृजामानः शोध्यमानः इभः गतभयः राजा इव यथा राजा, श्येनो न यथा श्येनः, तथा, वंसु उदकेषु वसतीवरीषु सीदति ॥ ३ ॥

(सुव्रतः सः) श्रेष्ठ कर्मवाला वह सोम(आयुभिः मर्मृजानःइभः राजा इव) ऋत्विजोंसे शुद्ध किया जाता हुआ निर्भय राजाकी समान (श्येनः न) वाज पक्षीकी समान वेगसे (वंसु सीदति) वसतीवरी जलोंमें पहुँचता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ १र

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।

३ १ २ ३ १ २

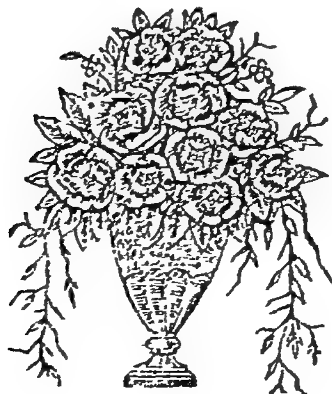
पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥

अथ चतुर्थी । हे इन्दो ! सोम ! पुनानः पूयमानस्त्वं दिवः अधि दिवि स्थितानि उत अपि च पृथिव्याः अधि पृथिव्यां स्थितानि अधीति सप्तम्यर्थानुवादः । विश्वा विश्वानि वसु वसूनि धनानि नः अस्मभ्यम् आ भर आहर ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्कभूपाल-
साम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये
सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे ऊनविंशोऽध्यायः॥ १९ ॥

(इन्दो पुनानः) हे सोम ! पूयमान तू (दिवः अधि) द्युलोकमें स्थित (उत पृथिव्याः) और पृथ्वीलोकमें स्थित (विश्वा वसु नः आभर) सकल धन हमें दे ॥ ४ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकोनविंशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः
एकोनविंशोऽध्यायश्च समाप्तः



❀ श्रीहरिः ❀

अथ विंशोऽध्याय आरभ्यते

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः ।

३ १ २र ३ १ २

देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥

ऋ० नृमेधः । छ० गायत्री । दे० सोमः । तत्र प्रथमे खण्डे-प्रास्य धारेति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तं,तत्र प्रथमा।अस्य सोमस्य धाराः ओजसः ओजसा बलेन अक्षरन् असिञ्चन्। कीदृशस्य ? वृष्णोः वर्षकस्य सुतस्य अभिषुतस्य देवान् अनु प्रभूषतः प्रभवितुमिच्छतः ॥ १ ॥

(वृष्णोः सुतस्य) अभीष्ट फलोंकी वर्षा करनेवाले और संस्कार कियेहुए (देवान् अनु प्रभूषतः) देवताओंके विषै प्रभु बननेकी इच्छा वाले (अस्य धाराः ओजसः प्राक्षरन्) इस सोमकी धारें बलसे सींचीगई ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २

सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा ।

१ २ ३ २ ३क २र

ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सप्तिम् अश्वस्थानीयं सर्पणस्वभावं वा सोमं मृजंति शोधयन्ति । के ? गृणन्तः स्तुवन्तः वेधसः विधातारः कारवः कर्मकर्त्ताकरोऽध्वर्य्वादयः गिरा स्तुत्या साधनेन । कीदृशं सप्तिम् ? ज्योतिः दीप्यमानं सोमं जज्ञानं जायमानं प्रवृद्धमित्यर्थः अथवा ज्योतिर्जायमानम् अयं वै ज्योतिर्यत्सोमः इति श्रुतेः । उक्थ्यं स्तुत्यम् ॥ २ ॥

(वेधसः कारवः) यज्ञकर्मके विधाता अध्वर्यु आदि (गिरा गृणन्तः) वाणीसे स्तुति करते हुए (ज्योतिः जज्ञानम्) दीप्यमान और बढ़ते हुए (उक्थ्यं सप्तिं मृजन्ति) स्तुतियोग्य और बहते हुए सोमको शोधते हैं॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो ।

१ २ ३ १ २

वर्धा समुद्रमुक्थ्य ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे सोम! उक्थ्य! स्तुत्य। प्रभूवसो प्रभूतधन! पुनानाय पूयमानस्य ते तव तानि तेजांसि सुपहा शोभनाभिभावुकानि यस्मादेवं तस्मात् समुद्रं समुद्रसदृशं तं वर्ध वर्द्धय रसेन पूरयेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(प्रभूवसो उक्थ्य सोम) हे बहुतधनवाले स्तुतियोग्य सोम! (पुनानाय ते) पूयमान तेरे (तानि सुषहा) वह तेज श्रेष्ठ रक्षा करनेवाले हैं (समुद्रं वर्द्ध) समुद्रकी समान उसको रससे पूर्ण कर ॥ ३ ॥

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥१॥

ऋ० नृमेधः वामदेवः वा । छ० द्विपदा पंक्तिः । दे० इन्द्रः । अथैषेति द्विपदं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। यः इन्द्रः इति नाम श्रुतः देवसमूहैः प्रख्यातः एषः ऋत्वियः ऋतौ वसन्तादौ काले भवः य एषः ब्रह्मा सर्वतः परिवृढः तमहं गृणे स्तौमि ॥ १ ॥

(यः इन्द्रः नाम श्रुतः) जो इन्द्र नामसे प्रसिद्ध है (एषः ऋत्वियः ब्रह्मा) जो यह वसंतादिमें यज्ञादिके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है (गृणे) उसकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २

त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः ॥२॥

अथ द्वितीया। हे शवसः! बलस्य पते पालकेन्द्र! अतिशयेन बलवन्नित्यर्थः। तथो शाखान्तरे बलेनोत्पत्तित्वं श्रूयते उरसो बाहुभ्यां पञ्चदशं निरमिमीत तमिन्द्रो देवता विसृज्यते, इत्यारभ्य, तस्मात्ते वीर्यवंत इति श्रुतेः। त्वामित् त्वामेव शंयतः न सम्यङ् नियच्छतः पुरुषस्येव वेदस्य सम्बन्धिनः गिरः स्तुतयः यन्ति प्राप्नुवन्ति ॥ २ ॥

(शवसः पतेः) हे बलके स्वामी अर्थात् परम बलवान् इंद्र! (त्वामित्) तुमको ही (संयतः न) सम्यक् प्रकार नियममें रहनेवाले पुरुषके सी (गिरः) वेदमंत्रकी स्तुतियें (यंति) प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ

वि स्रुतयो यथा पथा० ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। विस्रुतयः इत्यृचः प्रतीकम्, तस्यादितो व्याख्यानं छन्दसि प्रत्यग्यम् ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र! (पथा स्रुतयः यथा) जैसे राजमार्गसे छोटे२ मार्ग अनेकों ओरको जाते हैं तैसे ही (त्वत् रातयः वियंतु) तुमसे अनेकों प्रकारके दान उपासकोंकी ओरको जाते हैं ॥ ३ ॥

२ ३ २३ २३१२
आ त्वा रथं यथोतये० ॥ १ ॥

ऋ० प्रियमेधः। छ० अनुष्टुप्। दे०इंद्रः। यथा त्वा रथमिति तृचं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमायाः इति प्रतीकमत्र पठ्यते। तथापि व्याख्यायते। हे इंद्र! त्वा त्वां वयम् आवर्त्तयामसि आवर्त्तयामः। किमर्थम् ऊतये अस्माकं रक्षणाय सुम्नाय सुखाय च। किमिव? रथं यथा ऊतये सुखाय चावर्त्तयति तद्वत्। कीदृशं त्वाम्? तुविकूर्मिम् बहुकर्माणम् ऋतीषहं हिंसकानामभिभवितारम्। हे इंद्र! शविष्ठ अतिशयेन बलवन्! सत्पतिं सतां पालकं इंद्रं त्वामिति समन्वयः १

हे इंद्र! हम (ऊतये सुम्नाय) अपनी रक्षा और सुखके लिये (रथं यथा) रथकी समान (तुविकूर्मिं ऋतीषहम्) अनेकों कर्म वाले और हिंसकोंका तिरस्कार करनेवाले (शविष्ठं सत्पतिम्) अत्यन्त बलवान् और सज्जनोंके रक्षक (त्वा इंद्रं आवर्त्तयामसि) तुझ इंद्रकी परिक्रमा करते हैं ॥ १ ॥

१२ ३१२ ३१२३ १२
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते।
१ २ ३२
आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे तुविशुष्म! प्रभूतबल! अतएव तुविक्रतो बहुविचित्रकर्मवन्! अथवा बहुप्रज्ञ! कर्मणः पृथगभिधानात् हे शचीवः बहुकर्मोपेत! पूजनीयेन्द्र! विश्वया विश्वव्यातेन महित्वना महत्वेन आ पप्राथ आपूरितवानसि अविशेषाद् विश्वमित्यर्थः ॥ २ ॥

(तुविशुष्म तुविक्रतो) महान् बली और अनेकों विचित्र कर्मवाले (शचीवः मते) अनेकों पराक्रमोंसे युक्त हे पूजनीय इंद्र! (विश्वया महित्वना आपप्राथ) विश्वव्यापी महिमासे तुमने विश्वभरको पूर्ण करा है

१२ ३२ ३१ २र ३१२३१२
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः।
२ ३ १२ ३१२
हस्ता वज्रꣳ हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। महः महतः यस्य ते तव यच्छब्दः प्रकृतपरामर्शी प्रकृतसूक्तमृग्द्वयम तन्नत्यतुविकूर्मिमृतीषहमित्याद्युक्तलक्षणस्य तवेत्यर्थः महिना महत्वेन हस्ता तव हस्तौ ज्मायन्तं पृथिव्यां सर्वतो व्याप्नुवन्तं हिरण्ययम हिरण्यमयम वज्रम् हस्तौ ईयतुः परिगृहीतः सर्वदास्माकम् भयनिवारणायेति भावः ॥ ३ ॥

(यस्य महः ते हस्ता) जिस तुझ महापुरुषके हाथ (ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रम् परीयतुः) पृथिवीमें सर्वत्र व्यापनेवाले सुवर्णमय वज्रको ग्रहण करते हैं ॥ ३ ॥

२३ ३ १ २ ३१२ ३१२ ३१२३ २

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्योः

१२ २३ १ २३२ ३१ २

नार्वा। सूरो न रुरुक्वां छतात्मा ॥ १ ॥

ऋ० शिवं तमः। छं० विराट्। दे० अग्निः। आ यः पुरमिति तृचात्मकं चतुर्थ सूक्तम् तत्र प्रथमा। यः अग्निः नार्मिणीं नर्मवतां यजमानानाम् सम्बन्धिनीमुत्तरवेदिं यद्वा नृणां मनसि स्थितां यजमानानां यज्ञार्थं भूमिं प्रत्यगन्वा गमनमनीषा विद्यते ताम् पुरं तत् स्थानम् अदीदेदत् दीपयति। कीदृशोऽयम्? अत्यः अपेक्षितदेशं प्रत्यतनशीलः कविः क्रान्तदर्शी। तत्र दृष्टान्तः अर्वा अरणकुशलः नभन्यः न नभस्याकाशे शवः नभन्या वायुरिव। किञ्च शतात्मा, शतम् सहस्रमित्यपरिमितवचनः तच्च यजमानगृहापेक्षया आवहनीयगार्हपत्याद्यपेक्षया वा अपरिमितरूपत्वम्। अथवा मित्रवरुणादिरूपभेदेन अग्नेर्मित्रादिरूपत्वं त्वमग्ने वरुणो जायसे, इन्द्रम् मित्रम् वरुणमग्निमाहुः, इत्यादि श्रुतिषु प्रसिद्धम्, अग्निरेव इंद्राद्यात्मकत्वमाहुरिति द्वितीयमन्त्रस्यार्थः तादृशोऽयम् सूरो न सूर्य इव रुरुक्वान् दीप्यमानः रुच् दीप्तौ (भ्वा० आ०) छान्दसस्य लिटः क्वसुः अतस्तादृशोऽग्निरस्ति उत्कृष्टं वर्तत इति वत्रान्वयः ॥ १ ॥

(यः) जो अग्नि (नार्मिणीं पुरम) यजमानोंकी वेदीरूप स्थानको (अदीदेत्) दीप्त करता है (यः अर्वा नभन्यः न अत्यः कविः) जो अग्नि गमनशील वायुकी समान अपेक्षित स्थान पर जानेवाला और क्रान्तदर्शी है (शतात्मा सूरः न रुरुक्वान्) अनेकों यजमानोंकी यज्ञशालाओंमें अनेकों रूपसे रहनेवाला जो अग्नि सूर्यकी समान दीप्यमान रहता है ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २३२ ३ २ ३ १२

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांँसि

३ १ २ २ ३ १ २ ३ २
शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अपाॅं
३ १ २
सधस्थे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अयमग्निः द्विजन्मा द्वाभ्यामरणिभ्यां जायमानः यद्वा, मथनात् प्रथमम् जन्म, उत्पत्त्यनन्तरम् आधानपवमानेष्ट्यादिसंस्काररूपं द्वितीयं जन्म, एवं द्विजन्मत्वम् अथवा, द्यावापृथिवीभ्यामुत्पन्नत्वात्, तादृशोऽग्निः त्रीणि रोचनानि क्षित्यादिस्थानानि गार्हपत्यादीनि वा अभि शुशुचानः अभितः प्रकाशयन् न केवलं त्रीण्येव किन्तु विश्वा राजांसि सर्वाण्यपि रञ्जनात्मकानि क्षित्यादिलोकान् शुशुचानः दीपयन् होता देवानामाह्वाता यजिष्ठः यष्टृतमः सन् अपाम् प्रोक्षणाद्युदकानां सधस्थे सहस्थाने यागदेशे अस्थात् तिष्ठति ॥ २ ॥

यह अग्नि (द्विजन्मा) दो अरणियोंसे मथने पर उत्पन्न हुआ (त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानः) गार्हपत्य आदि तीन स्थान और सकल पृथिव्यादि लोकोंको प्रकाशित करता (होता यजिष्ठः) देवताओं का आह्वान करने वाला और परमपूजनीय होता हुआ (अपाम् सधस्थे अस्थात्) प्रोक्षणादिके जलोंके स्थान यागशालामें स्थित होता है।

३ २उ ३ २ ३२ ३ १ २ ३१
अयॅं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे
२र ३ २ २ ३' १ २ ३ १ २
वार्य्याणि श्रवस्या । मर्त्तो यो अस्मै सुतुको
३ १ २
ददाश ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । यः द्विजन्मा सः एव होता होमनिष्पादकः आह्वाता वा देवानाम् अरणीभ्यामुत्पन्नस्यैव गार्हपत्यद्वारा आहवनीयत्वात् सोऽयं विश्वा विश्वानि वार्याणि वरणीयानि कर्माणि ईडक्रन्दवृशंसदुहां ण्यतः (६ १, २१४), इत्याद्युदात्तत्वम् श्रवस्या श्रवस्यया श्रवोऽन्नं हविर्लक्षणं यशो वा तदिच्छया श्रवःशब्दात् क्यजन्तात् अ प्रत्ययात् (३, ३, १०२), इति भावे अप्रत्ययः अन्नाय यशसे वा दधे धारयति अस्मै उक्तस्वरूपायाग्नये यः मर्त्यः ददाश ददाति स सुतुकः शोभनपुत्रो भवति ॥ ३ ॥

(यः द्विजन्मा) जो दो अरणियोंसे उत्पन्न हुआ है (सः होता)

वह देवताओं का आह्वान करने वाला (अयम्) यह अग्नि (विश्वा वार्याणि ।) सकल श्रेष्ठ कर्मोंको (श्रवस्या दधे) हविरूप अन्न वा यशकी इच्छासे धारण करता है (अस्मै यः मर्त्यः ददाश) इस अग्निको जो मनुष्य यजमान हवि देता है (सुतुकः) वह श्रेष्ठ पुत्रवाला होता है

२ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रथ्ँ हृदि-
१ २ ३ १ २ ३ १ २
स्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥

ऋ० वामदेवः । छ०पदपंक्तिः । दे० अग्निः । अथाग्ने तमद्याश्वमिति तृचात्मकम् पञ्चमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! अद्य अस्मिन्नहनि वयमृत्विगादयः ओहैः इंद्रादिप्रापकैरस्माकं स्तोमैः स्तोत्रसमूहैः तम् प्रसिद्धं त्वाम् ऋध्यामः समर्द्धयामः कीदृशं त्वाम् ? अश्वं न वोढारम् अश्वमिव हविषो वाहकम्, तथा क्रतुं न कर्त्तारमिव उपकारिणमित्यर्थः। तथा भद्रं भजनीयं हृदिस्पृशं हृदयङ्गमम् अतिशयेन प्रियमित्यर्थः ॥१॥

(अग्ने अद्य) हे अग्ने ! आजके दिन हम ऋत्विज आदि (ओहैः ते स्तोमैः) इंद्रादिको पहुंचाने वाले तुम्हारे स्तोत्रोंसे (अश्वं न वोढारम्) अश्वकी समान हवि पहुंचानेवाले (क्रतुं न भद्रं) यज्ञकी समान सेवनीय (हृदिस्पृशं तं ऋध्यामः) हृदयके प्यारे तिस अग्निको हम बढ़ाते हैं ॥ १ ॥

२ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दत्तस्य साधोः ।
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । अधा हि इदानीमेव हे अग्ने ! त्वं क्रतोः अस्मदीय-यागस्य रथी नेता बभूथ भवसि छन्दसि लुङ् लङ् लिटः (३, ४, ६,), इति भवतेर्वर्त्तमानार्थे लिटि सिपस्थल् आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः (७, २, ३५), इतीडागमे प्राप्ते बभूथाऽततन्थ (७, २, ६४), इति निपातनादिडभावः । कीदृशस्य यागस्य ? भद्रस्य भजनीयस्य दक्षस्य प्रवृद्धस्य, साधोः अभीष्टफलानां साधकस्य सत्यभूतस्य, बृहतः महतः।

(अग्ने) हे अग्ने ! (अधा हि) इस समय ही तुम (भद्रस्य दक्षस्य) सेवनीय और बढ़े हुए (साधोः) ऋतस्य) अभीष्टफलोंके साधक और सत्यरूप (बृहतः क्रतोः रथी बभूथ) हमारे बड़ेभारी यज्ञके नेता होते हो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ २ १ २र
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वा३र्ण ज्योतिः
२ ३ १ ३ ३ २ ३ १ २
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे अग्ने ! ज्योतिः ज्योतिष्मान् स्वः न सूर्य्य इव तथा विश्वेभिः विश्वैः समस्तैः अनीकैः तेजोभिः सुमनाः शोभनमनस्कस्त्वं नः अस्मदीयैः एभिः एतैः अर्कैः अर्च्चनीयैः स्तोत्रैः नानाविधैः हविर्लक्षणैः अन्नैर्वा अथवेन्द्रादिदेवैः सह नः अस्माकम् अर्वाक् अभिमुखः भवेति ॥ ३ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव (ज्योतिः स्वः न) ज्योतिर्मय सूर्यकी समान (विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः) सकल तेजोंसे श्रेष्ठ मनवाला तू (नः एभिः अर्कैः) हमारे इन स्तोत्रोंसे वा अन्नोंसे अथवा (नः अर्कैः एभिः) हमारे पूजनीय इन इंद्रादिदेवताओं सहित (नः अर्वाक् भव) हमारे सन्मुख होओ ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रꣳ राधो अमर्त्य ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाꣳ उषर्बुधः ॥

ऋ० प्रस्कण्वः । छ० बृहती । दे० अग्निः । अथ द्वितीये खण्डे—अग्ने विवस्वदिति प्रगाथात्मकं प्रथमम् सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! त्वम् उषसः उषोदेवतायाः सकाशात् राधः धनम् दाशुषे दाशृ दाने क्वसुः हविर्दत्तवते यजमानाय आ वह आनाय प्रापय । सोऽग्निर्विशिष्यते, अमर्त्य मरणरहित ! जातवेदः जातानां वेदितः ! तमेतं शब्दं यास्कोव्याचष्टे,जातवेदाःकस्माज्जातानि वेद जातानिवैनंविदुर्जातेजाते जाते विद्यत इति वा जातवित्तो वा जातधनो वा जातविद्यो वा जातप्रज्ञो वा यत्तज्जातः पशूनविन्दतेति तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वमिति ब्राह्मणं तस्मात् सर्वानृतून् पशवोऽग्निमभिसर्पन्तीति च (निरु० दै० १, १९) इति । कीदृशं राधः ? विवस्वत् विशिष्टनिवासोपेतं चित्रं नानाविधम् । किञ्च, अद्य अस्मिन् दिने उषर्बुधः उषः काले प्रबुद्धान् देवान् आवह विवस्वत्, विवासन विः तद्युक्तम्, वस निवासे (भ्वा०प०), विपूर्वाद्न्तर्भावितण्यर्थात् सम्पदादिलक्षणो भावे क्विप् (३, ३, ९४ वा०) यदस्यास्ति (५, २, ९४), इति मतुप्, मादुपधायाः (८, २, ९), इति

षत्वम्, तसौ मत्वर्थे (१, ४, ९), इति भत्वेन पदत्वाभावाद्रुत्वाभावः वृषादित्वात् (६, १, २०३) आद्युदात्तत्वम् । जातवेदाः—जातानि वेत्तीति जातवेदाः गतिकारकयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वञ्च (उ० ४, २२६), इत्यसुन्, यद्वा वेद इति धननाम (निघ० २, १०, ४), जातं धनं यस्य स जातवेदाः, आमन्त्रितनिघातः (८, १, १९) मह्य— घचोऽतस्तिङः (६, ३, १३५)—इति संहितायां दीर्घत्वम् । उषर्बुधः। उषसि बुध्यन्त इत्युषर्बुधः बुध अवगमने (भ्वा० प०) क्विप् च (३,२, ७६), इति क्विप् गोहत्वाभावश्छान्दसः कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १३९) ॥ १॥

(अमर्त्य जातवेदः अग्ने) मरणधर्म रहित और प्राणिमात्रके ज्ञाता हे अग्निदेव (त्वम) तुम (उषसः) उषादेवतासे (दाशुषे) यजमानके अर्थ (विवस्वत् चित्रं राधः) विशेष स्थान सहित नानाप्रकार का धन (आवह) पहुँचाओ (अद्य उषर्बुधः देवान्) आजके दिन उषःकालमें चेतनायुक्त देवताओंको इस यज्ञमें पहुँचाओ ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३

जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्व-

१ २ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३

राणाम् । सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि

१ २ ३ २

श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया हे अग्ने ! त्वं जुष्टत्वादिविशेषणयुक्तोऽसि जुष्टः नित्यं मंत्रे (६, १, २१०)—इत्याद्युदात्तत्वम सेवित इत्यर्थः असि सिपि तासस्त्योर्लोपः (७, ४, ५०), इति सलोपः, हि च (८, १ ३२), इति निघातप्रतिषेधः । दूतः देवानां विशेषवार्त्ताहरः, अत एव हव्यवाहनः हव्येऽनन्तः पादम (३, २, ६६) ञ्युट्, योरनादेशः (७, १, १), ञित्वादाद्युदात्तत्वे (६, १, १९७) कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वम् (६, २, १३९) हविषो वोढा अध्वराणां क्रतूनां रथीः रथस्थानीयः तथा च मन्त्रान्तरं ब्राह्मणेनैवं व्याख्यातम रथीरध्वराणामित्याहैषाहि देवरथः इति, ब्राह्मणान्तरञ्च रथीह वा एष भूतेभ्यो देवेभ्यो हव्यं वहति इति तादृशस्त्वम् अश्विभ्यां देवाभ्याम् उषसा देवतया च सजूः सहितो भूत्वा सुवीर्यं शोभनवीर्य्योपेतं बृहत् ।प्रभूतं श्रवः अन्नम् अस्मे धेहि अस्मासु प्रक्षिप ॥ २ ॥

(अग्ने) हे अग्निदेव ! तुम (जुष्टः दूतः) सेवा किये हुए और देवताओंका संदेशा पहुँचाने वाले (हव्यवाहनः अध्वराणां रथीः असि) हविको पहुँचानेवाले और यज्ञोंके रथरूप हो (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विनीकुमार और उषा देवताके साथ होकर (अस्मे सुवीर्यं बृहत् श्रवः धेहि) हमारे विषैं सुन्दर वीरतायुक्त वहुतसे अन्न को स्थापन करो ॥ ३ ॥

३ १ २३ १ २र ३ १ २र ३ १ २

विधुं दद्राणथ्ँ समने बहूनां युवानथ्ँ सन्तं

३ १ २ ३१२ २ १ २ ३२उ

पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या

३२ ३ १ २र

ममार स ह्यः समान ॥ २ ॥

ऋ० बृहदुक्थः। छ० त्रिष्टुप्। दे० इंद्रः। अथ विधुन्दद्राणमिति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। अनया कालात्मक इंद्रः स्तूयते विधुं विधारकं सर्वस्य युद्धादेः कर्त्तारं विपूर्वो दधातिः करोत्यर्थः तथा समने अन्नमनः प्राणनं सम्यगननोपेते संग्रामे बहूनां शत्रूणां दद्राणं द्रावकम्, ईदृक्सामर्थ्यापेतं युवानं सन्तं पुरुषं पलितः जरा जगार निगिरतीन्द्राज्ञया। एवमुक्तलक्षणं वक्ष्यमाणलक्षणञ्च देवस्य कालात्मकस्येन्द्रस्य महित्वा महत्त्वेनोपेतं काव्यं सामर्थ्यं पश्य पश्यत हे जनाः। तथा जरसा प्राप्तः यः अद्य ममार म्रियते, स ह्यः परेद्युः समान सम्यक् चेष्टने पुनर्जन्मान्तरे प्रादुर्भवतीत्यर्थः तदेवं चत्वारि नामानि शारीराण्युक्तानि द्वहृङ्मन्त्रेषु ॥ १ ॥

-इस मंत्रमें कालात्मा इंद्रकी स्तुति कीजाती है, कि-(विधुं समने बहूनां दद्राणं) सकल कार्योंके कर्त्ता और संग्राममें अनेकों शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले (युवानं सन्तं पलितः जगार) ऐसे युवा पुरुषको भी इंद्रकी आज्ञासे बुढ़ापा निगल लेता है (देवस्य महित्वा काव्यं पश्यत) हे पुरुषो ! ऐसे कालात्मा इंद्रदेवकी महिमाभरी सामर्थ्यको देखो (अद्य ममार) बुढ़ापेको प्राप्तहुआ जो पुरुष आज मरता है (सः ह्यः समान) वह दूसरे दिन अन्य जन्म धारण करकै फिर प्रकट होता है इसप्रकार यह शरीरकी चार प्रकारकी दशायें कहीं ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ २उ ३ १

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः

२र ३ १ २र २ ३ १ २ ३ २उ
शूरः सनादनीडः । यच्चिकेत सत्यमित्तन्न
३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २र
मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । शाक्मना शक्मैव शाक्म, शाक्मना बलेन शाकः शक्तः शक्लृ शक्तौ स्वशक्त्यैव सर्वं कर्त्तुं शक्त इत्यर्थः न हीन्द्रस्य सहायान्तरापेक्षास्ति इंद्रत्वादेव, अरुणः अरुणवर्णः सुपर्णः कश्चित् शोभनपर्णः पक्षी आ गच्छतीत्यध्याहारः उपसर्गश्रुतेर्योग्यक्रियाध्याहारात् । यः महः महान् शूरः विक्रान्तः सनात् पुराणः अनीड नीडस्याकर्त्ता । न हीन्द्रोऽग्निवत् कुत्रचिदपि यज्ञे निकेतनं करोति । एवं सुपर्णरूपेणेन्द्रमाह स पक्षीन्द्रो यत् चिकेत कर्त्तव्यत्वेन जानाति तत् सत्यम् इत् सत्यमेव न तु मोघं व्यर्थं भवति । स स्पार्हं स्पृहणीयं वसु धनं जेता जयति शत्रुभ्यः सकाशात् । उत अपि च दाता स्तोतृभ्यः प्रयच्छति न लोकाव्यय (२, ३, ६९) इत्यादिना षष्ठीप्रतिषेधः ॥ २ ॥

(शक्मना शाकः) अपने बलसे समर्थ (अरुणः सुपर्णः आ) अरुण वर्णका कोई श्रेष्ठ पक्षी आता है (यः महा शूरः सनात् अनीडः) जो महान् पराक्रमी पुरातन और कहीं भी स्थान बनाकर न रहनेवाला है अर्थात् इंद्र किसी यज्ञमें अग्निकी समान स्थिति नहीं करता है इस प्रकार इंद्रका पक्षीरूपसे वर्णन किया वह पक्षी इंद्र (यत् चिकेत) जिस बातको कर्त्तव्यरूपसे जानलेता है (तत् सत्यं इत) वह सफल ही होती है (मोघं न) निष्फल नहीं होती है (उत स्पार्हं वसु जेता) और वह स्पृहणीय धनको शत्रुओंसे जीतता है (उत दाता) और स्तुति करनेवालोंको देता है ॥ २

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौँस्यानि येभिरौक्षद्वृत्र-
१ ३ ३ २ १ २र ३ १ २ ३ १
हत्याय वज्री । ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न
२ ३ २ ३ १ २ ३ २
ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । इंद्रः एभिः मरुद्भिः सह वृष्ण्या वृष्ण्यानि वर्षकाणि पौंस्यानि बलानि आ ददे आदत्ते । येभिः यैः मरुद्भिः सहितः वृत्र

हत्याय प्राण्यपकारकवृष्ट्या आवरकत्वात् वृत्रः पापम् तस्य हत्यायै मनुष्याणामुपद्रवशमनायेत्यर्थः । तथा च वज्री वज्रवान् इंद्रः औक्षत् वर्षति । ये च मरुतः देवाः मन्हः महता इंद्रेण क्रियमाणस्य वृष्टिप्रदानलक्षणस्य कर्मणः साहाय्यार्थम् ऋतेकर्म वृष्टिप्रदानकर्म प्रति उदजायंत उन्मुखा जायंते । स्वयमेव तैरेभिर्दे इति समन्वयः ॥ ३ ॥

वह इंद्र (एभिः वृष्ण्या पौंस्यानि आददे) इन मरुतोंके साथ वर्षा करनेवाले बलोंको ग्रहण करता है (येभिः वृत्रहत्याय वज्री औक्षत) जिनमरुतोंके सहित प्राणियोंका उपद्रव शांत करनेके लिये वज्रधारी इंद्र वर्षा करता है (ये देवाः) जो मरुत देवता (मन्हः क्रियमाणस्य कर्मणः) महान् इंद्र करके किये जाते हुए वर्षारूप कर्मकी सहायता के लिये (ऋतेकर्म उदजायंत) वर्षारूप कर्ममें उन्मुख होते हैं ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ २ ३ १ २

अस्ति सोमो अयꣳ सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २

उत स्वराजो अश्विना ॥ १ ॥

ऋ० बिन्दुः पूतदक्षः वा । छं० गायत्री दे० सोमः । अथास्ति सोम इति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । अयं पुरोवर्त्ती सोमः सुतः मरुद्र्थमस्माभिरभिषुतः अस्ति विद्यते । तस्माद् अस्य अन्नादेशे एनं सुतं सोमं स्वराजः स्वयं दीप्यमानाः स्वतेजसा नान्यदीयेनेत्यर्थः । तादृशाः मरुतः पिबंति उत अपि च अश्विना अश्विनौ च सोमं पिबतः

(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह सोम अपने मरुतोंके लिये अभिषुत किया है (अस्य स्वराजः मरुतः उत अश्विना पिबन्ति) इस सोम का अपने तेजसे दीप्यमान मरुत् देवता और अश्विनीकुमार पीते हैं १

१ २ ३ १ २ २ १ २ २ ३ २ ३ १ २

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।

३ २ ३ १ २

त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। न केवलं मरुत एव सोमपातारः किंतु एतेऽपि इत्याह मित्रः सर्वेषां स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तकत्वात् सखिभूतः यद्वा यज्ञसम्बंधी एतत्संज्ञको देवः अर्यमा च वरुणः दुःखादीनां शत्रूणां वा वारिता निवारकः एतन्नामकास्त्रयो देवाः तना तनम् उणस्तुके-

नति तनं दशापवित्रम् सुपां सुलुक् (३, १, ३९) इति आलादेशः तना-युग्मत्तः तना पूतस्य परिशोधितस्य त्रिषधस्थस्य सह तिष्ठन्त्यत्रेति सधस्थं स्थानं सधमादस्थयोश्छन्दसि (६, ३, ९६) इति सहशब्दस्य सधादेशः द्रोणकलशाधवनीयपूतभृदात्मकानि त्रीणि स्थानानि तत्स-थोक्तं तादृशं जावतः स्तुत्या जननवन्तम् इमं सोमं पिबन्ति द्वितीयार्थे षष्ठ्याः ॥ (३, १, ८५) ॥ २ ॥

(मित्रः) सबको अपने अपने कर्ममें प्रवृत्त करनेसे सखारूप मित्र देवता (अर्यमा वरुणः) अर्यमा और दुखोंको दूर करनेवाला वरुण देवता यह तीनों (तना पूतस्य) दशापवित्रसे शुद्ध हुए (त्रिषध-स्थस्य जावतः पिबन्ति) तीन पात्रोंमें स्थित स्तुतिसे प्रस्तुत हुए सोमको पीते हैं ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २

उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।

३ १ २र

प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । उतो अपि च इंद्रः सुतस्य अभिषुतस्य गोमतः गव्यै-र्मिश्रणवतः अस्य अन्वादेशः पूर्ववत् दशापवित्रेण पूतस्य सोमस्य जोषम् पानरूपां सेवां प्रातः प्रातःसवने नु क्षिप्रम् आ मत्सति मदि स्तुत्यादिषु (भ्वा० आ०) आभिमुख्येन स्तौति यद्वा सोममेव काम-यते । तत्र दृष्टांतः, होता इव यथा होता प्रातःसवने देवानभिष्टौति देवान् स्तोतुं वाभिवांछति तद्वत् ॥ ३ ॥

(उतो इंद्रः) और इन्द्र (सुतस्य गोमतः अस्य जोषम्) अभिषव किये गोघृतादिसे मिले हुए इस सोमके पानरूप सेवनको (प्रातः नु मत्सति) प्रातःसवनमें शीघ्र ही चाहता है (होता इव) जैसे कि होता देवताओंकी स्तुति करना चाहता है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

बण्महाँ असि सूर्यबडादित्य महाँ असि ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ

२

असि ॥ १ ॥

ऋ० जमदग्निः । छ० बृहती । दे० सूर्यः । अथ वण्महां असीति प्रगाथात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सूर्य ! त्वं महान् तेजसा अधिकः असि वट् सत्यम् नैतन्मिथ्येत्यर्थः । हे आदित्य! अदितेः पुत्र! त्वं महान् बलेनाप्यधिकः असि वट् सत्यमेव । हे पनिष्टम ! अतिशयेन स्तोत्रैः स्तुत्य ! यद्वा अतिशयेन व्यवहारकुशल ! महः महतः सतः भवतः ते तव महत्त्वं महिमा स्तोतृभिः स्तूयत इति शेषः पनिष्टम स्तोतृभिरस्माभिः स्तूयत इति वा । हे देव ! द्योतनादिगुणयुक्त ! सूर्य ! त्वं मन्हा महत्त्वेन महान् सर्वैः पूजनीयः असि भवसि ॥ १ ॥

(सूर्य महान् असि वट्) हे सूर्य ! तू महान् है यह सत्य है (आदित्य महान् असि वट्) हे आदित्य ! तू अधिकबली है यह सत्य है (पनिष्टम महः सतः ते महिमा) हे परम स्तुतियोग्य ! गौरवसे रहने वाले ! तुम्हारी महिमाकी स्तोता प्रशंसा करते हैं (पनिष्टम मन्हा महान् असि) हे स्तुतियोग्य सूर्य ! तुम महत्वके कारण सबके पूजनीय हो १

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १

वट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ

२ ३ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २उ

असि । मन्हा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु

३ १ २

ज्योतिरदाभ्यम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे सूर्य ! त्वं श्रवसा श्रवणेन महान् सर्वाधिकः असि यद्वा, श्रवसा अन्नेन महान् दाता असि स्तोतृभ्यो दातासि वट् सत्यम् । हे देव ! द्योतमान ! सूर्य ! त्वं देवानां मध्ये मन्हा महत्त्वेन महानधिकः असि सत्रा सत्यमेव । असुर्यः असुराणां हन्ता चासि । किंच, देवानां त्वं कामयमानानां स्तोतॄणां वा पुरोहितः हितोपदेष्टासि बहुहितकार्यसि अथवा पुरोहितः पुरतो निहितोऽसि । किंच तव ज्योतिः तेजः विभु व्याप्तं सर्वतः अदाभ्यं केनाप्यहिंस्यञ्च ॥ २ ॥

(सूर्य श्रवसा महान् असि वट्) हे सूर्य ! तुम अन्नके द्वारा बड़े दाता हो यह बात सत्य है (देव देवानां मन्हा महान् असि सत्रा) हे द्योतमान सूर्य तुम देवताओंमें महत्त्वके कारण सबसे बडे हो यह सत्य ही है (असुर्यः पुरोहितः) असुरोंका नाशकर्त्ता और देवताओंका बडा हितकारी है (ज्योतिः विभु अदाभ्यम्) तुम्हारा तेज व्याप्त और किसीसे न दबने वाला है ॥ २ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
उप नो हरिभिः सुत याहि मदानां पते ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ १ ॥

ऋ० सुकक्षः । छ० गायत्री । दे० सोमः । अथ तृतीये खण्डे–उप नो हरिभिरिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे मदानाम्पते ! माद्यन्त्यनेनेति मदाः सोमाः ! मदोऽनुपसर्गे (३, ३, ६७) इति करणे अप् प्रत्ययः । सोमानां स्वामिन् ! इन्द्र ! हरिभिः आ शितेन हरिभिः इत्यादिषु बहूनामश्वानां श्रुतेरत्रापि शतसहस्रसंख्याकैः सह नः अस्माकं यज्ञे सुतम् अभिषुतं सोमम् उप याहि तत्पानार्थं शीघ्रमागच्छ पुनरुप न इत्यादिरादरार्था ॥ १ ॥

(मदानां पते) हे सोमोंके स्वामी इंद्र ! (हरिभिः नः सुतं उप-याहि) सैंकड़ों सहस्रों विभूतियोंवाले अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमको पीनेके लिये शीघ्र आओ (हरिभिः नः सुतं उप) अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमको पीनेके लिये शीघ्र आओ १

३ १ २र ३ १ २ ३ २ २र ३ १ २
द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । वृत्रहन्तमः अतिशयेन वृत्रस्य हन्ता शतक्रतुः नाना-विधकर्मा यः इंद्रः द्विता द्विधा विदे वृत्रवधादौ उग्रकर्मा, जगद्रक्षणकाले शान्तकर्मेति द्विप्रकारेण विदे सर्वैर्ज्ञायते विदज्ञाने (अदा० प०) कर्मणि विहितस्य तप्रत्ययस्य लोपस्त आत्मनेपदेषु (७, १, ४१) इति लोपः । स त्वं हरिभिः सह सुतं सोमम नः अस्माकम् उप याहि ॥

(वृत्रहन्तमः शतक्रतुः यः इन्द्रः) वृत्रासुर वा पापका अत्यन्त नाशक और अनेकों प्रकारके पराक्रमवाला जो इंद्र (द्विता विदे) वृत्रवध आदिमें उग्र और जगत्की रक्षाके समय शान्त इसप्रकार दो रूपवाला सबोंसे जाना जाता है (हरिभिः न सुतं उप) अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमके पीनेको शीघ्र आवे ॥ २ ॥

२ २र ३ १ २र ३ १ २
त्वꣳ हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
१ २ ३ १ २ ३ २
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे वृत्रहन्! वृत्रस्य पापस्य वा हन्तः! इन्द्र! हि शब्दो हेत्वर्थे यस्मात् त्वम् एषाम् अस्मदीयानां पाता प नकर्त्ता असि भवसि एषामिति इदमोऽन्वादेशे अशादेशोऽनुदात्तश्च (२, ४, ३२) अतस्त्वमश्वैः सह सोमं पातुमुपयाहि आगच्छ॥ ३॥

(वृत्रहन् हि त्वं एषां सोमानां पाता असि) हे पापनाशक इंद्र! क्योंकि तुम इन सोमोंको पीनेवाले हो इसकारण (हरिभिः नः सुतं उप) अश्वोंके द्वारा हमारे यज्ञमें अभिषुत सोमके पीनेको आओ॥३॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्

१ २ ३ १ २र

विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः॥ १॥

ऋ० वसिष्ठः। छ० विराट्। दे० इंद्रः। अथ प्रवो मह इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे मदीया जना! वः यूयं महे वृधे महतां धनानां वर्द्धयित्रे अतएव महे महते इंद्राय भरध्वम्। सोमान् प्रणयत। प्रचेतसे प्रकृष्टमतये इंद्राय सुमतिं सुष्ठु मननीयं स्तोत्रं प्र कृणुध्वम् प्रकुरुत। अथ प्रत्यक्षस्तुतिः हे इंद्र! चर्षणिप्राः चर्षणयो मनुष्याः कामैः प्रजानां पूरयिता त्वं पूर्वीः पूरयित्रीः विशः प्रजाः प्रचर अभिगच्छ

मेरे पुरुषो! (वः महे वृधे) तुम बहुतसे धनोंको भी बढ़ानेवाले (महे प्रभरध्वम्) महान् इन्द्रके अर्थ सोम अर्पण करो (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वम) श्रेष्ठ मति वाले इंद्रके अर्थ सुन्दर स्तोत्रको पढ़ो (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्रचर) हे मनुष्योंकी कामनायें पूर्ण करनेवाले इंद्र! तुम हविसे पूर्ण करनेवाली प्रजाओंके समीप आओ॥१॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

विप्राः। तस्य व्रतानि न मिमन्ति धीराः॥ २॥

अथ द्वितीया। उरुव्यचसे पृथुव्याप्तये महिने महते यस्मै इंद्राय सुवृक्तिं शोभनाम् स्तुतिं ब्रह्म अन्नं हविश्च विप्राः प्राज्ञाः जनयंत जनयन्ति। तस्य इंद्रस्य व्रतानि दक्षिणादीनि कर्माणि धीराः प्राज्ञाः देवा अपि न मिनन्ति हिंसन्ति॥ २॥

(विप्राः) ऋत्विज् (उरुव्यचसे महिने इंद्राय) जिसकी बड़ीभारी व्यापकता है ऐसे महान् इंद्रके अर्थ श्रेष्ठ स्तुति और हविरूप अन्न

अर्पण करते हैं (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उस इंद्रके दक्षिणादि कर्मोंको देवता भी नहीं रोकते हैं ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।

१ २ ३ २ ३ १

हर्य्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । सत्रा राजानं सर्वस्य जगत ईश्वरम्, अनुत्तमन्युम केनाप्यनुत्तोऽबाधितो मन्युः क्रोधो यस्य सः त्वमेव, इन्द्रम् वाणीः स्तुतयः सहध्यै स्तोतॄणां शत्रूणामभिभवितुं दधिरे पुरो दधिरे । अतः हे स्तोतः ! त्वमपि हर्य्यश्वाय इंद्राय हर्य्यश्वमिन्द्रम् स्तोतुमित्यर्थः आपीन् बन्धून् सम् बर्हय प्रवर्द्धय ॥ ३ ॥

(सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं इंद्रं एव) सबोंके ईश्वर जिसके क्रोध को कोई भी बाधा न देसके ऐसे इंद्रको ही (वाणीः सहध्यै दधिरे) स्तुतियें शत्रुओंका तिरस्कार करनेको आगे करती हैं इस कारण हे स्तोतः ! तुम भी (हर्यश्वाय आपीन् संबर्हय) इंद्रकी स्तुति करनेको अपने बान्धवोंको उत्तेजना दो ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्

ऋ० वसिष्ठः । छ० बृहती । दे० इंद्रः । अथ यदिन्द्रेति प्रगाथात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इंद्र यत् यतः यावतः धनस्य ईशिषे एतावत् षष्ठ्या लुक् (७, १, ३९) एतावतो धनस्य अहम् ईशीय ईश्वरो भवेयम् । हे रदावसो ! रदति ददाति वसूनीति रदद्वसुः ततोऽहम् अस्मदीयम् स्तोतारम इत् दधिषे धनदानेन धारयेमेत् । किञ्च पापत्वाय क्षीणत्वाय न रंसिषम न दद्याम् ॥ १ ॥

(इंद्र यत् यावतः) हे इंद्र ! जब कि तुम जितने धनके स्वामी हो (एतावत् अहं ईशीय) उतने ही धनका मैं भी स्वामी होऊँ (रदद्वसो) हे धनोंके देनेवाले ! मैं (स्तोतारं इत् दधिषे) अपने स्तोताको धन देकर धारण करहीसकूँ (पापत्वाय न रंसिषम्) धन हीन होनेके लिये न दूँ ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचि-

१ २ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
द्विदे । न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो
१ २ ३२ ३ २
अस्ति पिता च न ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । कुहचिद्विदे कुत्रचित् विद्यमानः कुहचिद्वित् तस्मै यत्र क्वापि विद्यमानायेत्यर्थः । महयते पूजयते जनाय दिवे दिवे प्रतिदिनम् रायः धनानि शिक्षेयम् इत् दद्यामेव आकारः पादपूरणः । एवमिन्द्रस्य वाक्यं श्रुत्वा ऋषिर्वदति हे मघवन् ! इंद्र त्वदन्यत् अस्माकम् आप्यं बन्धुः न हि अस्ति वस्य प्रशस्यः पिता च न पालयिता च त्वदन्यो नास्तीत्यर्थः ॥ २ ॥

(कुहचिद्विदे महयते) चाहे तहां रहकर तुम्हारी पूजा करनेवाले पुरुषको (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन धनोंका दान अवश्य ही करता हूँ । इस इंद्रके वाक्यको सुनकर उपासक कहता है, कि— (मघवन् त्वदन्यत् आप्यं नहि) हे इंद्र तुम्हारे सिवाय हमारा और कोई बान्धव नहीं है (वस्यः पिता च न अस्ति) और प्रशंसा योग्य रक्षक भी तुम्हें छोड़कर दूसरा कोई नहीं है ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो
३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ २
मनीषाम् । कृष्वा दुवाꣳस्यन्तमा सचेमा ॥१॥

ऋ० वसिष्ठः । छं० विराट् । दे० इंद्रः । अथ श्रुधी हवमिति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इंद्र ! विपिपानस्य विपीतवतो विपितवतो वा ममाद्रेर्ग्रावणः हवम् आव्हानं श्रुधि शृणु ग्रावभ्या वाचम् वदता वदद्भ्यः इति हि निगमान्तरम् । विप्रस्य प्र ज्ञस्य वसिष्ठस्य अर्वतः स्तुवतः मनीषा स्तुतिः बोध बुध्यस्व च । इमा इमानि क्रियमाणानि दुवांसि परिचरणानि अन्तमा अन्तिकतमानि बुद्धिस्थानि वा सचा सहायभूतः सन् कृष्वा कुरु च ॥ १ ॥

हे इंद्र ! (विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि) विशेष सोमपान करना चाहते हुए मुझ दृढ़ उपासकके आह्वानको सुनो (अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध) स्तुति करने वाले विप्रकी स्तुतिको स्वीकार करो (इमा दुवांसि अंतमा सचा कृष्वा) इन सेवाओंको परम समीपस्थ सहायक होकर स्वीकार करो ॥ १ ॥

२ ३ २३ १ २ ३१ ३ १ २ ३ १२३क २र
न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य
३ २ १२ ३ १ २
विद्वान् । सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे इंद्र ! तुरस्य शत्रूणाम् हिंसकस्य ते तव गिरः स्तुतीः असुर्यस्य द्वितीयार्थे षष्ठी (३, १, ८५) त्वदीयम असुर्यं बलं विद्वान् जानन् अहं न अपि मृष्ये मृषिर्मार्जनकर्मा (भ्वा० प०) न मार्जयामि न परित्यजामीत्यर्थः । सुष्टुतिं शोभनाम् स्तुतिञ्च न अपि मृष्ये मृषेर्मार्जनकर्मत्वमन्यत्रापि दृश्यते तद्यथा, मा नो अग्ने सख्या पित्रापि प्रमर्षिष्ठा इति किन्तु हे स्वयशः ! असाधारणयशः ! ते तव नाम स्तोत्रं सदा एव विवक्मि ब्रवीमि ॥ २ ॥

हे इंद्र ! (तुरस्य ते गिरः) शत्रुओंका नाश करनेवाले तेरी स्तुतियों को (असुर्यस्य विद्वान् न अपि मृष्ये) और बलको जानता हुआ मैं नहीं छोड़ता हूँ (सुष्टुतिं न) श्रेष्ठ स्तुतिको भी नहीं छोड़ता हूँ (स्वयशः ते नाम सदा विवक्मि) हे असाधारण कीर्तिवाले तेरे स्तोत्र को सदा उच्चारण करता हूँ ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १२३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते
२ २उ ३ १ २ ३ १ २
त्वामित् । मारे अस्मन् मघवं ज्योक्कः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे मघवन् ! ते तव सवना सवनानि सोमाभिषव-नानि भूरि भूरीणि मानुषेषु अस्मासु वर्त्तन्त इति शेषः । मनीषी स्तोता त्वामित् त्वामेव भूरि हवते नितरां स्तौति ह्वयति वा । अतः अस्मत् अस्मत्तः आरे दूरे ज्योक् चिरकालं मा कः आत्मानं मा कार्षीः क्षिप्रमात्मानमस्मदासन्नं कुर्वित्यर्थः ॥ ३ ॥

(मघवन् मानुषेषु ते भूरि सवना) हे इंद्र ! हम यजमानोंके यहां तुम्हारे बहुतसे सोमाभिषव हैं (मनीषी त्वामित् भूरि हवते) स्तोता तुमको ही अधिकतर आह्वान करता है, इस कारण (अस्मत् आरे ज्योक् मा कः) हमसे दूर चिरकालपर्यन्त मत रहो ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य तृतीयः खण्डः समाप्तः

१ २ ३१ २र ३१२ ३१२
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत । अभीके

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा। अस्माकं
३ १ २र ३ १ २ ३ २उ ३
बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि
१ २
धन्वसु ॥ १ ॥

ऋ० सुदामः। छ० महापंक्तिः। दे० इन्द्रः। अथ चतुर्थे खण्डे-प्रोष्वस्मा इति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। अस्मै इन्द्राय षष्ठ्यर्थे चतुर्थी अस्येन्द्रस्य पुरः रथस्य पुरः रथं रथस्य पुरस्तात् पुरोऽव्ययम् (१, ४, ६७) इति गतित्वाद् गतिसमासः (२, १, १८) रथस्य अग्रे वर्त्तमानं शूर्णं बलं सुप्रोर्चत हे स्तोतारः! सुष्ठु प्रपूजयत (प्र उ इति) निपातसमुदायः। प्रो इति ओत् (१, १, १५) इति प्रगृह्यसंज्ञा इन्द्रो विशिष्यते समत्सु समानं माद्यन्त्यत्रेति समदः संग्रामा औणादिकोऽधिकरणे क्विप् (३, १, ७६), समानस्य छन्दसि (६, ३, ८४) इति सभावः, समत्सु संग्रामेषु सङ्गे सङ्गमने शत्रुबले डोऽन्यत्रापि दृश्यते (३, २, ४८ वा०) गमेर्डः। अभीके चित् अभ्यर्णेऽपि निकटं प्राप्तेऽपि लोककृत् स्थितिकृत् पालयिता। स्थित्वा च वृत्रहा वृत्राणामावरकाणां शत्रूणां हन्ता, एवंविधः स इन्द्रः अस्माकं स्तोतॄणां चोदिता धनानां प्रेरयिता सन् बोधि अस्माभिः कृतानि परिचरणानि बुध्यतां बुधेश्छान्दसे लुङि दीपजनबुध-(३,१,६१) इत्यादिना कर्त्तरि च्लेश्चिणादेशः, बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपीत्यडभावः। अपि च अन्यकेषां कुत्सिता अन्ये अन्यके अव्ययसर्वनाम्नाम०(५, ३ ७१) इति कुत्सनार्थे प्राक् टेरकच्, तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यन्त इति सर्वनामसंज्ञायामामः सुडागमः, अन्यकेषाम् कुत्सितानामेषां शत्रूणां धन्वसु अधिरोपिता ज्याकाः कुत्सिता ज्याः नभन्तां नश्यन्तु। ज्याशब्दात् कुत्सायां प्रागिवात् कः (५, ३, ७०) नभहिंसायां (क्रैयादिकः आ०), व्यत्ययेन शप् (३, १, ८५)॥ १॥

हे स्तोताओं! (अस्मै इन्द्राय पुरो रथम्) इस इन्द्रके रथके आगे (शूर्णं सुप्रोऽर्चत) बलको भलेप्रकार पूजो (समत्सु) संग्रामोंमें (सङ्गे अभीके चित्) शत्रुओंके बलके अत्यन्त निकट आनेपर भी (लोककृत्) लोकोंका पालनकर्त्ता (वृत्रहा) शत्रुओंका नाशक इन्द्र (अस्माकं चोदिता) हम स्तोताओंको धन देताहुआ (बोधि) हमारी सेवाओं

को जानो (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम्) दुष्ट शत्रुओंकी धनुषों पर चढ़ीहुई खोटी प्रत्यञ्चाएँ नष्ट हों ॥ १ ॥

२उ ३ १२ ३ ३ ३ २ ३ १ २

त्वꣳ सिन्धूꣳरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २ ३

अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम् । तं त्वा

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २

परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु

अथ द्वितीया । हे इन्द्र ! त्वं सिन्धून् स्यन्दनशीलान् जलपूरान् अधराचः अधरमधोमुखमञ्चतो गन्तृन् अवासृजः मेघान्निरगमयः यतः त्वम् अहिम् अन्तरिक्षं गच्छन्तं मेघम् अहन् हतवानसि यद्वा, अहिमन्धकारं सर्वस्य जगतः आवरकं वृत्रमसुरम् अहन् हतवानसि । अतो हे इन्द्र ! त्वम् अशत्रुःशत्रुरहितः जज्ञिषे जायसे न संति शत्रवोऽस्येति बहुव्रीहौ नञ्सुभ्याम् (६,२,१७२) इत्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् । तादृशं त्वां परिष्वजामहे हविर्भिः स्तुतिभिश्चालिङ्गनं कुर्मः वशीकुर्मः षञ्ज परिष्वङ्गे (भ्वा० आ०); दंशसञ्जस्वञ्जां शपि (६, ४, २५) इत्यनुनासिकलोपः । सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

(इंद्र त्वम्) हे इंद्र ! तुम (सिन्धून् अधराचः) वहनेवाले जलके प्रवाहोंसे भरे नीचेको मुख होकर जानेवाले मेघोंको वरसाओ, क्योंकि तुमने (अहिं अहन्) अन्तरिक्षमें जातेहुए मेघको तोड़ा है, इसकारण हे इंद्र ! तुम (अशत्रुः जज्ञिषे) शत्रुरहित होते हो (विश्वं वार्यं पुष्यसि) तुम सकल वरणीय पदार्थोंकी पुष्टि करते हो (तं त्वा परिष्वजामहे) ऐसे आपको हम हवि और स्तुतियोंसे वशमें करते हैं (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्ताम्) दुष्ट शत्रुओंकी धनुषों पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चाएँ नष्ट हों ॥ २ ॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांꣳसति ।

१ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २उ

या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका

३ १ २
अधि धन्वसु ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। विश्वाः सर्वाः अरातयः अदात्रयः अर्यः अभिगन्त्र्यः नः अस्माकं शत्रुभूताः प्रजा सु सुष्ठु वि नशंत विनश्यन्त हे इंद्र! त्वदर्थं धियः कर्माणि स्तुतयो वा प्रवर्त्तताम्। हे इंद्र! यः नः अस्मान् जिघांसति हन्तुमिच्छसि हन्तेः सन् अजझनगमां सनि (६, ४, १६,) इति वा दीर्घः अभ्यासाच्च (७, ३, ५५), इति कुत्वम् तस्मै शत्रवे वधं हननसाधनमायुधम् अस्ता असि क्षेप्ता भवसि असु क्षेपणे (दि० प०). ताच्छीलिकस्तृन् (६, ४, १६) ते तव या रातिः धन-प्रदानहेतुर्हस्तः रा दाने (अदा० प०) करणे क्तिन् (३, ३, ९४) मंत्रे वृषेषपचमनविदभूवीरा उदात्तः (३, ३, ९६) इति क्तिन उदात्त-त्वम् सा रातिः वसु धनं ददिः अस्मभ्यं दाता भवतु आहगमहन (३, २, १७१) इति ददतेः किप्रत्ययः न लोकाव्यय (२, ३, ६९) इति वसुशब्दात् षष्ठ्यभावः। सिद्धमन्यत् ॥ ३ ॥

(नः विश्वाः अरातयः अर्यः सुविनशंत) हमारे सकल अन्न धनादिको न वढ़नेदेने वाले और चढ़ाई करनेवाले शत्रु भलेप्रकार नष्ट होगए। हे इंद्र! तुम्हारे अर्थ (धियः) हमारे कर्म प्रवृत्त हों (इन्द्र) हे इन्द्र! (यः नः जिघांसति) जो हमारा वध करना चाहता है (शत्रवे वधं अस्तासि) उस शत्रुके मारनेके लिये शस्त्र छोड़ते हो (ते या रातिः वसु ददिः) तुम्हारा जो धन देनेवाला हाथ है वह हमें धन देय (अन्यकेषां धन्वसु अधिज्याकाः नभन्ताम्) शत्रुओंके धनुषों पर चढ़ीहुई प्रत्यञ्चाएँ नष्ट हों ॥ ३ ॥

३ २३ ३ २३ ३ १ २ ३ १ १
रेवाँ इद्रेवत् स्तोता स्यात्वावतो मघोनः,
१ २ ३ १ २
प्रेदु हरिवः सुतस्य ॥ १ ॥

ऋ० मेधातिथिः प्रियमेधाः वा। छ० गायत्री। दे० इंद्रः। अथ रेवो इद्रेवत् इति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा। हे हरिवः हरि-वन्! मतुवसोः (८, ३, १) नकारस्योत्वं हरिनामकाश्ववन्निन्द्र! रेवतः रयिमतः बहुधनोपेतस्य तव स्तोता रेवान् स्यात् रयिमान् भवेत् इत् शब्दोऽवधारणे भवेदेव न दारिद्र्यं प्राप्नोति। उक्तमेवार्थं कैमुति-

कन्यायेन द्रढयति त्वावतः त्वत्सदृशस्य युष्मदस्मदोर्थां छन्दसि सादृश्य उपसंख्यानम् (५, १, ६१ वा) इति मतुप् मघोनः मघवतः धनाढ्यस्य सुतस्य पु प्रसवैश्वर्ययोः (भ्वा० प०) स्तोतव्यस्य ऐश्वर्य्योपेतस्य अन्यस्यापि स्तोता प्रेद्भुः स्यात् इत्यनुपपद्यते प्रस्यात् प्रभवेदेव न तु निहीयते किमु वक्तव्यं तव स्तोता धनवान् भवेदेवेति १

(हरिवः) हे पापहारी अश्वोंवाले इंद्र (रेवतः स्तोताः रेवान् स्यात् इत्) तुम धनवान्की स्तुति करनेवाला धनवान् अवश्य ही हो, कभी दरिद्र न हो (त्वावतः मघोनः सुतस्य प्रेद्भुः) तुमसे धनवान् ऐश्वर्य्यवानका स्तोता अवश्य ही ऐश्वर्य्यशाली हो ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।

१ २ ३ २ ३ १ २

न गायत्रं गीयमानम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । गायतेर्गौः अगोः अस्तोतुः रयिः शस्यमानं होत्रा पठ्यमानम् उक्थं च निःशस्त्रमपि आ चिकेत अभिजानाति कित ज्ञाने (भ्वा० प०) छान्दसो लिट् । (३, २, १०५) नेति सम्प्रत्यर्थे न सम्प्रति प्रस्तोत्रादिभिः गीयमानं गायत्रं गातव्यं साम यद्वा गायत्राख्यामपि आचिकेतेत्येव ! अतः कारणद्वयमपि तमिन्द्रं स्तुम इत्यर्थः ॥ २ ॥

हे इंद्र (न) इससमय (अगोः रयिः आचिकेत) स्तुति न करनेवालेके धनको जानते हो (न) इससमय (शस्यमानं उक्थं च) पढ़ेजातेहुए स्तोत्रको भी जानते हो (न) इससमय (गीयमानं गायत्रम्) गायेजाते हुए गायत्र नामक सामको भी जानते हो, इस कारण हम भी तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २

मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्द्धते परा दाः ।

१ २ ३ १ २

शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र! त्वं पीयत्नवे पीयतिर्वधकर्मा (निरु०४, २५) वधशीलाय हिंसाकारिणे शत्रवे नः अस्मान् मा परादाः मा परित्याक्षीः, मा च शर्द्धते अभिभवित्रे अस्मान् मा परादाः शृधु प्रहसने (भ्वा०आ०) इति धातुः । अपि तु शचीवः शक्तिमन्निन्द्र ! शचीभिः आत्मीयैः

कर्मभिः शिक्ष अस्माननुशाधि यद्वा, शिक्षतिर्दानकर्मा (३, २०, ८) अभीष्टं धनमस्मभ्यं देहि, यद्वा, शत्रून् जेतुं शिक्ष शक्तान् कर्त्तुमिच्छ, शकेः सन्नन्तस्य सनि मीमा (७,४,५४) इति इसादेशः अभ्यासलोपे च कृते लोटि रूपमेतत् ॥ ३ ॥

(इंद्र) हे इंद्र तुम (पीयत्नवे न मा परादाः) हिंसा करनेवाले शत्रुके अर्थ हमें न छोड़ो (शर्द्धते मा) तिरस्कार करनेवालेके लिये हमें न छोड़ो (शचीवः शचीभिः शिक्ष) हे शक्तिमान इन्द्र ! अपने पराक्रमोंसे हमें अभीष्ट धन दो ॥ ३ ॥

१ २   ३ १ २ ३ २ ३   १ २   ३ २

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।

३ २   ३ २   ३   १   २ ३   १ २   ३ १   २

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१॥

ऋ० तिरश्चीः । छ०अनुष्टुप् । दे० इंद्रः । अथैन्द्र याहि हरिभिरिति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम् तत्र प्रथमा । हे इंद्र ! कण्वस्य सुष्टुतिं हरिभिः अश्वैः उप याहि आगच्छ । दिवः द्युलोकं द्वितीयार्थे षष्ठी शोभनाम् स्तुतिं (३, १, ८५) अमुष्य अमुष्मिन्निन्द्रे शासतः शासति सति विभक्तिव्यत्ययः (३, १, ८५) तत्र वयं सुखमास्महे । हे दिवावसो । दीप्तहविष्केन्द्र ! दिवं स्वर्गं यय यूयं गच्छत बहुवचनं पूजार्थम् । यद्वा, हे दिवावसो ! दिवो द्युनामकममुम् लोकं शासतः शासनं कुर्वतः यूयं दिवं स्वर्गं यय गच्छत ॥ १ ॥

(इंद्र) हे इंद्र ! (हरिभिः कण्वस्य सुष्टुतिं उपयाहि) पापहारी अश्वोंके द्वारा यजमानकी श्रेष्ठ स्तुतिके समीप आओ (अमुष्य दिवः शासतः) इस इंद्रके द्युलोकका शासन करते हुए हम बड़े सुखमें रहते हैं (दिवावसो दिवं यय) हे दीप्त धनवाले इंद्र तुम स्वर्गलोकको पधारो ॥ १ ॥

२ ३   २   ३ १ २ ३ २ ३   १   २   ३   १ २

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।

३ २   ३ २ ३   १ २ ३   १ २   ३ १   २

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२॥

अथ द्वितीया । अत्र अस्मिन यज्ञे एषाम् अभिषवग्राव्णाम् नेमिः सोमलतां विधूनुते विशेषेण कम्पयति । तत्र दृष्टान्तः, उरां मेषीं वृकः न वृकं इव यथा वृकः तद्वत् सिद्धमन्यत् ॥ २ ॥

(अथ एषां नेमिः) इस यज्ञमें इस अभिषवके पाषाणों की धार (उरां वृकः न विधूनुते) जैसे भेडको भेड़िया कम्पायमान करता है तैसे विशेषरूपसे कम्पायमान करती है (अमुष्य दिवः शासतः) इस इन्द्रके द्युलोक का शासन करते समय हम वडे सुखमें रहते हैं- (दिवावसो दिवं यय) हे दीप्त धनवाले इन्द्र ! तुम स्वर्गलोकको पधारो ॥ २ ॥

२ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २२
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १२ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! त्वा त्वाम् इह यज्ञे ग्रावा सोमाभिषवपाषाणः सोमी सोमवान् वदन् शब्दं कुर्वन् घोषेण ध्वनिना सह आ वक्षतु त्वां प्रापयतु ॥ ३ ॥

हे इंद्र ! (इह सोमी वदन् ग्रावा) इस यज्ञमें सोमवाला शब्द करता हुआ अभिषवका पाषाण (घोषेण आवक्षतु) ध्वनिके साथ तुझे सोम पहुँचावे (अमुष्य दिवः शासतः) इस इंद्रके द्युलोकका शासन करते समय हम वडे सुखमें रहते हैं (दिवावसो दिवं यय) हे दीप्त धनवाले इंद्र ! तुम स्वर्गलोकको पधारो ॥ ३ ॥

१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥१॥

ऋ० जमदग्निः । छं० नित्यद्विपदा गायत्री । दे० वितानः पूपा वा । अथ पवस्व सोम मन्दयन्निति तृचात्मकं द्वैपदं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे सोम ! मधुत्तमः अतिशयेन मधुररसवान् त्वं मन्दयन् मादयिता भवन् इन्द्राय क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यम् (१, ४, ३२ वा०) इतीन्द्रस्य सम्प्रदानसंज्ञा इन्द्रं मोदमानः सन् पवस्व इंद्रार्थमागच्छ ।

(सोम मधुमत्तमः मन्दयन्) हे सोम ! अत्यन्त मधुर रसवाला तू हर्षदायक होता हुआ (इन्द्राय पवस्व इन्द्रके निमित्त आओ ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥२॥

अथ द्वितीया । विपश्चितः मेधाविनः सुतासः अभिषुताः शुक्राः शुक्लवर्णाः अभिषवेण निर्मलत्वात् दीप्यमाना इत्यर्थः । ते सोम वायुं शब्दम् असृक्षत असृजन् अकार्षुः अथवा वायुमेव सोमपानार्थमसृजन् सोमेषु सत्सु वायुस्तत्पानार्थमागच्छति खल ॥ २ ॥

(विपश्चितः सुतासः) विशेष बुद्धिवर्द्धक और अभिषव किये हुए (शुक्राः ते) निर्मल वह सोम (वायुं असृक्षत) वायुको प्रकट करते हुए

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। एते अभिषुताः सोमाः वाजयन्तः यजमानानामन्न-मिच्छन्तः सन्तः देववीतये देवानां पानाय असृग्रन् विसृज्यन्ते ऋत्विग्भिः प्रदीयन्ते। तत्र दृष्टांतः, रथा इव वाजयन्तः शत्रोर्धनानि बलानि वा स्वामिन इच्छन्तो रथा देववीतये देवानाम् गमनाय यथा विसृज्यन्ते तद्वत् ॥ ३ ॥

यह अभिषुत सोम (वाजयंतः देववीतये असृग्रन्) यजमानोंके लिये अन्न चाहते हुए देवताओंके पीनेके लिये ऋत्विजों करके दिये जाते हैं (रथा इव) जैसे कि—स्वामीके लिये शत्रुओंका धन और बल चाहते हुए रथ देवताओंके गमनके लिये विसर्जन किये जाते हैं ३

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्याये चतुर्थः खण्डः समाप्तः

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुꣳ

२र ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ २
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३
विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥

ऋ० परुच्छेपः। छ० अत्यष्टिः दे० अग्निः। अथ पञ्चमे खण्डे, अग्निं होतारमिति तृचात्मकं प्रथमम् सूक्तम, तत्र प्रथमा! अग्निम् सर्वासां देवसेनानामग्रण्यं यज्ञेष्वग्रम् नीयमानं वा होतारम् अस्मद्यागं प्रति देवानामाह्वातारं यद्वा, होमनिष्पादकं होतारम आह्वातारं जुहोते-र्होतेत्यौर्णवाभः (निरु० दै० १, १५) इति यास्कः। अग्निमद्यहोतार-मवृणीत, इति श्रुतेः। अग्निमग्न आवह इति च, अग्नेराह्वातृत्वं प्रसि-द्धम्। अग्निं होतारं मन्ये, इत्येवं प्रतिविशेषणं मन्य इति सम्बन्धः। यद्वा, यागनिष्पत्तेरेवोपलक्षितत्वात् एतदेव विधेयविशेषणम्, इत-राणि वक्ष्यमाणविशेषणानि स्तुतिपराणि, दास्वन्तम् अतिशयेन दान-वन्तञ्च, वसोः वसुम निवासहेतुं, सहसः सूनुं बलस्य पुत्रमग्निम्

मन्थनकाले बलेन मथ्यमान उत्पद्यते इति पुत्रत्वमुपचर्यते जातवेदसं जातानां वेदितारं जातप्रज्ञं जातधनं वा जातवेदःशब्दो यास्केन बहुधा निरुक्तः। अग्नेर्जातवेदस्त्वे दृष्टांतः,विप्रं न जातविद्यं मेधाविनंब्राह्मणमिव, तं यथा बहु मन्यते तथा त्वामपि स्तौमीत्यर्थः। उक्तगुणविशिष्टो यो देवः स्वध्वरः शोभनयज्ञवान् यज्ञं सम्यग् निर्वहन् ऊर्ध्वया उन्नतया उत्कृष्टया देवाच्या देवान् पूजयन्त्या देवान् प्रत्युक्तया वा कृपाकृपयासामर्थ्यलक्षणया देवान् प्रत्युक्तया कृपया इति (निरु० नै ६, ८) यास्कः। तेभ्यो हविर्वहनबुद्ध्या युक्तः सन् शुक्रशोचिषः दीप्ततेजस्कस्य आजुह्वानस्य आ समन्तात् हूयमानस्य सर्पिषः सरणशीलस्य घृतस्य विलेपनेन दीप्तस्याज्यस्य विभ्राष्टिं विशेषेण भ्राजम् अनु स्वयमपि तत् आज्यं वष्टि कामयते स्वीकरोतीति शेषः॥ १॥

(दास्वन्तं वसाः) परमदानी और निवासके हेतु (सहसः सूनुं जातवेदसम्) मन्थनकालमें बलसे उत्पन्न होनेवाले और प्राणिमात्र के ज्ञाता (विप्रं न जातवेदसम्) ब्राह्मणकी समान परममान्य (यः देवः स्वध्वरः) जो दिव्यस्वरूप यज्ञका सुन्दर निर्वाह करताहुआ (ऊर्ध्वयां देवाच्या कृपा) अत्युत्तम और देवताओंको पूजनेवाली सामर्थ्य से वा देवताओंको हवि पहुँचानेवाली शक्तिसे युक्त होकर (शुक्रशोचिषः आजुह्वानस्य) दीप्ततेज और चारों ओरसे होमेजानेवाले (सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिं अनु) वहनेवाले और विलेपनसे दीप्त हुए घृतकी विशेष कान्तिको स्वयं भी चाहता है (अग्निं होतारं मन्ये) उस देव सेनाओंके अग्रणी वा यज्ञोंमें आगे लिये जानेवाले अग्निको अपने यज्ञों में देवताओंका आह्वान करनेवाला वा होमका साधक मानता हूँ॥१॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गि-
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
रसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
१ २ ३ १ २र ३ २
परिज्मानमिव द्यावाꣳ होतारं चर्षणीनाम्।
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३ १ २
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु
३ २ ३ १ २
जूतये विशः॥ २॥

अथ द्वितीया। हे विप्र ! मेधाविन् ! शुक्र दीप्तज्वालाग्ने ! यजिष्ठम् अतिशयेन यष्टृतमं त्वा त्वां यजमानाः वयं हुवेम आह्वयामः यतो वयं यजमाना अतस्त्वां यजिष्ठमाह्वयाम इत्यभिप्रायः। कीदृशं त्वाम् ? अङ्गिरसां अङ्गिरोगोत्रोत्पन्नानां मध्ये ज्येष्ठम् अतिशयेन प्रशस्यं यद्वा अङ्गिरसामङ्गाराणां मध्ये ज्येष्ठं ज्वालायुक्तत्वात्। अङ्गिरा अङ्गाराः (निरु० नै ३, १७) इति यास्कः। येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन् इति श्रुतम्। केन साधनेन इत्युच्यते मन्मभिः मननसाधनैः विप्रेभिः विप्रैः विशेषेण प्रीणयितृभिः मन्मभिः मन्त्रैः यद्वा विप्रेभिः मेधाविभिऋत्विग्भिर्मन्मभिर्मन्त्रैश्च सहिता वयमिति सम्बन्धः। अथाह्वानानन्तरं परिज्मानं परितो गच्छंतं द्याम् इव सूर्य्यमिव होतारं देवमाम्ह्वातारम्। केषामर्थे ? चर्षणीनां मनुष्याणां यजमानानाम् अर्थे यद्वा चर्षणीनां पूर्व मनुष्याणामेव सतां पश्चात् यागादिसाधनेन देवत्वमापन्नानां देवानामाह्वातारं तथा शोचिष्केशं केशवदत्यन्तज्वालोपेतं वृषणं कामानां वर्षितारम् एवं रूपं त्वां विशः त्वामेव निविशमानाः इमा विशः प्रजाः जूतये स्वर्गाद्यभिमतफलप्राप्तये प्र अवन्तु प्रकर्षेण प्रीणयन्तु। तादृशं त्वां हुवेमेति सम्बन्धः ॥ २ ॥

(*विप्र शुक्र*) *हे मेधावी और प्रज्वलित ज्वालाओंवाले अग्निदेव !* (वयं यजमानाः) हम यजन करना चाहते हैं इसकारण (मन्मभिः विप्रेभिः मन्मभिः) मनन है साधन जिनका ऐसे ऋत्विजोंसे और मंत्रोंसे युक्त हुए (अङ्गिरसां ज्येष्ठम्) अङ्गारोंमें ज्वालायुक्त (यजिष्ठं त्वा हुवेम) परमपूजनीय तुम्हारा आह्वान करते हैं। तदनन्तर (द्यां इव परिज्मानम्) सूर्यकी समान चारों ओरको जानेवाले (चर्षणीनां होतारम) पहिले मनुष्य और पीछे यज्ञादि करनेसे देवभावको प्राप्त होनेवालोंका आह्वान करनेवाले (शोचिष्केशं वृषणं यम) केशोंकी समान लंबी लपटोंवाले और अभीष्फल बरसाने वाले आपकी ओरको (विशः इमा) प्रवेश करनेवाली यह प्रजायें (जूतये प्रअवन्तु) स्वर्ग आदि इच्छितफल पानेके लिये आपको तृप्त करें ॥ २ ॥

२३ ३२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
स हि पुरु चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ २
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः। वीडु
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वसहा नायते ।३।

अथ तृतीया । स हि स एव पूर्वं स्तुत एवाग्निः विरुक्मताविशेषेण रोचनवता ओजसा ज्वालारूपेण बलेनपुरु चित् अत्यधिकमेव दीप्यान्ः दीप्यमानः द्रुहन्तरः द्रोग्धृणां हिंसको भवतीत्यर्थः ! तत्र दृष्टान्तः द्रुहन्तरः द्रोग्धृणां छेदनाय प्रयुक्तः परशुः न परशुरिव हिनस्ति तथायमपि किञ्च, यस्याग्नेः समृतौ संगतौ संयोगे वीडुचित् दृढमपि पाषाणादिकं ध्रुवत् गच्छेत् शीर्य्येत । तथा यत् स्थिरं यच्च पर्वतादि स्थिरमविचलितं तदपि ध्रुवत् । तत्र दृष्टान्तः वनेव उदकमिव, उदकं यथाग्निसंयोगे शुष्यति तथेत्यर्थः अत्यन्तदृढं स्थिरमपि हिनस्ति अस्मद्द्रोग्धारं शत्रुं हिनस्तीति किमु वक्तव्यमित्यभिप्रायः । किञ्चायमग्निः निःषहमाणः शत्रून् निःशेषेणाभिभवन् यमते उपरमते शत्रुषु मध्ये क्रीडति तानेव नाशयति । तथा कुर्वन् न अयते न गच्छति शत्रोः सकाशान्न पलायते धन्वासहा न अयते धनुषा शत्रूनभिभवतीति धन्वसहाः धानुष्कः सहतेरसुन्, छान्दसोऽन्त्यलोपः स यथा शत्रोरभिमुखं विध्यति न पलायते तद्वदित्यर्थः यद्वा, दृढधनुर्वहनक्षमो धन्वसहाः, अस्मिन् पक्षे पचाद्यच् (३, १, १३४), सुपां सुलुक् (७, २, ३९), इत्याकारः दृढधन्वा सन् न अयते न चलति ॥ ३ ॥

(सः हि) वह स्तुति कियाहुआ अग्नि अवश्य ही (विरुक्मता ओजसा) विशेष दिपतेहुए ज्वालारूप बल करकै (पुरुचित् दीप्यमानः) अत्यन्त अधिक दीप्त होता हुआ (द्रुहन्तरः परशुः न) द्रोह करनेवालों को काटनेवाले फरसेकी समान (द्रुहन्तरः भवति) हमसे द्रोह करने वाले शत्रुओंका नाशक होता है (यस्य समृतौ वीडुचित् ध्रुवत्) जिसका सङ्ग होनेपर दृढ पाषाण आदि भी टूटजाता है (यत् स्थिरम वनेव) जो अविचल पर्वत आदि है वह भी जलकी समान छिन्न भिन्न होजाता है, इसकारण यह अग्नि (निःषहमाणः यमते) शत्रुओंको निःशेष करताहुआ क्रीडा करता है न अयते) पलायन नहीं करता है (धन्वसहा न अयते) धनुषधारीकी समान शत्रुओंके सामनेसे नहीं भागता है

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
विभावसो । बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं ३

१२ ३१
दधासि दाशुषे कवे ॥ १ ॥

ऋ० अग्निः । छ० विस्तारपंक्तिः । दे० अग्निः । अथ अग्ने तव श्रव इति षड्चात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे अग्ने! तव वयः अन्नं श्रवः श्रवणीयं प्रशस्यं हविरात्मकस्य तस्य मंत्रसंस्कृतत्वेन प्रशस्तत्वात् अन्नेषु तवैवान्नं श्रेष्ठमित्यर्थः । हे विभावसो ! विशिष्टा दीप्तिर्विभा सैव वसुः धनं यस्य तादृशाग्ने ! अर्चयः दीप्तयः महि महत् बहुलं भ्राजंते भ्राजृ दीप्तौ,दीप्यंते अनुदात्तो औपादिकः। बृहद्भानो प्रौढदीप्ते ! कवे क्रांतदर्शिन्नग्ने ! एवम्महानुभावस्त्वं शवसा बलेनोपेतम् उक्थ्यम् प्रशस्यं यद्वा, उक्थो यज्ञस्तद्यो यं वाजम् अन्नं दाशुषे हवींपि दत्तवते यजमानाय दधासि प्रयच्छसि॥ १ ॥

(अग्ने तव वयः श्रवः) हे अग्ने! तुम्हारा अन्न प्रशंसनीय है (विभावसो अर्चयः महि भ्राजंते) हे दीप्तिरूप धनवाले ! तुम्हारी दीप्तियें बड़ी शोभा पाती हैं (बृहद्भानो कवे) हे बड़ी दीप्तिवाले अनुभवी अग्निदेव ! (शवसा उक्थ्यं वाजं दाशुषे दधासि) बलकरकै युक्त प्रशंनीय अन्न तुम हवि अर्पण करनेवाले यजमानको देते हो॥ १ ॥

३ १२ ३१२३ १२ ३ १२
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि
३१२ ३२ ३१२ ३२३१२ ३२३
भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि
१२ ३२
रोदसी उभे ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । छ० विस्तारपंक्तिः । पावकवर्चाः शोधकदीप्तिः शुक्रवर्चाः निर्मलतेजस्कः, अनूनवर्चाः सम्पूर्णतेजस्कः, हे अग्ने ! ईदृशस्त्वं भानुना तेजसा उदियर्षि उद्गच्छसि ऋ सृ गतौ, जौहोत्यादिकः (प०) अर्तिपिपर्त्योश्च (७, ४, ७७) इत्यभ्यासस्येत्वम् स त्वं पुत्रः सन् मातरा मातृभूतयोररण्योः विचरन् यागावसाने विशेषेण प्राप्नुवन् उपावसि उपगतान् यजमानान् रक्षसि । तथा उभे रोदसी द्यावापृथिव्यौ पृणक्षि संयोजसि हविषा द्युलोकं वृष्ट्या इम लोकञ्च पूरयसीत्यर्थः पृची सम्पर्के रौधादिकः (प०) ॥ २ ॥

हे अग्ने (पावकवर्चाः) शुद्ध करनेवाली है दीप्ति जिसकी ऐसा (शुक्रवर्चाः) निर्मल है तेज जिसका ऐसा (अनूनवर्चाः) पूर्णतेजस्वा

तू (भानुना उद्दियर्षि) तेजके साथ प्रकट होता है, ऐसा तू (पुत्रः) पुत्ररूपसे (मातरा विचरन्) यज्ञमें मातृरूपा अरणियोंसे प्राप्त होता हुआ (उपावसि) समीपके यजमानोंकी रक्षा करता है (उभे रोदसी पृणक्षि) दोनों द्यावापृथिवीको संयुक्त करता है अर्थात् हविसे द्युलोकको और वृष्टिसे इसलोकको पूर्ण करता है ॥ २ ॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १
ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीति-
२ ३ २ २३ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
भिर्हितः । त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो
३ १ २
वामजाताः ॥ ३ ॥

छ० सतोबृहती । अथ तृतीया हे ऊर्जोनपात् ऊर्जः अन्नस्य पार्थिवस्य अरण्यादेः पुत्र ! हे जातवेदः जातानां वेदितरग्ने ? सुप्रशस्तिभिः सुशंसनैः अस्माभिः क्रियमाणं मदस्व मादस्व । तथा धीतिभिः अस्माभिः क्रियमाणैरग्निहोत्रादिभिः हितः सुहितः तृप्तो भव । अपि च भूरिवर्पसः वर्प इति रूपनाम (निघ० ३, ७, ३,) बहुविधरूपाः चित्रोतयः चित्रा ऊतिस्तृप्तिर्याभिः इड्भिस्तथोक्ताः वामजाताः वामं वननीयं जातं जन्म यासां ता ईदृशीः इषः अन्नानि हविर्लक्षणानि त्वे त्वय्येव सन्दधुः सन्दधति सम्यक् जुह्वति यजमानाः यद्वा भूरिवर्पस इत्यादिकं कर्तुर्विशेषणम् तदानीं चित्रोतय इत्यस्य विचित्ररक्षा इति योज्यम् ॥ ३ ॥

(ऊर्जः नपात्) हे पार्थिव अन्नरूप अरणियोंके पुत्र ! (जातवेदः) हे प्राणिमात्रके ज्ञाता अग्निदेव ! (सुशस्तिभिः मन्दस्व) श्रेष्ठ स्तुति करनेवाले हमारे किये हुएको स्वीकार करो (धीतिभिः हितः) हमारे किये हुए अग्निहोत्रादि कर्मोंसे तृप्त होओ (भूरिवर्पसः चित्रोतयः) अनेकों रूपवाले और जिनसे बडी तृप्ति होती है ऐसे (वामजाताः इषः) श्रेष्ठ जन्मवाले अन्नोंको (त्वे सन्दधुः) यजमान तुम्हारे विषै ही होमते हैं ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २२
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम्

अथ चतुर्थी । छ० सतोबृहती । हे अग्ने ! जन्तुभिः जातैः श...

सह इरज्यन् ईर्ष्यन् स्पर्द्धां कुर्वन् ईर ईर्ष्यायां कण्ड्वादिः । यद्वा इरज्यतिरैश्वर्य्यकर्मा (निघ० २, २१, १,) जन्तुभिर्जायमानैरात्मीयैस्तेजोभिरिरज्यन् ईश्वरो भवन्। हे अमर्त्य ! मरणरहिताग्ने ! अस्मे अस्माकं सुलुक् (७, १, ३९) इति षष्ठ्याः शे आदेशः रायः धनानि प्रथयस्व विस्तारय रैःशब्दाच्छसः स्थाने व्यत्ययेन ऊस् शसो वा व्यत्ययेन उड़िदम् (६, १, १७१) इत्यादिना विभक्त्युदात्तत्वं न क्रियते स त्वं दर्शतस्य दर्शनीयस्य च वपुषः तेजोमयस्य शरीरस्य वि राजसि वा तृतीयार्थे षष्ठी (३,१,८५,) ईदृशेन शरीरेण विशेषेण दीप्यसे यद्वा राजतिरैश्वर्य्य कर्मा (निघ० २, २१, ४) वपुरिति च रूपनाम(निघ० ३, ७, ४) दर्शनीयेन रूपेण विराजसि विशेषेण ईशिषे। अतएव दर्शतं दर्शनीयं क्रतुं कर्म पृणक्षि अस्माभिः सह सम्पर्चयसि फलेन वा संयोजसि ॥ ४ ॥

(अमर्त्य अग्ने) हे मरणधर्मरहित अग्नि (जन्तुभिः इरज्यन्) उत्पन्न हुए शत्रुओंसे स्पर्धा करता हुआ अथवा उत्पन्न हुए अपने तेजोंसे ईश्वर होता हुआ (अस्मे रायः प्रथयस्व) हमारे धनको बढ़ा (सः दर्शतस्य वपुषः विराजसि) ऐसा तू तेजोमय शरीरसे विशेष दीप्त होता है, इसकारण (दर्शतं क्रतुं पृणक्षि) दर्शनीय कर्मको फलसे युक्त करता है ॥ ४ ॥

३ १२ ३२ ३ १२ ३ १२ ३ १२
इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तᳫं राधसो
३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३२उ ३
महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं
१२ ३ २ ३ २
दधासि सानसिᳫं रयिम् ॥ २ ॥

अथ पञ्चमी । छ० सतोबृहती । इष्कर्त्तारं निष्कर्त्तारं छान्दसो वर्णलोपः (३, १, ८५) अध्वरस्य यज्ञस्य निष्कर्त्तारं संस्कर्त्तारं प्रचेतसं प्रकृष्टज्ञानं महः महतः राधसः धनस्य क्षयन्तम् ईश्वरम् क्षयतिरैश्वर्य्यकर्मा (निघ० २, २१, ३,) वामस्य वननीयस्य धनस्य रातिं दातारं रातेः कर्त्तरि क्तिन् (३, ३, ९९) ईदृशं त्वां स्तुम इति शेषः । सत्वं सुभगां सौभाग्योपेतां महीं महतीम् इषम् अन्नं सानसिं सम्भक्तरूपम् रयिं धनं च दधासि स्तोतृभ्या ददासि ॥ ५ ॥

(अध्वरस्य इष्कर्त्तारम्) यज्ञका संस्कार करनेवाले (प्रचेतसं महः

राधसः क्षयन्तम्) श्रेष्ठ ज्ञानवाले और बहुतसे धनके ईश्वर (वामस्य रातिम्) और धन देनेवाले तुम्हारी हम स्तुति करते हैं, ऐसे तुम (सुभागां मही इषं सानसिं रयिं दधासि) सौभाग्य युक्त बहुतसा धन और भागनेयोग्य धन स्तुति करनेवालोंको देते हो ॥ ५ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निँ सुम्नाय
३ १ २र १ २ ३ १ २
दधिरे पुरो जनाः । श्रुतकर्णँ सप्रथस्तमं
३ २उ ३ १ २ ३ २
त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ६ ॥

छ० उपरिष्टाज्जोतिः । अथ षष्ठी । ऋतावानं सत्यवातं यज्ञवन्तं छन्दसि वनिपौ (५, २, १२२ वा०) इति मत्वर्थीयो वनिप् । महिषं महान्तं पूज्यं वा विश्वदर्शनं विश्वैः सर्वैर्दर्शनीयं यद्वा विश्वं दर्शनं यस्य बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६, २, ११६) इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम् ईदृशम् अग्निं सुम्नाय सुखाय सुखार्थं जनाः ऋत्विग्यजमानरूपाः पुरो दधिरे पुरो दधते सर्वकर्मभ्यः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि आहवनीयरूपेण धारयन्ति । परोऽर्द्धर्चः प्रत्यक्षकृतः । अपि च हे अग्ने श्रुत्कर्ण श्रुत् स्तुतीः सम्यक् शृण्वन् कर्णः श्रोत्रेन्द्रियं यस्य तादृशं सप्रथस्तमम् अतिशयेन प्रख्यातं यद्वा सर्वतो विस्तार्यमाणं दैव्यं देवानां हविर्वोढृत्वेन सम्बन्धिनम् ईदृशं त्वा त्वाम् मानुषा मानुषाणि मनोरपत्यानि युगा युगानि युगलानि पत्नीयजमानरूपाणि गिरा स्तुत्या स्तुवन्तीति शेषः ॥ ६ ॥

(जनाः) ऋत्विज यजमान आदि (ऋतावानं महिषम्) यज्ञके सम्बन्धी और पूजनीय (विश्वदर्शतं अग्निम्) विश्वभरके दर्शनीय अग्निको (सुम्नाय पुरः दधिरे) सुखके लिये सब कर्मोंमें प्रथम पूर्व दिशामें स्थापन करते हैं और हे अग्ने!(श्रुत्कर्ण सप्रथस्तमं) स्तुतियों को भलेप्रकार सुननेवाला है कान जिनका ऐसे और अत्यन्त प्रसिद्ध (दैव्यं त्वा युगा मानुषा गिरा) देवताओंके सम्बन्धी तुम्हें पतिपत्नी युगलरूप यजमान वेदवाणीसे स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः समाप्तः

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वा

२ ३ २ ३ १ २र
कर्मभिः । यस्य त्वꣳ सख्यमाविथ ॥ १ ॥

ऋ० सोभरिः । छ० ककुप् । दे० अग्निः । अथ षष्ठे खण्डे प्र सो अग्ने इति प्रगाथात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे अग्ने ! तव ऊतिभिः स यजमानः प्र तरति प्रवर्धते ऊतयो विशिष्यंते, सुवीराभिः शोभनाः वीराः पुत्रादयो यासु तास्तथोक्ताभिः, वाजकर्मभिः वाजानामन्नानाम् बलानां वा कर्म करणं यासु तादृशीभिः, हे अग्ने ! त्वं यस्य यजमानस्य सख्यं सखित्वं मित्रत्वम् आविथ प्राप्नोषि स तरतीत्यन्वयः१

(अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वं यस्य सख्यं आविथ) तुम जिस यजमानके मित्रभावको प्राप्त होते हो (सः) वह यजमान (सुवीराभिः वाजकर्मभिः तव ऊतभिः प्रतरति) जिनमें वीरपुत्रोंका प्राप्ति होती है और अन्न तथा बलकी प्राप्ति होती है ऐसी तुम्हारी रक्षाओंसे वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विज इन्धानः
३ १ २ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
सिष्णवा ददे । त्वं महीनामुषसामसि प्रियः
३ १ २र
क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । सिष्णो ! सिषिः सेचनार्थः सं मेनासिच्यमानाग्ने ! द्रप्सः द्रवणशीलः, नीलवान् शकटनीडेऽवस्थानात् तद्वान, वाशः कान्तः शब्दायमानो वा, ऋत्वियः ऋतौ वसन्तादिकालविशेषे भवः, इन्धानः सन्दीपयन, एवम्भूतस्तव सोमः आ ददे तुभ्यं होमायाध्वर्युणा आदीयते । अपिच त्वं महीनां महतीनाम् उषसाम् प्रियः मित्रभूतः असि उषसि हि अग्नयो होमाय प्रज्वाल्यन्ते । तथा क्षपः क्षपायाः रात्रेः सम्बन्धिषु वस्तुषु आच्छादकेषु तमस्सु सत्सु त्वं राजसि प्रकाशसे यद्वा, रात्रिसम्बन्धीनि वस्तूनि पदार्थजातानि त्वं प्रकाशयति ॥ २ ॥

(सिष्णः द्रप्सः नीलवान्) हे सोमसे सींचेजानेवाले अग्निदेव ! बहने वाला शकटरूपी स्थानमें स्थित हुआ (वाशः ऋत्वियः) शब्दायमान और वसन्त आदि ऋतुविशेषमें उत्पन्न हुआ (इंधानः आददे) दिपता हुआ सोम तुम्हारे विषैं होमनेके लिये अध्वर्युसे ग्रहण किया जाता है (त्वं महीनां उषसां प्रियः असि) तू बड़े २ उषः कालोंका मित्र

हैं, क्योंकि—उषःकालमें अग्निये होमके लिये प्रज्वलित कीजाती हैं, (क्षपः वस्तुषु राजसि) रात्रिसंबंधी ढकनेवाली वस्तुओंके होन पर तू प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ ५

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जन-

३ १ २ १ २ ३ १ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

यन्त मातरः । तमित्समानं वनिश्च वीरुधोऽन्तर्व-

३ १ २ ३ १ २

तीश्च सुवते च विश्वहा ॥ १ ॥

ऋ० अरुणः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथ तमोषधीर्दधिरे इति एकर्च्चं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । ऋत्वियम् ऋतौ प्राप्तं गर्भभूतं तं प्रकृतम् अग्निम् ओषधीः ओषध्यः दधिरे धारयन्ति । तम् एव अग्निं मातरः धारकत्वेन मातृस्थानीयाः आपः च जनयन्त जनयन्ति किञ्च वनिनः वनस्पतयः च समानं गर्भभावेन प्रवेशात् स्वतुल्यम् तमित् तमेवाग्निं जनयंति किञ्च तमेवाग्निम् अंतर्वतीः गर्भवत्यः वीरुधः ओषधयश्च विश्वहा सर्वदा सुवते जनयंति ॥ १ ॥

(ऋत्वियं गर्भ तं ओषधीः दधिरे) ऋतुमें प्राप्त हुए गर्भरूप तिस अग्निको ओषधि धारण करती हैं (तं अग्निं मातरः आपः जनयन्त) उस अग्निको धारण कर्त्ता होनेसे माताकी समान जल उत्पन्न करते हैं (वनिनः च समानं तमित्) वनस्पति भी गर्भभावसे प्रवेश करने के कारण अपने तुल्य तिस अग्निको ही उत्पन्न करते हैं (अंतर्वतीः वीरुधः च विश्वहा सुवते) गर्भवती ओषधियें भी विश्वदाहक तिस अग्निको ही उत्पन्न करती हैं ॥ १ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २र

अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति ।

१ २ ३ १ २

महिषी वि जायते ॥ १ ॥

ऋ० अग्निः प्रजापतिः वा । छ० गायत्री । दे० इंद्रः । अग्निरिन्द्रायेति एकर्च्च तृतीयं सूक्तम् सा ऋगेषा । अग्निः यज्ञेषु प्रथमम् प्रणेता अग्निः इंद्राय इंद्रार्थं पवते अस्माभिर्दत्तेन चर्वन्नेन पुरोडाशेन देवानामधिकः क्षरति । अग्निः शुक्रः दीप्तः सन दिवि स्वर्गे विराजति

विशेषेण प्रकाशयति यद्वा दिवि अंतरिक्षादिलोकेषु स्थितेषु देवेषु मर्त्येषु शुक्रः दीप्तः सन् विराजति । तत्र दृष्टांतः, महिषीव यथा महिषी तृणादिना विविधानि पयोघृतादीनि जनयति तथा वि जायते देवानामुपभोगार्थं विविधान्नानि जनयति ॥ १ ॥

(अग्निः इंद्राय पवते) यज्ञमें अग्रणी अग्नि इंद्रके लिये हमारे दिये हुए पुरोडाशसे अधिक दिपता है (शुक्रः दिवि विराजति) दीप्त हो कर अन्तरिक्षमें विशेष प्रकाशित होता है (महिषी इव विजायते) जैसे महिषी तृणादिसे दूध घी आदि उत्पन्न करती है तैसे ही देवताओं के अर्थ अनेकों अन्न उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

२ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु-
१ २ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
सामानि यन्ति । यो जागार तमयꣳ सोम
३ २ ३ १ २ ३ १ २
आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः छं० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथ यो जागारेति एकर्च्चं चतुर्थं सूक्तम् सा ऋगेषा । यः देवः जागार सर्वदा विनिद्रो जागरूको गृहे वर्त्तते तम् ऋचः सर्वशस्तात्मिकाः कामयन्ते । यः जागार त्यम् उ तमेव सामानि स्तोत्ररूपाणि यन्ति प्राप्नुवन्ति । यः जागार तम् अयम् अभिषुतः सोमः आह वक्ति स्वीकुर्विति । हे अग्ने ! तादृशस्य तव सख्ये समानस्थाने हितकरणे न्योकाः नियतस्थानः अहम् अस्मि भवामि ॥ १ ॥

(यः जागार) जो सदा जागृत रहता है (तं ऋचः कामयंते) उस को ऋचाएँ चाहती हैं (यः जागार तं उ सामानि यन्ति) जो जागृत रहता है उसको ही स्तोत्ररूप साम प्राप्त होते हैं (यः जागार तं अयं सोमः आह) जो जागृत रहता है उससे यह सोम कहता है कि मुझे स्वीकार करो, हे अग्ने ! (तव सख्ये) ऐसे आपके मित्रभावका प्राप्त होने पर (अहं न्योकाः अस्मि) मैं नियत स्थान वाला हूं ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
सामानि यन्ति । अग्निर्जागार तमयꣳ सोम

३ २३१२ ३ १ २
आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः । छ० त्रिष्टुप् । दे० अग्निः । अथाग्निर्जागारेत्येकर्च्चं पञ्चमं सूक्तम् सा ऋगेषा । सा निगदव्याख्याता ॥ १ ॥

(अग्निः जागार) अग्नि जागृत रहता है (तं ऋचः कामयन्ते) उसको ऋचा चाहती हैं (अग्निः जागार तं उ सामानि यन्ति) अग्नि जागृत रहता है उसको ही स्तोत्ररूप साम प्राप्त होते हैं (अग्निः जागार तं अयं सोमः आह) अग्नि जागृत रहता है उससे वह सोम कहता है कि-मुझे स्वीकार करो, हे अग्ने (तव सख्ये) ऐसे आपका मित्र भाव प्राप्त होने पर (अहं न्योकाः अस्मि) मैं अवश्य ही किसी स्थान का अधिपति होऊँ ॥ १ ॥

१२ ३ १ २ ३२ ३ १२ ३ १ २
नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकन्निषेभ्यः ।
३ १ २र ३१२
युञ्जे वाचꣳ शतपदीम् ॥ १ ॥

ऋ० मृगः । छ० गायत्री । दे० अग्निः । अथ नमः सखिभ्य इति तृचात्मकं षष्ठं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । पूर्वसद्भ्यः ये यज्ञे प्रारम्भात् पूर्व सीदन्ति तिष्ठन्तीति पूर्वसदनं तेभ्यः सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः सखिवन्मित्रभृतेभ्यो देवेभ्यो नमः वयं नमस्कारं कुर्मः । किंच, साकन्निषेभ्यः यस्मिन् यज्ञे सह निषण्णस्तेभ्यः नमः। किंच शतपदीम् अस्मभ्यं फलप्रदानाय अपरिमितमार्गां वाचं स्तुतिरूपाम् ऋचं युञ्जे योजयामि १

(पूर्वसद्भ्यः सखिभ्यः नमः) जो यज्ञमें प्रारम्भकालसे पूर्व स्थित होते हैं उन मित्रकी समान हितकारी देवताओंके अर्थ नमस्कार करते हैं(साकन्निषेभ्यः नमः)जो यज्ञमें साथ स्थित रहते हैं उन देवताओं के अर्थ नमस्कार करते हैं (शतपदीं वाचं युञ्जे) हमें अभीष्ट फल देनके लिये असंख्यों मार्गवाली स्तुतिरूप ऋचाका प्रयोग करता हूँ १

३ १ २र ३१२३ १ २ ३१२
युञ्जे वाचꣳ शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।
३ १ २र ३ १२
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। शतपदीम् अपरिमितसंख्याकमार्गां वाचं स्तोत्रं युञ्जे तेभ्यः प्रकृतेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्योऽहं योजये गायत्रं गायत्राख्यं त्रैष्टुभं त्रैष्टुभाख्यश्च जगत् जागतश्च सामरूपां तामृचं साम वा सहस्र-वर्त्तनि अपरिमितमार्गं यथा भवति तथा गाये अहं गानं करोमि ॥२॥

(शतपदीं वाचं युञ्जे) असंख्यों मार्गोंवाला स्तोत्र प्रस्तुत और वक्ष्यमाण देवताओंके अर्थ प्रयोग करता हूँ (गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् सहस्र-वर्त्तनि गाये) गायत्र नामक त्रैष्टुभ नामक और जगत् नामक साम की ऋचाको जिस प्रकार कि–वह अनेकों मार्गोंसे हमें अभीष्ट फल देय तिस प्रकार उनका गान करता हूँ ॥ २ ॥

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३२ ३ १ २
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
३ १ २र ३ २
देवा ओकाᳩसि चक्रिरे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। गायत्रं त्रैष्टुभं जागतम् ऋक्समूहं विश्वा विश्वानि रूपाणि उद्गात्रा सम्भृता सम्भृतानि नानारूपाणि कृतानि देवाः अग्न्या-दयश्च ओकांसि आश्रितानि स्थानानि चक्रिरे कुर्वन्ति ॥ ३ ॥

(गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्)गायत्री त्रिष्टुप् और जगती छन्दवाली ऋचाओंके समूहरूप (सम्भृता) उद्गाता करके नियत कियेहुए (विश्वा रूपाणि) अनेकों स्वरूपवाले (ओकांसि) स्थानोंको (देवाः चक्रिरे) अग्नि आदि देवता करते हैं ॥ ३ ॥

३ २उ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २
अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः ।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ॥ १ ॥

ऋ० अवत्सारः। छ० त्रिष्टुप्। दे० अग्निः । अथाग्निर्ज्योतिरिति तृचात्मकं सप्तमं सूक्तम् तत्र प्रथमा। एषा स्पष्टा ॥ १ ॥

(अग्निः ज्योतिः) अग्नि ज्योति है (ज्योतिः अग्निः)ज्योति अग्नि है (इन्द्रः ज्योतिः) इन्द्र ज्योति है (ज्योति इन्द्रः) ज्योति इन्द्र है (सूर्यः ज्योतिः) सूर्य ज्योति है (ज्योतिः सूर्यः) ज्योति सूर्य है ॥१॥

१ २ ३ १ २र १ १ २ ३ १ २
पुनरूर्जा नि वर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।

१ २ ३ १ २
पुनर्नः पाह्यँहसः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। हे अग्ने ! ऊर्जा बलेन इषा अन्नेन आयुषा जीवनेन च पुनः अस्मान् निवर्त्तस्व अस्मान् प्रत्यागच्छ। किञ्च त्वं नः अस्मान् अंहसः पापात् पाहि पालय। पुनः शब्दस्यावृत्तिरादरार्था॥ २ ॥

(अग्ने ऊर्जा पुनः निवर्त्तस्व) हे अग्निदेव ! बलसहित हमें फिर प्राप्त होओ (इषा आयुषा पुनः) अन्न और आयुसहित फिर प्राप्त होओ (नः अंहसः पुनः पाहि) हमें पापसे फिर रक्षा करो ॥ २ ॥

३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
सह रय्या नि वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
३ १ २ ३ २ ३ १ २
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया। हे अग्ने ! त्वं रय्या रमणीयेन धनेन सह निवर्त्तस्व तत् अस्मान् प्रापयेत्यर्थः। किंच विश्वतः सर्वतः परि उपरि परीति सप्तम्यर्थानुवादकः विश्वप्स्न्या प्सा भक्षणे (अदा० प०) विश्वस्य उपभोक्त्या धारया पिन्वस्व अस्मान् सिंच ॥ ३ ॥

(अग्न रय्या सह निवर्त्तस्व) हे अग्निदेव ! रमणीय धनसहित हमें प्राप्त होओ (विश्वतः परि) सबोंके ऊपर (विश्वप्स्न्या धारया पिन्वस्व) विश्वभरका उपभोग करनेवाली धारासे हमें सींचो ॥३॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य षष्ठः खण्डः समाप्तः

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २
यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
३ २ ३ १ २
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥

ऋ० गोसूक्तिः अश्वसूक्तिः वा। छ० गायत्री। दे० विश्वेदेवाः। अथ सप्तमे खण्डे—यदिन्द्राहं यथा त्वमिति तृचात्मकं प्रथमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हे इंद्र ! यथा त्वम् एकः इत् एक एव केवलं वस्वः वसुनः धनस्य ईशिषे ईश्वरो भवसि एवमहमपि यद् यदि ईशीय ऐश्वर्ययुक्तः स्यामिति तदानीं मे मम स्तोता गोसखा स्यात् गोभिः सहितो भवेत् ईश्वरस्य तव स्तोता कुतो हेतोर्गोसहितो न भवेत् अपि तु भवेदेवेत्यभिप्रायः॥ १ ॥

(इंद्र यथा त्वं वस्वः एकः इत्) हे इंद्र ! जैसे तुम धनके अकेले ही स्वामी हो (यत् अहं ईशीय) ऐसे ही यदि मैं ऐश्वर्ययुक्त होजाऊँ तो (मे स्तोता गोसखा स्यात्) मेरा स्तोता गौओंवाला होजाय फिर आप ईश्वरका स्तुतिकर्त्ता गौओंवाला क्यों न होगा ? ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २३ १ २ ३ १२
शिक्षेयमस्मै दित्सेयꣳ शचीपते मनीषिणे ।
२ ३ १ २र ३ २
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । हे शचीपते ! शक्तिमन्निन्द्र!अस्मै मनीषिणे मनस ईशित्रे स्तोत्रे दित्सेयं दातुमिच्छेयम, तदनन्तरं शिक्षेयं प्रार्थितं धनं दद्याञ्च यद् यदि अहं गोपतिः गवामधिपतिः स्याम भवेयम् त्वत्प्रसादादिति शेषः ॥ २ ॥

(शचीपते यत् अहं गोपतिः स्याम) हे शक्तिमान् इंद्र ! यदि मैं गौओंका स्वामी होजाऊँ तो (अस्मै मनीषिणे दित्सेयं शिक्षेयम्) इस मनीषी स्तोताको देना चाहूं और फिर धन दूँ ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
१ २र ३ १ २
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे इंद्र ! ते तव सूनृता स्तुतिरूपा वाक् धेनुः दोग्ध्री गौर्भूत्वा सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय गाम् अश्वं च उपलक्षणमेतत्, गवाश्वादिकं सर्वमभिलषितं दुहे दुग्धे । किं कुर्वती ? पिप्युषी तमेव यजमानं प्रवर्द्धयित्री ॥ ३ ॥

(इंद्र ते सूनृता धेनुः) हे इंद्र ! तेरी सत्य मधुर स्तुतिरूपा वाणी गौरूप होकर (पिप्युषी) यजमानकी वृद्धि करना चाहती हुई (सुन्वते यजमानाय गां अश्वं दुहे) सोमका अभिषव करनेवाले यजमानके अर्थ गौ घोड़े आदि सकल अभीष्ट पदार्थोंको दुह देती है ॥ ३ ॥

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
आपो हिष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
३ १ २र १ २
महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥

ऋ० त्रिशिराः सिन्धुद्वीपः वा। छ० गायत्री। दे० जलम्। आपो हि ष्ठेति तृचात्मकं द्वितीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा। हि यस्मात् कारणात् आपः या यूयं मयोभुवः मयसः सुखस्य भावयित्र्यः स्थ भवथ, ताः तादृश्यो यूयं नः अस्मान् ऊर्जे अन्नाय दधातन धत्त अन्नप्राप्तियोग्यान् अस्मान् कुरुत अन्नमस्मभ्यं दत्तेत्यर्थः महे महते रणाय रमणीयाय चक्षसे दर्शनाय सम्यक् ज्ञानाय च धत्त अस्मान् सम्यक् ज्ञानं प्रति योग्यान् कुरुतेत्यर्थः॥ १॥

(हि आपः मयोभुवः स्थ) क्योंकि जो तुम जल सुखको उत्पन्न करनेवाले हो (ताः नः ऊर्जे दधातन) वह तुम हमको अन्नकी प्राप्ति के लिये समर्थ करो (महे रणाय चक्षसे) महान् रमणीय ज्ञानको पानेके योग्य करो॥ १॥

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
३ १ २ ३ १ २
उशतीरिव मातरः॥ २॥

अथ द्वितीया। हे आपः! वः युष्माकं स्वभूतः यः रसः शिवतमः सुखतमः इह अस्मिन् लोके तस्य तं रसं नः अस्मान् भाजयत सेवयत उपयोजयतेत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः उशतीरिव उशत्य इव पुत्रसमृद्धिं कामयमानाः मातरः स्तन्यं रसं यथा भाजयन्ति प्रापयन्ति तद्वत्॥२॥

हे जलो! (इह वः यः रसः शिवतमः) इस लोकमें तुम्हारा जो रस परम सुखरूप है (तस्य नः भाजयत)वह रस हमें सेवन कराओ (उशतीः मातरः इव) जैसे कि-पुत्रोंकी वृद्धि चाहनेवाली मातायें अपने स्तनोंके रसका सेवन कराती हैं॥ २॥

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
१ २ ३ १ २
आपो जनयथा च नः॥ ३॥

अथ तृतीया॥ हे आपः! यूयं यस्य पापस्य क्षयाय विनाशाय अस्मान् जिन्वथ प्रीणयथ, तस्मै तादृशाय पापक्षयाय अरं क्षिप्रं वः युष्मान् गमाम गमयाम वयं शिरसि प्रक्षिपामेत्यर्थः यद्वा, यस्यान्नस्य क्षयाय निवासार्थं यूयमोषधीर्जिन्वथ तर्पयथ, तस्मै तदन्नमुद्दिश्य वयमरमलं पर्य्याप्तं यथा भवति तथा वो युष्मान् गमाम गच्छाम। किंच,हे आपः! नः अस्मान् जनयथ च पुत्रपौत्रादिजनने प्रयोजयतेत्यर्थः॥ ३॥

(आपः यस्य क्षयाय जिन्वथ) हे जलो ! तुम जिस पापके विनाश के लिये हमें प्रेरणा करते हो (तस्मै अरं वः गमाम) उस पापक्षयके लिये शीघ्र ही तुम्हें हम अपने शिर पर डालते हैं, हे जलो ! (नः जनयथ च) हमें पुत्र पौत्रादिको उत्पन्न करनेमें प्रयुक्त करो ॥ ३ ॥

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २३ १ २ ३२
वात आ वातु भेषजꣳ शम्भु मयोभु नो हृदे ।
२ ३ १ २
प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ १ ॥

ऋ०उलः । छ० गायत्री । दे० वायुः । अथ वात आवात्विति तृचात्मकं तृतीयं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । वातः वायुः नः अस्माकं हृदे हृदयाय भेषजम् औषधम् उदकं वा आ वातु आगमयतु । कीदृग्भूतम् ? शम्भु रोगशमनस्य भावयितृ, मयोभु मयसः सुखस्य च भावयितृ । अपि च नः अस्माकम् आयूंषि अन्नानि वा प्र तारिषत् प्रवर्द्धयतु ॥ १ ॥

(वातः नः हृदे शम्भु मयोभु भेषजं आ वातु) वायु हमारे हृदयके लिये रोगोंको शान्त करनेवाला और सुखको उत्पन्न करनेवाला औषधरूप होकर बहै (नः आयूंषि प्रतारिषत) हमारे आयुकारी अन्नोंको बढ़ावै ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २ ३२उ ३ २ १ १ २
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
१ ३ ३ १ २
स नो जीवातवे कृधि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया । उत अपि च हे वात त्वं नः अस्माकम् पिता असि उत्पादकोऽसि पालयिता वा । उत अपि च भ्राता असि । उत अपि च नः अस्माकं सखा समानख्यानश्च असि । सः त्वं नः अस्मान् जीवातवे जीवनहेतवे यागाय कृधि कुरु करोतेश्छान्दसो विकरणस्य लुक् (२, ४, ७३), श्रुशृणुपृकृवृभ्यश्छन्दसि (६, ४, १०२), इति हेर्धिरादेशः ॥ २ ॥

(उत वात नः पिता असि) और हे वायो ! तुम हमारे पिताकी समान उत्पन्न करनेवाले और रक्षा करने वाले हो (उत भ्राता) और भ्राताकी समान प्रेम करनेवाले हो (उत नः सखा) और हमारे हित कारी मित्र हो (सः नः जीवातवे कृधि) वह तुम हमें जीवनके हेतु यज्ञके करनेमें समर्थ करो ॥ २ ॥

२ ३ १ २ ३ २ २ ३ १ २ ३ १ २

यददो वात ते गृहे३ऽमृतं निहितं गुहा ।

१ २ ३ १ २

तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । हे वात ! वायो ! ते तव गृहे स्थाने यदद: यदिदम् अमृतम् अविनाशि गुहा गुहायाम् गह्वरे निहितम् स्थापितं वर्तते । हे विभावसो । विशिष्टप्रकाशधनवन् ! वायो ! तस्य तद्धनं कर्मणि षष्ठी (३, १, ८५) नः अस्माकं धेहि देहि प्रयच्छेत्यर्थः ॥ ३ ॥

(वात ते गृहे) हे वायो ! तुम्हारे स्थानमें (यत् अदः अमृतं गुहा निहितम) जो यह अविनाशि धन गुहामें स्थित है (विभावसो तस्य नः धेहि) हे विशेष प्रकाशयुक्त धनवाले वायो ! वह धन हमें दो ३

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २

अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रꣳ हिरण्ययं वि-

३ १ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३

भ्रदत्कꣳ सुपर्णः । सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः

१ २ ३ १ २र ३ १ २

परि स्वयं मेधमृज्रो जजान ॥ १ ॥

ऋ० सुपर्णः । छ० त्रिष्टुप् । दे० सूर्यः । अथ अभि वाजीति तृचात्मकं चतुर्थं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । सुपर्णः सुपतनः शोभनपतनो गरुत्मान् इव, वाजी वेगवान् बलवानन्नवान् वा, विश्वरूपः नानाविधप्रकाशः, स हि चित्रभानुः ऋज्रः ऋजी भर्जने (भ्वा० आ०), भ्रस्ज पाके (तु० उभ०), ऋजति भृज्जति पचतीति ऋज्र अग्निः सः स्वकीयं जनित्रं जननस्थानम् अरणिविलम् अत्कम् स्वतेजसा व्याप्तम् अत एव हिरण्ययं हिरण्मयमिव स्थितम् अभि अभितः साकल्येन बिभ्रत् पुष्यन् सूर्यस्य भानुम् सवितुः प्रकाशम् ऋतुथा कालेकाले वसानः शास्त्रवदाच्छादयन् अग्निश्चादित्यः सायं प्रविशति तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे इति श्रुतेः । मेधं परि यज्ञं लक्षीकृत्य स्वयं जजान उदपद्यत ॥ १ ॥

(सुपर्णः वाजी) गरुड़की समान वेग वा बलवाला (विश्वरूपः ऋज्रः) अनेकों प्रकारके प्रकाशवाला पापकारी अग्नि (जनित्रं अत्कम्) अपने उत्पत्तिस्थान अरणिके बिलको अपने तेजसे व्याप्त और इसी कारण (हिरण्ययं अभि बिभ्रत्) मानो सुवर्णकी समान दमकता

(ऋतुथा वसानः) समय २ पर रात्रिमें वस्त्रकी समान ढकताहुआ वा धारण करताहुआ (मेधं परि जजान) यज्ञके निमित्त स्वयं प्रकट होताहै १

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ ३
अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
यत्संबभूव । अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। रेतः सारभूतं विश्वरूपम् नानारूपं यत् अन्नात्मकं तेजः अप्सु शिश्रिये आश्रयते स निलीयते सोमः प्राविशन् इति श्रुतेः। यच्च पृथिव्यामधि भूमौ सम्बभूव तिष्ठति अग्निः पृथिवीस्थानः (निरु० दै० १। १४) इति हि निरुक्तम्। सः अंतरिक्षे आकाशे स्वं महिमानं किरणजालं मिमानः व्यापारयन् वृष्णः अश्वस्य रेतः सोमाहुतिं प्रति सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः, इति श्रुतेः। कनिक्रन्ति याचमान इव पुनः पुनः क्रन्दते शब्दं करोति, यद्वा आह्वयन्निव भृशं शब्दायते ॥ २ ॥

(रेतः विश्वरूपं यत् तेजः अप्सु शिश्रिये) सारभूत नानाप्रकारका अन्नरूप तेज जलोंका आश्रय करके रहता है (यत् पृथिव्यां अधि संबभूव) जो भूतल पर स्थित है, वह (अंतरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः) आकाशमें अपनी किरणोंके समूहको फैलाता हुआ (वृष्णः अश्वस्य रेतः कनिक्रन्ति) सोमकी आहुतिका आह्वान करताहुआ अत्यंत शब्द करता है ॥ २ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र १ २ ३ २
अयꣳ सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
यज्ञो दधार । सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्त्ता
३ १ २र ३ १ २
दिवो भुवनस्य विश्पतिः ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । दिवः स्वर्गस्य अथ भुवनस्य भूतजातस्य लोकस्य धर्त्ता धारयिता, विश्पतिः विशां प्रजानां पालयिता, सहस्रदा शतदा भूरिदा वा यो यावत् प्रार्थयते सहस्रम् शतं भूरि अपरिमितं वा तस्मै तस्मै तावद्दाता यज्ञः यजनि यः अयम् अग्निः युक्ता युक्तानि स्वात्मना

सम्बद्धानि सहस्रा सहस्राणि स्वकीयकिरणजालानि परिवसानः परितः आच्छादयन् सूर्यस्य भानुं रात्रौ सूर्यस्यापि प्रकाशं दधार स्वयमेव धारयति ॥ ३ ॥

(दिवःभुवनस्य धर्त्ता) स्वर्गका और सकल भुवनोंका धारण करने वाला (विश्पतिः) प्रजाओंका पालन करनेवाला (सहस्रदा शतदा वा भूरिदां) याचकोंको उनकी इच्छानुसार सहस्र सौ वा असंख्य धन देनेवाला (यज्ञः अयम्) यजन करने वाला यह अग्नि (युक्ता सहस्रा परिवसानः) अपने से मिली हुई सहस्रों किरणोंको चारों ओर फैलाता हुआ रात्रिमें (सूर्यस्य भानुं दधार) सूर्यके भी प्रकाश को स्वयं ही धारण करता है ॥ ३ ॥

१ २ ३२३ ३ १ २३ ३१ २र ३१
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तꣳ हृदा वेनन्तो अभ्य-
२ १२ ३ १२ ३२ ३२ ३
चक्षत त्वा । हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य
१ २ ३१ २३ २
योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ १ ॥

ऋ० वेनः । छ० अनुष्टुप् । दे० वेनः सूर्यः वा । नाके सुपर्णमिति तृचात्मकं पञ्चमं सूक्तम्, तत्र प्रथमा । हे वेन ! त्वा त्वां हृदा हृदयेन मनसा वेनन्तः कामयमानाः स्तोतारः नाके अंतरिक्षे यत् यदा अभ्यचक्षत अभि पश्यन्ति । तदानीं त्वमुपागच्छसीति शेषः । कथम्भूतम् ? सुपर्णं शोभनपतनं, पतन्तं अंतरिक्षे गच्छन्तं, हिरण्यपक्षं हिरण्मयाभ्यां पक्षाभ्यामुपेतं, वरुणस्य जलाभिमानिनो देवस्य दूतम् चरन् यमस्य नियामकस्य वैद्युताग्नेः योनौ स्थानेऽन्तरिक्षे शकुनं पक्षिरूपेण वर्त्तमानं भुरण्युं भर्त्तारं यद्वा, वृष्टिप्रदानादिना सर्वस्य जगतः पोषकम् । भुरण धारणपोषणयोः कण्ड्वादिः, अस्मादौणादिक उप्रत्ययः ॥ १ ॥

हे वेन ! (सुपर्णं पतन्तम्) सुन्दर पतनवाले और अंतरिक्षमें जाते हुए (हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतम्) सुवर्णमय पक्षोंवाले और जलके अभिमानी वरुणदेवताके दूत (यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्) नियामक बिजलीरूप अग्निके स्थान अंतरिक्षमें पक्षीरूपसे वर्त्तमान और वर्षाके द्वारा सब जगत् के पोषक (त्वा हृदा वेनन्तः) तुम्हें मनसे चाहते हुए स्तोता (नाके यत अभिचक्षत) अन्तरिक्षमें जब देखते हैं तब (उप) तुम प्राप्त होते हो ॥ १ ॥

३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ २ ३ १
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा
२र ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
बिभ्रदस्यायुधानि । वसानो अत्कꣳ सुरभिं दृशे
१ २र ३ १ २
कꣳ स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि ॥ २ ॥

अथ द्वितीया। ऊर्ध्वं उपरि देशे वर्त्तमानः गन्धर्वः गवामुदकानाम धर्त्ता गवि गम् धृञ्। वः इति गोशब्दोपपदात् धृञ् धारणे (भ्वा०उ०) इत्यस्मात् वप्रत्ययः उपपदस्य गम्भावश्च ईदृशो वेनः प्रत्यङ् अस्मात् प्रत्यञ्चन्नभिमुखः सन् नाके अधि अन्तरिक्षे अस्थात् तिष्ठति। किं कुर्वन्? अस्य आत्मनः स्वभूतानि चित्रा चित्राणि चायनीयानि आश्चर्यभूतानि वा आयुधानि बिभ्रत् धारयन् बिभर्तेः शतरि भृञामित् (७, ४, ७६) इत्यभ्यासस्येत्त्वम् नाभ्यस्ताच्छतुः (७, १, ७८), इति नुम्प्रतिषेधः, । अभ्यस्तानामादिः (६, १, १८९) इत्यादिरुदात्तः तथा सुरभिं शोभनम् अत्कम् आत्मीयं व्याप्तं रूपं वसानः सर्वत्राच्छादयन्। किमर्थम्? दृशे दर्शनार्थम् दृशे विख्ये च (३, ४, ११) इति केप्रत्ययान्तो निपात्यते कम् इति पूरकम्। तत्र दृष्टान्तः स्वर्णः शोभनारण आदित्यः स यथा आत्मीयं रूपं दर्शनाय सर्वत्राच्छादयति तद्वत्। तदनन्तरं नाम नामानि नमनशीलान्युदकानि प्रियाणि सर्वेषामनुकूलानि जनत जनयति वृष्टिमुत्पादयतीत्यर्थः ॥ २ ॥

(ऊर्ध्वः गन्धर्वः प्रत्यङ्) ऊपर वर्त्तमान जलोंका धारण करने वाला वेन हमारे अभिमुख होता हुआ (नाके अधि अस्थात्) अन्तरिक्षमें स्थित होता है। क्या करता हुआ? (अस्य चित्रा आयुधानि बिभ्रत्) अपने आश्चर्यभूत आयुधोंको धारण करता हुआ (दृशे सुरभिं कं अत्कं वसानः) दर्शनके लिये सुन्दर और फैलनेवाले अपने रूपका सर्वत्र आच्छादन करता हुआ (स्वः न नाम प्रियाणि जनतं) जैसे सूर्य अपने रूपको दिखानेके लिये सर्वत्र व्यापजाता है तैसे। तदनन्तर जलोंको सबके अनुकूल करता है अर्थात् वर्षा करता है ॥ २ ॥

३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य
१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
चक्षसा विधर्मन् । भानुः शुक्रेण शोचिषा चकान

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
स्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ३ ॥

अथ तृतीया । विधर्मन् विधर्मणि विधारकेऽन्तरिक्षे स्थितः द्रप्सः द्रवणशीलः यद्वा द्रप्सो उदकबिन्दवः तद्वान् अर्श आदित्वादच् (५, २, १२७) गृध्रस्य रसानभिकाङ्क्षतः सूर्य्यस्य चक्षसा तेजसा पश्यन् प्रकाशमानो वेनः यद् यदा समुद्रं समुन्दनशीलं मेघम् अभि जिगाति अभिगच्छति तदानीं भानुः सूर्य्यः शुक्रेन शुक्रेण शोचिषा तेजसा तृतीये रजसि लोके चकानः दीप्यमानः प्रियाणि सर्वेषामभीष्टानि उदकानि चक्रे करोति ॥ ३ ॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तकश्रीवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीये सामवेदार्थप्रकाशे उत्तरार्थे विंशोऽध्यायः समाप्तः ॥ २० ॥

(विधर्मन् द्रप्सः) अन्तरिक्षमें स्थित और जलकी बिन्दुओंवाला (गृध्रस्य चक्षसा पश्यन्) रसोंको चाहनेवाले सूर्यके तेजसे प्रकाशित हुआ वेन (यद् समुद्रं अभिजिगाति) जब मेघकी ओरको जाता है तब (भानुः शुक्रेण शोचिषा) सूर्य स्वच्छ तेजसे (तृतीये रजसि चकानः) तीसरे लोकमें दीप्त होता हुआ (प्रियाणि चक्रे) सबके प्यारे जलोंकी वर्षा करता है ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके विंशाध्यायस्य सप्तमः खण्डः विंशाध्यायश्च समाप्तः

अथैकविंशोऽध्याय आरभ्यते।

---

३ १ २र ३ १२३ ३ १ २ ३ १
आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः
३ १ २र ३ १ २र
शतꣳ सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

ऋ० प्रजापतिः । छ० त्रिष्टुप् । दे० इंद्रः । तत्र आशुः शिशान इत्यारभ्य नवसूक्तात्मक एक एव खण्डः तत्र प्रथमे सूक्ते प्रथमा । अत्रैन्द्रोऽप्रतिरथ ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः इंद्रो देवता साग्निचित्ये क्रतौ

अग्नौ प्रणीयमानेऽयमध्यायो ब्रह्मणा जाप्यम् । अयमिन्द्रः आशुः शीघ्रकारी व्यापको वा शिशानः निशितः शत्रूणां भयजनक इत्यर्थः । क इव ? वृषभो न भीमः बिभेत्यस्मादिति भीमः तादृशो वृषभ इव स यथा तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां भीमो भवति तद्वत् अथवा शिशानस्तीक्ष्णमतिः व्यत्ययेनात्मनेपदम् घनाघनः घातकः शत्रूणां हंता पचाद्यचि हतेर्घत्वञ्चे ति द्विर्वचनम् । अभ्यासस्याडागमः घत्वञ्च धात्वभ्यासयोः चर्षणीनां चर्षणयो मनुष्याः मनुष्याणां द्वेष्याणां क्षोभणः क्षोभयिता संक्रन्दनः सम्यक् क्रन्दयिता प्राणिनाम् आकर्षणेन प्रहारेण वा अनिमिषः चक्षुर्निमेषरहितः सर्वदा स्वयज्ञगमनयुद्धादिकार्य्येष्वनलस इत्यर्थः एकवीरः वीरयत्यमित्रान् इति वीरः एकश्चासौ वीरश्च अथवा एक एव विक्रान्तः असहाय्येन कार्य्यक्षम इत्यर्थः । ईदृशोऽयमिन्द्रः शतं सेनाः साकं सह एकयोगेनैव अजयत् जयति १

(आशुः भीमः वृषभः न शिशानः)शीघ्रता करनेवाला वा व्यापक और भयानक वृषभकी समान शत्रुओंको भय देनेवाला (घनाघनः चर्षणीनां क्षोभणः) पापियोंका नाशक और द्वेषियोंको क्षोभितकरनेवाला (संक्रन्दनः अनिमिषः) देवद्वेषियोंको रुलाने वाला और अपने यज्ञोंमें जानेमें तथा युद्धादिमें आलस्यरहित (एकवीरः इंद्र) अद्वितीय वीर इंद्र (शतं सेनाः साकं अजयत्) सैंकड़ों सेनाओंको एक ही उद्योगसे जीतलेता है ॥ १ ॥

३ १ २ ३१२ ३ १२ ३१२
संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण
३१२ ३ १२ १ २र ३ १२
दुश्च्यवनेन धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत्स-
२ १२ ३ १२ ३ १ २
हध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

अथ प्रथमे सूक्ते द्वितीया । अप्रतिरथः त्रिष्टुप् इंद्रः । अस्तु नामेन्द्र उक्तविधः तथाप्यस्माकं किमिति तत्राह संक्रन्दनेन अनिमिषेण चोक्तलक्षणेन जिष्णुना जयशीलेन युत्कारेण योधनं युत् युद्धकारिणा कर्मण्यण (२, २, १) दुश्च्यवनेन अन्यैरविचाल्येन च्युङ् प्रुङ् गतौ (भ्वा० आ०) छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ३, ३, १२९) इति युच् धृष्णुना धर्षकेण । ईदृशेन इंद्रेण तत् युद्धं जयत तत् शत्रुबलं सहध्वम् अभिभवत । हे युधः ! योद्धारः । हे नरः ! नेतारः सामान्यवचनम् विभा-

षितं विशेषवचने बहुवचनम् (८, १, ७४) इति पूर्वस्याविद्यमानवत्व-निषेधाद्दुश्चरं निहन्यते । पुनः कीदृशेनेन्द्रेण ? इषुहस्तेन वृष्णा वर्ष-कर्त्रा च ॥ २ ॥

(युधः नरः) हे योद्धा मनुष्यो ! (संक्रंदनेन अनिमिषेण) देव-द्वेषियोंको रुलानेवाले और निरालस (जिष्णुना युत्कारेण) जयशील और युद्ध करनेवाले (दुश्च्यवनेन धृष्णुना इषुहस्तेन वृष्णा इंद्रेण) दूसरोंसे विचलित न होनेवाले शत्रुओंको तर्जना देनेवाले हाथमें बाण लिये और वर्षा करनेवाले इंद्रके द्वारा (तत् जयत) उस युद्धको जीतो (तत सहध्वम्) उस शत्रुओंके बलका तिरस्कार करो ॥२॥

१ १र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २उ

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

युध इन्द्रो गणेन । सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहु

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २

शर्ध्युꣳ३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३ ॥

अथ प्रथम सूक्ते तृतीया । अप्रतिरथः त्रिष्टुप् इन्द्रः । पूर्वमन्त्रे इंद्रेण जयतेत्युक्तं अत्रेन्द्रस्य जयसाधनसामर्थ्यं प्रतिपादयति । सः इन्द्रः इषुहस्तैः भटैः मरुदादिभिः वशी वश्यैस्तद्वान् यथा निषङ्गिभिः-युक्तः निषङ्गः खङ्गः तद्वद्भिः वशी स चेन्द्रो युधः युध्यमानः सन् इगु-पधलक्षणः कः (३, १, १३५)अथवा युधः युद्धहेतोः गणेन शत्रुसंघेन सह संस्रष्टा एकीभवनशीलः । यत एवंविधः अतः संसृष्टजित् ये पर-स्परैकमत्येन युद्धाय संसृष्टा भवन्ति, तेषां जेता तथा सोमपाः सोमस्य पाता, बाहुशर्द्धी बलं बाह्वोः बलं, तद्वान् मत्वर्थीय इनिः (५, २, ११५), यद्वा, शृधु प्रहसने (भ्वा० आ०), बाहुभ्यां शर्द्धयत्यभिभवतीति बाहुशर्द्धी सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छिल्ये (३, २, ७८) इति णिनिः उग्रधन्वा उद्यतधन्वा, प्रतिहिताभिः शत्रुषु प्रेरिताभिरिषुभिः अस्ता मारयिता, यत्रेषून् मुञ्चति तत्र वृथा न भवतीत्यर्थः । ईदृशेनेन्द्रेण जय-तेति सम्बन्धः ॥ ३ ॥

(सः इषुहस्तैः वशी) वह इंद्र बाणधारी मरुत् आदि योधाओंको वशमें रखता है (सः निषङ्गिभिः) वह खड्गधारी योधाओंको वशमें रखता है (सः इंद्रः युधः गणेन संसृष्टा) वह इंद्र युद्ध करताहुआ शत्रुसमूहके साथ भिड़जाता है (संसृष्टजित् सोमपाः) इकट्ठे होकर युद्ध करनेवालोंको जीतनेवाला और सोमपान करनेवाला है (बाहु-

शर्द्धी उग्रधन्वा) भुजाओंमें बलवाला है और धनुषको उद्यत रखता है (प्रहिताभिः अस्ता) छोड़ेहुए बाणोंसे अवश्य ही मारडालने वाला है।

१२ ३ १२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहाऽमित्राँ अपबाध-
३ १ २र ३ २ ३ १ २र ३
मानः । प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्न-
१ २ ३ १ २र
स्माकमेध्यविता रथानाम् ॥ १ ॥

अथ द्वितीये सूक्ते प्रथमा । अप्रतिरथः, त्रिष्टुप् बृहस्पतिः । हे बृहस्पते ! बृहतां पते ! पालयितः ! देव ! रथेन परिदीय परिगच्छ दीयतिर्गतिकर्मा (निघ० २, १४, ६९)। आगत्य च रक्षोहाः रक्षसां हन्ता अमित्रान् शत्रून् अपबाधमानः सर्वतो नाशयन् तथा सेनाः शत्रुसम्बन्धिनीः प्रभञ्जन्, प्रकर्षेण, नाशयन् प्रमृण प्रकर्षेण हिंसन् मृण हिंसायाम (तु० प०) इगुपधलक्षणः कः (३, १, १३४)। केन हिंसन् युधा युद्धेन सावेकाच (६ १, १६८) इति विभक्तेरुदात्तत्वम् जयन् एवं सर्वत्र जयं प्रतिपद्यमानः । ईदृशस्त्वम अस्माकं रथानाम् अविता रक्षिता एधि भव ॥ १ ॥

(बृहस्पते) हे बड़ोंके रक्षक इंद्र (रथेन परिदीय) रथपर चढ़ कर आओ, आकर (रक्षोहा अमित्रान् अपबाधमानः) राक्षसोंका नाशकर्त्ता और शत्रुओंको पीड़ा देताहुआ (सेनाः प्रभञ्जन् प्रमृण) शत्रुओंकी सेनाओंको छिन्न भिन्न करता हुआ नष्ट कर (युधा जयन) युद्धमें सर्वत्र विजय पाताहुआ (अस्माकं रथानां अविता एधि), हमारे रथोंका रक्षक हो ॥ १ ॥

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १
बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी
२र ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
सहमान उग्रः । अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा
२र ३ २ ३ १ २ ३ २
जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ २ ॥

अथ द्वितीये सूक्ते द्वितीया । अप्रतिरथः, त्रिष्टुप, इन्द्रः । सर्वस्य भूतस्य बलं विजानातीति बलविज्ञायः यद्वा, ममायमिति सर्वैर्बलत्वेन विज्ञायत इति बलविज्ञायः सर्वस्य बलभूत इत्यर्थः स्थविरः महान्

प्रवीरः प्रकर्षेण वीरः, सहस्वान् पराभिभवसामर्थ्यवान, वाजी वेजनवान् अन्नवान् वा सहमानः शत्रूणामभिभविता, उग्रः उद्गूर्णबलः, अभिवीरः अभिगता वीरा वीर्य्यवन्तोऽनुचरा यस्य स तथोक्तः, अभिसत्वा अभिगतसत्वा, सहोजाः सहसो बलाज्जातः। एवं महानुभावस्त्वं हे इंद्र! जैत्रं जयशीलं रथम् आ तिष्ठ अस्मत्सहायार्थम् आरोढुमर्हसि। त्वञ्च गोवित् उदकस्य स्तुतेर्वा लब्धा वेदिता वा ॥ २ ॥

(इन्द्र) हे इंद्र (बलविज्ञायः स्थविरः) सबके बलोंको जाननेवाला और महान् (प्रवीरः सहस्वान्) परमवीर और दूसरोंको दबानेकी शक्ति रखनेवाला (वाजी सहमानः) अन्नवान् और शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाला (उग्रः अभिवीरः) तीक्ष्णबली और चारों ओर हैं वीर सेवक जिसके ऐसा (अभिसत्वा सहोजाः) सारवान् और बलसे उत्पन्न हुआ (गोवित्) स्तुतिको प्राप्त होनेवाला तू (जैत्रं रथं अतिष्ठ) हमारी सहायता करनेको विजय देनेवाले रथपर चढ़ ॥ २ ॥

३ १२ ३२३१२ ३१२३१ २ ३२
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृण-
३१ २ ३१ २ ३१२ ३१
न्तमोजसा। इमथ्ँ सजाता अनु वीरयध्वमि-
२ ३ २३१ २
न्द्रथ्ँ सखायो अनु सथ्ँ रभध्वम् ॥ ३ ॥

अथ द्वितीये सूक्ते तृतीया। अप्रतिरथः त्रिष्टुप् इन्द्रः। गोत्रभिदं गा उदकानि त्रायन्त इति गोत्रा मेघाः यद्वा गोभूमिः तां त्रायन्त इति गोत्राः पर्वताः तेषां भेत्तारम् गोविदम् उदकस्य लब्धारं वज्रबाहुं वज्रहस्तं प्रहरणार्थेभ्यः (२, २, ३७ वा०) इति सप्तम्याः परनिपातः जयन्तं जयनशीलम् अज्म गमनशीलं शत्रुबलम् ओजसा बलेन जयन्तं यद्वा अज्म आजि जयन्तं ओजसा बलेन प्रमृणन्तं शत्रूनभिभवन्तम्। ईदृशं महानुभावम् इन्द्रम् हे सजाताः! सहोत्पन्ना योद्धारो यूयम् अनुवीरयध्वम् एनमग्रतः कृत्वा अनु पश्चाद् वीरयध्वं वीरकर्म युद्धं कुरुध्वम् शूर वीर विक्रान्तौ वीरशब्दात् तत् करोति तदाचष्टे (सि० कौ० ति० चु०) इति णिच्। हे सखायः! परस्परं सखिभूता यूयम् इमम् इन्द्रम् संरभमाणम् अनुसंरभध्वम् ॥ ३ ॥

(सजाताः) हे साथ उत्पन्न हुए वीरो! (गोत्रभिदं गोविदम्) पर्वतोंके तोड़नेवाले और स्तुतिको प्राप्त होनेवाले (वज्रबाहुं अज्म-

जयन्तम्) वज्रधारी और संग्रामको जीतनेवाले (ओजसा प्रमृणन्तम्) बलसे शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले (इमं इंद्रं अनुवीरयध्वम्) इस इंद्रको आगे करके वीरकर्म युद्धको करो (सखायः अनु संरभध्वम्) हे मित्रो ! इस इंद्रके शत्रुओं पर क्रोध करने पर तुम भी क्रोधमें भरजाओ ॥ ३ ॥

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
शतमन्युरिन्द्रः । दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३
२ ३ १ २ ३ २ ३ २
ऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥ १ ॥

अथ तृतीये सूक्ते प्रथमा । अप्रतिरथः त्रिष्टुप् इंद्रः । अयम् इंद्रः गोत्राणि अभ्राणि मेघान् सहसा बलेन अभिगाहमानः प्रविशन् अदयः निर्दयः वीरः विक्रांतः शतमन्युः बहुयज्ञः बहुक्रोधी वा दुश्च्यवन अन्यैरचाल्यः पृतनाषाट् शत्रुसेनानामभिभविता छन्दसि सह (३, २, ६३) इति ण्विः सहेः साडः सः (८, ३, ५६) इति मूर्द्धन्य देशः अयुध्यः, सम्प्रहर्त्तुमशक्यः युध सम्प्रहारे, छान्दसः क्यप् (३, १, ८९) । ईदृगिन्द्रः अस्माकं सेना युत्सु संग्रामेषु प्रावतु प्रकर्षेण रक्षतु ॥ १ ॥

(गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः) मेघोंमें बलात्कारसे प्रवेश करता हुआ (अदयः वीरः) शत्रुओं पर दया न करनेवाला और पराक्रमी (शतमन्युः दुश्च्यवनः) सौ यज्ञोंवाला वा बहुत क्रोधवाला और किसी से चलायमान न होनेवाला (पृतनाषाट् अयुध्यः इंद्रः) शत्रु सेनाओं का तिरस्कार करनेवाला और जिसके ऊपर कोई प्रहार न कर सके ऐसा इंद्र (युत्सु अस्माकं सेनाः प्रावतु) संग्रामोंमें हमारी सेनाओं की रक्षा करे ॥ १ ॥

१ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरः
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
एतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जय-
३ १ २ ३ १ २
न्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ २ ॥

अथ तृतीये सूक्ते द्वितीया । अप्रतिरथः त्रिष्टुप् इंद्रः । आसाम् अस्मत्सहायार्थमागतानां देवसेनानां अयमिंद्रः नेता नायकः अस्तु तथा तस्य बृहस्पतिः पुरः एतु एवं दक्षिणा यज्ञः सोमः चतुर्ष्वपि एत्विति प्रत्येकं सम्बंधः । तथा देवसेनानाम् अभिभञ्जतीनाम् अस्मद्मित्राणामभिमुख्येन मर्दयंतीनां भञ्जतीनां ङ्याच्छन्दसि (६, १, १७८) इति नाम उदात्तत्वम् जयंतीनाम इत्यत्र बहुलवचनान्न भवति । तासाम् अग्रम् मरुतः यंतु गच्छंतु ॥ २ ॥

(आसां इंद्रः नेता) हमारी सहायताको आई हुई इन सेनाओंका इंद्र नायक हो (बृहस्पतिः दक्षिणा यज्ञः सोमः पुरः एतु) बृहस्पति दक्षिणा यज्ञ और सोम आगे हों (मरुतः अभिभञ्जतीनां जयन्तीनाम् देवसेनानां अग्रम् यन्तु) मरुत् देवता मर्दन करनेवाली और विजय पानेवाली देवसेनाओंके आगे चलें ॥ २ ॥

१ २ ३२ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३२३
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताᳫं
१ २ ३२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
शर्द्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो
३ २ ३ १ २ ३ १ २
देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥

अथ तृतीये सूक्ते तृतीया । अप्रतिरथस्त्रिष्टुबिन्द्रः । वृष्णः वर्षकस्य इंद्रस्य राज्ञः वरुणस्य, आदित्यानां मरुतां च उग्रम उद्गूर्ण शर्द्धः बलम अस्माकं भवत्विति शेषः । किञ्च महामनसाम् उदारमनसां भुवनच्यवानां भुवनानां च्यावयितॄणां देवानां घोषः जयशब्दः उदस्थात् उत्तिष्ठति अनूर्द्धकर्मत्वादात्मनेपदाभावः (१, ३, २४) ॥ ३ ॥

(वृष्णः इंद्रस्य) अभीष्टफलदाता इंद्रका (राज्ञः वरुणस्य) राजा वरुणका (आदित्यानां मरुतां उग्रम् शर्द्धः) आदित्य और मरुतोंका उग्रबल हमारा हो (महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानां घोषः उदस्थात्) उदारचित्त और लोकोंको सींचनेवाले विजयी देवताओं का जयशब्द उठता है ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां
१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
मनाᳫंसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्यु

२र २ १२ ३ १२

द्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ १ ॥

अथ चतुर्थे सूक्ते प्रथमा। अप्रतिरथस्त्रिष्टुबिन्द्रः। हे मघवन् इन्द्र! अस्मदीयानि आयुधानि उद्धर्षय उत्कृष्टम् हर्षय प्रहरणेपूद्य कानि भवन्त्वित्यर्थः। मामकान् अस्मदीयानां सत्वनां प्राणिनां सैनिकानां मनांसि च उद्धर्षय। हे वृत्रहन्! इंद्र! वाजिनाम् अश्वानाम् वाजिनानि वेगाः। उद्यन्तु तथा जयतां रथानां घोष उत यन्तु ॥ १ ॥

(मघवन् आयुधानि उद्धर्षय) हे इंद्र! हमारे आयुधोंको उत्तम हर्षयुक्त करो (मामकानां सत्वनां मनांसि उत्) हमारे सैनिकोंके मनोंको हर्षयुक्त करो (वृत्रहन् वाजिनां वाजनानि उत्) हे इन्द्र! अश्वोंके वेगोंको प्रकट करो (जयतां रथानां घोषाः उद्यन्तु) विजय पानेवाले रथोंके शब्द प्रकट हों ॥ १ ॥

३ २ ३ २ ३ १२ ३ २ ३ २ २ १ २र

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इष-

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३

वस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्व-

१ २ ३ १२

स्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥ २ ॥

अथ चतुर्थ सूक्ते द्वितीया। अप्रतिरथस्त्रिष्टुबिन्द्रः। अस्माकं सम्बन्धिष्वेव समृतेषु परसेनां सम्प्राप्तेषु ध्वजेषु ध्वजवत्सु सैनिकेषु इंद्रः अविता भवतु। तथा अस्माकं या इषवः सन्ति ताः एव जयन्तु शत्रून् तथा अस्माकं वीराः भटाः उत्तरे उपरि भवन्तु। हे देवाः! अस्मान् उ अस्मानेव अवत रक्षतां हवेषु संग्रामेषु ॥ २ ॥

(अस्माकं समृतेषु ध्वजेषु इंद्रः) हमारे शत्रुसेनाओंमें पहुंचे हुए ध्वजाधारी सैनिकोंमें इंद्र रक्षा करैं (अस्माकं याः इषवः ताः जयंतु) हमारे जो बाण हैं वह शत्रुओंको जीतैं (अस्माकं वीराः उत्तरं भवन्तु) हमारे वीर सबसे ऊपर हों (देवाः अस्मान् उ हवेषु अवत) हे देवताओं! हमारी ही सग्रामों में रक्षा करो ॥ २ ॥

३ १ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा

१ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २

स्पर्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषा-

३ २ ३ २उ ३ २
मन्यो अन्यं न जानात् ॥ ३ ॥

अत्र चतुर्थे सूक्ते तृतीया। अप्रतिरथस्त्रिष्टुप् मरुतः। असौ या सेना हे मरुतः! परेषां शत्रूणाम् अभ्येति अभिमुखा एति नः अस्मान् प्रति ओजसा बलेन स्पर्द्धमाना, तां सेनां गूहत व्याप्नुत तमसा अपव्रतेन व्रतमिति कर्मनाम (निघ० २, १, ७), अपगतकर्मणा येन तमसा व्याप्ता नश्यन्ति कर्माणि तदपव्रतम् तमः, तेनापव्रतेन तमसा तथा गूहत यथा एतेषां योद्धा अन्यो अन्यं न जानात परस्परं न जानातीत्यर्थः

(मरुतः या असौ ओजसा स्पर्धमाना परेषां सेना नः अभ्येति) हे मरुतो! जो यह बलसे स्पर्धा करती हुई शत्रुओंकी सेना हमारी ओर को चढ़कर आती है (तां अपव्रतेन तमसा गूहत) उसको जिसमें कुछ काम न होसके ऐसे अंधकारसे छादो (यथा एतेषां अन्यः अन्यं न जानात्) जैसे इनमें एक दूसरे को जान भी न सके ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २ २ १ २ ३ १ २ ३
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यघे
१२ ३ २उ ३ १२ ३ १ २र ३ २ ३ २
परेहि अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामि-
३ १ २
त्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ १ ॥

अथ पञ्चमे सूक्ते प्रथमा। अप्रतिरथः त्रिष्टुप् वायुः। हे अघे! पापभिमानिनि! देवते!परेहि परागच्छ अमीषाम् योद्धॄणां शत्रूणाम् चित्तम् प्रतिलोभयन्ती विमोहयन्ती सती अङ्गानि तेषामवयवान् शिर आदिकान् गृहाण स्वीकुरु। अभिप्रेहि, अभिगच्छ। तेषां समीपं गत्वा च हृत्सु हृदयेषु शोकैः निर्दह नितरां भस्मी कुरु। ते अमित्राः अस्मच्छत्रव अन्धेन तमसा सचन्तां सङ्गच्छन्ताम् ॥ १ ॥

(अघे परेहि) हे पापकी अभिमानिनी देवते! हमसे दूर हो (अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती अङ्गानि गृहाण) इन हमारे शत्रुयोधाओंके चित्त को मोहित करती हुई उनके अङ्गोंको पकड़ (अभिप्रेहि) उनके ऊपर चढ़ाई करके जा और (हृत्सु शोकैः निर्दह) उनके हृदयोंमें शोकोंके द्वारा दाह डाल (अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम्) हमारे शत्रु घोर अन्धकारसे युक्त हों ॥ १ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
३ १ २ ३ १ २ २ १ २र
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ २ ॥

ऋ० अनुष्टुप्। अथ पञ्चमसूक्ते द्वितीया। अप्रतिरथोनुष्टुबिन्द्रो मरुतो वा। हे नरः! नेतारः! संग्रामस्य निर्वोढारो योद्धारः! प्रेत प्रकर्षेण गच्छत। गत्वा च जयत, तान् प्रतिभटान् तिङः परत्वात् तिङ्ङतिङः(८, १, २८) इति निघाताभावः वः युष्माकम् इंद्रः शर्म सुखम् यच्छतु वः बाहवः उग्राः उद्गूर्णबलाः सन्तु भवन्तु ; अनाधृष्याः अ यैः अनभिभाव्याः यथा यूयम् असथ भविष्यथ तथा उग्राः सन्तु वो बाहवः

(नरः) हे हमारे योधाओं! (प्रेत जयत) चढ़ाई करके जाओ और जीतो (इंद्रः वः शर्म यच्छतु) इंद्र तुम्हें सुख देय (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारे भुजदण्ड उग्र हों (यथा अनाधृष्याः आसथ) जिसमें कि-तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसँशिते ।
२ ३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ २ ३ १ २
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः

छ० अनुष्टुप्। अथ पञ्चमसूक्ते तृतीया। अप्रतिरथ ऋषिः पायुर्वा भारद्वाजः अनुष्टुप् छन्दः इषुर्देवता। ब्रह्मसंशिते मन्त्रेण तीक्ष्णीकृते, हे शरव्ये! हिंसाकुशले! इषो! त्वम् अवसृष्टा क्षिप्ता परा पत परागच्छत। इता देशात् गत्वा च अमित्रान् हिंसकान् प्रपद्यस्व प्राप्नुहि च। अमीषाम् अमित्राणां मध्ये कञ्चन कञ्चिदपि मा उच्छिषः अवशिष्टम् मा कुरु। ॥ ३ ॥

(ब्रह्मसंशिते शरव्ये) वेदमन्त्रोंसे तीक्ष्ण करे हुए हे हिंसा करने वाले बाण! (अवसृष्टा परापत) छोड़ा हुआ तू दूर चला जा और जाकर (अमित्रान् प्रपद्यस्व) हमारे शत्रुओंको प्राप्त हो (अमीषां कञ्चन मा उच्छिषः) इन शत्रुओंमेंसे किसीको भी शेष न छोड़ ॥ ३ ॥

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३
कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नम-

१ २ ३ १ २ १ २ ३ २ ३ २ २ १ २
सावस्तु सेना । मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वया-
३ १ २ ३ १ २
ꣳस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ॥ १ ॥

ऋ० प्रजापतिः । छ० त्रिष्टुप् अनुष्टुप् वा, पंक्ति । दे० इंद्रः । अथ षष्ठे सूक्ते प्रथमा । अप्रतिरथ ऋषिः पायुर्वा भारद्वाजः, त्रिष्टुप्छन्दः, इन्द्रो देवता कङ्का नाम पक्षिणः क्रव्यादाः सुपर्णाः शोभनपतनाः अनु यन्तु एतान् शत्रून् । गृध्राणाम अन्नं पक्षिणां भक्ष्यभूता असौ सेना अस्तु । मा एषां मोचि एतेषां मा कश्चित् मुच्यताम् । अघहारश्च नेन्द्र हे इंद्र ! योऽपि न नितरां पापीयान् अतिप्रत्यवायः सोऽपि न मुच्यतां मृत्योः । वयांस्येनान् वयांसि पक्षिरूपाणि क्रव्यादादीनि अनु संयन्तु सवान् अनु पश्चात यन्तु सर्वान् शत्रून् ॥ १ ॥

(सुपर्णाः कङ्काः एनान् अनुयन्तु) सुन्दरपरोंवाले मांसभक्षी पक्षी इन शत्रुओंके पीछे लगें (।असौ सेना गृध्राणां अन्नं अस्तु) यह शत्रु सेना गृध्रपक्षियोंकी भोजन रूप हो (एषां मा अमोचि) इन शत्रुओंमें से कोई भी न बचै (इंद्र अघहारश्च न) हे इंद्र ! जो अधिक पापी न हो वह भी न छूटे (वयांसि एनान् सर्वान् अनुसंयन्तु) पक्षीरूप मांसभक्षी राक्षस इन सबोंका पीछालें ॥ १ ॥

३ १ १ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १
अमित्रसेनां मघवन्नस्मां छत्रुयतीमभि । उभौ
२र ३ १ २ ३ १ २
तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ॥ २ ॥

अथ षष्ठे सूक्ते द्वितीया । अप्रतिरथ ऋषिःअग्निर्वा अनुष्टुप् छन्दः इन्द्राग्नी देवते । अमित्रसेनां हे मघवन् ! अस्मान् शत्रुयतीमभि शत्रुभिः परिवारिताम् उभौ तां सेनां हे इन्द्र ! वृत्रहन त्वञ्च अग्निश्च प्रति दहतम् भस्मीकुरुतमित्यर्थः ॥ २ ॥

(मघवन् वृत्रहन् इंद्र) हे धनवान् शत्रुनाशक इंद्र तुम (अग्निः चः) अग्नि भी (उभौ) तुम दोनों (अस्मान् अभि शत्रुयतीम) हमारे प्रति शत्रुता करनेवाली (अमित्रसेनां प्रति दहतम)शत्रुसेनाको भस्म करदो॥

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा
३ २
शर्म यच्छतु ॥ ३ ॥

अथ षष्ठे सूक्ते तृतीया । अप्रतिरथ ऋषिः पायुर्भारद्वाजः पंक्तिच्छन्दः ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च देवता । यत्र सग्रामे कुमारा विशिखा इव मुण्डिता इव बाणाः सम्पतन्ति । तत्र नः अस्मभ्यं ब्रह्मणस्पतिः शर्म सुखं विश्वाहा सर्वदा यच्छतु अदितिः च सर्वदा शर्म यच्छतु द्विरुक्तिरादरार्था ॥३॥

(यत्र) जिस संग्राममें (विशिखाः कुमाराः इव) बड़ी शिखा वाले कुमारोंकी समान (बाणाः संपतन्ति) बाण पड़ते हैं (तत्र नः) तहां हमें (ब्रह्मणस्पतिः अदितिः शर्म यच्छतु) ब्रह्मणस्पति अदिति देवता सुख देय (विश्वाहा शर्म यच्छतु) सर्वदा सुख देय ॥ ३ ॥

२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१॥

अथ सप्तमे सूक्ते प्रथमा । अप्रतिरथ ऋषिः शासो भारद्वाजो वा अनुष्टुप् छन्दः। इन्द्रो देवता। हे इन्द्र! रक्षः राक्षसजातं विजहि विनाशय । मृधः संग्रामकारिणः शत्रूंश्च वि जहि । वृत्रस्य आवरकस्यासुरस्य हनू कपोलप्रान्तौ विरुज विशेषेण भग्नौ कुरु । हे वृत्रहन् इन्द्र अभि दासतः अस्मानुपक्षपयतः अमित्रस्य शत्रोः विमन्युं क्रोधमपि विनाशय ॥ १ ॥

(इन्द्र रक्षः विजहि) हे इन्द्र राक्षसजातिका विनाश करो (मृधः वि) संग्राम करनेवाले शत्रुओंका विनाश करो (वृत्रस्य हनू विरुज) हमारी उन्नतिको रोकनेवाले असुरके कपोलोंको तोड़ो (वृत्रहन् अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं) हे इन्द्र ! हमारी भारी हानि करनेवाले शत्रुके क्रोधको भी विनष्ट करो ॥ १ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२॥

अथ सप्तमे सूक्ते द्वितीया । अप्रतिरथ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः । इंद्रो देवता । हे इन्द्र ! नः अस्माकं मृधः संग्रामकारिणः शत्रून् वि जहि विनाशय । तथा पृतन्यतः पृतनाः सेना आत्मन इच्छतः युयुत्समानानपि नीचा यच्छ नीचीनमवाङ्मुखम् यच्छ गमय । यः शत्रुः अस्मान् अभि दासति अभितः उपक्षपयति तम् अधरं निकृष्टं तमः अन्धकारं मरणलक्षणं गमय प्रापय ॥ २ ॥

(इन्द्र नः मृधः विजहि) हे इन्द्र ! हमारे संग्रामकारी शत्रुओंका विनाश करो (पृतन्यतः नीचा यच्छ) युद्ध करनेके लिये अपनी सेनाओंको चाहते हुए शत्रुओंको भी नीचामुख करके लौटाओ (यः अस्मान् अभिदासति) जो शत्रु हमें चारों ओरसे क्षीण करना चाहता है उसको (अधरं तमः गमय) निकृष्ट अन्धकार अर्थात् मरणदशामें पहुँचाओ ॥ २ ॥

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रती-

१ २ ३ २ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३

कावसह्यौ । तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते

१ २ ३ १ २र २ १ २ ३ २

याभ्यां जितमसुराणाँ सहो महत् ॥ ३ ॥

अथ सप्तमे सूक्ते तृतीया । अप्रतिरथ ऋषिः इन्द्रो देवता विराट् जगतीच्छन्दः इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ स्थररूपौ अथवा स्थविरौ स्थूलौ युवानौ जरया न ग्रसितौ अनाधृष्यौ न केनचिद्धृते सुप्रतीकौ स्वाकृती हस्तिकराकारौ असह्यौ न केनचित् सोढुं शक्तौ तौ युञ्जीत प्रथमे योगे आगते योगे संग्रामे यत्र नियुज्यन्ते बाहवः याभ्यां जितम् असुराणां स्वभूतं सहः बलं महत् ॥ ३ ॥

(याभ्यां असुराणां महत् सहः जितम्) जिन्होंने असुरोंके बड़े-भारी बलको जीता (तौ इन्द्रस्य) उन इन्द्रके (स्थविरौ युवानौ) स्थूल तरुण (अनाधृष्यौ सुप्रतीकौ) किसीके वशमें न आनेवाले और हाथीकी सूंडकी समान (असह्यौ बाहू) असह्य भुजदण्डोंको (योगे आगते प्रथमौ युञ्जीत) संग्रामका अवसर आनेपर सबसे पहिले नियुक्त करें ॥ ३ ॥

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजा-

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ २
मृतेनानु वस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु
१ २ ३ १ २ ३ १ २
जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १ ॥

अथ अष्टमे सूक्ते प्रथमा । अप्रतिरथ ऋषिः पायुर्वा भारद्वाजःत्रिष्टुप् छन्दः सोमो देवता वरुणश्च देवता । हे राजन् ! ते त्वदीयानि मर्माणि येषु स्थानेषु विद्धः सद्यो म्रियते तानि मर्माणि वर्मणा कवचेन छादयामि सोमः राजा त्वा त्वाम् अनु छादनानन्तरम् अमृतेन वस्ताम् आच्छादयतु । वरुणः अपि ते तुभ्यम् उरोर्वरीयः उरुतुल्यं सुखं कृणोतु करोतु । जयन्तं त्वा त्वां देवाः सर्वेऽपि अनु मदन्तु अनुहृष्यन्तु ॥ १ ॥

हे राजन् ! (ते मर्माणि वर्मणा छादयामि) तेरे मर्मस्थानोंको कि जिनमें विंधने पर मनुष्य शीघ्र मरजाता है उन अङ्गोंको कवचसे ढकता हूँ, तदनन्तर (सोमः राजा त्वा अमृतेन अनु वस्ताम्) सोमराजा तुझे अमृतसे आच्छादन करें (वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु) वरुण भी तेरे अर्थ बड़ेसे बड़ा सुख करें (देवाः जयन्तं त्वा अनुमदन्तु) सकल देवता विजय पातेहुए तुझे आनन्द दें ॥ १ ॥

३ १ २ ३ १ २
अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु
१ २
वरं वरम् ॥ २ ॥

अथ अष्टमे सूक्ते द्वितीया । अप्रतिरथ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः । इंद्रो देवता । हे अमित्राः शत्रवः यूयम् अन्धा भवत । कीदृशा अन्धाः ? अशीर्षाणः अहय इव यथा सर्पाः शीर्षच्छिन्ना अकिञ्चित्करा भवन्ति तथा भवत । तेषां वः अग्निनुन्नानाम् अग्निदग्धानां शत्रूणाम् इंद्रः हन्तु वरं वरम् यो यो वरिष्ठस्तं तं हन्तु नाशयतु ॥ २ ॥

(अमित्राः अशीर्षाणः अहयः इव अन्धाः भवत) हे शत्रुओ ! तुम शिर कटेहुए सर्पोंकी समान अंधे होजाओ (तेषां अग्निनुन्नानां वः)

उन अग्निके भस्मीभूत किये हुए तुम शत्रुओंमेंसे (वरं वरं इंद्रः हन्तु) श्रेष्ठ श्रेष्ठको इंद्र नष्ट करें ॥ २ ॥

२ ३ १ २३ २ ३ २ ३ १२
यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ट्यो जिघाᳩसति ।
३१ . २र ३ २३ २३ १ २र३ २३
देवास्तᳩ सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरᳩ, शर्म
२३ १ २र
वर्म ममान्तरम् ॥ ३ ॥

अथ अष्टमे सूक्ते तृतीया। अप्रतिरथ ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः विश्वे देवा देवताः। यः स्वः ज्ञातिः अरणः अरममाणः यश्च निष्ट्यः तिरोभूतः दूरे स्थितः नः अस्मान जिघांसति हन्तुमिच्छति तं देवाः सर्वे धूर्वन्तु हिंसन्तु। ब्रह्म मन्त्रः मम अन्तरम् शराणां निवारकं वर्म विद्यते शर्म वर्म सन्नहनभूतः मम अन्तरम् अस्तु ॥ ३ ॥

(यः स्वः अरणः) जो ज्ञातिवाला हमसे प्रेमभाव नहीं रखता है (यः च निष्ट्यः नः जिघांसति) और जो छुपकर दूरसे ही हमारी हिंसा करना चाहता है (तं सर्वे देवाः धूर्वन्तु) उसको सकल देवता नष्ट करें (ब्रह्म मम अन्तरं वर्म) मन्त्र मेरा बाणोंको रोकनेवाला कवच है (शर्म वर्म मम अंतरं अस्तु) कल्याणमय कवच मेरा रक्षक हो ॥ ३ ॥

३ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २३२३ १ २ ३
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था
१२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
परस्याः । सृकᳩ सᳩशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि
२र ३ १ २र
शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ १ ॥

अथ नवमे सूक्ते प्रथमा। अप्रतिरथ ऋषिः, ऐन्द्रो वा जवः, त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता। कुचरः कुत्सितचरणः गिरिष्ठाः पर्वतनिवासो मृगः न सिंह इव। हे इन्द्र! त्वं भीमः भयङ्करः असि। स त्वं परस्याः

परावतः अतिशयेन दूरात् द्युलोकात् आ जगन्थ आगच्छ गमेश्छान्दसि लिटि (३, २, १०५) क्रादिनियमप्राप्तस्येटः (७, २, १३) उपदेशेऽत्वतः (७, २, ६२) इति प्रतिषेधः। आगत्य च सृकं संरणशीलं तिग्मं तीक्ष्णं पविं वज्रं संशाय सम्यक् तीक्ष्णीकृत्य शत्रून् अस्मदीयान् वैरिणः हे इंद्र! ते तव वज्रेण वि ताढि विशेषेण ताडय विनाशय इत्यर्थः। तड आघाते (चु०प०) अस्माण्ण्यन्ताल्लोटि रूपमेतत्। तथा मृधः संग्रामोद्युक्तान् युयुत्सून् अन्यानपि वि नुदस्व विशेषेण प्रेरय तिरस्कुरु॥ १॥

(इंद्र) हे इन्द्र तू (कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः) हिंसक चरण वाले पर्वतनिवासी सिंहकी समान भयदायक है वह तू (परस्याः परावतः आजगन्थ) दूरसे भी दूर द्युलोकसे आओ, और आकर (सृकं तिग्मं पविं संशाय) दूरतक पहुंचानेवाले तीक्ष्ण वज्रको तीक्ष्ण करके (शत्रून् विताढि) हमारे वैरियोंको विशेषरूपसे नष्ट करो (विमृधः नुदस्व) संग्राम करनेका उद्यत हुए अन्य शत्रुओंका भी विशेषरूपसे तिरस्कार करो॥ १॥

३१ २र ३१ २ ३ १ २
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभि-
३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३क
र्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि
३ १ २ ३ १ २र
देवहितं यदायुः॥ २॥

अथ नवमे सूक्ते द्वितीया। अप्रतिरथ ऋषिः राहुगणो गौतमो वा, त्रिष्टुप् छन्दः, विश्वेदेवा देवताः। हे देवाः! दानादिगुणयुक्ताः सर्वे देवाः कर्णेभिः अस्मदीयैः श्रोत्रैः भद्रं भजनीयं कल्याणं वचनं शृणुयाम युष्मत्प्रसादात् श्रोतुं समर्थाः स्यामः, अस्माकं बाधिर्यं कदाचिदपि माभूत्। हे यजत्राः यागेषु चरुपुरोडाशादिभिः यष्टव्याः देवाः। अक्षभिः अक्षिभिः आत्मीयैश्चक्षुभिः भद्रं शोभनं पश्येम द्रष्टुं समर्थाः स्याम, अस्माकं दृष्टिप्रतिघातोऽपि माभूत्। स्थिरैः दृढैः अङ्गैः हस्तपादादिभिः अवयवैः तनूभिः शरीरैश्च युक्ता वयं तुष्टुवांसः युष्मान् स्तुवंतः यदायुः षोडशाधिकशतप्रमाणं विंशत्यधिकशतप्रमाणं वा देवहितं देवेन प्रजापतिना स्थापितं तत् व्यशेमहि प्राप्नुयाम कर्णेभिः बहुलं

छन्दसि (७, १, १०) इति भिस ऐसभावः । अक्षभिः छन्दस्यपि दृश्यते (७, १, ७६) इत्यनङ् स चोदात्तः । यजत्रा अमि नक्षि (उ० ३, १०५) इत्यादिना यजेरत्रन प्रत्ययः । तुष्टुवांसः ष्टुञ् स्तुतौ (अदा० प०), लिटः क्वसुः (३, २, १०७) शपूर्वाः खयः (७, ४, ६१) इति तकारः शिष्यते । अशेमहि अशूङ्व्याप्तौ (स्वा० आ०) लिङ्याशिष्यङ् (३, १, ८६) यदि तु तत्र परिगणनमन्यव्यावृत्त्यर्थं तदानीं लिङि व्यत्ययेन शर (३, १, ८५) । देवहितं तृतीया कर्मणि (६, २, ४८) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ॥ २ ॥

(देवाः कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) हे सकल देवताओं ! आपके अनुग्रहसे हम अपने कानोंसे सेवन करनेयोग्य कल्याणरूपवचनको सुनने में समर्थ हों अर्थात् हम कभी भी बहिरे न हों (यजत्राः) यज्ञोंमें चरु पुरोडाश आदिके द्वारा यजन करनेयोग्य हे देवताओं ! (अक्षिभिः भद्रं पश्येम) अपने नेत्रोंसे कल्याणरूपको देखसकें अर्थात् हमारी दृष्टि में कमी कभी न आवै (स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः) दृढ़ हाथ पैर आदि अवयव और शरीरोंको प्राप्तहुए हम (तुष्टुवांसः) तुम्हारी स्तुति करतेहुए (यत् आयुः देवहितम्) जो एकसौ सोलह वर्षकी वा एक सौ बीस वर्षकी आयु प्रजापति देवताने नियतकी है (व्यशेमहि) उसको हम पावें ॥ २ ॥

३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २ ३२
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा
३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
३ २ ३ २ ३ १ २ १
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ओ३म् ।
३ २ ३ २ ३ १ ३
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ३ ॥

अथ नवमे सूक्ते तृतीया। अप्रतिरथ ऋषिः राहुगणो गोतमो वा, स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः, विश्वे देवा देवताः। वृद्धश्रवाः वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणं स्तोत्रं हविर्लक्षणमन्नं वा यस्य तादृशः इंद्रः नः अस्माकं स्वस्तीत्यविनाशनाम स्वस्ति अविनाशं दधातु विदधातु। विश्ववेदाः विश्वानि वेत्तीति विश्ववेदाः यद्वा, विश्वानि सर्ववेदांसि ज्ञानानि वा धनानि यस्य, तादृशः पूषा पोषको देवः न अस्माकं स्वस्ति विदधातु। अरिष्टनेमिः नेमिरित्यायुधनाम (निघ० २, २०, २) अरिष्टो अहिंसितो नेमिर्यस्य। यद्वा, रथचक्रस्य धारा नेमि, यत् सम्बन्धिनो रथनेमिर्न हिंसते सोऽरिष्टनेमिः एवम्भूतः तार्क्ष्यः तृक्षस्य पुत्रः गरुत्मान् नः अस्माकं स्वस्ति अविनाशं विदधातु।तथा बृहस्पतिः बृहतां देवानां पतिः पालयिता, नः अस्माकं स्वस्ति अविनाशं विदधातु वृद्धश्रवाः, बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, १) । विश्ववेदाः, विद्ज्ञाने (अदा० प०), विद्लृलाभे (तु० उ०) आभ्यामसुन्प्रत्ययान्तौ वेदशब्दः, बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् (६, २, १०६), इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्। तार्क्ष्यः, तृक्षस्यापत्यं गर्गादिभ्या यञ् (४, १, १०५), ञित्वादाद्युदात्तत्वम् (६, १, १९७)। अरिष्टनेमिः, न रिष्टा अरिष्टा, अव्ययपर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् (८, २, २), अरिष्टा नेमिर्यस्य स तथोक्तः। बृहस्पतिः तद्बृहतोः करपत्योः (६, १, १, ५७ भ्वा०) इति सुट्तलोपौ उभे वनस्पत्यादिषु (६, २, १४०) इति पूर्वोत्तरपदयोर्युगपत प्रकृतिस्वरत्वम्॥ ३॥

इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्त्तक-श्रीवीरबुक्कभूपाल-साम्राज्यधुरन्धरेण सायणाचार्य्येण विरचिते माधवीय सामवेदार्थप्रकाशे उत्तराग्रन्थे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

(वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति) बहुत है स्तोत्र वा हविरूप अन्न जिसका ऐसा इंद्र देवता हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करे (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति) सबोंको जाननेवाला वा सकल ज्ञानही जिसके धन

हैं ऐसा पुष्टि देनेवाला पूषानामक देवता हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करे (अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति) अहिंसित आयुध वाला तक्ष-पुत्र गरुत्मान् देवता हमारा अविनाशरूप स्वस्ति करै (बृहस्पतिः नः स्वस्ति विदधातु) बडे २ देवताओंका स्वामी महादेव हमारा अविनाश-रूप स्वस्ति करे ॥ ३ ॥

सामवेदोत्तरार्चिके एकविंशाध्यायस्य प्रथमः खण्डः समाप्तः

इति श्रीसामवेदसंहिताया युक्तप्रान्तान्तर्गत—मुरादाबादनगर-निवासिना-काशीस्थसंस्कृतमहाविद्यालये, षड्दर्शनाध्यापक-महामहोपाध्यायनिखिलतंत्रस्वतन्त्रस्वर्गीयस्वामिराममिश्र-शास्त्रिभ्योऽधिगतविद्येन-भारद्वाजगोत्रगौडवंश्यपण्डित-भोलानाथात्मजेन-सनातनधर्मपताकासम्पादकेन ऋषिकुमारोपनामधारिणा—रामस्वरूपशर्मणा विरचितः श्रीमत्सायणाचार्यकृत-भाष्यानुगः सान्वयभाषानु-वादः समाप्तः ।

—०—

